ISSN 0974-8857

TULSĪ PRAJÑĀ

(A UGC-CARE Listed Quarterly Research Journal of JVBI)

Year : 49 • Vol. 194 • Issue : April-June, 2022

JAIN VISHVA BHARATI INSTITUTE
A University dedicated to Oriental Studies & Human Values
Ladnun - 341 306, Rajasthan, India

Scanned by TapScanner

ISSN 0974-8857

Tulsī Prajñā

(A UGC-CARE Listed Quarterly Research Journal of JVBI)

Year : 49 **Vol. 194** **Issue : April-June, 2022**

Patron

Prof. Bachhraj Dugar
Vice-Chancellor

Editors

Prof. Damodar Shastri   Prof. Nalin K. Shastree

Managing Editor

Mohan Siyol

Publisher

Jain Vishva Bharati Institute
Ladnun - 341306 (Raj.) India

Contact us: **tulsiprajnarj@gmail.com**
+91-9887111345

Scanned by TapScanner

Tulsī Prajñā
(A UGC-CARE Listed Quarterly Research Journal of JVBI)

CONTENTS

Āgama
Ācārya Mahāprajña — 01

Articles
मरण की कलाः संलेखना — 10

जैन परम्परा में संघर्ष एवं संघर्ष-शमन की अवधारणा — 16

Concept of biological individuality in Jain Philosophy — 26
Dr. Rajeev Jain

Sā Vidyā Yā Vimuktaye: Information, Knowledge and Emancipation — 33
Dr. Anil Pratap Giri

अपभ्रंशप्राकृत-जैन साहित्य में वित्तसार ग्रन्थ का वैशिष्ट्य — 46

Understanding Jainism through Jain Architecture and Planning — 57
Dr. Shilpa Nagapurkar
Dr. Parag Narkhede

Ethical values as delineate d in the Parābhava Sutta and Mahāmańgala Sutta — 63
Dr. Vivek Sharma

Hatha Yoga Intervention for Interpersonal relationships during COVID-19 — 75
Shubha Surana

वैदिक परिप्रेक्ष्य में सृष्टि उत्पत्ति की अवधारणाः ऋग्वेद के विशेष सन्दर्भ में — 84

[illegible]

Scanned by TapScanner

मरण की कला: संलेखना

Tulsī Prajñā
49 (194)
April-June, 2022
ISSN 0974-8857

प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा*

सारांशिका

भगवान महावीर ने जीने की कला के साथ मरने की कला भी सिखाई। उन्होंने कहा- "जब यह नश्वर शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाए, इसके द्वारा आत्महित सधना जब बंद हो जाए तो भोगासक्ति और शरीर की आसक्ति छोड़कर संलेखना करनी चाहिए। धीरे-धीरे शरीर को कृश करके फिर आहार का पूर्ण त्याग करके समाधि मरण प्राप्त करना चाहिए। यह प्रक्रिया आत्महत्या नहीं, अपितु आत्महित का महान् उपक्रम है, क्योंकि संलेखना में व्यक्ति शरीर और पदार्थों की आसक्ति को छोड़कर आत्मलीन और समाधिस्थ हो जाता है।

मुख्य शब्द

संलेखना, आयम्बिल, समाधिमरण

* **प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा**, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं राज।

Scanned by TapScanner

जैन दर्शन में जन्म की भांति मृत्यु भी महोत्सव है। भगवान महावीर ने वीर योद्धा की भांति मृत्यु को आह्वान करने की कला बताई है। इसके पीछे उनका दृष्टिकोण था कि भोग व्यक्ति को छोड़े यह कोई बड़ी बात नहीं है, वह सबको छोड़ता है। महानता यह है कि व्यक्ति स्वयं भोगों को छोड़े, इसके लिए उन्होंने अनशन से पूर्व संलेखना का विधान किया। संलेखना शब्द का अर्थ है-"सम्यक् रूप से शरीर और कषाय को कृश करना। संलेखना दो प्रकार की होती है-द्रव्य और भाव। शरीर को कृश करना द्रव्य संलेखना तथा कषाय को कृश करना भाव संलेखना है। दूसरे शब्दों में इसे बाह्य संलेखना और आंतरिक संलेखना भी कहा जा सकता है। आचार्य शिवकोटि ने भगवती आराधना में छह प्रकार के बाह्यतप को बाह्य संलेखना का साधन माना है।[1]

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढापा, असाध्य रोग उत्पन्न होने पर धर्म की आराधना के लिए शरीर त्यागने को संलेखना कहा गया है।[2]

उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट निर्देश है कि जब तक अपूर्व विशिष्ट ज्ञान, दर्शन चारित्र आदि गुणों की उपलब्धि हो, तब तक अन्न-पान आदि के द्वारा अपने जीवन को पोषण देना चाहिए। जब यह ज्ञात हो जाए कि अब यह शरीर ज्ञान आदि का विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकता अथवा रोग और बुढ़ापे के कारण अब यह निर्जरा का साधन नहीं बन सकता तथा धर्माराधना करने में समर्थ नहीं है, तब साधक शरीर से निरपेक्ष होकर संलेखना का आचरण करे और अंत में अनशन द्वारा शरीर का त्याग करे।[3]

द्रव्य संलेखना भी भावसंलेखना में सहयोगी बनती है। भाष्यकार ने भाव संलेखना को बहुत सुंदर कथा से स्पष्ट किया है। एक साधु आचार्य के पास अनशन की इच्छा से अनेक बार आया। हर बार आचार्य ने एक ही बात कही-"तुमने संलेखना का अभ्यास किया या नहीं?" साधु ने कुपित होकर तप से कृश अपनी अंगुलि को तोड़कर दिखाते हुए कहा-"क्या अब भी आपको संदेह है कि मैंने संलेखना नहीं की है'', "आचार्य ने कहा-"मेरे पूछने का आशय द्रव्य संलेखना से नहीं, अपितु भाव संलेखना से है। तुमने अभी आवेश और कषाय को कृश नहीं किया है, अतः तुम इंद्रियों को जीतो, कषायों को कृश करो और ऋद्धि, रस, साता-"इन त्रिविध गौरवों से मुक्त बनो। तब तुम्हारी संलेखना पूरी होगी।" अनशन की तैयारी में कृश शरीर के साथ कृश कषाय अधिक महत्त्वपूर्ण है।

तप और काल के आधार पर संलेखना तीन प्रकार की होती है-जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। छह माह की जघन्य संलेखना तथा बारह वर्षों की उत्कृष्ट संलेखना होती है। एक वर्ष की मध्यम संलेखना होती है।[4]

उत्कृष्ट संलेखना का क्रम

बारहवर्षीय विधिवत् संलेखना का वर्णन सर्वप्रथम आचारांग निर्युक्ति में मिलता है। फिर भाष्य साहित्य में भी विस्तार से उसका वर्णन है। बारह वर्षीय उत्कृष्ट संलेखना में प्रथम चार वर्षों तक विचित्र तप का अनुष्ठान अर्थात् उपवास, बेला, यावत् पंचोला आदि का तप किया जाता है तथा पारणे में उद्गम दोषों से रहित-विगय सहित या विगय रहित आहार किया जाता है। द्वितीय चार वर्षों में तपस्या के पारणे में निर्विगय, विगयरहित आहार करने का विधान है। नौवें और दशवें वर्ष में उपवास के ऊपर आयम्बिल तप किया जाता है।[5]

Scanned by TapScanner

उत्तराध्ययन की शान्त्याचार्य टीका के अनुसार संलेखना करने वाला प्रथम चार वर्षों में विगय-वर्जन अथवा आयम्बिल करे तथा दूसरे चार वर्षों में विचित्र तप (उपवास, बेला, तेला) आदि करे तथा पारणे में यथेष्ट भोजन करे।[6]

ग्यारहवें वर्ष में पहले छह महीनों में अतिविकृष्ट तप नहीं किया जाता। उपवास या बेले के पारणे में नियमित आयम्बिल किया जाता है तथा द्वितीय छह महीनों में विकृष्ट तप तेला, चोला आदि करके आयम्बिल से पारणा किया जाता है। सम्पूर्ण ग्यारहवें वर्ष में पारणे में आयम्बिल तप किया जाता है।[7]

निशीथचूर्णि के अनुसार ग्यारहवें वर्ष के प्रथम छह माह तक अविकृष्ट तप करके कांजी से पारणा किया जाता है। यहां कांजी से तात्पर्य आयम्बिल से ही होना चाहिए, क्योंकि भगवती आराधना की टीका मूलाराधना दर्पण में आयम्बिलं कांजिकाहारं का उल्लेख मिलता है। दूसरे छह माह में विकृष्ट तपश्चरण के पारणे में ऊनोदरी के साथ आयम्बिल किया जाता है।[8]

कुछ आचार्यों की मान्यता के अनुसार संलेखनाकर्ता की बारह वर्षों की आराधना पूरी हो जाए, शीघ्र मृत्यु न हो इस दृष्टि से दूसरे छह माह के पारणे में आयम्बिल में ऊणोदरी तप नहीं किया जाता। बारहवें वर्ष में पुनः उपवास के साथ आयम्बिल किया जाता है। प्रवचनसारोद्धार की टीका में उल्लेख है कि बारहवें वर्ष के तप में अनेक मतान्तर हैं[9] लेकिन वहां उन मतान्तरों का उल्लेख नहीं किया गया है।

संलेखना करने वाला मुनि बारहवें वर्ष में प्रतिदिन एक-एक कवल की हानि करता हुआ तब तक ऊणोदरी करता है, जब तक एक कवल आहार शेष बचता है। फिर शेष दिनों में उस कवल से क्रमशः एक एक सिक्थ-कण कम करता हुआ आहार करता है। अंत में एक सिक्थ का आहार करता है।[10] भाष्य-साहित्य में इसे उपमा से स्पष्ट किया गया है कि जैसे दीप में तैल और बाती का क्षय एक साथ होता है, वैसे ही शरीर और आयुष्य का क्षय एक साथ हो, इस दृष्टि से ऐसा किया जाता है।[11]

निशीथ भाष्य में बारहवें वर्ष के क्रम में कुछ अंतर मिलता है। उसके अनुसार बारहवें वर्ष में चार-चार मास के तीन त्रिकों के प्रथम त्रिक में नीवी और आयम्बिल तप एकान्तरित किए जाते हैं। दूसरे त्रिक में एकान्तर विगययुक्त पारणा किया जाता है तथा तीसरे त्रिक में पारणे के दिन चुल्लू भर तेल मुंह में रखा जाता है, कुछ देर बाद उसे क्षार युक्त श्लेष्म पात्र में विसर्जित करके उष्ण जल से मुख साफ किया जाता है। ताकि रूक्षता के कारण मुख यंत्र इतना न सिकुड़ जाए कि वह नमस्कार महामंत्र का उच्चारण भी न कर सके।[12]

इस प्रकार क्रम से द्वादशवर्षीय उत्कृष्ट संलेखना करके साधु गिरिकंदरा में जाकर अथवा किसी जीव हिंसा रहित एकान्त स्थान पर जाकर पादपोपगमन अनशन स्वीकार करता है अथवा भक्तपरिज्ञा या इंगिनीमरण अनशन को स्वीकार करता है।

मध्यम १ वर्ष और जघन्य छह माह की संलेखना का क्रम भी इसी रूप में होता है। अंतर केवल इतना ही रहता है कि इसमें समय के अनुसार मास और पक्ष तक यह क्रम चलता है।

भगवती आराधना में संलेखना के स्थान पर भक्तपरिज्ञा शब्द का प्रयोग हुआ है। वहां भक्तपरिज्ञा के उत्कृष्ट बारह वर्ष की तपस्या का क्रम इस प्रकार है-

Scanned by TapScanner

१. प्रथम चार वर्षों में विचित्र अर्थात् अनियत काय-कलेशों के द्वारा शरीर कृश किया जाता है।

२. दूसरे चार वर्षों में विकृतियों का परित्याग कर शरीर को सुखाया जाता है।

३. नौवें और दसवें वर्ष में आचाम्ल और विकृति-वर्जन किया जाता है।

४. ग्यारहवें वर्ष में केवल आयम्बिल तप किया जाता है।

५. बारहवें वर्ष में प्रथम छ माह में अविकृष्ट तप-उपवास, बेला आदि किया जाता है।

६. बारहवें वर्ष की दूसरे छमाह में विकृष्ट तप-तेला, चोला आदि किया जाता है।

आचार्यों ने बारहवर्षीय संलेखना का क्रम निर्धारित किया है लेकिन साथ ही यह भी निर्देश दिया है कि मुनि को संलेखना के लिए वही तप स्वीकार करना चाहिए, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और शरीर की धातु के लिए अनुकूल हो।[13]

जीतकल्पभाष्य एवं व्यवहारभाष्य में संलेखना का क्रम निशीथभाष्य का संवादी है।[14]

जो विकृष्ट तप नहीं कर सकते, उन साधकों के लिए संलेखना की एक सामान्य विधि भी निर्युक्तिकार ने प्रस्तुत की है। मुनि निरंतर वृत्ति संक्षेप अर्थात् ३२ कवल प्रमाण भोजन को क्रमशः कम करता हुआ धीरे-धीरे सम्पूर्ण आहार का निरोध करके अनशन स्वीकार कर सकता है।[15]

जैन आचार्यों द्वारा वर्णित संलेखना की यह विधि वीरतापूर्वक मौत को आह्वान है, न कि आत्महत्या का उपक्रम है। इस उपक्रम से न केवल आत्मबल बढ़ता है, अपितु शरीर के प्रति आसक्ति का विसर्जन भी होता है। विनोबा भावे कहते थे कि जैन आचार्यों ने जो मृत्यु की कला बताई है, उसी के अनुसार मरना चाहिए। उन्होंने अंत में संलेखना करके समाधिमरण प्राप्त किया।

विराट्नगर से काठमांडू का पहाड़ी रास्ते अत्यन्त विकट है अधिकांश लोग हवाई जहाज से इस रास्ते को तय करते हैं। उस रास्ते में पैदल चलने के लिए जो सड़कें बनाई गई हैं, उनमें रशियन सड़क अधिक अच्छी है।

साध्वी राजीमतीजी ने जब काठमांडू की ओर पादविहार प्रारम्भ किया, तब दिन में पुलों के नीचे तथा रात्रि में सरकारी क्वार्टर में रुकते हुए वे वीरगंज पहुंचे। एक दिन का प्रसंग है कि नौलखा परिवार दिन में सेवा करके वापस चला गया। रात्रि में साध्वीश्रीजी का एक छोटे से क्वार्टर में प्रवास था। गुरु-वंदन के समय पास वाले मंदिर का चौकीदार आया और चेतावनी देते हुए बोला- "रात्रि में आपको यहां नहीं रहना चाहिए, क्योंकि यहां रात्रि में 9 बजे प्रतिदिन एक भूत आता है। वह हम लोगों की अनेक बकरियों को खा गया है। आप लोग रात्रि में कितनी ही आवाज दें, लेकिन कोई भी व्यक्ति घर के बाहर नहीं निकलेगा।''

साध्वीश्री ने दूसरे स्थान के बारे में पूछा, लेकिन आसपास कोई भी दूसरा स्थान नहीं था। साध्वीश्री राजीमतीजी ने उस चौकीदार से कहा- "भाई! यह बात तो तुमको दिन में बतानी थी, अब रात्रि के समय तो हम कहीं नहीं जा सकते।" साध्वियां जिस क्वार्टर में ठहरी थीं, उसके सामने एक पहाड़ था। भूत के आने का रास्ता भी वही था। साध्वियों ने कासीद मुन्नीलालजी से कहा- "यद्यपि रात्रि में भाई साध्वियों के स्थान पर नहीं रह सकता, लेकिन आज विशेष परिस्थिति है। अतः तुम भी कमरे में एक साईड में या किसी दूसरे

Scanned by TapScanner

क्वार्टर में जा सकते हो।' कासीद बहुत साहसी था। वह प्रबल आत्मविश्वास के साथ बोला- "यदि भूत आएगा तो मैं लाठी से भगा दूंगा।"

साध्वियों के क्वार्टर में एक छोटा-सा झरोखा था। पतिक्रमण और अर्हत् वंदना के पश्चात् साध्वीश्री राजोमतीजी ने एक साध्वी को ॐ भिक्षु का जप करने का निर्देश दिया, दूसरी साध्वी को अनवरत विघ्नहरण की ढाल चितारने को कहा, तीसरी साध्वी को नवकारमंत्र का जप तथा चौथी साध्वी को भक्तामर का परावर्तन करने का इंगित किया। साध्वीश्री भी खिड़की के सामने बैठकर जप करने लगीं। कासीद निर्भय होकर क्वार्टर के बाहर बैठा रहा।

लगभग पौने नौ बजे पहाड़ से कोई उतरता हुआ दिखाई दिया। उसके मस्तक पर तेज प्रकाश था। पैर बहुत लम्बे और पेट मोटा था। उसका रंग काला था और शरीर लोहे के ढांचे जैसा था। तेज प्रकाश के कारण चेहरा साफ नहीं दिखाई दे रहा था। नव नववधू की भांति धीरे-धीरे चल रहा था। उसका मुंह साध्वियों की तरफ था। दूरी धीरे-धीरे सिमटती जा रही थी। अब साध्वियों को संबोधित करते हुए साध्वी राजीमतीजी ने कहा- "भयभीत होने या घबराने की आवश्यकता नहीं है। जब तेजी से शुरू कर दो और मौत भी आए तो उसे प्रसन्नता से स्वीकार करने को तैयार रहो।' भय सामने है लेकिन देव, गुरु, धर्म के प्रभाव से बड़े से बड़ा संकट टल जाता है'' इतना कहकर साध्वीश्री भी अपने इष्ट मंत्र के जप में तल्लीन हो गईं।

साध्वीश्री ने मुन्नीलालजी को भीतर आने का कहा, लेकिन न वे निडरता से बाहर बैठे थे। अब साध्वियों की और उसकी दूरी बहुत कम थी, लेकिन साध्वी राजीमतीजी के मन में भय का कोई प्रकम्पन पैदा नहीं हुआ। अचानक एक सैनिक की भांति तेजी से उसने अपनी गति बदली और वापस उसी रास्ते पहाड़ पर ऊपर चढ़ने लगा। अध्यात्म के प्रभाव से संभावित खतरा टल गया। लेकिन साध्वियों के लिए वह जीवन का नया अनुभव था।

दूसरे दिन लोगों ने जब साध्वियों को सही सलामत देखा तो आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा- "अवश्य ही आपके साथ कोई दिव्य शक्ति कार्य कर रही है। अन्यथा इस एरिया में रहने वाला कोई भी व्यक्ति उस व्यन्तर देव के प्रभाव से बच नहीं पाता है।"

Scanned by TapScanner

संदर्भ

1. भआ ३/२०८
2. रत्नकरण्ड श्रावकाचार १२२ उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे। धर्माय तनुविमोचनमाहुः संलेखनामार्याः॥
3. उत्तराध्ययन ४/७ शान्त्याचार्य टीका प. २१६, २१८
4. जीतकल्पभाष्य ३४१; संलेहणा उ तिविधा, जहण्ण मज्झा तहेव उक्कोसा। छम्मासा वरिसं वा, बारसवरिसा जहाकमसो॥
5. आचारांग निर्युक्ति २८९
6. उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य टीका प ७०६
7. आचारांग निर्युक्ति २८९, ९१।
8. निचू ३ पृ. २९४ एक्कारसमे वरिसे पढमं छम्मास अविकिट्ठतवं कातुं कंजिएण पारेइ बिइए छम्मासे विगिट्ठं तवं काउं आयंबिलेण पारेइ।
9. प्रसाटी प २५४ बहूनि मतान्तराणि द्वादशस्य वर्षस्य विषये वीक्ष्यन्ते।
10. प्रवचनसारोद्धार टीका प. २५४।
11. व्यभा ४२४६; जह दीवे तेल्लवत्ति, खओ समं तह सरीरायुं।
12. निशीथभाष्य ३९४५; एगंतरं निव्वंबिल तिगं च एगंतरे भवे विगती। णिस्सट्ठगल्लधरणं, छारादी छड्डणं चेव॥ चू ३ पृ. २९४।
13. भगवती आराधना ३/२५५
14. द्र. जीभा ३४१-५४ व्यभा ४२३८-४९
15. आचारांग निर्युक्ति २९२,२९३

Scanned by TapScanner

स्थापित जुलाई 1988

ISSN No. 0971-796X

प्राकृतविद्या

वर्ष 35, अंक 2

अप्रैल-जून 2022 ई.

कंकाली टीला मथुरा से प्राप्त आयागपट्ट में उत्कीर्ण अर्हत् पार्श्व की प्राचीनतम दुर्लभ प्रतिमा पूर्वकुषाणकालीन द्वितीय सदी पूर्वार्द्ध

लेख— नमो अरहनतान्.....शिव घोस (T).....आयाग

—लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित

UGC Approved Research Journal

ISSN No. 0971-796 ×

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pāgada-Vijjā

प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भारतीय भाषाओं की हिन्दी तक की विकास-यात्रा दर्शानेवाली समर्पित त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

A quarterly journal devoted to researches on the development of Prakrit, Apabhramsha and Ancient Indian Languages upto Hindi Language

वीर निर्वाण संवत्	2548	अप्रैल-जून 2022		वर्ष	35	अंक	2
Veer Nirvan Samvat	2548	April-June 2022		Year	35	Issue	2

आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2026

सम्पादक-मण्डल

श्री पुनीत जैन
(नवभारत टाइम्स)

डॉ. रमेश कुमार पाण्डेय
(श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय)

मानद सम्पादक

प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन
(श्री ला.ब..शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

प्रबन्ध सम्पादक

श्री राजेन्द्र जैन (संघपति)

प्रकाशक
श्री अनिल कुमार जैन
महामन्त्री
श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन : (011) 26564510, 46062192
ई-मेल: kundkundbharti@gmail.com

Publisher
SHRI ANIL KUMAR JAIN
Secretary
Shri Kundkund Bharti Trust
18-B, Special Institutional Area
New Delhi-110067
Phone: (011) 26564510, 46062192
E-mail: kundkundbharti@gmail.com

इस प्रति का मूल्य—बीस रुपया

अनुक्रम

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	मंगलाचरण : ध्यान में देश-काल-आसनादि का नियम		3
2.	सम्पादकीय : भक्तामर स्तोत्र आखिर क्यों महान है?	प्रो. वीरसागर जैन	4
3.	धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नहीं	आचार्य विद्यानन्द मुनिराज	12
4.	जैन योग में यम एवं नियम	आचार्य श्रुतसागर मुनिराज	14
5.	आचार्य शान्तिसागरजी के सरल उपदेश	प्रो. कल्पना जैन	28
6.	तिलोयपण्णत्ति में मुनिसुव्रतनाथ	प्रो. अनेकान्त कुमार जैन	32
7.	स्वस्थ जीवन का आधार : प्रतिक्रमण	डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा	36
8.	आचार्य वीरसेन स्वामी और उनकी जयधवला टीका का वैशिष्ट्य	डॉ. इन्दु जैन	47
9.	मध्य प्रदेश में जैन धर्म का विकास	डॉ. मो. मंजर अली	56
10.	निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता	डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन	67
11.	जैन सिद्धांत में कारण-कार्य भाव	डॉ. कुलदीप कुमार	70
12.	भगवान महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड के प्रमाण	डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल	75
13.	वैशालिक भगवान महावीर का मूल्यात्मक चिंतन	डॉ. ऋषभचन्द्र 'फौजदार'	85
14.	समाचार-दर्शन		93

जैन न्याय पर प्रकाशित हुई एक पठनीय कृति

भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से अभी-अभी जैन न्याय की एक महत्त्वपूर्ण कृति प्रकाशित होकर आई है– 'जैन-न्याय-प्रदीपिका'। प्रो. वीरसागर जैन द्वारा लिखित इस कृति में उनके जैन न्याय से सम्बन्धित 48 लेखों का संग्रह है। जैसे कि– जैन न्याय का प्राथमिक परिचय, न्यायशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता, न्यायशास्त्र की दैनिक जीवन में उपयोगिता, मिथ्यात्व के नाश में न्यायशास्त्र की भूमिका,सर्वज्ञसिद्धि, अनेकांत-स्याद्वाद, प्रमेय का स्वरूप, हेतु और हेत्वाभास, कारण-कार्य-व्यवस्था, निक्षेप-विमर्श, जैन न्याय का संक्षिप्त लक्षणकोश, शब्दकोश, आदि। जैन न्याय प्रायः बहुत कठिन और नीरस माना जाता है, परन्तु इस कृति में उसे बहुत ही सरल और सरस शैली में प्रस्तुत किया गया है। न्यायविद्या एक अत्यंत प्रयोजनभूत और उत्कृष्ट विद्या है। यह कृति उसके जिज्ञासुओं के लिए वरदानस्वरूप है। 288 पृष्ठ की इस कृति का मूल्य 335 रुपये रखा गया है।

स्वस्थ जीवन का आधार : प्रतिक्रमण

—डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा*

यह सर्वविदित है कि तनाव मानव जीवन के प्रबल शत्रु हैं। ये तनाव मानव जीवन को अत्यधिक आक्रान्त किए हुए हैं। ये आक्रान्ता मानव जीवन में कैसे प्रविष्ट हो गए? कहाँ चूक-भूल हुई है या हो रही है? कौन-सा द्वार खुला रह गया है? आखिर यह सब कैसे और क्यों हुआ? आदि प्रश्न किसी के भी मन में उद्भूत हो सकते हैं।

अब समय आ गया है इन पर फिर से गहराई के साथ विचार-मंथन करने का, चिंतन-अनुचिंतन करने का। इन सबके मूल में हैं आचार और विचार। जीवन के ये दो द्वार ऐसे हैं जिनके माध्यम से सद और असद्, संस्कार और विकार आदि सहजता के साथ अंदर आ-जा सकते हैं। यदि किसी का आचरण पतित है, भ्रष्ट है और उसके विचार भी मलिन हैं, दूषित हैं और द्वेषपरक हैं तो जीवन आत्मिक उन्नति और सम्यक् विकास से कैसे सम्पन्न हो सकता है? पवित्र और निर्मल कैसे बना रहा जा सकता है? इसलिए सर्वप्रथम मनुष्य को अपने आचार-विचार पर ध्यान देना है। इसके लिए उसे अपनी जीवनचर्या में कुछ आवश्यक क्रियाएँ विधिवत् और नियमित रूप से अपनानी होती हैं। ये आवश्यक क्रियाएँ मनुष्य के अन्तरंग को पवित्रता से परिवेष्ठित किए रहती हैं। पवित्र और परिष्कृत जीवन में तनावों के तम्बू अन्ततः उखड़ने लगते हैं।

आवश्यक क्रियाएँ जैनदर्शन में षडावश्यकों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये आवश्यक क्रियाएँ जीवन के लिए इतनी उपयोगी व आवश्यक हैं कि इन्हें जैनदर्शन में आवश्यक नाम से ही अभिहित किया गया है। आवश्यक, जीवन में व्याप्त दोषों का परिहार करते हुए जीवन को परिशुद्ध व परिमार्जित करते हैं। अपने दोषों को निहारने की शक्ति और उन दोषों को स्वीकारने व संशोधन करने की प्रवृत्ति आवश्यकों के द्वारा ही सम्भव है। वास्तव में आवश्यक अंतरंग को परखने

*जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, राजस्थान

और निरखने का एक अमोघ उपाय है।

आवश्यक में जो अर्थ-अभिव्यंजना छिपी है वह है जीवन को अधिकाधिक स्वच्छ व शुद्ध बनाना, समता, सहजता, सहृदयता व सहिष्णुता आदि सद्‌गुणों से सुवासित करना, अन्तर्दृष्टि को जगाना यानी बहिर्शुचिता के साथ-साथ अन्तरंग का शोधन करना, जिससे भीतर भरा पड़ा कर्म-कषायरूपी मल बाहर निकल सके।

आवश्यक जीवन के अनिवार्य अंग माने गए हैं। ये आवश्यक स्वस्थ व सुखी जीवन के आधार हैं। ये व्यक्ति को अध्यात्म दिशा में प्रवृत्त होने के लिए एक नई स्फूर्ति व प्रेरणा देते हैं। अतएव जीवन में इनका यथासामर्थ्य परिपालन करना चाहिए। इन्हीं षडावश्यकों में चौथा अंग है प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ है पीछे लौटना। यहाँ पीछे लौटने से तात्पर्य प्रमादवश शुभ से विचलित होकर अशुभ में चले जाने पर पुनः शुभ की ओर लौटना है। इस आवश्यक क्रिया में संयम, व्रत, तप या नियम-संकल्प आदि जो लिए गए हैं वे यदि प्रमाद, भूल, असावधानी, अज्ञानता अथवा मिथ्यात्व आदि के कारण भंग या टूट जाते हैं तो उनके बारे में चिंतवन कर पुनः उनके पालनार्थ संकल्प लेना प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण शब्द की व्युत्पत्ति, शब्दार्थ व परिभाषा

साधक को अपनी जीवनयात्रा में छद्‌मस्थ अवस्था में कषायवश पग-पग पर अन्तरंग व बाह्य दोष लगते रहते हैं, जिनका शोधन एक श्रेयोमार्गी के लिए आवश्यक है। भूतकाल में जो दोष लगे हैं उनके शोधनार्थ प्रायश्चित्त, पश्चात्ताप व गुरु के समक्ष अपनी निंदा-गर्हा करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्रतिक्रमण शब्दक्रमु धातु से निष्पन्न है। प्रति का अर्थ है प्रतिकूलता में और क्रमु धातु का प्रयोग गमन करना अर्थ में होता है। प्रतिकूलता में चलना अर्थात् पीछे लौटना। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र के तृतीय प्रकाश की स्वोपज्ञवृत्ति में प्रतिक्रमण का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा– **प्रतीपं क्रमणं प्रतिक्रमणम् अयमर्थः— शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान्तरं क्रान्तस्य शुभेषु एवं क्रमणात्प्रतीपं क्रमणम्।** अर्थात् शुभ योगों में से अशुभ योगों में गए हुए अपने आपको पुनः शुभ में लौटाने का नाम है– प्रतिक्रमण। **प्रतिक्रम्यते– प्रमादकृतदेवसिकादिदोषो निराक्रियतेऽअनेनेति प्रतिक्रमणम्।** अर्थात् प्रमाद के कारण दैवसिक आदि दोषों का जिसके द्वारा निराकरण किया जाता है वह प्रतिक्रमण है।[1]

प्रतिक्रमण का अर्थ है– प्रमादवश परस्थान (असंयम) में चले जाने पर पुनः स्वस्थान (संयम) में आना। औदयिक भाव से क्षायोपशमिक भाव में लौटना। निःशल्य हो अशुभयोग से शुभयोग में प्रवृत्त होना।[2] दोष का पुनः सेवन न करने का संकल्प

और यथायोग्य प्रायश्चित्त का स्वीकरण तथा उसका वहन करना प्रतिक्रमण है।[3]

मूलगुणों और उत्तरगुणों में स्खलना होने पर जब संवेग की पुनः प्राप्ति होती है तब मुनि भावना की विशुद्धि से प्रमाद की स्मृति करता हुआ आत्मनिंदा और गर्हा करता है, वह प्रतिक्रमण है।[4]

प्रवचनमाता (समिति-गुप्ति) के आचरण में अथवा आवश्यक में अतिक्रमण होने पर, सहसा अतिक्रमण होने पर, दूसरे के द्वारा कहे जाने पर अथवा स्वयं अतिक्रमण की स्मृति कर **मिच्छामि दुक्कडे**—मेरा दुष्कृत मिथ्या हो—ऐसा आचरण करना प्रतिक्रमण है। इससे दोषों की शुद्धि होती है।[5]

'मिथ्यादुष्कृताभिधानाद्यभिव्यक्तिप्रतिक्रिया प्रतिक्रमणम्।' 'मिच्छामि दुक्कडं' कहना प्रतिक्रमण-रूप प्रायश्चित्त है।[6] क्या 'मिच्छामि दुक्कडं' कोई जादू है जो उसके उच्चारण मात्र से सारे पाप छूमंतर हो जाएं? अथवा कोई मंत्र है जो 'मिच्छामि दुक्कडं' कहा और सारे पाप विनष्ट हो गए। शब्दोच्चारण मात्र से कभी पाप विनष्ट नहीं होते। शब्द जड़ है, पुद्गल है। उसमें आत्मा को पवित्र अथवा अपवित्र बनाने का सामर्थ्य नहीं होता। शब्द के पीछे जो मनोभाव जुड़ा रहता है वही महत्त्वपूर्ण शक्ति है। अतः 'मिच्छामि दुक्कडं' के पीछे आत्मशुद्धि का जो भाव जुड़ा हुआ है उसी की मूल्यवत्ता है। वाणी तो मन का प्रतीक है। जो साधक मनोभाव के साथ 'मिच्छामि दुक्कडं' स्वीकार कर आत्मा पर लगे पापमल को धो लेता है वह आराधक पद प्राप्त करता है और जो अभिमानवश, अहंकारवश, अपने कृत दोषों की, भूलों की निंदा नहीं करता, गर्हा नहीं करता, पश्चात्ताप नहीं करता तो वह विराधक होता है। निम्नोक्त गाथा इन्हीं भावों को पुष्ट करने वाली है—

लज्जाइ गारवेण य बहुस्सुयमयेण वावि दुच्चरिअं।
जे न कहंति गुरुणं, न हु ते आराहगा हुंति॥[7]

अर्थात् लज्जा से अथवा मैं इतना धर्मी हूँ, अथवा मैं बड़ा हूँ, पाप कहने से मेरी लघुता होगी— इस प्रकार गौरव से तथा पांडित्य का नाश न हो जाए, इस भय से जो जीव गुरु के पास शुद्ध आलोचना नहीं करते वे वास्तव में आराधक नहीं होते। किन्तु जो साधक शुद्ध आलोचना करने के लिए गुरु-दिशा में प्रस्थान कर ले और प्रायश्चित्त लेने से पूर्व ही काल को प्राप्त हो जाए तो भी वह आराधक बनता है।

प्रतिक्रमण करने का प्रयोजन

प्रतिक्रमण करने का मूल उद्देश्य अथवा प्रयोजन है— पाप के प्रति घृणा, पापाचरण के प्रति विरक्ति। पापाचरण से साधक जितना दूर भागता जाएगा, उतना

ही अधिक अप्रमत्त रहकर आत्मस्वरूप में, आत्मस्वभाव में रमण करेगा। आत्मा के निकट पहुँचेगा। पायास्रव से पीछे लौटने के लिए प्रतिक्रमण की साधना प्रत्येक आत्मोन्मुखी साधक के लिए आवश्यक है।[8]

प्रतिक्रमण पाप-मल धोने की प्रक्रिया होने से प्रतिदिन करना आवश्यक है। जैसे जल-स्नान से शरीर का मैल धुलकर देह स्वच्छ बन जाती है, वैसे ही प्रतिक्रमण आत्मा पर लगे कर्ममल धोकर उसको स्वच्छ व शुद्ध बना देता है। शरीर-मल तो कुछ क्षणों के लिए शरीर की सुन्दरता को विकृत करता है, परन्तु पापरूपी मल आत्मा को अनन्त संसार में भटकाने वाला है। प्रतिक्रमण उस पापमल को धोने का अमोघ उपाय है, अतः यह कहा जा सकता है कि पापरूपी शल्य को निष्कासित करने के लिए प्रतिक्रमण की साधना नियमित करने की अपेक्षा है।[9]

शरीर और आत्मा का गहरा संबंध है और यह अनादिकाल से चला आ रहा है। शरीर विकृतियों का घर है, रोगों का घर है। आत्मा व मन की भी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अनेक विकृतियाँ हैं। जैसे रोग की चिकित्सा आवश्यक है, उससे कई गुणा अधिक आवश्यक है मन व आत्मविकृतियों को दूर करना, परिमार्जित करना। प्रतिक्रमण एक चिकित्सा-पद्धति है। जैन दर्शन में पापरूप विकृति को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण को महौषधि के रूप में स्वीकार किया गया है। 'महौषधि' अर्थात् वह औषधि जिससे पुराने रोग नष्ट हों और नए रोगों की उत्पत्ति की रोकथाम हो।

प्राचीन समय में क्षितिप्रतिष्ठित नगर के जितशत्रु राजा के वृद्धावस्था में पुत्र का जन्म हुआ। अत्यधिक स्नेह होने से देश के प्रसिद्ध वैद्य को बुलाकर कहा– ऐसी कोई दवा दो जो मेरे कुल के लिए अत्यन्त लाभदायक हो।

पहले वैद्य ने कहा– मेरी औषधि बड़ी ही श्रेष्ठ है। यदि पहले से ही शरीर में कोई रोग होगा तो मेरी दवा उसे नष्ट कर देगी। किन्तु बीमारी नहीं होगी तो नई बीमारी पैदा कर देगी और वह मृत्यु से बच नहीं सकेगा। राजा ने कहा– आप तो कृपा रखिए। यह तो पेट मसलकर नया दर्द पैदा करना है। दूसरे वैद्य ने कहा–मेरी दवा बहुत अच्छी रहेगी। रोग होगा तो नष्ट कर देगी और रोग न हुआ तो न लाभ होगा न हानि होगी। राजा ने कहा– आपकी औषधि राख में की डालने जैसी है, नहीं चाहिए। तीसरे वैद्य ने कहा– मेरी औषधि ठीक रहेगी। प्रतिदिन खिलाते रहो। रोग होगा तो नष्ट हो जाएगा। यदि कोई रोग नहीं हुआ तो भविष्य में नया रोग नहीं होगा, प्रत्युत शरीर की शक्ति व स्वस्थता में अभिवृद्धि होती रहेगी।

राजा ने तीसरे वैद्य की औषधि पसन्द की। राजपुत्र उस औषधि के नियमित सेवन से स्वस्थ, सशक्त और तेजस्वी होता चला गया।

प्रतिक्रमण की साधना तीसरी औषधि के समान है। वह मात्र पुराने दोषों को दूर करने के लिए ही नहीं, अपितु भविष्य में दोषों की संभावना को कम करने के लिए भी है। कथानक से यह प्रेरणा मिलती है कि दोष लगे या ना लगे, प्रातः और सायं प्रतिक्रमण करना जरूरी है। दोष या अतिचार रोग है। प्रतिक्रमण औषधि है। दोष लगा हो तो उसका शुद्धीकरण हो जाएगा और ना लगा हो तो दोष ना लगे इस हेतु निरन्तर जागरूकता बढ़ती जाएगी। प्रतिक्रमण के समय होने वाली भावविशुद्धि से चारित्र में निर्मलता आएगी, तेजस्विता बढ़ेगी।

प्रतिक्रमण आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया है, स्वदोषदर्शन की प्रक्रिया है जो कि प्रत्येक साधक के लिए जरूरी है। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा–'जो आत्मनिरीक्षण करना नहीं जानता वह संभवतः धार्मिक नहीं हो सकता और आध्यात्मिक तो हो ही नहीं सकता। जो धार्मिक होता है वह स्वदोषदर्शी होता है परदोषदर्शी नहीं। यदि एक धार्मिक व्यक्ति ऐसा कहे कि दूसरे ने मेरे साथ ऐसा किया इसलिए हम भी वैसा कर रहे हैं तो मानना चाहिए कि वह धार्मिक बना ही नहीं है। निश्चय ही उसका मस्तिष्क अभी भौतिकवादी है और वह परदोषदर्शी है।'

भगवान महावीर ने स्वदोष-दर्शन की एक सुन्दर प्रक्रिया प्रतिपादित की। प्रत्येक साधक के लिए वह ग्रहणीय है, अनुकरणीय है।

किं मे कडं– आज मैंने क्या किया?

किं च मे किच्चसेसं– मेरे लिए क्या कार्य करना शेष है?

किं सक्कणिज्जं न समायरामि– वह कौन-सा कार्य है जिसे मैं कर सकता हूँ व प्रमादवश नहीं कर रहा हूँ।

किं मे परो पासइ किं व अप्पा– क्या मेरे प्रमाद को कोई दूसरा देखता है अथवा मैं स्वयं अपनी भूल को देख लेता हूँ।

किं वाहं खलियं न विवज्जयामि– वह कौन-सी स्खलना है जिसे मैं छोड़ नहीं रहा हूँ।

यह स्वदोष-दर्शन का प्रारूप है। जो व्यक्ति इसके अनुसार अपने दोषों को देखता है उसके भावपूर्ण प्रतिक्रमण होता है।[10]

प्रतिक्रमण और स्वास्थ्य

कर्माधीन आत्मा के भवभ्रमण का चक्कर चलता रहता है। प्रतिक्रमण का उद्देश्य

है– पाप का प्रायश्चित्त कर इसे कम करना। कर्मयुक्त मनुष्य अनेक भूलें कर देता है अथवा चाहे-अनचाहे हो जाती हैं। भूल होना मानव का स्वभाव है। इसलिए अंग्रेजी में कहा गया Man is a bundle of mistakes अर्थात् मानव गलतियों का पुलिन्दा है। जब तक छद्मस्थता रहेगी तब तक अपराध भी हो सकता है, भूल भी हो सकती है। भूल होना एक बात है और भूल को स्वीकार करना दूसरी बात है। भूल होना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है अपनी भूल को स्वीकार करना। उससे भी महान् बात है– भविष्य में उस भूल को नहीं दोहराना। एक अंग्रेजी विद्वान् ने कहा है–'To forget is human but to forgive is divine' अर्थात् भूल या अपराध करना मानव की आदत परन्तु अपराधी को क्षमा कर देना ईश्वरीय गुण है। उस आत्मगुण को प्रकट करने के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक क्रिया है। जो अपनी भूल को भूल के रूप में स्वीकार नहीं करता वह चारों ओर से दुःखी होता है। कभी-कभी भूल का प्रायश्चित्त व्यक्ति उस समय नहीं करता, क्योंकि उस समय उसे यह भान ही नहीं होता कि क्या मैं कोई दोषपूर्ण प्रवृत्ति कर रहा हूँ, क्या मेरे योग से किसी का दिल दुःख रहा है, मन खेद-खिन्न हो रहा है? जब वह क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि विभावों से आत्मस्वभाव में लौट आता है तब उसे अपनी की गई भूलों के प्रति ग्लानि होती है। अनुताप की भट्ठी में एक-एक कण जलने लगता है और प्रायश्चित्त कर शुद्ध होता है। भगवान महावीर ने कहा– छद्मस्थता के कारण मुनि अतिचार की आलोचना किए बिना न आहार कर सकता है, न विहार कर सकता है और न ही शास्त्र का स्वाध्याय कर सकता है। आलोचना से वंचित रहने वाला साधक अन्ततः अनन्तानुबंधी की श्रेणी में आ सकता है।

प्रतिक्रमण का और स्वास्थ्य का गहरा संबंध है। सर्वांगीण स्वस्थता का तात्पर्य है– शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त जीवन। आत्मा की अभिव्यक्ति के तीन साधन हैं–मन, वचन और शरीर। आत्मा के अभाव में तीनों योगों का कोई अस्तित्व नहीं है। आत्मा की विकृतियों से ही बीमारियाँ होती हैं। ज्ञान के अभाव में अनेक प्रकार के समाधान होने पर भी व्यक्ति स्वस्थ जीवन नहीं जी सकता। अच्छे स्वास्थ्य के लिए रोगोत्पत्ति के कारणों एवं निवारण के हेतुओं का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रतिक्रमण उस ज्ञान प्राप्ति का साधन है। प्रतिक्रमण गलती को गलती मानने, जानने और छोड़ने का पुरुषार्थ है। जिस प्रकार रोगी अपने गिरे हुए स्वास्थ्य को आसन, प्राणायाम, दवाइयों का प्रयोग कर पुनः प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार साधक अपने व्रतों में लगे दोष से मलिन बनी आत्मा को प्रतिक्रमण से शुद्ध कर लेता है।

जो अपनी भूल को भूल नहीं मानता वह अन्दर ही अन्दर भयभीत, दुःखी व

तनावग्रस्त होता है। क्रोध एवं चिड़चिड़ेपन से लीवर और गॉलब्लेडर, भय से गुर्दे एवं मूत्राशय, तनाव एवं चिन्ता से तिल्ली, पेंक्रियाज और आमाशय तथा अधीरता एवं आवेग से हृदय एवं छोटी आँत तथा दुःख से फेफड़े एवं बड़ी आँत की क्षमता घटती है। यदि शारीरिक तंत्रिका तंत्र, नाड़ी-तंत्र आदि पूरे शरीर को स्वस्थ रखना है तो क्रोध को क्षमा में बदलना होगा, अभय की साधना करनी होगी, शान्त और सुखी जीवन जीना होगा। नकारात्मक विचार, चिन्तन व मनन की जगह सकारात्मक विचारों को प्रश्रय देना होगा। दुनिया में इतने दुःख अथवा कष्ट नहीं हैं जितने कि आदमी भोगता है, अनुभव करता है। इसका कारण है अज्ञान। यदि व्यक्ति सुखी व स्वस्थ जीवन जीना चाहता है तो उसे प्रतिक्रमण का शाब्दिक नहीं, हार्दिक भाव समझना होगा।

वार्तमानिक स्वास्थ्य-विज्ञान एवं अधिकाधिक चिकित्सक बाह्य कारणों से उत्पन्न शरीर में रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए तो प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु मन में उत्पन्न आत्मा को कलुषित करने वाले क्रोधादि कषाय, हिंसा, राग-द्वेष, तनाव, असंयम, घृणा, चिन्ता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, भय आदि अशुभ प्रवृत्तियों के विकारों की गंदगी से उत्पन्न कीटाणुओं को नष्ट करने की ओर ध्यान ही नहीं देते। ये ही कीटाणु रोगोत्पत्ति के मुख्य कारण बनकर हमारे दिल, दिमाग और देह को दुर्बल बनाते हैं। भावपूर्ण प्रतिक्रमण करने से चैतन्य केन्द्र सक्रिय रहते हैं और अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ आवश्यकतानुसार संतुलित स्रावों का सर्जन करती हैं जिससे मन, शरीर व मस्तिष्क स्वस्थ रहते हैं।[11]

प्रतिक्रमण : आसन और स्वास्थ्य

प्रतिक्रमण में विविध पाठों का उच्चारण करते समय अलग-अलग आसन में बैठने अथवा खड़े रहने के पीछे भी स्वास्थ्य का रहस्य छिपा हुआ है। प्रत्येक आवश्यक के प्रारम्भ में आज्ञा लेने हेतु की जाने वाली वंदना से जोड़ों का दर्द कम होता है। मांसपेशियों में लचीलापन बना रहता है। शरीर में ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होता है एवं शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

'खमासमणो' द्वारा नमस्कार मुद्रा में पंजों पर बैठने से शरीर का संतुलन बना रहता है। स्नायु संस्थान स्वस्थ हो जाता है। योग-भाषा में दोनों घुटनों को मिलाकर पंजों पर बैठने वाले आसन को गोदुहासन कहते हैं। गोदुहासन में बैठने के अभ्यास से दोनों पैर बराबर हो जाते हैं। पैरों का अंगूठा और अंगुलियों में शरीर के स्वायत्त नाड़ी संस्थान के प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं। पैर के अंगूठे का संबंध गले से ऊपर की स्वनियंत्रित नाड़ियों से होता है। अंगूठे के पास वाली पैर की सबसे बड़ी

अंगुली का संबंध डायाफ्रॉम वाले भाग की नाड़ियों से सबसे छोटी अंगुली के पास वाली और मध्यवाली अंगुली का सम्बन्ध नाभि से, मलद्वार वाले भाग की नाड़ियों से तथा सबसे छोटी अंगुली का संबंध पैर की स्वनियन्त्रित नाड़ी संस्थान से होता है। पंजों पर बैठने से पगथली से लगाकर मस्तिष्क तक की नाड़ियाँ सक्रिय होने लगती हैं, उनमें आया अवरोध दूर होने लगता है और यदि कोई नाड़ी दब गई हो तो पुनः अपने स्थान पर आने लगती है। इस आसन में व्यक्ति प्रायः सीधी कमर ही बैठ सकता है।

सुजोक एक्युप्रेशर के अनुसार गोदुहासन से गले से ऊपर के सारे भाग एवं दोनों हाथों-पैरों के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव पड़ता है जिससे संबंधित अंग एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ सक्रिय हो जाती हैं। श्वसनतंत्र, रक्त संचरण तंत्र ठीक होता है और नकारात्मक सोच सकारात्मक होने लगता है। पगथली से घुटनों तक लीवर, तिल्ली, गुर्दे, मेरेडियन तथा उसके अंग पित्ताशय, आमाशय और मूत्राशय मेरेडियन के पंच ऊर्जाओं (वायु, ताप, नमी, शुष्कता एवं ठण्डक) से सम्बन्धित प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं। गोदुहासन में बैठने से इन अंगों की मेरेडियनों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह बराबर होने लगता है और नाड़ी संस्थान सम्बन्धी रोगों में आराम मिलता है। इस आसन के समय को अपनी सहन शक्ति के अनुसार धीरे-धीरे बढ़ाने से न केवल दोनों पैर ही बराबर होते हैं अपितु शरीर का दायाँ-बायाँ भाग जो लगभग एक जैसा होता है, संतुलित होने लगता है। एकाग्रता बढ़ती है। स्वर संतुलित होता है। गोदुहासन को नमस्कार मुद्रा (खमासमणो की मुद्रा) में करने से अपेक्षित परिणाम तुरन्त प्राप्त होने लगते हैं। ध्यान एवं आसन में मन के सारे आवेग शांत होते हैं एवं प्राणों का अपव्यय रुकता है। सहनशक्ति का विकास होता है। तन, मन और वाणी शान्त होते हैं। बायाँ घुटना खड़ा रखकर बोले जाने वाले नमोत्थुणं के पाठ से हमारा अहंकार शान्त होता है। सकारात्मक सोच विकसित होती है। प्रमोदभावना (गुणग्राहकता) का विकास होता है। चतुर्थ प्रतिक्रमण आवश्यक में दाहिना घुटना खड़ा कर बैठने से मनोबल दृढ़ होता है एवं लिए गए संकल्पों के पालन में उत्साह, जोश एवं सजगता आती है। खड़े रहने से प्रमाद में कमी एवं सजगता आती है। शरीर का संतुलन बना रहता है। प्रतिक्रमण से होने वाले शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक लाभों की चर्चा की गई। इससे ऐसा लगता है केवल महाव्रतधारी अथवा व्रतधारी ही नहीं, सबके लिए विधिपूर्वक प्रतिक्रमण करने की आवश्यकता है।

प्रतिक्रमण से आध्यात्मिक लाभ

प्रश्न किया गया पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भंते! प्रतिक्रमण से

जीव क्या प्राप्त करता है? प्रतिक्रमण करने से जीव को क्या-क्या लाभ होता है?

भगवान ने समाधान देते हुए कहा– प्रतिक्रमण से प्रथम लाभ है– **पडिक्कमणेण वयछिदाई पिहेइ।** अर्थात् प्रतिक्रमण से साधक व्रत के छेदों को ढँक देता है। कई बार सड़कों पर गड्ढे दिखाई देते हैं, सड़क टूटी-फूटी मिलती है जिससे वाहनों को चलाने में कठिनाई होती है। सरकार उन गड्ढों को भरवाने का प्रयास करती है। यात्री सुचारु रूप से वाहन चला लेता है। दाँतों में केविटी हो जाती है। दन्त-विशेषज्ञ उसको भी भर देता है, ताकि भोजन करने में कोई असुविधा न हो। इस प्रकार व्रतों में भी दोष लग जाते हैं, दोषों के छिद्र हो जाते हैं, प्रतिक्रमण उन छिद्रों को भरने का कार्य करता है।

प्रतिक्रमण से दूसरा लाभ बताया गया कि– **पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे** अर्थात् जिसने व्रत के छेदों को भर दिया वैसा जीव आस्रवों को रोक देता है।[12] जैन साधना पद्धति में संसार और मोक्ष का हेतु बताते हुए कहा गया– **आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्षकारणम्।**

आस्रव संसार-भ्रमण का हेतु है और संवर मोक्ष का कारण है। मिथ्या दृष्टिकोण, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग, हिंसा, झूठ, चोरी आदि सब आस्रव के द्वार हैं। इनसे पापकर्मों का बंध होता है। योग आस्रव शुभ भी होता है और अशुभ भी। शुभ प्रवृत्ति से पुण्य कर्म का बंध और अशुभ प्रवृत्ति से पाप कर्म का बंध होता है। व्रतों के छेदों को भर देने से आस्रव भी निरुद्ध हो जाता है और दोषों का शुद्धीकरण भी होता है। शुद्धीकरण कुछ अंशों में होने के कारण पाप आने का रास्ता बंद हो जाता है।

प्रतिक्रमण से तीसरा लाभ बताया गया कि– **असबलचरित्ते** – चारित्र के धब्बे मिट जाते हैं। दोषों के सेवन से चारित्ररूपी चद्दर पर धब्बे लग जाते हैं। प्रतिक्रमण करने से धब्बे साफ हो जाते हैं और चद्दर पुनः निर्मल बन जाती है। प्रतिक्रमण से चौथा लाभ बताया गया है कि– **अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते**– आठ प्रवचनमाताओं में सावधान, जागरूक हो जाता है।

पाँचवाँ लाभ है– **अपुहत्ते**–प्रतिक्रमण करने से संयम में एकरसता आ जाती है, लीनता आ जाती है और छठा लाभ है– **सुप्पणिहिए विहरदे**–भलीभांति समाधिस्थ होकर विहार करता है। प्रतिक्रमण करने से चित्त में समाधि पैदा होती है। बार-बार दोष सेवन करने से चित्त असमाधिस्थ हो जाता है। प्रतिक्रमण करने से पुनः समाधिस्थ हो जाता है।

अतः दोषों के शुद्धीकरण की प्रक्रिया केवल धार्मिक क्षेत्र में जीने वाले साधकों

के लिए ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आज के युग में जितनी प्रकार की बीमारियों के विशेषज्ञ हैं उससे भी अधिक बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। कभी-कभी तो कितनी-कितनी प्रकार का निरीक्षण होने पर भी रोग का पता तक नहीं चलता कि क्या रोग है? चिकित्सकों की समझ से परे की बात भी बन जाती है। मुझे ऐसा लगता है और भगवान महावीर ने भी ठीक ही कहा है जो साधक भावपूर्ण प्रतिक्रमण करता है वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सर्व प्रकार का सुस्वास्थ्य प्राप्त करता है। यह प्रतिक्रमण की परम्परा बिलकुल निर्दोष, वैज्ञानिक, प्रभावशाली, रोगोपचार की स्वस्थ प्रक्रिया है।

निष्कर्ष :

वास्तव में प्रतिक्रमण आत्म-शोधन का एक पवित्र साधन है। सामान्यतः यह समझा जाता है कि प्रतिक्रमण अतीत में किए गए पापों या दोषों के निराकरण या परिशुद्धि के लिए किया जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि प्रतिक्रमण तीनों काल – वर्तमान, भूत व भविष्य के अशुभ योगों को शुभ में परिणत करने की एक शुभ्र साधना है। श्रुतकेवली भद्रबाहु कहते हैं कि प्रतिक्रमण केवल अतीत में लगे दोषों की ही शुद्धि नहीं करता, अपितु वर्तमान व भविष्य काल के दोषों की भी शुद्धि करता है।

षडावश्यक में प्रतिक्रमण का स्थान चतुर्थ क्रम में है, पर जीवन के लिए यह इतना उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है कि कुछ आचार्य तो आवश्यकसूत्र को ही प्रतिक्रमणसूत्र कहते हैं। वास्तव में बिना प्रतिक्रमण का पाठ किए हुए आवश्यक पूर्ण नहीं होता है। प्रतिक्रमण की महत्ता को अभिदर्शित करते हुए आचार्य प्रतिक्रमण की साधना को एक ऐसी औषधि बताते हैं जो रोग होने पर रोग को ठीक करती है और यदि रोग नहीं भी है तो भी आरोग्यवर्धक का काम करती है और भविष्य में कोई रोग न हो– इसका भी निदान करती है।

आज इन्सान आत्म-प्रशंसा और पर-निंदा में जीते हुए अनेक तनावों व द्वन्द्वों को पैदा करता है, अनेक विकृतियों को पनपाता है, जबकि प्रतिक्रमण में आत्म-गर्हा-आलोचना की जाती है। इसमें दूसरों की निंदा-आलोचना नहीं, उसके गुणों की प्रशंसा के भाव सदा जाग्रत रहते हैं। दूसरों की आलोचना में या दूसरों के अवगुणों को ढूँढ़ने में ही जिनका जीवन बीतता है उनके जीवन में कभी सुख व शान्ति की वृष्टि नहीं हो सकती।

प्रतिक्रमण वह झरोखा है जिसमें से झाँककर व्यक्ति आत्मा के अभिदर्शन कर सकता है। आत्म-स्वरूप को प्रकट कर सकता है। वास्तव में प्रतिक्रमण की

निरन्तरता में आत्मशुद्धि की अद्भुत क्षमता है।

संदर्भ -

1. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 367
2. आवश्यक चूर्णि 3, पृ. 52
3. आवश्यक चूर्णि 2, पृ. 48
4. अनुयोगद्वार चूर्णि, पृ. 18
5. दसवैकालिक अगस्त्यसिंह स्थविर चूर्णि, पृ. 14
6. राजवार्तिक, 9/22/3
7. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, 218
8. आवश्यक चूर्णि 2, पृ. 53 61
9. हारिभद्रीय वृत्ति 2, पृ. 4348
10. षडावश्यक आत्मशुद्धि की प्रक्रिया से उद्धृत
11. प्रेक्षाध्यान पत्रिका, 2008, मई एवं सितम्बर से साभार उद्धृत
12. उत्तराध्ययन, 29/12-13

संदर्भ-ग्रंथ-

1. मूलाचार (भाग 1), आचार्य वट्टकेर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1944
2. जैन धर्म के साधनासूत्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, 1996
3. जैन दर्शन के मूल सूत्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, 2001
4. महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, 2000
5. तनाव और हमारा स्वास्थ्य, श्री गणेश मुनि शास्त्री, श्री अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर, 2000
6. जैन संस्कृति कोश (द्वितीय भाग) जैन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना, प्रो. भागचन्द जैन 'भास्कर', सन्मति प्राच्य शोध संस्थान, नागपुर, 2002
7. षडावश्यक आत्मशुद्धि की प्रक्रिया, साध्वी कंचनकुमारी (लाडनूं), जैन विश्व भारती, लाडनूं, 2011

❖❖

मैं जैन धर्म चुनूँगा

"मैं तो एक नास्तिक हूँ। मैं कभी धार्मिक नहीं रहा। मैंने अपनी सारी जिंदगी अलग-अलग धर्मों के पवित्र ग्रंथ पढ़ने में बिताई है।.... अगर मुझे अपनाने के लिए एक धर्म चुनना हो तो वह जैन धर्म होगा। एक तर्कवादी के रूप में भी मैं मानता हूँ कि यह धर्म नास्तिकवाद और नैतिकता की आचारनीति के सबसे करीब है। जैन शब्द 'जिन' से बना है। इसका मतलब है कि जिसने खुद को जीत लिया है।"

—विख्यात लेखक खुशवंतसिंह, दिशाबोध, मासिक, कलकत्ता, जनवरी 2022, पृष्ठ 32

स्थापित जुलाई 1988

ISSN No. 0971-796X

प्राकृतविद्या

वर्ष 34, अंक 3

जुलाई-सितम्बर 2021 ई.

नारायण श्रीकृष्ण ने भी दिया क्षमादान

मा भैर्जरे! त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम्॥

—श्रीमद्भागवत, 11/30/39

अर्थ– बाण मारने वाले व्याध जरे को अत्यन्त भयाकुल देखकर क्षमा के अवतार नारायण श्रीकृष्ण ने कहा– हे जरे! भय मत कर उठ! तुमने तो मेरे मन के अनुकूल ही किया है। मेरी अनुज्ञा से तुम पुण्यवानों के लिए प्राप्य स्वर्ग को प्राप्त करो।

UGC Approved Research Journal

ISSN No. 0971-796 ×

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pāgada-Vijjā

प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भारतीय भाषाओं की हिन्दी तक की विकास-यात्रा दर्शानेवाली समर्पित त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

A quarterly journal devoted to researches on the development of Prakrit, Apabhramsha and Ancient Indian Languages upto Hindi Language

वीर निर्वाण संवत् **2547** जुलाई-सितम्बर **2021** वर्ष **34** अंक **3**

Veer Nirvan Samvat 2547 July-September 2021 Year 34 Issue 3

आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2025

सम्पादक-मण्डल

श्री पुनीत जैन
(नवभारत टाइम्स)

डॉ. रमेश कुमार पाण्डेय
(श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय)

मानद सम्पादक

प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन
(श्री ला.ब..शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)

प्रबन्ध सम्पादक

श्री कमलकान्त जैन

प्रकाशक
श्री अनिल कुमार जैन
महामन्त्री
श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन : (011) 26564510, 46062192
ई-मेल: kundkundbharti@gmail.com

Publisher
SHRI ANIL KUMAR JAIN
Secretary
Shri Kundkund Bharti Trust
18-B, Special Institutional Area
New Delhi-110067
Phone: (011) 26564510, 46062192
E-mail: kundkundbharti@gmail.com

इस प्रति का मूल्य—बीस रुपया

अनुक्रम

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	मंगलाचरण : पंच-परमेष्ठी	मुनिराज योगीन्दु	3
2.	संपादकीय : क्षमावाणी पर्व : एक अनुशीलन	प्रो. वीरसागर जैन	5
3.	उत्तम संयम और महाव्रत	आचार्य विद्यानन्द मुनिराज	15
4.	जैन योग में संयम	आचार्य श्रुतसागर मुनिराज	18
5.	प्रायश्चित्त : एक अनुचिन्तन	डॉ. श्रेयांस कुमार जैन	37
6.	अर्द्धमागधी आगमों में निहित शब्दकोश की प्राचीन परम्परा	डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज	51
7.	जैन जीवनशैली में भावों का महत्त्व	डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन	59
8.	जैनदर्शन के आलोक में अष्टांग योग	डॉ. जिनेन्द्र जैन	65
9.	चक्रवर्ती का सांस्कृतिक योगदान	समणी मानसप्रज्ञा	76
10.	तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित जैन जीवनशैली द्वारा युगीन समस्याओं के समाधान	विकास जैन	85
11.	साहित्य-सत्कार		91
12.	समाचार-दर्शन		93

प्राकृतविद्या के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ

1. आशा है अब आपको 'प्राकृतविद्या' नियमित रूप से मिल रही होगी। यदि अभी तक आप इसके सदस्य न बने हों तो शीघ्र कार्यालय से सम्पर्क करें। इस समय 1500 रुपये में आजीवन सदस्य बनाने की योजना चल रही है।
2. कृपया 'प्राकृतविद्या' के सम्बन्ध में अपने सुझाव, अभिमत आदि भी भेजें।
3. 'प्राकृतविद्या' में प्रकाशनार्थ शोधपूर्ण लेखों का भी हार्दिक स्वागत है।
4. यदि आपके पास प्राकृत भाषा एवं साहित्य के सम्बन्ध में कोई विशेष समाचार हैं तो उन्हें भी भेजने की कृपा करें।
5. यदि आप भगवान महावीर जन्मभूमि वैशाली की यात्रा करना चाहते हैं, उसके विकास में सहयोग करना चाहते हैं अथवा अन्य कोई भी जानकारी चाहते हैं तो भी हमारे कार्यालय से सम्पर्क करें।

कमलकान्त जैन, मो : 9871138842, ईमेल : kundkundbharti@gmail.com

अर्द्धमागधी आगमों में निहित शब्दकोश की प्राचीन परम्परा

—डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज*

प्रस्तावना

जैन-आगम साहित्य की परम्परा में द्वादशांगी का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। इसके अन्तर्गत आयारो, सूयगडो आदि अंग आगम परिगणित हैं तथा इसका बारहवाँ अंग है–दृष्टिवाद। चौदह पूर्व इसी के अन्तर्गत हैं। उनमें सत्यप्रवाद और विद्याप्रवाद–ये दो पूर्व शब्दों के अनुशासन से संबंधित हैं। जब तक पूर्वधर रहे, तब तक अन्य शब्दानुशासन की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। काल के प्रवाह में दृष्टिवाद की परम्परा लुप्त हो गई। केवल ग्यारह अंग शेष रहे। वे लिपिबद्ध नहीं थे, क्योंकि वह प्रवचनकाल था, अतः सम्पूर्ण ज्ञान प्रवचन के माध्यम से सुरक्षित रखा जाता था। गुरु-शिष्य की परम्परा सुदृढ़ थी। काल व्यतीत होता गया और आगम-युग का अन्त हुआ। आगमों को समझना-समझाना दुरूह-सा होने लगा, अतः व्याख्या-साहित्य लिखा जाने लगा। प्राकृत भाषा प्रचलन में थी, अतः आचार्यों ने प्राकृत भाषा में निर्युक्तियाँ और भाष्य लिखे।

प्राकृतयुग के दीपक की लौ मन्द पड़ने लगी। आगम की प्राकृत-व्याख्याएँ समझना भी कष्टसाध्य हो गया। इसके पश्चात् संस्कृत का युग प्रारम्भ हो रहा था। कतिपय आचार्यों ने प्राकृत और संस्कृत –इन दानों भाषाओं का मिश्रण कर चूर्णि-साहित्य रचा।

उस समय तक कोश की परम्परा का प्रारम्भ नहीं हुआ था। आगमों के वाचन के साथ ही शब्दज्ञान भी करा दिया जाता था। किन्तु ऐसे आचार्यों की परम्परा जब विलुप्त हो गई जो आगमों के वाचन के साथ ही शब्दज्ञान भी करा देते थे, तब कोश या व्याकरण को अलग से सिखाने की आवश्यकता महसूस हुई।

*सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज.) फोन : 9413037310

जैन-परम्परा में चूर्णिकाल तक शब्द-ज्ञान के लिए अलग कोश-ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ था। चूर्णिकार व्याख्या के साथ-साथ शिष्य को पर्यायवाची शब्दों का भी ज्ञान करा देते थे। शिष्य को पर्यायवाची शब्दों के लिए अन्यत्र भटकना नहीं पड़ता था। यह एक बात है। दूसरी बात यह है कि जैन आगम अर्धमागधी प्राकृत में लिखे गए हैं। इन सबका लिपिकाल भगवान् महावीर के निर्वाण की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अर्धमागधी प्राकृत में अठारह देशी भाषाओं का सम्मिश्रण है— यह विद्वत्-सम्मत तथ्य है। इसका प्रमुख कारण यह रहा कि जैन श्रमणों का विहार भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों में होता रहा। विभिन्न प्रदेशों के मुमुक्षु जैन श्रमण बने। उनकी अपनी बोली थी। भगवान् महावीर के प्रवचनों की मूल भाषा में उन बोलियों के शब्द मिश्रित होते गए और हजारों-हजारों शब्द आगम-साहित्य में समाहित हो गए। उन स्थलों की व्याख्या करते समय बहुश्रुत आचार्य शब्दों के पर्यायवाची शब्द देते गए। इसका तात्पर्य है कि वे विभिन्न पर्यायवाची शब्दों के माध्यम से विभिन्न बोलियों के शब्द प्रस्तुत कर तद्-तद्-देशीय श्रमणों की जिज्ञासाओं का निरसन करते गए। उन नानादेशीय शब्दों को एकार्थक कहकर संकलन कर दिया जाता था। इसे शब्दकोश के निर्माण का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है।

संभवतः यह माना जाता है कि अब तक एक हजार से अधिक शब्दकोश निर्मित हुए हैं। प्रकाश में आने वाला सबसे पहला संस्कृत शब्दकोश है— अमरकोश। इससे पूर्व कोई शब्दकोश प्रकाशित नहीं हुआ था। विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न कोशों के उद्धरण अवश्य प्राप्त होते हैं किन्तु उनका समग्र रूप आज अप्राप्त है। वे कभी प्रचलित रहे होंगे, किन्तु आज वे लुप्तप्रायः है।

जैन-परम्परा में शब्दकोश का मूल स्रोत आगम-साहित्य, निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि को माना जाता है। भगवतीसूत्र में कोश की उत्पत्ति के विषय में सुन्दर चर्चा प्रस्तुत है। गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा— 'भंते! क्या ये नौ पद एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले हैं अथवा अनेकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले हैं? तब भगवान् महावीर ने कहा— 'गौतम! इनमें से प्रथम चार पद एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले हैं और शेष पाँच पद अनेकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले हैं।'

वृत्तिकार आचार्य अभयदेवसूरि ने उक्त विषय में चार विकल्प प्रस्तुत किए हैं—

1. एकार्थक, एक व्यंजन वाले— यथा— क्षीर क्षीर, आदि।
2. एकार्थक, अनेक व्यंजन वाले— यथा— क्षीर, पयः आदि।
3. अनेकार्थक, अनेक व्यंजन वाले—यथा— अर्कक्षीर, गव्यक्षीर, महिषक्षीर आदि।

4. नानार्थक, नाना व्यंजन वाले– यथा– घट, पट, लकुट आदि।

इनमें दूसरा और चौथा विकल्प कोश की उत्पत्ति का मूल माना जाता है।

चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित और प्रहीयमाण प्रहीण –ये चार पद उत्पाद-पर्याय की अपेक्षा से एकार्थक, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले हैं। छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण –ये पांच पद विनाश की अपेक्षा से नानार्थ, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले हैं। इनका नानार्थ इस प्रकार है–

- छिद्यमान छिन्न– यह कर्मों के स्थिति-बंध की अपेक्षा से है। इसमें स्थिति का विनाश है।
- भिद्यमान भिन्न– यह कर्मों के अनुभाग-बंध की अपेक्षा से है। इसमें अनुभाग का विनाश है।
- दह्यमान दग्ध– यह कर्मों के प्रदेश-बंध की अपेक्षा से है। इसमें प्रदेश का विनाश है।
- म्रियमाण मृत– यह कर्मों के आयुष्य-बंध की अपेक्षा से है। इसमें आयुष्य का विनाश है।
- निर्जीर्यमाण निर्जीण– यह कर्मों के आयुष्य-बंध की अपेक्षा से है।

आगमों में निहित एकार्थक शब्दों के कुछ उदाहरण

जीव के अभिवचन– भगवतीसूत्र में जीव शब्द के अनेक अभिवचन एकार्थक शब्द बतलाए गये हैं, जैसे–जीवे (जीव), पाणे (प्राण), भूए (भूत), सत्ते (सत्त्व), विण्णू (विज्ञ), जेया (जेता), आया (आत्मा), रंगण (रंगण), हिंदुए (हिंडुक), पोग्गले (पुद्गल), माणवे (मानव), कत्ता (कर्त्ता), विकत्ता (विकर्त्ता), जंतू (जन्तु), जोणी (योनि), सयंभू (स्वयंभू), ससरीरी (सशरीरी), नायए (नायक), अंतरप्पा (अन्तरात्मा), आदि।[1]

आकाश के अभिवचन– आग्गासे (आकाश), गगणे (गगन), नभे (नभ), समे (सम), विसमे (विषम), खहे (ख), विहे (विह), वीथी (वीथि), विवरे (विवर), अंबरे (अम्बर), छिड्डे (छिद्र), मग्गे (मार्ग), विमुहे (विमुख), आधारे (आधार), वोमे (व्योम), भायणे (भाजन), अंतलिक्खे (अंतरिक्ष), अगमे (अगम), फलिहे (स्फटिक, परिघ), अणंते (अनन्त) आदि।[2]

क्रोध के एकार्थक शब्द– कोहे (क्रोध), कोवे (कोप), रोसे (रोष), दोसे (दोष), अखमा (अक्षमा), संजलणे (संज्वलन), कलहे (कलह), चंडिक्के (चांडिक्य), भंडणे (भंडन), विवादे (विवाद)।[3]

मान के एकार्थक शब्द– माणे (मान), मदे (मद), दप्पे (दर्प), थंभे (स्तम्भ), गव्वे (गर्व), अत्तुक्कोसे (अत्युत्कर्ष), परपरिवाए (परपरिवाद), उक्कोसे (उत्कर्ष), अवक्कोसे (अपकर्ष), उण्णते (उन्नत), उण्णामे (उन्नमन), दुण्णामे (दुर्न्नाम)।[4]

माया के एकार्थक शब्द– माया (माया), उवही (उपधि), नियडी (निकृति), वलए (वलय), गहणे (गहन), णूमे (णूम), कक्के (कल्क), कुरुए (कुरुक), जिम्हे (जिम्ह), किव्विसे (किल्विष), आयरणया (आदरण), गूहणया (गूहन), वंचणया (वंचन), पलिउंचणया (परिकुंचन), सातिजोगे (साचियोग)।[5]

लोभ के एकार्थक शब्द– लोभे (लोभ), इच्छा (इच्छा), मुच्छा (मूर्च्छा), कंखा (कांक्षा), गेही (गृद्धि), तण्हा (तृष्णा), भिज्झा (भिध्या), अभिज्झा (अभिध्या), आसासणया (आश्वासन), पत्थणया (प्रार्थना), लालप्पणया, (लालपन), कामासा (कामाशा), भोगासा (भोगाशा), जीवियासा (जीविताशा), मरणासा (मरणाशा), नंदिरागे (नंदिराग)।[6]

प्रश्नव्याकरण दसवाँ अंग है। इसमें भी अनेक स्थलों पर एकार्थक शब्दों का निर्देश हुआ है। वहाँ प्राणवध (हिंसा) के तीस पर्याय नाम बताए हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

अवीसंभो (अविश्रंभ), अकिच्चं (अकृत्य), घायणा (घातन), मारणा (मारण), वहणा (वध), उद्दवणा (उद्रवण), मच्चू (मृत्यु), असंजमो (असंयम), दुग्गतिप्पवाओ (दुर्गतिप्रपात), पावकोवो (पापकोप), पावलोभो (पापलोभ), वज्जो (वर्ज्य), आदि।[7]

इसी सूत्र में असत्य के तीस नाम गिनाए गये हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं– अलियं (अलीक), सठं (शठ), अणज्जं (अनार्य), कक्कणा (कल्कन), वंचणा (वंचना), साती (साचि), अट्टं (आर्त्त)। अब्भक्खाणं (अभ्याख्यान), किव्विसं (किल्विष), अप्पच्चओ (अप्रत्यय), असमओ (असमय), नूमं (नूम), आदि।[8]

अब्रह्मचर्य के तीस नामों में से कुछ निम्नलिखित हैं–

अबंभं (अब्रह्म), मेहुणं (मैथुन), संकप्पो (संकल्प), दप्पो (दर्प), मोहो (मोह), मणसंखोभो (मनः संक्षोभ), अणिग्गहो (अनिग्रह), विब्भमो (विभ्रम), अधम्मो (अधर्म), वेरं (वैर), रहस्सं (रहस्य), कामगुणो (कामगुण)।[9]

परिग्रह के तीस नामों में से कुछेक ये हैं–

परिग्गहो (परिग्रह), संचयो (संचय), चयो (चय), उवचयो (उपचय), निहाणं (निधान), दव्वसारो (द्रव्यसार), महिच्छा (महेच्छा), कलिकरंडो (कलिकरंड), अणत्थो (अनर्थ), संथवो (संस्तव), अमुत्ती (अमुक्ति), तण्हा (तृष्णा), आसत्ती (आसक्ति), असंतोसो (असंतोष),।[10]

अहिंसा के साठ पर्यायवाची में से कुछ इस प्रकार हैं–

अहिंसा (अहिंसा), दीवो (दीप), ताणं (त्राण), सरणं (शरण), निव्वाणं (निर्वाण), रती (रति), विरती (विरति), विसुद्धी (विशुद्धि)।[11]

निर्युक्ति साहित्य में निहित एकार्थक शब्द

आगमों के व्याख्या-साहित्य में निर्युक्तियों का प्रथम स्थान है। आचार्य भद्रबाहु द्वितीय ने अनेक आगमों पर निर्युक्तियाँ लिखी। वे पद्यमय हैं। उनकी भाषा प्राकृत है। निर्युक्तियों में अनेक स्थलों पर एकार्थक शब्दों की चर्चा है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

- प्रवचन के एकार्थक शब्द– सुयधम्म (श्रुतधर्म), तित्थ (तीर्थ), मग्गो (मार्ग), पावयणं (प्रावचन), पवयणं (प्रवचन)।[12]
- सूत्र के एकार्थक शब्द– सुत्तं (सूत्र), तंतं (तंत्र), गंथं (ग्रन्थ), पाढो (पाठ), सत्थं (शास्त्र)।[13]
- अनुयोग (अर्थ) के एकार्थक शब्द– अणुयोग (अनुयोग), नियोगो (नियोग), भास (भाषा), विभासा (विभाषा), वत्तियं (वार्तिक)।[14]
- सामायिक शब्द के पर्याय– सामाइयं (सामायिक), समइयं (समयिक), सम्मावाओ (सम्यग्वाद), समास (समास), संखेवो (संक्षेप), अणवज्जं (अनवद्य), परिण्णा (परिज्ञा), पच्चक्खाणे (प्रत्याख्यान)।[15]

सामं (साम), सम (सम), सम्मं (सम्यक्), इगं (इक)।[16] समया (समता), समात्त (सम्यक्त्व), पसत्थ (प्रशस्त), संति (शान्ति), सुविहिअ (सुविहित), सुहं (शुभ), अनिंदं (अनिन्द्य), अदुगुंछिअं (अजुगुप्सित), अगरिहिअं (अगर्हित), अणवज्जं (अनवद्य)।[17]

चूर्णि साहित्य में निहित एकार्थक शब्द

जैन आगमों के व्याख्या-साहित्य में चूर्णियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक आगमों पर चूर्णियाँ लिखी गई। ये सब संस्कृत और प्राकृत में लिखी गईं। इनका रचनाकाल विक्रम की पांचवीं से सातवीं शताब्दी हैं। जिनदास महत्तर चूर्णिकारों में अग्रणी हैं। उनकी अनेक चूर्णियाँ आज उपलब्ध हैं। दशवैकालिकसूत्र पर एक प्राचीन चूर्णि जैसलमेर भंडार में मुनि पुण्यविजयजी को प्राप्त हुई थी। वह अगस्त्यसिंह स्थविर कृत है और उसका काल विक्रम की तीसरी से पाँचवीं शताब्दी का अन्तराल माना जाता है। वह कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हुई है। इन चूर्णियों में अनेक शब्दों के पर्याय-नाम उल्लिखित हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

- मग्गतोत्ति वा पिट्ठउत्ति वा।[18]

- अप्पियववहारियंति वा विसेसादिट्ठंति वा एगट्ठा।[19]
- माणंति वा परिच्छेदोत्ति वा गहणपगारोत्ति वा एगट्ठा।[20]
- अभिप्पायोत्ति वा बुद्धित्ति वा एगट्ठं।[21]
- उज्जोतं करेतीति प्रकटनं करोतीति प्रकाशयतीत्यर्थः।[22]
- खमत्ति वा तितिक्खत्ति वा कोहनिरोहति वा।[23]
- आयारो (आचार), आचाले (आचाल),
- आगालो (आगाल), आगारो (आगार),
- आसासो (आश्वास)।[24]
- सातंति वा सुहंति वा अभयन्ति वा परिणिव्वाणंति वा एगट्ठा।[25]
- असातंति वा अपरिणिव्वायंति वा महब्भयंति वा एगट्ठा।[26]
- तसंतित्ति वा उव्वियंति वा संकुयंति वा बीभिंति वा एगट्ठा।[27]
- वग्घो वक्खोडो बंधणंति वा एगट्ठा।[28]
- विजयो विचारणा मग्गणा एगट्ठा।[29]
- मूलं प्रतिष्ठा आधारो वा एगट्ठा।[30]
- सुरेत्ति वा वीरेत्ति वा सत्तिएत्ति वा एगट्ठा।[31]
- समणेत्ति वा माहणेत्ति वा मुणित्त वा एगट्ठा।[32]
- संगोत्ति वा विग्थोत्ति वा वक्खोडित्ति वा एगट्ठा।[33]
- अज्झत्थितं ऊहितं गुणतं चिंतितंति एगट्ठा।[34]
- फुसिते दुज्झोसएत्ति वा एगट्ठा।[35]
- आणत्ति वा नाणत्ति वा पडिलेहित्ति वा एगट्ठा।[36]
- कंखंति पत्थंति गच्छंति एगट्ठा।[37]
- वसित्तु वा पालित्तु वा एगट्ठा।[38]
- पज्जवोत्ति वा भेदोत्ति वा गुणोत्ति वा एगट्ठा।[39]
- णाणंति वा संवेदणंति वा अधिगमोत्ति वा चेतणंति वा भावत्ति वा एते सद्दा एगट्ठा।[40]
- परिगिज्झंति वा पत्थणंति वा गिद्धित्ति वा अभिलासोत्ति वा लेप्पत्ति वा करवंति वा एगट्ठा।[41]
- विउस्सग्गोत्ति वा विवेगोत्ति वा अधिकिरणंति वा छड्डणंति वा वोसिरणंति वा एगट्ठा।[42]
- चिक्कणंति वा दारुणंति वा एगट्ठा।[43]
- गुणोत्ति वा पज्जतोत्ति वा एगट्ठा।[44]
- णामंति वा ठाणंति वा भेदोत्ति वा एगट्ठा।[45]

- मलंति वा पावंति वा एगट्ठा।[46]
- मुणित्ति वा नाणित्ति वा एगट्ठा।[47]
- लंगलंति वा हलंति वा एगट्ठा।[48]
- कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगट्ठया एगट्ठा।[49]

उपसंहार :

उपर्युक्त उदाहरण शब्दकोश के निर्माण का प्रारंभिक रूप माना जा सकता हैं। मूल आगम और उनके व्याख्या-ग्रन्थ इन उदाहरणों से भरे पड़े हैं। इस एकार्थक शब्द-संकलना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये अनेक भाषाओं में व्यवहृत देशीय शब्द, शिष्यों के लिए शब्दकोश का कार्य करते थे और विभिन्न प्रान्तों के शिष्यों के लिए भगवद्वाणी को समझने में सहयोगी बनते थे।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. भगवई, 20/17
2. भगवई, 20/16
3. भगवई, 12/103
4. भगवई, 12/104
5. भगवई, 12/105
6. भगवई, 12/106
7. पण्हावागरणाइं, 1/3
8. पण्हावागरणाइं, 2/2
9. पण्हावागरणाइं, 4/2
10. पण्हावागरणाइं, 5/2
11. पण्हावागरणाइं, 6/3
12. सुयधम्म तित्थ मग्गो, पावयणं च पवयणं एगट्ठा।
    सुत्तं तंतं गंथो, पाढो सत्थं च एगट्ठा।।
    –(आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 130)
13. आवश्यक चूर्णि, पृ. 108
14. अणुओगो य नियोगो, भास विभासा य वत्तियं चेव। अणुओगस्स य एए, नामा एगट्ठिआ पंच।।
    –(आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 131 एवं आवश्यक चूर्णि पृ. 108)
15. समाइयं समइयं सम्मावाओ समास संखेवो। अणवज्जं च परिण्णा पच्चक्खाणे य ते अट्ठ।।
    –(आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 864)
16. सामं समं च सम्मं इगमवि सामाइ-अस्स एगट्ठा।
    –(आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 1043)
17. समया सम्मत्त पसत्थ संति सुविहिअ सुहं अनिदं च। अदुगुंछिअमगरिहिअं अणवज्जमिमेऽवि एगट्ठा।।
    –(आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 104 6)
18. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 56
19. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 376
20. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 377
21. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 543
22. आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृ. 3
23. आवश्यकचूर्णि, उत्तरभाग, पृ. 116
24. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 2,3
25. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 36
26. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 36
27. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 36
28. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 41
29. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 43
30. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 44

31. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 83
32. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 93
33. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 170
34. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 171
35. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 173
36. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 198
37. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 205
38. आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. 209
39. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 4
40. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 10
41. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 30
42. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 37
43. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 232
44. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 266
45. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 353
46. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 294
47. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 324
48. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 254
49. दशवैकालिकचूर्णि (जिनदास), पृ. 328

❖❖

निर्विवाद मंगलाचरण

''यस्य ज्ञानदयासिन्धोरगाधस्यानघा गुणा:।
सेव्यतामक्षयो धीरा: स श्रिये चामृताय च॥'' –(अमरकोश 1/1)

अर्थ– जिसके अनन्तज्ञान, अनन्त दया आदि अनघ—निष्पाप गुण हैं, हे धीर पुरुषो! वह परमात्मा श्री और अमृतत्व की प्राप्ति के लिए सेवनीय है।

''यत: सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च।
यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नम:॥'' –(योगवासिष्ठ)

अर्थ– जिससे सारे भूतसर्ग (पर्यायें) प्रतिभात (प्रतीत) होते हैं, स्थित हैं तथा जिसमें लीन हो जाते हैं उस सत्य (सत्स्वरूप) परमात्मा को नमस्कार है।

''सर्वव्याप्यैकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नम:॥''

–(अमृतचन्द्रसूरि, प्रवचनसार टीका)

अर्थ– जो ज्ञानरूपी प्रकाश से सर्वव्यापी एक मात्र चैतन्यस्वरूप परमात्मा है तथा स्व की उपलब्धि से प्रसिद्ध है, उस ज्ञानानन्दात्मा को नमस्कार है।

''दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नम: शान्ताय तेजसे॥''

–(भर्तृहरि, नीतिशतक 1)

अर्थ– जो दिक्, काल आदि से अनवच्छिन्न (अव्याप्य, अस्पृष्ट, अबाध) है, अनन्त है, चिन्मात्र स्वरूप है तथा स्वानुभवसंवेद्य है, (जिसे स्वानुभूति से ही जाना जा सकता है, प्रवचन से नहीं) उस शान्त तेज:स्वरूप को नमस्कार है।

SHODHASAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

जैन स्थापत्य कला का वैशिष्ट्य

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज

सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाड़नूं (राज.)

भूमिका :

कला भारतीय संस्कृति का एक अविभाज्य अंग रही हैं। प्राचीनकाल से आधुनिक वैज्ञानिक युग तक कला का महत्त्व निर्विवाद रूप से सत्य है। प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने जीवन का चरम लक्ष्य आनन्द की अनुभूति को माना है। अनुकरण, आत्माभिव्यंजना, सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति, काल्पनिक सृजन, कौशल–प्रदर्शन आदि किसी भी माध्यम और किसी भी रूप द्वारा कला की अभिव्यक्ति की जाए लेकिन उसका उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति ही होगा। कला में भारतीय जीवन और गतिविधियां इस बात की पुष्टि करती हैं कि रचनात्मक कला एक स्तर पर वस्तुओं, बिम्बों, विचारों और अनुभूतियां मनुष्यों के मन में भावनात्मक और बौद्धिक प्रतिक्रिया संवाहित करती है। प्राचीनकाल से ही कला का सम्बन्ध मनुष्य से रहा है, इसका साक्ष्य चित्रकला एवं मूर्तिकला में देखने को मिलता है। कला के माध्यम से सत्य, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, धर्म, अहिंसा, शान्ति, कल्याण आदि भावनाओं को मूर्त रूप मिलता है साथ ही कला का धर्म से भी निकट का सम्बन्ध रहा है। वह न केवल इसलिये कि यह समाज में मनुष्य को सुखद ऐन्द्रिय अनुभूति प्रदान करती है, बल्कि इसलिये भी कि वह उसके सम्मुख उसी की जाति, समुदाय से सम्बन्धित बड़े स्पष्ट रूप में बिम्बों, प्रतीकों, रहस्यों और दंतकथाओं को प्रस्तुत करती है। एक बार इस रहस्य को जान लेने के बाद सम्राटों, धार्मिक समुदायों आदि ने बिना समय नष्ट किये इसका उपयोग अपने–अपने सिद्धान्तों, विचारधाराओं, रहस्यों, दंतकथाओं, देवताओं का जनता में प्रचार करने के लिये कला–चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य तथा वास्तुकला को माध्यम बनाना प्रारम्भ कर दिया।

कला के सन्दर्भ में जैन एवं बौद्ध धर्म का भारतीय कला को विशेष अवदान रहा है। जहां स्तूप परम्परा भारतीय कला को बौद्ध धर्म की देन[1] है, वहीं आयाग पट्ट तथा बड़ी–बड़ी तीर्थंकर–मूर्तियां जैनधर्म की देन मानी जाती हैं। बौद्ध भिक्षुओं के लिये गुहा–निर्माण का कार्य सर्वप्रथम मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा करवाया गया, वही इन गुहाओं को आकर्षक कला का स्वरूप जैनधर्म की देन कही जा सकती हैं। यद्यपि अन्य धर्म से सम्बन्धित गुहाओं का निर्माण भी हो चुका था।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में स्तूप, गुहा, मन्दिर, मूर्ति तथा स्तम्भ कला आदि का विशेष महत्त्व है। ये कलाएं प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष श्रमण परम्परा से सम्बधित रही हैं क्योंकि चाहे गुहा–निर्माण हो या मन्दिर–निर्माण तथा उनमें

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

मूर्तियों की स्थापना हो, चाहे स्तम्भों पर कलाकारी हो या स्तूपों की बनावट हो, उनमें धार्मिक पुट के साथ–साथ श्रमणों की तत्कालीन स्थितियों अर्थात् उनके रहने और उनकी समस्त दिनचर्या का भी ज्ञान हमें हो जाता है।

अब आगे जैन स्थापत्य कला के विभिन्न रूपों का राजवंशों के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टि से वैशिष्ट्य को प्रस्तुत किया जा रहा है– जैसे–जैन गुहा, जैन मन्दिर, जैन स्तम्भ आदि।

जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

प्राकृतिक कन्दराओं का शरण स्थल के रूप में उपयोग यद्यपि पाषाणकाल में मानव ने कर दिया था, लेकिन गुहा निर्माण का कार्य सम्राट् अशोक के समय में हुआ। यद्यपि भगवान बुद्ध ने किसी भी भिक्षु को एक रात्रि से ज्यादा तथा एक साथ दो भिक्षुओं को एक स्थान पर रहने पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। अतः वर्षाकाल में भिक्षुओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। परिणामस्वरूप वर्षाकाल में भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को गुहाओं में रहने की अनुमति प्रदान कर दी। इस प्रकार वर्षावास के लिये विहार का निर्माण तथा भिक्षुसंघ के निमित्त विशाल पैमाने पर पर्वतों में गुहा निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। गुहा–निर्माण का स्थान निमित्त होने के बाद उस स्थान पर दो प्रकार की गुहाएँ खोदी गई – (1) विहार (2) चैत्य।

विहार वे गुहाएँ थी, जहां भिक्षुगण वर्षावास में निवास करते थे जबकि चैत्य वह स्थान था, जहां भिक्षुगण निवास के साथ पूजा भी वहीं करते थे अर्थात् चैत्य में अन्दर के आंगन में पूजा निमित्त स्थान बना दिया जाता तथा उसके पीछे एवं पार्श्व वीथिका में छोटे–छोटे कक्ष बना दिये जाते, जिनमें भिक्षुगण निवास करते थे। भारत में सबसे पहले पर्वतों को खोदकर गुहा–निर्माण का कार्य अशोक मौर्य के समय में हुआ तथा यहीं से गुहा निर्माण की प्रक्रिया चल पड़ी। बौद्ध धर्म की गुहाओं से प्रेरित होकर अनेक राजाओं ने हिन्दु एवं जैन श्रमणों के लिये भी गुहाएँ बनवानी प्रारम्भ कर दी।

मौर्यकालीन जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

भारत में सर्वप्रथम गुहा–निर्माण का कार्य मौर्यकाल में प्रारम्भ हुआ जबकि बौद्ध धर्म के भिक्षुओं के लिये बराबर एवं नागार्जुन की पहाड़ी पर सम्राट् अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ ने बौद्ध गुहाएं खुदवायी। इस काल में अशोक के पौत्र सम्प्रति ने भी राजगृह में दो जैन गुहाओं को खुदवाया। यद्यपि इसकी निश्चित जानकारी तो नहीं मिलती है, लेकिन फिर भी विभिन्न इतिहासकार इस पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं।

राजगृह की गुहा की पहाड़ी के समान्तर विन्यास, सलामीदार द्वारशाखाएं, मेहराबदार छत और चमकदार प्रभा इसकी विशेषता है। इसका मुखमण्डप काष्ठ का बना है। इसके बाद में बनी उड़ीसा की कुछेक जैन गुफाओं और पश्चिम भारत के बौद्ध चैत्यगृहों में भी काष्ठ का मुखमण्डप बनाया गया है। मौर्यकालीन जैन गुहा

मुख्यतः जैन श्रमणों के विहार के लिये बनाई गई थी। राजगृह की गुहा एक कक्षीय है तथा इसकी सबसे बड़ी विशेषता इनमें द्वार और खिड़की दोनों बनाये गये हैं। इसमें पूजागृह या चैत्यगृह नहीं बने हैं।

शुंग एवं सातवाहनकालीन जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

इस काल में बनी पाभोसा की जैन गुहा प्रमुख है। इस गुहा की बनावट भी बिल्कुल सादी और सामान्य आकार–प्रकार की है। इस गुहा की छत नीची है और उसमें उठने–बैठने के लिये आसन्दी बनाई गई है। इसकी छत मध्यसूत्र के दोनो तरफ गोलाकार और पार्श्व में समतल है। इसका द्वार इतना छोटा है कि इसमें घुटने के बल बैठकर ही जाया जा सकता है। द्वार के बायीं तरफ लगभग डेढ़ फुट व्यास की दो खिड़िकियां काटी गई है।[2]

चेदिवंश द्वारा निर्मित जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

भुवनेश्वर (उड़ीसा) से चार मील उत्तर–पश्चिम में उदयगिरि और खण्डगिरि नामक बलुए पत्थर की दो पहाड़ियां हैं, जिनमें 33 गुहाएं हैं। ये चेदिराज खारवेल और उनके परिजनों ने जैन श्रमणों के रहने व तपस्या करने के लिये खुदवाई थी।

उदयगिरि की गुहाएं किसी निश्चित योजना के अनुसार न होकर पहाड़ी की स्वाभाविक ऊंचाई–निचाई के अनुसार खोदी गई है। उदयगिरि की यह गुहा आकार में बड़ी है। इस गुहा में गर्भशाला (कोठरियों) के सामने मुखमण्डप यानि बरामदा है। मंचपुरी स्वर्गपुरी गुहा दो मंजिली गुहा है, जिसकी प्रमुख विशेषता ऊपरी मंजिल को निचली मंजिल के ठीक ऊपर न बनाकर पहाड़ी में थोडा पीछे की ओर हटाकर बनाया गया है, जिससे उनके सामने एक खुली छत तैयार हो गई है। उड़ीसा की इन्ही दो मंजिली गुहाओं से प्रेरित होकर ऐलोरा में भी दो मंजिली गुहाओं का निर्माण हुआ।[3]

गर्भशालाओं के द्वारों के ऊपर बनाये गये मेहराब या कमानचे अर्धवृत्ताकार हैं। ये कमानचे अलंकृत हैं। इन पर मकर, गज, वृषभ अथवा मृग के मुख से निर्गत भांति–भाति की लताएं, फूल, पत्ते, हंस–श्रेणी और गज, वृषभ एवं सिंह का पीछा करते हुये बालको का अंकन है।[4]

गुप्तकालीन जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

यद्यपि गुप्तकालीन शासक वैष्णव धर्मावलम्बी थे लेकिन फिर भी गुप्त शासकों ने अन्य धर्मों को भी पूरा प्रश्रय दिया। उनके संरक्षणत्व से भारतीय कला अपने शिखर पर पहुंची। तीसरी–चौथी सदी ईसवीं में किसी कारण से बिल्कुल बन्द हुआ गुहा–निर्माण का कार्य, गुप्तकाल में पुनः प्रारम्भ हो गया।

गुप्त वाकाटक काल की गुफाओं की मुख्य विशेषता यह है कि उनमें पूजा के लिये मूर्तियां भी उत्कीर्ण की जाने लगी। अब गुफाएं आवासीय न होकर पूजागृह बन गई। इस काल की एक जैन गुफा उदयगिरि

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

(विदिशा जिला, मध्यप्रदेश) की पहाड़ी में आज भी सुरक्षित है।[5] गुप्तकाल में खोदी गई पूजा निमित्त इन गुहाओं में पर्याप्त मात्रा में मूर्तियां भी उकेरी गई है। इन पूजागृह गुहाओं में मण्डप, गर्भगृह और छोटी बड़ी देवकुलिकाएं बनी होती है। गुप्तकालीन गुफाओं का एक समूह उदयगिरि (मध्यप्रदेश) में हैं इनमें गुफा संख्या 20 जैन गुहा है। यह पांच गर्भ वाली सबसे बड़ी गुहा है। इसके दो मध्य गर्भशालाओं में तीर्थंकर की मूर्तियां उत्कीर्ण है। तीर्थंकर की मूर्तियों के अतिरिक्त यह गुहा बिल्कुल सादी और अनाकर्षक है। इसमें वास्तुकला सम्बन्धी कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

गुप्तकालीन गुहा की प्रमुख विशेषता इनमें जैन तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियां उत्कीर्ण है, जिससे वे विहार तथा पूजागृह, इन दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

राष्ट्रकूटकालीन जैन गुहाओं का वैशिष्ट्य :

राष्ट्रकूटकालीन राजे महान् राजे थे। सफल योद्धा होने के सथ–साथ ये राष्ट्रकूट राजा अच्छे निर्माणकर्त्ता, साहित्यकार और धर्म संरक्षक थे। इन्होंने जैनधर्म को पर्याप्त प्रश्रय दिया। इस काल में ऐलोरा, दक्कन, धाराशिव, अंकाई–तंकाई, भामेर तथा पटना में जैन गुहाएं खोदी गई। ऐलोरा में कुल 34 गुहाएं हैं, जो कि बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म तथा जैनधर्म तीनों धमों से सम्बन्धित है। गुह्या संख्या 30 से 34 तक जैन गुहाएं हैं, जो कि राष्ट्रकूट काल में खोदी गई थी।

प्रारम्भ में जहां गुहाएं एकदम साधारण एवं सादी थी वहीं भक्ति आन्दोलन ने जैसे ही जोर पकड़ा और मूर्तिपूजा का प्रचार–प्रसार बढ़ा तब जैन गुहाओं में भी तीर्थंकरों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण की जाने लगी। इसी क्रम में प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पुत्र बाहुबली का अंकन भी प्रमुखता से होने लगा।

राष्ट्रकूटकाल से पहले भारतीय गुहाओं का कटाव सम्मुख भाग से अन्दर की ओर सुरंग की तरह किया जाता था परन्तु इस काल से उन्हें ऊपर से नीचे की ओर चारों ओर से कोर कर भी किया जाने लगा। ऐलोरा का छोटा कैलाश नामक जैन गुहा – 30 इसी तरह का एकाश्मक मन्दिर है। इन्द्रसभा नामक गुहा के प्रांगण में सिथत सर्वतोभद्र विमान को भी चारों तरफ से काट कर बनाया गया है। ऐलोरा की ये जैन गुहाएं कला के अद्वितीय उदाहरण हैं।

जैन मन्दिरों का वैशिष्ट्य

भारतीय स्थापत्य कला का महत्त्वपूर्ण अंग मन्दिर भी है। मन्दिर का सम्बन्ध हिन्दू धर्म के विविध सम्प्रदायों के अतिरिक्त भारतीय मूल के जैन एवं बौद्ध धर्मों के साथ भी रहा हैं। मन्दिरों का निर्माण मूर्ति–पूजा की भावना से ही हुआ है। मानव ने अपनी धार्मिक आस्थाओं को अभिव्यक्त करने के लिये जिन प्रतीकों या लांछनों का निर्माण किया, उनसे मूर्ति–पूजा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप ईश्वर की विविध रूपों में कल्पना की

गई। देवी–देवताओं के मूर्त रूपों की पूजा हेतु स्थापना के लिये जो सुन्दर भवन निर्मित हुए, वहीं भवन मन्दिर कहलाए।

मन्दिर–निर्माण का कार्य कब से प्रारम्भ हुआ, यह प्रश्न अभी भी विवादग्रस्त हैं। लेकिन उदयगिरि के लेखों[6] से पता चलता है कि गुप्तकाल में गुहा मन्दिर का निर्माण होने लगा था। इसी आधार पर इतिहासकारों ने अनुमान लगाया कि मन्दिर–निर्माण का कार्य प्रथम बार गुप्तकाल में सम्पन्न हुआ। अलग–अलग समय में विभिन्न शासकों का सानिध्य पाकर मन्दिरों का निर्माण बहुत अधिक संख्या में होने लगा। हिन्दू मन्दिरों से प्रेरित होकर आगे चलकर अन्य धर्मों जैसे–जैन तथा बौद्ध धर्मों से सम्बन्धित मन्दिर भी बनने लगे। यहाँ जैन मन्दिरों के वैशिष्ट्य को विभिन्न राजवंशों के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है–

प्रतिहारकालीन जैन मन्दिरों का वैशिष्ट्य :

प्रतिहारकालीन जैन मन्दिरों में सबसे प्रमुख मध्य प्रदेश का ग्यासपुर (विदिशा) का मालादेवी मन्दिर है। यह एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण नवीं शताब्दी ई. के उत्तरार्ध[7] में हुआ था। कुछ समय पूर्व तक इसे हिन्दू मन्दिर समझा जाता था।[8] लेकिन मूर्तियों के शीर्ष भाग में लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण होने तथा गर्भगृह एवं भित्ति की जिन एवं चक्रेश्वरी और अम्बिका मूर्तियों के आधार पर इसका जैन मन्दिर होना निर्विवाद है। गर्भगृह में 11 वीं, 12 वीं शती ई. की पांच जिन मूर्तियां हैं। यह मन्दिर पंच रथ प्रकार का है तथा इसके ऊपर रेखा शिखर है। मन्दिर की पीठ सुदृढ़ एवं सामान्य गोटा अंलकरणों से युक्त है, जो जंघा को आधार प्रदान किये हुये है। जंघा के कोष्ठकों में देव–मूर्तियां स्थापित हैं।

प्रतिहारकालीन इस मन्दिर का शिखर भी रेखायतन है। यह पंचरथ प्रकार का है। शिखर मूल पर भी अनेक देवी देवताओं की प्रतिमाएं अंकित हैं, जो इस मन्दिर को विशेष बनाती है। दक्षिणी दिशा के शिखर पर गरूड़ासीन अष्टभुजी चक्रेश्वरी देवी, उत्तर दिशा के शिखर पर चक्रेश्वरी यक्षी की प्रतिमा विशेष दर्शनीय एवं कलात्मक है। इस मन्दिर की सबसे प्रमुख विशेषता मन्दिर की दीवारों के कोष्ठकों में बनी देव, मनुष्य, फूल, पत्तियों आदि की आकृतियां हैं।

चौलुक्यकालीन जैन मन्दिरों का वैशिष्ट्य :

चौलुक्य शैली की अलग विशेषता रही है। चौलुक्य शैली के मन्दिर को पूर्व योजना एवं उद्देश्य से बनाया जाता था। इस शैली के मन्दिर में गर्भगृह, गूढ़–मण्डप, मुख–मण्डप या रंगमण्डप या दोनो होते थे, जो बाहर और भीतर एक दूसरे से जुड़े होते है। इसके अलावा कुछ विशाल मन्दिरों में सभामण्डप भी जोड़ दिये जाते थे, जिसके सम्मुख भाग में तोरण का निर्माण किया जाता था।

बड़े मन्दिरों में 24, 52 या 72 देवकुलिकाएं भी क्रम में जोड़ दी जाती थी।[9] चौलुक्य–शैली के मन्दिर में पीठ बेदी बन्ध और जंघा मुख्य अंग होते हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से मण्डोवर, वरण्डिका और शिखर कहा जाता

है। चौलुक्य शैली के मन्दिर की बनावट में गूढमण्डप तथा मूलप्रासाद मन्दिर को दो भागों में विभाजित करता है। समान्तर रेखाओं से बना चतुर्भुज विभाग, जो कि कर्ण द्वारा एक दूसरे को जोड़ते है। इस प्रकार के मन्दिर में तारंगा का अजितनाथ मन्दिर और गिरनार का नेमिनाथ मन्दिर प्रमुख है। चौलुक्यकालीन मन्दिरों के मण्डप अंलकृत स्तम्भों से आच्छादित मिलते है। ये स्तम्भ मण्डप को अष्टकोणीय विन्यास की आकृति प्रदान करते है। इन स्तम्भों में प्रमुख स्तम्भों (दो) के आर–पार अंलकृत तोरणों की योजना मिलती है। इस प्रकार अष्टकोणीय स्तम्भों एवं तोरणों से सज्जित मण्डप विमलवसही लूणवसही, कुम्भारियां के शान्तिनाथ, नेमिनाथ, महावीर तथा पार्श्वनाथ, गुजरात तांरगा आदि के मन्दिरों में विशेष देखने को मिलता है।

स्तम्भयुक्त मुखमण्डप का छह या नौ खण्डकों में विस्तार तथा उसके आस–पास भ्रमती युक्त देवकुलिकाओं का सम्मिलित किया जाना ये दोनों ही परिकल्पनाएं चौलुक्य निर्माण शैली में जैन धर्मावलम्बियों का विशेष योगदान है।[10]

चालुक्यकालीन जैन मन्दिरों का वैशिष्ट्यः

जहां उत्तर भारत में नागर शैली का विस्तार हुआ, वहीं दक्षिण में द्राविड़ शैली का तथा ऐहोल में नागर एवं द्रविड़ दोनों शैलियों का मिश्रित विकास हुआ। दोनों शैलियों की विशेषताओं तथा तत्त्वों के सम्मिश्रण से चालुक्य शैली का जन्म हुआ।[11] आगे चलकर यहीं स्वतन्त्र शैली के रूप में विकसित हुई।

ऐहोल के मन्दिरों को चालुक्य स्थापत्यकला का जन्मदाता कह सकते हैं। ऐहोल के मन्दिरों का गर्भगृह त्रिरत्न योजना पर बना है। उस पर छोटा शिखर है और मन्दिर के सामने के भाग में स्तम्भ युक्त कमरा है।[12]

चालुक्य मन्दिर अष्टभद्र योजना के आधार पर निर्मित हुए थे, जिनमें ज्यामिति के विभिन्न आकार बने होते है।[13] चालुक्य मन्दिरों में द्रविड़ शैली के समान दो उपविभाग हैं – (1) विमान तथा (2) मण्डप

चालुक्य शैली के मन्दिरों में गर्भगृह से सम्बद्ध ढ़का प्रदक्षिणा मार्ग का अभाव मिलता है। मन्दिर के परकोटे की बाहरी दीवार में नागर एवं द्राविड़ दोनो शैलियों की मिश्रित कला देखने को मिलती है। इस शैली के मन्दिरों के गर्भगृह वर्गाकार या वृत्ताकार नहीं वरन् तारे की तरह बहुकोणीय या अष्टभद्र प्रकार के है। इन मन्दिर की संरचना एक ऊंचे अधिष्ठान पर निर्मित होती है यह अधिष्ठान आयताकार न होकर उसी प्रकार का होता है, जिस प्रकार की गर्भगृह की योजना होती है।

ऐहोल का मेगुटि मन्दिर भारत का सबसे प्राचीन जैन मन्दिर है, जो सुरक्षित है। इसके शिलालेख में शक संवत् 556 (ई. 634) में पश्चिमी चालुक्य नरेश पुल्केशी द्वितीय के राज्यकाल में रविकीर्ति द्वारा बनाये जाने का उल्लेख है।[14]

होय्यसलकालीन जैन मन्दिरों का वैशिष्ट्यः

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

विन्ध्य तथा कृष्णा नदी के मध्य भाग में एक अन्तवर्ती शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे बेसर शैली कहा जाता है। धीरे–धीरे इस स्थानविशेष पर चालुक्य वंश का प्रभुत्व बढ़ा, इसलिए इसे चालुक्य शैली कहा जाने लगा।

दसवीं सदी के बाद ही चालुक्यों के स्थान को द्वार समुद्र के होय्यसल नरेशों ने ग्रहण कर लिया, परिणामस्वरूप इस शैली को बेसर या चालुक्य या होय्यसल शैली कहा जाने लगा। इस शैली के मन्दिर मुख्यतः कर्नाटक मैसूर के श्रवणबेलगोला में सुरक्षित है। जैसे–भण्डारी बसदि, अक्कन बसदि, जिननाथ – शान्तिनाथ बसदि आदि। होय्यसलकालीन मन्दिरों की प्रमुख विशेषताएँ इसप्रकार हैं –

1. योजना तथा इमारती समाकृति
2. सतह की दीवार का अलंकरण
3. शिखर की बनावट और
4. स्तम्भ की शैली।

होय्यसल के किसी भी मन्दिर में भीतरी प्रदक्षिणा पथ नहीं है, इसलिये चबूतरे का बहिर्भाग प्रदक्षिणा के निमित्त प्रयुक्त होता है।[15] मन्दिर की दीवार, भित्तिस्तम्भ तथा ताखों में कलात्मक मूर्तियां हैं, जो होय्यसल शैली की प्रमुख विशेषता है। होय्यसल मन्दिर के शिखर में अष्टभद्र प्रणाली के कारण गुम्बज की दीवार में लम्बी धारियां दिखने लगती है। यह गुम्बज अनेक प्रकार की जिन–मूर्तियों से चित्रित है तथा शिखर पर सिंहललाट होते हैं। गुम्बज की रचना महामेरू की रचना के आधार पर की गई है।

जैन मूर्तिकला का वैशिष्ट्य :

प्राचीनकाल से ही जैन परम्परा में मूर्ति–पूजा प्रचलित रही है। कलिंग नरेश खारवेल के ई.पू. द्वितीय शती के हाथीगुम्फा शिलालेख[16] में नन्दवंश के राज्यकाल अर्थात् ई.पू. चौथी–पांचवी शती में जिन–मूर्तियां प्रतिष्ठापित कराने का उल्लेख मिलता है। एसी ही अनेक जैन मूर्तियां भारत के अलग–अलग स्थानों से प्राप्त हुई हैं, जो कला की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं।

मौर्यकालीन जैन मूर्तिकला का वैशिष्ट्यः

मौर्यकालीन जैन मूर्तियां में मुख्यतः पाटलिपुत्र (पटना) के उपनगर लोहानीपुर तथा बम्बई के प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम में रखी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा है। यद्यपि इन मूर्तियों में कोई लेख अंकित नहीं है, लेकिन इन मूर्तियों की बनावट, चमकदार पॉलिश इन्हें मौर्यकालीन कलाकृतियों के समकक्ष रखती है।

लोहानीपुर से प्राप्त प्रतिमाएं नग्न और कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं, जो इनके जिनमूर्तियां होने की सूचना देते हैं।[17] इन मूर्तियों में जिनों के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह उत्कीर्ण नहीं है। वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह का अंकन जिनमूर्तियों की विशिष्टता और उनकी पहचान का मुख्य आधार है। श्रीवत्स का अंकन सर्वप्रथम

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

लगभग पहली शती ई.पू. के मथुरा के आयागपट्टों की जिन मूर्तियों में हुआ। इसके उपरान्त श्रीवत्स का अंकन सर्वत्र हुआ। केवल उड़ीसा की कुछ मध्ययुगीन जिनमूर्तियों में श्रीवत्स उत्कीर्ण नहीं है।[18] इस मूर्ति का चुस्त वक्षस्थल ठीक उसी प्रकार का है।

बम्बई के प्रिंस ऑफ संग्रहालय में रखी पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा भी अपने आप में विशिष्ट है। इस मूर्ति में पार्श्व सर्पफणों के छत्र से आच्छादित निरूपति हैं। इस प्रकार जिनमूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्व का ही वैशिष्ट्य स्पष्ट हुआ। पार्श्व के बाद ऋषभ के लक्षण निश्चित हुये।[19]

कुषाणकालीन जैन–मूर्तिकला का वैशिष्ट्यः

कुषाणकाल तक कला के अन्य अनेक नवीन प्रतिमान स्थापित हो चुके थे। बुद्ध की मानव रूप में प्रतिमा का निर्माण भी इस काल के अन्तर्गत आरम्भ हो गया। सम्पूर्ण प्रतिभा एवं कुशलता के साथ मानवाकृतियों में शिल्पी के द्वारा सौन्दर्य को उद्भाषित करने का निष्कपट प्रयास तथा मूर्तियों में अनेक मुद्राओं द्वारा भावों और आवेगों की अनुपम प्रतिष्ठा समाहित है।

स्वतन्त्र रूप से तीर्थंकर प्रतिमाएं दो रूपों – (1) एकाकी रूप (2) सर्वतोभद्रिका रूप में प्राप्त हुई हैं। इन दोनों को भी दो रूपों में प्रदर्शित किया गया है – स्थानक रूप में जो कायोत्सर्ग (नग्न) मुद्रा है और आसन रूप में में जो ध्यान मुद्रा में है।

कुषाणकालीन जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में स्थानक मुद्रा प्रतिमा की भुजाएं घुटने के नीचे तक प्रसारित है, और उनके भौंहों के मध्य उर्णा (रोमगुच्छ) तथा वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह बनाया गया है। आसन–मुद्रा में निर्मित मूर्तियां–ध्यान–मुद्रा में है और उनकी दृष्टि नासिका के आग्रभाग पर है।[20]

वासुदेव के समय 84 सम्वत्सर की आदिनाथ की मूर्ति ध्यान मुद्रा में प्राप्त हुई। कुषाणकालीन मथुरा कला में तीर्थंकर प्रतिमा में लांछन का अभाव हैं। इस प्रतिमा के वक्ष स्थल एवं मस्तक के पीछे प्रभामण्डल का अंकन हैं। तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा में भी इस प्रकार का अंकन मिलता है।

कुषाणकालीन इन मूर्तियों की चौकी पर सामने सिंह तथा धर्मचक्र का अंकन है। कहीं कहीं श्रावक भी दिखाई देते है। कलात्मक दृष्टि से कुषाणकालीन जैन प्रतिमाएं बड़ी स्थिर सी दृष्टिगत होती है।[21]

गुप्तकालीन जैन मूर्तिकला का वैशिष्ट्यः

इस काल की देवी–देवता आदि की मूर्तिकला में आध्यात्मिक कान्ति एवं आन्तरिक शान्ति का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है। शरीर पर वस्त्रों का प्रदर्शन भी पारदर्शक किया गया है। पारदर्शक वस्त्रों से शरीर का प्रत्येक अंग–प्रत्यंग मोहकता से भरा लगता है। मूर्तियों में समविभक्तता, बनावट की सुघड़ता, सूक्ष्म वस्त्र और नपे–तुले आभरण विशेष दृष्टिगोचर होते हैं।[22] इस युग की बनी 'जिन' प्रतिमाओं में नग्न मुद्रा,

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

आजानुबाहु ध्यान मुद्रा तथा हथेली, तलवों पर धर्मचक्र, भौंहों के मध्य उर्णा (रोम गुच्छ) आदि पूर्वयुगीन विशेषताओं के साथ अन्य विशेषता थी[23]

गुप्तकालीन तीर्थंकर मूर्तियों में जैन धार्मिक भावना के अनुरूप ध्यान और एकाग्रता का भाव अधिक स्पष्ट है किन्तु लावण्य एवं परिकरात्मक सज्जा से पूर्ण ये मूर्तियां शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं।

गुप्तकालीन प्रतिमा में जिनों के साथ लांछनों यक्ष–यक्षी युगलों एवं अष्ट–प्रातिहार्यों का निरूपण प्रारम्भ हुआ। वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत्संहिता में गुप्तकालीन प्रतिमाओं के लक्षण का विवेचन किया गया है। जिनों के साथ लांछनों एवं यक्ष–यक्षी युगलों के निरूपण की परम्परा गुप्तयुग में ही प्रारम्भ हुई।

चौलुक्यकालीन जैन मूर्तिकला का वैशिष्ट्य :

जैन मूर्तिकला में चौलुक्य वंश का भी विशेष योगदान रहा हैं। चौलुक्यकाल में गुजरात, राजस्थान जैन कला का प्रमुख केन्द्र रहा। कुम्भारिया, तारंगा, आबू तथा जालौर में जैन मूर्तिकला के अवशेष मिले हैं। गुजरात में जैन–शिल्प–सामग्री श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। गुजरात में जिन मूर्तियां सबसे अधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं, इनमें भी ऋषभ एवं पार्श्व की जैन मूर्तियाँ अधिक हैं।

गुजरात के कुम्भारिया, तारंगा आदि के जैन मन्दिरों में 24 देवकुलिकाओं को सयुक्त करने की परम्परा प्रमुख थी। तीर्थंकरों के जीवन–दृश्यों एवं समवसरणों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। जिनों के बाद लोकप्रियता के क्रम में महाविद्याओं का दूसरा स्थान है। यक्ष–यक्षी युगलों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थे। अधिकांश जिन मूर्तियों के साथ यही यक्ष–यक्षी युगल निरूपति हैं। वहां सरस्वती, शान्तिदेवी, ब्रह्मदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश, अष्ट–दिक्पाल, क्षेत्रपाल एवं 24 जिनों के माता–पिता की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।[24]

कुम्भारिया गुजरात के बनासकांठा जिले में स्थित है। यहां चौलुक्य शासकों के काल के 5 श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं। ये मन्दिर (11वीं 13 वीं शती ई.) सम्भवनाथ शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर को समर्पित है।[25]

शान्तिनाथ मन्दिर (कुम्भारिया) के सिंहासन के मध्य में चतुर्भुज शान्तिदेवी निरूपित है, जिसके दोनों ओर दो गज और सिंहासन की सूचक दो सिंह आकृतियां उत्कीर्ण हैं। शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगों से वेष्ठित धर्मचक्र उत्कीर्ण है। देवी सर्वानुभूति यक्ष की मूर्ति वैज्ञानिक विशेषताओं से प्रभावित प्रतीत होती है।[26] महावीर मन्दिर के पश्चिमी और उत्तरी प्रवेश द्वारों के समीप 24 जिनों की माताओं का चित्रण है। प्रत्येक स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा में फल और बायी भुजा में बालक है। पार्श्वनाथ मन्दिर में महाविद्याओं में ज्वालापात्र लिये हुये ज्वालामालिनी की मूर्ति विशेष कलात्मक है। नेमिनाथ मन्दिर के मुखमण्डप की पूर्वी भित्ति पर चतुर्भुज महालक्ष्मी की ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्ति है। इस मूर्ति के लेख[27] में देवी को महालक्ष्मी कहा गया है।

देवकुलिकाओं की पश्चिमी भित्ति पर मयुरवाहना सरस्वती[28] और पद्मावती यक्षी निरूपित है। सम्भवनाथ मन्दिर की भित्ति पर भी महाविद्याओं सरस्वती एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां मुख्य हैं।

इसी प्रकार आबू के मन्दिरों में भी कुम्भारिया मन्दिरों की भांति मूलनायक नहीं हैं। यहां महाविद्याओं का अंकन सर्वाधिक है। 16 महाविद्याओं का सामूहिक अंकन विमलवसही में दो बार किया गया है। एक रंगमण्डप में तथा दूसरा देवकुलिका 41 के वितान पर है। विमलवसही के समान लूणवसही में भी महाविद्याओं, अम्बिका यक्षी एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां, जिनों एवं कृष्ण के जीवन–दृश्य हैं। गर्भगृह की नेमिनाथ–मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में लांछन उत्कीर्ण नहीं है। केवल सुपार्श्व और पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित है। अन्य जिनों की पहचान केवल पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नामों के आधार पर की गई है। सभी जिनों के साथ यक्ष–यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। रंगमण्डप के वितान पर ध्यानस्थ जिनों की 72 मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यह वर्तमान भूत एवं भविष्य के जिनों का सामूहिक अंकन प्रतीत होता है।[29]

जालौर में कुमारपाल चौलुक्य के शासनकाल का[30] महावीर मन्दिर भी जैन कला का उदाहरण है। यह मन्दिर जालौर के जैन मन्दिरों में विशालतम एवं शिल्प सामग्री की दृष्टि से भी समृद्ध है। मन्दिर में अष्ट–दिक्पालों के दो समूह उत्कीर्ण है, जिनमें सामान्य पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित है। जालौर लेख (1164 ई.) से ज्ञात होता है कि महावीर मन्दिर मूलतः पार्श्वनाथ को समर्पित था। मन्दिर के गर्भगृह में आज 17 वीं शती ई. की महावीर मूर्ति है। गूढ़मण्डप की दक्षिणी भित्ति पर जयमुकुट एवं मेषवाहन से युक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक मूर्ति है।[31]

गंगवंशीय जैन मूर्तिकला का वैशिष्ट्य :

गंगवंशीय शासकों ने जैन कला को न केवल प्रश्रय दिया वरन् उसका प्रचार–प्रसार भी किया। वैसे तो इस काल में अनेक जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ लेकिन श्रवणबेलगोला के विन्ध्यगिरि पर स्थापित बाहुबली की विशाल मूर्ति जैन कला ही नहीं वरन् भारतीय कला का विश्व की कला को महत्त्वपूर्ण देन है। इसकी विशालता एवं अंग समायोजन से यह मूर्ति और अधिक सुन्दर हो गई है। यह मूर्ति दिगम्बर नग्नावस्था में है। शरीर का भारी बोझ सम्भालने के लिए टांगों के आगे पीछे की शिला को बमीठों के रूप में छोड़ दिया गया है। सबसे प्रमुख बात इस प्रतिमा को उस समय बनाया गया जब कोई भी वैज्ञानिक साधन नहीं था। इसकी विशालता के कारण इस मूर्ति के आस–पास ऐसा एक भी स्थान नहीं है, जहां से मूर्ति को एक साथ देखा जा सके। मूर्ति का प्रत्येक अंग ऐसा लगता है जैसे उन्हें नाप–तोल कर बनाया हो। जैसे कानों के नीचे का भाग, विशाल कंधे, और आजानुबाहु तथा दो विशाल लटकती हुई भुजाएं, अंगुलियां एवं अंगूठा प्रत्येक अंग मूर्ति के आकार के आधार पर न छोटा है न बड़ा। मूर्ति के पेढू पर की त्रिबलियां, गले की धारियां तथा घूंघराले बालों का गुच्छा उसे और अधिक सजीव एवं सुन्दर बनाते हैं।

यह मूर्ति मूर्तिकला के प्रत्येक भावों को अपने अन्दर समेटे हुए है जैसे – सीना तना हुआ, मुखमण्डल पर हास्य की मंद परन्तु बिल्कुल स्पष्ट झलक, आंखों में संसारी जीवों की दुखावस्थाजन्य कारूणता, अणु–अणु से प्रस्फुरिट वैराग्यभाव आदि। मूर्ति की अधखुली आंखे तथा भौहे चढ़ी हुई अत्यन्त ही सुन्दर आभास कराती है।

जैन स्तम्भकला का वैशिष्ट्य :

जैन स्तम्भ भारतीय कला में अपना विशेष स्थान रखते हैं। ये स्तम्भ अधिकांशतः जैन मन्दिरों के सामने खड़े हैं। दक्षिण भारत के प्राचीन जैन मन्दिरों में स्तम्भों का प्रचलन विशेष था। मानस्तम्भ जैन मन्दिरों के सम्मुख एकाश्म पत्थर का सुन्दर एवं ऊंचा स्थापित स्तम्भ होता है, जोकि सम्बन्धित मन्दिर के सामने खड़ा होकर उसकी प्रतिष्ठा को ओर अधिक बढ़ा देता है। ये मानस्तम्भ प्राचीन इतिहास एवं कला के बारे में विस्तृत जानकारी देते हैं। इन मानस्तम्भों पर तत्कालीन भौगोलिक एवं राजनैतिक अवस्था की विस्तृत जानकारी लिखी हुई रहती हैं। इन स्तम्भों पर कला का प्रमाणिक इतिहास वर्णित रहता है।

श्रवणबेलगोला के विन्ध्यगिरि पर स्थित त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ विशेष कलात्मक महत्त्व का रहा है यह चामुण्डराय ने बनवाया था। इस पर चामुण्डराय मूर्ति बनाने वाले कारीगर का नाम अंकित था मगर अब किसी कारण यह लेख धुंधला पड़ गया है। इस स्तम्भ की बारीक कारीगरी एवं ऐतिहासिकता विशेष महत्त्व की है। इस स्तम्भ की सबसे प्रमुख विशेषता इसका आधार के स्थान पर शिखर से मण्डप से जुड़ा होना है। यह स्तम्भ कुछ सालों पूर्व तक अधर में अद्‌भुत ढंग से लटका हुआ था कि हर कोई अपना रूमाल इसके नीचे से निकाल सकता था मगर अब ऊपर से कुछ ढीला हो जाने के कारण यह कुछ टेढ़ा हो गया है। परिणामस्वरूप इसका एक कोना धरती को छूने लग गया है। इस स्तम्भ में अनेक सचित्र शिलालेख हैं।

श्रवणबेलगोला के चन्द्रगिरि पर पार्श्वनाथ बसदि के मुख्यद्वार के सामने भी एक मानस्तम्भ स्थापित है यह अत्यन्त सुन्दर स्तम्भ है। पूर्णतः सुरक्षित इस स्तम्भ के चारों मुखों पर यक्ष एवं यक्षिणियों का अंकन है। यह स्तम्भ अत्यन्त विशाल, बृहद् एवं सुन्दर है। देखने से ऐसा लगता है मानों यह भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा में अड़िग स्थिर खड़ा है। आधार पर तीन चौकोर क्रमशः बड़े से छोटे क्रम में चौकिया है तथा इन पर छह गोले कलात्मक जोड़ से जुडे हैं तथा शीर्ष पर देव प्रतिमा है। इस प्रकार यह मानस्तम्भ भी जैन कला का अद्वितीय उदाहरण है।

उपसंहार :

इन स्थापत्य कलाकृतियों ने न केवल प्राचीन भारतीय इतिहास को सुरक्षित रखा है बल्कि प्राचीनकालीन भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक आदि के कलात्मक रूप एवं विभिन्न पहलुओं को भी अपने अन्दर सुरक्षित रखा हैं। इन कलाकृतियों में मुख्यतः मूर्तियों, मन्दिर की दीवारों पर अंकित चित्र, स्तूप की वेदिका, स्तम्भों पर अंकित लेखों में प्राचीन संस्कृति के अवशेष आदि धरोहर के रूप में अंकित हैं, जिनसे सम्बन्धित काल की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता हैं। इस तरह ये कलाकृतियां न केवल कलात्मक रूप में वरन् ऐतिहासिक रूप में भी इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारी

प्रदान करती हैं। सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर इन कलाकृतियों में छुपी उन गूढ़ बातों का पता चलता है, जिसके उद्देश्य को लेकर सम्बन्धित कलाकृति का निर्माण किया था। वर्तमान में जैनधर्म की इन कलाकृतियों का सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं जीवन के अन्य पक्षों के आधार पर विशेष महत्त्व हैं। इन कलाकृतियों से जैन श्रमण परम्परा के इतिहास के साथ–साथ सम्बन्धित राजवंश से जुड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियां भी मिलती है, जो आधुनिककाल में विशेष महत्त्व रखती हैं।

सन्दर्भ :

1. यद्यपि स्तूप का उल्लेख वेदों में भी मिलता है, लेकिन कलात्मक स्तूप का निर्माण बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् ही माना जाता है। सबसे प्राचीन बौद्ध स्तूप धमेख स्तूप है, जो सारनाथ में है।

2-flag] gfjgj] Hkkjr dh tSu xqgk,a] i`-13

3. सिंह, हरिहर, भारत की जैन गुहाएं, पृ. 55

4. सिंह, हरिहर, भारत की जैन गुहाएं, पृ. 56

5. सिंह, हरिहर, भारत की जैन गुहाएं, पृ. 3

6- ''भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतमकारयत् (11) 5
चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि गुहाभिलेख, प्लीट जॉन फेथफुल, भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ. 43

7. कृष्ण देव, Maladevi Temple at Gyaspur, Bombay, पृ. 260

8. कृष्ण देव, वहीं, पृ. 269

9-Singh,Harihar, 'Jaina Temple of Western India' P.V. Research Institute, Varanasi - 5, 1982 , Page - 184

10. घोष, अमलानन्द – जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड 2, अध्याय 23, पृ. 303

11. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ. 256

12. वही, पृ. 256

13. वही, पृ. 279

14. संस्कृत जैन शिलालेख संग्रह, भाग द्वितीय, लेख न. –108 (शक सं.–556–634 ई.) ऐहोल (जिला–कलदगी), पृ. 93

15. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ. 279–280

16. नन्दराज नीतं च का (लि) ग–जिनं संनिवेस, हाथी गुम्फा शिलालेख, पृ. 364, श्लोक 12, वर्ष 12वां

17. तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ. – 45

18. तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ. 80

19. तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ. 80–81

20. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, पृ. 324

21. सादानी, जयकिशनदास मूंदडा बिट्ठलदास, भारतीय मूर्तिकला, पृ.17

22. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, पृ. 352

23. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, पृ. 365

24. तिवारी, मारूति नन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, पृ. 52

25. तिवारी, मारुति नन्दन प्रसाद, ''A breaf surve of the Iconographic Data at Kumbhariya, North Gujrat, सम्बोधि, खण्ड–2, अध्याय–1, पृ. 7–14

26. तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद – जैनप्रतिमा विज्ञान, पृ. 54

27. वि.सं. 1119 (1134ई.) का लेख है। सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द पू.नि. पृ. 158

28. सरस्वती के साथ मयूर वाहन का उल्लेख केवल दिगम्बर परम्परा में है।

29. तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, जैनप्रतिमा विज्ञान, पृ. 64

30. जालौर लेख (1164 ई.) से ज्ञात होता है कि महावीर मन्दिर मूलतः पार्श्वनाथ को समर्पित था। मन्दिर के गर्भगृह में आज 17 वीं शती ई. की महावीर मूर्ति है। नाहर, पी.सी., जैन इन्स्क्रिपशन्स, भाग–1, कलकत्ता, 1918, पृ. 239, लेख सं. 899

31. तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, जैनप्रतिमा विज्ञान, पृ. 66

SHODHASAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

शारीरिक–मानसिक स्वास्थ्य का आधार : समाधि

(जैनशास्त्रों के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज

सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

भूमिका :

चिरकाल से ही मनुष्य की प्रकाश की यात्रा, अमृत की आकांक्षा और सत्य की खोज एक शाश्वत् अभिलाषा रही है, परन्तु सबकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पाती क्योंकि चेतना पर अज्ञान का आवरण है, इसलिए वह सत्य–असत्य जान नहीं पाता। सुख पाने की मन में उत्कट इच्छा है, पर मूर्च्छा और मोह का एक ऐसा सघन वलय है कि उसे आनन्द की अनुभूति नहीं हो पाती। वह शक्ति–सम्पन्न बनना चाहता है, पर विघ्न व अन्तरायों के कारण उसकी शक्तियां नष्ट हो जाती है। यद्यपि यह एक सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वभौमिक तथ्य है कि दुःख, मृत्यु, पराधीनता, जड़ता, असमर्थता, अभाव, अशांति और असमाधि कोई नहीं चाहता। शायद उसके इसी अशान्त मन ने उसे समाधि की खोज करने को उद्यत किया है। इस खोज ने तीन बातें स्पष्ट की है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति की स्फुरणा और जागरणा हो सकती है बशर्ते कि सही लक्ष्य, सही मार्ग और सही कदम उस ओर प्रस्थित हों।

यह सत्य कथन है कि अनिर्वचनीय ज्ञान की प्राप्ति निर्विकल्प, सुसमाहित और ध्यानस्थ चित्त में ही होती है। किसी भी पाश्चात्य दर्शन में यह तथ्य उपलब्ध नहीं होता कि विक्षिप्त या आकुल–व्याकुल चेतना में कोई प्रशस्त समाधि प्राप्त हुई है। यहां तक कि आज के वैज्ञानिक एवं परामनोवैज्ञानिक कहते हैं कि– पूर्वाभास की पृष्ठभूमि समाधिस्थ चेतना है।

समाधि : एक समीक्षाः

इसमें सर्वप्रथम हम यह जानने का प्रयत्न करें कि भारतीय चिंतन की समस्त धाराएं, साधना–पद्धतियां, विभिन्न विचार–सरणियां समाधि के बारे में क्या कहती हैं?

विभिन्न साधना पद्धतियों में समाधि :

- योग के पुरस्कर्ता महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के अंतिम अंग के रूप में समाधि का प्रतिपादन किया है। वहां उल्लेख मिलता है कि ध्यान जब इतना प्रगाढ़ होता है कि उसमें केवल ध्येय विषय

मात्र की ही ख्याति रहती है, तब उसे समाधि कहते हैं।[1] योगदर्शन में समाधि के दो भेद किए गए हैं– संप्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि।[2]

- हठयोग प्रदीपिका में आत्मा और मन की एकता को समाधि कहा गया है। जब प्राण भली प्रकार क्षीण हो जाता है और मन का भी लय हो जाता है, उस समय हुई समरसता को भी समाधि कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा –इन दोनों की एकरूपता को ही समता कहते हैं और उस समय जिसमें सम्पूर्ण संकल्प नष्ट हो जाते हैं, उसको समाधि की संज्ञा मिली हैं।[3]

- विष्णुपुराण में उल्लेखित है कि परमात्मा के स्वरूप का जो विकल्प से रहित ग्रहण होता है, उसका नाम समाधि है।[4]

- जीवात्मा और परमात्मा की एकरूपता के ज्ञान के उदय को ही समाधि कहते हैं।[5]

- विज्ञान भैरव में बताया गया है कि चित्त जब अखण्ड आत्मा में अद्वैत होकर स्थिर हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं।[6]

- स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि – यौगिक क्रियाओं की सर्वोच्च अवस्था समाधि है। समाधि पूर्ण चेतना, बौद्धिकता एवं सतर्कता की स्थिति है, यह पूर्ण भक्ति की अवस्था है।[7]

- मुक्तिकोपनिषद् के अभिमत से मुनियों के द्वारा साधित समाधि उस संकल्पशून्य अवस्था का नाम है, जिसमें न तो मन की क्रिया होती है और न बुद्धि का व्यापार। जो आत्मज्ञान की अवस्था है और जिसमें चैतन्य के अतिरिक्त सबका अभाव है।[8]

- धम्मपद में सम्यक् प्रणिहित चित्त को श्रेयस्कर बताया गया है।[9]

जैन–योग में समाधि :

जैन आगमों में 'समाधि' शब्द का प्रयोग ध्यान के बाद निष्पन्न होने वाली आत्मस्थिति के लिए न होकर सम्पूर्ण आत्मस्थता के लिए हुआ है। महावीर की भाषा में समतापूरित हर अनुष्ठान समाधि है। इस दृष्टि से चित्त का विक्षेय असमाधि है और चित्त का अविक्षेय समाधि है। समाधि का अर्थ है–सम रूप में अधिष्ठित रहना। हर समय शांत स्थिति में रहना। मानसिक तुला की डंडी का प्रत्येक परिस्थिति में संतुलित और सम रहना समाधि है।[10]

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

महावीर वाणी के प्रतिनिधि ग्रंथ है–आगम। आयारों में समाधि का अर्थ किया है– इन्द्रिय और मन का संयम।[11] वहीं यह निर्देश मिलता है कि मध्यस्थ और निर्जरापेक्षी भिक्षु समाधि का पालन करें।[12] स्थानांग वृत्ति में समाधान को समाधि कहा है।[13] सूयगडो में समाधान, तुष्टि अविरोध को समाधि माना है। इसके मुख्य चार भेद हैं–

1. **द्रव्यसमाधि**–पांचों इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों से होने वाली तुष्टि। क्षीर और गुड़ की समाधि अर्थात् अविरोध।

2. **क्षेत्र समाधि**–दुर्भिक्ष से उत्पीड़ित प्राणियों का सुभिक्ष प्रदेश में चले जाना। चिरप्रवासी व्यक्तियों का अपने घर लौट आना।

3. **कालसमाधि**–वनस्पति के जीवों को वर्षा में, उलूक को रात्रि में, कौओं को दिन में, गायों को शरद् ऋतु में समाधि का अनुभव होता है अथवा जिसे जिस समय में जितने काल तक समाधि का अनुभव हो।

4. **भावसमाधि**–इसके चार भेद हैं –

    (i) **ज्ञानसमाधि**–जैसे–जैसे व्यक्ति श्रुत का अध्ययन करता है, वैसे–वैसे समाधि उत्पन्न होती है। ज्ञानार्जन में उद्यत व्यक्ति भोजन–पानी तक को भूल जाता है। वह कष्टों की परवाह नहीं करता, उनसे उद्विग्न नहीं होता। ज्ञेय की उपलब्धि होने पर उसका जो समाधान होता है, वह अनिर्वचनीय होता है।

    (ii) **दर्शनसमाधि** –जिन–प्रवचन में जिसकी बुद्धि इतनी श्रद्धाशील हो जाती है कि उसे कोई भ्रमित नहीं कर सकता। उसकी स्थिति पवन–शून्य गृह में स्थित दीपक की भांति निष्प्रकम्प हो जाती है।

    (iii) **चारित्रसमाधि**–इसकी निष्पत्ति है– विषयों से परांगमुखता। निष्कंचन होने पर भी साधक परम समाधि का अनुभव करता है।

    (iv) **तपसमाधि**–तपस्या से भावित पुरूष कायक्लेश, भूख–प्यास आदि परिषहों से उद्विग्न नहीं होता। इसी प्रकार वह आभ्यन्तर तप का अभ्यास कर, ध्यान में आरूढ़ होकर निर्वाण प्राप्त पुरूष की भांति सुख–दुःख से बाधित नहीं होता।[14]

दसवैकालिक सूत्र के विनयसमाधि अध्ययन में समाधि का अर्थ–हित, सुख या स्वास्थ्य किया गया है। उसके चार हेतु बतलाए गए हैं– विनय, श्रुत, तप और आचार। इनके द्वारा आत्मा का हित सधता है।

इसीलिए यहां समाधि के ये चार रूप प्ररूपित हैं।[15] चूर्णिकार अगस्त्यसिंह ने समारोपण और गुणों के समाधान (स्थिरीकरण या स्थापन) को समाधि कहा है।[16] आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति में समाधि के तीन अर्थ किए गए हैं– समाधान, मानसिक स्वस्थता और मोक्षमार्ग में अवस्थिति।[17] वहां समाधि के दो प्रकार विवेचित हैं–

(i) **द्रव्यसमाधि** – पदार्थों से होने वाली तुष्टि या समाधान।

(ii) **भावसमाधि**–ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अविसंवादिता।[18] सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवार्तिक में समाधि का स्वरूप प्रगट करते हुए बताया गया है कि जिस प्रकार भांडागार में आग लग जाने पर उसे शांत किया जाता है। उसी प्रकार अनेक व्रत और शीलों से सम्पन्न मुनि के तप में कहीं बाधा उपस्थित होने पर उस बाधा को दूर कर, जिसे धारण किया जाता है, उसका नाम समाधि है। आचार्य वीरसेन ने समाधि के लक्षण का निर्देश करते हुए कहा है– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र में जो सम्यक् अवस्थान होता है, उसका नाम समाधि है।[19] तत्त्वानुश्शसन में ध्याता और ध्येय की एकरूपता को समाधि माना है।[20] पाहुड़ दोहा में उल्लेख मिलता है कि बाह्य विषयों की ओर से निःस्पृह होकर, चित्त का जो आत्म–स्वरूप में लीन होना है, यही समाधि है।[21] वृत्तिकार शान्त्याचार्य ने समाधि योग के दो अर्थ किए हैं–

1. चित्त की स्वस्थता से युक्त मन, वचन और काया की प्रवृत्ति।
2. शुभचित्त की एकाग्रता से होने वाली प्रत्युपेक्षणा आदि प्रवृत्तियां।[22]

गणाधिपति पूज्य गुरूदेव तुलसी के शब्दों में सुख–दुःख, लाभ–अलाभ, जीवन–मृत्यु, उत्कर्ष–अपकर्ष, निंदा–प्रशंसा, मान–अपमान आदि उतरती–चढ़ती सभी अवस्थाओं में आत्मा की समवृत्ति ही समाधि है। समाधि स्वयं के माध्यम से स्वयं को जानने का सक्षम उपाय है। यह जाग्रत चेतना की तीव्रतम अभीप्सा है।[23] आचार्य महाप्रज्ञ के अभिमत से मानसिक समस्या का स्थायी समाधान है–समाधि। मनोनुशासन के अनुसार समाधि का अर्थ है–शुद्ध चैतन्यानुभवः समाधिः– शुद्ध चैतन्य का अनुभव या चित्त का समाधान अथवा चित्त का संतुलन। यहां समाधि के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं– समत्व, विनय, श्रुत, तप और चारित्र।[24]

समाधि के अन्य नाम – हठयोग प्रदीपिका में राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शन्याशून्य पसंद, अमनस्क, अद्वैत, निरालंब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या आदि को समाधि के ही वाचक माना है।[25] तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार ध्यान, समाधि, योग –ये तीनों ही प्रायः चित्त निरोध रूप समान अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।[26] आचार्य महाप्रज्ञ ने मनोगुप्ति, समाधि, साम्य और सामायिक –इन सबको योग के ही विविध रूप माना है।[27]

समाधि का प्रयोजन :

सर्वविदित है कि समाधि का तात्पर्य – अपने प्रति जागना अथवा सजग रहना है। समाधिस्थ व्यक्ति अपने प्रति सचेष्ट रहता है। वह अपने द्वारा होने वाली कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरूक है, जो परिणाम भद्र है, वह कभी, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, आणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाडग्गो कृत्य नहीं करेगा।[28] उसका संकल्प होगा मैं असंयम, अब्रह्मचर्य, अकरणीय, अज्ञान, नास्तिकता, मिथ्यात्व, अबोधि, अमार्ग का त्याग करता हूं और संयम, ब्रह्मचर्य, करणीय, ज्ञान, आस्तिकता, सम्यक्त्व, बोधि और सन्मार्ग को स्वीकार करता हूं।[29] ऐसा प्रबुद्ध चेता वही कहता है, जो स्वयं करता है और वहीं करता है, जो कुछ वह कहता है। यह कथनी–करनी की उसकी अविसंवादिता जनप्रियता का आधार बन जाती है। वह सबका आदरणीय बन जाता है। दूसरा तथ्य यह है कि समाधि में अपने समेत सभी समान है– यह बोध जागृत होता है। जिसके अन्तःकरण में सर्वात्मभाव प्रसूत हो जाता है फिर भला वह कैसे किसी को दूसरा समझेगा? कैसे हिंसा, मृषा, चोरी, अश्लील और परिग्रह से लिप्त होगा। कैसे क्रूरता, अभिमान, प्रवंचना और आसक्ति के दलदल में फंसेगा? उसके सामने यह आदर्श वाक्य रहेगा– पुरूष! जिसे तू द्वैत मानता, वह तू ही है, केवल तूं ही।[30] वस्तुतः आत्मीयता का विकास ही आत्मा का विकास है। ऐसा व्यक्ति सर्वहितकारी प्रवृत्ति में ही संलग्न होगा। उसकी दृष्टि स्वार्थ पर नहीं, सर्वार्थ पर केन्द्रित होगी। सामाजिक क्षेत्र में वह बुराइयों एवं दोषों का अहिंसात्मक प्रतिकार करता है। राजनैतिक क्षेत्र में समता की प्रस्थापना हेतु राजतंत्र, प्रजातंत्र, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद आदि विभिन्न पद्धतियों का आविष्करण हुआ तथा साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतियों का आश्रय भी लिया गया, पर समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। विफलता के कारणों की मीमांसा की जाए तो उसमें प्रमुख कारण है–अन्तस्तल में बैठा असमाधिस्थ चित्त। जिस क्षण साम्यभाव का उदय होगा, वही राजनैतिक अभ्युदय का क्षण होगा। उस समय यह धारणा स्वतः निर्मूल हो जाएगी कि न्यायालय, सचिवालय, चिकित्सालय, शिक्षालय, मंत्रालय, सेना, अस्त्र–शस्त्र से ही राष्ट्र का निर्माण संभव है। वस्तुतः जिस राष्ट्र को इन सबकी आवश्यकता न पड़े, वही सबसे समृद्ध और शक्ति–सम्पन्न राष्ट्र होता है। साम्ययोगी यदि शासक या नायक बन जाए तो स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ समाज और स्वस्थ राष्ट्र के सपने को साकार होते देर नहीं लगेगी। दार्शनिक समस्याओं का कारण है–वैचारिक आग्रह। अपनी दृष्टि को सत्य मानने या मनवाने का प्रबलतम मनोभाव। समता का प्रयोक्ता ऋजु, विनम्र और अनाग्रही होता है। वह वस्तु और सत्य को विवक्षाओं के माध्यम से समझने का प्रयत्न करता है क्योंकि उसका विवेक चक्षु उद्घाटित है। मानसिक क्षेत्र में उभरने वाली वृत्तियों, मनोवृत्तियों, मनोरचनाओं का हेतु है–विषय युक्त भावधारा एवं निषेधात्मक चिंतन। इससे चित्त विक्षुब्ध और अशांत हो जाता है। उसके परिशोधन और परिशमन के लिए आवश्यक है–सम्यगक् दृष्टि। पूज्य गुरूदेव ने श्रावक सम्बोध में लिखा है–

SHODHASAMHITA
शोधसंहिता

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

जो जैसा है वैसा देखें, सम्यक् दर्शन की सहनाणी।

क्यों चले निषेधात्मक चिंतन, हो सदा विधेयात्मक वाणी।।[31]

समाधिस्थ व्यक्ति सबको सही दृष्टि देता है इसलिए उसे चक्खूदयाणं 'चक्षुदाता' कहा जाता है। चूंकि समाधि पूर्ण विश्राम की स्थिति है। इसमें सब कुछ शांत हो जाता है। उस समय मस्तिष्क में अल्फा तरंगे पैदा होती हैं, जो बाहर और भीतर सबको रूपान्तरित कर देती है। **समाधि की चर्चा का कारण?**

सहज जिज्ञासा होती है कि विज्ञान और तकनीकि से आविष्कृत संसाधनों के इस युग में समाधि, संयम, आत्मनियंत्रण की चर्चा क्यों ? आत्मानुशासन की नकेल हाथ में क्यों ? आज तो सब उन्मुक्तता चाहते हैं। मुक्त मन, मुक्त वाणी, मुक्त शरीर, मुक्त वातावरण में सांस लेने की इच्छाएं जगजाहिर है। कोई किसी की पाबन्दी पसन्द नहीं करना। पर सच्चाई तो यह है कि आज समाधि की अत्यधिक आवश्यकता है। आज शब्द की तरंग रूप चकाचौंध, गंध की लहर, रस की तीव्रतम संवेदना और स्पर्शसुख ने अनाहूत कष्टों, दुःखों, व्यथाओं को जन्म दिया है। इन्द्रिय और मन की परिधि में जीने वाले लोग हजारों–हजारों प्रकार की समस्याएं भोगते हैं। अहं भावना और हीन भावना से ग्रसित मानस घुटन, टूटन, बुढापे एवं बेबसी की जिंदगी जी रहे हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक चंचलता का अतिरेक उन्हें दिग्मूढ बना रहा है। मिथ्या दृष्टिकोण और वैचारिक आग्रह जीवन के सामरस्य को समाप्त कर रहे हैं। आहार का असंयम, योगवादी मनोवृत्ति का विस्तार और निषेधात्मक चिंतन उनकी प्राणशक्ति को क्षीण कर रहा है। प्रवृत्ति और निवृत्ति के आसंतुलन, अनुकम्पी और परानुकम्पी के असंतुलन मस्तिष्क के दांए और बाएं पटल के असंतुलन ने उनके लिए खुशहाली के तमाम रास्ते बंद कर दिए हैं। आयुर्विज्ञान की भाषा में कहा जाए तो उनके रेजिस्टंश पावर (रोग प्रतिरोधक क्षमता) और इम्यून सिस्टम (आत्मरक्षा प्रणाली) को अव्यवस्थित बना रहे हैं। मानसिक दबाव और रोजमर्रा के बढते तनावों ने उनका जीना दूभर कर दिया है। हताशा, निराशा, अवसाद और विषाद में आकंठ डूबा मानव असहाय और निरूपाय होकर, किसी ऐसे उपकरण या साधन की खोज में संलग्न है, जो उसके आहत मन को राहत दे सके। उसकी विखंडित होती चेतना को एक दिशा में संप्रयुक्त कर सके। इसलिए उसके अन्तर्मन से बार–बार यह आवाज उठती है– 'सुखं में स्यात्।' मुझे सुख मिले। शांति मिले और उसकी यह ईच्छा समाधि की अवस्था में ही पूर्णता को प्राप्त हो सकती है।

यद्यपि मनोरंजन एवं लोकरंजन के जितने भी संसाधन है ताश, शतरंज, कैरम, सिनेमा, नाटक, नृत्य आदि –इन सबके प्रयोग या प्रचलन के पीछे उद्देश्य इतना ही है कि व्यक्ति की मानसिक उलझने कम हो। वह अपने आपको हल्का–फुल्का अनुभव करें। उसकी मनोरचना में परिवर्तन हो। गम के कुहासे को दूर कर खुशियों की किरणें घर–आंगन में प्रवेश करें। इसके लिए व्यक्ति ने मादक और नशीले पदार्थों का आसेवन करना प्रारंभ किया ताकि नशे की हालत में दुःख–दर्द का अहसास भी न रहे। तथा वह अपने में अतिरिक्त स्फुरणा और शक्ति को महसूस करे। पर ये सब संभोग से समाधि की तरह गुमराह करने वाली बातें है।

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

यदि इनसे स्थायी शांति मिलती, ऐन्द्रिक माध्यम से शाश्वतिक समस्याओं का अंत होता तो इनकी उपयोगिता ज्ञात होती है। पर ये सब भयंकर घातक और जानलेवा सिद्ध हो रहे हैं, ऐसी सर्वेक्षणों एवं परीक्षणों से अवगति मिली है।

अपाय और उपाय दोनों पूरक :

यह शाश्वत् सत्य है कि अच्छाई और बुराई का अस्तित्त्व त्रैकालिक है। समस्याओं की धूप और समाधान की छतरी अतीत में भी थी, आज भी है और अनागत में भी रहेगी। यह बात अलग है कि हर युग की समस्याएं नए मुखौटे पहन कर आती है इसलिए समाधान की प्रक्रिया को भी कमोबेश रूप में बदलना पड़ता है।

चेतना की तीन श्रेणियां हैं– 1. मूर्च्छा की चेतना 2. जागृति की चेतना और 3. वीतरागता की चेतना। पहली भूमिका में अंधेरा ही अंधेरा है। दूसरी में सम्यक् दर्शन का दीप जलता है। जागरण की प्रक्रिया शुरू होती है और तीसरी श्रेणी में केवल प्रकाश ही प्रकाश होता है। जागरण के आदि क्षण से अध्यात्म यात्रा शुरू होती है और वीतरागता के क्षण तक पहुंच कर विराम लेती है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए आवश्यक है– चेतना का स्वस्थ होना, संतुलित होना और समाधिस्थ होना।

आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वास्थ्य के पांच लक्षण बताए हैं– 1. शारीरिक धातुओं एवं रसायनों का संतुलन, 2. प्राण का संतुलन 3. इन्द्रियों की प्रसन्नता 4. मन की प्रसन्नता तथा 5. भावों की प्रसन्नता।[32] जो समाधि में रहता है, उसे ये सब सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख मिलता है कि समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार की इच्छा करे। जीव आदि पदार्थ के प्रति निपुण बुद्धि वाले गीतार्थ को सहायक बनाएं और विविक्तवास, एकान्तवास में रहे।[33]

गणाधिपति पूज्य गुरूदेव के शब्दों में प्रशांत मन और इन्द्रियों के द्वारा ही समाधि को पाया जा सकता है[34] तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता में सम रहना, अनेक प्रकार की आत्मशोधक तपस्याएं करना, चेतन और मन में भेदज्ञान की अनुभूति करना, शुक्ल ध्यान में अवस्थित होना समाधि के ये अत्युत्तम उपक्रम हैं।[35] आचार्य महाप्रज्ञ के अभिमत से समाधि के लिए आवश्यक है– अनाशंषा अर्थात् जीवन की आशंषा और मौत का भय न हो। समता अन्तःस्फूर्त हो। संयम–निग्रह की शक्ति का प्रादुर्भाव हो। सम्यक् चर्चा, स्वीकृत नियमों का जागरूकता से पालन हो और अप्रमाद भाव का आविष्करण हो।[36]

मनोविज्ञान के संदर्भ में कहा जाए तो समाधि तब तक उपलब्ध नहीं होती, जब तक संवेदन विचार, संवेग और आवेग पर नियंत्रण नहीं होता। जैन साधना पद्धति में समाधि के चार साधन हैं– वैराग्य, एकाग्रता,

श्वास–संयम और प्रसन्नता। संवेदन नियंत्रण से वैराग्य, विचार, एकाग्रता से एकाग्रता, आत्म संप्रेक्षा से श्वास संयम और संवेग नियंत्रण से प्रसन्नता उपलब्ध होती है।[37]

समाधि के बारे में ऐसी अवधारणाएं भी प्रचलित है कि इस अवस्था में शरीर पत्थर की तरह हो जाता है। नाड़ी की गति बहुत धीमी हो जाती है। श्वास का आवागमन रूक जाता है, निरूद्ध हो जाता है। व्यक्ति निश्चेष्ट होकर अचेतनावस्था में चला जाता है, पर वास्तविकता यह नहीं है। यदि समाधि की प्राप्ति से मांसपेशीय तनाव, भावनात्मक तनाव एवं अन्य तनावों का अंत नहीं होता, शांति नहीं मिलती। शक्ति एवं हल्केपन का अनुभव नहीं होता। विक्षेप या इसी प्रकार की अन्य मनोवैज्ञानिक अव्यवस्थाओं का अंत नहीं होता तो वह निश्चित रूप में समाधि नहीं है।[38]

समाधि की निष्पत्ति है– 1. प्रज्ञा का जागरण 2. दिशा परिवर्तन 3. शारीरिक स्तर पर चैतन्य केन्द्र निर्मल 4. मानसिक स्तर पर शोक एवं उद्वेग की कमी 5. आध्यात्मिक स्तर पर आदतों में परिवर्तन, कषाय का शमन। महर्षि पतंजलि के अनुसार इससे अध्यात्म वैशारथ प्राप्त होता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा जागती है।[39] जैन अभिमत से समाधि की यात्रा शुरू होती है, चित्त की एकाग्रता से, ज्ञान–वैराग्य से, श्रद्धा के प्रकर्ष से, शिथिलीकरण से, संकल्पनिरोध से, ध्यान से, गुरूपेदेश से और प्रयत्न बाहुल्य से उस चरम स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।[40] प्रत्याहार या प्रतिसंलीनता का अभ्यास समाधि का पहला बिन्दु है। इसके लिए अपेक्षा है– 1. इन्द्रिय और मन के संवेदन को बंद करें 2. समता–प्रियता और अप्रियता के धागे से स्वयं को न जोड़ें। 3. रेचन करना सीखे–भीतर में अवस्थित संस्कारों का रेचन तप, स्वाध्याय, ध्यान–व्युत्सर्ग के द्वारा करें 4. अपना आत्मनिरीक्षण करें कि आप चेतना की किस भूमिका में जी रहे हैं। लक्ष्य क्या है आपका और आपने मार्ग कौनसा चुना है ? यह अन्तर्दर्शन ही समाधि का केन्द्र बिन्दु है। जिस क्षण राग और द्वेष से मुक्त होंगे, वही समाधि का क्षण होगा आत्मानुभव का क्षण होगा, अपना क्षण होगा। प्रेक्षा ध्यान के प्रयोग चेतना को इसी क्षण तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर रहे हैं। हमारे कदम निरन्तर इस ओर बढ़े, बस यही काम्य है।

संदर्भ–ग्रंथ :

---

[1]. पातंजलयोगदर्शन 3/3

[2]. पातंजलयोगदर्शन 1/1 भाष्य पृ. 1

[3]. हठयोग प्रदीपिका 4/5–7

[4]. विष्णु पुराण 6.7.90

[5]. जाबाल दर्शनोपनिषल 10/1 अन्तपूर्णोपनिषद् 5/75

[6]. विज्ञान भैरव पृ. 124

[7]. क्रियात्मक योग पृ. 17

[8]. मुक्तिकोपनिषद् 1/37

[9]. धम्मपद 3/1

[10]. प्राचीन जैन साधना पद्धति पृ. 123

[11]. आयारो 6/79

[12]. आयारो 8/8/5

[13]. स्थानांगवृत्ति, पृ. 61

[14]. सूयगडो 1/10 आमुख, निर्युक्ति गाथा 98, 99

[15]. दसवेआलिय 9/4

[16]. जं विणयसमारोवणं विणयेण वा जं गुणाण समाधाणं एस विगय समाधी भखीति। अ.चू: दसवै. पृ. 468

[17]. आ.हा.वृ. भाग 2 पृ. 109 क्षरीय. 256

[18]. समवाओ पृ. 117

[19]. जैन परम्परा में ध्यान का स्वरूप, पृ. 66

[20]. तत्त्वानुशासन 137

[21]. पाहुडदोहा 176

[22]. उशावृ प. 256

[23]. एक बूंद : एक सागर पृ. 1499

[24]. मनोनुशासनम् 4/27–32

[25]. हठयोग प्रदीपिका 4/4

[26]. तत्त्वार्थवार्तिक 6/1/12

[27]. सम्बोधि 11/35

[28]. श्रमण प्रतिक्रमण पृ. 16

[29]. श्रमण प्रतिक्रमण पृ. 32

[30]. आयारो 5/101 अर्हत् वन्दना पृ. 8

[31]. श्रावक सम्बोध गाथा 13

[32]. अहिंसा और शांति पृ. 116

[33]. उत्तरज्झयणाणि 32/4

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

34. एक बूंद : एक सागर पृ. 1499

35. लघुता से प्रभुता मिले पृ. 97

36. जैन योग, पृ. 237

37. अप्पाणं सरणं गच्छामि, पृ. 152

38. क्रियात्मक योग, पृ. 17

39. पातंजल योग दर्शन 1/47–48

40. मनोनुशासनम् 2

Indian Journal of Adult Education **ISSN: 0019-5006**
Vol. 83, No. 1 **January-March 2022**

SWAYAM-THE INDIAN MOOCS PLATFORM

Dr. Manish Bhatnagar
Assistant Professor, Department of Education, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, bhatnagarmanish9@gmail.com

Dr. Pragati Bhatnagar
Assistant Professor, Acharya kalu Kanya Mahavidhyalaya, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, pragatibhat@gmail.com

Abstract

This paper is about the new innovative initiative of Digital India Campaign – The MOOCs platform Swayam in Indian Education System. MOOCs started as a recent and widely researched development in distance education which were first introduced in 2006 and emerged as a popular mode of learning in 2012. Currently, there are more than 80 platforms that offer MOOCs. Majority of the leading universities are introducing their own MOOCs through their expert teaching faculties and other technical and industry experts in all subjects or disciplines of study. In India, under the initiative of Ministry of Human Resource Development (MHRD), University Grant Commission (UGC), Consortium for Educational Communication (CEC), NPTEL, IGNOU, NCERT, NIOS, IIM and NITTR MOOCs platform named SWAYAM has been launched offering courses in all areas from 9th Standard to Post Graduate level. These course include diploma, degree, engineering and management courses. This program covers different subjects that may or may not be taught in the regular campus. Official MOOCs programmes in India are available through the single portal i.e., **SWAYAM** (Study Web of Active-Learning for Young Aspiring Minds) and it was declared in parliament in the budget speech in 2017. So SWAYAM is the Indian MOOCs learning platform.

Key words – Swayam, MOOCs, Education

Introduction

Massive Open Online Course (MOOCs) are the latest technological trend in education and have emerged as the most feasible model for imparting education, involving conventional and online education. MOOCs are online course aimed at unlimited participation and are openly accessible through web. In addition to traditional learning material such as filmed lectures, reading and problem sets MOOCs provide high definition e-tutorials, videos, references and web links .The courses on MOOCs are interactive with user forums to support community interactions among students, professors and teaching assistants. Learners have immediate feedback through quizzes and assignments. MOOCs were first introduced in the educational sphere in 2006 and emerged as a popular format in 2012. A Massive Open Online Course (MOOCs) is a global digital learning platform through a web based media which provides an access to online education with the best institutes or faculties of the world to unlimited number of students. SWAYAM is an integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education and can be called as the Indian MOOCs Platform.

In MOOCs there is no restriction on enrolment, these course are open for any one, anybody can

join for the course with freedom of pace, place and time. Content is delivered online through a web based media using some learning platforms. Course means subject or part of subject or Unit of Subject under study. In India MOOCs courses are being run through SWAYAM. SWAYAM initiated with the idea of Learning through Television with a wide vision of using satellite education for providing high quality education to all. It became a mission and was declared in parliament in the budget speech in 2017.

The main motive of MOOCs is 3'A's, that is Anytime, Anyone and Anywhere. In India MOOCs is running through SWAYAM. SWAYAM is the integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education and specially designed refresher courses for teachers. It can be called as the Indian MOOCs Platform. SWAYAM started with the idea of Learning through Television with a comprehensive vision of using satellite education for imparting high quality education to masses. It incorporates the Curriculum based course content covering different disciplines such as humanities, science, engineering and technology, yoga, law, medicine, agriculture, yoga and education.

We can say that SWAYAM is a great innovative step which has brought a revolution in the learning space of Indian classrooms and has changed the scenario of traditional Indian classrooms. This change is presently specially being realized in higher education. SWAYAM provides a wide range of courses in different areas and has changed the modality of transaction in classrooms. SWAYAM courses are the outcome of creative thoughts and ideas of the learned academicians, who transfers their thought into action by blending their cognition, reasoning and emotions in a creative manner. These courses delivered to a large audience in very effective form by high quality technical assistance.

India is considered to be a good educational hub among the various countries of world but still has a very poor enrolment in higher education in comparison to high profile countries of world like USA, UK or Australia. One important reason may be because of its population. SWAYAM courses can definitely help to overcome this issue by introduction of wide range of qualitative courses in different field .SWAYAM now offers Quality Education at fingertips and free of cost.

Swayam is an important initiative of Digital India scheme of our government. MHRD has designated higher learning institutions for production and delivery of online courses in specific sectors. They are known as National Coordinators. National coordinators in different sectors are as below

National Coordinators of SWAYAM

Sl. No.	National MOOCs Coordinator	Sectors
1	University Grants Commission (UGC)	Non Technology Post Graduate Degree Programmes
2	National Programme on Technology Enhanced Learning (NPTEL)	Technical/ Engineering UG/PG Degree Programmes

3	Consortium for Educational Communication (CEC)	Non Technology Under Graduate Degree Programmes
4	Indira Gandhi National Open University (IGNOU)	Diploma and Certificate Programmes
5	National Council of Educational Research and Training (NCERT)	School Education Programmes from Class 9 to 12
6	National Institute of Open Schooling (NIOS)	Out of School Children Educational Programmes from Class 9 to 12
7	Indian Institute of Management (IIM), Bangalore	Management Programmes
8	National Institute of Technical Teachers Training and Research (NITTR), Chennai	Teacher Training Programmes

The National Coordinators has the whole sole responsibility for the conversion of MOOCs, such that there is complete coverage of all the courses in a subject/programme. National Coordinator should ensure that each course in a subject should be awarded to a reputed faculty from an institution of importance. The faculty chosen to convert a course into MOOCs should follow curriculum prescribed by UGC or AICTE or other regulatory body and should cover all recent developments in that field. It should ensured that best of subject experts in the country are engaged in conducting SWAYAM Courses.

Swayam courses are available from high school to Post Graduate level. There are basically two different types of courses credit courses and non-credit courses. Credit Course means a course which is taught for at least one semester as a part of as subject/programme. Non-Credit Course include courses like awareness programme, continuing education programme or training of specific skill set as independent course, which are not part of any set curriculum. These courses can be of shorter duration. Four Quadrant pedagogical approach is used in SWAYAM as given below-

Quadrant-I is e-Tutorials

Quadrant-II is e-Content

Quadrant-III is the Discussion forum

Quadrant-IV is Assessment

The SWAYAM courses are notified on SWAYAM website on 1st June and 1st November every year. These are the list of the online learning courses going to be offered in the forthcoming Semester. Institutions can give freedom to their students to opt 20% of the courses for the

programme for which they have enrolled, through SWAYAM portal so as to entitle the privilege of credit transfer in Choice Based Credit System. All the Institutions which permit their student to opt for specific courses after taking permission through their competent authority should notify the students within 4 weeks from the date of notification by SWAYAM to enroll in the course. The online learning courses being offered through the SWAYAM should be offered keeping in view institutes academic requirements and the courses shall permit for credit transfer. While allowing the online learning courses offered by SWAYAM, it should be ensured that the physical facilities like laboratories, computer facilities, library etc. essential for pursuing the courses are provided free of cost and in adequate measure by the institution. The Institution has to give the equivalent credit weightage to the students for the credits earned through online learning courses through SWAYAM platform and this should be given in their official transcript. No university shall refuse any student for credit mobility for the courses earned through MOOCs.

One of the major initiative of SWAYAM is Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) launched by Ministry of Human Resource Development. It is a major and unique initiative of online professional development of 1.5 million higher education faculty using the MOOCs platform SWAYAM. For implementing ARPIT, discipline-specific National Resource Centres (NRCs) have been identified which are given the task to prepare online training material with focus on latest developments in the discipline, new & emerging trends, pedagogical improvements and methodologies for transacting curriculum.

Annual Refresher Programme for Teaching (ARPIT) is the first attempt in Indian higher education system to provide training to the entire faculty through a web based programme along with the conventional programmes in HRDC's. This is an innovative step to orient faculties with the latest developments in technology. National Resource Centre is a collaborative movement of IITs, IIMs, Central Universities, HRDC's and other Institutions of Eminence in India. The most salient feature of this programme is that, it provides admission to all faculties of any discipline and cadre. The special feature of ARPIT is that programmes like teacher training courses are available specially focusing on training modality. The main benefit for the higher education faculties through this course is that this course is equivalent with one Refresher Course which normally faculty has to undergo for their CAS promotions as notified by latest UGC Regulation .

The courses on Swayam portal are managed by faculties from high profile institutes like IIT, IIM & Central Universities with exposure in the real- time setting of classrooms. These courses are selected through different stages of technical and academic reviews, it has the facility of credit transfer and is compatible with choice based credit system (CBCS) where learners can choose best course from a basket of related courses. SWAYAM courses are available from class 9th to post graduation level, courses are totally free and only nominal fee for certification is there. Online examination centers are there across the country, courses are not restricted by your previous educational qualification and this platform offers a varied learning experience through specially focused e-tutorials

Conclusion

SWAYAM is an integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education in India. The Digital India Campaign SWAYAM is the latest innovation in Indian Education System and has taken a prominent position specially in higher education in a short span of time. It has definitely benefited and will continue to benefit masses of all age groups in coming years in our country.

References-

1. Arya U. (2017).The Rise of MOOCs (Massive Open Online Courses) and Other Similar Online Courses Variants –Analysis of Textual Incidences in Cyberspace. Journal of Content. Community & Communication. 6(3), 26-35.
2. Chauhan J.(2017). An Overview of MOOC in India. International Journal of Computer Trends and Technology. 49(2), 111-120.
3. Ministry of Human Resources and Development, Government of India. (2018). Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) through National Resource Centres. New Delhi. Retrieved from http://nmtt.gov.in/downloads/arpit.pdf
4. University Grants Commission. (2016). Credit Framework for Online Courses through SWAYAM. Regulation. New Delhi. Retrieved from https://www.aicte-india.org/downloads/Aicte%20and%20UGC%20Notification.pdf
5. Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education (TEL Division), Government of India. (2016). Guidelines for Development and Implementation of Massive Open Online Courses (MOOCs). New Delhi. Retrieved from https://www.ugc.ac.in/pdfnews/3559801_March,-2016.Guidelines-for-Development-and-Implementation-of-MOOCs-An-Initiative-under-NMEICT----By-AS-(TE)-As-On-11.03.2016-(Final)-(1).pdf

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

UTILITY OF E – ASSESSMENTIN PRESENT SCENARIO

Dr. Pragati Bhatnagar
Assistant Professor, Acharyakalu Kanya Mahavidhyalaya, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, pragatibhat@gmail.com

Dr. Manish Bhatnagar
Assistant Professor, Department of Education, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, bhatnagarmanish9@gmail.com

Abstract

In a learning process Student's performance is judged by assessment. Rapid growth ofInformationandCommunicationTechnologyhavepresented various possibilitiesfor the assessment of learner'slearningandproviding him instantfeedback. Now a days specially in the pandemic time digitaltechnologies are integrated both in teaching and learning process and are enhancing the teaching and learning engagement level of teacher and student. Digital technologies uses new and enriched e-assessment tools for evaluating learner's performance. Author discusses basics of assessmentpractices, modes of e-assessment, types of e-assessment and digital technological tools for the e-assessmentpractices.She also discusses the efficiency of e-learning tool in digital platform.

Key Words- E-Assessment-Modes, types, tools

Learners progress can be measured by means of assessment. Assessment helps us to identify,gather,organizeandinterpret information aboutlearners'learningprogress. It uses avarietyofstrategiesandtoolstoexamine evaluate and measuretheperformance of student.

E-Assessment

Use of digital technologies in assessment process is known as E-assessment. E-assessment providesimmediatefeedbackfordiagnostic,formative and summativeassessment. E-assessment is a very powerful tool which can be used at primary, secondary or in higher education. It is very useful tool for learners which helps in learning andretentionofmaterialand help learnersto enhance theirengagementwiththesubject content. E-assessment offers many advantages over traditional pen and paper exams.

Following forms of E-assessment are commonly used

- Onlineexams /tests, quizzes

- E-assignmentsubmission
- E-rubricsbasedassessment
- Self-andpeer-assessment
- Studentresponsesystems

Main features of E-assessment are as follows

- **Multiple responses**: This feature helps student to assessand re-assess their knowledge .Here learner can undertake online test many times for his re-assessment.
- **Instant Feedback: -**This feature enables learner to receive an immediate and focused feedback on their work.Thispersonalizedfeedbackhis very helpful for students in enhancingtheirknowledgeandperformanceregarding the subject content.
- **Rigid / flexible order:** The question can be transacted in a predetermined or randomorder.
- **Varietyofassessment:**E-assessment tool can beusedforall i.e., diagnostic,formativeandsummative assessment.
- **Guide:** These tools helps learners to reach out to further reading or resources if they faced difficultyin answering the question during the online examination or e-assessment. The learnerscan receive the sophisticate reporting and it allows the learners to refine the exerciseoridentifyareas in whichmoreinstruction is needed.
- **Enhancement:**It helps learner to enhance their learning engagement and digital literacy.
- **AnywhereandAnytime:**Thelearnerscanattemptoraccesstheonlinetestindifferentgeographical location and at differenttime
- **Diminishtheworkload:**E-Assessmentsystemscanreduce theworkloadofteachers/educatorsandadministrativestaff to a great extent bysystematizing and managing administrative proceduressuchascollectinganswerscriptsformarkingandqualityassurancereviews,and disseminatingpercentage/grades and feedback.
- **AutomatedMarkingSystem:**Assessmentrubricscanbecreatedtofacilitateautomatedmarkingsyste m andit provides consistency in evaluation work. It helps to generatereusablefeedback commentrepositories.

MODESOFE-ASSESSMENTACTIVITY

Technology plays a vital role in effective assessment of learning and offers teachers a variety of new tools that can be used in the classroom fortransactingtheideaor for evaluationpurpose.Technology enables educatorsassesstheirlearners' learning as well as their performance in the classroom. ICT in

assessment involvesthe use of digital devices and digital tools to assist in the creation, delivery, storage orreporting of learners assessment tasks, responses, grades or feedback. Someofthemodes oftechnologyintegratedassessmentactivitiesorstrategies are

Computer-Based Assessment (CBA): It implies to assessments delivered and markedby computer. The role ofcomputer is to publish the assessment result or evaluate theresult.

Computer-Assisted Assessment (CAA): It refer to practice that relies partially oncomputers .It may involve use of online discussion forums for peer-assessment as well as theself-assessment, audience response systems in group work, completion and submission ofwork digitally / electronically, or storage of work in an e-portfolio. It includes assessmentsdelivered on computer either online or offline, and also the assessments that are marked with the aid ofcomputers such as those using optical mark reading. It can be formative, summative or diagnosticassessment and is adaptive to meet a wide range of learning outcomes.

ComputerAdaptiveTesting(CAT): Oneofthemodernadvancementsinassessment is the design and use of computer-adaptive tests, which add a great deal ofeffectivenesstothetesting process.Basedonthelearners'responses,thesoftware willautomatically adjust the level of difficulty of the questions it poses Further,the technology enables to include items that test content from previous andsubsequent grades, which allows measurement of a very wide distribution of knowledge andskills that might exist in any given class or testinggroup.

TYPESOFE-ASSESSMENT

Depending on the purpose of assessment different types of E-Assessment are as follows

Diagnosticassessment: Diagnostic assessment isassessmentofastudent'sknowledgeandskillsatthe beginning of a course transaction. It focuses on the presentation skills, competencies or abilitiesoflearnersatstart pointoftime.Itisoftensaidthatdiagnosticassessmentlooksbackwards and formative assessment looks forward. E-diagnostic assessment can be usedprior to a teaching activity .It helps learners improve their self-monitoringskill to acquire more deepand effective learning.

Formative assessment: It is also known as assessment for learning and provides progressive feedback to learners about theircurrent understanding and skills of a course / subject.The main purpose of formative assessment is to monitor and provide ongoing feedback for learners to develop and improvetheir learning. Electronic formative assessment can be done with some digital tools such asmulti-disciplinarydiscussionboards, reflectiveblogging,etc. wherelearners canreceivecommentsfrom peersandeducators.

Summative Assessment: The assessment of a learner's achievement at end generallyleading to a formal qualification or certification of a skill is known as summative achievement. Summative assessmentis also known as assessment of learning. It is the evaluation of learner learning against a setcriteriaor standards.

Performance Assessment: Performance assessment requires learners to exhibit or

demonstratethattheyhavemasteredspecificskillsandcompetenciesbyperformingorcreatingor producingsomething.Usually thiskindof assessmentisusedfortheculturalcompetitionslike debate,drama, dance,song, and elocution and finearts events.

DIGITALASSESSMENT

Thereare a lot of digitalassessmentalternativesthat existforassessinglearners’performance .The Web 2.0 tools available today can serve as alternativeassessment tools for learner’s learning. They enhance learner’s learning engagement as they reflect share anddemonstrate what they have learned or they are learning. Some important digitalassessment alternativesare as below

OnlineAssessment:

The Process used to measure certain aspects of information for aset purpose where the assessment is delivered via a computer in online mode. Mostoftentheassessmentissometypeofeducationaltest.Therearemanyonlineserviceproviders some free andsome paid tools for designing anddeveloping online tests and quizzeslikeKahoot,plickers etc.

DigitalConceptMap:

It is teaching and learning approach used to visualize relations between concepts/contents and ideas using graphical representation . Itis a sort ofgraphic organizer that consists of various circles or boxes (callednodes) each ofwhich contain a concept and are all interlinked through linking phrases. The role of theselinking phrases is to ‘identify the relationship between adjacent concepts’. It is a digital tool that help educators to assess the student learning process with the use of mind map and concept map . Digital concept maps can be created by usingeither offline tools like VUE, Pencil, freemind,XMind,iMindMap,MindManagerorcanbecreatedusingonlinetoolslikemindmup.bubbl.us,coggle,or weismap.

Conceptmapscanbeused as formative assessment tool tomakestudentthinking visible. Here Students construct and submit their understanding of key concepts andtheir linkages through a concept map. So it becomes clear whether the students have understood theconceptual framework around a topic of study. Concept maps also provide immediate visualdata to faculty on student misconceptions and their level of understanding. Some important concept mapping tools are as follows.

Bubbl.us: It is very good tool for producing visually attractive concept maps. It is webapplication. Created maps can be savedasanimageformat.Ithas good sharingandcollaborative features.

Popplet: It is also a very good toolthat students can use to create, edit and shareconcept maps. It has many features like recording notes in different formats withtext, images and drawings; export final work as PDF or JPEG, supports severallanguages and manymore.

Creately: It offers plenty of pre-designed mind map templates, supports group work,andintegrated with thirdpartytoolsincludingChrome Storeand Google Apps.

Coggle: It is also a good online tool for creating, editing and sharing mind maps. It worksonlinein our browser.

OnlineForum:

Online Forum is an asynchronous communication tool. There are many standaloneforumlike bbPress, phpBB, Zetaboards or vanilla forums. IForum or discussion board is also an integrated part of Learning managementsystem.Learners could beasked to brainstorm on a topic by posting their ideas in a discussion forum. There can bequestion answer forumwhere every learner needstoposttheir answer inorder tosee theother learners' response to the question. Teacher can create many topic specific discussionforums and this could be used to evaluate learners' level of understanding and misconceptionsif any. Some of thepopular online tools for creating and organizing the onlineforum are

Zetaboards: This toolprovidesfree forum hosting that serves as an excellent sitefor growing an online community. This website has many features like custom profile,joinablegroup,automotivespamprevention, pinned topic andmore.

phpBB: It is a free and open source forum thatprovides bulletin board software. It can be used tostayincontactwithagroupofpeople.Itswide databaseofuser-createdmodificationsandstyles. It containshundredsofstyleandimage packages to customizeour board.

VanillaForum: Itgives hostedandopensourcecommunityforumsoftwarethat is used as discussion forums. It allows us to create a customized / personalizedcommunity that rewards positive participation, automatically curates content and letsmembersdrive moderation.

SurveyTools:

There are many important online surveytools like Google Forms, Typeform, Zoho Survey, Survey Planet, Survey Anyplace, SurveyMonkey, Poll Daddy or Lime Survey that automates and facilitates survey work. These tools can be used as an assessment tooland can be used to collect feedback from learners as well as subject of our sample. Some important survey tools are as below.

Typeform: It is online survey software which has a very user friendly interface .It isalsoavailable in a web based platformforcollectingand sharinginformation, in a conventionalhuman way.

Survey Monkey: One of the well-known and popular online survey software is Survey Monkey. It is used to create and run professional online surveys. It is perfect for one off surveys; however this makes it less suitable in terms ofmeasuring overall satisfaction or resurveying customers again after a certain period of time.

Google Forms: It is a free online survey and questionnaire web tool provided by googlethat allows users to quickly and easily put together surveys via a drag and drop interface.Teachers can organize online examination as well the quiz through this google forms.Google Forms can be private or public, and can be syncronisedwith Google Sheets to automaticallycollectresponses.

Wikis:

Awikiisawebsitethatallowsuserstocollaborativelywrite,editandcreatecontentmaterials. The most famous example of a wiki is Wikipedia which is a collaborativelycreated online encyclopedia. Wikis have provide environments for collaborative projects informaleducationandtraining.Thelearners'contributioninwikicanbeassessed by the teachers. Wiki serves as a tool for self and peer assessment. It can be used as an effectiveteachingandlearningtools for enhancing theteachingandlearningprocess. Some important wiki tools are

Wikispaces.com: Wikispacesisasocialwritingplatform and it also actsasaclassroom management tool by keeping teacher and learners organized on task. Itis specially designedfor the classroom purpose. This site provides many easyto use templates .It is free for use and also contains variety of assessment tools. Wikispaces can be used by teachers to createassignments andshare resources.

Wikidot.com: This website is free to users at the basic level options. Some of itsfeatures include easy to use website templates with unlimited pages, free web hostingand domain name, control over ads, and the chance to earn some money with ads,whichcan beused for thenext class trip.

Pbworks.com: It has over 300,000 education based workspaces and is wiki-like website which provides educators a range of options that encourage student-centered learning. Studentscanbuild web sitesorweb pagesthat can beshared with other studentsand staff.

Blogs:

Blogscontain information related to a specific subject or topic and areupdatedonaregularbasisbytheirauthor.Blogs serves as daily diariesabout people’s personal lives, political views, or even social commentaries .Blogs promotes the writing skill and creative skill among the learners. The teachers can assess the studentlearning process by the blog post of the learners.

Blooger.com: It is themost popular blogging platform ownedbyGoogle. It is a free blogging sites with a lot of features.

WordPress.com: Itisalsooneofthereliableandwidelyusedfreebloggingplatforms.It iswidely used and powerfulcontent system forbloggers.

LiveJournal.Com: It is available both in free and paid version. It has many important features likevideouploading,videouploading,privatemessagesendingandpublicmessageposting which areavailablein

thefreeversion ofthis site.

ElectronicPortfolio

Portfolios are considered as a learning and assessment tool which is "apurposefulcompilationandreflectionofone'swork,effortsandprogress". Portfolios are viewedas reflective tools to document students' academic progress .An e-portfolio is a collection of electronic evidence assembled and managed by a user, usually ontheWeb.Suchelectronicevidencemayincludeinputtedtext,electronicfiles,images,multimedia, blog entries, and hyperlinks. E-portfolios are both demonstrations of the user'sabilities and platforms for self-expression. In online mode e-portfolio can be maintaineddynamicallyovertime.

TYPESOFE-PORTFOLIO

DevelopmentalPortfolios: It demonstrates theadvancementanddevelopmentofstudent skills over a period of time. Developmental portfolios are considered works-in-progress and include both self-assessment and reflection/feedback elements. Theprimarypurposeisto providecommunication between studentsandfaculty.

Assessment Portfolios: It is used for demonstrating student competence and skill for well-definedareas. These may be end-of-course or program assessments basically used for evaluatingstudentperformance.Theprimarypurposeistoevaluatestudentcompetencyas definedbyprogram standards and outcomes.

Showcase Portfolios: Used for demonstrating exemplary work and student skills. Shocase portfolio are used to highlight the quality of student work at the end of program Students typically use this portfolio to show them to their potential employers to achieve employment attheend ofadegreeprogram.

There are many online and offline portfolio tools. A simple portfolio can be createdusing presentation software like power point. Some of the important portfolio systems are as below

- AsymetrixToolbook(http://www.asymetrix.com/products/
- SuperLink(http://www.alchemediainc.com/
- MacromediaDirector(http://www.macromedia.com/software/director/
- AdobePageMill(http://www.adobe.com/products/pagemill/main.htmlFileMaker/
- DreamWeaverhttp://www.macromedia.com/software/dreamweaver/
- NetscapeComposer(http://home.netscape.com/communicator/composer/v4.0/Adobe
- Acrobatportabledocumentformat(PDF)files(http://www.adobe.com/products/

DigitalRubrics

A rubric is a scoring guide used to evaluate quality of student's constructed responses.In simple word it is a set of criteria for grading students assignment.Rubrics contain evaluation criteria, quality definition for those evaluation criteria at specificlevel of achievement and a scoring pattern or strategy. Rubrics are usually in tabular format and can be used by teachers while evaluation and by students when planning their work.Rubrics can be used for a variety of assignments: research papers, group projects, portfoliosandpresentations.Some ofthee-rubricswebtool anditsfeatures are

R-Campus: R-Campus is a comprehensive Education Management System and acollaborative learning environment which has a digital rubric feature known asiRubric

EasyTagger isanotherdigitalrubriccreationtoolavailableonlineandcanbeaccessedfrom https://www.essaytagger.com/commoncore

RubiStar–It allowsto customize one of many template rubrics. Rubrics can used as it is, or modifythetemplatestobetterserveyourparticularstudents'needs.Youcanchoosefromsixskillcategories:Multimedia,Products,Experiments,OralProjects,ResearchandWriting, andWork.

MOBILEAPPSFORASSESSMENT

Now a daysthegrowingnumberofmobile devices (e.g. smartphones and tablets) and modern Internettechnologies like JavaScript, HTML5 provide new possibilities for mobilebased learning and assessment. There are a variety of mobile assessment tools that can beused to engage students and provide enhanced feedback before, during, and after a dailylessonorsemester-longunit.Some popular mobileappsforassessment are

Socrative: It is mobile app which engages thewhole classroom with educationalexercises andgames while capturingstudentresults inreal-time. The data provided can used by teachers to judge student's understanding and review the reports topreparefor futureclasses.

Plickersisa powerfully simple toolthat letsteachers collectreal-time formativeassessmentdata without theneed for student devices.

NearPod: Using this platform teachers can manage content on students'devices. It combines presentation, collaboration, and real-time assessment tools intooneintegrated solution.

ADVANTAGESOFE-ASSESSMENT

Ane-assessmentsystem has a lot of advantages:

Paperless: Assessment canbe done electronically withoutpapers which results in saving papers and ultimately saving trees.

TimeSaving: Completelyautomatedsystemofe-examinationande-assessmentsystem definitely saves time.

SavesMoney: Studentsdon'thavetotraveltoa specific location to take exam and expenses of conduction of exam are also reduced.Even for students from remote areascan take e exam online and result of theexaminations arealso shared online.

Assessing: The students can assess the metacognition skill through the e-assessment.Throughthe e-assessment,the educatorscanassessthe creativity skill,reflectiveskillsand communication skills of thelearners.

Multiple responses: It provides an opportunity to the students to attempt an answermorethan onetime.

Immediate Feedback: Important aspect is immediate feedback Thelearnersget theteachersfeedbackand peergroupfeedback.

DISADVANTAGEOFE-ASSESSMENT

Reliability: The most important or questionable aspect is reliability of digital tools and assessing instruments .

Plagiarism:Plagiarismisthemainissue in theonlinebasedassignmentsubmission. Students can cut and copy matter from anywhere to complete theirassignment.Therefore,authenticinformation is a big question mark?

TechnicalSkills: Many teachersandstudents are nota technically equipped for carrying out e-assessmentpractices.

Conclusion

Digital technologies have revolutionized teaching and learning process especially in this period of pandemic. Many tools have evolved in the area of e-assessment also. These tools have definitely been very useful for teachers and learners and are helping them to enhance their teaching and learning engagement with time.

References:

- Bauman, Z. (2003). Education's challenge in the liquid modern era'. In Bron, A., &Schemmann, Black, P., &Wiliam, D. (1998). Assessment and classroom learning. Assessment in Education: Principles, Policy & Practice, 5(1), 7–74.
- Eljinini, M. and Alsamarai, S. (2012), "The impact of e-assessments system on the success of the implementation process", Mod. Educ. Comput. Sci., Vol. 4 No. 11, pp. 76-84.
- Kundu, A. and Dey, K.N. (2018), "A contemporary study on the flourishing E-learning scenarios in India", International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), Vol. 6 No. 2, pp. 384-390, ISSN: 2320-2882
- Stevens, D. D. & Levi, A. J. (2005). Introduction to Rubrics. Sterling, VA: Stylus Press

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

WEBLINKS:

- http://www.ijiet.org/vol8/1008-JR261.pdf
- http://www.scitepress.org/Papers/2018/67884/67884.pdf
- https://core.ac.uk/download/pdf/55537806.pdf
- https://www.slant.co/topics/4873/~offline-mind-mapping-apps-for-windows
- https://blog.capterra.com/best-free-survey-tools-power-your-research/
- https://elearningindustry.com/how-to-use-wiki-in-the-classroom
- https://educationaltechnology.net/wikis-in-education/
- http://www.ibe.unesco.org/en/glossary-curriculum-terminology/e/e-assessmentict-based-assessment.

SHODHASAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

'वैश्विक आतंकवाद की चुनौतियां'

डॉ. बलबीर सिंह

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय),

लाडनूं, नागौर (राजस्थान), balbeerscharan29@gmail.com

'सारांश'

आतंकवाद की एक परिभाषा नहीं है जो सार्वभौमिक रूप से सहमत है। सामान्य शब्दों में, किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए धमकियों या हिंसा के उपयोग को आतंकवाद कहा जाता है। आतंकवाद का गठन करने वाली कानूनी परिभाषाएँ देश से अलग–अलग होती हैं। पिछली सदी में, दुनिया भर आतंकवाद के मुद्दों में वृद्धि हुई है इस वैश्विक समस्या ने न केवल राष्ट्रों की राजनीति के संबंधों को बाधित किया है अपितु अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति, सृजनशीलता आदि को भी प्रभावित किया है। वैश्विक आतंकवाद सभी राष्ट्रों के समक्ष एक के उसे नासूर की भांति है जो वृद्धि तो करता जा रहा है लेकिन उसके रोकथाम के कोई कारगर उपाय सामने नहीं आए हैं। आज भी आतंकवादी घटनाओं के चलते ही राष्ट्रों के मध्य आपसी अविश्वास एवं सहयोग की भावना कम हुई है और राष्ट्र आतंकवाद के भय से सही को सही और गलत को गलत कहने में संकुचित हो रहे हैं। धर्मांधता एवं सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा देने में आतंकवादी संगठन प्रयासरत रहते हैं जिसके कारण सामाजिक समरसता की प्रवृत्ति भी बाधित होती है तथा व्यापार, सृजनशीलता, सह–अस्तित्व, पारस्परिक सौहार्द और शांति के वातावरण को इस वैश्विक समस्या ने काफी प्रभावित किया है। इसका कारगर उपाय खोजना न केवल अंतरराष्ट्रीय संगठनों एवं संस्थाओं का दायित्व है, बल्कि प्रत्येक राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता का पालन करते हुए इस समस्या के हल हेतु अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करें।

मुख्य शब्द– राष्ट्रीय हित, कूटनीति, प्रभुत्व की राजनीति, शक्ति–संघर्ष, राष्ट्रीय–शक्ति, हिंसात्मक–कार्यवाही, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, शस्त्रीकरण, पंच–निर्णय, विश्व–प्रभुत्व, वैश्विक अनैतिकता, सामूहिक सुरक्षा, अमानवीय कृत्य, राजनीतिक अर्थव्यवस्था, सह–अस्तित्व, द्विपक्षीय विवाद, सांप्रदायिक–सौहार्द, अंतरराष्ट्रीय कानून, विश्वबंधुत्व।

अध्ययन का उद्देश्य –

- आतंकवाद की अवधारणा को स्पष्ट करना।
- आतंकवाद एक वैश्विक समस्या है, इस पक्ष को उजागर करना।

- आतंकवाद के उत्तरदाई कारकों का विश्लेषण करना।
- आतंकवाद के प्रभाव पर प्रकाश डालना।
- आतंकवाद किसी भी सूरत में उचित नहीं है इसकी विवेचना करना।
- वर्तमान में उभरती आतंकवादी घटनाओं को प्रकाश में लाना।
- इन घटनाओं के लिए उत्तरदाई कारणों की विवेचना करना।
- आतंकवाद के प्रति उत्पन्न पूर्वाग्रहों को लोगों के ध्यान में लाना।
- आतंकवाद की रोकथाम के कारगर उपायों पर बल देना।
- आतंकवाद के बढ़ते खतरों को चिन्हित करना।
- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आतंकवाद की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना।

अध्ययन पद्धति–

वर्तमान समय में आतंकवाद की चुनौती एवं उसके वैश्विक स्वरूप विषय पर अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए तुलनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है। इसके अंतर्गत विषय से संबंधित विचारकों के चिंतन एवं दर्शन का तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक विधि से तलरूस्पर्शी अध्ययन किया गया है। इस वैश्विक समस्या के स्वरूप को स्पष्ट करने के साथ–साथ उभरती नूतन प्रवृत्तियों के बारे में विश्लेषण करने की प्रक्रिया में उपलब्ध तथ्यों का संग्रहण करके उनका अवलोकन करने का एक बौद्धिक प्रयास है।

प्रस्तावना–

अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद एक ऐसा शब्द है जिसका स्वरूप नकारात्मक है, लेकिन इसने राष्ट्रों के आपसी संबंधों, सामाजिक वातावरण और व्यक्ति की सोच को प्रभावित किया है। आज भी संपूर्ण विश्व इस भयानक विभित्शिका से प्रभावित है। इसके स्वरूप अलग अलग है राष्ट्रीय आतंकवाद और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद लेकिन दोनों ने ही मानवता को कुंठित किया है, प्रभावित किया है और आपसी प्रेम सौहार्द सह–अस्तित्व, भाईचारा आदि को प्रभावित कर वैमनस्य, घृणा, भय, अराजकता व अविश्वास के वातावरण को जन्म दिया है। इस अवधारणा ने राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति, मानवीय–मूल्य, नैतिकता आदि के अच्छे वातावरण को भी बाधित किया है। आतंकवाद न केवल एक राष्ट्र की समस्या है, और एक समाज की

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

समस्या है अपितु यह वर्तमान समय में वैश्विक समस्या बन गई है जिसने प्रत्येक राष्ट्र को प्रभावित किया है। आज यह एक भयानक चुनौती के रूप में है जिसका निराकरण करना न केवल आवश्यक है बल्कि मानवीयता एवं मानव जगत को बचाए रखने के लिए अति अपरिहार्य है। इस वैश्विक समस्या के बढ़ते प्रभाव को कम करना क्यों आवश्यक है ?और इसे चुनौती का निपटारा किन सकारात्मक प्रयासों से किया जा सकता है इस विषय पर विवेचन एवं विश्लेषण करना आवश्यक है। इस शोध पत्र को आधार मानते हुए इस वैश्विक चुनौती के खतरों को इंगित करते हुए इसके विश्वसनीय निदान के उपाय पर बल देने का बौद्धिक प्रयास है।

वैश्विक आतंकवाद से अभिप्राय :

आतंकवाद सामान्य लोगों के बीच आतंक बनाने के लिए लोगों के समूह द्वारा अवैध, हिंसक एवं बाध्यकारी साधन अपनाए जाते हैं। इसका प्रभाव एवं जड़े पूरी दुनिया में फैली हुई है और यह एक बहुत ही बड़ी वैश्विक समस्या बन गई है। वैश्विक आतंकवाद में कुछ राष्ट्रो द्वारा अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उसे हिंसा एवं अनैतिक तरीकों को अपनाकर घटनाओं को अंजाम दिया जाता है। इसमें मुख्य रूप से मानव बम का प्रयोग, राजनेताओं का अपहरण, राष्ट्र के सर्वोच्च नेतृत्व को अपने हित के अनुरूप व्यवहार करवाने हेतु बाध्य करने के लिए हिंसक हमले करवाना। कुछ विचारको नें आतंकवाद की परिभाषाएं भी दी है।

- जी. श्वार्जनबर्गर के अनुसार ''एक आतंकवादी को उसके तात्कालिक लक्ष्य के संदर्भ में सर्वश्रेष्ठ तरीके से परिभाषित किया जा सकता है। यह लक्ष्य है भय पैदा करने के उद्देश्य से शक्ति का प्रयोग करना और इस प्रकार अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना।''

- ब्रियां एम. जेन्किस के अनुसार ''हिंसा की धमकी, व्यक्तिगत हिंसात्मक कृत्य और लोगों को आतंकित करने के उद्देश्य से हिंसा का विचार आतंकवाद है।''

- पाल विलकिंसन ने वैश्विक आतंकवाद को परिभाषित करते हुए बतलाया कि आतंकवाद के तीन मूल तत्व होते हैं, प्रथम—आतंकवाद को व्यवस्थित शस्त्र के रूप में प्रयोग करने का निर्णय। द्वितीय—सामान्य से अधिक हिंसा की धमकी या हिंसक कृत्य। तृतीय—तात्कालिक शिकार और व्यापक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय जनमत पर इस हिंसा का प्रभाव।

- प्रो. कारपेत्स ने वैश्विक आतंकवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''आतंकवाद हत्या, हिंसा प्रयोग, फिरौती या अन्य मांगों के लिए मनुष्य को बंधक बनाने और स्वतंत्रता का बलात् अपहरण करने के लिए विशेष संगठन या गुट बनाने की ओर लक्षित अंतरराष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय रूप से अभिप्रेरित घटनाओं को एवं गतिविधियों को अंजाम देना है। आतंकवाद का मतलब इमारतों का विनाश, लूटमार और हत्या करना है।''

अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की अधिक स्पष्ट परिभाषा यह हो सकती है कि अंतरराष्ट्रीय कानून के एक पात्र (राष्ट्र) द्वारा दूसरे पात्र (राष्ट्र) के विरुद्ध निष्पादित आतंकवादी कृत्य। अंतरराष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने वाली आतंकवादी घटनाओं को अंतरराष्ट्रीय कानून के एवं अंतर्राष्ट्रीय चिंतन के क्षेत्र में निम्न बिंदुओं के आधार पर विचारणीय माना जा सकता है–

- अंतरराष्ट्रीय कानून के पात्रों द्वारा निष्पादित होने के कारण।
- अंतरराष्ट्रीय संबंधों में उत्पन्न खतरे के कारण।
- अंतरराष्ट्रीय स्वार्थ निहित होने के कारण।
- किसी विशेष आतंकवादी कृत्य से सामाजिक खतरे, मानवीयता के खतरे एवं विशव अशांति बढ़ाए जाने के कारण।

वैश्विक आतंकवाद के उद्भव के आधार :

विश्व जगत में आतंकवाद के उपजे वातावरण के लिए बहु–आयामी विषमता, आर्थिक असंतुलन, सामाजिक असंतोष, बेरोजगारी, क्षेत्रीय समानताएं, आकांक्षाओं की अनापूर्ति, जातीय एवं सांप्रदायिक वर्चस्ववादिता, अवैज्ञानिकता, क्षेत्रीय एवं धार्मिक कट्टरता, तकनीकी एवं कौशल का नकारात्मक प्रयोग, सैनिक तानाशाही, उग्रवाद एवं फासीवाद के प्रभाव में वृद्धि जैसे कारक आतंकवाद को बढ़ावा देने में प्रमुख आधार माने जा सकते हैं। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आतंकवाद की सबसे बड़ी चुनौती आतंकवादी संगठनों के पास अत्याधुनिक हथियारों का होना है। उनके पास नाभिकीय हथियार, रासायनिक हथियार और जैविक हथियार के काफी जखीरे उपलब्ध हैं। वर्तमान में राष्ट्रों द्वारा महामारी के जीवन एवं विषाणु प्रयोगशाला में तैयार करके उनका उपयोग राष्ट्रों में आतंक हिंसा एवं भय का माहौल पैदा आर्थिक स्थिति को प्रभावित करना एवं जनमानस को नुकसान पहुंचाना भी मुख्य साधन रहा है। आतंकवाद की चुनौती ने केवल एक राष्ट्र की बल्कि दुनिया के संपूर्ण राष्ट्रों की चुनौती है।

आतंकवाद के दुष्परिणाम –

- भय स्थिरता एवं अराजकता के वातावरण में वृद्धि।
- राष्ट्रों के आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग की भावना पर नकारात्मक प्रभाव।
- जनमानस में भय असंतोष एवं अस्थिरता की परिस्थितियों का जन्म।
- राष्ट्रों के मध्य आपसी विवादों में अभिवृद्धि।

- शिक्षा तकनीकी विकास और राष्ट्रों के विकास जैसे आयामों में गिरावट
- विश्वशांति को बाधित करना।
- अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की कार्यशैली पर नकारात्मक प्रभाव।
- कट्टरतावाद, सांप्रदायिकतावाद और क्षेत्रवाद जैसी बुराइयों में अभिवृद्धि।

आतंकवाद के रूप –

आतंकवाद की अभिव्यक्ति कई रूपों में दिखलाई देती है आतंकवाद का पहला रूप है मानव बम– मानव बम एक ऐसा हथियार है जिसके अंतर्गत कोई भी मनुष्य अपनी इच्छा से अपनी जीवन लीला समाप्त करने को तैयार हो जाता है और किसी भी विस्फोटक हथियार अथवा आर. डी.एक्स. की कुछ मात्रा बेल्ट में भरकर अपने कमर में बांध लेता है और उसके साथ जुड़ी हुई बैटरी के मात्र छोटे से बटन को दबाकर विस्फोट को अंजाम दे देता है। विभिन्न आतंकवादी संगठन इस आतंकवाद के रूप को अपनाकर किसी स्थान विशेष या किसी व्यक्ति विशेष को निशाना बना कर अपने लक्ष्य को अनैतिक तरीके से प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। भारतीय पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या करने के लिए इसी प्रकार के अनैतिक के प्रयास को अंजाम दिया गया था। आतंकवाद का दूसरा रूप है–वित्तपोषित आतंकवाद। आतंकवाद के इस स्वरूप के अंतर्गत किसी भी समाज अथवा समुदाय को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनकी मनोवृत्ति परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है और उन्हें आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देने के लिए तैयार किया जाता है।आतंकवाद का तीसरा रूप है –राज्य प्रायोजित आतंकवाद। इसके अंतर्गत कुछ राष्ट्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विश्व में बढ़ती आतंकवादी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों को शह एवं प्रश्रय प्रदान करते हैं

आतंकवादी संगठन आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की क्षतिपूर्ति के लिए गैर–सैनिक अर्थात् नागरिकों की सुरक्षा को भी निशाना बनाते हैं। गैर–राज्य कारकों द्वारा किए गए राजनीतिक वैचारिक या धार्मिक हिंसा को भी आतंकवाद की श्रेणी का ही समझा जाता है। अब इसके तहत गैर कानूनी हिंसा एवं युद्ध को भी शामिल कर लिया गया है।

आतंकवाद शब्द की उत्पत्ति आतंक शब्द से है। आतंकवाद ऐसे कार्यों को कहते हैं, जिसे किसी प्रकार का आतंक फैलाने के उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रकार के कार्यों को जो करते हैं उन्हें आतंकवादी कहा जाता है।

आज आतंकवाद एक ऐसी वैश्विक समस्या का रूप धारण कर चुका है, जिसकी आग में सारा विश्व जल रहा है। आज कोई भी देश यह दावा नहीं कर सकता कि उसकी सुरक्षा व्यवस्था में कोई कमी नहीं है और वह आतंकवाद से पूरी तरह मुक्त है। सच तो यह है कि आज यह कोई नहीं जानता कि आतंकवाद का

अगला निशाना कौन एवं किस रूप में होगा। हिंसा के द्वारा जनमानस में भय या 'आतंकवाद पैदा कर उद्देश्यों को पूरा करना ही आतंकवाद है। वैसे तो आतंकवाद कई प्रकार के हैं, परन्तु इनमें से तीन ऐसे हैं जिनसे पूरी दुनिया त्रस्त है राजनीतिक, सामाजिक या गैर राजनीतिक एवं धार्मिक कट्टरता से संबंधित आतंकवाद। श्रीलंका में लिट्टे समर्थकों एवं अफगानिस्तान में तालिबान संगठनों की गतिविधियाँ राजनीतिक आतंकवाद के उदाहरण हैं।

जम्मू कश्मीर में अलगाववादी गुटों द्वारा किए गए अपराधिक कृत्य भी राजनीतिक आतंकवाद के ही उदाहरण है। अल–कायदा, लश्कर–ए–तैयबा, जैश–ए–मोहम्मद जैसे संगठन धार्मिक कट्टरता की भावना से आपराधिक कृत्यों को अंजाम देते हैं। ऐसे आतंकवाद को धार्मिक कट्टरता की श्रेणी में रखा जाता है। अपनी सामाजिक स्थिति या अन्य कारणों से उत्पन्न सामाजिक क्रांतिकारी विद्रोह को गैर राजनीतिक श्रेणी में रखा जाता है। भारत में नक्सलवाद गैर–राजनीतिक आतंकवाद का उदाहरण हैं।

आतंकवादी हमेशा आतंक फैलाने के नए–नए तरीके आजमाते रहते हैं। भीड़ भरे स्थानों, रेल बसों इत्यादि में बम विस्फोट करना, रेलवे दुर्घटना करवाने के लिए रलवे लाइनों की पटरियाँ उखाड़ देना, वायुयानों का अपहरण कर लेना निर्दोष लोगों या राजनीतिज्ञों को बंदी बना लेना, बैंक डकैती करना आदि कुछ ऐसी आतंकवादी गतिविधियाँ हैं जिनमें पूरा विश्व पिछले कुछ दशकों से त्रस्त हैं। आज लगभग पूरा विश्व आतंकवाद की चपेट में हैं एवं किसी न किसी तरह से पीड़ित हैं।

पिछले एक दशक में पूरे विश्व में आतंकवादी घटनाओं में बढ़ोत्तरी हुई है। 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका के न्यूयॉर्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेंटर एवं 26 नवम्बर 2008 को मुंबई में हुआ आतंकी हमला आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव को दर्शाता है। हाल ही में अफगानिस्तान में आतंकवादी संगठन तालिबान द्वारा अनैतिक एवं अमानवीय तरीकों को अपनाकर शासन सत्ता हथियाने का प्रयास किया और हिंसात्मक कार्रवाई को अंजाम देकर जबरन मारकाट की नीति का सहारा लेकर शासन सत्ता अपने हाथ में ले ली वैसे तो आज लगभग पूरा विश्व ही आतंकवाद की चपेट में हैं किन्तु भारत दुनियाभर में आतंकवाद से सर्वाधिक त्रस्त पड़ोसी देश पाकिस्तान से है।

आतंकवाद वैश्विक समस्या के रूप में :

आज आतंकवाद केवल भारत की समस्या नहीं वरन् यह विश्व पटल पर एक गम्भीर समस्या के रूप में देखा जा रहा है। विश्व का आज तक का सबसे बड़ा आतंकवादी हमला अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर का माना जाता है। 11 सितम्बर, 2001 में, विश्व के सबसे शक्तिशाली देश के सबसे ऊँची इमारत पर ओसामा बिन लादेन ने आतंकवादी हमला करवाया था, जिसके चलते लाखों का नुकसान हुआ एवं हजारों–लाखों लोग मलबे के नीचे दब कर मर गए थे। अमेरिका ने अपने सबसे बड़े दुश्मन को बड़े फिल्मी तरीके से मारा था। ओसामा बिन लादेन को मारने के लिए अमेरिका ने एक ऑपरेशन चलाया जिसके तहत वह पाकिस्तान

में घुसकर उस मार गिराया गया था। अतः आतंकवाद अपने सबसे क्रूरतम रूप में विश्व को हानि पहुँचा रहा है, इसकी समस्या का निदान तभी हो सकता है, जब सभी राष्ट्र मिलकर इसे पूरी तरह कुचल देने का संकल्प लें, और इसके लिए सही दिशा में कार्य करें।आतंकवाद का मुख्य उद्देश्य सामाजिक एवं राजनैतिक तंत्र को आहत किया है। आतंकवाद का प्रभाव सबसे अधिक आम जनता को होता है। आतंकवादी समूह देश की सरकार को बनाने के लिए ये सब करते हैं, लेकिन जिस पर वे ये जुल्म लगाते हैं वे उन्हीं के भाई बहन होते हैं, मासूम होते हैं, जिनका सरकार, आतंकवाद से कोई लेना देना नहीं होता है, एक बार ऐसा कुछ देखने के बाद इन्सान के मन में जीवनभर के लिए डर पैदा हो जाता है, वे घर से निकलने तक में हिचकता है, माँ को डर रहता है, कि उसका बच्चा घर वापस आएगा कि नहीं।

आतंकवाद से लोगों में भय व्याप्त हो जाता है। वे अपने राज्य, देश में स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं। आतंकवाद के सामने कई बार सरकार भी कमजोर दिखाई देती है, जिससे लोगों का सरकार पर से भरोसा उठता जा रहा है। आतंकवाद को मुद्दा बनाकर किसी भी सरकार को गिराया जा सकता है। आतंकवाद के चलते लाखों की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, हजारों, लाखों मासूमों की जान चली जाती है। जीव–जंतु मार जाते हैं। मानव जाति एक दूसरे पर भरोसा करने में डरते हैं। एक आंतकवदी गतिविधि देखने के बाद दूसरा आतंकवादी भी पैदा होने लगता है। इस प्रकार आतंकवाद देश, समाज के लिए अत्यंत घातक घटक के रूप में माना जा सकता है। आतंकवाद एक प्रमुख वैश्विक चुनौती है, जिसका प्रभाव संघर्षरत क्षेत्रों से लेकर दूरदराज के शहरों की गलियों तक नजर आता है। आतंकवाद की पुरानी संरचनाएं बनी हुई है, जिससे वे राष्ट्र जो नैतिक तरीकों से अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, वे आज एक राज्यनीति एवं अपने राज्य के हित को पूरा करने के लिए इसे एक साधन के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। वर्तमान में आतंकवाद के कई रूप सामने रहे हैं, वैश्विक आतंकवाद, फ्रेंचाइजी आतंकवाद, ग्रह जनित आतंकवाद तथा भर्ती एवं प्रचार–प्रसार करके साइबर क्राइम को बढ़ावा देना भी वर्तमान समय में आतंकवाद का एक रूप है। आतंकवाद को रोकने के लिए कारगर उपायों की आवश्यकता है।

- ’आतंकवाद को बढ़ावा देने वाले राष्ट्रों के साथ व्यापारिक एवं आर्थिक सहयोग कम कर देना चाहिए।
- उन राष्ट्रोंको अलग–थलग कर देना चाहिए जो आतंकवाद का समर्थन करते हैं, आतंकवादी घटनाओं को प्रायोजित करते हैं और मानवीयता के मूल्यों को आंच पहुंचाते हैं।
- अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की चुनौती से निपटने के लिए हमें अंतरराष्ट्रीय कानूनों की रूपरेखा को भी पुनर्गठित करने की आवश्यकता है।
- अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद को हमारी प्राचीन धारणाएं, प्राचीन संस्कृति आदि को पुनर्जीवित करके भी समाप्त किया जा सकता है।

- आतंकवादियों को नवीनतम हथियारों की आपूर्ति रोकने, आतंकियों की आवाजाही में व्यवधान उत्पन्न करने और उनको वित्तीय सहायता रोकने के कारगर उपाय ढूंढने चाहिए।

- साइबर आतंकवाद को रोकने के लिए हमें सामूहिक प्रयासों द्वारा इंटरनेट सोशल मीडिया आदि को सुरक्षित करने का भी प्रयास करना चाहिए।

- हमें अलगाववाद व हिंसात्मक के विरुद्ध होकर सामाजिक एकजुटता, सांप्रदायिक सौहार्द और विश्वकल्याण की भावना पर बल देना चाहिए। आतंकवाद और धर्म के बीच जो कट्टरता की भावना है उसे समाप्त करने के लिए आपसी सौहार्द और एकजुटता की आवश्यकता पर जोर देना चाहिए।

निष्कर्ष–

आतंकवाद की समस्या ने न केवल विश्व शांति को बाधित किया है, अपितु राष्ट्रों के मध्य सह–अस्तित्व, पारस्परिक सौहार्द, आपसी विश्वास एवं आर्थिक के सहयोग के मार्ग को भी अवरुद्ध किया है। वैश्विक आतंकवाद का मूल कारण कुछ राष्ट्रों द्वारा अपने राष्ट्रीय हितों को शांतिपूर्ण तरीकों से पूरा न कर पाने के कारण अनैतिक एवं अमानवीय हिंसात्मक तरीकों को अपनाकर राष्ट्रीय हित पूरा करने का एक अनैतिक तरीका अपनाना है। इस समस्या ने न केवल राष्ट्रों के मध्य दूरियां एवं अविश्वास को बढ़ावा दिया है अपितु कई अनेक नई समस्याओं को भी जन्म दिया है, जिसके कारण राष्ट्रों के आपसी संबंधों के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय संगठन एवं संस्थाओं की कार्य पद्धति एवं उनकी प्रभावशीलता को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। इस समस्या के विश्वसनीय निदान हेतु राष्ट्रों के मध्य एकजुटता, एकरूपता एवं सामूहिक सुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया जाए और राष्ट्र अपने निहित स्वार्थों को गौण मानकर विश्व में शांति एवं मानवता की रक्षा जैसे आयामों को महत्वपूर्ण माने और इस दिशा में कारगर प्रयास करें तो वर्तमान मानव जगत को इससे विभीषिका से ऊपर आ जा सकता है। इस समस्या के समाधान से राष्ट्रों के मध्य आपसी सौहार्द, विश्वास, प्रेम एवं सहयोग की भावना को बढ़ावा मिलेगा। राष्ट्र द्विपक्षीय विवादों एवं अपने राष्ट्रीय हितों को कुछ सीमा तक गौण मानकर इस समस्या के निदान हेतु अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. फैरिक, डेविड, अन्तर्राष्ट्रीय कानून में आतंकवाद : आतंकवाद की परिभाषा व उसके निरोध पर अनुचिन्तन, ब्रूसेल्स विश्वविद्यालय के संस्करण, 1974।
2. कार्लटन, डेविट और शार्फ कारलो, अन्तर्राष्ट्रीय और विश्व सुरक्षा, क्रोम हेल्म, लन्दन, 1975।
3. फडिया, बी.एल., अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. फडिया, कुलदीप, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, साहित्य पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. जैन, बी.एम., अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

FORENSIC ACCOUNTING: IN THE CONTEXT OF INDIAN ECONOMY

Ankita Sharma
Research Scholar
Maharshi Dayanand Saraswati University
Ajmer, Rajasthan, India

Abhishek Sharma
Assistant Professor
Jain Vishva Bharati Institute
Ladnun, Rajasthan, India.

Abstract: Forensic accounting is a new branch of the accounting profession in India. It is even doubtful that there is a lack of critical awareness of forensic accounting among practitioners, and academicians in India. The scandal of the last few years arose a shock not only because of the enormity of failure, but because of the discovery that questionable accounting practice was for more insidious and widespread than previously envisioned. It's right time to use forensic accounting as a weapon to detect and control fraud in corporate sectors like companies, banking etc.

Keywords: Fraud, Intrigue, Embezzlement, Culprits of extortion.

Article History
*Received: 08/02/2021; Accepted: 15/02/2021
Corresponding author: Abhishek Sharma

Introduction:

In the initial era of the ordinal century, the news has been crammed with reports on frauds and indicators that it's increasing in its scope and prices to the globe economy. In times fraud is not solely rampant however conjointly exponentially giant in magnitude. This is often as a result of perpetrators of fraud area unit associate degree intellectual heap and has the flexibility to camouflage their wrongdoings. Consequently, whenever any necessary call is to be taken, be it budgeting, monetary money flows or perhaps high-level company selections like takeover or mergers, project appraisals or any monetary major commitment, the specter of fraud, deception and overall risk looms high. to beat from such risk rhetorical accounting comes into image. The term rhetorical accounting refers to the nice read of fraud investigation. It includes preventing frauds and analyzing antifraud controls. Rhetorical accounting would go together with the audit of accounting records in hunt for proof of fraud; a fraud audit. A fraud investigation to prove or confute a fraud would be a neighborhood of rhetorical accounting. It conjointly includes the gathering of business enterprise info, like interviews of all connected parties to a

fraud, once applicable. rhetorical accounting includes writing a report back to management or court. Serving as associate degree witness and proceeding support area unit a neighborhood of rhetorical accounting. in line with the Webster's wordbook, the word "forensic" is outlined as "pertaining to, connected with, or used within the courts of law or ventilation and dialogue." Thus, the character of rhetorical accounting work is one that is closely connected to the legal method and has the potential to be concerned in proceedings at intervals the civil and criminal courts. Within the case of the criminal courts, rhetorical accounting is effective at intervals the fight against white-collar crimes like fraud, corruption and different extralegal activities. Forensic Accounting is that the investigation of associate degree allegation whose proof is expected to be given at intervals the judicial forum. Rhetorical Accounting is completely different from previous debit or credit accounting. It provides a scientific accounting analysis that facilitates in resolution the dispute that arises within the organization. A rhetorical controller incorporates a distinctive job as a result of the responsibility involves the mixing of accounting, auditing and investigation skills. Exploitation all of those skills, in brief, rhetorical controller may be a true investigator.

According to AICPA (1993), "Forensic accounting is that the application of accounting principles, theories, and discipline to facts or hypotheses at issues during a legal dispute and encompasses every branch of accounting knowledge."

Forensic accounting is defined by Zia (2010) as, "The science that deals with the relation and application of finance, accounting, tax and auditing knowledge to analyse, investigate, inquire, test and examine matters in civil law, legal code and jurisprudence in an effort to get the reality from which to render an expert opinion."

FORENSIC ACCOUNTING IN INDIA

Forensic accounting is an emerging area of specialization and development of forensic accounting in Indian corporate sector is at its infancy stage. Therefore, it is not surprising that the significance of forensic accounting in Indian corporate sector has not yet been properly addressed.

Forensic accounting is a new growing area of accounting field with the detection and prevention of financial fraud and white-collar criminal activities. Forensic accounting is a mixture of accounting, auditing and investigative skills which are used to find out uncovered financial frauds. It is helpful for legal action as well as analytical accounting. Through different techniques and tools, forensic accountant detect frauds and scams, if any, and make an effort to stop them at their early stage.

Fraud in India:

The term "fraud" is defined in Gilbert (1997) as "An act using deceit like intentional distortion of the reality of misrepresentation or concealment of a cloth fact to realize an unfair advantage over another so as to secure something useful or deprive another of a right."

DATE	ENTITY	NATURE OF SCANDAL	STATUS	IMPACT
February 2018	Punjab National Bank (PNB)- Nirav Modi	A handful of PNB bank staffers at Bradys House branch issued fake bank guarantees in excess of ₹13,800 crore, over the years, aiding companies of two jewellery groups—led by diamond magnate Nirav Modi and his uncle Mehul Choksi. They received credit from overseas banks to fund their business/ imports. The CBI arrested eight PNB officials in connection with the case.	The CBI has declared Nirav Modi and his brother Neeshal as offenders and is busy attaching their properties in India. Modi is in judicial custody in London (Wandsworth prison) after being arrested by Scotland Yard on an extradition warrant in March 2019. A trial is expected in May 2020.	In March 2018, the RBI scrapped banking instruments such as the letter of undertaking. The government has also approved the Fugitive Economic Offenders Bill to stop economic offenders from escaping Indian law.
February 2018	Gitanjali Group	Mehul Choksi, Nirav Modi's uncle and owner of the group, is among those named in the PNB fraud.	Choksi, who has an Antiguan citizenship, might be repatriated soon, as the Antigua government is set to revoke his citizenship.	The gems and jewellery sector continues to be hurt by constrained access to bank finance since 2015, amid weaker demand.
2013 to 2019	Bank NPAs	A mix of aggressive and carefree lending, alongside wilful loan defaults/frauds and economic slowdown resulted in a rapid rise in bank NPAs. Not a single public or private sector bank has been spared.	Gross NPAs of public sector banks rose nearly four times to ₹8.06 lakh crore in March 2019 from ₹1.30 lakh crore in March 2014. Those for scheduled commercial banks rose to ₹9.49 lakh crore from ₹1.42 lakh crore in the same period.	The impact after six years is acute: From operation concerns such as higher provisioning for bad loans and lower profitability, there have been deeper problems like leadership crisis and shifts across several banks and an inability to lend in a major way.
September 18	IL&FS	One of the largest shadow banking firms started defaulting early last year and a company which has multiple businesses and highest ratings was unable to pay its loans; 26 percent of the loan book consisted of the top 10 group exposures. The rating agencies stated that the company's NPA had increased to ₹816 crore by the end of March 2018 from ₹410 crore during the previous year, a whopping 99 percent increase.	Uday Kotak is chairman of IL&FS which has been reconstitued by the government. It is pursuing asset sales to realise funds and pay off the debt on its books. A debt of ₹5,100 crore has been restructured. The group has a total external debt of ₹94,216 crore.	The entire banking system witnessed the biggest liquidity freeze in India due to the collapse of IL&FS. The liquidity shortage across banks and NBFCs has led to a situation where most NBFCs are now struggling for survival.
March 2018	IDBI Bank	Former Aircel promoter C Sivasankaran, his son and companies controlled by them—Axcel Sunshine Ltd and WinWin D Oy—were accused by the CBI of defaulting on loans worth ₹600 crore from IDBI Bank. Fifteen bank officials—including then MD and CEO Kishor Kharat, who worked when the loans were sanctioned (2010-2014) to Sivasankaran's companies—were named in the FIR registered on a complaint from the Central Vigilance Commission.	Sivasankaran, who has denied any link with the fraud, has moved the Madras High Court against a lookout circular issued against him by the Bureau of Immigration.	The government has indicated indirectly that it is not keen to provide additional capital to the loss-making IDBI Bank. The bank had said it requires ₹7,000 crore as regulatory requirements.
September 2019	Laxmi Vilas Bank	Financial services firm Religare Finvest has accused the bank management of misappropriating ₹790 crore (which it kept as fixed deposit), in a report filed with the Economic Offences Wing.	Police inestigation is on. The bank management has said it will take appropriate legal measures.	The RBI has intensified its "fit and proper" checks on the management of the bank and Indiabulls, with whom a merger is sought.
September 2019	Punjab and Maharashtra Cooperative (PMC) Bank	Cooperative lender PMC is in the midst of a scam for under-reporting NPAs. The managing director of the firm, in his confession letter, claimed that the bank had created new accounts to keep its loan to real estate firm HDIL as standard loans which had ideally become NPAs. The bank has lent nearly 70 percent capital to the developer which is against RBI lending norms.	RBI and other agencies are investigating the matter.	Exisiting bank account holders are allowed to withdraw ₹10,000 per month from their account.

• SALIL PANCHAL & POOJA SARKAR

Table 1. Frauds in India

Sr No.	Name of the Scam	Nature of Industry	Year	Fraud Perpetrators	Modus operandi	Money Involved (in crores)
1	Hashad Mehta	Capital Market and Asset Management	1992	Managing Director	Harshad Mehta led to rise in Stock Market by Trading in Shares at Premium.	4000
2	C.R. Bhansali	Capital Market	1992-1996	Managing Director	Established Finance company and collected money from public and transfer money to Co. that never existed.	1200
3	Cobbler Scam	Co-operative Society	1995	Promoter	Availed loan of Crores of Rupees and created fictitious Co-Operative societies	600
4	Virendra Rastogi	Trading Company	1995-1996	CEO	Exported the bicycles by heavily invoicing the value of goods	43
5	Abdul Karim Telgi	Printing	2000	Promoter	Involved in Fake stamps Papers	171
6	UTI	Mutual Fund	2000	Chairman, Executive Director, Stockbroker	UTI issued 40000 Shares which were purchased for about Rs.3.33 Crores	32
7	Ketan Parekh	Capital Market	2001	Managing Director	Took loan of Rs. 250Crore from the Bank Whereas maximum limit was 1.5 crore	1500
8	Dinesh Dalmia	Information Technology	2001	Managing Director	Rs.1.30 crore shares are unlisted in Stock Exchange. Dalmia resorted ill legal ways to make money through partly paid up shares.	595
9	Satyam Computers	Information Technology	2009	Auditor, Director, Manager	Accounting Entries has been hugely inflated involving about Rs.100 Crores.	8000

(Gupta and Gupta 2015)

The Techniques of Forensic Accounting:

Besides the various conventional techniques of auditing, forensic auditor used some special techniques which are as follows:

a. Interview Technique
b. Benford's Law
c. Theory of Relative Size Factor (RSF):
d. Computer Assisted Auditing Tools (CAATs)
e. Data Mining Techniques
f. Ratio Analysis

Conclusion:

Business environment is changing frequently in present era. The way fraud are increasing in the corporate sector is a big challenge for the country. There are many cause and types of frauds. Now, only Accounting knowledge is not able to handle all the situations. This situation has given rise to new discipline of forensic accounting across the world. The forensic accounting will play vital role in investigating and preventing fraud. It's time to promote forensic accounting discipline and should make necessary legal changes to make it effective for the growth of economy, society and corporate sector.

Reference

1. Ms. Shruti Garg (2014),"Forensic Accounting and its Relevance in Indian Context" International Journal of Enhance Research in Management & Computer Applications, Vol 3, No.12.
2. Dr.Partap Singh, Mr. Joginder Grewal, Mr. Virender Singh (2015), "Forensic Accounting as Fraud and Corruption Detection Tool (An Empirical Study)".
3. Dr. Anita Sharma (2014), " Frauds in India and Forensic Accounting". International ISBN, Volume 21,No.5.
4. Aaron J. Singleton (2010) , "Fraud Auditing and Forensic Accounting", Wiley, 4th Edition
5. Rasey (2009), "Relevance of Forensic Accounting in the Detection and Prevention of Fraud in Nigeria",ISSN, Volume 23.

Book

Tommie W. Singleton and Aaron J. Singleton, "Fraud Auditing and Forensic Accounting" (Fourth Edition).

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय संस्कृति की अनुपम विशेषताएं

प्रो. बनवारी लाल जैन
विभागाध्यक्ष
शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूं, नागौर, राजस्थान

शोध संक्षेप

व्यक्ति का जीवन, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, विचार आदि संस्कृति के परिणाम हैं। जैसी हमारी संस्कृति होगी वैसे ही हम होंगे। मनुष्य संस्कृति का विकास करता है पशु नहीं। मनुष्य के पास शारीरिक व मानसिक क्षमताएं होती है। इसी विशेषता व क्षमता के कारण मनुष्य ने संस्कृति का निर्माण किया है। भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य संस्कृतियां की अपेक्षा अनुपम गुण वाली संस्कृति रही है। यहां की संस्कृति अमर, चिरकाल से स्थायी, धर्मप्रधान, समन्वय, वर्ण, आश्रम, पुरूषार्थ, अहिंसा, अध्यात्म, सर्वांगीणता से ओत-प्रोत रही है। भारतीय संस्कृति के उन अनुपम लक्षणों को अभिहित किया है, जो हजारों साल बीत जाने के बाद भी आज जीवित है।

मुख्य शब्द - संस्कृति, अक्षुण्ण, सहिष्णुता, समन्वयवादी, ग्रहणशीलता, अनुकूलता, सर्वांगीणता।

प्रस्तावना

सम् उपसर्ग+कृ धातु+क्तिन प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है। संस्कृति शब्द परिष्कृत कार्य या उत्तम स्थिति का बोध कराता है। अर्थात् मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों नैंसर्गिक शक्तियों और उनके परिष्कार का द्योतक है। संस्कृति शब्द से किसी भी विशिष्ट भूखण्ड की मानसिक क्षमता एवं प्रगति का एक दीर्घकालीन इतिहास प्रकट होता है। संस्कृति शब्द संस्कार शब्द का वंशज है। जिसका अभिप्राय शुद्ध करने या सुधारने से है। मानसिक क्षेत्र में मानव की प्रत्येक 'सम्यक् कृति' संस्कृति की अंगभूत हो जाती है। जिसमें सभी कलाओं, ज्ञान, विज्ञानों, धर्म, दर्शन तथा विभिन्न सामाजिक प्रथाओं को ग्रहण किया जा सकता है। (मन और आत्मा की तृप्ति के लिए मनुष्य जो विकास अथवा उन्नति करता है, वह समग्र रूप से संस्कृति के अन्तर्गत आता है)।

संक्षेप में संस्कृति किसी भी समाज में उसके सदस्यों के रहने का ढंग है। समाज के आधारभूत विचार यथा रीति-रिवाज, परम्पराएं, मशीन, उपकरण, नैतिकता, कला, विज्ञान, धर्म, विश्वास, सामाजिक संगठन, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया जाता है। अंग्रेजी कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कल्चुरा से बना है जिसका अर्थ है सुधरी हुई दशा। अर्थात् संस्कृति मनुष्य के सीखे गये अच्छे अनुभवों की परिणति है।

श्री हरदत्त वेदालंकार ने संस्कृति निर्माण की इस प्रक्रिया के लिए अत्यन्त सुन्दर उपमान प्रस्तुत किया है। संस्कृति की तुलना आस्ट्रेलिया के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मूंगे की भीमकाय चट्टानों से की जा सकती है। मूंगे के

E ISSN 2320 – 0871
17 जुलाई 2021

असंख्य कीड़े अपने छोटे घर बनाकर समाप्त हो गए, फिर नए कीड़ों ने घर बनाये उनका भी अन्त हो गया। इसके बाद उनकी अगली पीढ़ी ने भी यही किया, और यह क्रम हजारों वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। आज उन सब मूंगों के नन्हें-नन्हें घरों ने परस्पर जुड़ते हुए विशाल चट्टानों का रूप धारण कर लिया है। संस्कृति का भी इसी प्रकार धीरे-धीरे निर्माण होता है और उसके निर्माण में हजारों वर्ष लगते हैं। मनुष्य विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, संस्थाओं, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि, भाषा तथा कलाओं का विकास करके अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं। भारतीय संस्कृति की भी इसी प्रकार रचना हुई है। उपनिषदों में निरन्तर कार्यशील रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर रूपक उपलब्ध होता है- "सोता हुआ व्यक्ति कालिकाल है, निद्रा समाप्त कर जंभाई लेता हुआ ही द्वापर युग है। आलस्य त्याग कर उठता हुआ व्यक्ति त्रेता समय है और चलता हुआ ही सतयुग कहलाता है। इसलिए निरन्तर चलते रहो, चलते ही रहो।"

अक्षुण्ण प्रवाह

मिस्त्र, सुमेर, काबुल, यूनान और रोम की संस्कृति विलुप्त होकर अतीत की कहानी मात्र रह गई है। भारतीय संस्कृति आज भी अपनी पहचान बनाये हुई है। 2500 वर्ष पूर्व की भांति लोग राम, कृष्ण और ब्रहम की पूजा करते हैं। आज भी गंगा, यमुना, गोदावरी आदि नदियां को पवित्र माना जाता है। संस्कृत भाषा को आज वही सम्मान है जो प्राचीन समय में था। विश्व की अनेक संस्कृति विलुप्त हो गई, लेकिन सिन्धु घाटी सभ्यता से पूर्व प्रारम्भ हुई भारत भूमि की संस्कृति आज भी अक्षुण्ण है। शायर इकबाल ने कहा है -

"यूनान मिश्र रूमां सब मिट गए जहां से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा।
कोई बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।।"

विचार सहिष्णुता

भारतीय संस्कृति ने हर मनुष्य को विचार, धर्म, विश्वास की स्वतन्त्रता दी है। सम्राट् अशोक ने कहा है- "मनुष्य को दूसरे के धर्मों को सुनना चाहिए और उसका आदर करना चाहिए। जो मनुष्य अपने धर्म को पूजता है और दूसरे धर्म की निन्दा करता है, वह ऐसा करते हुए अपने धर्म को बड़ी भारी हानि पहुंचाता है।' विश्व की अन्य संस्कृतियों ने दूसरों के विचार, नवीन प्रवृत्तियों को सहन नहीं किया। उदाहरणार्थ सुकरात को देखा जा सकता है जिन्होंने सत्य की रक्षा के लिए विषपान किया। भारत में सभी मत-मतान्तरों को समान भाव से सम्मान दिया जाता है, उनके विचारों को सुनने व बोलने की स्वतन्त्रता है। गीता में कहा है- "सब देवताओं को किया हुआ नमस्कार कृष्ण को प्राप्त होता है।"

ग्रहणशीलता

भारत में आयी द्रविड़, यूनानी, मुगल, ईसाई, सीथियन सभी संस्कृतियों के विभिन्न सुन्दर अंशों को ग्रहण कर लिया, जैसे वैदिक युग में इन्द्र देवता थे, द्रविड़ प्रभाव से शिव प्रमुख देवता बन गये। अतः जो प्रथा, व्यवस्था उत्पन्न हुई वह नष्ट नहीं हुई उसे इस प्रकार ग्रहण किया कि वह सदैव बनी रही। ज्योतिष के क्षेत्र में यूनानी तथा रोमन सिद्धान्तों को ग्रहण किया, वह भी आज तक बना हुआ है। अन्य जातियों से ज्ञान

E ISSN 2320 – 0871
17 जुलाई 2021

ग्रहण करने में कभी भी हीनता की भावना उत्पन्न नहीं हुई।

आध्यात्मिकता

भारत में भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता के विकास पर विशेष बल दिया है। शस्त्रबल की अपेक्षा तपस्या, धूर्तता की अपेक्षा सत्यता, धन की अपेक्षा धर्म, पर पीड़ा की अपेक्षा परोपकार, शरीर की अपेक्षा आत्मा की अमरता पर बल दिया गया है।

धर्म प्रधानता

भारतीय संस्कृति में धर्म एक व्यापक जीवन पद्धति है। धर्म केवल मंदिर में घण्टा बजाना, मूर्तियों का श्रृंगार करना, मंदिर में मूर्ति के समक्ष प्रसाद चढ़ाना, मंदिर की परिक्रमा लगाना, मंदिर में दण्डवत झुकना, माथे पर तिलक लगाना, मंदिर में आरती करना, मंदिर में भजन बोलना धर्म नहीं है, धर्म सत्कर्म करना है।

धर्म जो नहीं देखना चाहिए, उसे देखने से रोकता है वह धर्म है, धर्म जो नहीं सुनना चाहिए उसे सुनने से रोकता है वह धर्म है, धर्म जो नहीं छूना चाहिए उसे छूने से रोकता है वह धर्म है धर्म जो नहीं बोलना चाहिए उसे बोलने से रोकता है वह धर्म है।

"धरम न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बाबान।।"

असतो मा सद्गम, तमसो मा ज्योतिर्गमयः
मृत्योमोऽमृतं गमय।

विपत्ति, बाधा, परेशानी, कष्ट, दुःख, व्यवधान आने पर आज भी हमारी संस्कृति में धर्म को याद किया जाता है।

समन्वयवादी

जनजातीय, शक, हूण, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान आदि सभी संस्कृतियों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में समन्वय व एकता की भावना पैदा हुई। हिन्दू और मुस्लिम धर्म में समन्वय हेतु महापुरूषों ने एकता स्थापित करने का प्रयास किया। डाडवेल ने कहा कि भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियां आकर मिलती हैं। शक, हूण, मुगल, तुर्क, यूनानी, अंग्रेज भारत में आये और सभी यहां आकर घुल मिल गये। विविध संस्कृतियों के प्रभाव को हमारी संस्कृति ने आत्मसात किया।

वर्णाश्रम

भारतीय संस्कृति की विलक्षणता है- वर्ण व आश्रम व्यवस्था। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्ण ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की रचना की गई। ब्राहमण समाज बुद्धि, क्षत्रिय शक्ति, वैश्य अर्थ व्यवस्था और शूद्र समाज सेवा का कार्य करता है। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रहमचर्य आश्रम 1 से 25 वर्ष, गृहस्थाश्रम 26 से 50 वर्ष, वानप्रस्थाश्रम 51 से 75 वर्ष, संन्यासाश्रम 76 से 100 वर्ष तक माना गया है। यह व्यवस्था विश्व की किसी भी संस्कृति में नहीं है। आश्रमों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पूर्ति करना है।

विविधता में एकता

भारतीय संस्कृति क्षेत्र, जाति, भाषा, धर्म के आधार पर विविध रूप में परिलक्षित है, लेकिन पर्व, जयन्ती, त्यौहारों आदि में जीवन की एकरूपता है। देश के सभी क्षेत्र में विभिन्न धर्मावलम्बियों के उपासना के स्थान बने हुए हैं। विभिन्न क्षेत्रों में बसे परिवार, विवाह, रीति-रिवाज, वस्त्र शैली आदि में पर्याप्त भिन्नता के बाद भी सांस्कृतिक एकता है। रक्षा बन्धन, दशहरा, दीपावली, ईद आदि त्यौहारों का आयोजन सम्पूर्ण देश में होता है। रंगभेद, जाति

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भेद, भाषा भेद होते हुए भी आंतरिक रूप से हम सभी घुले-मिले हुए हैं।

अनुकूलनशीलता

भारतीय संस्कृति में परिस्थितियों के अनुकूल ढ़लने की अद्भुत क्षमता है। अनेक विषम परिस्थितियां भी आयी लेकिन सभी को झेलते हुए आगे बढ़ती रही। भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएं सत्य के साथ अपने को परिवर्तित करती रही है।

कर्म व पुनर्जन्म

अच्छे कर्म करने वाले को अच्छा फल व बुरे कर्म करने वाले को बुरा फल मिलता है। यह भारतीय संस्कृति के विचार रहे हैं। उनका पुनर्जन्म उसी फल के अनुसार मिलता है। कर्म में राग-द्वेष, आसक्त आदि भाव रखे बिना कार्य करने पर बल दिया है।

सर्वांगीणता

भारतीय संस्कृति में चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के विकास पर बल दिया। सभी का सर्वांगीण विकास हो। कोई भी गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित आदि का भेदभाव नहीं रखते हुए अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन व गौरवपूर्ण है। सहिष्णुता व ग्रहणशीलता, गत्यात्मक प्रकृति, विभिन्नता में एकता, आंतरिक एकता, समाज व्यवस्था, संयुक्त परिवार, कर्म और पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा, अस्तेय के सिद्धान्त की गूंज, सूफी, योग, साधना और रहस्यवाद का दीपक प्रज्ज्वलित किया जिसके कारण उसका अतीत वर्तमान में भी जीवित है। भौतिक सुख और भेग लिप्सा की अपेक्षा अध्यात्म को प्रबल किया है। समाज के साथ सदैव अनुकूलता को बनाये रखा है। वसुधैव कुटुम्बकम् में अपने आपको संजोये रखा है। यहां की संस्कृति किसी एक जाति, धर्म, वर्ण या किसी व्यक्ति विशेष के पक्ष की नहीं रही है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात् सभी सुखी हों की भावना में समाहित होकर अक्षुण्ण बनी हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 गुप्ता, मोतीलाल (2018), भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

2 शर्मा, जी.एल. (2015) सामाजिक मुद्दे रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

3 लवानिया, एम.एम., जैन, शशि के. (2008) समाजशास्त्र के सिद्धान्त, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

4 पाण्डेय, रामशकल (2008), उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

5 पाठक एवं त्यागी (2008), शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

6 सिन्हा, मंजरी सिन्धु, आई. एस. (2007), विकासोन्मुख भारतीय समाजमें शिक्षा तथा शिक्षक की भूमिका, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

Shodhsamhita
शोधसंहिता

ISSN No. 2277-7067

Certificate of Publication

This is to certify that

प्रो. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ, नागौर

For the paper entitled

द्विवर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में इन्टर्नषिप की प्रभावषीलता का अध्ययन

Volume No. IX, Issue 1(I), 2022-2023

in

Shodhsamhita

UGC Care Group 1 Journal

Editor-in-Chief

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

द्विवर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में इन्टर्नषिप की प्रभावषीलता का अध्ययन

प्रो. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ, नागौर

शिवानी भोजक
शोधार्थी, जैन विश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय लाडनूँ, नागौर

सार
द्वि–वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में आधारभूत ज्ञान आधारित विषयों के अन्तर्गत नवीन विषयों को जोड़ा गया तथा आवश्यक व्यावसायिक दक्षताओं के विकास पर भी प्रमुख रूप से बल दिया गया है। साथ ही इसमें प्रशिक्षुता (Internship) को समाहित किया गया है। जिसके माध्यम से प्रशिक्षणार्थियों को कार्यक्षेत्र सम्बन्धी वास्तविक अनुभव प्रदान करने के साथ–साथ सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष को विकसित करने का प्रयास भी किया गया है। प्रशिक्षुता कार्यक्रम का उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया में अभ्यास की विधि के सुधार के रूप में कार्य करना है। प्रशिक्षुता कार्यक्रम में अभ्यास शिक्षण तथा निर्देशित क्षेत्र अनुभवों का समायोजन है, इसके अन्तर्गत सरकारी विद्यालयों का चुनाव किया जाता है और शिक्षार्थी सावधानीपूर्वक अभ्यास शिक्षण को निर्देशित करते है तथा अपने नवीन अनुभवों का समायोजन करते है। प्रशिक्षुता कार्यक्रम को द्वि–वर्षीय पाठ्यक्रम में एक निश्चित समयावधि के अनुसार रखा गया है। जो बी.एड. प्रथम वर्ष में 24 कार्यदिवस तथा बी.एड. द्वितीय वर्ष में 96 कार्य दिवस है। प्रशिक्षुता के लिए बी.एड. कर रहे प्रत्येक विद्यार्थी–शिक्षक को सरकारी विद्यालयों में जाना होता है। प्रशिक्षु शिक्षक बनने के लिए आवश्यक अधिगम अनुभव किस प्रकार प्राप्त कर रहे है? प्रशिक्षुता के संचालन में कौनसी समस्याएँ अनुभूत हो रही है? प्रशिक्षुता के प्रभाव विद्यार्थियों तथा विद्यालयों पर क्या परिलक्षित हो रहे है? अध्यापक शिक्षकों के प्रशिक्षुता कार्यक्रम के क्रियान्वयन के प्रति अनुभव क्या है? प्रशिक्षुता कार्यक्रम प्रशिक्षुओं में वास्तविक क्षेत्र से सम्बन्धित समझ उत्पन्न करने में किस प्रकार सहायक हो रहा है? इन सभी को समझने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है।
मुख्य शब्दः– शिक्षक–प्रशिक्षक, प्रशिक्षु, इन्टर्नशिप।

प्रस्तावना

वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो शिक्षण को एक उत्तम व्यवसाय, पेशे एवं मिशन कार्य के रूप में प्रत्यक्षीकृत किया जा रहा है। जिस प्रकार एक डॉक्टर, वकील, इंजीनियर आदि है। जिस प्रकार एक डॉक्टर, वकील तथा अन्य व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रशिक्षणार्थियों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है इसके लिए उन्हें एक निश्चित समयावधि तक प्रशिक्षु के रूप में कार्य करना पड़ता है तभी वह पूर्ण रूप से सम्बन्धित व्यवसाय में पारंगत हो पाता है। उसी प्रकार शिक्षण व्यवसाय सम्बन्धी दक्षता, कुशलता एवं योग्यताओं को अर्जित किए बिना कोई भी व्यक्ति एक सफल अध्यापक नहीं बन सकता उसे अध्यापन सम्बन्धी कौशल, तकनीक, प्रतिमान, अभिक्षमता एवं उत्तरदायित्व आदि को अनुकूलतम स्तर पर विकसित करने के लिए 'अध्यापक–शिक्षा' प्राप्त करना आवश्यक है।

उद्देश्यपरक शिक्षण कैसे किया जाए और विद्यार्थी को वांछित अधिगम के लिए कैसे प्रेरित किया जाए के साथ शिक्षक प्रशिक्षणार्थी के लिए यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि विद्यालयी जीवन में होने वाली अन्य विभिन्न गतिविधियों का सफल संचालन कैसे किया जाए। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को विद्यालयी जीवन में होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों, गतिविधियों व उत्तरदायित्वों को समझने, सीखने व प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था का नाम है 'इन्टर्नशिप'। इन्टर्नशिप की व्यवस्था इस अवधारणा पर आधारित है कि जीवन के वास्तविक अनुभव वास्तविक परिस्थितियों से ही प्राप्त होते है।

इन्टर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षु की सम्पूर्ण सहभागिता से ही पूर्ण किया जाता है तथा यह प्रशिक्षु की क्षमताओं के मूल्यांकन में भी सहायक है। यह उसे निरन्तर अधिगम ओर अपने कार्य में और अधिक कुशलता लाने के लिए अभिप्रेरित करता है। प्रशिक्षुता कार्यक्रम प्रशिक्षुओं की अर्थपूर्ण कक्षा–कक्ष गतिविधियों के चयन, प्रारूप निर्धारण, संगठन तथा निर्देशित करने में सहायता करता है, निरीक्षण के द्वारा उसमें समीक्षात्मक दृष्टिकोणा का विकास करने, रिकॉर्ड रखने, नवीन नीतियों के निर्माण करने, मूल्यांकन

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

करने में सहायता करता है। शिक्षण अभ्यास के दौरान पृष्ठपोषण की व्यवस्था की जाती है।

हमारे शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों की वर्तमान स्थिति के बारे में यदि हम गौर से अध्ययन करते है तो एक प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उठता है कि क्या हमारें इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत ये सभी प्रकार के आयामों को सम्मिलित किया गया है? क्या हमारे प्रशिक्षु स्कूल की सभी गतिविधियों में पूर्ण रूप से भाग लेते है? क्या सभी शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी सम्पूर्ण इन्टर्नशिप कार्यक्रम को पूरी निष्ठा व ईमानदारी से पूर्ण करके उनका मूल्यांकन करते है? अध्यापक–शिक्षकों, प्रशिक्षुओं तथा विद्यालयी शिक्षकों को प्रशिक्षुता के दौरान कौनसी समस्याएँ सामने आ रही है। इन सभी को ध्यान में रखकर इस ससमस्या पर अध्ययन करना समीचीन प्रतीत हुआ।

समस्या कथन :– द्विवर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता का अध्ययन।

उद्देश्य :–

1. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षुओं के महिला तथा पुरुष आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
2. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षुओं के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
3. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षुओं के आरक्षित तथा अनारक्षित जाति के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
4. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षुओं के कला तथा विज्ञान संकाय के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के महिला तथा पुरुष प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के आरक्षित तथा अनारक्षित जाति के प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला तथा विज्ञान संकाय के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श :–

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय के 350 प्रशिक्षुओं को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

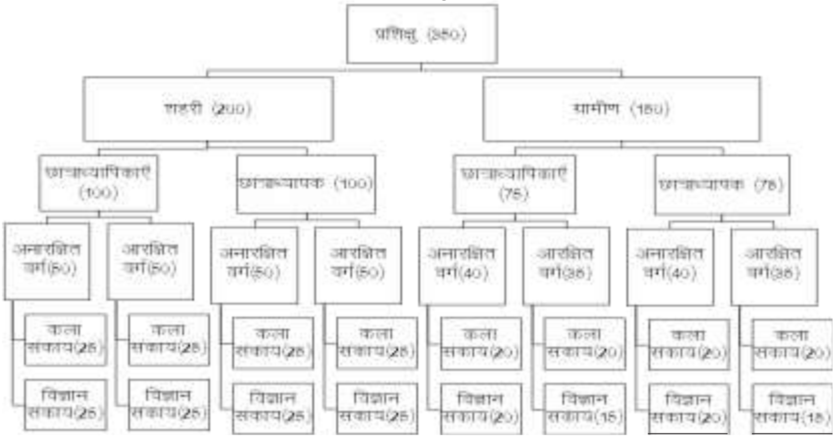

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

शोध उपकरण :– प्रस्तुत शोध में प्रभावशीलता के अध्ययन के लिए तथ्य संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रत्यक्षीकरण मापनी का निर्माण किया गया है।

1. प्रशिक्षुओं हेतु इण्टर्नशिप प्रत्यक्षीकरण मापनी

शोध विधि :– प्रस्तुत शोध शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता पर आधारित है। शोध में बी.एड. पाठ्यक्रम में इन्टर्नशिप कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं का गहनता से अध्ययन किया गया है। अतः उन पहलुओं को लेकर इन्टर्नशिप कार्यक्रम का सर्वेक्षण विधि के माध्यम से प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है।

सांख्यिकी प्रविधियाँ :– प्रस्तुत शोध में निम्न सांख्यिकी विधियों को प्रयोग में लिया जाएगा –

1. मध्यमान 2. प्रमाप विचलन 3. t-test

आँकड़ो का विष्लेशण

परिकल्पना–1 षिक्षक–प्रषिक्षण महाविद्यालयों के महिला तथा पुरुश प्रषिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नषिप की प्रभावषीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या–1

प्रशिक्षु	समूह (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी–मान	सार्थकता स्तर	स्वीकृत
महिला	175	100. 92	18. 00	0. 40	0. 05→1. 96	स्वीकृत
पुरूष	175	101. 75	20. 60		0. 01→2. 58	

$df = N_1 + N_2 - 2 = 175 + 175 - 2 = 348$

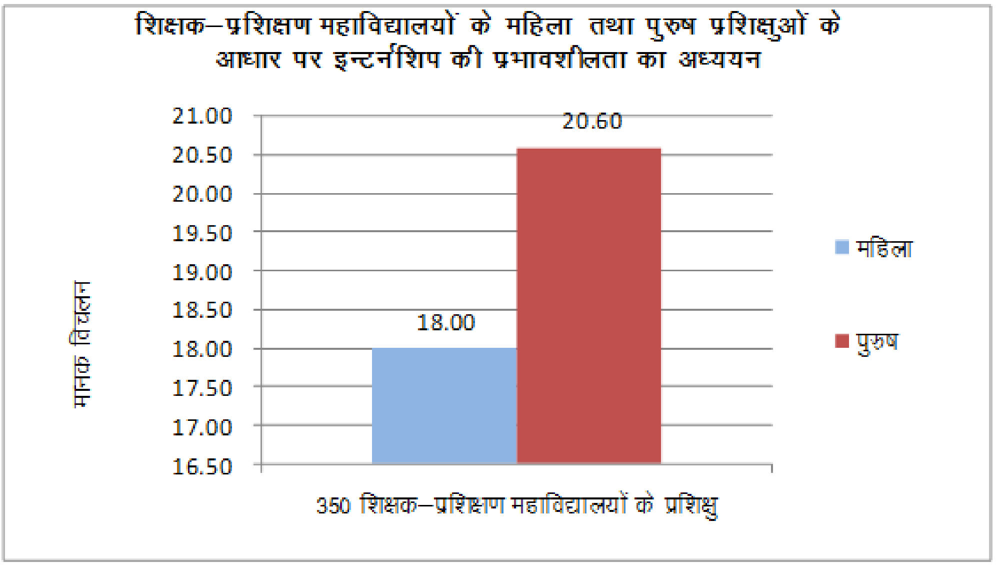

विष्लेषण :– उपरोक्त तालिका संख्या 1 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दोनों समूहों का मध्यमान क्रमशः महिला प्रशिक्षुओं हेतु 100. 92 तथा पुरूष प्रशिक्षुओं हेतु 101. 75 है तथा मानक विचलन क्रमशः महिला प्रशिक्षुओं हेतु 18 तथा पुरूष प्रशिक्षुओं हेतु 20. 60 है। टी का मान गणना के पश्चात् 0. 40 है जो कि टी तालिका मूल्य के दोनों स्तरों 0. 05 तथा 0. 01 पर

क्रमशः 1.96 तथा 2.58 से कम है। अतः निराकरणीय परिकल्पना शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के महिला तथा पुरुष प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना–2 शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या–2

क्षेत्र	समूह (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी–मान	सार्थकता स्तर	स्वीकृत
ग्रामीण	144	100.51	20.11	0.66	0.05→ 1.96	स्वीकृत
शहरी	206	101.91	18.77		0.01→ 2.58	

$df = N_1 + N_2 - 2 = 144 + 206 - 2 = 348$

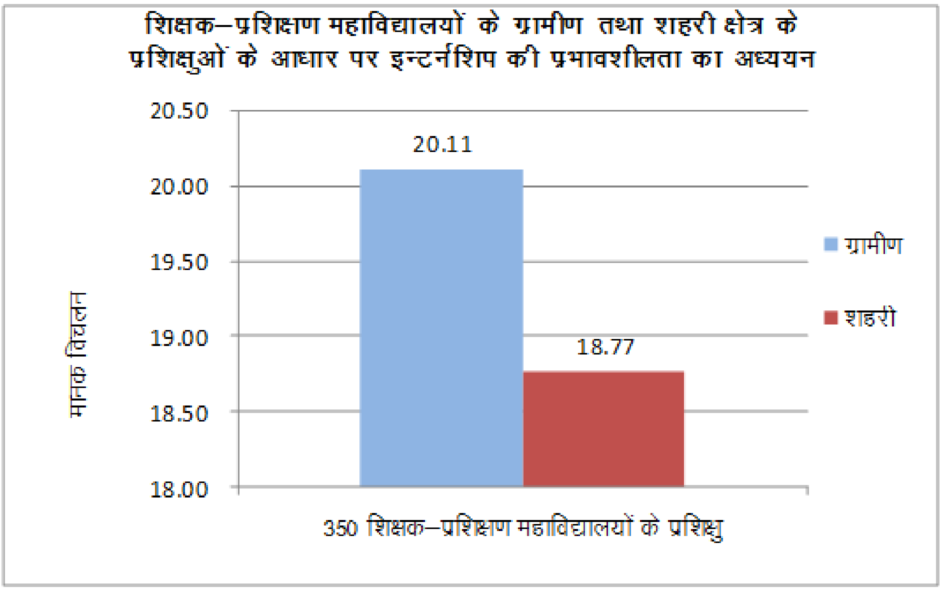

विश्लेषण :– उपरोक्त तालिका संख्या 2 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों समूहों के मध्यमान क्रमशः ग्रामीण क्षेत्र के प्रशिक्षुओं हेतु 100.51 तथा शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं हेतु 101.91 है तथा मानक विचलन क्रमशः ग्रामीण प्रशिक्षुओं हेतु 20.11 तथा शहरी प्रशिक्षुओं हेतु 18.77 है। टी का मान गणना करने के पश्चात् 0.66 प्राप्त हुआ जो कि टी तालिका मूल्य के दोनों स्तरों 0.05 तथा 0.01 पर क्रमशः 1.96 तथा 2.58 है से कम है। अतः निराकरणीय परिकल्पना शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षुओं के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना–3 शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के आरक्षित तथा अनारक्षित जाति के प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या–3

जाति	समूह (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी–मान	सार्थकता स्तर	स्वीकृत
अनारक्षित	180	100.06	19.80	1.27	0.05→ 1.96	स्वीकृत
आरक्षित	170	102.68	18.76		0.01→ 2.58	

$df = N_1 + N_2 - 2 = 180 + 170 - 2 = 348$

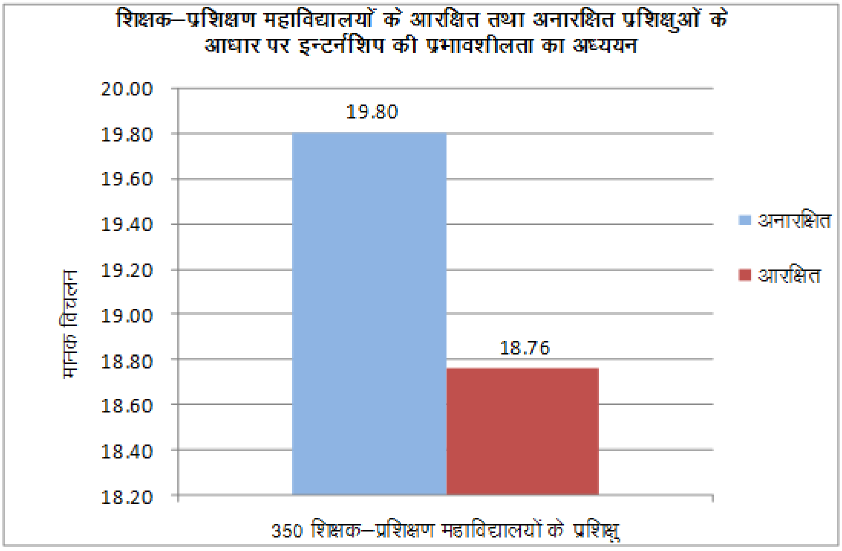

विश्लेषण :– उपरोक्त तालिका संख्या 3 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दोनों समूहों के मध्यमान क्रमशः अनारक्षित वर्ग हेतु 100.06 तथा आरक्षित वर्ग हेतु 102.68 है तथा मानक विचलन क्रमशः अनारक्षित वर्ग हेतु 19.80 तथा आरक्षित वर्ग हेतु 18.76 है। टी का मान गणना करने के पश्चात् 1.27 प्राप्त हुआ जो कि टी तालिका मूल्यों के दोनों स्तरों 0.05 तथा 0.01 पर क्रमशः 1.96 तथा 2.58 से कम है। अतः निराकरणीय परिकल्पना शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों के आरक्षित तथा अनारक्षित प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 4 :– शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय के कला तथा विज्ञान संकाय के प्रशिशुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की वस्तुस्थिति का समालोचनात्मक अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या–4

संकाय	समूह (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (σ)	टी–मान	सार्थकता स्तर	स्वीकृति
कला	180	99.68	18.10	1.64	0.05→ 1.96	स्वीकृत
विज्ञान	170	103.08	20.44		0.01→	

					2. 58	

$df = N_1 + N_2 - 2 = 180 + 170 - 2 = 348$

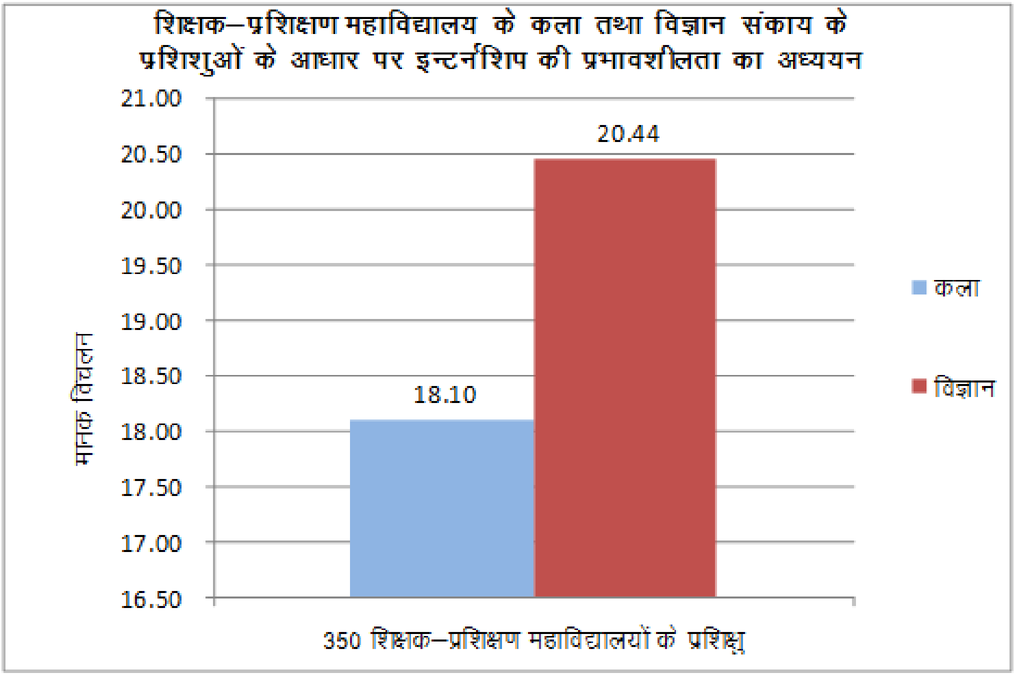

विश्लेषण :– उपरोक्त तालिका संख्या 4 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों समूहों के मध्यमान क्रमशः कला संकाय के प्रशिक्षुओं का 99. 68 तथा विज्ञान संकाय प्रशिक्षुओं का मध्यमान 13. 08 है तथा मानक विचलन कला संकाय हेतु 18. 10 तथा विज्ञान संकाय हेतु 20. 44 है। टी का मान गणना करने के पश्चात् 1. 64 प्राप्त हुआ है जो कि टी तालिका मूल्य के दोनों स्तरों 0. 05 तथा 0. 01 पर क्रमशः 1. 96 तथा 2. 58 है से कम है। अतः निराकरणीय परिकल्पना शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला तथा विज्ञान संकाय के प्रशिक्षुओं के आधार पर इन्टर्नशिप की प्रभावशीलता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है। यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इन्टर्नशिप की प्रभावषीलता के प्रति प्रशिक्षुओं के प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्राप्त निष्कर्ष : शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों में द्वि–वर्षीय बी.एड. में समाहित इन्टर्नशिप कार्यक्रम के प्रति प्रशिक्षुओं/प्रशिक्षणार्थियों के प्रत्यक्षीकरण के समेकित अध्ययन से यह पता चलता है कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के द्वारा गुणों के विकास संबंधी पक्ष के प्रति सबसे अधिक प्रतिशत प्रशिक्षुओं द्वारा सहमति के रूप में दिया गया है। इससे यह तात्पर्य है कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षुओ के अंदर गुणात्मक सुधार लाने के साथ ही साथ शिक्षण व्यवसाय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। अनुभव तथा ज्ञान संबंधी पक्ष के प्रति अधिकतम प्रशिक्षुओं का मत सकारात्मक पाया गया। अतः भविष्य में शिक्षण व्यवसाय अपनाने से पूर्व प्रशिक्षुओं को शिक्षण व्यवसाय संबंधित अनुभव तथा ज्ञान प्रदान करने में इन्टर्नशिप की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्टर्नशिप कार्यक्रम के कार्यकाल के दौरान प्रशिक्षु शिक्षण संबंधी विभिन्न प्रकार के कौशल जैसे– नवाचार, कक्षा–कक्ष अंतःक्रिया, शिक्षण आव्यूह, तकनीकों तथा विधियों में निपुणता प्राप्त करने में समर्थ हो सकते है। व्यवसाय संबंधी भूमिकाओं से संदर्भित पक्ष के प्रति अधिकतम प्रतिशत प्रशिक्षुओं द्वारा सहमति के रूप में प्रतिक्रिया प्रदर्शित करके की गई। इससे तात्पर्य है कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के द्वारा प्रशिक्षणार्थी वास्तविक शिक्षण व्यवसाय से संबंधित भूमिकाओं, व्यावसायिक संवेदनशीलता तथा जवाबदेहिता आदि संबंधित पक्षों में प्रशिक्षण काल के दौरान ही परिचित हो जाता है जिनके फलस्वरूप जब वह वास्तविक कार्यक्षेत्र में नियुक्त किया जाता है तब उसके अंदर शिक्षक के सामने आने वाली चुनौतियों तथा कठिनाइयों का सामना करने की योग्यता पहले से ही मौजूद

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

रहती है।

प्रशिक्षुओं हेतु शैक्षिक निहितार्थः

- इन्टर्नशिप कार्यक्रम द्वारा प्रशिक्षु को भविष्य संबंधी कार्यक्षेत्र तथा वातावरण के साथ परिचित होने तथा संबंधित कार्यक्षेत्र में अपनी भूमिकाओं को पहचानने का अवसर प्राप्त होता है अतः इन्टर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षुओं के लिए आवश्यक रूप से संचालित तथा नियोजित किया जाना चाहिए।
- इन्टर्नशिप कार्यक्रम द्वारा प्रशिक्षुओं में सृजनात्मकता, आत्मविश्वास, पहल करने की भावना तथा सैद्धान्तिक रूप से सीखे गए ज्ञान को वास्तविक कार्यक्षेत्र में प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होता है जो उसे एक प्रभावी शिक्षक बनने में समर्थ बनाता है।
- इन्टर्नशिप कार्यक्रम का अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षुओं को नियमित रूप से विद्यालय में उपस्थित होकर वहाँ आयोजित की जाने वाली विभिन्न प्रकार की शिक्षण संबंधी तथा शिक्षणेत्तर गतिविधियों में सक्रिय रूप से अपनी सहभागिता देनी चाहिए।
- विद्यालय में आयोजित होने वाले प्रशासनिक कार्यक्रमों, स्थिति संबंधी कार्यक्रमों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि के नियोजन तथा संचालन में अपने विवेकपूर्ण विचार प्रशिक्षुओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने चाहिए।
- इन्टर्नशिप कार्यक्रम के दौरान प्रशिक्षुओं को कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों के साथ रहकर एक आदर्श शिक्षक की भूमिका अर्जित करते हुए शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए।
- इन्टर्नशिप के दौरान प्राप्त किए गए अनुभव प्रशिक्षुओं को भविष्य में व्यावसायिक क्षेत्र में एक प्रभावपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने तथा आने वाली चुनौतियों का समाधान करते हुए एक आदर्श शिक्षक के रूप में स्थापित करने में सहायता करते है।
- प्रशिक्षुओं द्वारा विद्यालय में समय–समय पर पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशालाओं तथा खेल के मैदान आदि में जाकर वहाँ का प्रबंधकीय अनुभव भी प्राप्त किया जाना चाहिए जिससे भविष्य में प्रबंधकीय जानकारी उन्हें और अधिक कुशल शिक्षक बनाने में सहयोग करे।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. भटनागर ए.बी., भटनागर अनुराग (2013) शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
2. भटनागर, आर.पी. शिक्षा अनुसंधान, लॉयल बुक डिपो, मेरठ।
3. भट्टाचार्य जी.सी. (2013) अध्यापक शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. गर्ग इन्दु (2014) टीचर एजुकेशन, ए. पी. एच. कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली।
5. गुड सी. वी. (1959) 'डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन' मैकग्रा हिल, बुक कम्पनी, आई.एच. सी, न्यू टोरंटो, लंदन।
6. कपिल एच.के. (2012) अनुसंधान विधियाँ, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस, आगरा।
7. मेहरोत्रा सुखिया (2004) शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
8. रायजादा बी.एल., वर्मा वन्दना (2013) शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

9- http://www.encyclopedia.com
10- http://ntceindia.org/curriculum/20framework/B.Ed.Curriculum .pdf
11- http://en.m.wikipedia.org/wiki/purvanchal
12- https://www.achhikhabar.com

Shodhsamhita
शोधसंहिता

ISSN No. 2277-7067

राष्ट्रहिताय संस्कृतम्

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that

प्रो. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग), जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ

For the paper entitled

''नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता एवं क्रियान्विति का अध्ययन''

Volume No. VIII, Issue 11 (II), 2021-2022

in

Shodhsamhita

Impact Factor: 4.95

UGC Care Group 1 Journal

Editor-in-Chief

Scanned with OKEN Scanner

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group I

"नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता एवं क्रियान्विति का अध्ययन"

प्रो. बी. एल. जैन
विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग), जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ

सुनीता शर्मा
(शोधार्थी)

सार : उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बनाए रखने के लिए १९९४ में राष्ट्रीय मूल्यांकन और प्रत्यायन परिषद् (नैक) की स्थापना की गई। जिसका मुख्यालय बैंगलौर में है। यह एक स्वतंत्र निकाय है। जिसे उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाने की स्वतंत्रता है। यह शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सिफारिशों का परिणाम है। जिसने भारत में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने पर विशेष जोर दिया। हमारे राष्ट्र के लिए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता स्थापित करना एक चुनौती है। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता एवं उत्कृष्टता स्थापित करने में नैक की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नैक की भूमिका के आधार पर ही संस्था अपने गुण-अवगुण से परिचित होती है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि सभी संस्थाओं को नैक की प्रक्रिया से अवगत कराया जाए और उनमें जागरूकता लाई जाई। जिससे शिक्षण-संस्थानों में गुणात्मक सुधार किया जा सके।

तकनीकी शब्द - नैक, उच्च शिक्षा, जागरूकता, क्रियान्विति

प्रस्तावना

"*पौधे खेती से और मनुष्य शिक्षा से आकार लेते है'* हम कमजोर पैदा होते है, हमें ताकत चाहिए, हम मुर्ख पैदा हुए हैं हमें न्याय चाहिए। वह सब कुछ जो हमारे जन्म के समय नहीं होता, जिसकी हमें आवश्यकता होती है। वह जब हम होते है, तो हमें शिक्षा द्वारा दिया जाता है।"

जीन जैम्स, रूसो

एमिल के (शिक्षा दर्शन के अनुसार)

वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता का होना अति आवश्यक है, चाहे वह विद्यालय स्तर पर हो, महाविद्यालय स्तर पर हो, चाहे विश्वविद्यालय स्तर पर। क्योंकि वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि तो हुई है। परन्तु वह वृद्धि केवल मात्रात्मक है। गुणात्मक नहीं "शिक्षा की गुणवत्ता" बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन व प्रत्यायन परिषद् की स्थापना की गई। जो विभिन्न शिक्षण संस्थानों को बुनियादी ढाँचे, शैक्षिक सुविधाएँ, शैक्षिक उपकरण, शैक्षिक व अशैक्षिक कर्मचारी के आधार पर

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

रैंक प्रदान करती है। यह शोध पत्र नैक के प्रति विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं की जागरूकता का अध्ययन करने का प्रयास करता है।

नैक के नवीन मानक

नैक द्वारा संस्थाओं के प्रत्यायन के लिए सात मानदंड निर्धारित किये गए है। जो कि एक संस्थान के मूल्यांकन व प्रत्यायन के लिए रीढ़ की हड्डी का काम करते है। इन मानदंडों का मुख्य उद्देश्य संस्थान की प्रत्येक गतिविधियों पर सीधा नियंत्रण करके, संस्थान के विकास पर ध्यान देना है। उच्च शिक्षा संस्थान को नैक द्वारा बनाये गये सात मानदंडों के अन्तर्गत आने वाले सभी बिन्दुओं के द्वारा ही एक नई दिशा व पहचान मिलती है। इन मानदण्डों को निम्न चित्र द्वारा बताया गया है।

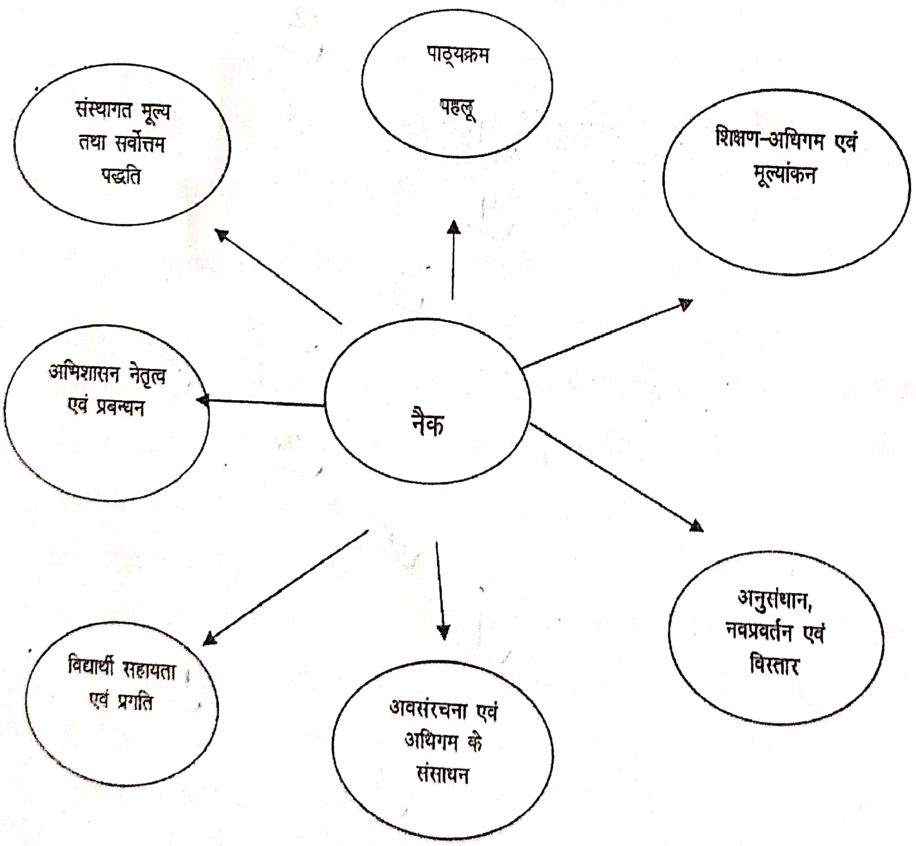

नैक की अवधारणा

यह देखा गया है कि जब भी किसी शैक्षणिक संस्थान द्वारा नैक के कार्यों का सम्पादन किया जाता है। बहुत सारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। नैक की प्रक्रिया बहुत कठिन है। बिना कार्य योजना, प्रभावी प्रबन्धन, निश्चित उद्देश्यों के नैक प्रक्रिया को सफल नहीं बनाया जा सकता, नैक प्रक्रिया निम्न तीन चरणों से गुजरती है–

(प) नैक टीम भ्रमण से पहले

(पप) नैक टीम भ्रमण के दौरान

(पपप) नैक टीम भ्रमण के बाद

नैक प्रक्रिया के अन्तर्गत संस्थान के विभिन्न घटकों (प्रिंसिपल, समन्वयक, शैक्षणिक कर्मचारी, गैर-शैक्षणिक कर्मचारी, विद्यार्थी व पूर्व विद्यार्थियों) की विशेष भूमिका रहती है। अतः इन सभी घटकों को नैक के नवीन मानकों के प्रति सम्पूर्ण जानकारी रखना अति आवश्यक हो जाता है।

१. प्रिंसिपल व समन्वयक की नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकताः प्रिंसिपल संस्था का प्रधान होता है और समन्वयक नैक समिति का प्रधान होता है। इनकी भूमिका संस्था में महत्वपूर्ण होती है। समन्वयक और प्रिंसिपल के द्वारा ही संस्था के सदस्यों से नैक प्रक्रिया से संबंधित कार्य सम्पन्न कराये जाते है। अतः प्रिंसिपल व समन्वयक को नैक के नवीन मानकों के प्रति सम्पूर्ण जानकारी होना अति आवश्यक हो जाता है।

२. शैक्षणिक कर्मचारियों की नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता : प्रबन्धन की अवधारणा के अनुसार कोई भी काम कितना ही बड़ा क्यों न हो टीम वर्क से आसानी से पूरा किया जा सकता है। संस्थान के शैक्षणिक कर्मचारी नैक के उद्देश्यों को समझकर कार्य योजना बनाकर नैक से संबंधित सभी कार्यों को सुव्यवस्थित तरीके से पूरा कर सकते हैं। अतः शैक्षणिक कर्मचारियों को भी नैक के नवीन मानकों के प्रति सम्पूर्ण जानकारी होना अति आवश्यक होता है।

३. गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों की नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता : किसी भी संस्थान के लिए उनकी फाइले, दस्तावेज, महत्वपूर्ण होते है। इन सबके रख-रखाव की जिम्मेदारी गैर शैक्षणिक कर्मचारियों की होती है और नैक प्रक्रिया में फाइलों व दस्तावेजों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः गैर शैक्षणिक कर्मचारियों के लिए भी नैक के नवीन मानकों के प्रति जानकारी रखना अति आवश्यक है।

Scanned with OKEN Scanner

८. विद्यार्थियों की नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता : छात्र शिक्षण संस्थानों की रीढ़ की हड्डी होते है। नैक प्रक्रिया उन्हीं के विकास के लिए शुरू की गई है। छात्र प्रतिक्रिया के लिए अति आवश्यक है। जो पियर टीम को प्रत्यायन प्रदान करने के संबंध में निर्णय लेने में सहायता करती है। पियर टीम भ्रमण के दौरान छात्रों से मिलती है और उनके द्वारा दी गई प्रतिक्रिया के आधार पर रिपोर्ट तैयार करती है। अतः छात्रों का भी इस प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान है तो उन्हें भी इससे संबंधित सभी नियमों व मानदण्डों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

श्य :

१. शिक्षण-संस्थानों व अकादमिक संस्थानों में नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
२. शिक्षण-संस्थानों व अकादमिक संस्थानों में नैक के नवीन मानकों के प्रति क्रियान्विति का अध्ययन करना।

रिकल्पनाएँ

१. शिक्षण-संस्थानों व अकादमिक संस्थानों में नैक के नवीन मानकों के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
२. शिक्षण-संस्थानों व अकादमिक संस्थानों में नैक के नवीन मानकों के प्रति क्रियान्विति में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

निष्कर्ष

हमारे राष्ट्र में उच्च शिक्षा प्रणाली का विकास स्वतंत्रता के बाद हुआ है। इसका उद्देश्य मानव गतिविधि के सभी क्षेत्रों की आवश्यकता एवं विकास में योगदान देना है। वैश्वीकरण की प्रतिस्पर्धी दुनिया में जीवित रहने के लिए सभी उच्च शिक्षा संस्थानों को शिक्षा की उच्च गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। नैक द्वारा इस हेतु अनेक सराहनीय कदम उठाये गए है। भारत के उच्च शिक्षण संस्थानों की बीच गुणवत्तापूर्ण संस्कृति लाने के लिए नैक के आंकलन द्वारा अनेक प्रयास किए गए है। वास्तविक नैक की स्थापना के बाद बड़े पैमाने पर उच्च शिक्षा के समग्र परिदृश्य में परिवर्तन किया गया है।

संदर्भ

१. मया शंकर सिंह, (२००७), अध्यापक शिक्षा : गुणात्मक विकास, प्रथम संस्करण, अध्ययन पब्लिशर्स, दिल्ली।
२. नैक समाचार, (२०१६), नैक के मूल्यांकन व प्रत्यायन प्रक्रिया पर सुधार व बैठक, वॉल्यूम-१६, अंक ०२, जुलाई।
3. shodhganga.inflibnet.ac.in
4. www.naac.gov.in
5. www.ncert.nio.in/publication/journal

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 14, ISSUE- 3 (SEPTEMBER- 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

अतिथि सम्पादक :

रोहतास निम्मी

शोधार्थी, पत्रकारिता विभाग, गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार।

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टाटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

19.	**The Role of National Education Policy, 2020 in Developing the Nation**	**Vikram Singh Bhadoriya**	**113-117**
20.	कोविड-19 का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	विजय कुमार, डॉ. सुगंधा जैन	118-123
21.	**Future Prospects of Teacher Educator in India**	**Dr. Santosh Arora, Md. Matin Arif**	**124-125**
22.	साहित्य और समाज का संबंध	शिवलाल अहिरवार	126-129
23.	हिंदी कविता में राष्ट्रीय चेतना के स्वर	कृष्णा अवतार	130-138
24.	किन्नर जीवन के संघर्ष की चर्चा करते समकालीन उपन्यास	डॉ. रिंकी सिंह	139-144
25.	नन्हे-नन्हे कदमों से चलकर चन्द्रकला की पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हमारी हिंदी	डॉ. नागेन्द्र प्रताप सिंह	145-154
26.	अरबी साहित्य : प्रकाशन परम्परा	डॉ. श्वेता सुकुमार	155-159
27.	पर्यावरण समस्या एवं समाधान के प्रति जागरूकता	डॉ. अमिता जैन	160-163
28.	**PHILOSOPHY OF GURU TEG BAHADUR JI AND ITS RELEVANCE IN MODERN ERA**	**Harpreet Kaur**	**164-168**
29.	वैदिक वाङ्मय में गुरु-शिष्य सम्बन्ध	प्रतिभा	169-174
30.	छायावादी काव्य और रवीन्द्रनाथ टैगोर काव्य में सामान्य जन सामान्य वस्तु के प्रति प्रेम	**Dr. Jhunubala khuntia**	**175-180**
31.	समायोजन उदाहरण व उद्धरण	प्रो. बी.एल.जैन	181-184

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2021 Page No. : 181-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समायोजन उदाहरण व उद्धरण

-प्रो. बी.एल.जैन

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, नागौर (राजस्थान)

शोध सारांश :-

जीवन में समायोजन अत्यंत आवश्यक है। प्राणी जन्म के बाद वातावरण के साथ समायोजित होने का प्रयास करता है। समायोजन के अभाव में प्राणी जीवित नहीं रह सकता। समायोजन अनुकूल व प्रतिकूल के रूप में परिलक्षित होता है। समायोजन शब्द जीव विज्ञान के अनुकूलन का पर्याय है। समायोजन गतिशील प्रक्रिया, चुनौतियों का समाधान, दो अवस्थाओं का संतुलन, परिस्थितियों में संतुलन, आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यक्ति का वातावरण के साथ सामंजस्य है। समायोजन के व्यावहारिक उदाहरण व उद्धरण से व्यक्ति इस सम्प्रत्यय को सरलता से आत्मसात कर सकता है। इसलिए इस शोधपत्र में समायोजन के अनुभवात्मक पक्षों को उदाहरण व उद्धरण से सटीक रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

मूल शब्द :- तालमेल, वातावरण, संतुष्टि, मिठास, समंजन, आवश्यकता की पूर्ति, लक्ष्य की पूर्ति, परिस्थिति।

प्रस्तावना :-

जिस प्रकार किसी मशीन के कलपुर्जे आपस में मिलकर मशीन को संचालित करते हैं। एक छोटा सा पुर्जा भी मशीन को गड़बड़ कर सकता है। यथा कार में एक छोटी सी नलिका ट्यूब से हट जाती है तो पूरी कार को चलने से रोक सकती है। उसी प्रकार व्यक्ति के विभिन्न लोगों के साथ सामंजस्य ही उसके अस्तित्व को बनाए रखने में समर्थ होता है। मनुष्य का समंजन तो मशीन के समंजन से भी बढ़–चढ़कर होता है, क्योंकि व्यक्ति में संवेदनशीलता सूक्ष्मशीलता, सूक्ष्मग्रहीता एवं सृजनशीलता की क्षमताएं है। ये प्राणी से उत्तम कोटि की होती है। अतः मनुष्य को वातावरण के साथ समायोजन करना होता है।

तालमेल :-

घर में रहने वाले स्त्री–पुरुष हो, शिक्षक–छात्र हो, कार्यालयों तथा प्रतिष्ठानों में कार्यरत जूनियर –सीनियर हो, डॉक्टर हो या इंजीनियर सभी समंजन की प्रक्रिया से गुजरते हैं। कार्यक्षेत्र में कड़वाहट के बजाय मिठास, खटकाव एवं तनाव के बजाय तालमेल, मानसिक तोष तथा अपनी जिंदगी को बोझ बनाने की अपेक्षा उसे एक आकर्षक चुनौती के रूप में जीने की कला सीख लेते है। किसी डांस ग्रुप में किसी एक का तालमेल नहीं बैठता है तो हम उसे निकाल देते है क्योंकि उनके साथ उसका तालमेल नहीं बैठा था।

वातावरण :-

शहर की लड़की का गांव में नव वधु के रूप में रहना तथा गांव की लड़की का शहर में नव वधु के रूप में रहना समायोजन है। यहीं अलग–अलग वातावरण में समायोजित होना है। गर्मी के वातावरण में पंखे, कूलर आदि से समायोजित होते हैं, सर्दी के वातावरण में पंखे कूलर को बंद रख के शरीर को समायोजित करते हैं। व्यक्ति का वातावरण के साथ अनुकूलन बैठाना समायोजन है।

संतुष्टि :-

किसी वधु को परिवार के अलग होने पर किसी सामान का हिस्सा नहीं मिलने पर कुंठाग्रस्त हो जाती है। वह अपनी सास को पैरायटी की गाली देकर बुराइयां करके यथा उसकी तो बहन भी ऐसी है, उसके तो घर वाले भी ऐसे हैं, ऐसा कहकर आंतरिक वातावरण से मन को समायोजित करती है।

मीरा को उसका देवर जहर देकर मारने से समायोजित हो रहा था और मीरा ने उसे अमृत मानकर पी लिया। एक बालक अर्द्ध वार्षिक परीक्षा में अपना लक्ष्य कक्षा में प्रथम स्थान का बनाता है लेकिन प्रथम स्थान में न आकर द्वितीय स्थान आता है। वह निराशा और असंतोष मानसिक तनाव और संवेगात्मक संघर्ष का अनुभव करता है, ऐसी स्थिति में वार्षिक परीक्षा में और कठिन मेहनत करता है और पुनः प्रथम स्थान पाना अपना लक्ष्य बनाता है। यदि वह लक्ष्य पा लेता है तो समंजन, नहीं पाता है तो कुसमंजन है।

मिठास :-

किसी दिन कॉलेज में छह बजे तक रुकना पड़ा तो हम घर पर फोन करके सूचना क्यों देते हैं? ताकि उनका आपके प्रति विश्वास व मिठास बना रहे तथा घरवाले लेट पहुंचने पर समंजन हो सके।

समंजन :-

"दुनिया से हीरे मांगे थे, लेकिन मिले कांच के टुकड़े।

फिर भी हमने उन्हें मिलाकर एक अच्छा आईना बना लिया।।"

"रात को दारू पिया तो रात कट गई, सुबह का हिसाब किया तो सांस रुक गई।"

"ऐसा सिला दिया तूने मेरे प्यार का।"

यह प्यार के असमायोजित होने के बारे में संकेत मिलते हैं। ससुराल जाने पर लड़की रोती क्यों है? समंजन होने के लिए।

शिक्षण कराने वाले शिक्षक से छात्र समायोजित है या असमायोजित यह छात्र के समंजन पर निर्भर करता है। पाठ्यक्रम बी.एड. में एम.एड का रख दिया जाए और आपकी फीस दोगुनी कर दी जाए तो क्या होगा? छात्र असमायोजित होंगे। एक मां अपने बालक को प्रथम बार विद्यालय भेजने पर उसके समायोजन हेतु चिंतित रहती है। सेवा मुक्त व्यक्ति अपने आगामी जीवन में समायोजन हेतु उपबोधन की आवश्यकता का अनुभव करता है।

आवश्यकता की पूर्ति :-

जीवन में हमारे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ हम बहुत कुछ पाना चाहते हैं यथा समाज में

प्रतिष्ठा, सम्मान, प्रशंसा यदि ये मिल जाती है तो समंजन और नहीं मिलती है तो कुसमायोजन। आवश्यकता दो प्रकार की होती है– कुछ जन्मजात होती है जैसे भूख, प्यास, नींद, काम, मल–मूत्र त्याग तथा कुछ अर्जित आवश्यकता होती है यथा उपलब्धि, अनुमोदन, आक्रामकशीलता, सत्ता व संबंधन आदि की आवश्यकता।

भूख की आवश्यकता अमाशय खाली होने पर पेट में दर्द, प्यास लगने पर मुंह में गीलापन की कमी होती है। इसकी पूर्ति होने पर हम समायोजित हो सकते हैं। जीवो में अपनी जातियों के साथ रहने की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण प्रत्येक प्राणी अपने समुदाय में रहने का व्यवहार करता है, अतः संबंधन की आवश्यकता होती है। सास बहू पर अपनी सत्ता बनाने का प्रयास करती है, वह सत्ता जमा लेती है तो उसकी सत्ता की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है। अधिक सामग्री एकत्र करना यह लोग दूसरों पर समायोजन का प्रयास करते हैं, ऐसा करके वे अपने आपको समायोजित करते हैं। बच्चे तथा किशोरों में अनुमोदन की आवश्यकता अधिक होती है वे उसे पाकर समायोजित हो जाते हैं।

लक्ष्य की पूर्ति :-

एक बालक किसी संस्थान में मेडिकल कोर्स में प्रवेश पाने के लिए अथक परिश्रम करता है, उसे सफलता मिल जाती है तो समायोजन अन्यथा वह लक्ष्य में परिवर्तन करके किसी दूसरे संस्थान में प्रवेश लेता है। बी.एड. में स्वयं के चयन के हिसाब से कॉलेज में प्रवेश नहीं मिलता है, तो हम क्या करते हैं या तो अन्य कॉलेज में प्रवेश लेते हैं या बी.एड. नहीं करके समायोजित होते हैं। सभी व्यवहार प्रेरकों पर आधारित होते हैं। प्रेरक के मूल में आवश्यकताएं होती है। हम प्रतिदिन सोना, जागना, चिंतन करना, चलना, बैठना आदि विभिन्न क्रियाएं क्यों करते हैं? इन्हें आवश्यकताओं से प्रेरित होकर मनुष्य लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। लक्ष्य प्राप्ति हो जाती है तो समायोजन, लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती है तो तनाव रहता है। कुछ क्रियाएं ऐसी होती है जिसकी प्राप्ति में बाधाएं आती है। जो बाधा अप्रिय अनुभूति की होती है वह कुंठा है।

पाठ्यक्रम के किसी विषय के कठिन लगने पर, विद्यालय में पढ़ने में मन नहीं लगने पर विद्यार्थी असमायोजित रहते है। समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन कर अपने वातावरण में सामंजस्य स्थापित करता है।

परिस्थिति :-

परिस्थिति के अनुसार स्वयं में ढालने या विपरीत परिस्थिति में स्वयं को ढालना समायोजन है। प्रत्यक्ष समायोजन के तीन विकल्प है– उस परिस्थिति को परिवर्तित कर देना एवं स्वयं परिस्थिति में ढलना या परिस्थिति से स्वयं को दूर कर लेना।

निष्कर्ष :-

समायोजन में प्राणी को विभिन्न वातावरण, विविध कार्य क्षेत्र, विभिन्न लोगों के साथ तालमेल बैठाना, लोगों के साथ मधुर, स्नेह एवं मिठास पूर्ण तरीके से बातचीत करना, परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालना, मूलभूत आवश्यकताओं व लक्ष्य की पूर्ति समय पर करना, समस्याओं के समय धैर्य से समाधान ढूंढना, समायोजन हेतु

विविध युक्तियों जैसे दूबाया उन्मूलन, संयुक्तिकरण, आवश्यकताओं की प्राथमिकताएँ में परिवर्तन, लक्ष्य परिवर्तन, मार्गान्तीकरण, शोधन, औचित्य स्थापन, प्रक्षेपण विनिवर्तन, प्रतिगमन, आत्मीकरण, आक्रमकता, दमन, दिवास्वप्न, क्षतिपूर्ति, निर्भरता, आदि युक्तियों को अपनाकर प्राणी समायोजित हो सकता है। असमायोजित व्यक्ति अनेक बीमारी का शिकार हो जाता है, समायोजित व्यक्ति सदैव प्रसन्न, खुश और स्वस्थ रहता है। व्यक्ति वातावरण के साथ अंतक्रिया करता है। जीवन सुख–दुःख का मिश्रण है। वातावरण के साथ अनुकूलन होने पर समायोजित हो जाता है और अपने आप को सुखी महसूस करता है। वातावरण के साथ प्रतिकूल होने पर असमायोजित हो जाता है और अपने आप को दुखी महसूस करता है। व्यक्ति को वातावरण के साथ अंतक्रिया करनी होती है, अंतक्रिया में समायोजित होना समायोजन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. श्रीवास्तव, डी.एन. व वर्मा, प्रीती संशोधित संस्करण (2014). बाल मनोविज्ञान व बाल विकास, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
2. वर्मा, एल.एन. (2014). प्रयोगात्मक शिक्षा मनोविज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
3. अस्थाना, मधु एवं वर्मा, किरण बाला (2012). व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 221009
4. समणी, ऋजु प्रज्ञा, नवीन संस्करण (2011). व्यक्तित्व विकास और योग, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं–341306 (राजस्थान)
5. पाल, हंसराज (2006) प्रगत शिक्षा–मनोविज्ञान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

bljainjvbu@gmail.com, Mob-9414624169

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

संतुलित आहार विज्ञान

प्रो.बी.एल.जैन
विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग)
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं, नागौर, राजस्थान

शोध संक्षेप

भोजन में संतुलित आहार अत्यंत आवश्यक है। संतुलित आहार का अभाव अनाहार बन जाता है। वह शरीर का पोषण नहीं कर सकता है। शरीर को संपोषित आहार ही सुरक्षित रख सकता है। संतुलित आहार को जानने के लिए संतुलित आहार विज्ञान जानना आवश्यक है। संतुलित आहार विज्ञान में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन खनिज पदार्थ और पानी के कार्यो की जानकारी प्रदान की गई है। यह शोधपत्र आज की दैनिक आहार में मार्गप्रशस्त का कार्य करेगा।

मुख्य शब्द : *प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज पदार्थ और पानी*

प्रस्तावना

अन्न सात भागों में बंटता है। उसी से हमारा शरीर बनता है। अथर्ववेद के उपवेद आयुर्वेद में इसे इस प्रकार समझाया गया है. अन्न का सबसे पहले रस बनता है, इस रस का सार खून, खून का सार मांस, मांस का सार चर्बी, चर्बी का सार हड्डी, हड्डी का सार मज्जा, मज्जा का सार शुक्र, वीर्य का सार मन, मन का सार ओज है। हमारे शरीर में एक अग्नि है जिसे जठराग्नि या वैश्वानर अग्नि कहते हैं। यह अग्नि अन्न को इस प्रकार मथती रहती है, जिसके कारण सात अंश एक दूसरे के बाद बनते चले जाते हैं। यह अन्न ही हमारे शरीर निर्माण की प्रक्रिया है। इसलिए वेद में कहा कि ब्रहमचारी को सादा और तपस्या का जीवन बिताना चाहिए। चटपटे भोजन नहीं करने चाहिए, तड़क-भड़क वाली जिंदगी बिताना ब्रहमचारी के लिए ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसी जिंदगी वीर्य की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर देती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तेज मसाले वाले खाने नहीं खाने चाहिए भूख से थोड़ा कम खाना चाहिए, सवेरे जल्दी उठना चाहिए, आलस्य नहीं करना चाहिए, सर्दी गर्मी से घबराना नहीं चाहिए, ऋतु के अनुकूल वस्त्र पहनने चाहिए, शरीर पर खुली हवा और धूप अवश्य लगनी चाहिए। सबसे बढ़कर मन को हर तरह से पवित्र रखना चाहिए। शरीर के संबंध में दो बातें आवश्यक है. शुक्र से ओज, ओज से मन बनता है। अन्न से बनने वाला अंतिम अंश शुक्र या वीर्य नहीं है। रस से लेकर अंतिम अंश शुक्र तक के सात अंशों का संबंध पृथ्वी से है। वे सब ठोस हैं जिन्हें छुआ जा सकता है। लेकिन इसके बाद एक अंश है जिसे छुआ नहीं जा सकता है। जो अन्न बनता है इस अंश को ओज कहते हैं। यह ओज वीर्य का सार है। महापुरुषों के चेहरे पर एक विशेष प्रकार की चमक देखी जाती है। चित्रों में इस चमक को महापुरुषों के सिर के पीछे गोलाकार या तेज मंडल बनाकर प्रकट किया जाता है। यही चमक ओज कहलाती

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

है। जो व्यक्ति वीर्य को जितना सुरक्षित रखेगा उतना ही उसके चेहरे पर चमक आती है। इसलिए प्राचीन महापुरुषों के चेहरे को चमकते हुए देखते है। इसलिए कहा गया है कि जैसा खाए अन्न वैसा होगा मन। अन्न आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है और आहार एक विज्ञान है। आहार ठीक प्रकार से नहीं करने पर व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की व्याधियों प्रवेश कर जाती है। इसलिए संतुलित आहार हमारे जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है और इस आहार के माध्यम से हम अपने जीवन को दीर्घायु में परिवर्तित कर सकते हैं। पौष्टिक आहार और संतुलित भोजन हमारे शरीर का विकास समुचित ढंग से कर सकता है। आज के जीवन में कुपोषित आहार के कारण व्यक्ति के अंतर्गत अनेक प्रकार के विकार और रोगों की वृद्धि हो रही है। विज्ञान की दृष्टि में आहार एक रासायनिक पदार्थ है, जो हमें खाद्यान्न के द्वारा प्राप्त होता है। आहार के मुख्य तत्व प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज पदार्थ और पानी है।

शरीर के तीन मुख्य कार्य

1 वृद्धि : प्रोटीन और खनिज पदार्थ शरीर का विकास करते हैं

2 शक्ति : कार्बोहाइड्रेट और वसा शरीर में शक्ति बढ़ाने का कार्य करते हैं

3 संचालन : विटामिन्स शरीर के विभिन्न कार्यो को संचालित करते हैं, इस प्रकार संतुलित आहार ही जीवन को सर्वोत्तम ढंग से विकसित करता है। अपनी दिनचर्या में मोटे और चोकर अनाज की रोटी, हरीसब्जी, फल, सलाद आदि को शामिल करना चाहिए। जिससे हमारा शरीर स्वस्थ रह सकता है।

संतुलित आहार के मुख्य तत्व

1 प्रोटीन : प्रोटीन का नामांकन श्री वर्जिलियस ने किया था। प्रोटीन आहार का मुख्य तत्व है, क्योंकि प्रोटीन द्वारा ही कोशिकाओं का निर्माण होता है और हमारे शरीर की वृद्धि के लिए प्रोटीन अत्यंत आवश्यक है। प्रोटीन वास्तव में नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और इसके अतिरिक्त गंधक तथा फास्फोरस नामक तत्व से बने होते हैं। पेड़-पौधे तो हवा और मिट्टी से नाइट्रोजन खींचकर अपनी वृद्धि के लिए आवश्यक प्रोटीन प्राप्त कर लेते हैं, किंतु मनुष्य और पशुओं के लिए यह संभव नहीं है। उन्हें भोजन के माध्यम से ही प्रोटीन प्राप्त करना होता है। प्रोटीन के मुख्य दो स्रोत हैं.1 एक प्राणी जगत से प्राप्त प्रोटीन 2 दूसरा वनस्पति जगत से प्राप्त प्रोटीन। प्राणी जगत से प्राप्त होने वाले भोज्य पदार्थ मांस, मछली, अंडा, दूध आदि होते हैं। इनमें पूर्ण रूप से प्रोटीन पाया जाता है। क्योंकि इसके अंतर्गत अमीनो अम्ल विद्यमान होता है। वनस्पति जगत से प्राप्त भोज्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा पूर्ण नहीं होती है। इसलिए वनस्पतिजगत से प्राप्त प्रोटीन अपूर्ण प्रोटीन कहलाता है। इनमें अमीनो अम्ल विद्यमान नहीं होता है। इस कारण से यह शरीर में पूर्ण रूप से उपयोगी नहीं होता है। प्रोटीन युक्त भोजन खाने से शरीर का विकास बहुत अच्छी तरीके से होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की दालों को मिलाकर पकाने से, बेसन व आटे को मिलाकर चपाती बनाने से, सोयाबीन, मूंगफली अथवा अन्य दालों का आटा मिलाकर रोटी बनाने से प्रोटीन युक्त भोजन बन जाता है। आहार में प्रोटीन का स्थान प्रमुख माना जाता है। प्रोटीन के मुख्य स्रोत. सोयाबीन, मूंगफली, दाल, मांस, मछली, अंडा, चावल, दूध आदि है। जब कभी शरीर में शक्ति

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

का अभाव होता है तो प्रोटीन अपना मुख्य कार्य छोड़कर इसकी पूर्ति करता है। प्रोटीन हमारे शरीर के अवयवों की बढ़ोतरी जैसे विशिष्ट कार्य करते हैं। प्रोटीन की कमी से अनेक प्रकार के रोग हमारे शरीर में हो जाते हैं। क्योंकि प्रोटीन का मुख्य कार्य वृद्धि करना है। यदि बालक को पूर्ण रूप से प्रोटीन नहीं मिलता है तो बालक की अवस्था प्रोटीन के अभाव में रुक जाती है। कोरोना से पीड़ित व्यक्ति को प्रोटीन अधिक देने के लिए कहा जाता है, क्योंकि प्रोटीन से व्यक्ति में ताकत भी आती है।

2 कार्बोहाइड्रेट : कार्बोहाइड्रेट के अंतर्गत अनाज, मिठाईयां, मीठाफल, शक्कर, केला, आम, गाजर, दूध, दाल आदि आते हैं। कार्बोहाइड्रेट को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँट सकते है 1 मांड 2 शक्कर 3 ग्लूकोस।

मांड : यह अनाज में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस कार्बोहाइड्रेट को शरीर आँतों द्वारा बने पाचक रस से साधारण कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित कर देता है।

शक्कर : हमारी आँतों को शर्कराओं को काम में लेने के लिए और अधिक सरल शर्कराओं में परिवर्तित करना पड़ता है। वह शर्करा ग्लूकेस रूप में बनती है। अतः कार्बोहाइड्रेट मांड से शक्कर में, शक्कर से ग्लूकोस रूप में परिवर्तित होता है।

कार्बोहाइड्रेट की कमी : कार्बोहाइड्रेट की कमी से शरीर में ऊर्जा एवं शक्ति की कमी हो जाती है। फिर प्रोटीन से शरीर ऊर्जा लेता है, जो उचित नहीं माना जाता है।

कार्बोहाइड्रेट की अधिकता : कार्बोहाइड्रेट की अधिकता से शरीर में मधुमेह रोग होने की संभावना होती है।

3 वसा :. वसा से हमारे शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, वसा से शरीर की आकृति बनती रहती है, वसा शरीर के तापक्रम को संचालित करने में सहायक होती है, यह आहार का आवश्यक भाग है। वसा को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा है. 1 एक वह वसा जो हमारे शरीर में जमा हो जाती है, जैसे शुद्ध घी, मक्खन एवं पशुओं से उपलब्ध अन्य वसाएं। 2 दूसरी वसा वह जो हमारे शरीर में जमा नहीं होती है। इस वसा के स्रोत हैं. मूंगफली, सरसों, सोमा, सूर्यमुखी आदि का तेल, जो शरीर में जमा नहीं होते हैं। यह अक्सर पिघले हुए रहते हैं। प्रथम वसा में सेचुरेटेड फेटी एसिड की मात्रा अधिकाधिक होती है और दूसरी वसा में अनसेचुरेटेड फेटी एसिड की मात्रा अधिक होती है। वसा भोजन को रुचिकर बना देती है। यह कम मात्रा में अधिक ऊर्जा प्रदान करती है तथा इनसे विटामिन ए तथा डी प्राप्त होता है। खाना पकाने में भी वसा सहायक होती है। क्योंकि इनसे खाद्य पदार्थो को गर्मी निरंतर और समानता पूर्वक मिलती रहती है। इनसे खाना अधिक स्वादिष्ट बन जाता है और उसकी ऊर्जा बढ़ जाती है। सब तरह की वसा प्रति ग्राम 9 कैलोरी ऊर्जा देती है। हमारे संतुलित आहार में लगभग 40 प्रतिशत ऊर्जा वसा द्वारा प्राप्त होती है।

वसा की कमी : वसा अम्ल की कमी से बालक की चमड़ी खुरदरी हो जाती है।

वसा की अधिकता : भोजन में आवश्यक वसा के अधिक उपयोग से बालक में मोटापा और प्रौढ़ों में उच्चरक्त एवं हृदय रोग आदि हो जाते हैं।

4 विटामिन्स : विटामिन्स भोजन का सबसे सूक्ष्म और महत्वपूर्ण भाग है। यह शरीर की विभिन्न प्रक्रिया जो प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट आदि को काम में लेने की होती है, उनमें यह प्रेरक की भूमिका अदा करता है। विटामिन दो प्रकार के होते हैं ;.1 एक विटामिन वह होते हैं

जो वसा में घुलनशील होते हैं। जैसे विटामिंस ए, डी, ई। 2 दूसरे विटामिंस वे होते हैं जो पानी में घुलनशील होते हैं जैसे बी, सी आदि। विटामिंस की कमी से उत्पन्न अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

विटामिन ए, विटामिन डी, विटामिन बी, विटामिन बी कामप्लेक्स, विटामिन बी 1, विटामिन बी 2, विटामिन बी 7, विटामिन बी 12, विटामिन सी, विटामिन ई, विटामिन के आदि। विटामिन ए की कमी विकासशील देशों में सबसे अधिक समस्या के रूप में उभर कर आ रही है। भारत में हर वर्ष 14000 बालक विटामिन ए के कारण अंधे हो जाते हैं। विटामिन ए आंखों को रोशनी प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है। विटामिन ए हमारे शरीर की श्लेष्मा झिल्ली और त्वचा की कोशिकाओं को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है। बालकों में तो यह विटामिन वृद्धिजनक है। इसके अभाव में बालक को बार-बार खांसी, जुकाम या फोड़े-फुंसी होते रहते हैं। विटामिन ए के मुख्य स्रोत हैं हरी साग, सब्जी और फल। जिसमें गाजर, पालक, हरी मिर्च, धनिया, काशीफल, पपीता, आम, टमाटर आदि मांसाहारी लोग अंडे, मछली से विटामिन ए प्राप्त कर सकते हैं। दूध और मक्खन में भी विटामिन ए प्रचुर मात्रा पाया जाता है।

विटामिन ए की न्यूनता के कारण बालक का मानसिक व शारीरिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। सबसे पहले गोधूलि के समय में दिखना कम होता है। जिसे रतौंधी रोग कहते है। अधिक न्यूनता होने पर आंखों में सूखापन, झिल्ली पर चूने जैसी सफेदी जमना, कोर्निया का धुंधला होना और इस तरह अंधापन होना पाया जाता है। बालकों में खांसी, जुखाम आदि लम्बे समय तक रहता है। बालक की त्वचा पर खुरदरापन भी होने लगता है। इस रोग से बचाव हेतु हरी सब्जी आदि खानी चाहिए।

5 खनिज पदार्थ : खनिज पदार्थ हमारे भोजन में वैसे ही आवश्यक हैं जैसे कि विटामिंस। यह भी हमें थोड़ी मात्रा में लेने होते हैं। छोटे बालक के शरीर में खनिज लवणों की मात्रा कम होती है, किंतु शरीर के विकास के साथ इनकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। अनुमानित है एक वयस्क के शरीर का साढ़े चार प्रतिशत वजन खनिज पदार्थों का होता है। जिसमें से 80 प्रतिशत से भी अधिक हड्डियां 10 प्रतिशत मांसपेशियों तथा बाकी भाग सारे शरीर में होता है। हमारे शरीर को मुख्यतः कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, पोटेशियम, सोडियम, क्लोराइड, आयोडीन और कोबाल्ट की आवश्यकता होती है। कुछ खनिज पदार्थ ऐसे होते हैं जिन्हें बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में लेने की आवश्यकता होती है, जैसे फ्लोराइड, तांबा, जस्ता, मैग्नीज आदि। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ जो हमारे शरीर में सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं लेकिन इनका कार्य हमें पूर्ण से मालूम नहीं होता है जैसे सेलिनियम, सिलीकान, एलुमिनियम, निकल आदि।

कैल्शियम : यह हमारी हड्डियों और दांतों की बनावट का मुख्य तत्व माना जाता है। मांसपेशियों की जकड़न, तंत्रिकाओं का कार्य, रक्त का जमाव, हृदय की मांसपेशियों का संचालन और मां का दूध बनना कैल्शियम द्वारा ही संपन्न होता है। दूध, हरी साग सब्जी और अंडे में यह अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। खाद्य पदार्थों में से कैल्शियम आँतों द्वारा रुधिर में सोख लिया जाता है। रक्त से यह हड्डियों और दांतों में जमा हो जाता है और पैराथारोइड ग्रंथि द्वारा यह समय-समय पर हड्डियों से

रुधिर और रुधिर से हड्डियों में क्रिया करता रहता है। जब कभी कैल्शियम की मात्रा हमारे शरीर में कम हो जाती है तो हड्डियों का कमजोर होना, वक्रता आना, वृद्धि में रुकावट दांतों का कमजोर होना भी संभव है।

फास्फोरस : फास्फोरस भी हमारे शरीर में कैल्शियम के साथ हड्डी में व दांतों में जमा हो जाता है। इसके स्रोत भी वही हैं जो कैल्शियम के होते हैं। यह हमारी कोशिकाओं की बनावट तथा उनमें उर्जा उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

सोडियम : यह हमारे शरीर के रसाकर्षण की क्रिया के लिए अति आवश्यक है। इसके कारण हमारे शरीर का जल संतुलन बना रहता है। वैसे तो हम इन्हें साधारण नमक द्वारा प्राप्त करते हैं, जो रासायनिक दृष्टि से सोडियम क्लोराइड होता है। लेकिन इनके अतिरिक्त दूध, अंडे, खाने का सोडा और मांस से भी प्राप्त होता है। सोडियम की कमी से मिचली, दस्त, हाथ-पांव में बाँयटे आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। अधिक दस्त लगने पर शरीर का पानी सूख जाता है।

लोह : लोह से हमारे शरीर में रक्त की रचना संभव है। मांसपेशियों को बनाने के लिए भी लोहा आवश्यक है। यह यकृत, मांस, अंडे की जर्दी, हरी सब्जी, अनाज, दालों व मेवों से प्राप्त होता है।

पोटेशियम : यह खनिज सभी खाद्य पदार्थों में विद्यमान होता है। प्रतिदिन हमें 1 से 2 ग्राम पोटेशियम की आवश्यकता होती है। यह हमारी मांसपेशियों की जकड़न, सिकुडन, हृदय की गति और तंत्रिकाओं की सक्रियता के लिए आवश्यक खनिज लवण है। इसकी कमी अधिक समय भूखे रहने, दस्त लगने या मधुमेह के रोग में पाई जाती है। इसकी कमी से अधिक कमजोरी, पेट का फूलना, हृदय गति का तेज होना और भूख न लगना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

फ्लोराइड : फ्लोराइड दांतो और हड्डियों की बनावट में सहायक खनिज पदार्थ है। प्रतिदिन आधे से 1 मीटर ग्राम फ्लोराइड की आवश्यकता होती है। शहरों के पानी के स्रोत में प्रति मिलियन भाग पानी में एक भाग फ्लोराइड मिला देनी चाहिए। ऐसा करने से बालक में दांतों की सडन को रोका जा सकता है। वैसे फ्लोराइड हमें पानी के अतिरिक्त मांस, मछली से भी उपलब्ध होता है। फ्लोराइड की मात्रा अधिक हो जाती है तो यह शरीर की हड्डियों और दांतों के लिए हानिकारक होती है।

6 पानी : जीवन को बनाए रखने में ऑक्सीजन के बाद पानी का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर पानी नहीं मिले तो मानव का जीवित रहना संभव नहीं है। शिशुओं में पानी उनके वजन का 70 प्रतिशत भाग होता है। बालक की खुराक प्राकृतिक रूप से जल प्रधान होती है, जैसे दूध फल और सब्जी आदि में 90 प्रतिशत पानी का होता है। हमारे शरीर से पानी अधिकतर 50 प्रतिशत फुफ्फुस और त्वचा द्वारा और उतना ही मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है। पानी से ही शरीर की सारी रासायनिक कियाएँ संभव होती हैं। पानी के अभाव में बालक का मूत्र गाढ़ा और गहरे रंग का होने लगता है। पानी की कमी से मुंह सूख जाता है, व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है।

निष्कर्ष

शरीर के मुख्य तीन कार्य हैं : विकास, शक्ति और संचालन। विकास प्रोटीन और खनिज पदार्थों के माध्यम से होता है। शक्ति का वर्धन कार्बोहाइड्रेट और वसा से होता है और संचालन विटामिंस के माध्यम से होता है। प्रोटीन के अंतर्गत गेहूं, दाल, चावल, दूध, दही, मूंगफली आदि आते हैं। खनिज पदार्थ के अंतर्गत रागी, आटा, दाल, हरी सब्जी, दूध, कैल्शियम, बाजरा,

चावल, फल, दूध से बनी चीजें। कार्बोहाइड्रेट के अंतर्गत मीठा फल, शक्कर, केला, आम, गाजर, दूध, दाल आदि। वसा के अंतर्गत समस्त प्रकार के तेल, घी, दूध, मांस, अंडा आदि आते हैं। विटामिंस के अंतर्गत हरी सब्जी, पीले फल, आम, पपीता, गाजर, टमाटर आदि आते हैं। अत: आहार का जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है संतुलित आहार जीवन को गति प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 भंडारी, भगवतीलाल, (1977) शाला स्वास्थ्य सेवाएँ एवं शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर
2 मुनि किशनलाल, (2010) जीवन विज्ञान, जैन विश्व भारती, लाडनूं 341306
3 आचार्य महाश्रमण (2014) सुखी बनो, जैन विश्व भारती, लाडनूं 341306
4 कोठारी गुलाब (2016) मानस : संस्कृति और सभ्यता, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर
5 कोठारी गुलाब (2006) मानस : 2 मानव मन : व्यक्ति और समाज, राजस्थान पत्रिका केशरगढ़, जवाहरलाल नेहरु मार्ग, जयपुर 302004

Shodhsamhita
शोधसंहिता
ISSN No. 2277-7067

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that

प्रो. बी.एल. जैन
विभागाध्यक्ष शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय लाडनूँ, नागौर

For the paper entitled

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इन्टर्नशिप की वस्तुस्थिति

Volume No. IX, Issue 1(I), 2022-2023

in

Shodhsamhita

UGC Care Group 1 Journal

Editor-in-Chief

Scanned with OKEN Scanner

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7
UGC CARE Grou

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इन्टर्नशिप की वस्तुस्थिति

शिवानी भोजक
शोधार्थी, जैन विश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय लाडनूँ, नागौर

प्रो. बी.एल. जैन
विभागाध्यक्ष शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय लाडनूँ, नागौर

सारांश
किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यही कारण है कि अध्यापक को सर्वोत्तम व्यव की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान में इन्टर्नशिप कार्यक्रम भावी शिक्षकों को एक ओर स्व अधिगम, स्व–ज्ञान, रचनात्मक दृष्टि तथा शिक्षण के अभ्यास के साथ शैक्षिक सिद्धान्त और शैक्षणिक अवधारणाओं को जोड़ने का अवसर प्रदान करता है तथा दू तरफ वास्तविक स्कूल परिस्थितियों में सैद्धान्तिक प्रस्तावों की वैद्यता का अवसर भी प्रदान करता है। इन्टर्नशिप कार्यक्रम शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में एक निश्चित समयावधि के अनुसार रखा गया है जिसमें प्रत्येक बी.एड. कर रहे प्रशिक्षुओं इन्टर्नशिप के लिए सरकारी विद्यालयों में जाना होता है। इर्न्टनशिप कार्यक्रम में कौनसे आयाम सम्मिलित किए गए है शिक्षक–प्रशिक्षण में इन्टर्नशिप की भूमिका क्या है? इन्टर्नशिप का प्रभाव प्रशिक्षुओं तथा विद्यालयों पर क्या परिलक्षित हो रहे इन्टर्नशिप के दौरान क्या समस्याएँ परिलक्षित हो रही है? इन सभी को समझने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है।
मुख्य शब्दः इर्न्टनशिप, शिक्षक–प्रशिक्षण, अनुभवात्मक अधिगम, अभ्यास शिक्षण, सहभागिता, स्व विचार, उत्तम पेशा, समयावधि वस्तुस्थिति

प्रस्तावना

शिक्षा वास्तव में एक ज्ञानोन्मुक्त प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक मानव की छिपी हुई शक्तियों को विकसित और उजागर किया जात है। उसमें नये ज्ञान, कुशलताओं, मूल्यों, आदर्शों आदि को सिखाया जाता है जिससे कि वह अपने वातावरण पर अधिकार पा सके, समाज में अपना सही स्थान प्राप्त कर सके और मानव जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।

शिक्षण कार्य को प्रारम्भ से ही सम्मानजनक पेशे के रूप में देखा जाता रहा है। प्राचीनकाल में शिक्षक–प्रशिक्षण की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं थी। बदलती हुई शैक्षिक व्यवस्थाओं एंव जटिलताओं के कारण शिक्षण में अभ्यास को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। अभ्यास शिक्षण कार्यक्रम का सही अर्थ यही है कि वह भविष्य में शिक्षण में वास्तविक अनुभव एवं बच्चों को पढ़ाने के कौशल में अभिवृद्धि करता है।

वर्तमान युग की माँग है कि शिक्षा का प्रयोजन और स्वरूप बदला जाये। शिक्षक को पढ़ाने पर जोर देने के बजाय विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे स्वयं अपने प्रयासों से नवीन जानकारियाँ सीखे, नवीन सिद्धान्त खोजे और नवीन ज्ञान का अर्जन करे, विविध कुशलताओं को अर्जित करे और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में उभर कर सामने आए। इस कार्य हेतु उसे भरपूर नवाचारों का प्रयोग करने में उसकी दक्षता विकसित होती है। शिक्षा के लक्ष्य, प्रक्रिया और महत्व बहुत विस्तृत हो गये है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि अब शिक्षक का कार्य पहले की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत, विशेषीकृत और जिम्मेदारी का हो गया है।

शिक्षक–प्रशिक्षण : शिक्षक–प्रशिक्षण जो अभी तक सैद्धान्तिक प्रवृति पर आधारित था, वर्तमान में वह 'इन्टर्नशिप कार्यक्रम' के माध्यम से प्रायोगिक हो गया है, जो शिक्षक–प्रशिक्षकों को वास्तविक वातावरण में शिक्षण करने की स्थितियाँ प्रदान करता है। इन्टर्नशिप कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षुओं में शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता, क्षमता, जवाबदेही, कर्तव्य परायणता का विकास करना होता है।

इन्टर्नशिप का अर्थः उद्देश्यपरक शिक्षण कैसे किया जाए और विद्यार्थी को वांछित अधिगम के लिए कैसे प्रेरित किया जाए के साथ शिक्षक प्रशिक्षणार्थी के लिए यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि विद्यालयी जीवन में होने वाली अन्य विभिन्न गतिविधियों का

Scanned with OKEN Scanner

सफल संचालन कैसे किया जाए। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को विद्यालयी जीवन में होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों, गतिविधियों व उत्तरदायित्वों को समझने, सीखने व प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था का नाम है 'इन्टर्नशिप'। इन्टर्नशिप की व्यवस्था इस अवधारणा पर आधारित है कि जीवन के वास्तविक अनुभव वास्तविक परिस्थितियों से ही प्राप्त होते है।

अनुभवात्मक अधिगमः इन्टर्नशिप का अर्थ किसी समर्थवान पर्यवेक्षक के निर्देशन में व्यावहारिक ज्ञान व अनुभव प्राप्त करने को समाहित करता है। जिसमें विद्यार्थी अपने सैद्धान्तिक ज्ञान का जिसे उसने कक्षाओं में सीखा है, उसका परीक्षण करता है। प्रशिक्षुता में वे सभी महत्वपूर्ण अनुभव सम्मिलित हैं जो वास्तविक कार्यक्षेत्र में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त किये जाते है। यह कार्यक्रम सार्थक कौशलों के विकास के साथ–साथ विद्यार्थियों से सम्बंधित व्यवसाय के प्रति संवेदनशीलता एवं विशिष्ट अभिवृत्ति का भी विकास करता है। प्रशिक्षुता कार्यक्रम प्रशिक्षुओं के लिए एक उपयोगी तथा लाभदायक घटक है। प्रशिक्षु सीखने की अवस्था के रूप में होता है तथा जो ज्ञान विद्यार्थी सीख रहा है उसी ज्ञान को वह कार्यस्थल पर जाकर लागू करता है। इन्टर्नशिप कार्यक्रम अनुभवात्मक अधिगम का एक रूप है जो प्रशिक्षुओ द्वारा अभ्यासित ज्ञान व कौशल का वास्तविक कार्य क्षेत्रों के वास्तविक क्षेत्र में उपयोग एवं विकास समाहित करता है।

इन्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्यः इन्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य छात्र को सार्थक अनुभव के अंतर्गत एक प्रशिक्षु के रूप में अवसर प्रदान करना हैं। अतः इन्टर्नशिप कार्यक्रम की संरचना ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रशिक्षु एक नियमित शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए विद्यालयी क्रियाकलापों से पूर्ण रूप से अवगत हो जाय। इसके साथ ही साथ एक प्रशिक्षु की भूमिका रचनात्मक व्यक्तित्व के रूप में परिवर्तित हो सके। अतः प्रशिक्षुओं को विद्यालय में आवश्यक भौतिक एवं शिक्षा शास्त्रीय स्वतंत्रता उपलब्ध करायी जानी चाहिए जिससे कि नवाचार करने के लिए पर्याप्त अवसर मिल सके। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालयी हितों को ध्यान में रखते हुए सर्व सम्मति और साझेदारी में इस प्रकार का इन्टर्नशिप आदर्श प्रस्तावित किया जाए जिससे शिक्षण क्रिया का संवर्द्धन हो सके। इन्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य प्रशिक्षुओं में विद्यार्थियों को समझने की क्षमता, कक्षा–कक्ष की क्रियाओं, सैद्धान्तिक/प्रायोगिक शिक्षा–शास्त्रीय समझ, विद्यालयी नीतियों एवं कौशलों, विद्यालयी वातावरण के विभिन्न पक्षों का आधारभूत ज्ञान एकत्रित कर विकसित करना है। जैसे विद्यालयी वातावरण, बच्चों को समझने की क्षमता, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, शैक्षिक नवाचारों आदि से अवगत कराना है।

अभ्यास शिक्षणः शिक्षण प्रक्रिया में इन्टर्नशिप अभ्यास की विधि के सुधार के रूप में कार्य कर रहा है। इस कार्यक्रम में अभ्यास शिक्षण तथा निर्देशित क्षेत्र अनुभवों का समायोजन है, प्रतिष्ठित विद्यालयों का चुनाव किया जाता है और शिक्षार्थी सावधानीपूर्वक अभ्यास शिक्षण को निर्देशित करते है तथा उन सभी अनुभवों का समायोजन करते हैं। शिक्षण में इन्टर्नशिप का प्रयोग इस तरह किया जाता है जिससे भावी शिक्षक को प्रायोगिक अनुभवों का ज्ञान दिया जा सके तथा जो स्कूल की सम्पूर्ण परिस्थितियों में उसे व्यावसायिक सर्वोच्चता दिलाने में समर्थ हो। यशपाल समिति की रिपोर्ट (1993) जो कि बिना किसी बोझ के सीखने पर बल देता है, में यह प्रस्तावित किया गया कि प्रशिक्षुओं के लिए एक ऐसा कार्यक्रम होना चाहिए जो उनमें स्व अधिगम तथा स्वतंत्र विचारों को विकसित करने वाला हो।

सहभागिताः इन्टर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षु की सम्पूर्ण सहभागिता से ही पूर्ण किया जाता है तथा यह प्रशिक्षु की क्षमताओं के मूल्यांकन में भी सहायक है। यह उसे निरंतर अधिगम और अपने कार्य में और अधिक कुशलता लाने के लिए अभिप्रेरित करता हैं। इन्टर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षुओं की अर्थपूर्ण कक्षा–कक्ष गतिविधियों के चयन, प्रारूप निर्धारण, संगठन तथा निर्देशित करने में सहायता करता है, निरीक्षण के द्वारा उसमें समीक्षात्मक दृष्टिकोण का विकास करने, रिकॉर्ड रखने, नवीन नीतियों के निर्माण करने, मूल्यांकन करने में सहायता करता है। शिक्षण अभ्यास के दौरान पृष्ठपोषण की व्यवस्था प्रदान करता है।

स्व विकासः वर्तमान में इन्टर्नशिप कार्यक्रम भावी शिक्षकों को एक ओर स्व–अधिगम, स्व–ज्ञान, रचनात्मक दृष्टिकोण तथा शिक्षण के अभ्यास के साथ शैक्षिक सिद्धान्त और शैक्षणिक अवधारणाओं को जोड़ने का अवसर प्रदान करता है और दूसरी तरफ वास्तविक स्कूल परिस्थितियों में सैद्धान्तिक प्रस्तावों की वैद्यता का परीक्षण करने का अवसर भी प्रदान करता है।

Scanned with OKEN Scanner

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

पेशा: वर्तमान संदर्भ में देखा जाए तो शिक्षण को एक उत्तम व्यवसाय, पेशे एवं मिशन कार्य के रूप में प्रत्यक्षीकृत किया [...] है। जिस प्रकार एक डॉक्टर, वकील, इंजीनियर आदि अन्य व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रशिक्षणार्थियों को व्यावहारि[...] [...]व प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिए उन्हें एक निश्चित समयावधि तक प्रशिक्षु के रूप में कार्य करना पड़ता है। तभ[...] पूर्ण रूप से संबंधित व्यवसाय में पारंगत हो पाता है। उसी प्रकार शिक्षण व्यवसाय संबंधी दक्षता, कुशलता एवं योग्यताओं क[...] [...] किए बिना कोई भी व्यक्ति सफल अध्यापक नहीं बन सकता उसे अध्यापन संबंधी कौशल तकनीक, प्रतिमान, अभिक्षमत[...] उत्तरदायित्व आदि को अनुकूलतम स्तर पर विकसित करने के लिए अध्यापक शिक्षा के साथ इन्टर्नशिप करना आवश्यक है [...]-वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में आधारभूत ज्ञान आधारित विषयों के अन्तर्गत नवीन विषयों को जोड़ा गया तथा आवश्यक [...]वसायिक दक्षताओं के विकास पर भी प्रमुख रूप से बल दिया गया है। साथ ही इसमें प्रशिक्षुता (इन्टर्नशिप) को समाहित [...]या गया है। जिसके माध्यम से प्रशिक्षणार्थियों को कार्यक्षेत्र संबंधी वास्तविक अनुभव प्रदान करने साथ–साथ सैद्धान्तिक एवं [...]योगात्मक पक्ष को विकसित करने का प्रयास भी किया गया है।

समयावधि: प्रशिक्षुता कार्यक्रम को द्वि–वर्षीय पाठ्यक्रम में एक निश्चित समयावधि के अनुसार रखा गया है। जो बी.एड. प्रथम वर्ष में 24 कार्य दिवस तथा बी.एड. द्वितीय वर्ष में 96 कार्य दिवस है। प्रशिक्षुता के लिए बी.एड. कर रहे प्रत्येक विद्यार्थी–शिक्षक को सरकारी विद्यालयों में जाना होता है। ये विद्यालय उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक स्तर के होते है।

हमारे शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों की वर्तमान स्थिति के बारे में यदि हम गौर से अध्ययन करते है तो एक प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उठता है कि क्या हमारें इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत ये सभी प्रकार के आयामों को सम्मिलित किया गया है? क्या हमारे प्रशिक्षु स्कूल की सभी गतिविधियों में पूर्ण रूप से भाग लेते है? क्या सभी शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी सम्पूर्ण इन्टर्नशिप कार्यक्रम को पूरी निष्ठा व ईमानदारी से पूर्ण करके उनका मूल्यांकन करते है? अध्यापक–शिक्षकों, प्रशिक्षुओं तथा विद्यालयी शिक्षकों को प्रशिक्षुता के दौरान कौनसी समस्याएँ सामने आ रही है।

इन्टर्नशिप कार्यक्रम के दौरान प्रशिक्षुओं के शिक्षण कार्य की वस्तु स्थिति जो कि शिक्षण संस्थान एवं प्रशिक्षणार्थियों में अवलोकित की गई है :–

1. प्रशिक्षु प्रतिदिन विद्यालय तो जाते है किन्तु उनकी रूचि व भूमिका विद्यालयों में कम पायी गयी।
2. प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण अभ्यास के दौरान निरीक्षक अध्यापकों द्वारा उनका निरीक्षण अत्यन्त अल्प करना पाया गया।
3. विद्यालय के प्रधानाचार्य द्वारा विद्यालय के मूल्यांकन तथा परीक्षा परिणामों संबंधी कार्य में प्रशिक्षणार्थियों को संलग्न करना पाया गया।
4. अधिकांश प्रशिक्षणार्थी वास्तविक मूल्यांकन प्रक्रिया को नहीं अपनाते तथा बिना नील पत्र के इकाई परख लेते हुए पाए गए।
5. अधिकांश प्रशिक्षणार्थियों द्वारा पाठ योजना का निर्माण तो किया गया लेकिन उसे अपने प्रशिक्षक के द्वारा जांच नहीं करवाया गया।
6. शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों द्वारा किसी भी प्रकार की दैनिक डायरी जो प्रतिदिन सूचनाओं से संबंधित हो निर्मित करने में कोताही बरती जाती है।
7. प्रशिक्षुओं को इन्टर्नशिप हेतु विद्यालय का आवंटन घर से बहुत दूर होने के कारण आर्थिक तथा शारीरिक परेशानियों का सामना भी करना पड़ता है।
8. इन्टर्नशिप के दौरान करवाई जाने वाली पाठ्य–सहगामी क्रियाओं को महत्व नहीं दिया जा रहा जिससे प्रशिक्षु वास्तविक अनुभव से वंचित रह जाते है।
9. महाविद्यालयों द्वारा विद्यालयों को स्पष्ट निर्देश ना दिए जाने के कारण उनके द्वारा दिए गए कार्य भार में स्पष्टता का अभाव होता है।
10. अधिकांश प्रशिक्षार्थी इसे महज एक खानापूर्ति के रूप में पूर्ण करते है।

इन्टर्नशिप कार्यक्रम को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने हेतु सुझाव :

1. यथासंभव नवाचारों के प्रोत्साहन हेतु प्रशिक्षुओं द्वारा नवीन पद्धतियों का निर्माण किया जाए जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी हो सके।

प्रशिक्षुओं में प्रबंधकीय कौशलों का विकास संबंधी क्रियाकलापों का समावेशन इन्टर्नशिप कार्यक्रम में होना चाहिए।

प्रशिक्षुओं द्वारा अपने विद्यालयों के साथ ही अन्य विद्यालयों का भी भ्रमण करवाना चाहिए जिससे वे अधिक अनुभवों को ...कर सके।

इन्टर्नशिप कार्यक्रम का संचालन करने वाले विद्यालयों में नवीन संसाधनों की व्यवस्था भी की जानी चाहिए जिनका प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सके।

पाठ–योजनाओं के निर्माण एवं नियोजन में विभिन्न कक्षागत पहलुओं का समालोचनात्मक समावेशीकरण हो जिससे ...–पुस्तकों के साथ–साथ अन्य पाठ्य सामग्री का प्रयोग किया जा सके।

प्रश्न–पत्रों का निर्माण अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए किया जाए जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में ...त सुधार लाया जा सके।

विद्यालय के विषय अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षुओं के मूल्यांकन के साथ ही उन्हें सामान्य व विषय आधारित पर्यवेक्षण प्रदान ...में भी सहयोग किया जाना चाहिए।

प्रशिक्षुओं से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वे सभी उपयुक्त क्रियाकलापों का चयन तथा निर्माण करते हुए पाठ योजना ...इकाई को विकसित करें।

प्रशिक्षुओं द्वारा एक दैननन्दिनी अद्यतन की जानी चाहिए जिसमें उनके द्वारा किए गए समस्त क्रियाकलाप प्रतिबिम्बित हो।

प्रशिक्षुओं को विद्यालय का आवंटन यथा सम्भव उनके घर के समीप किया जाना चाहिए जिससे उन्हें विद्यालय में उपस्थित ...ने में किसी भी प्रकार की परेशानी ना उठानी पड़े

प्रशिक्षुओं को आर्थिक सहायता के रूप में वृत्ति (stipend) प्रदान की जानी चाहिये।

निष्कर्ष:

शिक्षक शिक्षा में इन्टर्नशिप कार्यक्रम अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। अतः इस कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु सभी के द्वारा यथासंभव अथक प्रयास करने होंगे जिससे यह कार्यक्रम सभी के लिए लाभदायी सिद्ध होगा। यह एक प्रशिक्षण कार्यक्रम की खानापूर्ति नहीं होकर वास्तविक रूप में एक अच्छा शिक्षक बनने की प्रक्रिया का चरण साबित होना चाहिए। हमें कुछ ऐसी प्रभावी नीतियों व सुझावों की महती आवश्यकता है जिसके द्वारा इन्र्टनशिप कार्यक्रम को प्रभावी बनाया जा सके ताकि इन्टर्नशिप कार्यक्रम वास्तविक परिस्थितियों में शिक्षण क्रिया को प्रभावी बना सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भटनागर ए.बी., भटनागर अनुराग (2013), शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।
2. गर्ग इन्दु (2014) टीचर एजुकेशन, ए.पी.एच. कार्पोरेशन नई दिल्ली।
3. शर्मा एन.के. (2009) अध्यापक शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. चक्रवर्ती परिजात (2016) इम्प्लीमेंटेशन ऑफ इन्टर्नशिप इन टू ईयर बी.एड. कोर्स ए चैलेंजेज ए रूटीन टास्क, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड मल्टी डिसीप्लीन स्टीडीज।
5. जगन्नाथ यूनिवर्सिटी रिसर्च जर्नल (JURJ) Volume No. 1, April 2020, ISSN: 2585 -6283.

Praxis International Journal of Social Science and Literature
A Peer-reviewed Open Access eJournal with SJIF 2020 = 5.754, ISSN: 2581-6675
Volume- 5, Issue- 2, February-2022
Website: www.pijssl.com, E-mail: editor.pijssl@gmail.com

व्यक्तित्व और जीवन जीने की कला

प्रो. बी. एल. जैन[1], डॉ.अमिता जैन[2]

[1] विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं,नागौर (राज.)

[2] सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान,लाडनूं,नागौर (राज.)

सारांश

व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है। व्यक्तित्व आंतरिक और बाह्य गुण, सौंदर्य और कला से बनता है। व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार व्यक्तित्व है। व्यक्ति व्यक्तित्व को कलात्मक बनाने के लिए उसे कैसे निखारे? इस हेतु व्यक्तित्व और जीवन की कलाओं को सीखना आवश्यक है। कोई व्यक्ति अनेक प्रकार की कलाओं में निष्णात है। लेकिन जीवन जीने की कला में निपुण नहीं है, तो उसका जीवन सार्थक नहीं होगा। व्यक्तित्व की विभिन्न कलाओं के विषय में जानकारी होनी चाहिए और उनके अंतर्गत दक्षता भी होनी चाहिए। व्यक्तित्व और जीवन जीने की कला सीखाने के लिए उठने, बैठने, चलने, खाने, सोने आदि के तौर तरीके सीखना आवश्यक है। इस विषय की सटीक और सूक्ष्म जानकारी प्रदान करने हेतु यह शोध पत्र लिखा गया है।

बीज-शब्द: *व्यक्तित्व, चलना, बैठना, खाना, सोना, सहना, बोलना, सोचना।*

प्रस्तावना

आज फैशन परस्त इस दौर में बाह्य व्यक्तित्व को हम आकर्षक बनाने में लगे हैं। कपड़ों से, बालों से, जूतों से, आभूषणों आदि से उसके सौंदर्य को बढ़ा रहे हैं। लेकिन आंतरिक व्यक्तित्व हमारा फीका होता चला जा रहा है। क्योंकि आंतरिक व्यक्तित्व के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। बाह्य व्यक्ति पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अत: बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व के विकास करने के लिए व्यवहार की कुछ क्रियाओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। यथा - वह किस प्रकार से उठे? वह किस प्रकार से बैठे? वह किस प्रकार से चले? वह किस प्रकार से सोए? वह किस प्रकार से खाए? वह किस प्रकार से बोले? वह किस प्रकार से सोचे? वह किस प्रकार से कार्य करें आदि? व्यक्ति को अच्छा व्यक्तित्व बनाने के लिए जीवन जीने की कला उठने, बैठने, चलने, खाने, पीने, सोने आदि समुचित ढंग से आनी चाहिए। यदि व्यक्ति को इस संदर्भ में कला नहीं है,तो समाज में उसका महत्त्व उतना नहीं होता है, जितना कि होना चाहिए। व्यक्तित्व में उन सभी आयामों को संजोना चाहिए जो हमारे जीवन में बहुत अधिक सहायक है। व्यक्तित्व निखारने हेतु हमें अपना आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। हमारे भीतर क्या-क्या कमियां हैं? क्या-क्या अच्छाइयां है? मेरे अंदर किस प्रकार के सद्गुण भरे हुए हैं? मैं अपने जीवन में कौन-कौन से कार्यों को कलात्मक ढंग से करने में दक्ष हूं? किस कार्य को करने में दक्ष नहीं हूं? इस प्रकार की जानकारी आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण, प्रतिलेखन के द्वारा कर सकते हैं। इससे व्यक्तित्व की आत्मचेतना जागृत होती है। और अपने व्यक्तित्व का परिमार्जन, परिष्कार एवं सुधार कर सकते हैं। जीवन तो पशु, पक्षी, कीड़े, भी जीते हैं। लेकिन उनमें जीवन जीने की कला और व्यक्तित्व निखारने की कला नहीं होती है। जैसे बंदर अपना जीवन जीता है। लेकिन उसका स्वभाव चंचल होता है। यदि उसे शराब पिला दी जाए और उसे बिच्छू खा जाता है। तो वह भूत जैसा व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार की कलाएं व्यक्तित्व को निखारने में सक्षम नहीं होती है। अपितु उसके दुर्गुणों की ओर संकेत करती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसके अंतर्गत व्यक्तित्व की कलाओं को विकसित किया जा सकता है। क्योंकि मनुष्य बुद्धि, ज्ञान और चेतना युक्त प्राणी है। वह छोटी-छोटी कलाओं से अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है।जैसे स्थूल हाथी को एक छोटा सा अंकुश वश में कर सकता है, एक छोटा सा दीपक घने

अंधकार का हरण कर सकता है, बड़े-बड़े पहाड़ों को छोटा सा वज्र धाराशाही कर सकता है। इसलिए यह छोटा है ऐसा समझ कर के व्यक्तित्व के किसी भी क्रिया आधारित आयाम की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। मानव जीवन उठने, बैठने, चलने, खाने, पीने, सोने आदि छोटी-छोटी क्रियाओं से सजा हुआ है। इन छोटी-छोटी क्रियाओं से ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कैसे उठना? कैसे बैठना? कैसे चलना? कैसे बोलना? आदि बातें छोटी लगती है लेकिन यह व्यक्तित्व के महल का निर्माण करने में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। यह एक भवन में नींव का कार्य करती हैं। व्यवहार की अधोलिखित क्रियाएँ है जो व्यक्तित्व का निर्माण करती है-

1. चलना - चलना जीवन की एक अपेक्षित क्रिया है। चलने से तात्पर्य गति से है। बच्चा जन्म लेता है,वह सबसे पहले बैठकर के चलता है फिर ऊँगली पकड़कर के चलता है, फिर ठुमक -ठुमक कर के चलता है और उसके चलने से सभी प्रसन्नचित्त होते हैं ।यह उस बालक के चलने के व्यक्तित्व का विशिष्ट गुण हुआ। गति दो प्रकार की होती है- एक गति पैरों से चलना है तथा दूसरी गति जीवन का विकास करना है। हम कैसे चले?नीचे देख कर चले, सावधानीपूर्वक चले, सीधे चले, देखकर चले। चलने से चार गुण प्राप्त होते हैं- खोई हुई वस्तु मिल सकती है, दया भावना पुष्ट हो सकती है, हिंसा से बचा जा सकता है, दृष्टि दोष को टाला जा सकता है। सड़क पर चलने के कुछ नियम है- सड़क के बीच में नहीं चलना चाहिए, सडक के दाहिने ओर चलना, नियम अनुसार चलना, जल्दी-जल्दी में नहीं चलें, ऊंचा मुंह करके नहीं चलें, बातें करते हुए न चलें, हंसते हुए नहीं चलना चाहिए, स्वाध्याय करते हुए नहीं चलना चाहिए। गति का दूसरा अर्थ है- जीवन में विकास करना। भारतीय संस्कृति 'चरैवेति चरैवेति' को बहुत महत्व देती है। जो चलता है उसका भाग्य भी उसके साथ चलता है और जो ठहर जाता है उसका भाग्य भी ठहर जाता है। यहाँ चलने से तात्पर्य है आध्यात्मिक की दशा में प्रस्थान करना है। जीवन को ज्ञान और आचरण की शोभा से भरा जाना है। जीवन को मंजिल की ओर गतिमान करने के लिए ज्ञान का प्रकाश और आचरण की शोभा आवश्यक है। जीवन सद्गुणों के सौरभ से भरा हुआ होना चाहिए।

2. बैठना- बैठना एक कला है। कब, कहाँ, कैसे बैठना चाहिए, इसकी जानकारी भी विज्ञान है। बड़ों के सामने कैसे बैठे? छोटों के सामने कैसे बैठे? कक्षा में कैसे बैठे? भोजन के समय कैसे बैठे? प्रवचन के समय कैसे बैठे? ध्यान के समय कैसे बैठे? किसी कार्य के समय कैसी मुद्रा में बैठे, इसकी सही जानकारी होना और उसी ढंग से बैठना व्यक्तित्व का कला पूर्ण जीना है। कुछ व्यक्तियों में बैठने के समय अग्रलिखित चंचलता झलकती है और परिलक्षित होती है। जैसे- बैठने के समय इधर-उधर देखता है, कभी आगे झुकता, कभी पीछे झुकता है, कभी शरीर को मोड़ता है, कभी अंगड़ाई लेता है, कभी नींद लेता है, कभी हाथ-पैर का संचालन अनावश्यक ढंग से करता है। इस प्रकार का अवांछनीय संचालन गलत कहलाता है। हम बोलते भी है कि ठीक ढंग से नहीं बैठ सकते क्या? ध्यान में पद्मासन, वज्रासन, सुखासन आदि में आराम से बैठने का आसन का चयन करना। बैठने के समय मुख मुद्रा प्रसन्नचित्त, शांत, शालीन भाव में होनी चाहिए। बैठने के समय चिंता की मुद्रा, आवेश की मुद्रा, गुस्से की मुद्रा है तो चेहरे की भाव-भंगिमा विकृत होगी। उससे व्यक्ति का व्यक्तित्व अमानवीय बन जाता है। व्यक्ति ऐसे स्थान पर बैठे, जहाँ बैठने से किसी को व्यवधान न हो, जहाँ बैठने से दूसरे को परेशानी न हो, जीव -जन्तु घूमते हो उस स्थान पर नहीं बैठे, किसी के चलने से ठोकर नहीं लगे इस प्रकार की विधा का ज्ञाता और क्रिया करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व कला पूर्ण होता है।

3. बोलना-बोलने के चार महत्वपूर्ण सूत्र-

- **मितभाषिता** -कम बोलना, अल्पभाषिता, अनावश्यक नहीं बोलना, व्यंग पूर्ण लहजे में नहीं बोलना, मौन रहना, अधिक बातूनी न होना, वाक संयम रखना, अप्रिय नहीं बोलना आदि ।
- **मधुर भाषिता-** मीठा बोलना, कोयल जैसा बोलना, प्रिय बोलना, शांति से बोलना, धीरे-धीरे बोलना, सरलभाषा में बोलना, शालीनता से बोलना आदि।
- **सत्यभाषिता-** सत्य बोलना,वास्तविक बोलना,यथार्थ बोलना,ईमानदारी के साथ बोलना आदि।
- **समीक्ष्यभाषिता-** समीक्षा करके बोलना, विचार पूर्वक बोलना, प्रयोजन युक्त बोलना, अवसर के अनुकूल बोलना, अशिष्ट भाषा में नहीं बोलना आदि। जैसे नुपुर आवाज करता है इसलिए नीचा स्थान उसे प्राप्त होता है और हार आवाज नहीं

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

करता है इसलिए उसे ऊंचा स्थान प्राप्त होता है। अत:पहले तोलो और फिर बोलो।

4. खाना- भोजन/खाने के तीन महत्वपूर्ण सूत्र है –

- **मित भोजन-** मित भोजन अर्थात अधिक नहीं खाना। दो चपाती की भूख होने पर डेढ़ चपाती खाना। कम से कम 3-4 घंटे के अन्तराल में भोजन करना चाहिए। खाने का संयम या खाद्य संयम अपनाना, जिव्हा संयम, स्वाद संयम, सात्विक भोजन करना, चबा-चबाकर खाना, खाने के समय दिमाग शांत रखना, आहार संयम, ठूंस-ठूंस कर नहीं खाना, उपवास समय पर अधिक नहीं खाना आदि ।
- **हितकारी भोजन-** हितकारी भोजन करना। शरीर के लिए श्रेष्ठ भोजन प्रदान करना,प्रिय भोजन नहीं देना। जैसे शुगर वाले व्यक्ति को खीर प्रिय है लेकिन हितकारी नहीं है। अत:उसे खीर नहीं देनी चाहिए।
- **ऋत भोजन-** अर्थात श्रम से उपार्जित भोजन करना। नीति की राशि से कमाये रूपये का अन्न खरीदकर भोजन करना चाहिए।

भोजन से व्यक्ति पतला, मोटा, मध्यकाय वाला बन जाता है। अधिक खाने वाला स्थूलकाय व्यक्तित्व वाला, कम खाने वाला कृशकाय शरीर वाला तथा मध्यम खाने वाला मध्यकाय वाला बन जाता है।

5. सोना- कैसे सोए? नींद इस प्रकार हो कि थकान समाप्त हो जाय, शरीर को पूर्ण विश्राम मिले, शरीर में ताजगी महसूस हो, शरीर तनाव मुक्त हो जाये। अच्छी नींद के लिए कार्य को भार के रूप में नहीं लेना चाहिए, चित्त प्रसन्न रखना चाहिए, सोने के समय सोचना नहीं चाहिए, पवित्र विचार मन में रखने चाहिए, आसक्ति के भाव नहीं होने चाहिए, भाव शुद्ध होने चाहिए, सोने से आधा घंटा पूर्व मोबाईल /टी.वी आदि को देखना बंद कर देना चाहिए, अपने इष्ट के मंत्र का जाप करना चाहिए।

6. सोचना- कैसे सोचे? व्यक्ति को सोचने में सबसे अधिक क्रिया करना पड़ता है। हर कार्य के साथ सोचना प्रयुक्त होता है। सबसे बड़ा कौन– आकाश । आसान काम- बिना मांगे सलाह देना। कठिन काम-अपनी पहचान करना। सबसे अधिक गतिशील-विचार। विचार सबसे अधिक गतिशील होते हैं। मन के कार्य में कल्पना, स्मृति और चिन्तन करना होता है। विचार में चिंता, चंचलता, व्यग्रता, विचरणशीलता, बिना मतलब की बात चलती है। एकाग्रता से मन को एक विषय में सोचने में लगाना चाहिए,मन नियंत्रण हेतु ध्यान करना चाहिए, मन के द्वारा भगवान स्मरण, हिताहित चिंतन, समस्या-समाधान आदि सोचना चाहिए।

सोच की प्रक्रिया-

- **मित चिंतन-** योजनाबद्ध सोचना, सीमित सोचना (जैसे पढने के समय खाने के बारे में नहीं सोचना) लक्ष्य युक्त सोचना, खाने-चलने-पढ़ने के समय भी नहीं सोचना। चिंतन करना चाहिए कोई कार्य कब करना है? कैसे करना है? कितना करना है आदि के बारे में विचार करना चाहिए। उसी में मन को एकाग्र रखना चाहिए। श्वास पर चित्त केंद्रित करने से एकाग्रता आती है ।
- **हित चिंतन-** स्वयं तथा दूसरे का मंगल हो, सकारात्मक सोचना, स्वयं जो मांगे वही पड़ोसी को डबल मिले इस प्रकार की भावनाओं से सोचना, सर्वे भवंतु सुखिनः की भावना से सोचें। योजनाबद्ध तरीके से सोचना, जैसे- व्यापार करना- किस का व्यापार करना? कहां करना? कैसे करना? किसके साथ करना आदि पर विचार करना ।
- **ऋत चिंतन-** यथार्थ/वास्तविक चिंतन करना, योजना वह बनाएं जो उपयोगी हो, समयबद्ध विचार हो। विचार अच्छे और बुरे दोनों आते हैं। लेकिन उपयोगी क्या है, यह हमें विचार करना होगा । विचार मन के भीतर छिपे होते है। मन के भाव अशुद्ध हैं तो विचार भी अशुद्ध होंगे और मन भी बुरा होगा। विचार शुद्ध हैं तो मन भी शुद्ध होगा। सदैव प्रशस्त सोचे।

7. सहना- कैसे सहे? दूसरे के विचारों को सुनना, दूसरे के विचारों को समझना, दूसरे के मत को सहना, दूसरे की क्रियाओं को आत्मसात करना। सहनशीलता की अभिव्यक्ति शरीर, वाणी और मन से संभव है। शरीर सहिष्णुता में शरीर को जैसे वातावरण में डालेंगे वह वैसा बन जाएगा। मानसिक असहिष्णुता तनाव, घुटन, कुंठा, अनुशासनहीनता से पैदा होती है। मानसिक असहिष्णुता

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

मैत्री कम कर देती है, रिश्तेदारी तोड़ देती है। आज बच्चे तनाव की भाषा में बोलने लगे हैं। वाचिक सहिष्णुता- बातचीत में सत्य बोलना, शालीन बोलना, विनम्र बोलना, आवेश और उत्तेजना में नहीं बोलना, कठोर भाषा में नहीं बोलना, व्यंग में नहीं बोलना, उलझन वाली भाषा में नहीं बोलना, दिल दुखाने वाली भाषा में नहीं बोलना, दूसरों पर किसी भी विचार को थोपना नहीं। असहिष्णु में क्रोध के भाव आते है। क्रोध दो प्रकार से किया जाता है- **एक** दिखावटी क्रोध- मात्र कार्य कराने के उद्देश्य से होता है, लाल आंख दिखाना या कठोरता से बोलना आदि करना। जिसका भाव सामने वाले को सुधारना, कमजोरियों को ठीक करना होता है। **दूसरा** वास्तविक क्रोध- विवेक को नुकसान पहुंचाना, तोड़-फोड़ करना, ईट का जवाब पत्थर से देना, अशिष्ट व्यवहार करना, राक्षसी प्रवृत्ति करना। उपाय- उस स्थान से चले जाना, मौन रहना, लंबी सांस लेना आदि। व्यक्ति यदि सहिष्णु रहता है तो चेतना में शांति और आनंद व्याप्त होती है।

निष्कर्ष- व्यक्तित्व ही हमारी सोच, योग्यता, क्षमता तथा उपलब्धियों को आधार प्रदान करता है। मूलप्रवृति से संवेग, संवेग से व्यवहार और व्यवहार से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। हमारा प्रत्येक कार्य क्रिया से परिणित होता है। क्रिया ही व्यवहार को परिलक्षित करती है। यह व्यवहार ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। उठना, बैठना, चलना, खाना, पीना, सोना, बोलना, सोचना, सहिष्णु आदि क्रिया व्यवहार को प्रकट करती है। यदि इन क्रियाओं को विशिष्ट तरीके से करते है तो हमारा व्यक्तित्व भी विशिष्ट बन जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. आचार्य महाश्रमण, *सुखी बनो*, जैन विश्व भारती, लाडनूं-341306, मई 2021, पेज-18-21
2. कोठारी, गुलाब, *मानस-4 अध्यात्म और जीवन- मूल्य*, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पेज-98-100
3. श्री वास्तव, डी. एन., श्री वास्तव, वी.एन., *आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2015, पेज- 359-370
4. आचार्य महाश्रमण, *आओ हम जीना सीखें*, जैन विश्व भारती, लाडनूं-341306, 2014, पेज-13-22
5. अस्थाना, मधु, वर्मा, किरण वाला, *व्यक्तित्व मनोविज्ञान*, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2012 पेज-110-118
6. सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार, *मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2010, पेज-07-09
7. कालिया, अरविन्द, *व्यक्तित्व विकास*, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, सितम्बर 2009, पेज-70-73
8. सिन्हा, अरविन्द, *आपका व्यक्तित्व आपकी सफलता*, रामचन्द्र अग्रवाल जयपुर पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, 2006, पेज-86-90
9. ओशो, *शिक्षा में क्रांति*, ताओ पब्लिशिंग, पुणे, दिसम्बर 2005, पेज-50-52
10. पाण्डेय, रामशकल, *शिक्षा मनोविज्ञान*, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2003, पेज-60-78

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

यूजीसी केयर लिस्ट–85
जुलाई–सितंबर 2021
वर्ष 11, अंक–23

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक
डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक एवं परामर्श
डॉ. रमा

संपादक
डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग
रीमा प्रजापति

आवरण चित्र
डॉ. प्रेम प्रकाश मीणा

ले-आउट
हर्ष कंप्यूटर्स

संपादकीय कार्यालय
मकान नं. 189, ब्लॉक-एच
विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार
एफ-114, तृतीय तल, SLF, वेद विहार
नियर : शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता
आजीवन : 5000/–रुपए
संपर्क : 9871907081
वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com
Email : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशन एवं मुद्रण
हरिन्द्र तिवारी
हंस प्रकाशन, दिल्ली
मो. : 7217610640, 9868561340
ईमेल : hansprakashan88@gmail.com
वेबसाइट : www.hansprakashan.com

पृ.सं.

- **प्रवासी साहित्य : वर्तमान... :** *प्रो. खेमसिंह डहेरिया* 4
- **भारत में डिजिटल मीडिया... :** *डॉ. परमवीर सिंह* 7
- **'गिलिगडु' में अपनत्व... :** *डॉ. अनिता प्रजापत* 11
- **हिंदी कविता में अभिव्यक्ति... :** *डॉ. अरुंधति* 14
- **भूमंडलीकरण के युग में... :** *डॉ. धर्मेंद्र कुमार खटीक* 17
- **कोविड-19 महामारी के... :** *डॉ. भारती बतरा* 21
- **डॉ. भीमराव अंबेडकर के... :** *डॉ. जयपाल मेहरा* 27
- **भारत में महिला सशक्तिकरण... :** *सरिता सारस्वत* 31
- **''मानवीय मूल्यों के आलोक में... :** *कृष्णदेव राय* 35
- **भारतीय राजनीति में... :** *डॉ. राहुल कुमार पासवान* 39
- **बिहार और पिछड़ावाद की राजनीति... :** *अर्चना कुमारी* 42
- **प्राचीन काल में संचार... :** *डॉ. विवेक कुमार* 46
- **भारतीय विदेश नीति का सैद्धांतिक... :** *सुधांशु शेखर* 49
- **बिहार में महिलाएं प्रशासनिक... :** *सौरभ सुमन* 52
- **हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-... :** *डॉ. गौरव कुमार शर्मा* 55
- **जलवायु परिवर्तन : दक्षिण... :** *हंसा मीणा* 59
- **''राजस्थान के पुलिस प्रशासन... :** *राहुल वर्मा* 62
- **श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित... :** *मनजीत कौर* 65
- **'मुझे चाँद चाहिए' में... :** *डॉ. सतीश कुमार पांडेय* 67
- **'जल टूटता हुआ' उपन्यास... :** *डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह* 70
- **मंगलेश डबराल की कविता... :** *केशव यादव* 73
- **मीडिया के सामाजिक और... :** *विक्रम गावड़िया* 77
- **राजकमल चौधरी की कहानियों... :** *अजीत सिंह* 81
- **सांप्रदायिकता की करुण कथा... :** *सीमा दूबे* 84
- **नरेंद्र कोहली और उनकी... :** *डॉ. नीता त्रिवेदी* 88
- **हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में... :** *सुनीता मीणा* 92
- **आधुनिक कथा-साहित्य में... :** *डॉ. तारावती मीना* 95
- **महादेवी वर्मा के... :** *डॉ. करतार सिंह-राजकुमार मीना* 98
- **साहित्य आधारित सिनेमा... :** *दिनेश चंद्र सरस्वा* 102
- **'डाउनलोड होते हैं... :** *अर्चना यादव-डॉ. जयकरण यादव* 105
- **''भारतीय राजनीति में... :** *ऋतु-डॉ. उर्मिला* 110
- **समकालीन हिंदी कविता में... :** *प्रदीप कुमार ठाकुर* 113
- **महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन... :** *संदीप* 116
- **विश्व में प्रचलित हिंदी... :** *डॉ. कवित्री जायसवाल* 119
- **जलावतन में विस्थापन और... :** *डॉ. महावीर सिंह वत्स* 125
- **शिक्षा व्यवस्था... :** *डॉ. हेमा कुमारी महर-महीप कुमार मीणा* 128
- **दिनकर का युद्ध विषयक... :** *डॉ. मीनू कुमारी* 133
- **अफगानिस्तान में गंभीर... :** *डॉ. मोहन लाल जाखड़* 137
- **वर्तमान युग में तुलनात्मक... :** *डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट* 140
- **साहित्य संबंधी प्रेमचंद... :** *ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह* 143
- **इंटरनेट पर पसंदीदा... :** *डॉ. प्रदीप तिवारी* 148

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी : *डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच.-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित।*

- 'मैथिलीशरण गुप्त के... : डॉ. हेमवती शर्मा 152
- भारतीय समाज में... : डॉ. नीरव अडालजा 155
- राजस्थानी लोककथाओं में... : डॉ. गीता सामौर 159
- नैतिकता और काव्य...डॉ. कविता त्यागी 161
- डॉ. कैलाश चंद... : प्रो. मन्जुनाथ एन. अंबिग 163
- सनसनीखेज... : डॉ. संजय सिंह बघेल 167
- आत्मनिर्भर महिलाओं... : डॉ. बिजेंद्र कुमार 170
- अंबेडकर संपादित... : डा. प्रदीप कुमार-डा. सोमा कुमारी 174
- कंदलि रामायण में... : डॉ. रीतामणि वैश्य 178
- 'निराला' की छायावादी... : डॉ. सीमा माहेश्वरी 181
- दिलोदानिश में... : पूजाराधा 184
- 'अपने-अपने पिंजरे'... : अब्दुलहासिम 189
- 'गीतांजलि' का जीवन-दर्शन...डॉ. ममता खण्डल 192
- 'हम उस जगह मिलेंगे... : कविता भाटिया 195
- संबंधों की कशमकश है... : सत्यप्रकाश सिंह 198
- नई सदी का हिंदी साहित्य... : डॉ. अमृता सिंह 202
- आत्मकथा... : डॉ. नूरजहान रहमातुल्लाह 204
- आरंभिक मध्यकालीन... : योगेंद्र दायमा 206
- छायावाद में... : डॉ. इंदु कनौजिया 210
- भारत में कुम्हार का ज्ञान... : अमित कुमार 213
- ''दलित विद्रोह और... : डॉ. तारु एस. पवार 216
- सूचना प्रौद्योगिकी... : हंसराज 'सुमन' 219
- राष्ट्र के विकास में... : धर्मशीला कुमारी 225
- भारतीय संसदीय प्रणाली... : मधु कुमारी 228
- मंडल कमीशन एवं बिहार... : राजेंद्र कुमार 231
- वैदिक एवं बौद्ध कालीन... : डॉ. चंदा रानी 234
- कोरोना महामारी... : डॉ. किरण कुमारी 237
- कोरोना महामारी... : डॉ. प्रतिभा प्रिया 239
- शिक्षा, समाज और... : प्रिया सुमन-डॉ. कल्पना मिश्रा 241
- मानवाधिकार : प्रेमचंद... : डॉ. सिंधु सुमन 244
- पंडित दीनदयाल... : सोनी कुमारी 247
- पुलिस : भूमिका प्रत्याशा... : तारा राम 250
- महेंद्र वर्मन एवं... : प्रवीण कुमार तिवारी 253
- गांधी की बुनियादी... : डॉ. प्रियंका सिंह 256
- बंगाल और रंगमंच : मन्नु कुमार शर्मा 259
- सतत विकास का... : मृत्युंजय कुमार सिंह 262
- जल प्रबंधन एवं... : डॉ. मो. रफत परवेज 265
- योजना आयोग... : डॉ. अरुण कुमार अमन 268
- डिजिटल इंडिया में... : डॉ. स्नेहा कुमारी 270
- औषधीय पौधों का... : डॉ. अनित कुमार 272
- भारत नेपाल... : डॉ. अविनाश प्रताप सिंह 275
- तकनीकी... : डॉ. कृष्णा कुमारी-डॉरिनी पुंडीर 278
- विकलांग व्यक्तियों... : डॉ. भावना सिंह 281
- भाषा की... : डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत 284
- भारत की सांस्कृतिक... : डॉ. अमिता जैन 287
- नए इलाके के... : अनिता कुमारी यादव 289
- कृष्णा अग्निहोत्री... : नीतु एस.एस. 292
- रामनरेश... : श्रीमती सरला माधवप्रसाद तिवारी 294
- समसामयिक राजनैतिक... : डॉ. संजीव कुमार 298
- कवि अरुण कमल... : डॉ. प्रशांत कुमार 301
- 'नगाड़े की... : डॉ. के. विजय भास्कर नायडू 304
- जयशंकर प्रसाद... : डॉ. अमृता 306
- मध्यवर्ग का जीवन-संघर्ष... : डॉ. रतन कुमार 309
- योग का वास्तविक... : प्रो. बी.एल. जैन 311
- सामाजिक एवं... : डॉ. के. बालराजु-डॉ. उमेश कुमार सिंह 313
- लोक साहित्य : रविंदर कुमार 315
- भारतीय समाज में... : ... 320
- पूर्वांचल केलोक... : डॉ. सुरेंद्र कुमार 324
- विकलांग विमर्श के... : सुरेश चंद्रा 327
- तुलसी साहित्य चिंतन... : रामचरन पाल 330
- भाषा का सामाजिक... : डॉ. राम विनोद रे 334
- कोविड-19 महामारी... : देवेश कुमार मेश्राम डॉ. सपना शर्मा सारस्वत 341
- महामारियों की... : डॉ. धीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव 345
- आधुनिक... : प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे 349
- हिंदी-सिनेमा में... : मोहन लाल 352
- निर्मल वर्मा... : डॉ. विष्णु कुमार जायसवाल 355
- पाती प्रेमचंद... : डॉ. विष्णु कुमार जायसवाल 358
- कामतानाथ के... : प्रविण घोंगडे 362
- राधाचरण गोस्वामी... : डॉ. कामना पण्ड्या 365
- पब्लिक स्कूल एवं... : डॉ. राजेश कुमार 369
- रश्मिरथी का... : डॉ. प्रशांत गौरव 373
- सृजनात्मक एवं... : त्रिभुवन गिरि 376
- अवध का प्रथम... : डॉ. चित्रगुप्त 380
- हवेली संगीत में... : डॉ. स्मृति त्रिपाठी 383
- उत्तराखण्ड की... : डॉ. राम भरोसे 386
- तुलसी की... : डॉ. आर्यकुमार हर्षवर्धन 389
- जायसी कृत पद्मावत... : डॉ. रश्मि शर्मा 391
- भूमंडलीकरण, वसुधैव... : नीरज 395
- हिंदी साहित्य में... : डॉ. राखी उपाध्याय 399
- राष्ट्रीय-सांस्कृतिक... : डॉ. नीतू शर्मा 402
- रमेशचंद्र शाह... : कृपा शंकर 405
- 'अभ्युदय' उपन्यास... : पंकज सिंह 408
- ज्ञानरंजन की... : ज्ञानरंजन 412
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह... : 415
- प्रतापनारायण मिश्र... : 418
- दलित चेतना... : डॉ. यशवन्त वीरोदय-संगीता 420
- स्वराज्य, आत्मनिर्भरता... : डा. सुनीता 425
- विद्यानिवास मिश्र के... : अनिरुद्ध कुमार 428

योग का वास्तविक स्वरूप

प्रो. बी.एल. जैन

सारांश–योग का अर्थ चित्तवृत्ति निरोध है। आत्मा का परमात्मा से जोड़ना योग है। संयमपूर्वक साधना करना योग है। योग तो विशुद्ध विज्ञान है–गणित, फिजिक्स व कैमिस्ट्री की तरह। योग नियमों का विज्ञान हैं। अराजकता के जीवन को योग अनुशासन के माध्यम से लयबद्ध करता है। अव्यवस्थाओं को व्यवस्थाओं में परिवर्तन करना ही योग का अनुशासन है। योग केंद्रीकरण है, जो विचार अंदर बिखरे हुए है, उन्हें एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। योग स्वस्थ व रोगी दोनों ही के लिए काम करता है। स्वस्थ व्यक्ति को योग दिव्य सत्ता के साथ जोड़ने का कार्य करता है। योग तादात्म्य से मुक्त करता है। योग में मन अ-मन हो जाता है। मन पर स्वामित्व बनाना योग है। आत्मशुद्धि, अंतःकरण निर्मल,शुद्ध हृदय और शांत मन ही योग का वास्तविक स्वरूप है।

मुख्य शब्द–विज्ञान, अनुशासन, केंद्रीकरण, चिकित्सा, तादात्म्य, स्वामित्व, चित्तवृति।

प्रस्तावना–योग दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि है। 'योग' शब्द हमारे भारत में प्राचीनकाल से हमारे सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ वेदों, पुराणों, गीता आदि में प्रयोग हुआ है। भारतीय दर्शन में योग शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने योग को सम रहने के रूप में अभिव्यक्त किया है। जो सफलता-विफलता, अनुकूल-प्रतिकूल, जय-पराजय में सम रहता है, वह योगी योग से ही रह पाता है। श्री कृष्ण ने गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, बुद्धियोग आदि का विशद विवेचन किया है और बुद्धियोग को सर्वोत्तम माना। कामना की आसक्ति से रहित कर्म करना बुद्धियोग है। भक्तियोग धरातल का स्पंदन है, आस्था का भाव है, समर्पण भाव है। कर्मयोग में निष्काम का मार्ग जुड़ा है। ज्ञानयोग में ज्ञान गतिमान और तरल है, उसकी गति तेज होती है, ज्ञान से लक्ष्य प्राप्ति जल्दी होती है। बुद्धि, मन, शरीर तीनों अपने आप में स्वतंत्र है और मिश्रित भी है। कर्म और संस्कार से इन का मिश्रण अलग-अलग अनुपात में होता है। ज्ञान बुद्धि का विषय है और भक्ति मन का। बुद्धि का अधिष्ठाता सूर्य है और मन का चंद्रमा। जैनाचार्यों ने जिस साधनों से आत्मा की सिद्धि और मोक्ष प्राप्ति की, वह योग है। योग संस्कृत की 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–जोड़ना। योग का अर्थ एकत्व से लिया जाता है।

योग विशुद्ध विज्ञान–योग कोई धर्म नहीं है, योग तो विशुद्ध विज्ञान है–गणित, फिजिक्स व कैमिस्ट्री की तरह। योग नियमों का विज्ञान हैं, जैसे–विज्ञान में प्रयोग किए जाते हैं, वैसे योग में अनुभव किए जाते है। विज्ञान में बाहर की ओर प्रयोग किया जाता है, जबकि योग में आंतरिक प्रयोग किए जाते है। योग अस्तित्वगत, अनुभवजन्य, और प्रायोगिक है। पतंजली ने गणित के फार्मूले की तरह सटीक सूत्र प्रदान किए है, जो दो और दो चार की भाँति लागू होते है। योग के सूत्र करो और जानो की तरह है, जैसे–पानी को सौ डिग्री तक गर्म करो बाष्प बन जाएगा।

योगानुशासन–योग कोई शस्त्र नहीं है, योग अनुशासन है। जब अस्त-व्यस्त दिनचर्या, सारी राहें अंधकारमय में हो, आशाओं की जगह निराशापूर्ण जीवन हो, तब योग का अनुशासन कार्य करता है। कोविड-19 की घोर विपत्ति में योग की चेतना ने ही आशा की किरण प्रदान की। इम्युनिटी बढ़ाने का कार्य योग के अनुशासन से ही हुआ। योग का अनुशासन व्यक्ति में व्यवस्था निर्मित करता है। अव्यवस्था और अराजकता के जीवन को योग अनुशासन से लयबद्ध बनाता है। अनुशासन से तात्पर्य होने की क्षमता, जानने की क्षमता, सीखने की क्षमता से है। जैसे शरीर को हिलाए बिना मौन दो घंटे बैठना भीतर होने की क्षमता है। शरीर और मन एक है। मन शरीर का सूक्ष्म भाग है। इसलिए कहते हैं व्यक्तित्व मनोशरीर है। शरीर में घटित होता है, वही मन में घटित होता है। शरीर गतिमान होगा तो मन भी गतिमान होगा। मन को गतिमान शरीर करता है। दोनों गतिमान नहीं है तो हम अंतस् में केंद्रस्थ है।

योग केंद्रीकरण है–अव्यवस्थाओं को व्यवस्थाओं में परिवर्तन करना ही योग का अनुशासन है। हमें सुबह कोई विचार, दोपहर में वह कोई और बन जाता है और शाम को कोई और बन जाता है। इससे लगता है अंतस् का कोई केंद्र बिंदु नहीं है। जिससे वह विचार एक रह सके। योग एकजुट करने का अनुशासन है। जो विचार अंदर बिखरे हुए है, उन्हें एक सूत्र में पिरोने का कार्य योग के अंतर्गत किया जाता है। जैसे बीमारी बढ़ने पर डाक्टर ने सलाह दी कि आप प्रातः भ्रमण कीजिए। व्यक्ति ने शाम को विचार किया कि कल से सुबह चार बजे उठकर घूमने जाऊँगा, जब चार बजे का अलार्म बजा तो मन नें कहा कल से शुरू करेगें। दोपहर को मन दुःखी हुआ आज घुमने नहीं गए, शाम को विचार आया कि कल से अवश्य जाऊँगा। जब प्रातः होता है तो मन वैसे ही परिवर्तित हो जाता है,

जैसे गिरगिट अपना रंग बदल लेता है। इससे व्यक्ति का मन और उसके विचारों का स्थायीकरण योग के अनुशासन से ही संभव है। योग एकजुट होने की एवं केंद्रीकरण की आवश्यकता को महसूस करता है। जब बेमेल टुकड़ों का मेल हो जाएगा तब व्यक्ति को अनुशासन समझ आएगा।

योग चिकित्सा विज्ञान नहीं है—योग मात्र रोगोपचार में ही काम आता है, पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक मानते है। इसलिए योग को वे बीमार, रोगग्रस्त का चिकित्सा विज्ञान मानते है। योग रोगियों के लिए नहीं है, अपितु पूर्णतः स्वस्थ के लिए योग अधिक उपयोगी है। चिकित्सा विज्ञान तो रोगियों के लिए ही काम करता हैं, लेकिन योग स्वस्थ व रोग दोनों ही स्थिति में काम करता है। स्वस्थ व्यक्ति को योग दिव्य सत्ता के साथ जोड़ने का कार्य करता है। योग मन को क्रियाकलाप से रोकता है, मन योग में है तो शांत, स्थिर और एकाग्र होगा। अ-मन अर्थात् मन की समाप्ति योग है। क्रिया करते हुए मन को बस देखते रहो अंत में वह रुक जाता है, थम जाता है।

तादात्म्य से मुक्त हो—योग में अ-मन हो जाते है। केवल देखने वाले, एक दृष्टा, अकर्ता, अविचारक बने होते है। साक्षी के अतिरिक्त मन का सभी अवस्थाओं के साथ तादात्म्य बना रहता है। विचारों के साथ एक हो जाते हैं, जैसे-बादलों के साथ विचारों का तादात्म्य कर लेते है। कभी सफेद बादलों के साथ, कभी काले बादलों के साथ, कभी खाली बादलों के साथ, कभी किसी ओर बादल के साथ और आकाश की शुद्धता को भूल जाते है। बादलों के घेराव में ही सिमट जाते है। मान लीजिए कि भूख लगी है और भूख का विचार मन में तेजी से उठ रहा है। मन में भूख का विचार आया उसी समय हम उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते है। फिर हम कह देते हैं कि मुझे तेजी से भूख लगी है। जबकि भूखा शरीर है। भूख शरीर में है, लेकिन विचारों का तादात्म्य मन के साथ बैठा लेते हैं और तेजी से भूख लगना महसूस होता है। पेट भूखा है, उसके प्रति साक्षी मात्र बने रहे तब तादात्म्य नहीं होगा और तादात्म्य से मुक्ति ही योग है।

मन पर स्वामित्व बनाना योग—मन के दो प्रवेश द्वार है मुक्ति या दासता, अच्छा या बुरा, सुख या दुःख, स्वर्ग या नरक, अनुकूल या प्रतिकूल। हमारा मन इसमें एक दिशा की ओर ले जाया जा सकता है। वह ज्ञान या अज्ञान किसी दिशा में जा सकता है। गलत ढंग से उपयोग किया मन हानिकारक होता है। अतःमन को उपकरण बनावें, मन को मालिक नहीं बनावें, मन दास है, मन को अधिक अधिकार नहीं दे, मालिक के रूप में मन की समाप्ति, मन के मालिक कैसे बने? मन के रचनातंत्र को समझना है। मन की पाँच वृत्तियों को समझना है, मन शरीर से अलग नहीं है, मन शरीर का भाग है, शरीर का सबसे सूक्ष्म हिस्सा है। शराब का असर मन पर पड़ता है, जबकि शराब जाती है शरीर में। मन और शरीर अलग नहीं है। जैसे सूर्य की किरण खिड़की खुलते ही कक्ष में प्रवेश कर जाती है। खिड़की बंद होते ही किरणें आना बंद हो जाती है। खिड़की खुलने से किरणों का निर्माण नहीं होता है। अपितु खिड़की बंद होने से किरण कक्ष में प्रवेश नहीं कर पाती है। जब मन दुःख में होता है तो अंदर की खिड़की बंद हो जाती है। सुख में आत्मा फैलती है, दुःख में सिकुड़ जाती है। अप्रसन्न का हाथ स्पर्श करेंगे तो उसका हाथ मरा हुआ सा लगता है। दो प्रसन्न एक होते हैं तो वे एक हो जाते है। प्रेम में खुश होने से मन पिघलता है और दोनों एक दूसरे के लिए कार्य करते हैं, घनिष्ठता बढ़ती है। धनवान एवं गरीब दोनों दुःखी होते है। गरीब इसलिए दुःखी होता है उसकी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती और धनवान इसलिए दुःखी होता है वह धनवान बनने के चक्कर में भाग-दौड़ और अनेक समस्याओं में उलझा रहता है। दुःखी मन वाला स्वर्ग में भी दुःखी होता है। बुद्ध हर प्रश्न का उत्तर दे देते हैं तुरंत। क्यों? हर विषय को वे देखते हैं, उन्होंने उसे देखा है। इसलिए उन्हें सोचने व विचार मग्न होने की आवश्यकता नहीं होती है। दर्पण-दर्पण की तरह बने रहना चाहिए जैसे-दर्पण के सामने हम जाते हैं तो दर्पण में हमारी छाया पड़ती है। जैसे दर्पण से आगे जाते हैं, वह प्रतिबिंब चला जाता है और दर्पण खाली हो जाता है। लेकिन हम दर्पण की तरह नहीं है। हम जो व्यक्ति दर्पण से चला गया उसके बारे में सोचते चले जाते हैं, उसके प्रतिबिंब को मन में बनाए रखते है।

निष्कर्ष—योग स्वस्थ, सुखद और संतुलित जीवन जीने की कुंजी है। योग शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक क्षमता का विकास, संवेगात्मक संतुलन, नैतिक व चारित्रिक शुद्धता का विकास है। योग से शांति, खुशी, प्रसन्नता महसूस होती है तथा चिंता, अवसाद, क्रोध दूर होता है। असाध्य रोगों का नाशक है योग। शरीर के विविध अंगों को मजबूत करता है योग। आज योग वैक्सीन की भांति कार्य करता है। मानसिक संतुलन और स्मृति को बढ़ाता है। आंतरिक मजबूती प्रदान करता है। योग से मोटे पतले हो जाते है। योग कर्मसु कौशल। भोग-रोग-योग की प्रक्रिया है अर्थात् व्यक्ति जब रोगी हो जाता है तो योग करता है, स्वास्थ्य ठीक होने पर पुनः भोग करने लग जाता है, अधिक भोग करने पर रोगी हो जाता है, रोगी होने पर पुनः योग करता है। अतः रोग का समाधान योग है और स्वस्थ होने पर परमात्मा से जोड़ने में भी योग सहायक है।

संदर्भ सूची :

- डाजेंड, विमल (2009), स्ट्रेस मैनेजमेंट गाइड, राजस्थान फ्यूजन बुक्स, x-30, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-II, पेज न. 17
- कोठारी, गुलाब (2006), मानस-2, मानव मन : व्यक्ति और समाज, राजस्थान पत्रिका केशरगढ़, जवाहरलालनेहरू मार्ग, जयपुर-302004, पेज न. 142-143
- ओशो, (2003), पतंजलि योग सूत्र, भाग : एक, ताओ पब्लिशिंग प्रा. लिमिटेड, पुणे पेज न. 9-11
- चट्टोपाध्याय, सतीशचंद्र एवं दत्त, धीरेंद्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार, पटना, 800004 पेज न.34-35

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान,
लाडनूं, नागौर-341306 राजस्थान

SWAYAM-THE INDIAN MOOCS PLATFORM

Dr. Manish Bhatnagar
Assistant Professor, Department of Education, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, bhatnagarmanish9@gmail.com

Dr. Pragati Bhatnagar
Assistant Professor, Acharya kalu Kanya Mahavidhyalaya, Jain VishvaBharti Institute Deemed University, LADNU, Rajasthan, pragatibhat@gmail.com

Abstract

This paper is about the new innovative initiative of Digital India Campaign – The MOOCs platform Swayam in Indian Education System. MOOCs started as a recent and widely researched development in distance education which were first introduced in 2006 and emerged as a popular mode of learning in 2012. Currently, there are more than 80 platforms that offer MOOCs. Majority of the leading universities are introducing their own MOOCs through their expert teaching faculties and other technical and industry experts in all subjects or disciplines of study. In India, under the initiative of Ministry of Human Resource Development (MHRD), University Grant Commission (UGC), Consortium for Educational Communication (CEC), NPTEL, IGNOU, NCERT, NIOS, IIM and NITTR MOOCs platform named SWAYAM has been launched offering courses in all areas from 9th Standard to Post Graduate level. These course include diploma, degree, engineering and management courses. This program covers different subjects that may or may not be taught in the regular campus. Official MOOCs programmes in India are available through the single portal i.e., **SWAYAM** (Study Web of Active-Learning for Young Aspiring Minds) and it was declared in parliament in the budget speech in 2017. So SWAYAM is the Indian MOOCs learning platform.

Key words – Swayam, MOOCs, Education

Introduction

Massive Open Online Course (MOOCs) are the latest technological trend in education and have emerged as the most feasible model for imparting education, involving conventional and online education. MOOCs are online course aimed at unlimited participation and are openly accessible through web. In addition to traditional learning material such as filmed lectures, reading and problem sets MOOCs provide high definition e-tutorials, videos, references and web links .The courses on MOOCs are interactive with user forums to support community interactions among students, professors and teaching assistants. Learners have immediate feedback through quizzes and assignments. MOOCs were first introduced in the educational sphere in 2006 and emerged as a popular format in 2012. A Massive Open Online Course (MOOCs) is a global digital learning platform through a web based media which provides an access to online education with the best institutes or faculties of the world to unlimited number of students. SWAYAM is an integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education and can be called as the Indian MOOCs Platform.

In MOOCs there is no restriction on enrolment, these course are open for any one, anybody can

join for the course with freedom of pace, place and time. Content is delivered online through a web based media using some learning platforms. Course means subject or part of subject or Unit of Subject under study. In India MOOCs courses are being run through SWAYAM. SWAYAM initiated with the idea of Learning through Television with a wide vision of using satellite education for providing high quality education to all. It became a mission and was declared in parliament in the budget speech in 2017.

The main motive of MOOCs is 3'A's, that is Anytime, Anyone and Anywhere. In India MOOCs is running through SWAYAM. SWAYAM is the integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education and specially designed refresher courses for teachers. It can be called as the Indian MOOCs Platform. SWAYAM started with the idea of Learning through Television with a comprehensive vision of using satellite education for imparting high quality education to masses. It incorporates the Curriculum based course content covering different disciplines such as humanities, science, engineering and technology, yoga, law, medicine, agriculture, yoga and education.

We can say that SWAYAM is a great innovative step which has brought a revolution in the learning space of Indian classrooms and has changed the scenario of traditional Indian classrooms. This change is presently specially being realized in higher education. SWAYAM provides a wide range of courses in different areas and has changed the modality of transaction in classrooms. SWAYAM courses are the outcome of creative thoughts and ideas of the learned academicians, who transfers their thought into action by blending their cognition, reasoning and emotions in a creative manner. These courses delivered to a large audience in very effective form by high quality technical assistance.

India is considered to be a good educational hub among the various countries of world but still has a very poor enrolment in higher education in comparison to high profile countries of world like USA, UK or Australia. One important reason may be because of its population. SWAYAM courses can definitely help to overcome this issue by introduction of wide range of qualitative courses in different field .SWAYAM now offers Quality Education at fingertips and free of cost.

Swayam is an important initiative of Digital India scheme of our government. MHRD has designated higher learning institutions for production and delivery of online courses in specific sectors. They are known as National Coordinators. National coordinators in different sectors are as below

National Coordinators of SWAYAM

Sl. No.	National MOOCs Coordinator	Sectors
1	University Grants Commission (UGC)	Non Technology Post Graduate Degree Programmes
2	National Programme on Technology Enhanced Learning (NPTEL)	Technical/ Engineering UG/PG Degree Programmes

3	Consortium for Educational Communication (CEC)	Non Technology Under Graduate Degree Programmes
4	Indira Gandhi National Open University (IGNOU)	Diploma and Certificate Programmes
5	National Council of Educational Research and Training (NCERT)	School Education Programmes from Class 9 to 12
6	National Institute of Open Schooling (NIOS)	Out of School Children Educational Programmes from Class 9 to 12
7	Indian Institute of Management (IIM), Bangalore	Management Programmes
8	National Institute of Technical Teachers Training and Research (NITTR), Chennai	Teacher Training Programmes

The National Coordinators has the whole sole responsibility for the conversion of MOOCs, such that there is complete coverage of all the courses in a subject/programme. National Coordinator should ensure that each course in a subject should be awarded to a reputed faculty from an institution of importance. The faculty chosen to convert a course into MOOCs should follow curriculum prescribed by UGC or AICTE or other regulatory body and should cover all recent developments in that field. It should ensured that best of subject experts in the country are engaged in conducting SWAYAM Courses.

Swayam courses are available from high school to Post Graduate level. There are basically two different types of courses credit courses and non-credit courses. Credit Course means a course which is taught for at least one semester as a part of as subject/programme. Non-Credit Course include courses like awareness programme, continuing education programme or training of specific skill set as independent course, which are not part of any set curriculum. These courses can be of shorter duration. Four Quadrant pedagogical approach is used in SWAYAM as given below-

Quadrant-I is e-Tutorials

Quadrant-II is e-Content

Quadrant-III is the Discussion forum

Quadrant-IV is Assessment

The SWAYAM courses are notified on SWAYAM website on 1st June and 1st November every year. These are the list of the online learning courses going to be offered in the forthcoming Semester. Institutions can give freedom to their students to opt 20% of the courses for the

programme for which they have enrolled, through SWAYAM portal so as to entitle the privilege of credit transfer in Choice Based Credit System. All the Institutions which permit their student to opt for specific courses after taking permission through their competent authority should notify the students within 4 weeks from the date of notification by SWAYAM to enroll in the course. The online learning courses being offered through the SWAYAM should be offered keeping in view institutes academic requirements and the courses shall permit for credit transfer. While allowing the online learning courses offered by SWAYAM, it should be ensured that the physical facilities like laboratories, computer facilities, library etc. essential for pursuing the courses are provided free of cost and in adequate measure by the institution. The Institution has to give the equivalent credit weightage to the students for the credits earned through online learning courses through SWAYAM platform and this should be given in their official transcript. No university shall refuse any student for credit mobility for the courses earned through MOOCs.

One of the major initiative of SWAYAM is Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) launched by Ministry of Human Resource Development. It is a major and unique initiative of online professional development of 1.5 million higher education faculty using the MOOCs platform SWAYAM. For implementing ARPIT, discipline-specific National Resource Centres (NRCs) have been identified which are given the task to prepare online training material with focus on latest developments in the discipline, new & emerging trends, pedagogical improvements and methodologies for transacting curriculum.

Annual Refresher Programme for Teaching (ARPIT) is the first attempt in Indian higher education system to provide training to the entire faculty through a web based programme along with the conventional programmes in HRDC's. This is an innovative step to orient faculties with the latest developments in technology. National Resource Centre is a collaborative movement of IITs, IIMs, Central Universities, HRDC's and other Institutions of Eminence in India. The most salient feature of this programme is that, it provides admission to all faculties of any discipline and cadre. The special feature of ARPIT is that programmes like teacher training courses are available specially focusing on training modality. The main benefit for the higher education faculties through this course is that this course is equivalent with one Refresher Course which normally faculty has to undergo for their CAS promotions as notified by latest UGC Regulation .

The courses on Swayam portal are managed by faculties from high profile institutes like IIT, IIM & Central Universities with exposure in the real- time setting of classrooms. These courses are selected through different stages of technical and academic reviews, it has the facility of credit transfer and is compatible with choice based credit system (CBCS) where learners can choose best course from a basket of related courses. SWAYAM courses are available from class 9th to post graduation level, courses are totally free and only nominal fee for certification is there. Online examination centers are there across the country, courses are not restricted by your previous educational qualification and this platform offers a varied learning experience through specially focused e-tutorials

Conclusion

SWAYAM is an integrated platform for online courses with a wide coverage from high school to all different domains of higher education in India. The Digital India Campaign SWAYAM is the latest innovation in Indian Education System and has taken a prominent position specially in higher education in a short span of time. It has definitely benefited and will continue to benefit masses of all age groups in coming years in our country.

ISSN: 0019-5006
January-March 2022

References-

1. Arya U. (2017).The Rise of MOOCs (Massive Open Online Courses) and Other Similar Online Courses Variants –Analysis of Textual Incidences in Cyberspace. Journal of Content. Community & Communication. 6(3), 26-35.
2. Chauhan J.(2017). An Overview of MOOC in India. International Journal of Computer Trends and Technology. 49(2), 111-120.
3. Ministry of Human Resources and Development, Government of India. (2018). Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) through National Resource Centres. New Delhi. Retrieved from http://nmtt.gov.in/downloads/arpit.pdf
4. University Grants Commission. (2016). Credit Framework for Online Courses through SWAYAM. Regulation. New Delhi. Retrieved from https://www.aicte-india.org/downloads/Aicte%20and%20UGC%20Notification.pdf
5. Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education (TEL Division), Government of India. (2016). Guidelines for Development and Implementation of Massive Open Online Courses (MOOCs). New Delhi. Retrieved from https://www.ugc.ac.in/pdfnews/3559801_March,-2016.Guidelines-for-Development-and-Implementation-of-MOOCs-An-Initiative-under-NMEICT----By-AS-(TE)-As-On-11.03.2016-(Final)-(1).pdf

SHODHASAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संचेतना : विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. गिरधारी लाल शर्मा

डॉ. विष्णु कुमार
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341306 (राजस्थान)

सारांश–विश्व की प्राचीनतम भारतीय सनातन संस्कृति में पर्यावरण को देवतुल्य स्थान दिया गया है। वैदिक विचारधारा के अनुसार मानव के लिए सम्पूर्ण सृष्टि ही पर्यावरण है। सृष्टि के प्रत्येक उपादान की रचना आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी तत्त्वों के योग से हुई है। आज पर्यावरण की जो भी स्थिति है, वह आदिकाल से चली आ रही मनुष्य व पर्यावरण के बीच अन्तक्रिया का ही परिणाम है।आज न तो पीने को स्वच्छ पानी है, ना ही श्वास लेने को शुद्ध हवा और न ही खाने को परिशुद्ध आहार। कृषि योग्य भूमि निरन्तर बंजर होती जा रही है, वन तथा वन्य जीव निरन्तर घट रहे हैं; जिसके कारण आज पृथ्वी पर जीवन संकट उत्पन्न होता जा रहा है।यही कारण है कि आज पर्यावरण संरक्षण विश्व के समक्ष सबसे गंभीर चुनौती है तथा पूरी दुनिया का ध्यान इस ओर है। दुनिया को यदि इस संकट से बचना है तो प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को जानना, समझना तथा अंगीकार करना सर्वोत्कृष्ट समाधान हो सकता है।प्रस्तुत शोध आलेख में पर्यावरण के चार प्रमुख घटकों– जल, वायु, वन तथा वन्य जीव एवं पृथ्वी के संरक्षण की भारतीय संस्कृति में संचेतना का उल्लेख किया गया है।

मुख्य विषय वस्तु :

भारतीय संस्कृति व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के जीवन का सिंचन कर उसे पल्लवित, पुष्पित, फलयुक्त बनानेवाली अमृत स्रोतस्विनी चिरप्रवाहिता सरिता है। यह विश्व भी सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य संस्कृतियां तो समय की धारा के साथ नष्ट होती रही किन्तु भारत की संस्कृति अनादिकाल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर–अमर बनी हुई है।

विश्व की प्राचीनतम भारतीय सनातन संस्कृति में पर्यावरण को देवतुल्य स्थान दिया गया है। यही कारण है कि पर्यावरण के सभी अंगों जैसे–जल, वायु, भूमि आदि को देवताओं से जोड़ा गया है। यह इतना उच्च भाव है जिसमें पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

वैदिक विचारधारा के अनुसार मानव के लिए सम्पूर्ण सृष्टि ही पर्यावरण है। सृष्टि के प्रत्येक उपादान की रचना आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी तत्त्वों के योग से हुई है। ये तत्त्व सृष्टि के शोधन व रक्षण का कार्य करते हैं अतः ऋषियों ने इनमें देवत्व के दर्शन किये।

सृष्टि में मानव अनृत रूप है– सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः। मानव अनृत आचरण कर सृष्टि की गतिशील नियमबद्ध व्यवस्था में गतिरोध उत्पन्न कर पाप करता है और पर्यावरण संकट का कारण बन जाता है। आज के इस तीव्र परिवर्तनशील विश्व में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व चर्चित शब्द 'पर्यावरण बन चुका है। आज पर्यावरण की जो भी स्थिति है, वह आदिकाल से चली आ रही मनुष्य व पर्यावरण के बीच अन्तक्रिया का ही परिणाम है।

मनुष्य ने विगत शताब्दियों में आर्थिक, औद्योगिक एवं भौतिक तथा तकनीकी के प्रत्येक पक्षों की उन्नति के लिए स्वहित में तो अधिक प्रयास किये परन्तु इन सब में वह पर्यावरण को विस्मृत करता चला गया। परिणामस्वरूप विकास की कीमत मनुष्य ने पर्यावरण सम्बन्धी वृहद समस्याएं उत्पन्न कर चुकायी है। तकनीकी प्रगति में मानव इतना व्यस्त हो गया कि उसे पता ही नहीं चला कि हमारी पर्यावरण समस्याओं ने कब उग्र रूप धारण कर लिया। पारिस्थितिकी संतुलन पूर्णतया गड़बड़ा गया है। आज न तो पीने को स्वच्छ पानी है, ना ही श्वास लेने को शुद्ध हवा और न ही खाने को परिशुद्ध आहार। कृषि योग्य भूमि निरन्तर बंजर होती जा रही है, वन तथा वन्य जीव निरन्तर घट रहे हैं; जिसके कारण आज पृथ्वी पर जीवन संकट उत्पन्न होता जा रहा है। इसके लिए कोई और नहीं हम स्वयं जिम्मेदार हैं। हमारी तुच्छ स्वार्थ प्रवृत्ति जिम्मेदार है। अगर हम भौतिकता के पीछे इसी तरह अंधी दौड़ लगाते रहें, तो वो दिन दूर नहीं जब पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। यही कारण है कि आज पर्यावरण संरक्षण विश्व के समक्ष सबसे गंभीर चुनौती है तथा पूरी दुनिया का ध्यान इस ओर है। दुनिया को यदि इस संकट से बचना है तो प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को जानना, समझना तथा अंगीकार करना सर्वोत्कृष्ट समाधान हो सकता है।

प्रस्तुत शोध आलेख में पर्यावरण के चार प्रमुख घटकों– जल, वायु, वन तथा वन्य जीव एवं पृथ्वी के संरक्षण की भारतीय संस्कृति में संचेतना का उल्लेख किया गया है।

भारतीय संस्कृति में वायु संरक्षण के प्रति संचेतना

शुद्ध प्राणवायु का सेवन करना सबका जन्मसिद्ध अधिकार है किन्तु वर्तमान में वायु प्रदूषण की जो स्थिति है, शुद्ध वायु मिलना सिर्फ एक सपना बन कर रह गया है। दुनियां के सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर हमारे देश में है, दिल्ली इसका जीवन्त उदाहरण है। अतः वायु संरक्षण पृथ्वी पर जीवन बनाये रखने हेतु सर्वोच्च आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति में इस दिशा में विशद चिन्तन मिलता है। वैदिक कालीन ऋषि इस तथ्य से परिचित थे। वायु में प्राणदायक तत्त्व (ऑक्सीजन) है, अतः वायु को प्रदूषित होने से रोकना अत्यन्त आवश्यक है। ऋग्वेद में वायु को अमृत का खजाना तथा जीवनदायक कहकर प्रार्थना की गई है।

यादतो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः। तेन देहि जीवसे।

(ऋग्वेद 10.186.3)

अतः ऋग्वेद का निर्देश है कि हम ऐसा कोई काम न करें जिससे वायु का अमृतत्व बर्बाद हो।

नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्।

(ऋग्वेद 6.37.3)

वेद विशेषज्ञ यह मानते हैं कि वेदों में ओजोन परत तथा उसके महत्त्व की ओर पर्याप्त संकेत मिलता है। डॉ. कपिल देव द्विवेदी के अनुसार, ऋग्वेद में ओजोन परत के लिए 'महत् उल्ब' प्रयुक्त हुआ है। उसे 'स्थिविर' अर्थात् मोटी परत कहा गया है जो पृथ्वी की रक्षा करती है–

महत् तदुल्बं स्थिविरं तदासीद् येनाविष्टितः प्रविवेशियापः।

(ऋग्वेद 10.51.1)

'उल्ब' शब्द का प्रयोग गर्भस्थ शिशु के ऊपर ढकी झिल्ली के लिए होता है। इसका अर्थ है कि इस परत को नुकसान पहुंचाना उसी तरह विनाशकारी होगा जैसा कि गर्भस्थ शिशु की झिल्ली से छेड़छाड़ करना और आज हम इसका प्रत्यक्षतः अनुभव कर भी रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में जल संरक्षण के प्रति संचेतना

पृथ्वी पर जीवन के लिए जल एक मूलभूत आवश्यकता है किन्तु अपनी अतिमहत्वाकांक्षी प्रवृत्ति तथा स्वार्थवृत्ति हेतु मनुष्य ने शुद्ध जल स्रोतों को इतना प्रदूषित कर दिया है कि जलीय जीव–जन्तु मरने लगे हैं, भूमि का उपजाऊपन कम हो रहा है, मनुष्य तथा अन्य जीवों में अनेक गंभीर बीमारियों का कारण प्रदूषित जल का सेवन है। अत्यधिक जल दोहन के कारण भूजलस्तर निरन्तर घटता जा रहा है, जो कि गंभीर चिंतनीय विषय है। यदि हम आने वाली पीढ़ियों को शुद्ध जल स्रोत छोड़कर जाना चाहते हैं तो हमें जल संरक्षण के प्रति अत्यधिक सचेत होना होगा।

भारतीय संस्कृति में तो प्राचीन काल से ही जल संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है। जल के प्रमुख स्रोत नदियों को 'माता' का स्थान देकर उनकी पूजा की जाती है। जहां दो नदियों का संगम होता है उस स्थान को प्रयाग कहकर हम पूजते हैं। किसी भी धार्मिक अनुष्ठान की सफलता के लिए कलश में सात नदियों के जल को आवश्यक माना गया है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि–

गंगे! च जमुने! चैव गोदावरी! सरस्वती!
नर्मदे! सिंधु! कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरू।।

गंगा नदी का विशेष महत्त्व रहा है क्योंकि इसका स्थान भगवान शिव की जटाओं में माना गया है तथा पितरों की मोक्षकामना हेतु गंगा स्थान का विशेष महत्त्व माना जाता है। ऋषिगण नदी प्रदूषण की आशंका से अनभिज्ञ नहीं थे। अतः ऋग्वेद में प्रदूषण मुक्त नदियों की कामना की गई है–

भन्नदीषु ... परि जायते विषम् विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु।

(ऋग्, 7.50.4)

सर्व नद्यो अशिमिदा भवन्तु।

(ऋग्., 7.50.4)

जिस संस्कृति में जल स्रोतों के संरक्षण हेतु इतने उच्च प्रतिमान रहे हैं, आज हम आधुनिकता की अंधी दौड़ में उनको भूलकर अपने ही जीवन को नष्ट करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यदि अभी भी हम अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों का अनुसरण प्रारम्भ करें तो जल संरक्षण कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में भूमि–संरक्षण के प्रति संचेतना

पर्यावरण का सबसे प्रमुख भाग पृथ्वी है, जो विभिन्न पर्यावरणीय घटकों का आश्रय स्थल है। सभी जीव–जन्तुओं तथा पेड़–पौधों का अस्तित्व पृथ्वी से ही है। यह शांतिदायिनी, सुगन्धिनी, सुखदायिनी, अमृतदायी पदार्थों वाली, दुग्दाधि पदार्थों वाली है। यह विश्वम्भरा, धन की खान, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा तथा जगत को अपने ऊपर बसाने वाली है। किन्तु मनुष्य ने निरन्तर भौतिकता की अंधी दौड़ में पृथ्वी का किसी न किसी प्रकार अत्यधिक दोहन किया है। अधिक उपज प्राप्ति की होड़ में अत्यधिक रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के प्रयोग से उपजाऊ भूमि बजर होती जा रही है। अत्यधिक खनन से भूगर्भ खोखला होता जा रहा है, सड़क पुल, नई कॉलोनियां बनने से कृषि भूमि निरन्तर कम होती जा रही है जिसके गंभीर परिणाम सामने आने लगे हैं। भूमि प्रदूक्षण बढ़ने से जल व वायु प्रदूषण भी बढ़ रहा है। अतः आज भूमि संरक्षण की महती आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति में भूमि संरक्षण पर विस्तृत विवेचना की गई है। वेदों में पर्यावरण के अग्रगण्य घटक के रूप में पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद में स्पष्ट कहा गया है कि भूमि हमारी माता है और हम पृथ्वी की संतान हैं–

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

(अथर्ववेद, 12.1.12)

भूमि में प्राण, रक्त व आत्मा का होना माना गया है– भूम्यां असुरसृगात्मा क्वस्वित्। इस प्रकार पृथ्वी मानव सदृश्य है, उसे हिंसित, पीड़ित या प्रदूषित करना भारी अपराध है। यजुर्वेद में निर्देश दिया गया है–

पृथ्वी मातर्मा मा हिंसीः मो अहं त्वाम्।

(यजुर्वेद, 10.23)

अथर्ववेद में हिरण्यवक्षा भूमि को प्रणाम करके उसका अत्यधिक दोहन न करने का संकेत है–

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमि संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नयः।।

भारतीय सनातन संस्कृति में इतना उच्च आदर्श विद्यमान है कि प्रातः पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी माता से क्षमा–याचना की जाती है–

समुद्र वसने देवी, पर्वत स्तन मण्डले।
विष्णुपत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्शम् क्षमस्वमे।।

जहां आदर, पूजा का भाव तथा माता का दर्जा हो वहां दोहन या नुकसान पहुंचाने का भाव आ ही नहीं सकता। आज हमें भूमि संरक्षण हेतु भारतीय संस्कृति के इन्हीं आदर्शों पर लौटने की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति में वनस्पति तथा वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति संचेतना

पेड़–पौधे तथा वन मनुष्य के जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, जिनका उपयोग वह आदिकाल से अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता आ रहा है, किन्तु साथ ही पहले उसी अनुपात में वृक्षारोपण भी किया जाता था। फलस्वरूप पर्यावरण को उतनी क्षति नहीं होती थी किन्तु पिछले कुछ वर्षों से तीव्र जनसंख्या विस्फोट के कारण पेड़–पौधों की अंधाधुंध कटाई की जा रही है, वन क्षेत्र निरन्तर घटता जा रहा है जिससे विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही है जिनमें से बढ़ता वायु प्रदूषण भी एक है, क्योंकि पौधे वायु को शुद्ध करने का कार्य करते हैं, प्राकृतिक औषधीय पादप विलुप्त होते जा रहे हैं, इसलिए एलोपैथिक दवाइयों का उपयोग बढ़ रहा है, जो एक बीमारी को ठीक करके दूसरी बीमारी पैदा कर रही है। वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं जिससे उनके जीवन पर संकट आ गया है। इन सबका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव मावन जीवन पर पड़ रहा है जो कि गंभीर चिन्तनीय विषय है।

भारतीय संस्कृति मूलतः अरण्यक (वन) संस्कृति रही है। वनस्पति संरक्षण के लिए पौधों को देवी–देवताओं से सम्बन्धित किया गया है। 'तुलसी' को भगवान विष्णु, राम, कृष्ण, लक्ष्मी तथा जगन्नाथ से जोड़कर महाऔषधि बताया गया है। 'अशोक वृक्ष' को बुध, इन्द्र, आदित्य के रूप में अभिहित किया गया। 'पीपल' को विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा आदि के रूप में मानकर औषधि के रूप में प्रयुक्त किया गया। 'आम' के पत्तों

का पूजा में महत्त्व बताया गया है। इस प्रकार पौधों के संरक्षण का उच्च आदर्श भारतीय संस्कृति में निहित है। यजुर्वेद का निर्देश है कि हम पेड़ पौधों को न काटें और न ही किसी तरह हानि पहुंचाएं—

औषधास्ते मूलं मा हिंसिषम्।

(यजुर्वेद 1.25)

वनस्पति के समान पशु—पक्षी तथा अन्य जीव—जन्तुओं का भी पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। वन क्षेत्र के नष्ट होने से वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं जिससे उनके जीवन पर संकट आ गया है। साथ ही वन्य जीवों का अत्यधिक शिकार होने से कई जातियां विलुप्त प्रायः है तथा अनेक विलुप्त हो चुकी हैं, इससे पारिस्थितिकी असंतुलन पैदा हो गया है। अतः पशु—पक्षी तथा वन्य जीवों का संरक्षण भी अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति में पक्षी तथा वन्य जीवों के संरक्षण के लिए उन्हें विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित किया गया है। जैसे— नंदी को भगवान शिव, शेर को माँ दुर्गा, मूषक को भगवान गणेश, श्वेत हंस को माँ सरस्वती, मोर को भगवान कार्तिकेय, मगरमच्छ को माँ गंगा, हाथी को इन्द्रदेव, भैसा को यमराज, गरूड़ को भगवान विष्णु के वाहन माना गया है।

हमारे वेदों में 'पशून पाहि' शब्द आता है जिसका अर्थ है पशुओं की रक्षा करो। यजुर्वेदीय रूद्राष्टाध्यायी में उल्लेख है— 'पशुनां पतये नमो', 'त्रियविश्चमेदित्यवाट् च मे षष्टवाट् च मे' अर्थात् भगवान् शंकर पशुओं के भी देवता हैं तथा उनका संरक्षण करते हैं। इस प्रकार वन तथा वन्य जीवों के संरक्षण का वृहद उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को आचरण में लाने से ही संभव हो सकेगा।

निष्कर्ष :—

भारतीय सनातन संस्कृति की परम्परा स्वभावतया पर्यावरण हितैषी चिन्तन की ओर उन्मुख रही है। इसके अन्तर्गत पर्यावरणीय संरक्षण के विपुल सूत्र व संदर्भ भरे पड़े हैं। पर्यावरण संकट की इस घड़ी में हमारी सनातन परम्परा आध्यात्मिक पुनर्जागृति तथा प्रकृति के साथ जीने की अभिलाषा उत्पन्न करने में समर्थ है। वर्तमान में बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तःप्रकृति के स्वाभाविक सामंजस्य पर जोर देने वाला जीवन दर्शन की आवश्यकता है और भारत में इसकी सनातन परम्परा रही है। इस प्रकार पर्यावरणीय चिन्तन की सनातन परम्परा वर्तमान पर्यावरण संकट के युग में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

- गोस्वामी, के.डी. (2015), समाज एवं पर्यावरण : चुनौतियां एवं समाधान, नई दिल्ली, रावत प्रकाशन।
- सोजित्रा, विजय एस. (2011), वैदिक संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण, जयपुर, पैराडाइज पब्लिशर्स।
- पाण्डे, रमाकान्त (2013), पर्यावरण प्रबन्धन, नई दिल्ली, अनुभव पब्लिकेशन।

- मेहता, ओम प्रकाश (2015), भारतीय पर्यावरणीय आचारशास्त्र, दिल्ली, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन।
- व्यास, हरिश्चन्द्र (2006), पर्यावरण : कल, आज और कल, जयपुर, श्याम प्रकाशन।
- ऋग्वेद, चौखम्भा विद्याभवन, दिल्ली
- यजुर्वेद संहिता, सावलेकर स्वाध्याय मण्डली, पारडी
- अथर्ववेद, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
- http://hindi.indiawaterportal.org/environment-protection
- www.essayinhindi.com/environment

CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF 2021 - 6.169

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 06th Oct. 2021, Revised on 9th Oct. 2021, Accepted 16th Nov. 2021

आलेख

आचार्य श्री महाश्रमण की कृतियों में शैक्षिक चिंतन

* डॉ गिरधारी लाल शर्मा
डॉ विष्णु कुमार
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)
Email: girdhari1976@gmail.com, Mob. No- 9460370813

मुख्य शब्द - *महाश्रमण, शैक्षिक चिंतन आदि।*

सारांश

आचार्य श्री महाश्रमण का व्यक्तित्व तथा कृतित्व मानवोत्थान तथा समाजोत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आपका यह चिंतन रहा है कि मानव निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है तथा इसकी जिम्मेदारी शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के कंधों पर है। वर्तमान में शैक्षिक मूल्यों में निरंतर गिरावट देखने को मिल रही है। आचार्य श्री महाश्रमण का कृतित्व , उनका शैक्षिक चिंतन इन समस्याओं के समाधान में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। आचार्य श्री के अनुसार विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ–साथ संस्कार प्रदान करने का भी प्रयास किया जाए तो ज्ञान अच्छा फल देने वाला हो सकता है। विद्यार्थियों के जीवन में सद्भावना, नैतिकता व नशामुक्ति की बात आए तो पूर्णता की बात हो सकती है। विद्यार्थियों को विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा, घर में अभिभावकों द्वारा, बाहर समाज और समय–समय पर साधु–संतों द्वारा संस्कार की शिक्षा भी निरंतर मिले तो अच्छा विकास संभव हो सकता है।

मुख्य विषय–वस्तु

महातपस्वी ,युगदृष्टा, भविष्यदृष्टा, प्रख्यात चिंतक, प्रखर वक्ता, युगीन समस्याओं के समाधक, आध्यात्म तथा विज्ञान के समन्वय, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के रक्षक, अहिंसा के पुजारी, समाज सुधारक, दार्शनिक तथा शिक्षक, तेरापंथ धर्म संघ के ग्यारहवें अधिशास्ता तथा जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं के वर्तमान अनुशास्ता आचार्य श्री महाश्रमण को मेरा शत-शत् नमन।

आपका विराट व्यक्तित्व तथा अनमोल कृतित्व मानवोत्थान तथा समाजोत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जहां एक और आप निरंतर भ्रमणशील रहकर अपने प्रवचनों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा दे रहे हैं, वही आपका कृतित्व जनसामान्य का हृदय परिवर्तन कर उनके उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। आपने अपनी कृतियों में जन सामान्य से जुड़ी विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधान न केवल सैद्धांतिक बल्कि व्यवहारिक तौर से प्रस्तुत किए हैं।

आपका यह चिंतन रहा है कि मानव निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है तथा इसकी जिम्मेदारी शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के कंधों पर है। वर्तमान में शैक्षिक मूल्यों में निरंतर गिरावट देखने को मिल रही है। शिक्षा में भ्रष्टाचार, अनैतिकता ,अनुशासनहीनता ,दुराचार, हिसांत्मक प्रवृति, शिक्षक–शिष्य संबंधों में विकृति आदि नित्यप्रति दृष्टिगोचर हो रही है। आज हमारी शिक्षा अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि तो तैयार कर रही है ,किंतु अच्छे इंसान तैयार करने में असमर्थ नजर आ रही है । शिक्षा, सेवा के स्थान पर विशुद्ध व्यवसाय का रूप ले चुकी है। इससे व्यक्ति तथा समाज का विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ है। इन समस्याओं के समाधान में आचार्य श्री महाश्रमण का कृतित्व , उनका शैक्षिक चिंतन अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत आलेख में आचार्य श्री के चिंतन के कुछ विशेष बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है–

आचार्य श्री महाश्रमण की कृतियों में शैक्षिक चिंतन

आचार्य श्री के अनुसार जीवन निर्माण के विभिन्न घटकों में सबसे महत्वपूर्ण घटक है शिक्षा। शिक्षा दो प्रकार की होती है– ग्रहण शिक्षा तथा आसेवन शिक्षा। ज्ञान प्राप्त करने को ग्रहण शिक्षा तथा इसके अनुसार आचरण करने को आसेवन शिक्षा कहा जाता है। वर्तमान में ग्रहण शिक्षा ही सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है तथा आसेवन शिक्षा का अकाल सा नजर आ रहा है, जो वर्तमान में उत्पन्न हो रही है विभिन्न शैक्षिक तथा सामाजिक समस्याओं का मूल आधार है।

उनका मानना है कि शिक्षा आचार की जननी है, आचार शून्य शिक्षा का कोई महत्व नहीं है। संस्कार तथा व्यक्तित्व निर्माण ही शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। शिक्षा के इसी उद्देश्य को लेकर आचार्य श्री के पावन आध्यात्मिक मार्गदर्शन में संचालित जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, राजस्थान कार्यरत है, जिनका सूत्र वाक्य ही है– **"णाणस्स सारमायारो"** अर्थात ज्ञान का सार आचार है।

शिक्षार्थी के संबंध में आचार्य श्री कहते हैं - शिक्षा में रुचि रखने वाला तथा शिक्षा का अभ्यास करने वाला शिक्षाशील या विद्यार्थी या शिक्षार्थी कहलाता है । उत्तराध्यन सूत्र में शिक्षाशील के बारे में कहा गया हैं–

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्मुदाहरे।।
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।।[1]

यहाँ अच्छे विद्यार्थी की आठ विशेषताएं बताई गई है– अधिक न हंसने वाला, इंद्रिय संयमी, किसी की गुप्तवात(मर्म)को न फैलाने वाला , चरित्रवान, भोजन संयमी ,सद्आचारणी, सत्यग्रही तथा क्रोध पर नियंत्रण करने वाला । यदि वर्तमान में विद्यार्थी इन विशेषताओं को अपने व्यक्तित्व में धारण करें तो निश्चित ही सुखी व सफल जीवन प्राप्त कर सकते हैं। आचार्य प्रवर के अनुसार सभी समस्याओं का समाधान इन विशेषताओं में निहित है ।

वाणी संयम(वाक् कौशल) – वाणी या भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्धारत करती है। अच्छे शिक्षक तथा शिक्षार्थी में वाणी का संयम होना चाहिए । कैसे बोलना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य प्रवर ने चार सूत्र बताए हैं – " मित भाषिता, मधुर भाषिता, सत्यभाषिता एवं समीक्ष्यभाषिता।"[2]

---

[1] रश्मियां अर्हत वांङ्गमय की, Pg. 60
[2] आओ हम जीना सीखे, Pg. 58

मितभाषिता अर्थात जितना अपेक्षित हो उतना ही बोलें, मधुरभाषिता अर्थात मीठा बोलें, कटु वाणी का प्रयोग न करें, सत्य भाषिता अर्थात यथासंभव झूठ बोलने से बचें तथा समीक्ष्यभाषिता अर्थात विचारपूर्वक बोले। शिक्षण संस्थानों, समाज तथा परिवार में होने वाली अनेक हिंसात्मक घटनाओं को वाणी संयम के माध्यम से रोका जा सकता है।

आहार संयम – ऐसा कहा गया है कि हम जैसा अन्न खाते हैं, हमारा मन भी वैसा हो जाता है । आज विभिन्न शारीरिक समस्याओं के मूल में आहार का असंयम है । उचित– अनुचित, समय–असमय खाना, आज आम बात है, जिसका दुष्परिणाम हमारे सामने है। एक विद्यार्थी के लिए तो आहार संयम परम आवश्यक है , जो उसकी साधना की सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है।

आचार्य प्रवर ने आहार संयम के लिए तीन सूत्र बताए हैं। यह सूत्र हैं– "मित भोजन , हित भोजन तथा ऋतभोजन।"[3] मित भोजन अर्थात अधिक न खाना, भूख से दो ग्रास कम ही खाना, हित भोजन अर्थात ऐसा भोजन जो शरीर के लिए हितकार हो तथा ऋत भोजन अर्थात सत्य भोजन , ईमानदारी से उपार्जित धन से प्राप्त भोजन। आहार संयम से जहां एक ओर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का लाभ होगा, वहीं दूसरी ओर भोजन की उपलब्धता भी बढ़ेगी, जिससे भुखमरी जैसी गंभीर समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

ज्ञान एवं आचार– आचार्य प्रवर के अनुसार व्यक्ति के जीवन में ज्ञान व सदाचार का योग होना चाहिए। शिक्षण संस्थानों में विभिन्न विषयों व भाषाओं के ज्ञान के साथ–साथ अध्यात्म के बारे में ज्ञान दिया जाए तथा वह तदनुसार आचरण करें , तो जीवन पूर्ण हो जाता है। निष्ठा के बिना आचार का पालन संभव नहीं है, कहा गया है –

वृतं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमायाति याति च।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः।।[4]

अर्थात चरित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता है और चला जाता है। धन से क्षीण हुआ व्यक्ति वास्तव में क्षीण नहीं है, किंतु जिसका चरित्र हत हो गया, वह व्यक्ति हत हो गया।

बौद्ध धर्म के महान ग्रंथ घम्मपद में सदाचार की उत्तम सुगंध के विषय में कहा गया है –

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।

ऐतेसं गन्ध जातानं, सील गन्धो अनुत्तरो।।[5]

यदि ज्ञान तथा आचार का समन्वय व्यक्ति के व्यक्तित्व में हो जाए तो वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक समस्याओं जैसे– चोरी , हत्या , आत्महत्या, व्यभिचार, बलात्कार, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि का स्वत: ही समाधान हो सकता है।

सत्संगति– संगति या संपर्क या मित्रता का प्रभाव व्यक्ति पर होता ही है ।अच्छी संगति का अच्छा तथा बुरी संगति का बुरा प्रभाव सर्वविदित है। अक्सर देखने में आता है कि शिक्षण संस्थानों में जिन विद्यार्थियों के मित्र पढ़ने में रुचि लेने वाले, परिश्रमी, सकारात्मक सोच तथा आत्मविश्वासी होते हैं ,ऐसे विद्यार्थी स्वयं भी आगे सफलता प्राप्त करते हैं और यदि किसी अच्छे विद्यार्थी के मित्र भी यदि कामचोर, पढ़ने लिखने में कमजोर, अनर्गल कार्यों में लिप्त हों तो उस अच्छे विद्यार्थी का भी जीवन बर्बादी की राह पर आ जाता है। अतः आचार्य प्रवर कहते हैं कि हमेशा सत्संगति में ही रहे। वे यहां तक कहते हैं कि सत्संगति मनुष्यों से ही नहीं

---

[3] आओ हम जीना सीखे, Pg. 49

[4] शेमुषी, Pg. 52.

[5] परमसुख का पथ, Pg. 38.

साहित्य से भी संबंधित है। अच्छे साहित्य का असर हमारे आचरण में सकारात्मक परिवर्तन लाता है जबकि अश्लील साहित्य शारीरिक व मानसिक रूप से विकृत कर हमें नुकसान पहुंचाता है।

कहा गया है –

बाल संगतिचारी हि दीधमद्धान सोचति।

दुक्खो वालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा।।

धीरो च सुखसंवासो ञतीनं व समागमो।।[6]

श्रमनिष्ठा – आचार्य श्री का कहना है कि शिक्षक तथा शिक्षार्थी को श्रमनिष्ठ होना चाहिए। उन्हें अपने विकास हेतु भाग्य के भरोसे नहीं बल्कि अपने पुरुषार्थ पर निर्भर रहना चाहिए। यदि निरंतर निष्ठा के साथ श्रम किया जाए तो जीवन मे सफलता अवश्य मिलती है। आज विद्यार्थी नकल करके या ऊंचे दामों पर प्रश्न पत्र खरीद कर सफल होना चाहते हैं, इससे शिक्षा में अनैतिकता व भ्रष्टाचार फैल रहा है। एक अच्छे विद्यार्थी को कभी भी इस प्रकार के कृत्य नहीं करने चाहिए बल्कि अपनी श्रमनिष्ठा से सफलता प्राप्त करनी चाहिए। पुरुषार्थी पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं चली जाती है, तुच्छ लोग भाग्य को ही प्रधानता देते है। यथा– "उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैतिलक्ष्मीः, देवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति।"[7]

साथ ही आचार्य प्रवर कहते हैं – लक्ष्य विहीन परिश्रम भी उपादेय नही होता। लक्ष्यबद्ध और बुद्धि कौशल युक्त पुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है। कहा गया है–

सुफलो जायते लोके, बुद्धियुक्त परिश्रमः ।

भावना शुद्धता तत्र, रक्षणीया वुद्यैर्जनैः।।[8]

नशामुक्ति :– नशे को नास का द्वार कहा गया है। वर्तमान में नशे की लत ने बच्चों, युवाओं तथा बुजुर्गों सभी को गिरफ्त में ले लिया है। ये ऐसा जहर है, जो शारीरिक, मानसिक व्याधियों के अतिरिक्त अनेक अपराधों को जन्म दे रहा है। नशे के लिए युवा चोरी, डकैती, हत्या तथा बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों को जन्म दे रहे हैं, तथा अपना जीवन भी बर्बाद कर रहे हैं। नशे के कारण अनेक परिवार टूट रहे हैं तथा देश का भविष्य गर्त में जा रहा है। कहा गया है–

चित्तभ्रांतिर्जायते मद्ययानात्, चित्ते भ्रान्ते पापचर्यामुपैति।

पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढाः, तस्मान्मद्यं नैव देयं न पेयम्।।[9]

अर्थात मद्यपान से व्यक्ति का चित्त भ्रांत हो जाता है। भ्रांत चित्त वाला व्यक्ति अपराध करने लगता है, पाप करता है। जिससे वर्तमान जीवन में नुकसान के साथ मृत्यु के बाद भी दुर्गति प्राप्त होती है। देश के विकास के लिए बच्चों तथा युवाओं को नशे की लत से बचाना आज की एक बड़ी चुनौती है।

---

[6] परमसुख का पथ, Pg. 106.

[7] शेमुषी, Pg.120

[8] शेमुषी, Pg. 52

[9] रश्मियां अर्हत वांङ्गमय की, Pg. 83

आचार्य श्री महाश्रमण ने इस समस्या की भयावहता को देखते हुए नशा मुक्ति का आंदोलन चलाया है। वे देश के विभिन्न भागों में पद यात्राएं करते हुए युवाओं, बच्चों तथा वृद्धों को नशा मुक्ति की प्रेरणा दे रहे हैं अपने प्रवचनों के माध्यम से हजारों लाखों लोगों को नशा मुक्ति की शपथ दिलवा रहे हैं तथा कितने ही जनों के अंधकार युक्त जीवन में रोशनी की किरण लाए हैं। आचार्य प्रवर कहते हैं कि विद्यार्थीकाल से ही व्यक्ति यह संकल्प करें कि– मैं जीवनपर्यंत नशा नहीं करूंगा। जीवन में अनेक अवरोध , प्रतिकूल परिस्थितियां आ सकती है किंतु व्यक्ति का मनोबल व संकल्प बल इतना मजबूत हो कि उसे कोई भी स्थिति विचलित न कर सके।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य श्री महाश्रमण की कृतियों में विशद् शैक्षिक चिंतन मिलता है । यह चिंतन वर्तमान में व्याप्त विभिन्न शैक्षिक तथा सामाजिक समस्याओं का सम्यक् समाधान प्रस्तुत करता है । आचार्य श्री कहते हैं कि वर्तमान के विद्यार्थी ही देश का भविष्य हैं , अतः हमें ऐसी शिक्षा देनी है कि वे सुयोग्य नागरिक बनकर राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सकें । उनका चिंतन है कि विद्यार्थियों में अच्छे संस्कारों का विकास हो वे ज्ञान सम्पन्नता के लिए निरंतर अभ्यास करें , चरित्र सम्पन्नता के लिए ईमानदारी , विनम्रता आदि को अपने आचरण में लायें , स्वास्थ्य सम्पन्नता के लिए नियमित ध्यान , आसन , प्राणायाम आदि का अभ्यास करें तथा साथ ही नशा मुक्ति का भी अभ्यास करें । यदि विद्यार्थी ऐसा करेंगे तो निश्चित ही देश का भविष्य उज्ज्वल होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- महाश्रमण, आचार्य (2020). तीन बातें ज्ञान की . जैन विश्व भारती प्रकाशन .
- महाश्रमण, आचार्य (2016). परमसुख का पथ . जैन विश्व भारती प्रकाशन .
- महाश्रमण, युवाचार्य (2008).रश्मियां अर्हत वांङ्गमय की . आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन .
- महाश्रमण, युवाचार्य (2001) .शेमुषी . जैन विश्व भारती प्रकाशन.
- महाश्रमण, युवाचार्य (2001) . आओ हम जीना सीखें . जैन विश्व भारती प्रकाशन.
- http://www.hindiwebdunia.com
- http://www.terapanthinfo.com

.

*** Corresponding Author**
डॉ गिरधारी लाल शर्मा
डॉ विष्णु कुमार
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)
Email: girdhari1976@gmail.com, Mob. No- 9460370813

CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF 2021 - 6.169

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 06th Nov. 2021, Revised on 19th Nov. 2021, Accepted 28th Nov. 2021

आलेख

राजस्थानी साहित्य मे निहित शैक्षिक मूल्यो का विश्लेषणात्मक अध्ययन

* डॉ. विष्णु कुमार
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं
Email: kumarvishnu1975@gmail.com, Mob. No- 9214682041

मुख्य शब्द – *प्रतिनिधित्व ,मांग समझौता ,अनुसरण क्षमता ,संरचना पहल स्वतंत्र सहनशक्ति, दायित्व ग्रहणता, पूर्वानुमान सत्यता ,एकता समन्वय.चेष्टान्मखी* आदि.

सारांश

प्रस्तुत शोध में शिक्षा, शिक्षा से जुड़े विचारों, संस्कारो और मूल्यो को सम्मिलित किया गया है। इस शोध के निहितार्थ में मूल्य, मूल्यो के प्रकार, मूल्य शिक्षा के राजस्थानी स्वरूप पर चिन्तन किया गया है। भारत एक बहुल प्रान्त वाला देश है। यहॉ के विभिन्न राज्य, राज्य नही एक 'छोटा देश' ही है, अलग बोली, पहनावा, संस्कार, संस्कृति मानो यहॉ विविधता में भी एक समग्र रूप से 'एकता' की भावना से सूत्रबद्ध है। अपने देश की इसी विविधता और अपने प्रान्त की इसी विशेषता से आकृश्ट होकर इसे लघु शोध का विषय चुना गया है और मूल्य, मूल्यों के विभिन्न रूपो पर यहॉ के मनीषियों के विचारो के संकलन का कार्य किया गया है। इस भोध का निहितार्थ राजस्थानी साहित्य में वर्णित मूल्यों, मूल्यो के रूपो, शिक्षण के साथ उनके सम्बन्धो की ओर रहा है।कन्हैयालाल सेठिया ने मातृभाषा शिक्षण, 'चन्द्र' ने सामाजिक जन चेतना, बी. एल. माली, लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत ने बाल मनोविज्ञान के स्तर पर शिक्षण की संकल्पनाएं दी है। इस शोध में निहित शैक्षिक मूल्य, विधार्थी, शिक्षक, समाज तीनो के आपसी समन्वय और संबंधो पर टिके है। यदि शिक्षक व्यवहार में ठीक होगा तो विधार्थी भी उसका अनुसरण कर स्वं का निर्माण करेगा नही तो गलत आदतो का चलन तो शीघ्रता से होगा ही। अपने समाज, वर्ग में कैसे रहना है, या कैसे जीना है, ये तरीका सिखाना वो भी सहजता से शिक्षक के लिए एक चुनौति है। समाज में साहित्यकार भी सहजता से शिक्षक के लिए चुनौती है। समाज में साहित्कार भी परोक्ष रूप से शिक्षक की भूमिका निर्वहन करते रहे है, उसकी सार्थक भूमिका का चित्रण इस शोध का परोक्ष रूप में लक्ष्य रहा है। विधार्थी, समाज साहित्य, शिक्षक का समन्वय समाज को 'मूल्यवान' बनाये यही शोध का मुख्य निहितार्थ रहा है।

प्रस्तावना

राजस्थानी भाषा मूलतः हिन्दी परिवार का ही सदस्या हैं। वृहद एंव विभिन्नताओं से भरे इस प्रान्त के संदर्भ मे कहा जाता है कि 'चार कोस पै पाणी बदलै, आठ कोस पै वाणी' ये कहावत राजस्थानी के ही रूपों को मेवाड़ी, मारवाड़ी, हाड़ौती, दुढांडी आदि रूपों

को इंगित करती है। राजस्थानी भाषा का साहित्य अपने आप में काफी सुमृद्ध एंव वैभवशाली रहा है। साथ ही यह सम्पदा इतनी सहज एंव व्यापक रूप में जन–मानस के नित्य प्रति के व्यवहार में शामिल रही है कि जाने–अनजाने यहॉ के बालको को शैक्षिक मूल्य जैसे – बड़ो का आदर, देश–प्रेम पर्यावरण चेतना, अतिथि सत्कार, पारिवारिक प्रेम सहज ही प्राप्त हो जाते है। अंग्रेजी शासन काल में भी राजस्थानी कविता के ओजपूर्ण स्वरो ने 'नैतिक मूल्यों व देश की रक्षार्थ' आवाज बुलन्द कर लोगो में नया उत्साह भरा था। केसरीसिंह बारठ, सूर्यमल्ल मिश्रण, शंकरलाल सामोर, अमरदान लालस जैसे परम्परागत प्राचीन कवियो कृतियों में ऐसे मूल्यो का अकूत भण्डार छिपा है। राजस्थानी साहित्य में बीसवीं शताब्दी से नये युग का उदय हुआ माना जाता है। मारवाड़ी हितकारक पत्र, मारवाड़ी मित्र, जयनारायण व्यास द्वारा 'आंगीबांण' साहितियक रचनाओ का नया युग नव प्रभात ले उदय हो रहा था। शोध सम्बन्धी पत्रिकाओ मे 'राजस्थानी' राजस्थान भारती के अंको मे श्रीचन्द राय, भंवरलाल नाहटा, कन्हैयालाल सेठिया जैसे रचनाकारों की मौलिक कहानियॉ का प्रकाशन हुआ। प्राचीन एंव आधुनिक राजस्थानी साहित्य के कई रूप यथा कविता, कहानी, नाटक प्रचलित रहे है। इन रचनाकारों के विशयों में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक,शैक्षिक जन चेतना प्रमुख रहे है। सामाजिक विषयों पर कन्हैयालाल सेठिया, अन्नाराम सुदामा, बी.एल.माली, अशान्त, लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' जी ने अपनी लेखनी का प्रयोग कर समाज को नयी चेतना दृष्टि प्रदान की हैं।

ऐतिहासिक विषयों पर लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, डॉ. संस्कर्ता, श्रीलाल जोशी लेखको ने अपनी कलम उठायी है। काव्य रचनाओं ने भी शैक्षिक मूल्यो का सरल रूप दिखाई देता है।

राजस्थानी साहित्यकारों के अनुसार मूल्य शिक्षा का महत्व

1. बी.एल. माली

(1) नीतिगत बाते – शिक्षण के साथ सिखाई जाए, व्यवहारिक जीवन का उदाहरण देकर, कथा कहानियों के माध्यम से भी यह उद्देश्य पूरा किया जा सकता है। 'किली–किली कटकौ' रचना में बालपयोगी रचनाओं के द्वारा प्रेम, स्नेह, करूणा, पारिवारिक स्तर की बातों का सहज रूप में शिक्षण किया गया है।

(2) शिक्षा का महत्व – बोलतां आखर रचना में अशिक्षित होकर सहे जाने वाले अत्याचारों के वर्णन से बालको में शिक्षा के प्रति जागरूकता की बात कही गयी है।

(3) जीवन मूल्यों का शिक्षण – जीवनोपयोगी, व्यवहारिक आदतें, बाते यथा बड़ो का सम्मान, छोटो के प्रति स्नेह, खेल–भावना के साथ विद्यालयी जीवन जीना, समाज के साथ सहकारिता का भावना रखना, बाल किशोर वर्ग के लिए अत्यावश्यक है और साथ ही समाज व परिवार का भी दायित्व है कि बालकों को ऐसे कार्यो के प्रति पेरित किया जाए ।

(4) मातृभाषा के प्रति आदर – राजस्थान प्रान्त के होने के कारण नही बल्कि हर भाषा –विविधता वाले प्रदेश के लेखको ने भी मातृभाशा (स्थानीय) के प्रति आदर भाव की अनुशंसा की है, यदि बालक को उसकी मातृभाषा में शिक्षण दिया जाये या संस्कृति परक बातें सिखाई जाये तो वह अधिक स्थायी होगी।

(5) पाठ्यक्रम के प्रति विचार – बी.एल. माली जी ने पाठ्यक्रम के प्रति कोई विशेष बात न कहकर 'मातृभाशा शिक्षण' की ही बात कही है।

(6) गुरू सम्बन्धों पर विचार – शिक्षाविद की भॉति नही बल्कि एक सामाजिक लेखक की भॉति इन्होने भारतीय परम्परानुरूप गुरू शिष्य के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों की बात कही है।

2. कन्हैयालाल सेठिया

(1) अणुव्रत का समर्थन – 'सतवाणी' रचना में सेठिया जी ने पंच महाव्रतों, अणुव्रतो, सम्यक ज्ञान, चरित्र दर्शन की प्रेरणा दी है उनके अनुसार विधार्थी शिक्षक दोनो के चरित्र, जीवन में पवित्रता होनी आवश्यक हैं।

(2) शाश्वत मूल्यों में निष्ठा – सत्य, सुख, दुःख जैसे जीवन के व्यवहारिक व शाश्वत मूल्यपरक पक्ष में विधार्थी को सम्भावी होकर जीवन जीना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्रो में अपने जीवन उदाहरणों से इन मूल्यों का विकास करे।

(3) नीतिपरक मूल्यों में आस्थावान – 'गलगचियों' के माध्यम से सेठिया जी बुर्जगो द्वारा कही जाने वाली लोकोक्तियों, मुहावरों का संक्षिप्त चित्रण किया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जिन नीति जन्य बातों क्षमाभाव, वीरता, सबके लिए प्रेम, करूणा को हम भूल रहे है, का पुनः स्मरण किया गया है।

(4) शिक्षा के बिना समाज का उद्वार नही – सामाजिक व स्वउत्थान हेतु सेठिया जी ने शिक्षा को महत्व दिया है, उनके अनुसार अशिक्षा से समाज में अव्यवस्था होगी और कल्याण का मार्ग शिक्षा से ही प्रशस्त होगा।

3. शिवचन्द भरतिया

(1) शिक्षा से समाज का कल्याण :– 'कनक सुन्दर' उपन्यास तके इन्होने दो परिवारों की टकराहट वैचारिक भिन्नता को स्पष्ट किया है। वस्तुतः वर्तमान में भी हमारी यही समस्या दृष्टिगत होती है। यदि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की मानसिकता में परिवर्तन लाया जाये तो ऐसी समस्याएं नही होगी।

(2) 'सादा जीवन उच्च विचार' की पुष्टि :– 'केसर विलास' में भरतिया जी ने दिखावटी जीवन और फैशनपरस्ती के नाम पर आर्थिक, सामाजिक पक्ष को अधिक उभार दिया है। छात्र जीवन में भी शिक्षक यदि छात्रो को 'सादगी, सहिष्णुता' जैसे मूल्यो की ओर उन्मुख करे तो शिक्षा इन सामाजिक बुराईयों को दूर कर सकेगी।

(3) पारिवारिक जीवन मूल्यों की अनुशंसा :– परिजनों से प्राप्त स्नेहिल व्यवहार, बड़ो के प्रति सम्मान, कर्तव्यकर्त्ता व्यक्ति को भावी जीवन में सुखद बनाती है। इसी धारणा की पुष्टि भरतिया जी अपने रचना – चरित्रो के माध्यम से नाटको द्वारा भावी पीढ़ी को दी है।

4. लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत

(1) नैतिक गुणो का विकास :– बालकों में नैतिक गुण सत्य, दया, प्रेम आदि का बीजारोपण परिवार में ही दादी – नानी की कहानियों से तो किया ही जाता है, साथ ही विद्यालय के परिपेक्ष्य में इसें हम आधुनिक चित्रकथा शैली से भी जोड़ सकते है। भूल भाव तो शिक्षा के उद्देश्य से ही है।

(2) स्थानीय इतिहास का शिक्षण :– स्थानीय व लोक कथा भौली की बातों, विवरणों, साहित्य रचनाओं से बाल–किशोर वर्ग को हम इतिहास परक बाते सहज रूप में सिखा सकतें है। शिक्षक द्वारा स्थानीय इतिहास परक बातो का उल्लेख किया जाना चाहिए।

(3) अतीत व वर्तमान में सामंजस्यता :– राणीजी केवल लकीर के फकीर बने रहने के बजाय आधुनिकता व प्राचीनता के समन्वय पर बल देती है। इनका मानना है कि परम्पराओं, शिक्षा नीतियों में भले ही बदलाव ही परन्तु भारतीय संस्कृति के सनातन, भागवत मूल्य शिक्षण को पाठ्यक्रम में सहेजे रखा जाये।

5. डॉ. मनोहर लाल शर्मा

(1) लोकहित का समर्थन :– डॉ. भार्मा की रचनाओं में जन कल्याण का भाव निहित है। 'राजा के सींग' कहानी के माध्यम से इन्होने किसी की कमजोरी को मजाक बनाने की बात गलत अनुचित कही है।

(2) नीतिगत बातों का चित्रण :– प्रसंगो, कहावतो के माध्यम से 'गागर में सागर' भरने का कार्य किया गया है। नीतिप्रद बाते संकेत रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। नीतिप्रद बाते संकेत रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। बालोपयोगी साहित्य के अनुसार सहज रूप में मूल्य की बात कहकर बालको को उस बात को सिखाया जा सकता हे। जैसे सत्य महता बताने के लिए 'असत्य भाषी व्यक्ति को होने वाली हानियां, दुष्परिणाम कथा के माध्यम से समझाये जाये।

(3) सामाजिक समस्याओं के निवारण में शिक्षा का महत्व :– 'कन्यादान' कहानी संग्रह के माध्यम से समाज की परम्पराओं दहेज समस्याओं व बालिकाओं के प्रति उपेक्षित मानसिकता का चित्रण किया है। साथ ही डॉ. भार्मा ने शिक्षा के द्वारा इन समस्याओं में शिक्षक – शिक्षार्थी वर्ग से जन चेतना के लिए कुछ करने की आशा भी व्यक्त की है।

(4) प्राचीन मूल्यों के प्रति आस्था :– भारतीय संस्कृति के शाश्वत गुणों में निष्ठा और आस्था बनाये रखने की बात भी शर्मा जी कही है। निज भूमि, इतिहास पर गौरव करना हम अपने विधार्थियों को भी सिखायें यह आशा उन्होने शिक्षा क्षेत्र से की है।

समस्या का औचित्य

वर्तमान शिक्षा जगत की सबसे बड़ी चुनौती 'छात्रो की मूल्यहीनता' रही है। इसके निवारण हेतु बार – बार मूल्य शिक्षा की बात कही जाती है। मूल्य शिक्षा से हमारा तात्पर्य विधार्थी वर्ग के आचरण व्यवहार में उन गुणो के प्राकट्य से है जिनसें वह अपना ओर अपने समाज का विकास कर सके। राजस्थानी साहित्य की विशद् परम्परा सामाजिक, राजनैतिक, मानवीय स्तर पर पाठको के हदय को छूती है। इसमें निहित शैक्षिक मूल्यों के साथ – साथ आचार व्यवहार की बाते भी समृद्धशाली बनाती है।

इस शोध का उद्देश्य वर्तमान समस्याओं व मूल्यों में कमी, नैतिकता में कमी मानसिक अस्थिरताओं के निवारण में साहित्य की भूमिका का विश्लेशण करना रहा है। साहित्य जन मानस के साथ सरलता से जुड़ सकता है और गहनतम बाते भी सहजता से कह सकता हैं। राजस्थानी भाषा का गौरवपूर्ण इतिहास, वर्तमान विधार्थी जाने और उससें मूल्यों को ग्रहण करे, ताकि पारिवारिक स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक शिक्षा के मूल उद्देश्य सर्वागीण विकास की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो सके। मूल्य संस्कार प्राप्त पीढ़ी अपने आप को हर विपरीत स्थिति में सम्भाल सकेगी और ऐसी भावी पीढ़ी से इतिहास पुनः गौरवान्वित होगा। राजस्थानी भाषा की कतिपय ऐसी विशेषताओं के कारण ही वर्तमान में पुनः 'मातृभाषा शिक्षण' की संकल्पनाएं पुष्ट होने लगी है। मेरा ऐसा विचार है कि 'मातृभाषा शिक्षण' का मूर्त रूप यदि शिक्षा में पदार्पण करेगा तो वर्तमान की आंग्लभाषी शिक्षण संस्थाओं मे अभिभावकों की होड़ कम होगी और हमारे भावी विद्यार्थी अपनी भाषा,जाति, समाज पर गर्व करने का हौसला जुटा लेगें। राजस्थानी भाषा अपने प्रान्त, अपने घर में ही उपेक्षित है, ऐसी स्थिति में किये जा रहे अनेक दिग्गज व विद्वजनो के सहयोग सागर ने मेरा शोध प्रयास कदाचित तिल मात्र भी स्थान प्राप्त कर सके तो मेरा यह उद्देश्य सार्थक सिद्ध हो सकता है।

समस्या कथन

''राजस्थानी साहित्य मे निहित शैक्षिक मूल्यो का विश्लेषणात्मक अध्ययन''

शोध–विधि

विश्लेषणात्मक विधि

शोध के उद्देश्य

राजस्थानी साहित्यकारो की कृतियों में निहित शैक्षिक मूल्यों की खोज करना।

शोध के निष्कर्ष

1. शैक्षिक मूल्य जीवन जीने के व्यवहार और आदतो में वे वांछित परिवर्तन है, जिनके द्वारा व्यक्ति अपनी और अपने समान के हितो की पूर्ति के लिए करने में सक्षम बनता है।
2. शोध के विषयानुसार राजस्थानी लेखको, साहित्यकारो के अनुसार प्राचीन एंव आधुनिक शैक्षिक मूल्यों में कोई समयानुसार बदल आया है। आधुनिक जीवन शैली में प्राचीन मूल्यों जैसे शान्ति, भाईचारा, बन्धुत्व, देशप्रेम की नितान्त आवश्यकता बनी हैं
3. शैक्षिक मूल्यों का जीवन में अनुकरण से भावी पीढ़ी अपने कोलाहल, प्रतिस्पर्धापूर्ण जीवन में भ्रान्ति, सन्तोष का अनुभव कर सके तो मूल्यो की सार्थकता सिद्ध होगी। प्राचीन एंव नवीन स्तर साहित्यकारो का अथक प्रयास सामाजिक जन चेतना, धार्मिक मूल्यों ने आस्था बढ़ाने की आरे अधिकाधिक रहा है, क्योकि साहित्य की नैतिक जिम्मेदारी समाज के प्रति सदैव रही हैं

4. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक मानवीय नही मशीनी माध्यम बनता जा रहा है, जो कि आधुनिकता की दृष्टि से भले ही उपयुक्त हो मानवीय दृष्टि से ऐसा शिक्षक केवल ज्ञान दे सकता है, व्यवहार, चरित्र नही। आज की शिक्षा प्रणाली में इस शोध का निष्कर्ष शिक्षक की व्यवहार भूमिका–निर्वहन से सम्बन्धित रहा हैं।
5. परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। सयुक्त परिवार में एंव एकल परिवार में पले बढ़े बालको के शैक्षिक मूल्य भले ही समान होगे पर परिवार में उनकी भूमिका निर्वहन में परिवर्तन हमें अवश्य ही परिलक्षित होंगा। पारिवारिक प्रेम, संस्कार, सौहार्द्र, बड़े – छोटे के प्रति व्यवहार में शालीनता, आदर भाव की वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकता है। आधुनिकता की दौड़ ने पारिवारिक संबंधो मूल्यो दोनो को हाशिये पर ला दिया गया है। वर्तमान आधुनिक साहित्य मे इन्ही दुर्गुणो, परिणामों पर चिन्तन प्रक्रिया है और अपनी लेखनी से ऐसे मूल्यहीन समाज की भावी पीढ़ी का चित्रण कर 'मूल्यों' की आवश्यकता का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है।
6. परिवार में प्रेम, भाान्ति, करूणा, वृद्धो का आदर, अतिथि का सममान, बालक सहज ही सीख लेता है। आजीवन ये मूल्य उसके सामाजिक, व्यवहारिक जीवन मे सहयोग करते है।
7. विधार्थी जीवन में यदि विद्यालय, शिक्षक द्वारा इन मूल्यो का विकास किया जाये तो बालक सदैव इन मूल्यों से अपने जीवन मे सम्मान, प्रतिष्ठा, गरिमा को प्राप्त कर सकेगे। इन मूल्यों के द्वारा वे समाज के प्रबुद्ध नागरिक बनकर सम्मान की प्राप्ति करेगे।
8. वर्तमान युग की आपा धापी में हमे हमार पुरातन संस्कारो की जड़ो की ओर लौटाना होगा। जड़ को पुनः सींचना होगा 'मूल्य रूपी जल' इस समाज रूपी वृक्ष को स्थायित्व प्रदान कर सकेगा हमारे विधार्थी जो भावी भविश्य के राजनेता, धर्मगुरू, प्रतिशिठत पढो के स्वामी बनेगे यदि 'मूल्यवान' होगे तो हमारा देश, समाज भी मूल्यवान बनेगा, अर्धवान बनेगा।
9. इस शोध का उद्देश्य शिक्षा से भले ही जुड़ा है, क्योकि व्यक्ति अकेला कुछ नही कर सकता। उसके परिवार, समाज, रच का स्वं के साथ संबंध ही उसका जीवन तय करता है। इन लक्ष्यो की पूर्ति के लिए समाज के अनुभवी लोगो की कथा कहानी, परम्परा, साहित्य, साहित्यकार, परिवार सभी समग्र रूप से सहयोगी रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाई योगेन्द्र जीत, शिक्षा में आधुनिक प्रवृतियां, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
2. चुण्डावत रानी लक्ष्मी कुमारी, मूमल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
3. गरवा रामकुमार, राजस्थानी गद्य शैली, कादेवनागर प्रकाशन, चौड़ा
4. कर्णावट देवेन्द्र कुमार, यह क्या, गांधी सेवा सदन, राजसमंद
5. लालस सीताराम, राजस्थानी व्याकरण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
6. नानूराम, राजस्थानी लोक साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
7. नानूराम, बालकां हेतु सीख, लोक साहित्य प्रतिष्ठान, कालू बीकानेर
8. पाठक पी.डी. शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
9. शर्मा लक्ष्मीकान्त, राजस्थान का संकालिन कथा साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
10. सेठिया कन्हैयालाल, ग्लगचियो, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
11. सिंह विजेन्द, त्यागी ओकांरसिंह उदेयमान भारतीय समाज और शिक्षा अरिहन्त शिक्षा प्रकाशन, जयपुर

**** Corresponding Author***
डॉ. विष्णु कुमार
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं
Email: kumarvishnu1975@gmail.com, Mob. No- 9214682041

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

''वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में नैतिक मूल्यों के योगदान में शिक्षकों की भूमिका''

शकुन्तला शर्मा
शोधार्थी

डॉ. विष्णु कुमार
निर्देशक एवं सहा. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लॉडनू

'' शिक्षा जीवन की तैयारी नही
बल्कि खुद ही एक जीवन है।
मूल्य रहित शिक्षा बालक को
एक चतुर शैतान बनाती है'' ।।

प्रस्तावनाः— शिक्षा व्यक्ति के विकास एवं ज्ञान बुद्धि का आधार मानी जाती है वह जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक चलने वाली एक सक्रिय एवं गतिशील प्रक्रिया है। लेकिन जब तक शिक्षा में नैतिक पक्ष का व्यावहारिक समावेश नही होगा तब तक उसका विकास अधूरा ही माना जायेगा एक बालक पूर्णतः मनुष्य तभी बन सकता है जब उसमें मानवीय मूल्य हो और ये बिना नैतिक मूल्य शिक्षा के संभव ही नही इसलिये शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार अधारित होने चाहिये जिससे शिक्षक नैतिक मूल्यों से युक्त शिक्षा देकर बालक का सर्वांगिण विकास कर सके।

आधुनिक युग में राष्ट्र जहां एक ओर प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है। वही नैतिक मूल्यों, चारित्रिक मूल्यों, व्यक्तित्व विकास का ह्रास होता जा रहा है। कक्षाओं में शिक्षक शिक्षार्थी के मध्य भी दूरी बढ़ती जा रही है आज विद्यालयों में नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित ज्ञान की कमी देखने को मिलती है । शिक्षा में मूल्यों का अध्ययन उसे उत्थान की ओर अग्रसर करता है। बेहतरीन विद्यालयों में भौतिक शिक्षा दिलवाने की प्रतिस्पर्धा में हम ये भूल जाते है कि जीवन उपयोगी नैतिक मूल्यों, मानवतायुक्त संस्कारों, धार्मिक विचारों की शिक्षा देने से ही मानव का पूर्ण विकास

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

संभव होता है। नैतिक, सामाजिक, धार्मिक व मानवीय शिक्षा को हम समय की बर्बादी समझते है और सही दिशा की ओर हम बालक को अग्रसर नही कर पाते है। नई शिक्षा नीति 2020 में भी नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से युक्त शिक्षा को पाठ्यक्रम में लागु करने की बात कही गई है। क्योकि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मूल्यहीन होती जा रही है जो बालक को पतन की ओर अग्रसर करती है और मूल्यों की प्राप्ति बहुत ही आवश्यक है । इनकी प्राप्ति में शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक है । इसके द्वारा ही शिक्षार्थियों में शिक्षा का बीज आरोपित किया जाता है। शिक्षकों को राष्ट्र निर्माता होने की संज्ञा प्रदान की जाती है। अतः शिक्षकों में मूल्यों का होना आवश्यक है। शिक्षक का व्यक्तित्व नैतिक गुणों से युक्त होना चाहिये, शिक्षक का व्यक्तित्व दया, प्रेम, सहयोग, आदर, सत्य, क्षमा, आत्मविश्वास, ईमानदारी, अनुशासन, शिष्टाचार, सही शब्दों का प्रयोग आदि मूल्यों से युक्त होना चाहिए शिक्षक कक्षा के दौरान केवल शिक्षण कार्य ही नही करवाता है बल्कि बालक में नैतिक गुणों का विकास भी करता है।

आज 21वीं सदी के लोगों ने बहुत तरक्की की है लेकिन अपने नैतिक मूल्यों को पीछे छोड़कर अपने व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति की है । मूल्य ही भारतीय समाज की पहचान है। मूल्यों से ही भारतीय संस्कृति का निर्माण सम्भव है। सांस्कृतिक मूल्यों का विकास बालक में परिवार से होना शुरू हो जाता है। भारतीय समाज में परम्परागत रूप से विद्यालय मे मूल्यों का परिचालक शिक्षक को ही माना गया है और शिक्षक के द्वारा दी गयी शिक्षा का तात्पर्य केवल यहा पुस्तकीय ज्ञान से ही नही है बल्कि बालक में व्यवहार कुशलता एवं नैतिक गुणों का विकास करने से है। जिससे वह समाज में अपना योगदान दे सके। कबीरदास जी कभी शिक्षा प्राप्त करने विद्यालय नही गये, लेकिन वे अनपढ़ नही कहलाये। उन्होने अपनी व्यवहार कुशलता एवं विचारधारा को समाज के हर कोने में फैलाकर सामाजिक मूल्यों को लागु करने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया। हमे शिक्षा के माध्यम से हमारे खोये हुये मूल्यों को वापिस प्राप्त करना है और भारतीय संस्कृति की सनातन परम्परा को बनाये रखना है। जिसने हर क्षेत्र में प्रगति की राह को विकसित किया है। हमें अपनी संस्कृति पर गर्व है परन्तु जिस द्रूतगति से हम अपने शाश्वत मूल्यों में अपनी आस्था खोते जा रहे है तथा तात्कालिक जीवन को सुखमय बनाने की होड़ में अनैतिक कार्यो को अपना रहे है जो कि एक अन्धकारमय भविष्य का प्रतीक है और यह स्थिति अगर लगातार चलती रही तो एक दशक के बाद ही समाज में नैतिकता का भी अन्त हो जायेगा। इन सभी स्थितियों से बचने के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना होगा जिसके द्वारा मानवीय मूल्यों को विकसित करके आगे आने वाली पीढ़ी को भी हस्तानान्तरित किया जा सके।

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

आज का बालक कल का भविष्य होता है। बालक का वर्तमान ही उसका सुनहरा भविष्य बनाता है। बालक के नैतिक मूल्य ही एक उच्च राष्ट्र के विकास में सहायक होते है भारतीय संस्कृति सनातन काल से ही अपनी सामाजिक तथा मूल्यों के कारण जानी जाती थी । वह आज लोगों की स्वार्थ पूर्ति के कारण बदनाम होती नजर आ रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा में मूल्यों युक्त शिक्षा का प्रावधान किया जाये, देखा जाये तो नैतिक मूल्य कोई नया शब्द नही है। इसे बहुत साधारण शब्द मान लिया गया है। आधुनिकता की होड़ मे नैतिक मूल्यों की अवहेलना शिक्षा के माध्यम से की जाने लगी वर्तमान में शैक्षिक परिस्थितियों के माध्यम से ही मूल्यों की प्राप्ति सम्भव है मूल्यों का विकास शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है।

आज की युवा पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में आकर अपनी भारतीय संस्कृति के मूल्यों को भूलती जा रही है। आज वर्तमान में छात्र अपने नैतिक गुणों एवं चरित्र को भुलाते जा रहे है। आज चरित्र पतन एक चलन सा हो गया है जिसे सुदृढ़ भविष्य के लिये रोकना बहुत जरूरी है और इसकी शुरूआत शिक्षा के माध्यम से एक शिक्षक के द्वारा सम्भव है। भारत जैसे देश में जहां मूल्यों एवं चरित्र पर विशेष बल दिया जाता है। वहां थोडे से स्वार्थ की खातिर नैतिकता एवं चारित्रिकता का ह्रास होता जा रहा है। वैसे तो जब बालक में उत्तम आचरण का विकास किया जाता है। बालक को व्यवहारशील एवं नैतिक गुणों से युक्त बनाया जाता है । अपने जीवन के प्रारिम्भक वर्षो में ही मूल्यों को सीखता है। लेकिन जैसे – जैसे समाज के सम्पर्क में आता है तो उसका आचरण एवं नैतिकता पीछे छूटती जाती है । जो बालक के पतन का कारण बनती है। हमारे नैतिक मूल्यों का ह्रास दिन–प्रतिदिन हमारे कार्यो में दिखाई दे रहा है। वर्तमान में यह एक ज्वलन्त एवं चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। मूल्यों के विकास को बनाये रखना आज का मुख्य विषय हो गया है। शिक्षा जीवन का आधार है। शिक्षा के माध्यम से ही बालक अपने जीवन को उन्नत बनाता है। शिक्षा का कार्य है कि आने वाली भावी पीढ़ी को इस प्रकार तैयार करे कि उनके व्यवहार में विनम्रता, दया, प्रेम, सहानुभूति, करूणा, ममत्व, भाईचारा, सहनशीलता जैसे मूल्यों को विकसित करे।

नैतिक मूल्यों के घटने के कारणः– वर्तमान युग आर्थिक एवं आधुनिक युग है। व्यक्ति एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ मे तथा अपनी ईच्छाओं की पूर्ति करने के लिए किसी भी प्रकार के गलत कार्यो को अंजाम देने से डरता नही है। आज व्यक्ति में लोभ, मोह, क्रोध, काम की बढ़ोतरी हो रही है। इंसान अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये किसी भी हद तक गिर सकता है। सोचने का विषय ये है कि आज से हजारों वर्ष पहले जो मूल्य हमारे समाज में स्थापित किये गये थे उनका क्षरण

कैसे हुआ। क्या ये वही समाज है जहां पर भाईचारा, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना, यस्य नारी पूज्यते रमन्ते तस्य देवता, अतिथि देवो भव जैसे आदर्श मानक स्थापित हुए थे उनका पतन क्यों हुआ ? इसका मुख्य कारण पाठ्यक्रमों में किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा का न होना, बालकों की नैतिक आधारशिला की नींव कमजोर होना, समाज मे बढ़ते अपराध टेलिविजन व मोबाइल का बढ़ता प्रयोग आदि से व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का हनन हो रहा है। डिजिटल तरीके से आज जो बच्चों को शिक्षा मिल रही है। वह इस समय की एक आवश्यक बुराई है। सोशल मिडिया बच्चों के नैतिक एवं चारित्रिक पतन का एक मुख्य कारण है। क्योकि आज सोशल मिडिया के माध्यम से जो शिक्षा प्रदान की जा रही है उसका कोई भविष्य नही है। क्योकि जो विद्या प्रागण में मिलती है। उसका कोई मोल नही है । उसी शिक्षा को बालक अपने जीवन में उतारता है। क्योकि वह हर पल को जीता है न कि डिजिटल शिक्षा को । सोशल मिडिया पर परोसे जाने वाले अश्लील कार्यक्रम चरित्रहीनता को बढ़ावा देते है। आज हर दिन समाचार पत्रों में महिलाओं के साथ होने वाले गलत कार्यो का उल्लेख देखने को मिलता है। व्यक्ति अपने हवस के कारण रिश्तों को भी शर्मसार करता नजर आ रहा है । आज धन की लोलुपता इतनी बढ़ गई है कि व्यक्ति को नैतिक मूल्य कही नजर ही नही आते है धन के लोभ में इतने अन्धे हो चुके होते है कि क्या गलत क्या सही सोचने की बुद्धि ही नही होती है।

नैतिक मूल्यों के घटने के कारण वर्तमान जीवन शैली का भी हाथ है। व्यक्ति अपने प्रयासों से समस्त सुख सुविधाओं को प्राप्त करता जा रहा है लेकिन अपने नैतिक मूल्यों को छोड़ता जा रहा है। एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज कही नजर ही नही आ रहा है । सभ्य समाज मात्र एक सपना रह गया है। आज हर दिन समाज में कोई ना कोई ऐसी घटना होती है जो मानव जाति को शर्मसार कर देती है इसका मुख्य कारण व्यक्ति की विक्षिप्त बुद्धि का होना है। आज परिवार में भी बालकों को नैतिक मूल्यों से युक्त शिक्षा नही दी जाती जिस कारण बालक की आधारशिला कमजोर रह जाती है और वह व्यवहारशील व्यक्ति नही बन पाता है। आज संयुक्त परिवारों का विघटन हाने के कारण भी मूल्यों का विकास नही हो पाता है। क्योकि संयुक्त परिवार में रहने से बच्चों में दया, सहयोग, प्रेम, भाईचारा, सहनशीलता, अनुशासन जैसे मूल्यों का विकास होता था लेकिन वर्तमान में हम दो हमारे दो की धारणा ने परिवारों को एकल स्वरूप प्रदान किया है। जो बालकों का सर्वागीण विकास करने में सक्षम नही है। आज विश्व भौतिकवादी विचारधारा के आधार पर संचालित हो रहा है । जिसमें आध्यात्मिक विचारधारा की उपेक्षा की जा रही है और यही कारण है कि मनुष्य अपनी मूल धारणा से भटकता हुआ साधन व सुख सुविधाओं को प्राप्त करने की जुगत से आगे चले जा रहे है। और अपने अस्तित्व व आधार को खोते चले जा रहे है

अर्थात भूलते जा रहे है। आज शहरी परिवेश भी दिन प्रतिदिन बदलता जा रहा है शहरी युवा पीढी पाश्चात्य जगत की चकाचौध से कृष्ण गर्त में अपने भविष्य को फंसाता जा रहा है जिससे बाहर निकलना असंभव दिखाई देता है। यह जानते हुए भी की पाश्चात्य विचारधारा हमारे मूल्यों व आदर्शो व संस्कृति से भिन्न है। जिसका कोई अस्तित्व नही है फिर भी इस ओर अंधी दौड़ लगा रहे है। आज हमे आवश्यकता है इसांन की न कि डॉक्टर, इंजिनियर या अन्य की । आज हम अपनी प्रगति के कारण चांद, सितारों की दुनियां तक पहुंच गये लेकिन अपनी धरती पर इंसानों की दुनिया को जो इंसानियत, जीवनदर्शन व मूल्यों पर आधारित है को भूलते जा रहे है।

नैतिक मूल्यों को विकसित करने में शिक्षा व शिक्षक का योगदानः— राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा कि ‘‘यदि हम वास्तविक रूप मे प्रगति करना चाहते है तो हमे मानवीय मूल्य एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना होगा’’ गुप्त जी के यह भाव अपनी निम्न कविता से परिभाषित होते है।

करते है हम पतित जनों पर ।
बहुधा पशुता का आरोप।।
करता है पशु वर्ग किन्तु क्या।
निज निःसर्ग नियमों का लोप।।
मैं मनुष्यता को सुख की ।
जननी भी कह सकता हूॅं।।
किन्तु पतित को पशु कहना भी।
कभी नही सह सकता हूॅं।।

नैतिक मूल्य पर चर्चा करना हमारा तभी सही होगा जब हम नैतिक, नैतिकता, नैतिक शिक्षा इत्यादि का अर्थ स्पष्ट रूप से नही समझ लेते है। आज बालकों में अपने सामाजिक मूल्यों, आदर्शो परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति जितनी प्रगाढ़ रूचि होगी उनका निर्वहन करना उतना ही आसान होता है और इन सब को व्यवहारिक जीवन में ढ़ालने का कार्य एक शिक्षक अपनी शिक्षा के माध्यम से कर सकता है। शिक्षा के इतिहास में आज तक एक शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। शिक्षक भगवान का रूप माना गया है। शिक्षक ही एक विद्यार्थी को निखारकर उसमें सदगुणों, दया, प्रेम, स्नेह, सहयोग, करूणा जैसे नैतिक नियमों का समावेशन कर सकता है। शिक्षा जीवन का आधार है। शिक्षा के माध्यम से ही बालक अपने जीवन को उन्नत बनाता है। शिक्षा के माध्यम से ही शिक्षक उन्हे व्यवहारकुशल बनाता है। यद्यपि बालक में मूल्यों का विकास

परिवार से होना शुरू हो जाते है लेकिन एक विद्यालय के वातावरण में शिक्षक उनका आदर्श होता है। और शिक्षक के द्वारा बतायी गयी बातों का वह तत्परता से अनुसरण कर लेता है। अध्यापक ही मूल्यों को आत्मसात करने में बालकों की सहायता करता है।

प्राचीन काल में महर्षि वशिष्ठ, सन्दीपन, चाणक्य, वाल्मिकी, द्रोण जैसे मूल्यों से युक्त अध्यापको ने ही श्रीराम, कृष्ण, सम्राट चन्द्रगुप्त, अर्जुन जैसे शिष्यों को अपनी शरण में लेकर मूल्यों युक्त शिक्षा देकर उनके व्यवहार को चरित्रवान, दयावान, विनयशील बनाया जिससे लोग उनका अनुसरण कर सके। इन सभी का जीवन लोगों को प्रेरणा प्रदान करता है। लोग इनका अनुसरण करना अपना सौभाग्य समझते है। अध्यापक अपने व्यवहार से जीवन मूल्यों के सम्प्रेषण हेतु एक प्रेरक का कार्य करते है। इसलिये शिक्षकों का जीवन भी मूल्यों युक्त होना अति आवश्यक है। आज मूल्यों के सन्दर्भ में शिक्षकों का औचित्य बढ़ जाता है। एक गुणवान शिक्षक ही अपने शिष्यों के जीवन से अवांछित बुराइयों को निकालकर श्रेष्ठ मूल्यों को जीवन में भर देता है। शिक्षक को स्वयं भी नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों से युक्त होना चाहिए, क्योकि एक चोर कभी खजाने की रक्षा नही कर सकता एक जहरीला नाग कभी विष नही त्याग सकता उसी प्रकार एक चरित्रहीन शिक्षक छात्रों में उच्च मूल्यों को स्थापित नही कर सकता हैं । शिक्षक ही बालकों का उचित मार्गदर्शन कर सकता है। शिक्षक वर्ग को ही इसके लिए आगे आना होगा । शिक्षक ही देश का निर्माता होता है जो बालकों में अच्छे आचरणों को विकसित कर देश की प्रगति में योगदान देता है। शिक्षक अपने प्रयास से बालकों में नैतिक रूप से आचरण करने की योग्यताओं को विकसित कर सकता है। शिक्षको के द्वारा विद्यालय में नैतिक वातावरण का निर्माण किया जाता है। नैतिकता व्यक्तित्व का ऐसा गुण है। जिस अर्जित किया जाता है यदि कोई बालक अपेक्षित व्यवहार नही करता है तो इसका दोष माता पिता को देते है या उसके परिवार को देते है। लेकिन ऐसा करते समय हम यह बिल्कुल भूल जाते है कि बालक में अच्छी बुरी भावना का विकास स्वतः नही होता है वरन वह तो अपने मित्रों सगी – साथियों परिवार के सदस्यों, शिक्षको के सम्पर्क में आकर नैतिक मूल्यों को समझने का तथा उनके अनुकरण का प्रयास करता है। कहा जाता है कि शिक्षक के व्यवहार का बालक बहुत जल्दी अनुसरण करते है। इसलिए शिक्षक अपने प्रयासों से नैतिक रूप से आचरण करने की योग्यताओं को विकसित कर सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि " हमे वह शिक्षा चाहिए जिससे व्यक्ति चरित्रवान एवं नैतिक बनता है और उसकी प्रतिभा व मन की शक्ति का विस्तार होता है "

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

शिक्षा ही एक मात्र साधन है जो व्यक्ति को चारित्रिक एव उतम आदर्शो से अवगत कराती है। शिक्षक ही नैतिक मूल्यों को विकसित करने का " सिरमौर " माना गया। मानव जीवन को समस्त जगत का आधार माना गया है और मानवीय जीवन बिना नैतिकता के समावेश के संभव नही है। नैतिकता के बिना न तो बालक में मानवीय मूल्य विकसित किये जा सकते है। और न ही उसे मानव बनाया जा सकता है।

अतः यह तो निः सन्देह कहा जा सकता है कि नैतिक मूल्य सम्पूर्ण शिक्षा की नींव होते है। नैतिक मूल्य जीवन की महत्वपूर्ण धरोहर होते है । इसकी सुरक्षा के दायित्व का निर्वाह करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। चाणक्य गलत नही कहते थे – ते द्विजाः कि कारिष्यन्ति निर्विषा इव पत्रगाः। जो लोग शिक्षा का उपयोग केवल धन प्राप्ति के लिए करेगें, वे समाज के लिए कुछ नही कर पाएगें।

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य भी मनुष्य का नैतिक एवं चारित्रिक निर्माण था। वेद हमारे सम्पूर्ण सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक जीवन का ज्ञान कराने के साथ साथ हमारे व्यवहारिक मूल्यों को प्रकट करने में हमारी सहायता करते है। वैदिक कालीन शिक्षा में ही चारित्रिक मूल्यों के उत्थान पर जोर दिया गया था । वर्तमान शिक्षा के माध्यम से बालकों में नैतिक शिक्षा के माध्यम से ऐसी भावना का विकास करना आवश्यक है जो मूल्यपरक व सकारात्मक हो इसलिए विद्यालय का वातावरण सकारात्मक हो तथा शिक्षक का व्यवहार नैतिकता से पूर्ण हो जिससे बालकों को प्रेरणात्मक शिक्षा प्रदान कर सके, जिससे एक उच्च समाज व राष्ट्र का निर्माण हो सके।

संदर्भ ग्रन्थः –

आशी शान्ति – "नीतिशास्त्र" (1982) बनारस ज्ञान मण्डल लिमिटेड
गुप्त नत्थुलाल – " मूल्यांकन शिक्षा और समाज" (2000) नम प्रकशन, नई दिल्ली
जैन शद्धत्मप्रकाश – " मूल्य शिक्षा" राखी प्रकाशन, प्रा.लि., आगरा
लोढ़ा महावीर मल – " नैतिक शिक्षा" विविध आयाम, जयपुर (2007) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

पंडया डॉ. शकुन्तला – "विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता" (2013) राजस्थान प्रकाशन
प्रो. पारीक मथुरेश्वर – " उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा" जयपुर प्रकाशन

रूहेला सत्यपाल – '' मूल्य शिक्षा क्या, क्यों, कैसे ? (2009) अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा

सैनी धर्मपाल – '' मानव – मूल्यपरक शब्दावली का विश्वकोश'' (2005) स्वरूप एण्ड सन्स, दिल्ली

शर्मा डॉ. राजेन्द्र –'' नैतिक मूल्य शिक्षा'' मार्च (1998)

शर्मा आर.पी. – '' मानव मूल्य एवं शिक्षा'' (2008) आर.लाल बुक डिपो मेरठ

तुलसी प्रज्ञा –''मूल्य–परक शिक्षा विशेषांक'' जनवरी – मार्च (1993) जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, नागौर

उपाध्याय सिद्धानाथ– '' मूल्य विमर्श'' (जनवरी 2009) मानवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, वाराणसी

यूजीसी केयर लिस्ट–85
जुलाई–सितंबर 2021
वर्ष 11, अंक–23

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक

डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक एवं परामर्श

डॉ. रमा

संपादक

डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग

रीमा प्रजापति

आवरण चित्र

डॉ. प्रेम प्रकाश मीणा

ले-आउट

हर्ष कंप्यूटर्स

संपादकीय कार्यालय

मकान नं. 189, ब्लॉक-एच

विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार

एफ-114, तृतीय तल, SLF, वेद विहार

नियर : शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी

गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता

आजीवन : 5000/–रुपए

संपर्क : 9871907081

वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com

Email : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशन एवं मुद्रण

हरिन्द्र तिवारी

हंस प्रकाशन, दिल्ली

मो. : 7217610640, 9868561340

ईमेल : hansprakashan88@gmail.com

वेबसाइट : www.hansprakashan.com

पृ.सं.

- **प्रवासी साहित्य : वर्तमान... :** *प्रो. खेमसिंह डहेरिया* 4
- **भारत में डिजिटल मीडिया... :** *डॉ. परमवीर सिंह* 7
- **'गिलिगडु' में अपनत्व... :** *डॉ. अनिता प्रजापत* 11
- **हिंदी कविता में अभिव्यक्ति... :** *डॉ. अरुंधति* 14
- **भूमंडलीकरण के युग में... :** *डॉ. धर्मेंद्र कुमार खटीक* 17
- **कोविड-19 महामारी के... :** *डॉ. भारती बतरा* 21
- **डॉ. भीमराव अंबेडकर के... :** *डॉ. जयपाल मेहरा* 27
- **भारत में महिला सशक्तिकरण... :** *सरिता सारस्वत* 31
- **''मानवीय मूल्यों के आलोक में... :** *कृष्णदेव राय* 35
- **भारतीय राजनीति में... :** *डॉ. राहुल कुमार पासवान* 39
- **बिहार और पिछड़ावाद की राजनीति... :** *अर्चना कुमारी* 42
- **प्राचीन काल में संचार... :** *डॉ. विवेक कुमार* 46
- **भारतीय विदेश नीति का सैद्धांतिक... :** *सुधांशु शेखर* 49
- **बिहार में महिलाएँ प्रशासनिक... :** *सौरभ सुमन* 52
- **हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-... :** *डॉ. गौरव कुमार शर्मा* 55
- **जलवायु परिवर्तन : दक्षिण... :** *हंसा मीणा* 59
- **''राजस्थान के पुलिस प्रशासन... :** *राहुल वर्मा* 62
- **श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित... :** *मनजीत कौर* 65
- **'मुझे चाँद चाहिए' में... :** *डॉ. सतीश कुमार पांडेय* 67
- **'जल टूटता हुआ' उपन्यास... :** *डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह* 70
- **मंगलेश डबराल की कविता... :** *केशव यादव* 73
- **मीडिया के सामाजिक और... :** *विक्रम गावडिया* 77
- **राजकमल चौधरी की कहानियों... :** *अजीत सिंह* 81
- **सांप्रदायिकता की करुण कथा... :** *सीमा दूबे* 84
- **नरेंद्र कोहली और उनकी... :** *डॉ. नीता त्रिवेदी* 88
- **हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में... :** *सुनीता मीणा* 92
- **आधुनिक कथा-साहित्य में... :** *डॉ. तारावती मीना* 95
- **महादेवी वर्मा के... :** *डॉ. करतार सिंह-राजकुमार मीना* 98
- **साहित्य आधारित सिनेमा... :** *दिनेश चंद्र सरस्वा* 102
- **'डाउनलोड होते हैं... :** *अर्चना यादव-डॉ. जयकरण यादव* 105
- **''भारतीय राजनीति में... :** *ऋतु-डॉ. उर्मिला* 110
- **समकालीन हिंदी कविता में... :** *प्रदीप कुमार ठाकुर* 113
- **महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन... :** *संदीप* 116
- **विश्व में प्रचलित हिंदी... :** *डॉ. कविश्री जायसवाल* 119
- **जलावतन में विस्थापन और... :** *डॉ. महावीर सिंह वत्स* 125
- **शिक्षा व्यवस्था... :** *डॉ. हेमा कुमारी महर-मदीप कुमार मीणा* 128
- **दिनकर का युद्ध विषयक... :** *डॉ. मीनू कुमारी* 133
- **अफगानिस्तान में गंभीर... :** *डॉ. मोहन लाल जाखड़* 137
- **वर्तमान युग में तुलनात्मक... :** *डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट* 140
- **साहित्य संबंधी प्रेमचंद... :** *ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह* 143
- **इंटरनेट पर पसंदीदा... :** *डॉ. प्रदीप तिवारी* 148

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी : *डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित।*

- 'मैथिलीशरण गुप्त के... : *डॉ. हेमवती शर्मा* 152
- भारतीय समाज में... : *डॉ. नीरव अडालजा* 155
- राजस्थानी लोककथाओं में... : *डॉ. गीता सामौर* 159
- नैतिकता और काव्य...*डॉ. कविता त्यागी* 161
- डॉ. कैलाश चंद... : *प्रो. मन्जुनाथ एन. अंबिग* 163
- सनसनीखेज... : *डॉ. संजय सिंह बघेल* 167
- आत्मनिर्भर महिलाओं... : *डॉ. बिजेंद्र कुमार* 170
- अंबेडकर संपादित... : *डा. प्रदीप कुमार-डा. सोमा कुमारी* 174
- कंदलि रामायण में... : *डॉ. रीतामणि वैश्य* 178
- 'निराला' की छायावादी... : *डॉ. सीमा माहेश्वरी* 181
- दिलोदानिश में... : *पूजाराधा* 184
- 'अपने-अपने पिंजरे'... : *अब्दुलहासिम* 189
- 'गीतांजलि' का जीवन-दर्शन...*डॉ. ममता खण्डाल* 192
- 'हम उस जगह मिलेंगे... : *कविता भाटिया* 195
- संबंधों की कशमकश है... : *सत्यप्रकाश सिंह* 198
- नई सदी का हिंदी साहित्य... : *डॉ. अमृता सिंह* 202
- आत्मकथा... : *डॉ. नूरजहान रहमातुल्लाह* 204
- आरंभिक मध्यकालीन... : *योगेंद्र दायमा* 206
- छायावाद में... : *डॉ. इंदु कनौजिया* 210
- भारत में कुम्हार का ज्ञान... : *अमित कुमार* 213
- ''दलित विद्रोह और... : *डॉ. तारु एस. पवार* 216
- सूचना प्रौद्योगिकी... : *हंसराज 'सुमन'* 219
- राष्ट्र के विकास में... : *धर्मशीला कुमारी* 225
- भारतीय संसदीय प्रणाली... : *मधु कुमारी* 228
- मंडल कमीशन एवं बिहार... : *राजेंद्र कुमार* 231
- वैदिक एवं बौद्ध कालीन... : *डॉ. चंदा रानी* 234
- कोरोना महामारी... : *डॉ. किरण कुमारी* 237
- कोरोना महामारी... : *डॉ. प्रतिभा प्रिया* 239
- शिक्षा, समाज और... : *प्रिया सुमन-डॉ. कल्पना मिश्रा* 241
- मानवाधिकार : प्रेमचंद... : *डॉ. सिंधु सुमन* 244
- पंडित दीनदयाल... : *सोनी कुमारी* 247
- पुलिस : भूमिका प्रत्याशा... : *तारा राम* 250
- महेंद्र वर्मन एवं... : *प्रवीण कुमार तिवारी* 253
- गांधी की बुनियादी... : *डॉ. प्रियंका सिंह* 256
- बंगाल और रंगमंच : *मन्नु कुमार शर्मा* 259
- सतत विकास का... : *मृत्युंजय कुमार सिंह* 262
- जल प्रबंधन एवं... : *डॉ. मो. रफत परवेज* 265
- योजना आयोग... : *डॉ. अरुण कुमार अमन* 268
- डिजिटल इंडिया में... : *डॉ. स्नेहा कुमारी* 270
- औषधीय पौधों का... : *डॉ. अनिल कुमार* 272
- भारत नेपाल... : *डॉ. अविनाश प्रताप सिंह* 275
- तकनीकी... : *डॉ. कृष्णा कुमारी-डॉरिनी पुंडीर* 278
- विकलांग व्यक्तियों... : *डॉ. भावना सिंह* 281
- भाषा की... : *डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत* 284
- भारत की सांस्कृतिक... : *डॉ. अमिता जैन* 287
- नए इलाके के... : *अनिता कुमारी यादव* 289
- कृष्णा अग्निहोत्री... : *नीतु एस.एस.* 292
- रामनरेश... : *श्रीमती सरला माधवप्रसाद तिवारी* 294
- समसामयिक राजनैतिक... : *डॉ. संजीव कुमार* 298
- कवि अरुण कमल... : *डॉ. प्रशांत कुमार* 301
- 'नगाड़े की... : *डॉ. के. विजय भास्कर नायडू* 304
- जयशंकर प्रसाद... : *डॉ. अमृता* 306
- मध्यवर्ग का जीवन-संघर्ष... : *डॉ. रतन कुमार* 309
- योग का वास्तविक... : *प्रो. बी.एल. जैन* 311
- सामाजिक एवं... : *डॉ. के. बालराजू-डॉ. उमेश कुमार सिंह* 313
- लोक साहित्य : *छविंदर कुमार* 315
- भारतीय समाज में... : ... 320
- पूर्वांचल केलोक... : *डॉ. सुरेंद्र कुमार* 324
- विकलांग विमर्श के... : *सुरेश चंद्रा* 327
- तुलसी साहित्य चिंतन... : *रामचन्द्र पाल* 330
- भाषा का सामाजिक... : *डॉ. राम विनोद रे* 334
- कोविड-19 महामारी... : *देवेश कुमार मेश्राम डॉ. सपना शर्मा सारस्वत* 341
- महामारियों की... : *डॉ. धीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव* 345
- आधुनिक... : *प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे* 349
- हिंदी-सिनेमा में... : *मोहन लाल* 352
- निर्मल वर्मा... : *डॉ. विष्णु कुमार जायसवाल* 355
- पाती प्रेमचंद... : *डॉ. विष्णु कुमार जायसवाल* 358
- कामतानाथ के... : *प्रविण घोंगडे* 362
- राधाचरण गोस्वामी... : *डॉ. कामना पण्ड्या* 365
- पब्लिक स्कूल एवं... : *डॉ. राजेश कुमार* 369
- रश्मिरथी का... : *डॉ. प्रशांत गौरव* 373
- सृजनात्मक एवं... : *त्रिभुवन गिरि* 376
- अवध का प्रथम... : *डॉ. चित्रगुप्त* 380
- हवेली संगीत में... : *डॉ. स्मृति त्रिपाठी* 383
- उत्तराखण्ड की... : *डॉ. राम भरोसे* 386
- तुलसी की... : *डॉ. आर्यकुमार हर्षवर्धन* 389
- जायसी कृत पद्मावत... : *डॉ. रश्मि शर्मा* 391
- भूमंडलीकरण, वसुधैव... : *नीरज* 395
- हिंदी साहित्य में... : *डॉ. राखी उपाध्याय* 399
- राष्ट्रीय-सांस्कृतिक... : *डॉ. नीतू शर्मा* 402
- रमेशचंद्र शाह... : *कृपा शंकर* 405
- 'अभ्युदय' उपन्यास... : *पंकज सिंह* 408
- ज्ञानरंजन की... : *ज्ञानरंजन* 412
- डॉ. शिवप्रसाद सिंह... : 415
- प्रतापनारायण मिश्र... : 418
- दलित चेतना... : *डॉ. यशवन्त वीरोदय-संगीता* 420
- स्वराज्य, आत्मनिर्भरता... : *डा. सुनीता* 425
- विद्यानिवास मिश्र के... : *अनिरुद्ध कुमार* 428

भारत की सांस्कृतिक विरासत का स्वरूप

डॉ. अमिता जैन

बहुसांस्कृतिक तत्त्वों से समन्वित भारतीय समाज वास्तव में सांस्कृतिक संपर्क और सामाजिक उथल-पुथल के परिणामस्वरूप हुए नए-नए अनुप्रयोगों का अद्भुत परिणाम है। इस क्रम में सभ्यताकाल से जो हमारी प्रामाणिक सांस्कृतिक विरासत प्रारंभ हुई, वह वैदिक, उत्तरवैदिक, मौर्यगुप्त, गुप्तोत्तर, राजपूत, सल्तनत, मुगल तथा ब्रिटिशकाल होती हुई आधुनिक काल तक निरंतर समृद्ध होती रही है और सदियों से झंझावातों का दृढ़तापूर्वक सामना करते महान् अक्षय वटवृक्ष की भाँति अपनी शाखाओं, प्रशाखाओं का निरंतर विस्तार कर रही है, जिसे हम निम्न संदर्भों में देख सकते हैं–

मानव जीवन के संदर्भ में

विश्व की किसी भी संस्कृति में मानव जीवन को व्यवस्थित करने की इतनी सुदृढ़ योजना नहीं मिलती जितनी कि भारतीय संस्कृति में मिलती है। जहाँ चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के द्वारा मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा गया, वहीं चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के माध्यम से उसे अपने उद्देश्यों की ओर प्रवृत्त किया गया है। इसके अतिरिक्त सोलह संस्कारों की भी व्यवस्था की गई है, जिनका संबंध मनुष्य के आत्मिक शुद्धीकरण एवं सामाजिक दायित्व के निर्वहन से है। डॉ. राजबली पाण्डेय ने कहा है–"जिस प्रकार चित्रकला में सहायता प्राप्त करने के लिए विविध रंगों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार चरित्र निर्माण भी विभिन्न संस्कारों द्वारा ही होता है, क्योंकि संस्कार ही व्यक्ति में अनुशासित जीवन व्यतीत करने की भावना उत्पन्न करता है।" इसके अतिरिक्त गृहस्थों के लिए पंच महायज्ञों की व्यवस्था भी की गई है, जो इस प्रकार हैं :

- ब्रह्मयज्ञ–जो स्वाध्याय एवं विद्यादान से पूर्ण होता है।
- पितृयज्ञ–जो श्राद्ध और तर्पण से पूर्ण होता है।
- देवयज्ञ–जो अग्नि में आहुति देकर होम करने से संपन्न होता है।
- भूतयज्ञ–जो भोजन का अंश कीड़े-मकोड़ों एवं अदृश्य आत्माओं के लिए रखने से पूर्ण होता है।
- नृ-यज्ञ–जो अतिथि सत्कार से पूर्ण होता है।

ये सभी विधान नित्य प्रति अनुकरणीय माने गए हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को बहुमूल्य मानते हुए उसके नियोजित एवं उद्देश्यपूर्ण विकास पर बल दिया गया, जो भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्टता, अपनी विरासत है।

आस्था एवं विश्वास के संदर्भ में

भारतवर्ष आस्था एवं विश्वासों की संगम स्थली है। यहाँ हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध और फारसी सभी का संगम है। हिंदुओं में कोई वैष्णव, कोई शाक्त तो कोई शैव है। मुसलमान धर्मावलम्बियों में कोई शिया है तो कोई सुन्नी। ईसाई धर्मावलम्बियों में कोई कैथोलिक है, तो कोई प्रोटेस्टेंट। जैन धर्मावलंबियों में कोई दिगंबर है, तो कोई श्वेतांबर। बौद्ध धर्मावलंबियों में कोई हीनयानी है, तो कोई महायानी। इसके अतिरिक्त कोई ब्रह्मसमाजी है, तो कोई आर्य समाजी, कोई सगुण भक्ति का उपासक है, तो कोई निर्गुण भक्ति का, कोई शंकर के अद्वैत का अनुयायी है, तो कोई निंबार्क के द्वैताद्वैत का। दर्शन के क्षेत्र में कोई कपिल के सांख्य दर्शन का, तो कोई पतंजलि के योग दर्शन का, तो कोई चार्वाक के लोकायत दर्शन का अनुयायी है। इस प्रकार भारतवर्ष आस्था एवं विश्वास के महासमुद्र की भाँति है, जिसमें अनेक मत-मतांतर रूपी धाराएँ मिलकर महासमुद्र का रूप धारण करती हैं, अंततः ये सब मिलकर भारत की सांस्कृतिक विरासत का रूप धारण करती हैं।

त्यौहारों एवं तीर्थों का संगम

विश्व की किसी भी संस्कृति में इतने अधिक व्रत, त्यौहार, मेले, तीर्थ एवं स्नान पर्वों की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती, जितनी कि भारत वर्ष में दिखाई पड़ती है। यहाँ मनाए जाने वाले प्रमुख त्यौहारों में हम पोंगल, बिहू, बसंत-पंचमी, महाशिवरात्रि, होली, महावीर जयंती, रामनवमी, गुड फ्राइडे, बुद्ध जयंती, वैशाखी, नागपंचमी, जन्माष्टमी, गणेशचतुर्थी, रक्षाबंधन, ओणम, पर्युषण, दशहरा, नवरात्रि, दीपावली, छठ पूजन, गुरु-पर्व, क्रिसमस इत्यादि की चर्चा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक तीर्थ हैं, जिनमें शंकराचार्य द्वारा स्थापित ब्रदीनाथ, पुरी, द्वारिका, रामेश्वरम् चार पवित्र धाम हैं। इनके अतिरिक्त माउण्ट आबू, अमरनाथ, अयोध्या, गया, अमृतसर, हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक, वाराणसी, अजमेर, कोणार्क, शिरडी, तिरुपति, श्रवण-बेलगोला, मदुरै इत्यादि यहाँ के अति महत्त्वपूर्ण

तीर्थस्थल हैं जहाँ मेलों, उर्सों, कुंभ तथा महाकुंभ के स्नान पर्वों का आयोजन होता है। इन सब धार्मिक कृत्यों में आध्यात्मिक उन्नयन की भावना के साथ ही समाज के सुसंगठन एवं उसमें समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न भी दिखाई पड़ते हैं। ये सभी तीज, त्यौहार, मेले, तीर्थ हमें एक मंच पर लाकर सह-अस्तित्व का बोध कराते हैं।

नारी सम्मान

विश्व की किसी भी संस्कृति में नारी के सम्मान को इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना कि भारतीय संस्कृति में। हमारा यह आदर्श उद्बोधन रहा है–"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता।" अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान किया जाता है, वहाँ देवता स्वयं वास करते हैं। यहाँ के कवियों ने भी नारी जगत् को महत्त्व देने के उद्देश्य से साहित्य सर्जना की है, प्रसाद ने जहाँ "नारी तुम केवल श्रद्धा" हो कहकर उनका मान बढ़ाया, वहीं पंत ने उसकी मुक्ति का आह्वान करते हुए उसे जननी, सखी एवं प्यारी जैसी विशेषताओं से विभूषित किया है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में नारी को त्याग, समर्पण, प्रेम और सौभाग्य की प्रतिमूर्ति मानते हुए उसे पूजनीय माना जाता है।

संगीत एवं नृत्य के संदर्भ में

संगीत एवं नृत्य विधाओं की दृष्टि से भी भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध रही है। यहाँ शास्त्रीय संगीत से संबंधित दो प्रमुख शैलियाँ हैं–1. हिंदुस्तानी शैली 2. कर्नाटक शैली। इसके अतिरिक्त अनेक शास्त्रीय नृत्य भी प्रचलित हैं, जिनमें भरतनाट्यम्, कथकली, कुचिपुड़ी, दक्षिण भारत के, ओडिसी, मणिपुरी पूर्वी भारत के तथा कत्थक उत्तर भारत का शास्त्रीय नृत्य है। अनेक लोक नृत्यों में मिजोरम का बांस नृत्य, मध्य प्रदेश का कक्सर, बिहार का जादुर, आन्ध्रप्रदेश का लिंगी, उड़ीसा का छाऊ, पंजाब का भांगड़ा, मणिपुर का लाई हरोबा, गुजरात का गरबा, कश्मीर का रऊफ तथा राजस्थान का घूमर एवं डाण्डिया रास प्रमुख हैं। इन लोक नृत्यों के अतिरिक्त अनेक क्षेत्रीय एवं जनजातीय नृत्यों एवं लोकगीतों से भी भारत की सांस्कृतिक विरासत समृद्ध है। ये सभी संगीत एवं नृत्य हमारी मानवीय संवेदनाओं को ध्वनित कर हमें हमारी संस्कृति की जीवंतता का अहसास कराते हैं।

महापुरुषों की जन्मस्थली

भारत भूमि अनेक महापुरुषों की जन्मस्थली रही है। जिनमें गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, अशोक, नानक, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, नामदेव, राजाराम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, दयानंद, विवेकानंद, तिलक, गोखले तथा महात्मा गांधी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने न केवल सत्य, अहिंसा, शांति, सहिष्णुता, प्रेम, विश्वबंधुत्व, त्याग तथा समर्पण के मार्ग पर मानव मात्र को चलने का संदेश दिया, अपितु स्वयं भी उस पर चले। इन सभी महापुरुषों ने अपने सत् प्रयासों से भारत को रूढ़िमुक्त जीवंत समाज बनाने का प्रयास किया। आज का आधुनिक भारत इनके ही सत्प्रयत्नों की बुनियाद पर खड़ा है।

ज्ञान-विज्ञान के संदर्भ में

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध रही है। राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र में निर्देशन देने हेतु जहाँ कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' की रचना की, वहीं व्याकरण पर पाणिनी ने 'अष्टाध्यायी' की रचना की। 64 कलाओं से युक्त 'कामसूत्र' की रचना वात्स्यायन ने की, जो आज भी विश्व के संपूर्ण ज्ञान का आधार है। चरक कृत 'चरकसंहिता' तथा वाग्भट कृत 'अष्टांगहृदय' चिकित्साशास्त्र की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त आर्यभट्ट कृत आर्यभटीयम् सूर्य सिद्धांत, भास्कराचार्य कृत सिद्धांत शिरोमणी एवं लीलावती, वराहमिहिर कृत पंचसिद्धांतिका, बृहज्जातक तथा बृहद्संहिता इत्यादि से गणित, खगोल-विज्ञान एवं ज्योतिष जैसे गूढ़ विषयों पर प्रमाणिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान स्थापित हुआ। आधुनिक युग में रमन प्रभाव के प्रतिपादक सी.वी. रमन, पौधों में जीवन के प्रतिपादक तथा क्रेस्कोग्राफ के आविष्कार जे.सी. बोस तथा ब्लेक होल अवधारणा के प्रतिपादक सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर भारत के ही वैज्ञानिक थे जिन्होंने अपने आविष्कारों से ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विश्व का मार्ग-दर्शन किया।

उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परंपराएँ सनातन हैं, जिनमें अनुशासित आदर्श जीवन का खाका शामिल है। भारतीय संस्कृति में परंपरा एवं आधुनिकता के साथ निरंतरता (सातत्य) तथा परिवर्तन के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार भारतीय समाज की सांस्कृतिक विरासत बहुत समृद्ध है। इसीलिए हमारे समाज को अद्वितीय एवं विविधतापूर्ण सनातन समाज माना जाता है। जीवन के अनेक अद्भुत पक्षों और विलक्षणता के कारण हम विश्व गुरु रहे हैं। इन समृद्ध परंपराओं को अब आधुनिकता के साथ वैज्ञानिकता के सांचे में ढालने की आवश्कता है। भारतीय संस्कृति जीवंत संस्कृति है और उसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत उसका गौरव है, जिसमें मनुष्य के चरित्र निर्माण से लेकर उसके जीवन के समस्त रचनात्मक पहलुओं पर न केवल गंभीरता के साथ विचार किया गया, अपितु आदर्शों एवं सुकृत्यों द्वारा उन्हें मूर्त रूप में परिणित भी किया गया।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

1. गुप्ता, मोतीलाल (2018), भारत में समाज, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
2. कोठारी, गुलाब (2016) शिक्षा और संस्कार, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर
3. कोठारी, गुलाब (2016) संस्कृति और सभ्यता, पत्रिका, प्रकाशन, जयपुर
4. कोठारी, गुलाब (2015) अध्यात्म और जीवनमूल्य, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर
5. शर्मा, जी.एल. (2015) सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. लवानिया, एम.एम., जैन, शशि के. (2008) समाजशास्त्र के सिद्धांत, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 14, ISSUE- 3 (SEPTEMBER- 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

अतिथि सम्पादक :

रोहतास निम्मी

शोधार्थी, पत्रकारिता विभाग, गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार।

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

19.	The Role of National Education Policy, 2020 in Developing the Nation	Vikram Singh Bhadoriya	113-117
20.	कोविड-19 का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	विजय कुमार, डॉ. सुगंधा जैन	118-123
21.	Future Prospects of Teacher Educator in India	Dr. Santosh Arora, Md. Matin Arif	124-125
22.	साहित्य और समाज का संबंध	शिवलाल अहिरवार	126-129
23.	हिंदी कविता में राष्ट्रीय चेतना के स्वर	कृष्णा अवतार	130-138
24.	किन्नर जीवन के संघर्ष की चर्चा करते समकालीन उपन्यास	डॉ. रिंकी सिंह	139-144
25.	नन्हे-नन्हे कदमों से चलकर चन्द्रकला की पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हमारी हिंदी	डॉ. नागेन्द्र प्रताप सिंह	145-154
26.	अरबी साहित्य : प्रभावशाली परम्परा	डॉ. श्वेता सुकुमार	155-159
27.	पर्यावरण समस्या एवं समाधान के प्रति जागरूकता	डॉ. अमिता जैन	160-163
28.	PHILOSOPHY OF GURU TEG BAHADUR JI AND ITS RELEVANCE IN MODERN ERA	Harpreet Kaur	164-168
29.	वैदिक वाङ्मय में गुरु-शिष्य सम्बन्ध	प्रतिभा	169-174
30.	छायावादी काव्य और रवीन्द्रनाथ टैगोर काव्य में सामान्य जन सामान्य वस्तु के प्रति प्रेम	Dr. Jhunubala khuntia	175-180
31.	समालोचना उदाहरण व उद्धरण	प्रो. बी.एल.जैन	181-184

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2021 Page No. : 160-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण समस्या एवं समाधान के प्रति जागरूकता

-डॉ. अमिता जैन

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं।

सारांश :-

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो इस प्राकृतिक व्यवस्था को लांघकर अपने असंयम से कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है, जिससे इस सहज संतुलन के बिगड़ने का खतरा पैदा हो रहा है। क्या मनुष्य ने कभी ध्यान दिया कि आवश्यकता से ज्यादा वनस्पति को नहीं काटना चाहिए? आवश्यक काम करने के लिए कुछ नीम पत्तियां तोड़नी है तो पूरी शाखा क्यों तोड़ें? स्नान करने में एक बाल्टी पानी पर्याप्त है फिर भी नल को खोलकर घंटों तक अनावश्यक पानी क्यों बहा देते हैं? क्या यह अतिक्रमण नहीं है? यदि ये प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क में उभरने लगें तो क्या पर्यावरण की समस्या के समाधान की दिशा में प्रस्थान न हो जाए?

मुख्य शब्द : मिथ्या दृष्टिकोण, स्वतंत्र सत्ता, ज्वलंत प्रश्न, अहिंसा का प्रदूषण।

प्रस्तावना :-

मनुष्य आज अनेक दिशाओं में प्रगति कर रहा है, पर पर्यावरण संकट के रूप में वह ऐसे खतरनाक बिन्दु पर भी पहुंच रहा है जहां विकास की सारी यात्रा पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है। दुनिया में अपना एक निश्चित सन्तुलन है। सारी प्रकृति तालबद्ध तरीके से चल रही है। इस गतिमयता के पीछे ईश्वर का हाथ है। वही सृष्टि की सर्जना करता है, वही इसका पोषण करता है और वही इसका विनाश करता है, पर 'जैन दर्शन' ऐसी किसी ईश्वर–शक्ति में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार तो सब कुछ अपने प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही हो रहा है। फिर भी मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो इस प्राकृतिक व्यवस्था को लांघकर अपने असंयम से कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है, जिससे इस सहज संतुलन के बिगड़ने का खतरा पैदा हो रहा है।

मिथ्या दृष्टिकोण :-

मिथ्या दृष्टिकोण से पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है। वैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ता, राजनेता बार–बार इस बात को दोहराते हैं– पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है और यही क्रम चलता रहा तो एक दिन पृथ्वी हमारे लिए उपयोगी नहीं रहेगी, प्राणी मात्र के लिए रहने लायक नहीं रहेगी, भयंकर बन जायेगी। इसलिए पर्यावरण के ज्ञान की आवश्यकता है। दुनिया के हर कोने में पर्यावरण के लिए आंदोलन चल रहा है। क्या केवल आंदोलन से पर्यावरण के प्रदूषण को मिटाया जा सकता है? ऐसा संभव नहीं है। प्रदूषण का जो मूल कारण है, वह है मिथ्या दृष्टिकोण। जब तक दृष्टिकोण सम्यक् नहीं बनता, प्रदूषण को मिटाने की बात कोरी कल्पना रह जायेगी।

स्वतंत्र है सत्ता :-

नये मुनि को सबसे पहले दशवैकालिक सूत्र सिखाया जाता है। उसका एक सूक्त है– 'पुढो सत्ता' प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र सत्ता है। चाहे वह छोटा पौधा हो, चाहे वह कोंपल हो, चाहे वह छोटा पत्ता हो और चाहे वह एक छोटा सा अग्नि का कण हो। सबकी स्वतंत्र सत्ता है। एक मिथ्या धारणा बन गई और यह मान लिया गया कि सब पदार्थ मनुष्य के लिए बनाये गये हैं। विश्व का एक बड़ा वर्ग मांसाहारी लोगों का है। जब–जब मांसाहारी लोगों से पूछा जाता है– मांस क्यों खाते हो? उत्तर मिलता है– अगर मांस न खाएं तो भगवान ने पशु बनाएं ही क्यों? ये पशु–पक्षी मनुष्य के लिए ही तो हैं। जब उन्हें कहा जाता है कि शेर आने पर तुम भागते क्यों हो? तुमको खाने के लिए ही तो शेर को बनाया गया है। वे इस प्रश्न को सुनकर मौन हो जाते हैं।

ज्वलंत प्रश्न :-

पर्यावरण के संदर्भ में आज यही ज्वलंत प्रश्न है, यदि मनुष्य इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता चला जाएगा तो क्या बचेगा? पृथ्वी है, पानी है, अग्नि है, वायु है और सबसे बड़ी बात वनस्पति का जगत् है तो आदमी है। आदमी अकेला जी नहीं सकता। भगवान महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया था और उस सत्य के साक्षात्कार के बाद उन्होंने कहा था– पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति इन सबकी स्वतंत्र सत्ता है। "सबकी स्वतंत्र सत्ता है" यह सच्चाई समझ में आ जाए तो इन सबके प्रति इतना अतिक्रमण और अत्याचार नहीं हो सकता। आज बहुत अतिक्रमण होता है। मनुष्य चाहे जैसे उनके साथ व्यवहार करता है। क्या मनुष्य ने कभी ध्यान दिया कि आवश्यकता से ज्यादा वनस्पति को नहीं काटना चाहिए? आवश्यक काम करने के लिए कुछ नीम पत्तियां तोड़नी है तो पूरी शाखा क्यों तोड़ें ? क्या यह इन जीवों के प्रति अतिक्रमण नहीं है, अन्याय नहीं है? क्या मनुष्य ने यह सोचा– पानी से हाथ धोना है, एक गिलास पानी से काम चल सकता है, पर वहां कई लोटे पानी क्यों गंवा देते हैं? स्नान करने में एक बाल्टी पानी पर्याप्त है फिर भी नल को खोलकर घंटों तक अनावश्यक पानी क्यों बहा देते हैं? क्या यह अतिक्रमण नहीं है? यदि ये प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क में उभरने लगें तो क्या पर्यावरण की समस्या के समाधान की दिशा में प्रस्थान न हो जाए?

पृथ्वीकाय की अहिंसा का प्रदूषण :-

महावीर ने पृथ्वीकाय की हिंसा का निषेध किया है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए खासकर पत्थर के कोयले के लिए पृथ्वी का जबरदस्त दोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिकों ने आशंका प्रकट की है कि यदि खनिज पदार्थों का उपयोग किया गया तो कुछ ही वर्षों में उसके भण्डार निःशेष हो जायेंगे। दुनिया में जब से औद्योगिकरण की लहर आयी है तब से ही पत्थर के कोयले के जलने से उसकी धूल, कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड तथा कुछ ऑर्गेनिक गैसों के रूप में प्रदूषणकारी पदार्थों की भरमार हो गयी है। इस पृथ्वीकाय की हिंसा केवल पृथ्वीकाय की हिंसा ही नहीं है, अपितु उसके साथ वातावरण का संतुलन भी गहरे अर्थ में प्रभावित होगा।

ईंधन तथा वायु का प्रदूषण :-

वायु प्रदूषण आज के युग की एक ज्वलन्त समस्या है। वातावरण हमारे परिसर का एक प्रमुख अंग है। पृथ्वी पर ऑक्सीजन का स्रोत ओजोन ही है। साथ ही पृथ्वी पर सूर्य को प्रकाश से पराबैंगनी विकिरणों को रोकने का अथवा सोखने का काम भी यह परत करती है। यदि ये विकिरण पृथ्वी पर सीधे पहुंच जाएं तो त्वचा का

कैंसर, आंखों के रोग आदि हो सकते हैं। वातावरण की शुद्ध हवा ने यहां प्राणियों को जीवन का आधार प्रदान कर रखा है। पर मनुष्य ने अपनी सुख–सुविधाओं के लिए तीव्रता से उसे दूषित करना शुरू कर दिया है। सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ है कि पिछले सौ वर्षों में वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा में 16 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो चुकी है, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अगर कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा हमारे वातावरण में निरन्तर बढ़ती रही तो मनुष्य एवं जानवरों के शरीर हेतु आवश्यक प्राणवायु का अनुपात घट जायेगा।

धूम्रपान : आत्महत्या या परहत्या :-

वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि तम्बाकू में चार पदार्थ मानव के लिए विष का काम करते हैं– 1. निकोटीन, 2. कोल्टा, 3. आर्सेनिक, 4. कार्बन–मोनो–ऑक्साइड। इनसे मानव शरीर पर धीमी मृत्यु की सी प्रतिक्रिया होती है। अमेरिका के एक डॉक्टर ने बताया– कैंसर के मरने वालों में सिगरेट पीने वालों की संख्या सिगरेट न पीने वालों की संख्या से 27 गुना अधिक थी। एक नेत्र चिकित्सक डॉ. एच.एस. के अनुसार धूम्रपान से आंखें कमजोर हो जाती हैं। तम्बाकू से होने वाली हानि को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक चिकित्सा पद्धति इसका निषेध करती है। डॉ. कोवर्स विंसला पागलपन सम्बन्धी रोगों के विशेषज्ञ माने गए हैं। उन्होंने हजारों पागलों के निरीक्षण और उपचार के उपरांत अपने निष्कर्ष में बताया है– "यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं पागलपन के कारणों को इस क्रम में रखूंगा– "पहला मद्य, दूसरा तम्बाकू और तीसरा आनुवंशिकता।" अतएव धूम्रपान केवल आत्म–हत्या ही नहीं है वरन् धुएं एवं रासायनिक पदार्थों के पड़ने वाले दुष्प्रभावों से पर्यावरण भी प्रदूषित होता है तथा यह दूसरों के स्वास्थ्य के लिए जिम्मेवार है।

ध्वनि प्रदूषण और वायुकायिक हिंसा :-

भगवान् महावीर ने कहा– 'जं सम्मंति पासह तं मोणंति पासह'। जो सत्य को जानता है वही मौन को जानता है और जो मौन को जानता है वही सत्य को जानता है। सचमुच इस उक्ति में गहरा अर्थ भरा हुआ है। अधिकांश लोग शब्द शक्ति को ही पहचानते हैं पर आज यह स्पष्ट हो गया है– शब्द या ध्वनि मनुष्य के लिए कितनी घातक हो सकती है। बोलने से मनुष्य की अपनी शक्ति तो क्षीण होती ही है पर ध्वनि का शस्त्र सरीखा प्रभाव होता है। इस स्फोटक ध्वनि से बड़े–बड़े पत्थरों को तोड़ा जा सकता है, तब बेचारे कान के कोमल पर्दों की तो बात ही क्या है? असह्य ध्वनि का प्रभाव केवल कानों पर ही नहीं होता अपितु सारे शरीर पर पड़ता है। श्वसन प्रणाली, पाचन–प्रणाली तथा जनन–क्षमता पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। ध्वनि का सबसे घनिष्ठ प्रभाव तो कदाचित मज्जा संस्थान पर होता है। इससे निद्रानाश, चिड़चिड़ापन, नैराश्य आदि के रूप में मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाता है जिसका अन्तिम परिणाम आत्महत्या तक हो सकता है। गर्भस्थ शिशुओं पर भी ध्वनि का तीव्र प्रभाव पड़ता है।

समाधान :-

वातावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए वृक्षारोपण सर्वश्रेष्ठ साधन है। दूसरी ओर वृक्षों के अधिक कटाव पर भी रोक लगायी जानी चाहिए। कारखाने और मशीनें लगाने की अनुमति उन्हीं लोगों को दी जानी चाहिए जो औद्योगिक कचरे और मशीनों के धुएं को बाहर निकालने की समुचित व्यवस्था कर सकें। संयुक्त राष्ट्रसंघ को चाहिए कि वह परमाणु परीक्षणों को नियन्त्रित करने की दिशा में उचित कदम उठाए। तेज ध्वनि वाले वाहनों पर साइलेंसर आवश्यक रूप से लगाए जाने चाहिए तथा सार्वजनिक रूप से लाउडस्पीकरों आदि

के प्रयोग को नियन्त्रित किया जाना चाहिए।

उपसंहार :-

स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि आज विज्ञान भी पृथ्वी आदि भूतों के बारे में जिस दृष्टि से विचार करने लगा है उससे अहिंसा मान्यता को एक नया आयाम मिला है। धर्म जहां प्राण विनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहां विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार कर रहा है। जैन धर्म जहां प्राणिमात्र की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहां विज्ञान केवल मनुष्य की दृष्टि से विचार करता है। दुनिया के हर कोने में पर्यावरण के ज्ञान की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :-

1. कुमारी प्रभा, जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. त्रिपाठी, दयाशंकर, पर्यावरण अध्ययन, भारतीय साहित्य संग्रह, दिल्ली।
3. जोशी, रतन, पर्यावरण अध्ययन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. सक्सेना, एस.एम., पर्यावरण अध्ययन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
5. महाप्रज्ञ, आचार्य, पर्यावरण : समस्या और समाधान, जैन विश्व भारती, लाडनूं।
6. आचार्य महाप्रज्ञ, पर्यावरण : समस्या और समाधान (पृ. 1)
7. पुढो सत्ता (दशवैकालिक सूत्र)
8. आचार्य महाप्रज्ञ, पर्यावरण : समस्या और समाधान (पृ. 11–12)
9. आचार्य महाप्रज्ञ, पर्यावरण : समस्या और समाधान (पृ. 11–12)
10. 'जं सम्मंति पासह तं मोणंति पासह' (आचा. 4–51)

शब्द-ब्रह्म E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सम्यक जीवन की शिक्षा और संस्कृति संरक्षण

डॉ अमिता जैन
सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं, नागौर, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

विज्ञान, तकनीक एवं संचार के इस युग में संस्कार संस्कृति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। हमारी संस्कृति चार पुरूषार्थ, चार आश्रम, चार वर्ण व्यवस्था अहिंसा, सत्य, त्याग, तपस्या की रही है, लेकिन वर्तमान संस्कृति में उपभोग, मुक्त मार्केट फैशन परस्ती, मोबाइल संस्कृति का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। सम्यक जीवन की शिक्षा से इस अपसंस्कृति पर रोक लगाई जा सकती है।

प्रस्तावना

आज की शिक्षा में संस्कार दिया जाना आवश्यक है। बिना संस्कार के शिक्षा अर्थहीन होगी। भारतीय संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों की जरूरत बताई गयी है, पर जीवन निर्माण हेतु सात संस्कार की शिक्षा देना आवश्यक है - स्वच्छता, सम्मान, सहनशीलता, सहयोग, श्रम, स्वाध्याय व साधना का संस्कार। शिक्षा प्राप्त नहीं करने पर स्वयं को हानि पहुंचती है लेकिन अच्छे संस्कार नहीं मिलने पर सम्पूर्ण कुटुम्ब, समाज, देश को हानि उठानी पड़ती है। आज का वातावरण संस्कारहीन होता जा रहा है। सिनेमा, टी.वी., इंटरनेट व फेसबुक जैसे माध्यमों से आज के विद्यार्थी गलत दिशा में जा रहे है। विद्यालय, परिवार, समाज और देश के विकृतियों से भरे चेहरों से सिहरन होने लगती है। संस्कारहीन वातावरण कुछ कारणों की वजह से उभरकर हमारे समक्ष उपस्थित हो रहा है। आध्यात्मिक परिवेश का अभाव, महापुरूषों के सम्पर्क का अभाव, कहानियों द्वारा दिये जाने वाले संस्कारों का लोप, अश्लील साहित्य के प्रति अभिरूचि, श्रेष्ठ साहित्य का अभाव, संस्कार निर्माण में अभिभावक व शिक्षक की भूमिका का गौण होना, उत्तेजित करने वाले श्रव्य व दृश्य साधन की प्रचुरता आदि के कारण बालकों में संस्कारहीनता विकसित हो रही है। जिससे संस्कृति में बदलाव सा दिखाई दे रहा है।

मुक्त मार्केट की संस्कृति

विज्ञान, तकनीक व संचार के इस युग में मुक्त मार्केट की संस्कृति तेजी से प्रचलन में आ रही है। हर वस्तु ऑनलाईन के माध्यम से व्यक्ति के घर पहुंचाने की सुविधा प्रदान की जा रही है। इससे छोटे उद्योगों की संस्कृति बन्द होने की कगार पर है। भौतिकता व विज्ञान के इस युग में इस संस्कृति में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपना जाल बिछा रही हैं। गरीब, निर्धन, असहाय, मजदूर का जीवन दूभर हो गया है। सस्ते दामों में वस्तुएं उपलब्ध होने से व्यक्ति आवश्यकता

E ISSN 2320 – 0871
17 जुलाई 2021

से अधिक संग्रह कर रहा है। अधिकतम धन खर्च की संस्कृति बढ़ रही है।

शिक्षा में उपभोग की संस्कृति का बढ़ना

आज शिक्षा में उपभेग की संस्कृति का चलन तेजी से बढ़ा है। ज्ञान, मूल्य व संस्कार देने की संस्कृति कम हो रही है। शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थान शिक्षकों को कम वेतन देकर अधिक से अधिक धन बटोरने का प्रयास कर रहे हैं। उपभोग की संस्कृति ने शिक्षा को नीरस, निष्क्रिय, निर्जीव बना दिया है। परिणामस्वरूप कुसंस्कार, कुप्रवृत्तियां और कुविचार अधिक हावी हैं। शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के व्यवहार में यह प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर हो रही है। सही ज्ञान, सही विचार व सही सोच शिक्षा के क्रियाकलापों में अवलोकित नहीं हो रहे हैं।

फैशन परस्ती की संस्कृति का प्रचलन

भौतिकवादी प्रवृत्ति से ग्रस्त होकर मनुष्य सब कुछ भोगने की चाह में लगा हुआ है। काम वासना की तरफ उसका आकर्षण तेजी से बढ़ा है। जिसकी वजह से हर क्षेत्र में हर वर्ग का युवा वर्ग फैशन परस्ती में संलिप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि युवा वर्ग ही नहीं प्रौढ़ वर्ग भी फैशन परस्ती की चपेट में आ चुका है। काम वासना को जाग्रत करने वाले वस्त्र को पहनना, शरीर प्रदर्शन करना, सौन्दर्य प्रसाधनों का दिनभर उपभोग करना, शरीर को प्रसाधनों से आकर्षक बनाने का प्रयास करना, तड़क-भड़क के वस्त्रों को पहनना आज आम बात हो गयी है। फैशन के मोह में अपनी संस्कृति दूषित दिखाई देने लगी है। इस भोग वृत्ति संस्कृति ने घरों में वस्त्रों का ढेर लगा दिया है। घर में चारों तरफ वस्त्र, जूते चप्पल व प्रसाधन की सामग्री ही दिखाई देती है। सबसे अधिक धन राशि फैशन पर ही खर्च हो रही है। इस भौतिकवादी प्रवृति के जाल से छुड़ाने में अध्यात्म कारगर हथियार है। प्रौढ़ और युवाओं को आध्यात्मिक प्रवृति की ओर मोड़ने की जरूरत है।

मोबाईल संस्कृति का प्रचलन

आज मोबाइल जीवन का महत्वपूर्ण भाग बन गया है। जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे हम मोबाइल के गुलाम हो गए हैं। हर कोई मोबाइल पर व्यस्त है। इस अनावश्यक व्यस्तता ने जीवन से अनुभूतियों और संवेदनाओं को बेदखल कर दिया है।

वर्क फ्रॉम होम संस्कृति

आजकल घर पर कार्य करने की संस्कृति का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। इससे संस्थान, कार्यालय, ऑफिस में स्थान की समस्या, पार्किंग की समस्या, आने-जाने की समस्या अनर्गल खर्चे, पेट्रोल पार्किंग आदि की बचत आदि से मुक्त तो हुए हैं, लेकिन सामूहिक संस्कृति, परस्पर सहयोग, अनुशासन, मूल्य, व्यवहार, चाल-चलन आदि का अभाव परिलक्षित हो रहा है। ऑनलाईन शिक्षा की संस्कृति का प्रचलन भी बढ़ा है। इसके खतरे दिखाई देने लगे हैं। विद्यार्थी ऑनलाइन क्लास के गेम खेलने में व्यस्त हैं। इसका स्वास्थ पर भी विपरीत असर हो रहा है।

निष्कर्ष

वर्तमान शिक्षा में संस्कारों को दिया जाना आवश्यक है। बिना संस्कारों के हमारी शिक्षा की पहचान समाप्त हो जायेगी। अच्छे संस्कारों के अभाव में समाज की स्थिति दयनीय हो जायेगी। आज का वातावरण शिक्षा को संस्कारहीन वातावरण में ढकेल रहा है, जिसे शिक्षाविदों, विद्वानों व मनीषियों के द्वारा रोका जाना चाहिए। विज्ञान युग में विज्ञानसम्मत संस्कार को

अपनाने की आवश्यकता है। प्राचीनता और नवीनता में संतुलन से भावी पीढी की रचना हो सकती है। जीवन के हरेक क्षेत्र में सम्यक सिद्धांत को अपना लेने से आज दिखाई दे रही समस्याओं का समाधान हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 कोठारी गुलाब (2016), मानस : शिक्षा और संस्कार, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर

2 कोठारी गुलाब (2016) मानस : संस्कृति और सभ्यता, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर

3 कोठारी गुलाब (2015) मानस : व्यक्ति और समाज, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर

4 अरुण कुमार (2010) मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलुरु रोड दिल्ली

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

9 772395 711007

Impact Factor
3.811

ISSN : 2395-7115
AUGUST 2021
VOL. 14, ISSUE 2(2)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अतिथि संपादक
मुकेश कुमार ऋषि वर्मा

सम्पादक :
डॉ0 नरेश सिहाग एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 14, ISSUE- 2(2) (AUGUST- 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

अतिथि सम्पादक :

मुकेश कुमार 'ऋषि' वर्मा

अधयक्ष, बृजलोक साहित्य कला संस्कृति अकादमी
आगरा, उत्तर प्रदेश।

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

प्रशासनिक सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
मो. 8708822674

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
6 एच 30, जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर-335001 (राजस्थान)
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com, www.bohalshodhmanjusha.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : **Manbhawan Printers,** Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग,
चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ सम्पादक मण्डल

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धाारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
ॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मो. माजिद मिया
पश्चिमी बंगाल।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

डॉ. मो. रियाज खान
बीएमएस. महिला. महा., बेंगलुरु

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मंजूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंधा, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का प्रकाशन सहयोग शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव, वॉकमैन हिन्दी में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसॉफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्र आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :–

1. उर्दू, पंजाबी, कन्नड़, मराठी, तेलगू, डोंगरी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज A4 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।
2. आप अपने शोध पत्र के अंत में सम्पर्क सूत्र (टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।
3. शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।
4. पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।
5. शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।
6. सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।
7. सहयोग राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धाारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैल्फेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	**PUNB0118200**

क्रम मंजूषा Vol. 14, Issue-2(2)

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	9–9
2.	राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रबन्धन का शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति एवं कार्य संतुष्टि पर प्रभाव का अध्ययन	डॉ. राजेश शर्मा, नीलम शर्मा	10–14
3.	विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के समायोजन, आत्म–सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. राजेन्द्र कुमार, शमा	15–19
4.	मिथिलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक यथार्थ	डॉ. धन्या के. एम.	20–22
5.	शिक्षा और भक्ति का समन्वय	डॉ. अमिता जैन	23–26
6.	आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि दयानन्द का योगदान	परांतक प्रथम	27–33
7.	हामिद : समकालीन समाज के लिए सकारात्मक प्रेरणा	डॉ. श्रीकला यू	34–35
8.	जन–जीवन की लेखिका डॉ0 उषा किरण खान	पंचमणि कुमारी	36–39
9.	अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में आर्थिक विषमताओं और उनसे संघर्षरत आम आदमी की व्यथा–कथा	शेक मोहिद्दीन बाशा	40–42
10.	Covid-19 Impact on Indian Economy	Dr. D. N. Patil	43-47
11.	साहित्य और कोरोना	रेशमा शकिल शेख	48–51
12.	कोविड–19 के दौरान सोशल मीडिया की भूमिका के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता का अध्ययन	डॉ. गंगाराम वास्केल, कुमारी दिक्षा क्षत्रिय	52–58
13.	वर्तमान में शिक्षा का परिवर्तित परिदृश्य : भौतिक व व्यक्ति केंद्रित	डा0 श्रीमती सविता सिंह	59–62
14.	भारत के आर्थिक विकास में बाधाऐं : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण	अंजली कुमारी	63–65
15.	वर्तमान सन्दर्भ में महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की महत्ता	डा0 श्रीमती सविता सिंह	66–68
16.	Impact of Media on Political Parties in India	Ajay Kumar Singh	69-72
17.	जाति प्रथा का बदलता स्वरूप	खुशबू परवीन	73–77
18.	सामाजिक न्याय के क्षेत्र में सुधार : कुछ महत्वपूर्ण सुझाव	कुमारी माया रानी	78–84
19.	बिहार में सामाजिक न्याय के साथ विकास की चुनौतियाँ	शनि कुमार	85–90
20.	A Perspective on Regional Political Parties in India	Ajay Kumar Singh	91-93
21.	बिहार में जाति की राजनीति का समकालिक संदर्भ	खूशबू परवीन	94–97
22.	भारत में सामाजिक न्याय के प्रशासन में व्याप्त समस्याओं का परिशीलन	कुमारी माया रानी	98–103
23.	भारत में समावेशी विकास, सामाजिक न्याय एवं आरक्षण	शनि कुमार	104–110
24.	ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. स्तर के छात्रध्यापक एवं छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन	किरन सिंह	111–115

25.	हरिशंकर परसाई के कथा साहित्य में समकालीन समाज के यथार्थ चित्रण	डा. भागेश देवन	116-124
26.	A Study of Sixty-Six in Kamala Das's Poem My Mother at Sixty-Six	Rajesh Kumar Mishra	125-128
27.	INDIAN FOREIGN POLICY AND NEHRU	Kumari Neha	129-131
28.	Farmers Movements in India	Dr. Shaji John	132-139
29.	हिंदी साहित्य में संस्कृति : निबंध विधा के संदर्भ में	अशोक बाळू पाटील	140-143
30.	मशीनी अनुवाद : प्रक्रिया और चुनौतियां	डॉ. मुकेश भार्गव	144-146
31.	संथाल समाज में शासन व्यवस्था प्रणाली	SAROJINI TUDU	147-150
32.	आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि दयानन्द का योगदान	परांतक प्रथम	151-156
33.	दिसोम दुलाड़ क़ाहिनी	शावाना रहमान	157-159
34.	हिन्दी नाट्य साहित्य में कुसुम कुमार का योगदान	शिल्पा.एस.एल	160-161
35.	छायावादी काव्यधारा में स्त्री चेतना	बृजलाल अरिवार	162-171
36.	The Concept of World Government	Dr. Roop Kishore Dwivedi	172-175
37.	हिंदी भाषा का स्थान-आज के बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में	Dr.Veena. J	176-179
38.	समकालीन हिन्दी कहानियों में दलित चेतना	Dr. Shemi John	180-181
39.	भोजपुरी नवजागरण और भिखारी ठाकुर का नाट्यकर्म	नम्रता सिंह	182-185
40.	वेश्याओं द्वारा प्रयुक्त भाषा (सलाम आखिरी, पिछले पन्ने की औरतें, पासवर्ड आदि उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. सलमी सेबास्टियन	186-189
41.	वैदिक युग में जल संरक्षण की प्रासंगिकता	डॉ. दिव्या राणा	190-195
42.	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में निहित विविध आयाम	मुकेश चौहान	196-200
43.	हामिद : समकालीन समाज के लिए सकारात्मक प्रेरणा	डॉ. श्रीकला यू	201-202
44.	जन-जीवन की लेखिका डॉ0 उषा किरण खान	पंचमणि कुमारी	203-206
45.	कुँवर नारायण के 'कोई दूसरा नहीं' काव्य संग्रह में सामाजिक सरोकार	रेखा	207-215
46.	ਲੁਬਾਣਾ ਕਬੀਲੇ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਪਿਛੋਕੜ	ਅਸਸਟ. ਪਰੋਫ.	216-219
47.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श	डा0 परमजीत कौर	220-223
48.	उदारवादी हरबर्ट स्पेंसर के वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का अध्ययन	Prof. (Dr.) Kishwar Wajid Md. Imbesatul Haque	224-227
49.	पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य का वैशिष्ट्य	डॉ0 सुनीता राठौर	228-230
50.	सरदा प्रसाद किस्कुवाक् सेरेञ ओनोड़हे कोरकनाक् जुदा जुदा गुनमान	ज्योत्सना टुडू	231-235
51.	अमृतलाल नागर के साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक प्रदेय	डॉ0 बलराम गुप्ता	236-240
52.	कबीरदास एक रहस्यमयी लोकोपदेशक	मुकेश कुमार ऋषि वर्मा	241-242
53.	भारतीय हिन्दी साहित्य में नारी-विमर्श	ई. समीक्षा	243-245
54.	Features of the Divyacapavijayacapy as a Campukayer	Lisha CR	246-248

सम्पादकीय–

हम भारतवासी प्रत्येक वर्ष अगस्त माह की 15 तारीख को स्वतंत्रता दिवस मनाते हैं। हमारे पूर्वजों की वर्षों की मेहनत, त्याग और स्त्री–पुरूषों के जीवन के बलिदान के उपरांत 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को आज़ादी मिली। उस समय के लेखकों, कवियों, समाजसेवियों, स्वतंत्रता सेनानियों, वकीलों, क्रांतिकारियों ने अपने–अपने तरीके से देश की आज़ादी के लिए बलिदान दिये थे। जिसके लिए भारतवासी आज भी उनके ऋणी हैं। इस वर्ष हम आज़ादी के 75वें स्वतंत्रता दिवस मना रहे हैं। अगर हम विस्तृत रूप से देखें तो अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें हम आज भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हुए हैं। यह एक सोचनीय विषय है, इस पर भी कभी ना कभी देश में क्रांति होगी और हम जातिप्रथा, दहेजप्रथा, बेरोजगारी आदि समस्याओं से भी स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे।

देश के बहुत से बुद्धिजीवी, स्वयंसेवी संस्थाएं इन समस्याओं के विरूद्ध अलख जगाए हुए हैं और अपने–अपने सामर्थ्य के अनुसार देश के नागरिकों को जागरूक कर रहे हैं। बहुत सी जगह उन्हें कामयाबी भी मिली है फिर भी यह समस्या पूर्णरूप से समाप्त नहीं हुई है। कवि, लेखक, उपन्यासकार, साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से इन समस्याओं पर यथार्थ लिखकर युवा पीढ़ी को जागरूक करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे लिए यह एक खुशी की बात यह है कि बहुत से युवा जाति, दहेज आदि प्रथाओं का विरोध कर रहे हैं। जिससे एक आशा की किरण उत्पन्न होती है कि एक ना एक दिन देश इन समस्याओं से स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि0) एवं राजकीय महिला महाविद्यालय हिसार द्वारा अगले माह 29 सितम्बर 2021 को हरियाणा का हिन्दी साहित्य में योगदान विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन हिसार (हरियाणा) में किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य को हरियाणा प्रदेश में जन्में विभिन्न विद्याओं के लेखकों ने बहुत ही समृद्ध किया है जिसके लिए हिन्दी साहित्य सदा उन लेखकों का ऋणी रहेगा। यह भी एक कटु सत्य है कि हरियाणा प्रदेश में जन्में बहुत से लेखकों को साहित्य जगत में वह स्थान नहीं मिल पाया जिसके वे अधिकारी हैं। इसके लिए भी बोहल शोध मंजूषा अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका प्रयासरत्त है कि उन साहित्यकारों को वह मान–सम्मान प्राप्त हो जिसके वे अधिकारी हैं।

विभिन्न विधाओं में शोध को गति देने के लिए गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि0) ने गीना देवी शोध संस्थान की स्थापना की है जिसके माध्यम से सोसायटी वेबिनार, सेमिनार, पत्राचार पाठ्यक्रम व कम लागत में पुस्तक प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ करेगी। आशा है कि सुधिजन संस्थान द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों में प्रतिभागिता कर सहयोग प्रदान करेंगे।

–डॉ0 नरेश सिहाग, एडवोकेट
सम्पादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 10-14

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रबन्धान का शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति एवं कार्य संतुष्टि पर प्रभाव का अध्ययन

–डॉ. राजेश शर्मा, एसोसिएट प्रोफ़ेसर
–नीलम शर्मा, पी. एच. डी. शोद्यार्थी
शिक्षा संकाय, टाटियां विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

सारांश :–

मुख्य उद्देश्य :–

''राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रबन्धन का शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति एवं कार्य संतुष्टि पर प्रभाव का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को अपनाते हुए न्यादर्श के रूप में विभिन्न राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत से कुल 600 शिक्षकों का आकस्मिक चयन विधि से चयन किया गया। प्रदतों के संकलन हेतु विद्यालय प्रबंधकीय प्रभावशीलता मापनी (उपिन्दी धार एवं संतोष धार), शैक्षणिक अभिवृत्ति मापनी (उम्मे कलसम) व कार्य संतुष्टि मापनी (डॉ. मीरा दीक्षित) का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सार्थक सह सम्बन्ध नहीं पाया गया। राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक सह सम्बन्ध नहीं पाया गया।

बीज शब्द :- विद्यालय प्रबन्धन, शिक्षण अभिवृति, कार्य संतुष्टि व शिक्षक।

प्रस्तावना :–

शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। बालक जो इस प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है वह भी स्वयं को शिक्षक के व्यक्तित्व के साथ अंगीकृत करना चाहता है।

प्रत्येक शिक्षक का अपना एक निजी दर्शन होता है। शिक्षक द्वारा किया गया कार्य उसके आदर्शो, उद्देश्यों, मूल्यों एवं धारणाओं को परिलक्षित करता है और उसका प्रभाव छात्रें पर भी डालता है। इसी कारण प्रगतिशील एवं उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रबन्ध मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है। प्रबन्ध घर परिवार से शुरू होकर सरकार तक व्याप्त है। सेना, पुलिस, स्वयंसेवी संस्था, दुकान या अन्य कोई व्यवस्था, विद्यालय, महाविद्यालय सभी जगह प्रबन्ध है।

विद्यालय प्रबंध का उद्देश्य, उपयुक्त व्यक्ति को, उपयुक्त स्थान पर, उपयुक्त समय में, उपयुक्त ढ़ंग से रखना। इस प्रकार विद्यालय प्रबंध के अंतर्गत वे समस्त बातें आ जाती है जिनका संबंध विद्यालय की आंतरिक अथवा बाह्य व्यवस्था से होता है। शिक्षक-समुदाय, समय-तालिका, परीक्षा, पाठ्यक्रम आदि सभी विद्यालय प्रबंध के अंतर्गत ही आ जाते हैं।

अभिवृत्ति किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक घटक है। व्यक्ति की अभिवृत्ति समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। यह आज किसी व्यक्ति, घटना अथवा वस्तु के अनुकूल है तो कल प्रतिकूल भी हो सकती है। अभिवृत्ति भावनाओं, विचारों एवं मूल्यांकनात्मक दृष्टिकोण की अभिवृत्ति है। यह अभिव्यक्ति किसी के प्रति आपकी भावनाओं को प्रकट करती है।

''कार्य-संतुष्टि'' किसी कर्मचारी की अपने कार्य के प्रति सकारात्मक एवं अनुकूल भावनात्मक मनोवृत्ति है जो उसके अपने कार्य और कार्य के परिवेश से जुड़े घटकों से निर्मित होती है। कार्य संतुष्टि संगठनात्मक व्यवहार का एक महत्वपूर्ण घटक है। मानवीय संबंधो की विचारधारा ने कर्मचारी संतुष्टि पर धयान देकर प्रबन्ध में मानव तत्व की स्थापना की। कार्य आवर्तन, कार्य पर अनुपस्थिति, कर्मचारी आक्रोश, उदासीनता, असहयोग, कर्मचारी परिवेदना, उद्योगों में तोड़-फोड़, हड़ताल, घेराव, खिन्नता, निम्न मनोबल आदि समस्याएं ''कार्य-संतुष्टि'' से ही जुड़ी है। आज के शिक्षित एवं जागरूक औद्योगिक समाज में मुद्रा की अपेक्षा कर्मचारी की भावनाओं व मानवीय मूल्यों की संतृप्ति, श्रेष्ठ निष्पादन, अच्छी कार्यदशाओं, कार्य उत्तरदायित्व, चुनौतियों, कार्य-संवर्धन, कार्य विस्तार आदि का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वस्तुत: इन सबका सम्बन्ध कर्मचारी की कार्य-संतुष्टि से जुड़ा है। पर इसमें जरा भी संदेह नहीं कि सफल होने के लिए एक शिक्षक की कार्य संतुष्टि होना आवश्यक है।

यह विश्वास किया जाता है कि एक प्राचार्य सकारात्मक नेतृत्व शैली का अभ्यास करने में सक्षम है। यह विद्यालय में सकारात्मक अधिगम वातावरण लाने में मदद करेगा, शिक्षक अधिक सहज महसूस करेंगे एवं इसलिए कार्य संतुष्टि अधिक होगी यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कमी की उम्मीद की जा सकती है।

अध्ययन की आवश्यकता :-

वर्तमान समय में शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। प्राचीन समय के शिक्षकों में एवं वर्तमान समय के शिक्षकों में बहुत अंतर है। प्राचीन समय में शिक्षा देना व्यवसाय नहीं था परन्तु आज का शिक्षक व्यवसाय के रूप में धन, कमाने के उद्देश्य से विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं जिससे शिक्षक की शिक्षण अभिवृत्ति एवं कार्य संतुष्टि पर प्रभाव पड़ता है। अन्य विभिन्न प्रकार के कार्यो की तुलना में शिक्षक के कार्य को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसी तरह सभी प्रकार के कलाकारों की तुलना में शिक्षक रूपी कलाकार को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि अन्य कलाकार तो अपेक्षाकृत निम्न कोटि की सामग्री पर कार्य करते है और यदि उनकी कृति बिगड़ जाये तो उन्हे कम हानि होती है परन्तु यदि शिक्षक रूपी कलाकार की छात्ररूपी कृति थोड़ी भी विकृत होती है तो उसके परिणामस्वरूप होने वाली हानि से शिक्षक की ही नहीं वरन् संपूर्ण समाज एवं राष्ट्र की हानि होती है। यह हानि व्यक्ति को अधोपतन की ओर ले जा सकती है।

अत: यह कहा जा सकता है कि शिक्षा में जो जीवन क्रम की प्रक्रिया है, वह मनुष्य बनाने की कला है जिसमें शिक्षक का स्थान केंद्रीय माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक के गुण ही शिक्षा के स्तर को निर्धारित करते है और यही शिक्षा का स्तर हमारी सभ्यता का मेरूदण्ड बनता है।

विद्यालय के प्रबंधन के प्रभाव के आधार पर वहां कार्यरत उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृत्ति में सुधार एवं उनमें कार्य संतुष्टि को बढ़ाया जा सकता है, यदि शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट होंगे तो वे अच्छे छात्र जो कि देश का भविष्य है उनका निर्माण अच्छी तरह से करेंगे एवं शिक्षा के स्तर में सुधार होगा। अत: समस्या का चुनाव विद्यार्थी, शिक्षक, समाज एवं देश के भावी नागरिकों की आवश्यकताओं के आधार पर किया गया है। अत: विषय की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए शोधाकर्त्री द्वारा इस विषय पर कार्य करने का प्रयास किया गया है।

समस्या कथन :-

'राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रबन्धन का शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति एवं कार्य संतुष्टि पर प्रभाव का अध्ययन।'

अध्ययन के उदेश्य :-

1. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएॅ :-

1. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
2. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

न्यादर्श का चयन :-

प्रस्तावित अनुसंधान में विभिन्न राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत से कुल 600 शिक्षकों को न्यादर्श के रुप में यादृच्छिक निर्देशन विधि से चयनित किया गया है।

शब्दों का परिभाषीकरण :-

1. **उच्च माध्यमिक विद्यालय :-** उच्च माध्यमिक विद्यालयों से तात्पर्य उन विद्यालयों से है जो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित है तथा जिन विद्यालयों में कक्षा 10 के बाद अर्थात कक्षा 11 व 12 में अध्ययन कार्य करवाया जाता है। उच्च माधयमिक स्तर में सामान्यत: विज्ञान, वाणिज्य एंव कलावर्ग का अध्ययन करवाया जाता है।

2. **विद्यालय प्रबंधन :-** प्रबन्ध का कार्य मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को ऐसी गतिशील संगठन इकाइयों में परिवर्तित कर देना है, जिसके द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस प्रकार कार्य किया जा सके कि जिनके लिये प्रबन्ध किया जा रहा है, उन्हे सन्तुष्टि प्राप्त हो सके तथा जो कार्य कर रहे है, उनमें उच्च नैतिक स्तर बनाए रखने हेतु उत्तरदायित्व निभाने की भावना बनी रहे। विद्यालय प्रबन्ध भी कला है जो एक विद्यालय के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये शिक्षकों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों के लिये नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय, अभिप्रेरण एवं नियंत्र्ण से सम्बन्ध रखता है।

3. **शिक्षण अभिवृति :-** अभिवृत्ति एक प्राणी के परिवेश के (व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति) के प्रति एक विशेष अर्जित अनुभव) तथा स्थिरीकृत संवेगात्मक प्रवृत्ति होती है। अभिवृत्ति एक सामाजिक प्रव्यय तथा मानसिक पहलू है। इसका संबंध सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार के मानसिक पक्ष से होता है। मनोविज्ञान में अभिवृत्ति को व्यवहार का एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। इसके अनुसार अभिवृत्तियां किसी व्यक्ति, वस्तु, संस्था या परिस्थिति के विषय में व्यक्ति विशेष के विचारों से अवगत कराती है।

4. **कार्यसन्तोष :-** किसी कर्मचारी में अर्न्तनिहित उसकी मनोवृत्तियों का सम्बन्ध मात्र कार्य से ही नहीं होता है, बल्कि इसका सम्बन्ध कई विशिष्ट तत्वों से भी रहता है, यथा- पारिश्रमिक, रोजगार की निरन्तरता, कार्य की अवस्थाएँ, पदोन्नति के अवसर, योग्यता की स्वीकृति, कार्य का न्यायपूर्ण मूल्यांकन, नियुक्तिकर्त्ता का न्यायसंगत व्यवहार आदि। कार्य सन्तोष की परिभाषा को सीमाबद्ध करना इतना सुलभ नहीं है, फिर भी निम्न परिभाषा द्वारा इसका अर्थ भली प्रकार समझा जा सकता है ब्लूम एवं नेलर के शब्दों में - ĥकार्यसंतोष उन विधिा मनोवृत्तियों का परिणाम है, जिन्हें

कर्मचारी अपने व्यवसाय से सम्बद्ध कारकों तथ सम्पूर्ण जीवन के प्रति बनाए रखता है।

शोध अध्ययन की विधि :–

प्रस्तुत शोधकार्य में शोध अध्ययन समस्या के उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु वर्णात्मक विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं।

उपकरण :–

1. विद्यालय प्रबंधकीय प्रभावशीलता मापनी (उपिन्दी धार एवं संतोष धार)
2. शैक्षणिक अभिवृत्ति मापनी :- (उम्मे कलसम)
3. कार्य संतुष्टि मापनी (डॉ. मीरा दीक्षित)

सांख्यिकियीय प्रविधियॉ :–

प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान मानक विचलन व सहसम्बन्ध का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन :–

सारणी 1

1. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

चर	आवृति	माध्य	मानक विचलन	स्वतन्त्रता की कोटि	r–मान	सार्थकता स्तर .01
राजकीय विद्यालय के शिक्षक	300	167.48	12.842	598	0.031	सहसम्बन्ध नहीं है
गैर राजकीय विद्यालय के शिक्षक	300	173.01	12.109			

उपरोक्त तालिका में प्राप्त मानों के अवलोकन से स्पस्ट हैं कि राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति सम्बन्धी दत्तों का विश्लेषण किया गया जिसमे गणना के आधार पर सहसम्बन्ध गुणांक r का मान 0.031 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के दोनों स्तरों 0.5 व .01 पर सार्थक है अतः शोधाकर्त्री द्वारा निर्मित परिकल्पना में राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है स्वीकृत की जाती है। अतः निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृति में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।

सारणी–2

2. राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है।

चर	आवृति	माध्य	मानक विचलन	स्वतन्त्रता की कोटि	r–मान	सार्थकता स्तर .01
राजकीय विद्यालय के शिक्षक	300	204.74	18.125	598	0.013	सहसम्बन्ध है
गैर राजकीय विद्यालय के शिक्षक	300	206.52	18.139			

उपरोक्त तालिका में प्राप्त मानों के अवलोकन से स्पस्ट हैं कि राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि सम्बन्धी दत्तों का विश्लेषण किया गया जिसमे गणना के आधार पर सहसम्बन्ध

गुणांकत का मान 0.013 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के दोनों स्तरों 0.5 व .01 पर सार्थक है अतः शोधकर्त्री द्वारा निर्मित परिकल्पना मे राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है स्वीकृत की जाती है। अतः निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि राजकीय व गैर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।

निष्कर्षो के आधार पर दिए गये सुझाव :-

1. अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि राजकीय एवं निजी विद्यालय के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर किसी भी चर का कोई प्रभाव नहीं पाया गया। अतः विद्यालय के प्रबन्धन को शिक्षकों की कार्य संतुष्टि बढ़ाने हेतु व्यवसाय, कार्यस्थिति, अधिकार एवं वेतन के प्रति अभिवृत्ति में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए।

2. राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृत्ति में वृद्धि हेतु सहयोग किया जाये एवं कार्य संतुष्टि में कमी होने के कारणों का पता कर दूर करने के प्रयास किए जाये।

3. विद्यालयों में शिक्षकों की शैक्षणिक अभिवृत्ति में विकास करने हेतु विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशाला एवं सेमीनार आदि का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. शैक्षणिक स्तर में सुधार हेतु राजकीय स्तर पर शैक्षिक नीति निर्धारकों द्वारा विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों में परिवर्तन कर विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं का आंकलन कर उनके अनुरूप शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

भावी शोध हेतु सुझाव :-

1. प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री ने केवल उच्च माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को ही शामिल किया है। आगामी शोध के लिए स्नातक स्तर के प्राध्यापकों को भी लिया जा सकता है।

2. प्रस्तुत शोध में मात्र 600 अध्यापकों विद्यार्थियों का न्यादर्श लिया गया है। इससे बड़ा न्यादर्श भी लेकर अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. अग्रवाल, बी.बी.(2000). आधुनिक भारतीय शिक्षा और उनकी समस्याएं, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. अमूधा देवी, एन. वी. (2003) 'राजकीय एवं निजी महाविद्यालयों में कार्यरत महिला प्रवक्ताओं के कार्यसंतोष का अध्ययन।' **Indian Journal of Applied Psychology, Vol - 40, 25-28**
3. अस्थाना विपिन, श्रीवास्तव विजया, अस्थाना निधि ''शैक्षिक अनुसंधान एव सांख्यिकी'' अग्रवाल पब्लिकेशन संस्करण 2011 पृष्ठ सं. 718
4. कौल लोकेश (2009) ''शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली'' पृष्ठ सं. 232, 444
5. गैरेट, ई. हेनरी (1999) ''शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग', कल्याणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. रायजादा बी. एस. (1997) ''शिक्षा अनुसंधान के आवश्यक तत्व'' पृष्ठ सं. 16-27, 172
7. तिरूपति, के. के. (2003) 'उड़ीसा के प्राथमिक विद्यालयों की महिला अध्यापकों की कार्य संतुष्टि के सम्बन्ध में भूमिका-निर्वाह एवं भूमिका दबाव पर एक अध्ययन। **Indian Educational Abstracts, Vol A, Jan. 2004, 88**
8. पारीक महेश 'शैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाजह साहित्यागार, जयपुर, पृष्ठ 6-7
9. मल्होत्रा, एस. पी. (1973) 'अध्यापक अभिवृत्ति, समायोजन तथा उत्पाद चरों छात्र पसंद एवं साथी अध्यापकों, प्राचार्यो के जाने हुए व्यवहार का अध्यापक के कक्षीय व्यवहार के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी करने के लिए अध्ययन।' पी-एच.डी. (शिक्षा) 1973, एम. एस. विश्व. बड़ौदा।
10. भटनागर आर. पी., भटनागर मिनाक्षी 'शिक्षा अनुसंधान' पृष्ठ सं. 263
11. Barr, A.S.(1959), Research Methods in Chester W.Harris (Ed.) Encyclopedia of Educational Research, New York, Macmillan.
12. www.ncpr.gov.in/reports,UNESCO-word-Declaration-on-Education
13. w.w.w. educationresearch.com & bulkbdyksfifM;ka
14. www.Highbeam.com/Encylopedia of Education, Jan 2011
15. www.fordham.bepress.com/dessertation/AA/3554171

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 15-19
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

-**डॉ. राजेन्द्र कुमार**, डीन एजुकेशन
शमा, पी. एच. डी. शोधार्थी
टाटियां विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर (राजस्थान)

सारांश :-

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य :-

विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को अपनाते हुए न्यादर्श के रूप में बीकानेर संभाग के विभिन्न बीकानेर संभाग के अभियान्त्रिकी, शिक्षा तथा कृषि महाविद्यालयों मे अध्ययनरत् 600 विद्यार्थियों को यादृच्छिक विधि से चयनित किया गया। प्रदतों के संकलन हेतु समायोजन अनुसूची - (ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह), आत्म-सम्प्रत्यय प्रश्नावली- (डॉ. आर.के. सारस्वत), मूल्य मापनी- (डॉ. आर. के. ओझा एवं महेश भार्गव) व सामाजिक व्यवहार मापनी-स्वनिर्मित का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त यान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर पाया गया।

बीज शब्द :- समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार, मूल्य व विद्यार्थी।

प्रस्तावना :-

किसी विद्यार्थी का जीवन समाज से पूर्णतः सम्बन्धित होता है तथा समाज के योग्य सिद्ध होने के लिए उसके व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणों का विकास अवश्यंभावी है। मनुष्य जीवन और उसके व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए समाज और सामाजिक जीवन की आवश्यकता स्पष्ट करते हुए रॉल्फ एडोल्फ ने लिखा है कि ''हम गम्भीर रूप से सामाजिक प्राणी हैं। यह हमारी सामाजिक प्रवृत्ति ही है जो हमें मानव बनाती है, हमें चैतन्य बनाती है और हमें हमारे विशाल मस्तिष्क प्रदान करती है।''

मनुष्य की सम्पूर्णता की पहचान उसका व्यक्तित्व है तथा वह जैसे-जैसे समाज के सम्पर्क में आता है उसे समाज के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शो तथा जीवन-दर्शन का ज्ञान होता है। चूँकि उसे भी समाज के सदस्य के रूप में आदर्श नागरिक का स्थान प्राप्त करना होता है इसलिए वह स्वयं भी समाज के आदर्शो, मूल्यों, परम्पराओं तथा व्यवहारों को अंगीकार करने का प्रयास करने लगता है।

आज के सामाजिक वातावरण में एक स्वस्थ एवं विकसित व्यक्तित्व के लिए विद्यार्थियों का निरन्तर परिवर्तनशील वातावरण के साथ स्वयं को समायोजित करना अतिआवश्यक है। समायोजन द्वारा ही व्यक्ति अपने रिश्तों का आदर करना सीखता है। उसमें सहनशीलता व कर्तव्य-परायणता की भावना का विकास होता है। समायोजन ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को समाज में रहने के योग्य बनाती है तथा अपने जीवन में आने वाली कठिनाईयों का सामना करना सिखाती है। समायोजन की इस योग्यता का विकास एक विद्यार्थी के अपने सहयोगियों, सहपाठियों के साथ एवं कार्यक्षेत्र में सफलतापूर्वक अपने दायित्व का निर्वहन करने के लिए आवश्यक होता है।

किसी मनुष्य द्वारा समाज में प्रदर्शित व्यवहार सामान्यतः उसके व्यक्तित्व का परिचायक होता है। व्यक्ति का यह व्यवहार समाज में उसे उसकी पृथक पहचान प्रदान करता है किसी व्यक्ति के समाज के प्रति व्यवहार के निर्धारण में उसके मूल्यों व उसके आत्म-सम्प्रत्यय का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी व्यक्ति के मूल्यों का स्तर समाज में, अन्य लोगों के साथ उसके व्यवहार को प्रेरित करने व निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। मूल्यों को व्यवहार का पूर्व रूप भी माना जाता है। व्यक्ति अपने मूल्यों में भिन्न होते हैं और आश्चर्यजनक रूप से समान वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति के प्रति उनके निर्णय भी उसी के अनुरूप भिन्न होते हैं तथा यही निर्णय उनके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।

अतः विद्यार्थियों के लिए आज इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है जो उनमें समायोजन, स्वयं के प्रति उचित एवं सकारात्मक दृष्टिकोण, उत्तम सामाजिक व्यवहार तथा हमारी संस्कृति के अनुरूप शाश्वत मूल्यों का विकास करके अंततः उनके व्यक्तित्व का इस प्रकार विकास करे कि वे राष्ट्र और समाज के प्रति अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वहन कर श्रेष्ठ नागरिक सिद्ध हो सकें। ऐसा होने पर ही भावी चिकित्सक रोगी की जान की कीमत समझेंगे, वकील सत्य का साथ देंगे तथा शिक्षक राष्ट्र निर्माता का अपना दायित्व निभा सकेंगे। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के इन गुणों के विकास से सम्बन्धित तथ्यों की खोज का प्रयास शोधाकर्त्री अपने अनुसंधान में किया।

अध्ययन की आवश्यकता :-

आज शिक्षा शास्त्र, समाज-शास्त्र, विज्ञान और मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये जा रहे शोधकार्यो का प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान करने से सम्बन्धित रह गया है। शोध के इस प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति हेतु विचार क्षेत्र विद्यार्थी, शिक्षक, समाज, शिक्षण-विधि, तथा पाठ्यचर्या पर केन्द्रित हो जाता है। आज का विद्यार्थी कल की सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरोहर है तथा उसे सकुशल रखने एवं अपने दायित्व के निर्वहन की योग्यता प्रदान करने के साथ-साथ शिक्षक उसके विकास, उन्नति, एवं अभ्युदय की कल्पना करता है। शिक्षक अपने छात्र का भविष्य सुखद एवं निरापद रखना चाहता है। किन्तु ऐसा किस प्रकार किया जाये, आज के विद्यार्थी को कल का श्रेष्ठ नागरिक किस प्रकार बनाया जाये? यह एक विचारणीय प्रश्न सदैव ही रहा हैं। शिक्षक चाहकर भी छात्र को अपने मनोनुकूल साँचे में नही ढ़ाल पाता। जैविकीय दृष्टि से समानताएँ होने पर भी शिक्षक एवं विद्यार्थी के मनोविज्ञान में अन्तर होता है। व्यक्ति के मूल्यों, चरित्र, कल्पना, विचारों, तर्क, आत्म-बोध, व्यवहार समायोजन, रूचि आदि सर्वथा भिन्न होते हैं। विद्यार्थी भी ऐसे मनावैज्ञानिक गुणों में शिक्षक से भिन्न होते हैं। शिक्षा का उद्देश्य ही मानव के व्यक्तित्व का परिमार्जन है।

समाज का उत्तम सदस्य बनने तथा सम्यक सुचारू रूप से नियमित जीवन यापन करने के लिए एक विशिष्ट मापदण्ड की आवश्यकता होती है। यह मापदण्ड ही जीवन मूल्य है। मानव के उत्कर्ष विधायक तत्व मूल्य होते हैं, क्योंकि इनके भीतर मानव जीवन के पूर्ण ध्येय, पूर्ण लक्ष्य और मानव की जैविक से आध्यात्मिक तक सभी आवश्यकताओं का समावेश हो जाता है। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थी आगे चलकर देश की प्रगति में, समाज का एक उपयोगी अंग बनकर सहयोग दें। इसके लिए उनमें समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार तथा मूल्यों जैसे व्यक्तित्व कारक किस प्रकार अन्तः क्रिया करते हैं, यह जानना आवश्यक है।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों में समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्यों का अध्ययन इसलिए औचित्यपूर्ण लगा क्योंकि ये सभी चर व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। अतः शोधकर्त्री ने अपने अध्ययन हेतु इस समस्या का चयन किया तथा इसे अपने शोध का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बनाया।

समस्या कथन :-

''विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन''अध्ययन के उदेश्य :-

1. अभियान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर का अध्ययन करना।

2. शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ :-

1. अभियान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श का चयन :-

प्रस्तावित अनुसंधान में बीकानेर संभाग के अभियान्त्रिकी, शिक्षा तथा कृषि महाविद्यालयों मे अध्ययनरत् 600 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रुप में यादृच्छिक विधि से चयनित किया गया है।

शब्दों का परिभाषीकरण :-

1. समायोजन :-

प्रत्येक बालक किसी न किसी सामाजिक वातावरण में रहता है। इसमें से बालक के चारों ओर के वातावरण में उपस्थित व्यक्ति और वस्तुएँ समान रूप से महत्वपूर्ण होती हैं। प्रत्येक बालक का वर्तमान और भविष्य का जीवन सुखी और आनन्दमय तभी हो सकता है। जब उसका व्यवहार समायोजित प्रकार का हो।

2. आत्म-सम्प्रत्यय :-

आत्म-सम्प्रत्यय का अर्थ है, स्वयं की खोज सभी क्षेत्रें में स्वयं के प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण। 'आत्म-सम्प्रत्यय' के अन्तर्गत 'आत्म-छवि' एवं 'आत्म-मूल्यांकन' दोनों ही शब्द आते हैं। एक व्यक्ति जिस प्रकार से अपना प्रत्यक्षीकरण करता है अथवा जिस ढ़ंग से अपने को देखता है, उसे ही हम उस व्यक्ति का आत्म-सम्प्रत्यय कहते हैं।

''आत्म-सम्प्रत्यय मानव के व्यक्तित्व का वह सामान्य गुण या 'स्व' निर्मित केन्द्रीय विचार है जिसमें वह अपने बाहरी संसार के प्रति प्रतिक्रिया या प्रत्यक्षीकरण करता है, न कि उस संसार के प्रति जैसा कि अन्य व्यक्तियों द्वारा देखा जाता है और यह प्रत्यक्षीकरण परिपक्वता के साथ-साथ बदलते रहते हैं।''

3. सामाजिक व्यवहार :-

व्यक्ति द्वारा समाज के साथ किया जाने वाला आचरण, तौर-तरीके, बोलने का ढ़ंग, मान्यताओं का पालन करना एवं उनके अनुरूप चलना, समाज की भलाई देखना तथा अपने लिए व्यक्ति जैसा दूसरों से अपेक्षा करता है, वैसा ही दूसरों का सम्मान करना सामाजिक व्यवहार कहलाता है।

4. मूल्य :-

वस्तुतः मूल्य एक प्रकार का मानक है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने के पूर्व यह निर्णय करता है कि वह इसे अपनाये या त्याग दे। जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढ़ंग से आता है तो वह मूल्य कहलाता है। डॉ. देवराज के अनुसार-''मूल्य निर्मिति के सन्दर्भ में स्पष्टतः कहा गया है कि मनुष्य एक लक्ष्यान्वेशी या प्रयोजनवान प्राणी है। वह विश्व की असंख्य वास्तविकताओं को साध्यों और साधानों, मूल्यों एवं मूल्याभावों के रूप में ग्रहण करता है ताकि वह उन्हें पाने या दूर रखने के कोशिश कर सके।

शोध अध्ययन की विधि :-

प्रस्तुत शोधकार्य में शोध अध्ययन समस्या के उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु वर्णात्मक विधिा के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं।

उपकरण :-

1. समायोजन अनुसूची - (ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह)
2. आत्म-सम्प्रत्यय प्रश्नावली - (डॉ. आर.के. सारस्वत)
3. मूल्य मापनी - (डॉ. आर. के. ओझा एवं महेश भार्गव)

4. सामाजिक व्यवहार मापनी - स्वनिर्मित

सांख्यिकियीय प्रविधियाँ :-

प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मधयमान मानक विचलन व टी-मूल्य का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन

सारणी 1

1. अभियान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

व्यावसायिक समूह	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.-Value)	सार्थकता के स्तर	
					0.05 स्तर	0.01 स्तर
अभियांत्रिकी	200	30.92	5.24	0.65	सार्थक अन्तर नहीं है।	
शिक्षा	200	30.66	3.51			

उपरोक्त तालिका में प्राप्त मानों के अवलोकन से स्पस्ट हैं कि अभियान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय से सम्बन्धी दत्तों का विश्लेषण किया गया जिसमे गणना के आधार पर टी-मूल्य का मान 8.73 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के दोनों स्तरों 0.5 व .01 पर सार्थक है है अतः शोधाकर्त्री द्वारा निर्मित परिकल्पना मे अभियान्त्रिकी एवं शिक्षा के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है स्वीकृत की जाती है। अतः निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-2

2. शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है।

व्यावसायिक समूह	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.-Value)	सार्थकता के स्तर	
					0.05 स्तर	0.01 स्तर
शिक्षा	200	180.50	11.74	8.73		सार्थक अन्तर है।
कृषि	200	169.12	16.94			

उपरोक्त तालिका में प्राप्त मानों के अवलोकन से स्पस्ट हैं कि शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय से सम्बन्धाी दत्तों का विश्लेषण किया गया जिसमे गणना के आधार पर टी-मूल्य का मान 8.73 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के दोनों स्तरों 0.5 व .01 पर सार्थक नहीं है है अतः शोधाकर्त्री द्वारा निर्मित परिकल्पना मे शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं है अस्वीकृत की जाती है। अतः निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि शिक्षा एवं कृषि के विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर पाया गया।

निष्कर्षो के आधार पर दिए गये सुझाव :-

व्यावसायिक वर्ग से जुड़े विद्यार्थियों की सामान्य मनोवैज्ञानिक विचारधाारा अन्य पाठ्यक्रमों से भिन्न होती है। यह शोध प्रबन्ध इस निष्कर्ष तक पहुँचा है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में जो छात्र प्रवेश लेते हैं उनका सम्पूर्ण व्यवहार

अर्थोन्मुखी होता जाता है क्योंकि प्रवेश से लेकर परीक्षा तक वे केवल इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं कि उन्हें इस व्यवसाय में जाकर उच्च स्तर के भौतिक जीवनयापन हेतु अर्थोपार्जन करना है। अतः समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, मूल्य एवं व्यवहार की दृष्टि से ऐसे विद्यार्थी सामान्य पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों से तो भिन्न होते ही हैं साथ ही उनमें आपस में भी भिन्नता होती है। जैसे एक डॉक्टर, एक वकील या एक शिक्षक से भिन्न होगा। यह भिन्नता उसकी मूलभूत मानवीय विशेषता के कारण नहीं अपितु शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रवृत्ति के कारण होती है।

इस शोध में यह पाया गया है कि शिक्षा के विद्यार्थियों के समायोजन, आत्म-सम्प्रत्यय, सामाजिक व्यवहार एवं मूल्य अभियांत्रिकी एवं कृषि के विद्यार्थियों की अपेक्षा कुछ उच्च स्तर के हैं। सम्भवतः ऐसा शिक्षा के विद्यार्थियों की पाठ्यचर्या में प्रार्थना सभा एवं विशेष सह-शैक्षणिक गतिविधियों के समावेश के कारण है। अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए यह तथ्य मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है तथा इसे भावी योजनाओं में प्रयुक्त किया जा सकता है।

भावी शोध हेतु सुझाव :-

1. यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के मूल्यों, व्यावसायिक अभिवृत्ति एवं अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
2. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर, सामाजिक व्यवहार तथा समायोजन पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन शीर्षक पर शोधकार्य किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. अग्रवाल, बी.बी.(2000). आधुनिक भारतीय शिक्षा और उनकी समस्याएं, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. अस्थाना विपिन, श्रीवास्तव विजया, अस्थाना निधि ''शैक्षिक अनुसंधान एव सांख्यिकी'' अग्रवाल पब्लिकेशन संस्करण 2011 पृष्ठ सं. 718
3. कौल लोकेश (2009) ''शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली'' पृष्ठ सं. 232, 444
4. गुप्त, नत्थूलाल (2000) : ''मूल्य परक शिक्षा और समाज'', नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-122
5. गैरेट, ई. हेनरी (1999) ''शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोगह, कल्याणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. रायजादा बी. एस. (1997) ''शिक्षा अनुसंधान के आवश्यक तत्व'' पृष्ठ सं. 16-27, 172
7. भटनागर, आर. पी. एवं भटनागर (2005) : ''शिक्षा अनुसन्धान'', इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस मेरठ, पृष्ठ संख्या-50, 219-239
8. पारीक महेश हशैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाजह साहित्यागार, जयपुर, पृष्ठ 6-7
9. सिन्हा, एस.के. (1987) : ''मूल्य की अवधारणा एवं स्वरूप'', जनरल ऑफ गंगानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या - 182 10.
10. Barr, A.S.(1959), Research Methods in Chester W.Harris (Ed.) Encyclopedia of Educational Research, New York, Macmillan.
11. www.ncpr.gov.in/reports,UNESCO.word.Declaration.on.Education
12. w.w.w. educationresearch.com & इनसाइकलोपिडियां
13. www.Highbeam.com/Encylopedia of Education , jan 2011
14. www.fordham.bepress.com/dessertation/AA/3554171

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 20-22
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मिथिलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक यथार्थ

–डॉ. धन्या के. एम.
अतिथि प्राध्यापिका, श्रीकृष्णा कॉलेज, गुरुवायूर।

राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग है। देश के विकास और जनता के उत्थान पतन में राजनीति का महत्वपूर्ण योगदान है। गाँधीजी की दृष्टि में ''राजनीतिक सत्ता अपने आपमें कोई साध्य नहीं थी, परंतु लोगों के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की क्षमता प्राप्त करने का एक साधन मात्र थी।''[1] अत: राजनीति का उद्‌देश्य समाज कल्याण ही होना चाहिए। नीति पूर्वक ढंग से राज्य को चलाये जाने को राजनीति कहा जाता है। मिथिलेश्वर की अधिकतर रचनाएँ ग्रामीण जीवन से संबधित है। मिथिलेश्वर के उपन्यासों में गाँव के राजनीतिक वातारण का यथार्थ चित्रण मिलता है।

जनता की सेवा और देश की उन्नति राजनेता का परम उद्‌देश्य होना चाहिए। लेकिन आज व्यक्तिगत लाभ ही राजनेताओं का उद्‌देश्य हो गया है। वे अपने स्वार्थ और सत्ता की प्राप्ति के लिए कुछ भी करते है। इसलिए राजनीति में अपराधीकरण तीव्र गति से बढ़ रहा है। राजनीति में अपराधी तत्वों के समावेश को रोकने के लिए मिथिलेश्वर जी ने अपने कथा साहित्य में सच्ची राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। एक सच्चा राजनेता ईमानदारी से जनता की सहायता करता है। समाज की सेवा और देश की उन्नति ही उनका लक्ष्य होता है। मिथिलेश्वर जी के 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में एक जन व सेवक के माध्यम से सच्चे राजनेता के बारे में उल्लेख किया है। कथा के मुख्य पात्र जनार्दन छविपुर गाँव के एक राजनेता है। शहर से पढ़ाई करके अपने गाँव आकर जनादेश पाटह्न में शामिल हो जाता है। वो ग्रामीण क्षेत्र को ही अपना राजनीतिक कार्यक्षेत्र बनाता है। कभी अपनी पाटह्न में कही कुछ गलत होता तो जनार्दन उस कार्य का विरोध भी करता है। इसी कारण से गाँव में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

गाँव में किसी को कोई समस्या होती है तो उसके समाधान के लिए जनार्दन पूरी कोशिश करता है। गाँव की एक गरीब असहाय, विधवा नारी सोभिया काकी को लोग डायन समझते है। जनार्दन और उसके मित्र्स मिलकर सोभिया काकी को ओझा लोगों से बचाते है, और उनके अन्धविश्वास को भी दूर करते है। वह अपने गाँव के पुस्तकालय का जीर्णोद्धार करता है, और समाज सेवक की भूमिका में सक्रिय होते है। गाँव के बेरोज़गार लड़को को पढ़ने और नौकरी करने के लिए उत्साहित करते है। इसी कारण पूरे गाँव में जनार्दन की व्यक्तित्व और समाज सेवा की चर्चा होती है। उपन्यास में जनार्दन अपने पिता से कहता है : 'मैंने तय कर लिया है किसी नौकरी में नहीं, राजनीति में मुझे रहना है। राव मानवेन्द्र बाबू के साथ मैंने राजनीति को अच्छी तरह देखा है। दुनिया का बनना-बिगड़ जाना है। राजनीति में मुझे ले आने की बात राव मानवेन्द्र बाबू भी करते थे। पर मैं उनकी तरह की राजनीति करना नहीं चाहता...। अपने लोगों को सच्ची राजनीति करके दिखाऊँगा...! अभी इस देश में जनता की राजनीति नहीं हुई...। जनता की राजनीति के बाद जनता की यह बदहाली रह ही नहीं सकती...।''[2] जनार्दन गाँव के लोगों के जीवन को सुधारने की कोशिश करते है। जनार्दन के पात्र द्वारा कथाकार ने राजनीति का वास्तविक स्वरूप दिखाने की कोशिश की है।

मिथिलेश्वर जी के उपन्यास ''यह अंत नहीं'' में एक ईमानदार और जनसेवक सरपंच के रूप में जोखन को

प्रस्तुत किया है। जोखन और उसकी पत्नी चुनिया अपनी ईमानदारी और अच्छे व्यवहार से रघुनाथपूर गाँव के लोगों की दिल जीत लेते है। जोखन गरीब और निम्न जाति का आदमी है। जोखन की ईमानदारी की वजह से गाँव के लोग उसे पंचायत का सरपंच चुनते है। बाहर से कुछ लोग आकर गाँव के लोगों की हत्या कर देते है, इस वजह से नन्हटोली और बड़टोली लोग आपसी दुश्मन बन जाते है, और एक दूसरे की हत्या करते है। इस दहशत भरी परिस्थितियों से गाँव को सरपंच जोखन पंचायत बुलाकर मुक्त करवाते है। नन्हटोली और बड़टोली के लोगों में आपसी समझौता हो जाता है। जोखन की बातों से गाँव के लोगों में चेतना आ जाती है। रघुनाथपूर गाँव संघर्ष वीहिन गाँव बन जाता है। इस तरह रघुनाथपूर गाँव जोखन जैसे ईमानदार सरपंच की वजह से अपराधमय वातावरण से मुक्त होता है। जोखन संपूर्ण गाँव के हित के लिए प्रयास करते है। उपन्यास में जोखन के बारे में इस तरह उल्लेख मिलता है। ''जोखन को अब रघुनाथ पुरवासी अपने गाँव का वरदान मानने लगे थे। पंचायत प्रमुख के पद पर उन्हें बरकरार रखते हुए उनके निर्णय की सफ़लता और फैसले के पालन में प्राण-पण से लगे रहते।''[3]

इस तरह मिथिलेश्वर स्पष्ट करते हैं कि ईमानदार और जनसेवक नेताओं के प्रयास से ही हमारे गाँवों में शांति और विकास आ सकता है। मिथिलेश्वर जी ने अपने कथा साहित्य में सच्चे राजनीति और जनसेवक का चित्रण करके राजनीति के यथार्थ स्वरूप को व्यक्त किया है। नेता चुनाव प्रचार में आश्वासन देते है। वे जनता के सामने सुख-सुविधा और आर्थिक परिस्थिति में सुधार करने का आश्वासन देते है, लेकिन चुनाव समाप्त होने के बाद इन नेताओं का जनता से कोई संपर्क नहीं होता है। अपने अधिकार बनाए रखने के लिए वे लोगों को ऐसे झूठे आश्वासन देते रहते हैं। 'युद्धस्थल' उपन्यास में ऐसे नेताओं का उल्लेख किया है। उपन्यास में भरतपूर गाँव के ठाकुरों और चमारों के बीच संघर्ष होता है। उपन्यास का पात्र ठाकुर मुरारी सिंह चमारटोली के खिलाफ़ अपनी षड़यंत्रकारी योजना बनाते है। मुरारी सिंह गाँव के बड़े गृहस्थ है। मुरारी सिंह चमारटोली को हटाकर उस स्थल पर सब्जी मण्डी बनाने की कोशिश करते है। इस बीच दोनों वर्गो में संघर्ष होता है। मुरारीसिंह के लोग चमारटोली की झोंपड़ियों में आग लगाते है, और आग से बाहर निकलकर भागने वाले को भून देने के लिए हथियार लेकर खड़े होते है। पूरी चमारटोली आग, राख और खून से सन जाते है।

इस भयंकर घटना के बाद पूरे देश में भरतपूर गाँव की चर्चा होती है। दिल्ली से मंत्री, नेता, पत्रकार आदि लोग गाँव आते है। सरकारी लोग और राजनेता चमारटोली के लोगों के लिए आर्थिक सहायता और उनकी सुरक्षा के झूठे आश्वासन देकर चली जाती है। लेकिन कुछ दिनों के बाद सरकार की इस झूठे आश्वासन को गाँव के लोग समझ जाते है। उपन्यास में इसका उल्लेख इस तरह किया गया है :-''प्रारम्भ में भरतपूर के शोषित-पीड़ित लोगों को लगा था कि अब उनके दिन फिरेंगे। जब दिल्ली की सरकार सीधे आकर उनके दरवाज़े से लौटी है, तब वे ज़रूर अपनी स्थिति से ऊपर उठेंगे। लेकिन चन्द दिनों बाद ही उन्हें अपनी सोची हुई बातें गलत साबित हुई। उन्होंने देखा कि भरतपूर कांड को लेकर मंत्रिमंडल भंग किए जाने तथा पदासीन मंत्रियों के इस्तीफे की मांग की जाने लगी।''[4] इस घटना के माध्यम से राजनीतिक परिस्थितियों, के यथार्थ चित्र को दर्शाने में लेखक सफल हुआ है।

स्वार्थता के कारण नेता की प्रतिष्ठा नष्ट होती है। नेता समाज की परवाह किये बिना अपने स्वार्थ के लिए दल बदलते रहते है। मिथिलेश्वर जी 'झुनिया' उपन्यास में स्वार्थता के लिए दल-बदलने वाले नेता का चित्रण किया है। उपन्यास में जोगिन्दर गाँव का प्रभावशाली राजनेता है। जोगिंदर बी.ए. करने के बाद सीधे राजनीति में प्रवेश करते है। स्वार्थता के कारण वो दल बदलते रहते हैं और चुनाव लड़ने वाले व्यक्ति से उसे कुछ लाभ होता है तो वह उसके लिए प्रचार भी करता है। उपन्यास में जोगिंदर नेता की दलबदलू वृत्ति के बारे में मिथिलेश्वर ने लिखा है :- ''अपनी इस छोटी उम्र में ही उसने कितनी पार्टियाँ छोड़ी और पकड़ी देर असल उसके लिए पार्टियों का कभी महत्व नहीं रहा।''[5] एक आदर्श नेता सदा अपने दल और समाज के विकास के लिए कार्य करते है।

राजनीतिक दल चुनाव में पूँजीपतियों और अमीर लोगों को टिकट देने के लिए तत्पर है क्योंकि चुनाव में धन की आवश्यकता है। दल तो केवल अपने विजय के बारे में ही सोचते है। पैसे के लिए दल ईमानदार नेता के बदले पूँजीवादी लोग को टिकट देते है। कई ऐसे नेता है, जो ईमानदार है, लेकिन राजनीतिक दल उन्हें चुनाव के समय उम्मीदवार नहीं बनाते हैं। इसका यथार्थ चित्रण मिथिलेश्वर जी ने 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में किया है। उपन्यास में गाँव के संसदीय क्षेत्र में जनादेश पाट के उम्मीद्वार के रूप में पहले जनार्दन को घोषित करते है। जनार्दन एक ईमानदार राजनेता है। लेकिन दल बाद में टिकट तो डॉक्टर अरविन्द को देते है। टिकट तो उन्हें अमीर और शहरवासी होने के कारण मिलते है। डॉक्टर अरविन्द की राजनीति में आने का उद्देश्य निहायत व्यक्तिवादी है। डॉक्टर अरविन्द एक ऐसा व्यक्ति है, जो धन की प्राप्ति के बाद यश की कामना से राजनीति में आया है। उन्हें गाँव के लोगों के समस्याओं और दु:ख-दर्द से कोई मतलब नहीं है। चुनाव के समय दल के इस अन्याय के विरोध करते हुए जनार्दन कहता है : ''मैं दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकता...। जोगीपूर क्षेत्र में मैंने काम किया है। अपनी पहचान बनायी है। यहाँ के लोगों को विश्वास दिया है। मैं यही से लडूँगा... ।''[6]

''झुनिया'' उपन्यास में मिथिलेश्वर जी ने नेताओं के अत्याचारों के बारे में उल्लेख किया है। उपन्यास में जोगिंदर एक राजनेता है। गाँव के अमीर-गरीब दोनों वर्ग के लोग जोगिंदर को पसंद करते है। लेकिन वास्तव में जोगिन्दर ईमानदार नेता नहीं है। वो गाँव की गरीब, बेसहारा युवतियों पर अत्याचार करते है, और उन पर बुरी नज़र रखता है। उपन्यास में जोगिन्दर गाँव के बूढ़े कहार हरिहर की बेटी झुनिया पर बुरी नज़र रखता है। उसकी लाचारी का फायदा उठाने की कोशिश करते है। इसके बारे में व्यक्त करते हुए लेखक ने लिखा है : ''इससे पहले भी जोगिंदर झुनिया को कई बार आँखों से इशारा कर चुका है। तथा छेड़खानी भी करता रहता है। इसी से झुनिया के पास उसे संकोच जैसी कोई चीज़ महसूस नहीं होती है। इधर-उधर चौकन्नी दृष्टि से देखते हुए वह अपनी जेब से दस का एक नोट निकालकर झुनिया की ओर बढ़ा देता है। झुनिया नहीं लेती है।''[7]

गाँव के राजनीतिक वातावरण को व्यक्त करते हुए लेखक ने राजनीतिक महत्व और राजनीतिक दलों के भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। नेता समाज की परवाह किये बिना अपने स्वार्थ के लिए कार्य करने लगे है। इस तरह के बदलती राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ग्रामीण जनता परेशान है। इस स्थिति में मिथिलेश्वर जी ने अपने उपन्यासों में राजनीति का वास्तविक चित्रण करके राजनीति के यथार्थ स्वरूप के प्रति पाठकों को जागरूक करने की कोशिश की है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. महात्मा गाँधी जी - ''ग्राम स्वराज'' - पृ.- 17
2. मिथिलेश्वर - ''सुरंग में सुबह'' - पृ.- 112
3. मिथिलेश्वर - ''यह अंत नहीं'' - पृ.- 334
4. मिथिलेश्वर - ''युद्धस्थल'' - पृ.- 50
5. मिथिलेश्वर - ''झुनिया'' - पृ.- 37
6. मिथिलेश्वर - ''सुरंग में सुबह'' - पृ.- 261
7. मिथिलेश्वर - ''झुनिया'' - पृ.- 44

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 23-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा और भक्ति का समन्वय

–डॉ. अमिता जैन
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं, नागौर।

सारांश :–

शिक्षक और शिक्षार्थी का आत्मीय और तादात्म्यपूर्ण संबंध होना चाहिए। गुरु अपने विद्यार्थी का विकास करना अपना दायित्व समझे, अपना धर्म समझे और विद्यार्थी के मन में अपने गुरु के प्रति समर्पण का भाव, भक्ति का भाव रहे। पराक्रमी विद्यार्थी अपने जीवन में बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है। अर्थात् भक्ति पूर्वक, लगन पूर्वक जो भी कार्य करेंगे, जो भी ज्ञान प्राप्त करेंगे, जो भी शिक्षा प्राप्त करेंगे वह जल्दी ही अंकुरित और पल्लवित होगी और सभी को सुगंधित, तरोताजा रखेगी। गुरु-शिष्य संबंध प्रगाढ़ एवं सुदृढ़ होंगे। आस्था एवं श्रद्धा से ही शिक्षा में सजीवता आती है।

मूल शब्द– शिक्षा, भक्ति, समन्वय, आस्था।

प्रस्तावना :–

शिक्षा मनुष्य को बलवान एवं गतिमान बनाती है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है लेकिन आज की शिक्षा विकास नहीं है। आज शिक्षा मात्र आजीविका का सर्जन करती है। परिवारों में और समाज में उत्तरदायित्व का बोध समाप्त सा हो रहा है। व्यद्गि स्वयं को अपने आसपास के वातावरण से दूर करता जा रहा है, ऐसे में उसे कहाँ ज्ञान मिलेगा जीवन को समझ पाने का। जैसा कि एक संयुद्र परिवार में होता है। बच्चा बड़ा होते-होते जन्म, मृत्यु, विवाह, बीमारी, सेवा आदि के अनेक अनुभव कर लेता है। घर के रीति रिवाज समझ लेता है। जीवन के उतार-चढ़ाव के अनुभव कर लेता है। आज बच्चा किसी के साथ जुड़ना नहीं चाहता। किसी का दायित्व उठाने को तैयार नहीं है। यह आज की शिक्षा का ही प्रभाव है। शिक्षक और शिक्षार्थी का आत्मीय और तादात्म्यपूर्ण संबंध होना चाहिए। गुरु अपने विद्यार्थी का विकास करना अपना दायित्व समझे, अपना धर्म समझे और विद्यार्थी के मन में अपने गुरु के प्रति समर्पण का भाव, भक्ति का भाव रहे। पराक्रमी विद्यार्थी अपने जीवन में बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है। समय के साथ हर जगह भक्तों की भीड़ बढ़ रही है। भक्ति के लिए अनेक प्रकार के अभियान चलाए जा रहे हैं, जैसे- प्रवचन, रैली, गोष्ठी, समारोह आदि। अब प्रश्न यह उठता है कि भक्ति सार्वजनिक विषय है या निजी विषय है? भक्ति का अर्थ है-'अंश हो जाना।' जिस प्रकार मैं कार में बैठकर जा रही हूं, तब मैं कार का अंश हूँ - अर्थात कार का एक भद्र हूँ। उसी प्रकार ईश्वर भक्ति भी तभी मानी जायेगी जब मैं ईश्वर का सान्निध्य ग्रहण कर लूं। इससे पहले मैं भक्त की परिभाषा में नहीं आ सकती। भक्ति का मूल है - प्रेमभाव, माधुर्य। इसमें भक्ति न तो ईश्वर से कोई इच्छा रखता है न ही ईश्वर भक्ति से। जो भक्ति को अच्छा लगे वही ईश्वर को अच्छा लगता है। ईश्वर का स्वीकार करना ही ईश्वर का अंश हो जाता है। आदमी धर्म की शरण में जाता है।

जैन वाङ्मय का शरण सूत्र है :-

'अरहंते शरणम् पवज्जामि, सिद्धे शरणम् पवज्जामि,

साहू शरणम् पवज्जामि, केवली पणत्तं धम्मं शरणम् पवज्जामि।'

मैं अरहंतों की शरण स्वीकार करती हूँ। मैं सिद्धों की शरण स्वीकार करती हूँ। मैं साधुओं की शरण स्वीकार करती हूँ और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म की शरण स्वीकार करती हूँ। जैन समाज में यह शरण सूत्र प्रसिद्ध है। अनेक लोग एक गांव से दूसरे गांव जाते हैं या परीक्षा देने के लिए जाते हैं या कोई विशेष कार्य आरंभ किया जाता है तो गृहस्थ लोग साधुओं से मंगल पाठ सुनते हैं। एक जनवरी का नया वर्ष प्रारंभ होता है तब अनेक लोग मंगल पाठ या आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए आते हैं। यद्यपि मंगल पाठ तो गृहस्थ लोग भी जानते हैं, फिर भी साधुओं के मुख से गुरुओं के मुख से सुनना चाहते हैं क्योंकि जैसे दवा के साथ अनुपान का महत्व होता है, वैसे ही साधुओं या गुरुओं के मुख से मंगल पाठ श्रवण का अलग ही महत्व होता है। कोई दवा शहद के साथ दी जाती है तो कोई दवा मक्खन के साथ दी जाती है। यह अनुपात शिक्षा और भद्रि के समन्वय की तरह है। शरण सूत्र भी एक दवा है। साधुओं के मुख से श्रवण करने से अनुपान सा हो जाता है। उसका महत्त्व बढ़ जाता है, क्योंकि साधु तो स्वयं मंगल होते हैं। आदमी जीवन में यदा-कदा भगवान को या अपने इष्ट को याद करता है। श्रीमद्भगवद्गीता के सातवें अध्याय में कहा गया है कि चार प्रकार के व्यक्ति भगवान की भक्ति करते हैं।

श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं :-

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुणतिनो अर्जुन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थाथ' ज्ञानी च भरतर्षभ।।'

अर्थात हे भारतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कार्य करने वाले अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं। दुनिया में चार प्रकार के मनुष्य भगवान की भद्रि और भजन करते हैं।

अर्थार्थी धन का अर्थी आदमी भगवान को याद करता है। अनेक लोग धन प्राप्ति व भौतिक संसाधन हेतु मंदिर में जाकर भगवान को याद करते हैं, भक्ति करते हैं। जिस तरीके से पैसा मिल जाए, आदमी वह तरीका काम में लेता है। धर्म का संदेश है कि पैसा कमाने के लिए गलत तरीका काम में नहीं लेना चाहिए। पैसे के लिए झूठ बोलते हैं, बेईमानी करते हैं, चोरी करते हैं। मात्र पैसा उनका लक्ष्य बन गया। साधन शुद्ध है या अशुद्ध यह बात गौण हो गई। जो भी साधन पैसा दिला दे, उस साधन को आदमी काम में ले लेता है। कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जो अशुद्ध साधनों से बचने का प्रयास करते हैं और साध्य के लिए शुद्ध साधन का उपयोग करते हैं।

आर्त्त व्यक्ति या दुःखी आदमी भगवान को याद करता है। जब दुःख की घड़ी आती है, तब भगवान, देवी, देवता सब याद आ जाते हैं। और तो और दुःख में मां भी याद आती है। तकलीफ के समय अनेक लोगों के मुख से निकलता है ओ ...... माँ। माँ की करुणा, माँ की ममता भी विशिष्ट होती है। 'एक युवक सरकारी नौकरी में अफसर था। अनेक लोग उससे मिलने घर आते। उस युवक की माँ एकांक्षी (काणी) थी। युवक ने सोचा मेरे घर बहुत से लोग मुझसे मिलने आते हैं। मेरी माँ को भी देखते हैं। एकांक्षी माँ अच्छी नहीं लगती। इससे मेरी गरिमा कम होती है। उस युवक ने माँ से कहा। माँ! मैं तुमको अपने पास नहीं रखूँगा। तुम अलग घर में रहा करो। पुत्र ने माँ को अलग कर दिया कुछ बरसों बाद माँ का अवसान हो गया। अवसान के उपरांत सारे क्रियाकलाप हुए। फिर माँ का सामान टटोला तो उसमें एक लिफाफा था। उसमें बेटे के नाम संदेश था। उसमें लिखा था, पुत्र तुम सुख से रहना। मैं तुम्हें यह बताना चाहती हूं कि मैं एकांक्षी क्यों बनी। जब तुम छोटे थे, तब तुम्हारी एक आंख खराब हो गई थी। तब मैंने मेरी आंख निकलवाकर तुम्हें लगवा दी थी। बेटे में ज्यों ही यह बात पढी, वह दुःखी हो गया और अपनी माँ को याद करने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि बीमारी में माँ की भी कभी-कभी याद आती है और भगवान की भी याद आती है।' आदमी को दुख में भगवान याद आते हैं। अगर सुख में भगवान को याद करते रहें तो दुख पैदा ही क्यों है? ठीक कहा गया है-

''दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो, दु:ख काहे को होय।।''

जिज्ञासु व्यक्ति भगवान की भक्ति करता है। उसके मन में जिज्ञासा रहती है कि भगवान का स्वरूप कैसा है? आत्मा का स्वरूप कैसा है? वह हमेशा जानने के लिए जिज्ञासा एवं ललक रखता है।

ज्ञानी व्यक्ति आत्म दर्शन करने के लिए या भगवान को जानने का साक्षात्कार करने के लिए साधना करता है। जिसमें भगवान के प्रति सच्चा प्रेम जाग गया. आत्मा के प्रति आकर्षण हो गया वह भी भगवान की भक्ति करता है।

इन चारों को समझाने के लिए एक दृष्टांत- 'एक पिता के चार बेटे थे। पिता बाजार से चार आम लेकर आया। चारों में जो छोटा लड़का था उसने ज्यों ही आम को देखा, वह मांगने लगा। दूसरे लड़के ने ज्यों ही आम को देखा, उसने रोते हुए कहा- पिताजी, आम मुझे देना ही पड़ेगा। तीसरा लड़का केवल आम को देख रहा था। उसने न माँगा, न रोया। चौथे लड़के ने आम की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह अपने कार्य में लगा रहा। पिता ने चारों को एक-एक आम दे दिया।' दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि जो लड़का आम को देखते ही दौड़ा वह अर्थी था। जो रोने लग गया, दु:खी हो गया वह आर्त्त बच्चा था। जो आम की ओर देख रहा था वह जिज्ञासु था। जिसने आम की ओर ध्यान ही नहीं दिया, वह अपने आप में ही मस्त था। उसमें आम के प्रति कोई आकर्षण नहीं था वह ज्ञानी था। शिक्षा भी हमारी जिज्ञासु प्रवृत्ति एवं ज्ञान का साक्षात्कार कराने वाली होनी चाहिए। अर्थात विद्यार्थी को जिज्ञासु एवं शिक्षक को जिज्ञासा शांत करने वाला ज्ञानी होना चाहिए। शिक्षा और भक्ति में अन्योन्याश्रित संबंध है। भविष्य की भक्ति और भविष्य की शिक्षा ज्ञान का हिस्सा होगी। हमें प्रेम को ज्ञान का हिस्सा बनाना पड़ेगा।

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में एक लेबोरेट्री में प्रयोग किया गया- उस लेबोरेट्री में बहुत से अनुसंधान हुए हैं, उनमें से एक यह है कि 'एक ईसाई फकीर ने लेबोरेट्री में जाकर यह कहा कि मैं जिन बीजों पर प्रार्थना करके पानी डाल दूं, वे उन बीजों से जल्दी अंकुरित होते हैं जिन पर मैं प्रार्थना करके पानी न डालूँ। सौ प्रयोग किए गए और आज भी वह फकीर सही साबित हुआ। एक ही तरह के बीच आधे एक गमले में और आधे दूसरे गमले में डाले गए। एक सी जमीन, एक सी धूप, एक सी मिट्टी, एक सा पानी सारा इंतजाम एक जैसा। सिर्फ फर्क इतना कि एक सा पानी लेकिन एक पानी पर उस फकीर ने खड़े होकर प्रार्थना की और दूसरे पानी पर प्रार्थना न की। फर्क इतना ही था। हर बार सौ प्रयोगों में वह फकीर सही साबित हुआ। जिन बीजों पर प्रार्थना करके पानी डाला गया वे बीज जल्दी अंकुरित हुए, सारे बीज अंकुरित हुए, फल फूल जल्दी आए। और जिन बीजों पर पानी डालते समय प्रार्थना नहीं की गई, वे बीज सभी अंकुरित नहीं हुए, न ही फल, फूल, सुगंध, ताजगी उनमें थी। धीरे-धीरे अंकुरित हो रहे थे। उन पौधों के सामने वे बिल्कुल ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे कोई अनिवार्य तत्त्व उनको नहीं मिला है, जो इन पौधों को मिल गया है। वह अनिवार्य तत्त्व है प्रार्थना, भक्ति। अर्थात् भक्ति पूर्वक, लगन पूर्वक जो भी कार्य करेंगे, जो भी ज्ञान प्राप्त करेंगे, जो भी शिक्षा प्राप्त करेंगे वह जल्दी ही अंकुरित और पल्लवित होगी और सभी को सुगंधित, तरोताजा रखेगी।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि शिक्षा और भक्ति का समन्वय होगा, तभी हमारा ज्ञान विकसित होगा। गुरु-शिष्य संबंध प्रगाढ़ एवं सुदृढ़ होंगे। आस्था एवं श्रद्धा से ही शिक्षा में सजीवता आती है। भद्र चाहता है कि जिस प्रकार बालक को देखकर माँ-बाप प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार ईश्वर भी प्रसन्न हों। वह ईश्वर की प्रसन्नता के लिए

भक्ति करता है, खुद के लिए नहीं। वैसे भक्ति वैज्ञानिक भाषा में सत्य की खोज है। शिक्षा विशेषकर स्कूली स्तर पर व्यक्तित्त्व का निर्माण करें, मूल्यों एवं प्रणति के विषयों का प्रतिपादन करे. व्यद्वि को अध्यात्म के धरातल पर तैयार करे। तब विश्वविद्यालय स्तर पर तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कोठारी, गुलाब (2016) मानस : संस्कृति और सभ्यता, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर।
2. कोठारी, गुलाब (2015) मानस : व्यक्ति और समाज, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर।
3. कोठारी, गुलाब (2015) मानस : प्रकृति और प्रक्रिया, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर।
4. आचार्य, महाश्रवण (2013) संपन्न बनो, जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं।
5. गुप्ता, आशा (2011) उच्चतर शिक्षा के बदलते आयाम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली।
6. अरुण, कुमार (2010) मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास बंगलुरु रोड दिल्ली।
7. ओशो (2005) शिक्षा में क्रांति, ताओ पब्लिशिंग, पुणे।

amitajainjuly1@gmail.com

Mob- &9460143193

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 27-33
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि दयानन्द का योगदान

–परांतक प्रथम

स्नात्तक, गुरू जम्भेश्वर विश्वविद्यालय हिसार, हरियाणा।

भारत के इतिहास में ऐसी अनेकों घटनाओं का विवरण मिलता है जहाँ हमें परिवर्तन के लिए उठती आवनें सुनने को मिलती है। परंतु 19वीं शताब्दी में भारत में पुनर्जागरण के फलस्वरूप अनेकों बदलाव आए। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक एंव धार्मिक सुधार आंदोलन ने भारतीय इतिहास को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। साथ ही भारत में एकता एंव अखंडता की लौ को जलाया। जो स्वाधीनता आंदोलन मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। यह शताब्दी समाज सुधारकों और धर्म सुधारकों का युग बन गई और इस काल में ऐसे अनेकों महापुरूणों के उदाहरण मिलते है। जिन्होने स्वयं का बलिदान कर समाज के उत्थान के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। इनमें आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती का नाम प्रमुख है। उन्होंने वेदों के महत्व को फिर से जागृत किया। समाज में फैली कई कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंका। आर्य समाज आंदोलन पश्चात् प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। उन्होंने वेद के ज्ञान को फैलाया और ''वेदों' की ओर लौटने'' का नारा बुलंद किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म् 1824 ई. में मोरबी जिले के स्थित गाँव टंकारा गुजरात में हुआ। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था उनके पिता का नाम कृष्ण जी और माँ का नाम अमृतबाई था। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था तो यह स्वाभाविक ही था कि उन्हें वेद व शास्त्रों को पढनें का अवसर मिला। उनकी रूचि के कारण वे संस्कृत वेद शास्त्रों व अन्य धर्म पुस्तकों के अध्ययन में लग गए। उनके जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुई जिनसे उनके मन में हिन्दू धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रण्न पूछने के लिए विवश कर दिया। एक दिन शिवरात्री की घटना से मूलशंकर को मूर्तिपूजा के अंधविश्वास का पता चला। इस घटना को कवि प्रदीप जी नें अपने शब्दों में कुछ यूँ बताया है-

जब लगा चौदहवाँ साल तो एक दिन शिवरात्रि आई।
उस रात की घटना से कुमार की बुद्धि चकराई।।
जिस घड़ी चढे शिव के सिर पर चूहे चोरी-चारी।
मूलजी ने समझी तुरंत मूर्तिपूजा की कमजोरी।।
हर महापुरूष के लक्षण बचपन में दिख जाते है।।

इस घटना को मूलशंकर को मूर्ति पूजा पर सवाल खड़े करने के लिए विवश कर दिया और पिता जी से तर्क-वितर्क करने लगे। उन्होंने शिवरात्री को देखा कैसे चूहे शिव जी के भोग को खा रहे है। तब वह दृश्य देख वे आश्चर्यचकित रह गए और सोचने लगे जो ईश्वर खुद की रक्षा नहीं कर सकता वो दूसरों की रक्षा क्या करेगा? इस पर उन्होंने पिता जी को तर्क देते हुए कहा कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए। इस बात से चिंतिंत हो पिता जी ने उनका जल्द विवाह करने को सोचा। अपनी छोटी बहन और चाचा की मृत्यु से वे जीवन-मृत्यु के अर्थ पर गहरा चिंतम करने लगे और गूढ प्रश्न करने लगे। इससे चिन्तित हो पिता जी ने मूलशंकर का विवाह तय

कर दिया। परंतू मूलशंकर जी घर से भाग निकले और क्रांतिकारी भावों से भरे हुए वे सत्य की खोज में निकल पड़े। उन्होंने जगह-जगह घूम के योगाभ्यास करना प्रारंभ किया और उसके कुछ साल बाद स्वामी पूर्णानन्द ने उनको संन्यास दिया। जिस दिन उन्हें सन्यासी का पद प्राप्त हुआ उस दिन से वे स्वामी दयानंद सरस्वती के नाम से जाने जाते है।

संन्यास के बाद गुरू की तलाश ही उनकी दिनचर्या थी। घोर तप करने के बाद उन्हें गुरू ने मिले तो वे बहुए दुःखी हो गए। परंतु तभी किसी ने उन्हें मथुरा में रहने वाले सदगुरू विनजानन्द का पता दिया। उसके बाद स्वामी जी तुरंत मथुरा की और चल पड़े। वहाँ उन्होंने गुरू के आश्रय मे स्वामी जी ने खूब जमकर अभ्यास किया और सबसे मेधावी छात्र होने के कारण शिक्षा तीन वर्ष में ही पूरी कर ली। पाणिनी व्याकरण, पातंजल-योगसूत्र तथा वेद-वेदाँग का घोर अध्ययन किया। गुरू से विदा का दिन आया तो स्वामी जी गुरू के भेंट स्वरूप कुछ लोग जाए परंतु गुरूजी ने वे लोग बड़े ही उदास भाव से लिए और उनकी आँखों में आँसू आ गए। गुरूजी ने उन्हें भारत में फैली कुरीतियों के बारे में बताया और गुरू दक्षिणा में उनसे माँगा के परोपकार करों सत्य शास्त्रों का उद्धार करो। गुरू जी की बातों से प्रभावित हो स्वामी जी ने आधुनिक भारत को बनाने की नींव रखी। उन्होंने सामाजिक व धार्मिक आंदोलन का एक धुंआधार दौरा प्रारंभ किया। गुरू जी ने स्वामी जी को भारत मे फैले अंधकार से परिचय कराया और उन भावों को कवि प्रदीप ने अपने शब्दों में बखूबी दिखाया है वे कहते है :-

''गुरू बोले दयानन्द मैं निज हृदय खोलता हूँ
जिस बात ने मुझे रूलाया है वो बात बोलता हूँ।
इन दिनों बड़ी दयनीय दशा है अपने भारत की।
हिल गई हैं सारी बुनियादें इस भव्य इमारत की।
पिस रही है जनता पाखण्डों की भीषण चक्की में।
आपस की फूट बनी हैं बाधा अपनी तरक्की में।
है कुरीतियों के कारा में सारा समान बन्दी।
संस्कृति के रक्षक बने है भक्षक हुए है। स्वच्छन्दी।
कर दिया है गन्दा धर्म सरोवर मोटे मगरों ने।
जंर्जरित जाले को जकड़ा है बदमाश अजगरों ने।
भक्ति है छुपी मक्कारों के मजबूत शिकंजो मे।
आर्यो की सभ्यता रोती है पापियों के फंदो मे।''

इसके बाद स्वामी बड़ा आश्चर्य करते हुए गुरू को देखते रहते है। तभी गुरूजी और कुरीतियों का वर्णन करते है और कहते है-

''गुरू फिर बोले ईश्वर बिकता अब खुले बाजारों में
आया है भंयकर परिवर्तन आचार विचारों में।
हर चबूतरे पर बैठी है बन-ठन कर चालाकी।
उस ठगनी ने है सबको ठगा कोई न रहा बाकी।
बीमार है सारा देश चल रही है प्रतिकूल हवा।
दिखता है नहीं कोई ऐसा जो इसकी करे दवा।
हे दयानन्द इस दुःखी देश का तुम उद्धार करो।
मँझधार में है बेड़ा बेटा तुम बेड़ा पार करो।
इस अंध गुरू की यही है इच्छा इस पर ध्यान धरो

भारत के लिए तुम अपना सारा जीवन दान करो।।
संकट में है अपनी जन्मभूमी तुम जाओ करो रक्षा ।
जाओ बेटे भारत के भाग्य का तुम बदलो नक्षा।''

इसके बाद स्वामी जी ने भारत के कई स्थानों की यात्र की और अपने गुरू के द्वारा बताई गई बातों को अपनी आँखों से देखा। दिन रात ऋषि ने घूम-घूम कर अपना वतन देखा जब अपना वतन देखा तो हर तरफ घोर पतन देखा। उन्होंने अनेकों शास्त्रार्थ किए। महर्षि दयानंद ने सब झूठे ग्रंथो की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी और अंधविश्वास में लगे लोगों को ज्ञान उपदेश दिया। वेदों के महत्व को समाज में फैलाया। स्वामी जी द्वारा कैसे धर्मो में फैली व्याप्त बुराइयों का खण्डन हुआ। यह इन निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया जो कवि प्रदीप द्वारा रचित है।

''धज्जियाँ उड़ादी स्वामी ने सब झूठे ग्रंथो की
बखिया उधेड़ कर रख दी सारे मिथ्या पंथों की
ऋषिवर ने तर्क तराजू पर सब धर्मग्रन्थ तोले
वेदों की तुलना में निकले वा सभी ग्रंथ पोले।''

इस तरह सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना प्रारंभ किया और जहाँ-जहाँ गए वहाँ स्वयं के ज्ञान संस्कृत भाषा में तर्क एंव वेदों के उदाहरणों से सभी पण्डितों एवं विद्वानों को लोह के चने-चबवाए और अपना लोहा मनवा दिया। वे प्रचण्ड तार्किक थे और संस्कृत भाषा के बड़े ज्ञाता थे। संस्कृत में वे धारा प्रवाह बोलते थे। अपनी इस तर्क की कला और अगाध ज्ञान से उन्होंने झूठे आंडबरो को समाज से निकाल फेंका। इसके बाद वे काशी नगरी की तरफ प्रस्थान करते हैं ये नगरी पाखण्डियों की और कर्मकाण्ड की नगरी थी। वहाँ जाकर वेद का डंका स्वामी जी ने बजा दिया और संभाएँ करने लगे। वहाँ के पण्डे-पूजारियों ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रण दिया। स्वामी जी ने ज्ञान से पूरी सभा को प्रकाश प्रदान किया। स्वामी जी प्रचलित धर्मो में व्याप्त बुराईयों का कड़ा खण्डन करते थे।

सर्वप्रथम उन्होंने उसी हिदू धर्म में फैली बुराईयों व पाखण्डों का खण्डन किया जिस हिंदू धर्म में उनका जन्म हुआ था। तत्पश्चात अन्य मत पंथ व सम्प्रदायों में फैली बुराईयों का विरोध किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे न तो किसी धर्म के पक्षधार थे न ही किसी के विरोधी थे। वे केवल सत्य के पक्षधर थे समाज सुधारक थे व सत्य को बताने वाले थे इर धर्मो में आए दुर्गुणों को खत्म करना चाहते थे। काशी में हुए धार्मिक संग्राम में स्वामी जी की जीत भारत के भविष्य के लिए बड़ी ही महत्वपूर्ण थी स्वामीजी के काशी दौरे की चर्चा भी कवि प्रदीप अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार करते है-

''कुछ काल बाद स्वामी ने काशी जाने की ठानी।
उस कर्मकाण्ड की नगरी में अपनी भुकृटि तानी।
जब भरी सभा में स्वामी की आवाज बुलन्द हुई।
तब दंग हो गए लोग बोलती सबकी बन्द हुई।
वेदों में मूर्तिपूजा है कहाँ स्वामी ने सवाल किया।
काशीवालों ने बहुत सिर फोड़ा की माथापच्ची।
पर अन्त में निकली दयानंद जी की ही बात सच्ची।
मच गया तहलका अभिमानी धर्माधिकारियों मे।
भारी भगदड़ मच गई सभी पड़ित-पुजारियों में
इतिहास बताता है उस दिन काशी की हार हुई।

हर एक दिशा में ऋषिराजा की जय-जयकार हुई।''

स्वामी जी की जीत ने सारे काशी में हड़कंप ला दिया और चारों तरफ स्वामी जी की जय-जयकार होने लगी। स्वामी जी सभी धर्मो में फैले दुर्गुणों का विरोध करते थे चाहे व सनातन धर्म हो या इस्लाम है या इसाई धर्म हो। उनके समकालीन सुधारकों से अलग स्वामी जी का मत शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था अपितु आर्य समाज ने आर्यवर्त से साधारण जनमानस को भी अपनी और आकर्षित किया।

सन् 1872 ई. मे स्वामी जी कलकत्ता गए वहाँ देवेंद्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन ने उनका बड़ा सत्कार किया। बाह्रों समाजियों से उनका विचार-विमर्श भी हुआ किन्तु इंसाईयत से प्रभावित ब्रह्म समाजी विद्वान पुर्नजन्म और वेद की प्रमाणिकता के विषय में स्वामी से एकमत नहीं हो सके। कलकत्ते में ही केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली की वे यदि संस्कृत छोड़कर आर्यभाषा में लिखना-बोलना आंरभ कर दे तो देश का असीम उपकार हो सकता है। स्वामी जी संस्कृत का ही प्रयोग लिखने-बोलने के लिए करते थे और चुंकि गुजरात में निवास था तो गुजराती भाषा को समझते थे परंतु हिंदी का विशेष परिज्ञान न था। तभी से स्वामी जी के व्याख्यानों की भाषा आर्य भाषा हिन्दी हो गयी और आर्य भाषी प्रान्तों में उन्हें अगणित अनुयायी मिलने लगे।

कलकत्ता के बाद स्वामी जी मुबंई की तरफ चल पड़े और वहीं 10वी अप्रैल, 1875 को स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की। उसी वर्ष आर्य समाज का मुख्य ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'' जिसकी रचना महर्षि दयानंद सरस्वती ने 1875 में हिंदी में की थी ग्रंथ की रचना का कार्य स्वामी जी ने उदयपुर में किया। संस्करण का प्रकाशन अजमेर में हुआ था। सत्यार्थ प्रकाश की रचना का प्रमुख उद्देश्य आर्य समाज के सिद्धांतों को फैलाना था। इसके साथ-साथ इसमें इसाई इस्लाम एंव अन्य कई ग्रथों व मतो का भी खण्डन हैं। उस समय हिंदू धर्म एवं सस्कृति को बदनाम करने का षडयन्त्र भी चल रहा था। इसी को ध्यान रखते हुए महर्षि ने इसका नाम ''सत्यार्थ प्रकाश'' रखा अर्थात सही अर्थ पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था शताब्दियों से प्रचलित रही है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित थी। जिसकी स्वामी दयानंद ने कटु आलोचना की। उनके अनुसार किसी को जन्म के आधार पर उच्च स्थान पर पहुँचने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। वे कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करते थे वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म को लेकर होती है जन्म से नहीं राजा का बेटा आवश्यक नहीं कि क्षत्रिय ही हो ये उसके बल पराक्रम, इन्द्रजित और कल्याणकारी गुण पर निर्भर हैं उन्होंने छुआछुत तथा समुन्द्र यत्र-निषेध के विरूद्ध आवाज बुलंद की तथा जाति प्रथा का खण्डन किया। वैदिक काल के सामाजिक ढाँचे के आधार पर आर्य समाज ने स्त्रियों के उत्थान के लिए प्रयत्न किए। वैदिक काल में स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था। अतः आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा की और विशेष ध्यान दिया और आधुनिकता की तरफ कदम बढ़ाए। समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय थी। इसका कारण बहु-विवाह तथा बाल-विवाह प्रथा थी इसीलिए आर्य समाज ने बाल-विवाह, बहु-विवाह तथा पर्दा-प्रथा का घोर खण्डन किया उन्होंने विधवा-विवाह एवं स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने 16 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के विवाह बंद करवाए।

आर्य समाज में स्त्रियों की समानता पर बल दिया। आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन को जन्म दिया। शुद्धि से अभिप्राय उस संस्कार से है जिसमें गैर-हिन्दूओं, अछूतों, दलित वर्गो, तथा इसाई व मुसलमान बनाये हुए हिन्दूओं को पुनः हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लिया जाता था। उस समय धर्म परिवर्तन बड़े खुले रूप से किया जा रहा था। आर्य समाज ने इस प्रथा का खण्डन कर दिया एवं जो हिन्दू मुसलमान ओर ईसाई बन गए थे, उन्हें शुद्ध करके पुनः हिन्दु धर्म में वापस बुला लिया गया। बाल विवाह, स्त्रियों की समाज में दयनीय दशा, वर्ण व्यवस्था एवं धर्म परिवर्तन जैसी क्रियाओं का स्वामी दयानंद ने घोर विरोध किया और उन्होंने समाज के उत्थान के लिए इन प्रथाओं का अंत हुआ और कैसे

उन्होंने समाज में परिवर्तन लाया। ये भी कवि प्रदीप ने अपने शब्दो में बड़े ही सुन्दरता से बतलाया है :-

''उन दिनों बोलती थी घर-घर में मर्दो की तूती।
हर पुरूष समझता था औरत को पैरों की जूती।।
ऋषि ने जुल्मों से छुड़वाया अबला बेचारी को।
जगदम्बा के सिंहासन पर बैठा दिया नारी को।।''

इसके बाद स्वामी जी ने समाज में फैली कुरीतियों एंव दुष्प्रयाओं को कैसे खत्म कियां। वह भी कवि प्रदीप अपने शब्दों में बतलाते है। स्वामी जी ने कैसे स्त्रियों का उत्थान किया :-

''बदकिस्मत बेवाओं के भाग भी उन्होंने चमकाए,
उनके हित नाना नारी निकेतन आश्रय खुलवाए।
स्वामी जी देख सके ना विधवाओं की करूण व्यथा,
करवा दी शुरू तुरंत उन्होंने पुर्नविवाह प्रथा।।''

धर्म-परिवर्तन को भी स्वामी जी ने कैसे तहस-नहस किया :-

''होता था धर्म परिवर्तन भारत में खुल्लम-खुल्ला,
जनता को नित्य भरमाते थे पादरी और मुल्ला।
स्वामी ने उन्हें जब कसकर मारा शुद्धि का चाँटा,
सारे प्रपंचियों की दुनिया में छा गया सन्नाटा।।''

उन्होने जाति प्रथा को कैसे ध्वस्त किया। आर्य समाज की नींव रखी और सत्यार्थ प्रकाश जैसे महाग्रंथ की रचना की :

''भारत कें सब नगरों में बम्बई था भाग्यशाली,
ऋषि जी ने पहले आर्य समाज की नीव यही डाली,
फिर उसी वर्ण स्वामी से हमें सत्यार्थ प्रकाश मिला,
मन पंछी के उड़ने के लिए नूतन आकाश मिला,
सर्दियों से दूर खड़े थे जो अपने अछुत भाई,
ऋषि ने उनके सिर पर इज्जत की पगड़ी बंधवाई,
जे तंग आ चुके थे अपमानित जीवन जीने से,
उन सब दलितों को लगा लिया स्वामी ने सीने सम।''

सामाजिक सुधार के कार्य के साथ-साथ आर्य समाज ने धार्मिक सुधार के कार्य भी जन के हित में किए। आर्य समाज ने मुर्तिपूजा, कर्मकांड, बलिप्रथा, स्वर्ग ओर नरक की कल्पना तथा भाग्य में विश्वास का विरोध किया। उन्होंने वेदों की श्रेष्ठता का दावा किया तथा वेदों के आधार पर ही हवन, यज्ञ, मंत्रोच्चारण, कर्म आदि पर बल दिया। उन्होंने अनेंकेश्रूरवाद और अवतारवाद का विरोध किया। वेदों की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की के वेद, वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों के स्त्रोत माने जाते हैं। आर्य समाज का यह मानना था कि कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है जो हम वेदों से प्राप्त नहीं कर सकते। अतः हम दूसरे धर्मो औेर पाश्चात्य सभ्यता की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। आर्य समाज ने ने केवल हिन्दू धर्म की रक्षा की बल्कि इसाई धर्म के ढोंग और पाखण्डों पर भी भीषण प्रकार किया तथा हिन्दु धर्म की रक्षा की बल्कि इसाई धर्म के ढोंग और पाखण्डों पर भी भीषण प्रकार किया तथा हिंदू धर्म की कुरीतियों का जनाजा निकाला।

स्वामी दयानंद किसी से घृणा नहीं करते थें किंतु जहाँ ढोग, पाखंड, असत्य और आंडबर देखते तो उनकी

धज्जियाँ उड़ाये बिना उनको चैन न आता। उन्होंने पाखण्ड को खत्म कर एक उज्ज्वल भारत की नींव डाली। स्वामी जी ने आधुनिकता की और भारत को अग्रसर करने के लिए शिक्षा प्रणाली में भी बड़े बदलाव किए एवं कई गुरूकुलों की नींव भी डाली। स्वामी दयानंद सरस्वती ने एंव उनके अनुयायियों ने शैक्षणिक एंव साहित्यिक क्षेत्र पर बल दिया।

स्वामी दयानंद एंगलो वैदिक कॉलेज की स्थापना की तथा स्वामी श्रद्धानन्द ने 1901 में हरिद्वार के निकट कागड़ी में गुरूकुल की स्थापना की। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य अज्ञानता के अंधकार में डूब चुके भारत को ज्ञान के उज्ज्वल पथ पर आगे बढ़ाना और एक नए आधुनिक भारत की बुनियाद बनाना था उन्होंने प्राचीन आश्रय व्यवस्था को पुनः स्थापित किया। जहाँ विद्यार्थी ब्रहाचर्य व्रत का पालन करते हुए गुरू के आश्रय में विद्या ग्रहण कर सकें। उस समय हिन्दुओं में नारी शिक्षा के विरूद्ध वातावरण व्याप्त था तथा स्त्रियों को पढ़ाना समाज में अनुचित माना जाता है। और वेदों को पढ़ना स्त्रियों के लिए वर्जित था। स्त्रियों में कठोर पर्दा-प्रथा भी स्त्रियों की णिक्षा में बाधक थी इसलिए स्वामी जी ने पर्दा-प्रथा घोर विरोध किया एवं नारी शिक्षा को और बल प्रदान किया। महर्षि दयानंद ने शिक्षा को बहुत अधिक महत्व दिया और उनका मानना था कि व्यक्ति, समाज, राज्य और समस्त विश्व की उन्नति और सुख समृद्धि तभी सभंव हैं जब स्त्री-पुरूष शिक्षित हों भारतीय राष्ट्रवाद के प्रचार में भी स्वामी जी ने अग्रणी भूमिका निभाई। पराधीन आर्यवर्त भारत में यह कहने का साहस संभवतः सर्वप्रथम स्वामी दयानंद सरस्वती ने ही की थी कि आयवर्त आर्यवर्तियों का है। वे अपने प्रवचनों में श्रोताओं को प्रायः राष्ट्रवाद का उपदेश देते और देश के लिए मर मिटने की भावना करते थे। भारतीय स्वंतत्रा संग्राम में सबसे महत्वपूर्ण शब्द 'स्वराज्य'' की मशाल जलाने का श्रेय स्वामी दयानंद हो ही जाता है। इसके बाद बाल गंगाधर, तिलक ने आगे बढाते हुए 'स्वराज मेंरा जन्मसिद्ध अधिकार है का नारा दिया।

ऐसा माना जाता है स्वामी जी के विचारों ने 1857 के विद्रोह में प्रेरणा स्त्रोत कार्य किया। स्वामी दयानंद जी ने अपनी आखरी सांस 30 अक्टूबर 1883 को अजमेर में ली। वे जोधपुर में अपनी सभाएँ कर रहे थ। वहाँ के राजा जसवंत सिंह ने उन्हें आमंत्रण दिया था वह राजा बड़ा ही विलासी था और उसके राज में भ्रष्टाचार और दुष्टों का बोलबाला था। वह एक कनीज के प्रेम में अंधा हो गया था स्वामी को राजा के हालात पर बहुत गलानी होती थी। एक दिन स्वामी जी को बहुत क्रोध आ गया और काफी दुःख भी हुआ जब उन्होंने राजा को उस कनीज की पालकी को कंधा देते हुए देखा। उन्होंने राजा को समझाया के इस तरह के कार्य राजा को शोभा नहीं देते और वह शर्म में डूब गया और स्वामी जी के चरणों में गिर माँफी मॉगने लगा। उसने कनीज से सब संबंध तोड़ दिए। इससे वह कनीज आगबबूला हो गई और स्वामी जी के रसोईये को धन का लालच दे स्वामी जी के दूध में काँच का चूरा और जहर मिलवा दिया।

स्वामी जी बड़े ही दयालु थे उन्होंने रसोईये को कुछ राशि दे वहॉ से जाने की आज्ञा दी क्योंकि उसने थोड़ी देर बाद ही स्वामी जी को आकर सारा सत्य बता दिया और अपना गुनाह कबूल कर लिया। इसके बाद स्वामी जी को अजमेर ले जाया गया। जहाँ उनकी हालत और बिगड़ती चली गई अंत में स्वामी जी को आभास हो गया था कि अब अंत समय आ चुका है। उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद करते हुए कहा ''प्रभु! तूने अच्छी लीला की। आपकी इच्छा पूर्ण हो'' और पंचतत्व में विलीन हो गए। कवि प्रदीप ने अपने शब्दों में कैसे पडयंत्र की और अंतिम समय की घटना को लिखा है।

''षडयन्त्र रचा ऋषि के विरूद्ध कुलटा पिशाचिनी ने,
जहरीला जाल बिछाया उस विकराल साँपिनी ने,
वेश्या ने ऋषि के रसोइये पर दौलत बरसा दी,
पाकर सम्पदा अपार वो पापी बन गया अपराधी,
सेवक ने रात में दूध में गुप चुप संखिया मिला दिया,

फिर काँच का चुरा डाल ऋषि राजा को पिला दिया,
वो ले ऋषि ने पी लिया दूध वो मधुर स्वाद वाला।''

अब अंत समय की घटना का कवि ने बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रकट किया है :-

''कुछ ही दिन में ऋषि समझ गए अब अंतकाल आया,
वे बोले हे प्रभू तूने मेरे संग खूब खेल खेला,
तेरी इच्छा से मैं समेटता हूँ जीवन मेला,
बस एक यहि बिनति है मेरी है अंतर्यामी,
मेरे बच्चों को तू सँभालना जगपालक स्वामी,
जब अन्त घड़ी आई तो ऋषि ने ओह्म शब्द बोला,
फिर चुपके से धर दिया धरा पर नाशवान् चोला।''

इस तरह स्वामी जी ने अंतिम विदाई ली। स्वामी दयानंद सरस्वती आधुनिक भारत के एक महान चिंतक, समाज, सुधारक तथा आर्य समाज के संस्थापक के रूपक में याद किए जाते हैं। उनका ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश आज भी प्रेरणादायक एंव प्रासंगिक हैं। स्वामी दयानंद ने सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार एंव साहित्यिक एवं शैक्षणिक सुधार के संबंध में जो कार्य किए वे नए आधुनिक भारत के निर्माण में अपनी अहम भूमिका रखते है। उनका आडम्बरों व पाखण्ड के खिलाफ आंदोलन धर्म परिवर्तन बाल-विवाह प्रथा, सती-प्रथा व जाति प्रथा और न जाने समाज में फैली कितनी ही कुरीतियों के विरूद्ध आवाज बुलंद की नारी शिक्षा पर बल दिया एंव एक शिक्षित समाज की कल्पना की। वेदों के ज्ञान में निहित ज्ञान को ही सर्वोपरि एवं प्रमाणित माना। गुरू के महत्व को बताया और गुरूकुल पद्धति में शिक्षा की शुरूआत की। दयानंद के अनुयायियों ने दयानन्द एंगलो वैदिक विद्यालयों व कॉलेजों की नीवं रखी। स्वामी दयानन्द सरस्वती इतिहास के पन्नों पे लिखा एक अमर व उत्कृष्ट व्यक्त्तित्व का नाम है जिनके अनगिनत कार्यो से हमारे समाज धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में असंख्य परिवर्तन हुए और जिन्होंने एक नए युग के भारत आधुनिक भारत के निर्माण में महान योगदान दिया है। स्वामी जी एंव उनके विचारों ने नव भारत के निर्माण में जो भूमिका निभाई है उन्हें शब्दों में वर्णित करना असंभव है।

संदर्भ सूची :-

1. आचार्य वेदपाल 'प्रभुशरशाश्रित'- ''दयानन्द प्रकाश'- 1986 नई दिल्ली।
2. कवि प्रदीप ''ऋषि गाथा- स्वामी दयानंद सरस्वती''।
3. भारद्वाज, पं0 जगदीश चन्द्र ''वसु''- ''आर्य बनाम हिन्दू'', पानीपत, भगवान दास जी आर्य।
4. आर्या, सरोज- ''मानव निर्माण- प्रथम सोपान'' जयपुर (राजस्थान)- स्वामी सेवानन्द सरस्वती वैदिक धर्म प्रचार प्रसार न्यास, जयपुर।
5. भारतीय, डॉ0 भवानीलाल-''ऋषि दयानंद की खरी-खरी बातें'' नई दिल्ली विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द।
6. सरस्वती, महर्षि दयानंद- ''सत्यार्थ प्रकाश'' दिल्ली आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट (पारां संस्करण: अगस्त 1993)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 34-35
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हामिद : समकालीन समाज के लिए सकारात्मक प्रेरणा

–डॉ. श्रीकला यू
सहायक प्राध्यापिका, एन.एस.एस हिन्दू कॉलेज चांगनाचेरी, कोट्टायम, केरल।

प्रेमचंद की उत्कृष्ट रचना है ईदगाह। इसमें मानवीय संवेदना और जीवनगत मूल्यों के तथ्यों को जोड़ा गया है। हामिद का चरित्र हमें बताता है कि अभाव उम्र से पहले कैसे बच्चों में बड़ों जैसी समझदारी पैदा करती है। यह सर्वविदित है कि मनोविज्ञान मानव मन की रहस्यानुभूतियों को अनावृत करता है। प्रत्येक व्यक्ति का मनोमय कोश समान परिवेश में भी असमान होता है। बाल मनोविज्ञान के संदर्भ में यह अत्यंत आकर्षक एवं हृदय स्पर्शी पहलू बन जाता है। महान कथा सम्राट प्रेमचंद ने इस रहस्यमय एवं सुलझी हुई पहेली को अपने ढंग से व्याख्यायित करने का प्रयास कई कहानियों के द्वारा किया है। उनकी अति लोकप्रिय एवं बहुचर्चित बालोपयोगी कहानियों से बालकीय निश्छलता, भोलेपन और अनोखी समझदारी से हम रूबरू हो उठते है। पूरे समाज के सम्मुख अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना भी उन्होंने बेहतरीन तरीके से इस तरह की कहानियों के ढांचे में डालकर मूर्त कर दिया है। ईदगाह भी एक ऐसी ही कहानी है जिसके माध्यम से बाल मन की सकारात्मक सोच की अभिव्यक्ति दी है।

ग्रामीण एवं मध्यवर्गीय जीवन के चितेरे प्रेमचंद युवा, नारी, वयस्क तथा बाल मन के हालातों का ब्यान करते हुए इतना वैविध्य पूर्ण कथा संसार पूरे समाज के लिए प्रस्तुत किए है जिससे वह समकालीन साहित्य विमर्श की सीढ़ियों के हर पड़ाव पर अपना मील का पत्थर छोड़ते हैं। बाल मनोविज्ञान बच्चों के मानसिक स्थितियों का जांच पड़ताल करने वाला विज्ञान है। हंसना, रोना परिवेशगत संघर्षो से जूझकर हारना, जीतना जैसे कई समस्याओं का अध्ययन बाल मनोविज्ञान करता है जिस पर आधारित कहानी है ईदगाह। इस कहानी को समकालीन बनाने की विशिष्टता प्रेमचंद जी के कहानियों में हमेशा की तरह विद्यमान होते हैं।

ईदगाह शीर्षक कहानी में गरीबी और अभाव से पूर्ण जीवन में भी बालक का सोच उच्च संस्कार से युद्ध है। इससे समकालीन ज़िंदगी में जीवनमूल्यों को पुन:स्थापित करने की सकारात्मक प्रेरणा प्राप्त होते हैं। हामिद जैसे छोटे बालक में भी संयम, सहनशीलता, सहयोग एवं परोपकार आदि परंपरागत मूल्यों को पाकर समकालीन समाज की कुंठित, संकुचित तथा विडंबनाग्रस्त मानसिकता पर प्रहार पड़ता है। इससे निश्चय ही समूह मानसिकता में परिवर्तन की गुंजाईश होता है। प्रेमचंद ने मानवीय संवेदना और जीवनगत मूल्यों से सजाए सँवारे गए एक 4 वर्षीय नन्हे बालक की आदर्श मानसिकता का परिचय हामिद के द्वारा किया है। बालक का चरित्र लेखक की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण को उद्घाटित करने वाला है जो ईदगाह कहानी का केंद्र पात्र है। हामिद किसी फिल्मी नायक के समान अपनी जागरूक व्यक्तित्व से पाठकों को प्रभावित करता है। बालक अपनी सहज भोलापन और सरलता के साथ ही दूसरी और विलक्षण एवं परिपक्वता का भी प्रदर्शन करते हुए एकदम अनोखी तरलता का विस्मयकारी अनुभव दिलाते है। ईदगाह में जाकर साथियों की तरह मिठाई न खाना, अपने लिए खिलौना न खरीदना और अंत में अपनी बूढ़ी दादी के लिए उपयोगी चीज चिमटा खरीदना आदि स्वभावगत विशेषताएं सामान्य पाठक को भी दुबारा सोचने के लिए बाध्य करते है। रोटी सेंकते हुए हर रोज दादी का हाथ जलने का -श्य उसके मानस पटल पर अंकित हुई थी जिससे पहुंचे जख्म के परिणाम स्वरूप

बालक खिलौने की जगह चिमटा को चुनकर वह खरीद लेने का निर्णय कर लेता है। कहानी में :-

हामिद ने अपराधी भाव से कहा, 'तुम्हारी उंगलियां तवे से जल जाती थी इसलिए मैं ने लिया।'

इससे प्रेमचंद जी ने साबित किया है कि बुजुर्गों की तरह बालक मन में भी समस्याओं को समझने एवं सुलझाने की प्रक्रिया सक्रिय हैं। अभाव और गरीबी में पले लड़के को पूरी दुनिया में केवल उसकी दादी है। हामिद अपनी दादी की कठिनाई को यथावत समझने का शायद यह निदान है। माँ-बाप की स्नेह छाया और संरक्षण में बच्चे कम ही अलग ढंग से सोचने को उद्यत होते है। यहाँ परिस्थितिजन्य भावनाओं से ही आमिना की दुर्गति को उसकी पोता हृदयावर्जक रूप में स्वीकार करता है।

कथानक की अद्वितीयता में आर्थिक कठिनाई और अकेलेपन ने सकारात्मक पृष्ट पोषण किया है। परिवेश से थपेड़े खाकर इस कहानी के बालक का चरित्र परिपक्व हो गया हैं। चार वर्षीय उम्र में ही उसके माँ बाप अल्लाह कों प्यारे हो गए। तब से दादी ही उसका पालन पोषण करती है। वह दादी की सीमाओं को अच्छी तरह पहचानता हैं। कहानीकार ने जाने अनजाने ही मध्य वर्गीय माँ बाप की सीमाओं कों न समझने वाले आधुनिक पीढ़ी के सुपुत्रों कों सोचने का मौका दिया है। यहाँ प्रेमचंद जी का यथार्थवादी दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख मोड पर है। रोटी पकाते समय हाथ जल जाने से आमिना की परेशानी देखकर बालक अंदर ही अंदर द्रवित होता था। लेकिन घर में चिमटा नहीं थी। इस अभाव की पूर्ति बालक अपने हाथ में मिले तीन पैसों से करता है। मन ललचाने वाली मिठाईयां सामने पाकर भी उसे काबू में रखता है। अपने बुद्धि एवं कौशल का परिचय देकर कहानी के अंतिम मोड़ पर सबको चौंकाते हुए ही वह चिमटा को पसंद करता है और उसे खरीदकर दादी माँ को देता है। अपनी सहज सामाजिक चेतना एवं सहानुभूति के साथ प्रेमचंद ने हामिद के चरित्र को उकेर दिया है जो कि बहुत रोचक एवं प्रासंगिक है।

कहानी में चिमटा खरीदने के संदर्भ में हामिद के दी हुई शास्त्रार्थ एवं तर्क नैपुण्य से प्रेमचंद स्वयं संवाद करता हुआ प्रतीत होता है- 'आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लौंडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है जो रुस्तमें-हिन्द ही कर सकता है।' बच्चे देश के कर्णधार और राष्ट्र निर्माता हैं जो भविष्य को सँवारने की दिशा में अवश्य ही कदम उठेंगे। हामिद बालकों की उज्ज्वल भूमिका को अनावृत करने की दिशा में सकारात्मक कार्य करेगा। प्रेमचंद ने सन् 1930 में हंस पत्रिका के संपादकीय में लिखा है कि 'बालकों को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें।' निस्संदेह ईदगाह कहानी में प्रेमचंद ने आर्थिक विषमता के साथ-साथ जीवन के आधारभूत यथार्थ को एक बच्चे के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

धन का अभाव चार वर्षीय हामिद को धन वैभव की धौंस दिखाने वाले अपने साथियों के सम्मुख पक्व मति होकर व्यवहार करने के लिए मानसिक रूप से प्रबल बनाता है। कहानी के अंत तक आते-आते हम हामिद को बच्चा होकर भी वयस्क एवं प्रबुद्ध व्यक्ति के स्वरूप में और बुढ़िया आमीना को भोली छोकरी के हाव भाव में पाते हैं। मिठाई छोड़कर, खिलौना को बेकार समझकर तीन पैसे से मात्र चिमटा खरीदकर आए हामिद को देखकर वह इतना आर्द्र हो जाती है कि उसकी आँखों से आँसू की बूंदें टप-टप गिर जाती हैं। हामिद तब भी आमीना के आंसुओं का रहस्य न समझ सका था। दादी माँ की जी पूर्ण तृप्ति और सुख से भर जाती है। वर्तमान भौतिकवादी स्वार्थी जीवन में जहां लोग अपनों को मान-सम्मान, प्रेम-स्नेह नहीं देते वहाँ अपनी दादी के लिए ऐसी सकारात्मक सोच एवं कर्म हामिद को सामान्य से विशिष्ट बनाता है और हमारी चेतना कों झकझोरता एक अनोखी आदर्श प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :-

1. ईदगाह कहानी -प्रेमचंद।
2. हंस पत्रिका का संपादकीय -1930
3. गूगल।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 36-39
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जन–जीवन की लेखिका डॉ0 उषा किरण खान

–पंचमणि कुमारी

वार्ड नं0–13, मोलदियार टोला, मोकामा, जिला–पटना, पिन–803302

सारांश :–

डॉ0 उषा किरण खान ने जनजीवन को अपने यथार्थ अनुभूति द्वारा शब्दों के माध्यम से ऐसे स्थापित कर दी हैं कि वह सजीव हो उठा है। इनका साहित्य समाज का दर्पण है। डॉ0 उषा जी पहली महिला आंचलिक कथाकार के रूप में भी जानी जाती हैं। इन्होंने ना सिर्फ आंचलिकता को सजीवता प्रदान की है बल्कि लोगों की मानसिकता पर भी कड़ा प्रहार किया है। इन्होंने 'आसमान में सात घंटे' कहानी द्वारा यह बताने की चेष्टा की है कि पर्दा घुंघट का हो या फिर बुर्का का। इससे आहत तो स्त्रियाँ ही होती हैं। इन्होंने सीधी–साधी ग्रामिण स्त्री इशरत बानू के कथन द्वारा बुर्का प्रचलन की गाथा सुनाई है। इशरत बानू कहती है 'हम लोग का गाँव जाहिल है ना, कुछो न मालूम है कि दुनिया में क्या चलन है। ई बुरका–नकाब हम सीखे और पूरे घर की जनाना के लिए खरीदकर लाए।' यह वाक्यांश स्त्री के अस्तित्व में ओझलता के समावेण का सूचक है।

डॉ0 उषा जी की लेखनी शाश्वत् है। वह किसी परिपाटी को न धारण करती है और ना ही लीक पर चलती है। वह तो स्वंय जनजीवन की गतिविधियों का दिग्दर्शन कराती है और हमारे समाज को सोचने के लिए बाध्य करती है कि आज का हमारा समाज कैसा है और इसे कैसा होना चाहिए? आज हमारे समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मानसिक स्थिति क्या है? इनकी लेखनी समाज के समक्ष अनेकों प्रश्न उपस्थित करता है और वह कोई कोरी उपदेश न देकर गहन चिन्तन का भाव व्यक्त करता है। समाज में परिवर्तन के साथ लोंगों की मनोवृति में परिवर्तन की तस्वीर इनके साहित्य में उपलब्ध है।

मूल शब्द– आंचलिकता, जनजीवन, साहित्य, समाज, दिग्दर्शन, मनोवृति।

प्रस्तावना :–

डॉ0 उषा जी की लेखनी मानवीय संवेदना की यथार्थ अभिव्यक्ति है। साहित्य के पटल पर विराजमान वह एक ऐसी शख्सियत हैं, जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व समाज के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है। इन्होंने 'हसीना मंजिल', 'पानी पर लकीर', 'सीमान्त कथा', 'फागुन के बाद', 'भामती', 'गई झूलनी टूट' तथा अन्य अनेक उपन्यास और कथाओं द्वारा भारतीय समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाया है। इन्होंने भले ही अपनी रचनाओं में मिथलांचल की कथाओं को पिरोया हो परंतु ये कथाएं सम्पूर्ण भारत की मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करती है। इनकी रचना परतंत्र भारत से होते हुए स्वतंत्र भारत की पदयात्र करती हैं। मनुष्य की सभी भावनाओं की सच्ची तस्वीर इनके साहित्य में उपलब्ध है तथा ये भावनाएं बड़ी जानी पहचानी सी लगती है। इनके साहित्य के अध्ययन के पश्चात् यह पता चलता है कि पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी इनकी कलम की धार से समाज में फैली दुराचार आहत होते रही है। इनके साहित्य में चित्रित पात्र यथार्थ की धारा से उत्पन्न हुए हैं तथा यथार्थ की अनुभूति कराते हैं।

जब हम 'भामती' उपन्यास के मुख्य पात्र भामती को देखते हैं तो हमें अपने समाज की असंख्य महिलाओं

की याद दिलाती है, जो अपना सम्पूर्ण जीवन घर और परिवार के लिए न्यौछावर कर देती है। डॉ0 उषा किरण खान जी स्वयं कहती है कि 'मेरे सारे पात्र यथार्थ से उपजे हैं कल्पना से नहीं। आप चाहें तो सशरीर पात्रें से मुलाकात हो सकती है।'[1]

डॉ0 उषा जी के कथा साहित्य हमें जीवन की वास्तविकताओं से अवगत कराती हैं। उनकी लेखनी में एक ओर मिट्टी की सोंधी खुशबू है वहीं दूसरी ओर जीवन संघर्ष का जुझारू स्वर। इनके साहित्य में चित्रित एक-एक पात्र हमें जीवन में कुछ सीखने को प्रेरित करता है। एक हजार वर्ष पहले की प्रेमकथा 'भामती' हमें यह सोचने के लिए विवश करती है कि पंडित वाचस्पति मिश्र ने तो अपनी पत्नी के त्याग का अनुभव कर अपने सम्पूर्ण जीवन की उपलब्धि उनके नाम समर्पित कर दी तथा स्वयं भामती पति वाचस्पति कहलाए। लेकिन क्या इन एक हजार वर्षों की विकास यात्र के बाद भी हमारा समाज एक गृहणी को यह सम्मान दे पाया है? इतना ही नहीं आज के इस आधुनिक समय में वाचस्पति जी की विचारधाराएं और अधिक प्रासंगिक तब हो जाती है जब हमारे समाज में पुत्र-पुत्री विभेद, भ्रुण हत्या तथा कुल-वंश वृद्धि के नाम पर ना जाने कितनी अमानवीय घटनाएं घटित होती हैं। भामति उपन्यास में पंड़ित वाचस्पति मिश्र जी की यह कथन कितनी यथार्थ सी प्रतीत होती है जब वह भामती से कहते है कि 'तुम संतान को पुरखों की धारा अमर करने का माध्यम समझती हो क्या?...... किसके कुल की पक्ति अभी तक जीवित है।'

सीमान्त कथा उपन्यास को केन्द्र में रखकर यदि हम अपने समाज का अवलोकन करें तो हमें एक गहरी खाई नजर आती है। वैसे तो सीमान्त कथा उपन्यास बीसवीं सदी के उणरार्द्ध में बिहार के जंगलराज के कथा व्यथा को व्यक्त करती है, लेकिन यह उपन्यास मानचित्र की परिधि से निकलकर सम्पूर्ण समाज राजनैतिक व्यवस्था को उजागर करती है। उपन्यास को पढ़कर मन में यह बेचैनी होना स्वाभाविक है कि सामान्य जनजीवन और संवैधानिक धाराओं में कितना फासला है। जो धाराएं 1961 में पारित होकर दहेज निषेध अधिनियम बनता है वह आज भी भयंकर कंकाल की तरह हमारे समाज में व्याप्त है और यह अधिनियम समाज के दरवाजे पर घुटने टेके पड़ा है। इस उपन्यास में डॉ0 उषा जी ने वाणीधर को माध्यम बनाकर दहेज प्रथा की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है।

'छप्पर की मुँडेर पर रखा मिट्टी का यह हाथी, जो मेरी बहन की शादी का एक मात्र अवशेष मेरे यहाँ बच गया था।............ आज फिर मेरी एक बहन की शादी हुई है। आज फिर छप्पर पर वैसा ही हाथी बच गया है।......... .. लेकिन आज नहीं रोने वाला मैं, बाबूजी के साथ मैं भी शरीक हूँ...... बाबूजी ने पहली बार मुझसे बराबरी के हिसाब से कहा कि अब दो बेटियों की शादी कैसे होगी। अब तो जमीन भी नहीं बची जो बेचकर दहेज दे सकूँ। लगा मेरे छप्पर पर एक मस्त पागल हाथी, चढ़कर उसे नेस्तनाबूद कर रहा, घर के सभी लोग चिल्ला रहे हैं और मेरी दो बहनें उस छप्पर के नीचे कुँआरी ही बूढ़ी हो गई हैं।'

यह पंक्ति एक पिता की विवशता, भाई की लाचारी, पारिवारिक व्यथा और समाज की क्रूरता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। सीमान्त कथा में लेखिका कथा प्रारंभ करने से पूर्व ही बाबा नागार्जुन की चार पंक्ति लिखती हैं जो इस उपन्यास की पृष्ठभूमि या यूँ कहें कि आज के आधुनिक युग के सच्ची तस्वीर है।

'खेतों में बंदूके उगती, गली-गली में बम बिकता है
आ तुझको मैं सैर करा दूँ, घर में घुसकर क्या लिखता है।'

यह उपन्यास वाणीधार और बिधुभाल को केन्द्र में रखकर रची गई है। यह दोनों पात्र अपने लक्ष्य के प्राप्ति के लिए यत्नशील हैं। लेकिन राजनीतिक कलाबाजियों की चपेट में आकर त्रासद अंत को पाते हैं। आज भी देश के किसी भी भाग में हमें वाणीधार और बिधुभाल जैसे पात्र मिल जाऐंगे। आज भी गली-चौबारों में कई बिधुभाल की जिन्दा लाशें दफन हैं। आज भी शांति के संदेशवाहक बनने वाले राजनेता ही अशांति की मृदुलवाणी बोलते हैं।

डॉ0 उषा जी जनजीवन से अविच्छन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने अपने परिवेश और उससे उत्पन्न परिस्थितियों

से समाज को अवगत कराया है। वह कहती हैं कि 'मैं समाज से बटोरे गये अनुभव विकास की धीमी प्रक्रिया से भी अधिक धीमी सरकने वाली शिक्षा के कारण वंचित मानवता एवं अधकचरी अंध-व्यवस्था के फलस्वरूप स्वतंत्रता की अर्थवणा खोने के आतंक से उबरने के लिए लिखती हूँ।'[2]

इन्होंने स्त्रियों को केन्द्र बिन्दु में रखकर कई उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। इनके लेखनी ने स्त्रियों की हरेक पीढ़ी को बहुत ही सच्चाई से प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यास 'पानी पर लकीर' में जलजा और सोनी जैसे पात्र हैं जो जीवन के असंख्य कठिनाईयों का सामना करते हुए पानी पर भी लकीर खींचने को तत्पर हैं। डॉ0 उषा किरण खान जी ने भी कहा है कि 'मेरा स्त्री विमर्श इसी प्रकार का है। मैं अपने गाँव और महानगर में बसी स्त्रियों की भूख की, सम्मान की, अस्मिता की, तनी गर्दन वाली स्त्री की कहानी कहती हूँ।'[3] दूसरी ओर 'साँझ भई', 'किसी से न कहना', 'लौट आ ओ समय', 'गये माघ उनतीस दिन बाकी' जैसी कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में वृद्धों की स्थिति को बखूबी बताया है। किस तरह उम्र के इस पड़ाव में आकर वृद्ध लोग जीवन जीना छोड़ देते हैं इसकी भावात्मक प्रस्तुती इन कहानियों में की गई है।

इनके उपन्यास हसीना मंजील को मोटे तौर पर देखने पर यह लहेरी समाज की कथा-व्यथा प्रस्तुत करती है, पर इसमें कितनी सारी मानवीय संवेदनाएं कूट-कूट कर भरी हुई है जो हमें समाज में संघर्षरत महिलाओं के जीवन को दर्शाता है। लेखिका का यह वक्तव्य कि 'लोमड़ी की तरह सकीना अपनी तकदीर पायी है। दिनभर माँद खोदती है लोमड़ी और रात तक उसकी पूँछ समाने योग्य मात्र जगह तैयार होती है।'

'गई झूलनी टूट' उपन्यास कमलमुखी के माध्यम से ना सिर्फ ग्रामीण जीवन बल्कि शहरी परिवेश में गुजर-बसर करने वाले निम्न वर्गीय परिवार की स्थिति को दर्शाया है। शहरी परिवेश में घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री को किस प्रकार छला जाता है उसकी सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास की मर्ममान्तक व्यथा यह भी है कि वैवाहिक संबंध विच्छेद और नये संबंध निर्माण के बीच एक कड़ी बालमन की भी है जो सहज रूप से इस संबंध और विच्छेद की पीड़ा को झेलते हैं।

अगर हम इनके उपन्यास 'फागुन के बाद' को पढ़ते हैं तो इसमें ग्रामीण परिवेश अपनी सम्पूर्णता में विद्यमान है। इस उपन्यास में ब्राह्मण जाति में वैधवय जीवन की विडम्बना भी है और मूसहर समाज की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को भी दर्शाया गया है। इस उपन्यास में जमीनदार परिवारों के विघटन को भी दर्शाया गया है तथा उनके घरों में कार्यरत कामगारों की स्थिति को भी व्यक्त किया गया है।

'मौसम का दर्द' कहानी संग्रह में बारह कहानियाँ हैं जिसमें 'मौसम का दर्द', 'पाखंड पर्व', 'आग के फूल', 'कौस्तुभ स्तंभ' जैसी प्रचलित कहानियाँ हैं। 'कौस्तुभ स्तंभ' कहानी बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र की विपद स्थिति को दर्शाता है। यह कहानी उन राजनेताओं की भी सच्चाई बताती है जो यहाँ के लोगों के वोटों से जीतकर स्वंय तो राजधानी में शानो-शौकत से जीवन व्यतीत करते हैं तथा उनके क्षेत्र की जनता बाढ़ से बेहाल नारकीय जीवन भोगते हैं। 'आग के फूल' कहानी में कालिन्दी के माध्यम से नारी के चरित्र पर उछाले गये कीचड़ को दर्शाया गया है। चरित्रवान नारी को प्रश्न के कटघरे में खड़ी कर तरह-तरह के जुल्म कर चरित्रहीन बताया गया।

अतः डॉ0 उषा किरण खान की लेखनी समाज की हरेक पहलू से होते हुए मानव की जिजीविषा की कहानी कहती है। वह साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय रचनाकार हैं। इनके विषय में गीताश्री ने सच ही लिखा है कि 'हिन्दी कहानी की वर्तमान धारा क्या है और उसकी कसौटी पर कौन-सी कहानी कसी जा सकती है या कसी नहीं जा सकती है, इन सबसे बेखबर उषा किरण जी ने अपने परिवेश की स्त्रियों और आम लोंगों के सवालों, समस्याओं को उठाया है, बेहद सहज संवेदनाओं और जागरूकता के साथ। कुछ भी बनावटी नहीं है, न ही कहानियों के पात्र, न ही ग्रामीण परिवेश।'[4]

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ0 उषा किरण खान 'भामती', सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ सं0–134
2. डॉ0 उषा किरण खान 'सीमान्त कथा' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ सं0–5 वहीं से पृष्ठ सं0–139, 140
3. डॉ0 उषा किरण खान 'हसीना मंजील' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
4. डॉ0 उषा किरण खान 'फागुन के बाद' अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ सं0–7
5. डॉ0 उषा किरण खान 'गई झूलनी टूट' किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018
6. डॉ0 उषा किरण खान 'पानी पर लकीर' प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
7. डॉ0 उषा किरण खान 'मौसम का दर्द' अनन्य प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2015 की भूमिका से
8. वहीं, आग के फूल कहानी, पृष्ठ संख्या 31
9. वहीं, कौस्तुभ स्तंभ कहानी, पृष्ठ संख्या 104
9. डॉ0 उषा किरण खान की 'लोकप्रिय कहानियाँ' प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 सांझ भई कहानी, पृष्ठ संख्या 24
10. वहीं, किसी से न कहना कहानी, पृष्ठ संख्या 56
11. वहीं, लौट आ ओ समय कहानी, पृष्ठ संख्या 66
12. वहीं, गये माघ उनतीस दिन बाकि कहानी, पृष्ठ संख्या 76
13. वहीं, आसमान में सात घंटे कहानी, पृष्ठ संख्या 93

मो0–7004725802

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 40-42
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में आर्थिक विषमताओं और उनसे संघर्षरत आम आदमी की व्यथा-कथा

-शेक मोहिद्दीन बाशा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, आंध्रा विश्वविद्यालय, विशाखपट्टनम-530003

समकालीन हिंदी कहानीकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह एक ऐसे लेखक हैं जिनके पास हिंदी, उर्दू और संस्कृत की अपनी सुदृढ़ परंपरा है। जीवन जगत के व्यापक अनुभवों से संपन्न बिस्मिल्लाह जी का रचना-संसार अत्यंत विस्तृत है। उनके पास कथा-साहित्य की चादर, भूख, गरीबी, शोषण और शोषण मुक्ति के लिए संघर्ष करते व्यक्तियों की अमिट जिजीविषा के ताने-बाने से बुनी गई है। उसमें विविध लोकरंग और बोली-बानी के चमकदार बूटे भी हैं। उनकी कथा कृतियों स्वतंत्र उत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक छवियों की सही तस्वीर पेश करती हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के कहानियां सीधे जीवन से जुड़े होने के कारण अन्य समकालीन कहानीकारों से भिन्न है। इसलिए वे सीधे प्रेमचंद, रेणु और अमरकांत की परंपरा के लेखक हैं। सामाजिक यथार्थता का चित्रण करते हुए वे जिस तरह सतह के नीचे की वास्तविकताओं को उद्घाटित करते हैं, वैसा चित्रण समकालीन कथा साहित्य में विरल है। उनके साहित्य से फूटता हुआ जीवन विविधवर्ण कहा जा सकता है। समकालीन कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अब्दुल बिस्मिल्लाह का स्थान महत्वपूर्ण है।

'शीरमालल का टुकड़ा' कहानी में नसीबन और उसकी बेटी मेहरून नाइन जाति की हैं। महरून अपनी जाति के प्रति बहुत चिंतित थी। क्योंकि समाज में उच्च जाति लोगों को सब कुछ मिलता है पर निम्न जाति लोगों को कुछ नहीं मिलता। नसीबन और उसकी बेटी महरून को लेकर वलीमा दावत में बर्तन मांजने, मसाला पीसने के काम करने के लिए जाती है। तो उस दावत में सभी लोग खाना खाने में लग जाते। तब महरून को भूख लगती है। फेंक दिया गया खाना जिसे वे नमाज पढ़ने की नकल करती है और उठाती हैं। शीरमालल का टुकड़ा दुपट्टे के नीचे छिपाकर बाहर चली जाती है। इस कहानी में ऊंच-नीच का सामाजिक विषमता का भेद-भाव स्पष्ट किया गया। उच्च जाति को हमारे समाज में सब सुख साधन सुविधा प्राप्त है। पर निम्न वर्ग को फेंक दिये हुए खाना भी नसीब नहीं है। नमाज पढ़ने की नकल करके शीरमाल का टुकड़ा पाने की प्रयत्न हमारे समाज में होने वाली बड़ी सामाजिक विषमता को दर्शाता है।

'जन्मदिन' कहानी में एक दिन राजू नाम का लड़का नाराज होते हुए स्कूल से घर लौटता है। अपना नाराज को अपनी बहन सुनीता पर दिखाता है। उसकी बहन को पीटता है। सुनीता छत पर कपड़े सुखाती हुई मम्मी को शिकायत करती है। मम्मी राजू को डांटती है और गुस्से का कारण पता लगाती है कि, राजू अपने स्कूल में परीक्षा की फीस भरना है। अगर फीस ना भरने से उसे परीक्षा लिखने की इजाजत नहीं मिलेगी।

राजू आठवीं पास करके जब वहां नवी में गया था, तब बाप रामलाल ने कहा था ‘पढ़-लिख कर कोई जज-कलेक्टर बनोगे? चलो, किसी टेलर मास्टर के वहां बिठा देता हूँ। काज-बटन करना सीखो’। लेकिन मम्मी ने जबरदस्ती उसे स्कूल भेजा था।

राजू की परीक्षा फीस का इंतजाम करने पिता भी असफल हुए हैं। क्योंकि वे एक साधारण क्लर्क है और हर जगह खर्च करके बैठे हैं। रामलाल अपने बेटे की परीक्षा फीस भरने के विचार में पड़ गए तब अचानक उनका नजर कैलेंडर पर पड़ता है और ख्याल आता है कि परसों राजू का जन्मदिन है। उन्होंने एक उपाय सोचा है कि राजू का जन्मदिन मनाएंगे इस अवसर पर बंधु-मित्रों को आमंत्रण करेंगे। तब बंधु लोगों से राजू को उसके जन्मदिन के अवसर पर कई सारे इनाम और पैसे मिल जाएंगे। इस पैसे से रामलाल अपने बेटे का परीक्षा फीस भरना चाहा लेकिन वहाँ पर भी निराश ही मिलती है क्योंकि कोई बंधु-मित्र इनाम या पैसे कुछ भी नहीं देते।

रामलाल के मित्र राधेश्याम अगरहरी को भी राजू के जन्मदिन के अवसर पर बुलाया जाता है। राधेश्याम इस जन्मदिन का वातावरण देखकर सब कुछ समझ जाता है। और इशारे से रामलाल को बाहर बुलाता है। उसके हाथ में सौ रुपए रखकर कहता है ‘मैं लखनऊ जाना है थोड़ी देर में ट्रेन आ जाएगी। मैं स्टेशन जाना है इस पैसों से राजू के परीक्षा फीस भरना, उसके साल खराब नहीं होना चाहिए।’ कहकर राधेश्याम वहाँ से निकल जाता है। इस कहानी से पता चलता है कि हमारे समाज में मध्यवर्ग की नौकरी करने वालों की दशा बड़ी ही दयनीय है।

‘सीला’ कहानी का मुख्य पात्र ‘लछिमन’ एक लड़का है। लछिमन अपनी दाई से रात में ही तय कर लेता है कि कल वह भी सीला बीनने जाएगा। लछिमन पहले तो बहुत खिलाड़ी था। मगर अब वह जान गया है कि पेट भरने के लिए मेहनत-मजदूरी जरूरी है। इसलिए अब वह हर काम में आगे-आगे रहता है। दादा लकड़ी बेच लेते थे तो नून-तेल का खर्च निकल आता था और दाई निंदाई-कटाई करके किसी तरह घर चलाती है। कभी-कभी वे उपवास भी रह जाते थे। लछिमन ने इसलिए पढ़ाई छोड़ दी। फिर काम करके खाने में उसे मजा भी आने लगा। बालियां बीनने गांव का झुंड लछिमन के साथ जाता है। दोपहर होने के बाद सब लौट पड़ते हैं। लछिमन मढैया में आकर ओलिया से बालियां गिराई तो दाई की आंखें चमक उठी। बालियां मीज डाली गई। गेहूं पीसने चकिया गया। वह दिन भर का भूखा था। दाई आटा गूंथने लगी। दादा लछिमन को बहलाने के लिए एक किस्सा कहने लगे। लछिमन वही लुढ़क गया और उसे नींद आ गई। दादा ने उसे नींद से जगाने बहुत कोशिश की और दाई ने भी जगाया पर नींद नहीं उचटी। उसे उठाकर बैठाया आंखों पर पानी मारा। दाई ने दो-चार कौर जबरदस्ती से लछिमन के मुंह में डाल दिए, पर लछिमन ठीक से नहीं निंगल सका। माता की ममता दिल में चुभने लगी। ‘यह कैसा लड़का है जो अपनी मेहनत के फल को चके बगैर चैन की नींद सो रहा है।’

कहानी हमारे समाज में गरीबी में पल रहे उन बच्चों की है जो दिनभर मेहनत और मजदूरी करने के बाद भी अपना मेहनत का फल चखे बगैर सो जाते हैं इसी विषय को इस सीला कहानी के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

‘शादी का जोकर’ कहानी में कल्लू और लल्लू नामक दो दोनों भाई जोकर का काम करते हैं। उन्हें खाँ साहब की बेटी की शादी में मनोरंजन करने के लिए बुलाया जाता है। दोनों जोकर कसस्टड्ूम्स पहनते हैं। कल्लू में तो सही आकर्षक था। एक हाथ में छड़ी और दूसरा हाथ शेकहैंड के लिए आगे फैलाता है। ‘यह इसलिए हाथ मिला रहा है कि इसके हाथ में रुपया-दो रुपया देना चाहिए। उस दिन बगल के मोहल्ले में एनकाउंटर हुआ है। कई दिनों से वहां आतंकवादी छिपे हुए हैं। शादी घर में घुस गए हैं। तभी कई पुलिसवाले शादी घर में घुस आए। शादी का जोकर कल्लू

ने सोचा, खाँ साहब के मेहमान होंगे और वह आगे बढ़कर एक पुलिस वाले से हाथ मिलाने लगा। अगले क्षण, कल्लू नामक का शादी का जोकर गायब था। यानी पुलिसवाले कल्लू पर आतंकवाद का अभियोग लगाते हैं। उसे गिरफ्तार करते है ।

खाल खींचने वाला' कहानी का मुख्य पात्र भुनेसर है। भुनेसर निम्न वर्ग का एक गरीब आदमी है। वह मरे हुए बैल आदि जानवरों की खाल उतारता है और उसे बाजार में बेच कर घर चलाता है। उसकी बीवी मेहरारू बुढ़िया हो गई है, काम करने में सर्वथा अशुद्ध है। लड़का आवारा निकल गया है। एक दिन भुनेसर कड़ी धूप में एक बैल का खाल खींच रहा है। यह अकेले का काम नहीं दो आदमी का काम है। बेटा बाप का सहारा नहीं आता है। भुनेसर किसी का मदद नहीं लेना चाहता है। क्योंकि अगर किसी से मदद लेता है तो उसे भी हिस्सा देना पड़ेगा। ऐसी हालत में उसे कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए थोड़ी सी तकलीफ उठा कर अकेले ही काम कर लेता है। उसे खाल के पैसे मे से जानवर का मालिक को भी हिस्सा देना पड़ता है। दिनभर भूख-प्यास भूलकर कड़ी धूप में मेहनत से मरे जानवरों की खाल उतार कर वह बेचने के लिए बाजार जाता है तो व्यापारियों ने उचित दाम नहीं देते हैं। जब खाल का दाम तीस रुपए बताता है तो उसे पंद्रह-बीस रुपए की कहकर उसकी मजाक उड़ाते हैं। आखिर वहां खाल लेकर इन सब व्यापारियों का माल खरीदने वाले बड़े मियां की ओर बढ़ता है। लेकिन वहां भी उसे निराशा ही प्राप्त होती है। बड़े मियां भुनेसर से पूछते हैं कि 'कितने में खरीदा है। सच-सच बोलो।' खरीदा नहीं है मालिक, खुद खलियाया? 'ओह! तुम खाल खींचते हो'? भुनेसर के मन में आया कि कहे, 'हां मालिक, हम लोग तो मुर्दा जानवरों की खाल उतारते हैं, लेकिन इस दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जिंदा आदमियों की खाल खींचते है और उन्हें दर्द तो दूर, घिन भी नहीं लगती।' लेकिन वह कह नहीं सकता था। क्योंकि उसके पास इतनी हिम्मत नहीं।

'प्रथम प्रसव' कहानी में अर्थाभाव के कारण व्यक्ति को किस हद तक नीचे गिरना पड़ता है और उसके पीछे कि उनकी मजबूरी का बहुत ही कारण चित्रित किया है। कहानी में हरी बाबू और शिखी दोनों पति-पत्नी हैं। पत्नी गर्भवती होती है। शिखी बहुत खुश होती है। पर पति बहुत चिंतित होता है। क्योंकि कम तनख्वाह में कमरे का किराया, राशन, सब्जी, तेल-मसाला, साबुन आदि जरूरतों को पूरा करना कठिनता होता है। इसलिए वे संतान को जन्म नहीं देना चाहते हैं। वे विचार करते हैं कि प्रथम प्रसव में होने वाला खर्चा ज्यादा है। इतना ही नहीं 'संतान बड़ा होने पर पढ़ाना-लिखना, शादी-विवाह यह सब अलग। जब तक अच्छी तनख्वाह की नौकरी नहीं मिल जाती यह सब ठीक नहीं'।

अंत में सिर्फ पाँच रुपए में दाई से गर्भपात कर लेते हैं। साथ में प्रथम प्रसव की वेदना को और प्रथम संतान के गर्भपात को गंदी नाली में बहा देते हैं। आर्थिक समस्या से जूझते हुए जन्म लेने वाले संतान का गर्भपात से मुक्ति पाने की विषय को लेकर चित्रित कहानी है।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह - ताकि सनद रहे -टूटा हुआ पंख -राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली -2014
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य - डॉ0 वसीम मकरानी-चंद्रल प्रकाशन, कानपुर -2009
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह - शहदी का जोकर - राजकमल प्रकाशन -नयी दिल्ली -2013
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह - अतिथि देवों भव - राजकमल प्रकाशन -नयी दिल्ली-1990
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह -ताकि सनद रहे -जीनिया के फूल-राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली -2014

mail ; basha-sasi@gmil.com, mobile; 9989519295

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 43-47
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Covid-19 Impact on Indian Economy

-Dr. D. N. Patil
Professor, School of Business and Economics
Department of Economics, Rani Channamma University, Belagavi, Karnataka

Abstract :-

The impact of corona virus pandemic on India has been largely disruptive in terms of economic activity as well as a loss of human lives. Almost all the sectors have been adversely affected as domestic demand and exports sharply plummeted with some notable exceptions where high growth was observed. Since agriculture is the backbone of the country and a part of the government announced essential category, the impact is likely to be low on both primary agricultural production and usage of agro-inputs. Several state governments have already allowed free movement of fruits, vegetables, milk etc. Online food grocery platforms are heavily impacted due to unclear restrictions on movements and stoppage of logistics vehicles. RBI and Finance Minister announced measures will help the industry and the employees in the short term. Insulating the rural food production areas in the coming weeks will hold a great answer to the macro impact of COVID-19 on Indian food sector as well as larger economy. An attempt is made to analyze the impact of Covid-19 on sector wise economy of India and possible suggestions has been given. This paper is prepared on the bases of secondary data followed by conclusion and references.

Key word: Covid-19, Agriculture, Manufacture, Service sector, GDP

Introduction :-

The World Bank and rating agencies initially reviewed India's growth in fiscal 2021. However, following the announcement of the economic package in mid-May, India's GDP estimates were reduced to even more negative figures, signaling a deep recession. (The ratings of over 30 countries have been downgraded during this period.) On 26 May, CRISIL announced that this will perhaps be India's worst recession since independence. State Bank of India research estimates a contraction of more than 40 per cent of GDP in Q1. The contraction will not be uniform, rather it will differ according to various parameters such as state and sector. On 1 September 2020, the Ministry of Statistics released the GDP figures for Q1 (April to June) FY21, which showed a contraction of 24% as compared to the same period the year before.

The Government of India announced a variety of measures to tackle the situation, food security and extra funds for health care and for the states, to sector related incentives and tax deadline extensions. On 26 March a number of economic relief measures for the poor were announced totaling over 1,70,000 crore. The next day the Reserve Bank of India also announced a number of measures which would make available 3,74,000 crore to the country's financial system.

The different phases of India's lockdown up to the "first unlock" on 1 June had varying degrees of the opening of the economy. On 17 April, the RBI Governor announced more measures to counter the economic impact of the pandemic including 50,000 crore special finance to NABARD, SIDBI, and NHB. On 18 April, to

protect Indian companies during the pandemic, the government changed India's foreign direct investment policy. The Department of Military Affairs put on hold all capital acquisitions for the beginning of the financial year. The Chief of Defense Staff has announced that India should minimize costly defense imports and give a chance to domestic production; also making sure not to "misrepresent operational requirements".

On 12 May the Prime Minister announced an overall economic stimulus package worth 20 lakh crore (US$280 billion). Two days later the Cabinet cleared a number of proposals in the economic package including a free food grains package. In December 2020, a Right to Information petition revealed that less than 10% of this stimulus had been actually disbursed. By July 2020, a number of economic indicators showed signs of rebound and recovery. On October 12 and November 12, the government announced two further economic stimulus measures, bringing the total economic stimulus package to 29.87 lakh crore.

OBJECTIVE :-

1. To study the pre pandemic slowdown in India
2. To discuss the sector wise economy during pandemic
3. To analyze the Gross domestic product growth in India

Data Source :-

This paper is prepared on the basis of secondary data collected from various agencies including ministry of health, articles by scholars and websites of government departments.

Discussion and Analysis :-

Pre-pandemic slowdown :

India had also been witnessing a pre-pandemic slowdown. Even before the pandemic, since FY 2018–19, India's growth was falling, 8% in Q4 FY18 to 4.5% in Q2 FY20. In January 2020 itself, well before India's lockdown or reactions to the pandemic, the International Monetary Fund reduced India's GDP estimates for 2019 and also reduced the 2020 GDP forecast. The 2016 Indian banknote demonetization and goods and services tax enactment in 2017 led to severe back to back disruptions in the economy. On top of this there had been numerous banking crises such as the Infrastructure Leasing & Financial Services crisis and government scheme failures such as that of 'Make in India'. There was also a significant "income crunch" for both rural and urban sectors in the year prior to the lockdown.

Agriculture :-

Agriculture will see a deeper cut from the second wave compared to the first wave where it grew. Reflecting on the GDP figures, our agricultural economy grew by 3.4% while the overall economy contracted with 7.7% in FY21.

It has been more than a year and a half since the COVID-19 pandemic penetrated the deepest core of human civilization and made us realizes the power of Mother Nature. In India, after the first wave, we thought that we had gained control of the situation but the second wave found us wanting for basic necessities such as oxygen and medical supplies. It might appear that the second wave is on its way out with daily cases coming down to under 60,000 from the peaks of nearly 4 lakh cases, but we have lost over 3.8 lakh precious lives to COVID-19 already. With the hope that the situation will significantly improve on the medical side, it is time to assess the impact of the second wave on macroeconomics.

A study during the first two weeks of May month by the Public Health Foundation of India, Harvard T H Chan School of Public Health and the Centre for Sustainable Agriculture found that "10% of farmers could not

harvest their crop in the past month and 60% of those who did harvest reported a yield loss" and that a majority of farmers are facing difficulty for the next season. Due to logistical problems following the lockdown tea estates were unable to harvest the first flush. The impact of this on the second flush is not known. The entire Darjeeling tea based tea industry will see significant fall in revenue. Tea exports could see a yearly drop up to 8% as a result. In March 2020, tea exports from India fell 33% in March as compared to March 2019. During the lockdown, food wastage increased due to affected supply chains, affecting small farmers.

From 20 April, under new lockdown guidelines to reopen the economy and relax the lockdown, agricultural businesses such as dairy, tea, coffee, and rubber plantations, as well as associated shops and industries, reopened. By the end of April, 17,986 crore had been transferred to farmers under the PM-KISAN scheme.[249] Odisha passed new laws promoting contract farming.

India's Position in World Agriculture 1.4 As regards, India's position in world's agriculture is concerned, it is the largest producer of pulses, okra, mango, banana and lemon and the second largest producer of wheat, rice groundnut, potato, tomato, onion, cabbage, cauliflower, brinjal etc

Table 1.1

India's Position in World Agriculture

Item	India (Million Tonnes)	World (Million Tonnes)	India's		Next to
			% Share	Rank	
1. Crop production					
(A): Total Cereals	**294**	**2849**	**10.3**	Third	China, USA
Wheat	**93.5**	**749.5**	**12.5**	Second	China
Rice (Paddy)	**159**	**741**	**21.4**	Second	China
Total Pulses	**17.6**	**82**	**21.5**	First	
(B): Oilseeds					
Groundnut (in shell)	**7**	**44**	**15.6**	Second	China
Rapeseed	**6.8**	**69**	**10**	Third	Canada, China

Sources: NABARD Report 2020

Table 1.1 reveals that India produces more than one fifth of global production of paddy and pulses. Similarly, it contributes to more than twenty per cent of global production of many of the horticulture crops such as okra, cauliflower, brinjal, banana, mango and papaya. However, the area of concern is the low level of productivity of major field and horticulture crops in the country.

Manufacturing :-

Major companies in India such as Larsen and Toubro, Bharat Forge, UltraTech Cement, Grasim Industries, the fashion and retail wing of Aditya Birla Group, Tata Motors and Thermax momentarily suspended or significantly reduced operations in a number of manufacturing facilities and factories across the country. iPhone producing companies in India also suspended a majority of operations. Nearly all two-wheeler and four-wheeler companies put a stop to production till further notice. Many companies have decided to remain closed till at least 31 March such as Cummins which has temporarily shut its offices across Maharashtra. Hindustan Unilever, ITC and Dabur

India shut manufacturing facilities except for factories producing essentials. Foxconn and Wistron Corp, iPhone producers, suspended production following the 21-day lockdown orders.

Services :-

The services sector in the last two decades has become the bedrock of the Indian economy contributing to more than half of the GDP. But, our services and knowledge-based industries have been built on the manufacturing industry premise of the 18th century i.e. proximity and discipline of workers to the factory is critical in getting good output. We apply the same philosophy for our software engineers and telecalling workforce. With the internet revolution this premise has proven to be an unnecessary legacy of the past. Now the workforce can be decentralized and anyone can work from anywhere till the time there is 4G internets. I do believe that COVID will prove a positive disruption for the services sector in the long run.

The first wave required a steep learning curve for the organizations to develop infrastructure and processes for remote working. For the employees, first wave lockdowns were a new paradigm and it took them some time to adjust to work from home and be productive. Prolonged lockdown and unlocking phases during the first wave ensured that both the employer and employee got into a rhythm and the productivity started reaching pre-covid levels. The second wave disrupted this rhythm. But the impact of the second wave has been localized and centered on groups of people with typical disruptions costing 3-4 weeks of productivity. My assessment is that the services sector will be the least hit from wave 2 from an output standpoint.

Table 1.2

Gross Domestic Product for all sectors

Time Period	Indi's GDP % growth	Services GDP % growth	Manufacturing GDP % growth	Agriculture GDP % growth
FY 21 (Reflection of the wave – 1)	-7.3%	Contracted by 16%	Contracted by 7.2%	Growth of 3.4%
% Contributed to Overall GDP	NIL	55%	17.4%	17.5%
Expected Impact of the Wave – 2	8.2 % to 9.3 % (Overall growth due to base effect but reduced forecasts by rating agencies)	Significantly lower than wave – 1	Lower than Wave – 1	Higher than Wave – 1

Source: https://www.financialexpress.com/economy/impact on indian economy after the covid 19 second wave/2275353/.

The overall impact on GDP :-

On May 31, the Indian government released the data for GDP that during the financial year 2020-21, GDP contracted by 7.3 percent. It is the most severe contraction from the time India got its independence. The reasons behind this trajectory are obvious – lockdown leading to the closing of business units, increasing unemployment rate and a significant decline in domestic consumption.

For the current financial year, the Reserve Bank of India has anticipated growth of 10.5 percent. But the rating agencies across the globe have downgraded it due to the impact of the second wave of COVID-19. Moody's initially projected 13.7 percent of growth for FY 2021-22, but later lowered it to 9.3 percent. The same goes with S&P Global Rating. They have lowered the 11 percent growth to 9.8 percent in case of moderate impact of the

second wave, but for a worst-case scenario, it would be 8.2 percent. The ideas around a third wave are not helping the situation at all.

To summarize on the macroeconomic numbers of GDP, I expect a less severe impact of the second wave due to less strict, localized lockdowns and practically a lesser number of days in reaching the peak number of infections. Agriculture will see a deeper cut from the second wave compared to the first wave where it grew. Our hopes of economic revival are pinned to us having an express vaccination drive, which takes away the fear of a third wave and a revival of consumer confidence and spending.

Suggestions :-

The following suggestions put forth for the development of the economy.

1. Banks to be nudged to enhance credit linkage and next dose of credit to eligible sectors.
2. Due to decline in agriculture and allied sector production, income support may be provided to farmers in general and particularly those engaged in poultry and fisheries sector. In this connection, enhancing the income support through PM-KISAN could be a good option.
3. Due to poor recovery, interest waiver for agricultural term loan for at least one year may be provided by Banks.

Conclusion :-

On the whole, at the national level the impact of COVID-19 and the resultant lockdown had been quite harsh on agriculture and allied sector in majority of districts. Among various subsectors, rabi crops were least affected as its harvesting was on the verge of completion but allied sectors such as poultry, fisheries and pig/goat/ sheep sector witnessed a drastic fall in demand due to misplaced rumors leading to declining production as well as declining farm gate prices. However, prices of agriculture inputs were estimated to be rising mainly due to disruption in supply chain and closure of shops and markets. Although banking activities were exempted from lockdown, yet basic banking services viz, loans, deposit and recovery were severely hampered in majority of the sample districts in the country. However, the silver lining was the increase in digital banking transactions in majority of the sample districts. The microfinance sector and MSME sector was the biggest casualty with disruption in more than four-fifths of the sample districts thereby seriously hampering the livelihood in the unorganised sector which provides maximum employment in the rural areas.

References :-

1. Amit Kumar https://www.financialexpress.com/economy/impact-on-indian-economy-after-the-covid-19-second-wave/2275353/.
2. Goyal, Malini (22 March 2020). "Covid-19: How the deadly virus hints at a looming financial crisis". The Economic Times. Retrieved 23 March 2020.
3. https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/midweekread/impact-of-covid-19-on-indian-economy-26770/.
4. Lockdown relaxation-more than half of India's economy may reopen from Monday, says Nomura. Business Insider. Retrieved 18 April 2020.
5. PTI (25 March 2020). "Experts peg India's cost of corona virus lockdown at USD 120 bn". The Hindu @business line. Retrieved 25 March 2020.
6. Research, Centre for Policy. "Podcast: How has India's lockdown impacted unemployment rates and income levels?" Scroll. In. Retrieved 24 April 2020.
7. Sayali Deshpande @MidWeekReadOCT 04, 2020, Impact of Covid-19 on Indian economy.
8. Sharma, Yogima Seth (24 June 2020). "Unemployment rate falls to pre-lockdown level: CMIE". The Economic Times. Retrieved 24 June 2020.
9. www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/1211203145Impact%20Assessment%20of% 20COVID.pdf

dr.dnpatil@rediffmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 48-51
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य और कोरोना

–रेशमा शकिल शेख
अध्यापिका, एम. सी इ. सोसाइटिजं ज्युनिअर कॉलेज ऑफ एज्युकेशन
डि.एल इ डी इगलिश मिडियम आझम कॅम्पस, पुणे

सारांश :–

व्यक्तिगत साहित्यकार के ऊपर निर्भर करता है कि वे इन घटनाओं से कैसे प्रभावित हों कुछ लोग यथार्थ के रूप में लेते हैं फिर विस्तार करते हैं। साहित्य शब्द अंग्रेजी के Literature का पर्यायी है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुम्रा है। भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति अभिव्यक्ति कराने वाली ललित कला अथवा साहित्यश कहलाती है। शब्द और अर्थ का सहभाव ही साहित्य है।

साहित्य शब्द अंग्रेजी के Literature का पर्यायी है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुम्रा है। भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति अभिव्यक्ति करानेवाली ललित कला 'काव्यश' अथवा 'साहित्य' कहलाती है। शब्द और अर्थ का सहभाव ही साहित्य है।

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज का प्रतिबिम्ब है समाज का मार्गदर्शक है तथा समाज का लेखा जोखा है किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त होती है। साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है।

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ... एक साहित्यकार समाज में विशेष परिवेश में रहकर समाज में क्या घटित हो रहा है, वह सब अपनी रचनाओं में व्यद्र करता है। साहित्य के जिन व्यद्रिक सुख-दुःख, राग-विराग, हास-विलास एवं सफलता-असफलता आदि का चित्रण होता है। वे सब समाज से ही पनपे हैं।

प्रस्तावना :–

कोरोना काल में साहित्यकारों पर क्या कर असर पड़ रहा है इसके जवाब में असगर वजाहत ने कहा, 'समाज में जो होता है उसका असर साहित्यकार, रचनाकार पर पड़ता ही है। साहित्य किसी संस्कृति का ज्ञात कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए भक्तिकाल के साहित्य से हमें हिन्दुओ के धालमक परंपराओं की जानकारी मिलती है। किसी भी काल का अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन-सहन व अन्य गतिविधियों को आसानी से जान सकते हैं। साहित्य से हम अपने विरासत के बारें में सीख सकते हैं।

कोरोना वायरस, जिसकी शुरुआत पिछले साल चीन के वुहान प्रांत के सीफूड और पोल्ट्री बाजार में हुआ है, आज दुनिया भर के लिए एक गंभीर मामला बन गयी है। यह वायरस आज तक 70 देशों में फैलने के बाद, करीबन 3 हज़ारों की मौत और 10 हज़ार से ज़्यादा लोगो के बीमारी की वजह बन चुकी है। क्या है यह वायरस, इसकी शुरुआत कैसे हुई, कैसे बन गयी यह एक ग्लोबल हेल्थ इमरजेंसी, अपने आप और अपने परिवार वालो को कैसे बचा सकते है इस वायरस से, क्या इस वायरस का कोई इलाज है?

वैश्विक महामारियां अपने समय और भविष्य को प्रभावित करती आई है। राजनीति और भूगोल के साथ समाज

और साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। दुनिया जब किसी विपदा में घिरी है तो सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में भी उनका असर हुआ है। सभी भाषाओं में गद्य एवं पद्य की वे समस्त पुस्तकें जिनमें नैतिक सत्य और मानवभाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किए गए हों, वाङ्मय 4. किसी विषय के ग्रंथों का समूह, शास्त्र 5. किसी एक स्थान पर एकत्र किए हुए लिखित उपदेश, परामर्श या विचार आदि (लिपिबद्ध विचार या ज्ञान 6. समस्त शास्त्रों, ग्रंथों का समूह (लिटरेचर)।

मनुष्य के लिए अधिक निराशाजनक, फिर भी मौलिक, चीजों में से एक यह है कि हम खुद को बहुत अच्छी तरह से समझ नहीं सकते। मन के एक पक्ष के पास अक्सर कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं होती है कि दूसरे किस बारे में परेशान होते है। हम अपनी व्यापक आत्म-अज्ञानता के कारण बहुत सारी गलतियाँ करते हैं। यहां साहित्य मदद कर सकता है, क्योंकि कई मामलों में, यह हमें बेहतर जानता है कि हम खुद को जानते हैं और हमें एक अकाउंट प्रदान कर सकते हैं, जितना हम कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक सटीक हमारे दिमाग में चल रहा है। साहित्य किसी संस्कृति का ज्ञात कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए भक्तिकाल के सहित्य से हमें हिन्दुओ के धात्मिक परंपराओं की जानकारी मिलती है। किसी भी काल का अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन-सहन व अन्य गतिविधियों को आसानी से जान सकते हैं। साहित्य से हम अपने विरासत के बारें में सीख सकते हैं।

उद्देश्य :-

हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास 'इस्त्वादर द ला लिथरेथ्यूर ऐन्दुई इन्दुस्थानी' किस भाषा में लिखा गया

अपभ्रंश व्याकरण के रचयिता है?

वीरगाथा काल को संधिकाल एवं चरणकाल की संज्ञा किसने दी?

आदिकाल को वीरगाथा काल संज्ञा किस आलोचक ने दिया?

परिभाषा :-

सहित = स+हित = सहभाव, अर्थात हित का साथ होना ही साहित्य है। साहित्य शब्द अंग्रेजी के Literature का पर्यायी है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुई है। भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति करानेवाली ललित कला 'काव्य' अथवा 'साहित्य' कहलाती है।

साहित्य जीवन की आलोचना हैं। **-प्रेमचंद**

विषय विवेचन :-

कोरोना सबकी जिंदगी बदलने वाला है। यह परिवर्तन साहित्य की दुनिया में भी दिखेगा। वस्तुतः साहित्य का संसार मूलरूप से लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों से मिलकर बनता है। इसमें लेखक और पाठक जहां इसका बौद्धिक क्षेत्र निर्मित करते हैं, वहीं प्रकाशकों के लिए इसका वितरण और वाणिज्य महत्वपूर्ण होता है। अगर इनमें से कोई भी एक कड़ी अपनी भूमिका को लेकर ईमानदार न रहे तो साहित्य का संसार प्रभावित होगा। अब कोरोना वायरस किस प्रकार इस दुनिया में खलबली मचा रहा है, इसे देखना दिलचस्प होगा।

लेखकों की दृष्टि वर्तमान परिवर्तनों पर है और वो इस बेचैनी को व्यक्त करना भी चाहते हैं। वैसे भी संकट का काल रचनात्मकता को एक नई ऊर्जा देता है, क्योंकि इस दौरान जीवन में व्यापक तौर पर उथल-पुथल होती है। संभव है कि यह काल हिंदी साहित्य के दृष्टिकोण से कुछ अनोखा हो जाए, क्योंकि जिस तरह से युवा लेखक अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं वह उम्मीदें जगाने वाला है। पाठकों के लिए इस नई दृष्टि को महसूस करने का अवसर होगा। ये दोनों ही दीर्घकालिक प्रभाव वाले बिंदु हैं, किंतु जो पक्ष तत्काल प्रतिक्रिया दे रहा है वह है प्रकाशक। महामारियों के कथानक पर केंद्रित अतीत की साहित्यिक रचनाएं आज के संकटों की भी शिनाख्त करती हैं. ये हमें मनुष्य जिजीविषा की याद दिलाने के साथ साथ नैतिक मूल्यों के ह्वास और मनुष्य अहंकार, अन्याय से भी आगाह

करती हैं. इतिहास गवाह है कि अपने-अपने समयों में चाहे कला हो या साहित्य, संगीत, सिनेमा-तमाम रचनाओं ने महामारियों की भयावहताओं को चित्रित करने के अलावा अपने समय की विसंगतियों, गड़बड़ियों और सामाजिक द्वंद्वों को भी रेखांकित किया है. ये रचनाएं सांत्वना, धैर्य और साहस का स्रोत भी बनी हैं, दु:खों और सरोकारों को साझा करने वाला एक जरिया और अपने समय का मानवीय दस्तावेज।

कोरोना ने समाज को बदल दिया,
बीमारी और अंधविश्वास में जकड़ा समाज,
हमारे ज़हन पर क़ब्ज़ा,
समाज का मार्गदर्शक,
साहित्य की विषयवस्तु।

फणीश्वरनाथ रेणु के प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आंचल' में मलेरिया और कालाजार की विभीषिका के बीच ग्रामीण जीवन की व्यथा का उल्लेख मिलता है. प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' में हैजे का जिक्र है. ओडिया साहित्य के जनक कहे जाने वाले फकीर मोहन सेनापति की 'रेबती' कहानी में भी हैजे के प्रकोप का वर्णन है। जानेमाने कन्नड़ कथाकार यूआर अनंतमूर्ति की नायाब रचना 'संस्कार' में एक प्रमुख किरदार की मौत प्लेग से होती है। ज्ञानपीठ अवार्ड से सम्मानित मलयाली साहित्य के दिग्गज तकषी शिवशंकर पिल्लै का उपन्यास, 'थोत्तियुडे माकन' (मैला साफ करने वाले का बेटा) में दिखाया गया है कि किस तरह पूरा शहर एक संक्रामक बीमारी की चपेट में आ जाता है।

शिक्षा की आवश्यकता :-

आज हम जिस दौर से गुज़र रहे हैं, उसमें कल का कोई पता नहीं. अभी तो भय ने हमारे ज़ेहन पर क़ब्ज़ा कर रखा है। सामाजिक मेल जोल से दूर हम सभी अपने अपने घरों में क़ैद हैं। ताकि नए कोरोना वायरस के संक्रमण की रफ्तार धीमी कर सकें।

इस दौरान साहित्य हमारे एकाकीपन को दूर कर रहा है। वो हमें हक़ीक़ी दुनिया से दूर ले जाकर राहत देता है। हमारा दोस्त बनता है। मगर, इस दौरान महामारी पर लिखी गई किताबों की मांग भी खूब बढ़ गई है। ऐसे कई उपन्यास हैं, जो महामारी के दौर की वास्तविकता के बेहद क़रीब हैं. जो पहले की महामारियों की डायरी जैसे हैं। ऐसे उपन्यास हमें बताते हैं कि उस दौर में लोग इस भयावाह आपदा से कैसे बाहर निकले।

दुनियाभर में फैली महामारियां या बीमारियां हमेशा से साहित्य की विषयवस्तु रही हैं। इतिहास महामारियों का उतना बारीक और जीवंत चित्रण नहीं करता, जितना साहित्य में मिलता है। उपन्यास, कहानियों, नाटकों और कविताओं के रूप में हमें ऐसी असंख्य रचनाएं मिलती हैं।

महामारियों के कथानक पर केंद्रित अतीत की साहित्यिक रचनाएं आज के संकटों की भी शिनाख्त करती हैं। ये हमें मनुष्य जिजीविषा की याद दिलाने के साथ साथ नैतिक मूल्यों के ह्रवास और मनुष्य अहंकार, अन्याय और नश्वरता से भी आगाह करती हैं। इतिहास गवाह है कि अपने अपने समयों में चाहे कला हो या साहित्य, संगीत, सिनेमा- तमाम रचनाओं ने महामारियों की भयावहताओं को चित्त्रि करने के अलावा अपने समय की विसंगतियों, गड़बड़ियों और सामाजिक द्वंद्वों को भी रेखांकित किया है। ये रचनाएं सांत्वना, धैर्य और साहस का स्रोत भी बनी हैं, दुखों और सरोकारों को साझा करने वाला एक जरिया और अपने समय का मानवीय दस्तावेज।

निष्कर्ष :-

'भारत में बच्चों के जीवन पर कोविड-19 संकट का प्रभाव'' सत्र में बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी सुरक्षा और शिक्षा पर संकट तथा कोविड-19 के पश्चात् बच्चों के लिए एक अधिक सतत् और सुरक्षित दुनियां की पुनर्कल्पना पर ध्यान आकर्षित किया गया। इस प्रस्तुतिकरण में कोविड ऑनलाइन शिक्षा को कोरोना काल में एक मजबूरी के रुप

में देखा जा रहा है। फिजिकल स्कूल और क्लास से इसकी कोई तुलना नहीं है। सीखने के स्तर पर ऑनलाइन शिक्षा स्कूली कक्षा की जगह नहीं ले सकती है। ऑनलाइन शिक्षा ग्रामीण भारत की पहुंच से बहुत दूर और गैर- व्यावहारिक है।

संदर्भ सूची :

1. http://www.wikipedia.com
2. http://www.wikieducator.org
3. English to Hindi dictionary
4. http://pib.gov.in
5. http://hindi:news18.com
6. http://jangagran.com

E-Mail.id-reshamma.shaikh@gmail.com

मोबाइल नंबर 8208875679

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 52-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कोविड–19 के दौरान सोशल मीडिया की भूमिका के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता का अध्ययन

–**डॉ. गंगाराम वास्केल**, व्याख्याता,
कुमारी दिक्षा क्षत्रिय, शोधार्थी,
शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्ला विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्रदेश)

सार :–

प्रस्तुत शोध का शीर्षक ''कोविड-19 के दौरान विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया की भूमिका का अध्ययन'' एक सर्वेक्षणात्मक प्रकार का शोध कार्य है। वैश्विक महामारी कोरोना काल के दौरान सामाजिक संचार माध्यमों के द्वारा प्रचारित की जा रही दिशा निर्देशों एवं सावधानियों के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया। प्रस्तुत शोध का अग्र उद्देश्य था-''शिक्षा अध्ययनशाला में अध्यनरत विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया कि भूमिका के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।'' प्रस्तुत शोध की समष्टि इन्दौर शहर के बी.एड. में अध्ययनरत् विद्यार्थी थे। इस समष्टि में से ''शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय'' भवरकुंवा इन्दौर में अध्ययनरत तृतीय सेमेस्टर (वर्ष 2020-2021) के 70 विद्यार्थियों का उद्देश्यपरक न्यादर्श तकनीक के द्वारा चयन किया गया। इसमें विद्यार्थियों दोनों सम्मिलित थे। इस परिवर्ती के आकलन हेतु शोधकताओं द्वारा निर्मित सोशल मीडिया की भूमिका के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता को ज्ञात करने संबंधी प्रश्नावली का उपयोग किया गया। इस जागरूकता प्रश्नावली में कोविड-19 के दौरान राज्य सरकार, केन्द्र सरकार एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा जो दिशा निर्देश दिये गये थे, उनको सोशल मीडिया के माध्यम से प्रसारित कर जागरूक किये जा रहे प्रयासों पर अधारित कुल 21 बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रकार की प्रश्नावली को सम्मिलित किया गया। प्रस्तुत शोध में प्रदत्त विश्लेषण हेतु सांख्यकीय पद्धति का उपयोग किया गया। शोध से अग्र निष्कर्ष प्राप्त हुआ-''शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय'' के विद्यार्थियों पर प्रसारित किया गया है और परिणाम सार्थक रूप से प्रभावी रहे हैं। प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि समस्त विद्यार्थी सामाजिक संचार माध्यम के साथ-साथ शैक्षिक तकनीक के बारे में भी जागरूक है। वह कोविड-19 के कारण लगे हुए लॉकडाउन की अवधि के दौरान भी सामाजिक संचार माध्यमों के प्रति सक्रिय रहे है। उन्हें संचार माध्यम के प्रकारों का एवं उनका कैसे उपयोग किया जाए इसका पर्याप्त ज्ञान है! विद्यार्थी वैश्विक महामारी की अवधि के दौरान भी जागरूक और सावधान थे यानी उन्होंने केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जो दिशा निर्देश प्रदान किए गए हैं उनको पालन किया गया! विद्यार्थी केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संचालित की गई योजनाओं से अवगत होते हुए अपना और अपने परिवार को सुरक्षित रखा।

प्रस्तावना :–

लोकतंत्र का तृतीय स्तम्भ ''सोशल मीडिया या सामाजिक संचार माध्यम'' है। आधुनिक भारतीय समाज को समृद्ध, विकसित और जागरूक करने में संचार माध्यम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक

वर्ग के जीवन पर बहुत जल्दी पड़ता है। वर्तमान भारतीय समाज में हर आयु वर्ग का हर व्यक्ति सामाजिक संचार माध्यमों से जुड़ा हुआ है एवं संचार माध्यमों को पसंद करता है। भारत में सभी जगह इस प्रकार जनसचांर माध्यम विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों पर सार्वजनिक बोध को प्रभावित करते हैं तथा विश्वासों, मूल्यों और परंपराओं के एक विशेष स्वरूप का चयन और चित्रण करके आधुनिक संस्कृति के विशिष्ट रूप का विकास करते हैं। आज का समाज सामाजिक संचार माध्यमों के द्वारा जो भी दिखाया जाता है उसका अनुकरण बहुत जल्दी कर लेता है चाहे वह सही बात हो या गलत उस पर अमल तुरंत करता है। वर्तमान विकासशील भारत में मूल्य, संस्कृति, सभ्यता एवं परंपराओं का जो दृश्य दिखाया जाता है उनको देखकर समाज अपने मूल्यों में संस्कृति में परिवर्तन लेकर आया है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि आजकल सोशल मीडिया हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यह कैसे कोविड-19 की अवधि के दौरान हमारी मदद करने के लिए सर्वदा तत्पर रहा और हमें जागरूक करता रहता है। जैसा कि हम सभी इस तथ्य से अवगत है कि लॉकडाउन अवधि के दौरान, हर कोई अपने घरों में बंद है और किसी को भी बाहर जाने की अनुमति नहीं है। इस महामारी के दौर में सोशल मीडिया ने सभी आयु-वर्गों के परिवारों के हर सदस्य का दोस्त बन कर आधुनिक समाज का मनोरंजन किया और इस महामारी के कैसे बचा जाये यह यह बताकर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया हैं।

कोविड-19 :-

कोरोना वायरस (कोविड-19) क्या है? विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना का नाम कोविड-19 रखा है, जहां 'CO' का अर्थ कोरोना वायरस (Corona), 'VI' का अर्थ वायरस (Virus), 'D' का अर्थ है डिसिस (Disease), और '19' का अर्थ है साल 2019 यानी जिस वर्ष यह बीमारी पैदा हुई है। इस वायरस को सबसे पहले चीन के 'वुहान' प्रांत में देखा गया जो धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैल चुका है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने कोरोना वायरस को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया है। कोरोना वायरस बहुत सूक्ष्म वायरस है जो मानव के बाल की तुलना में 900 गुना छोटा है। कोरोना का संक्रमण दुनिया भर में तेजी से फैल रहा है और बहुत ही घातक वायरस है। कोरोना वायरस एक नया वायरस (विषाणु) है जो लोगों में जुकाम से लेकर आंतरिक गंभीर श्वास रोग संबंधी बीमारियाँ पैदा कर है। कोरोना वायरस से जैसा कि आप जानते हैं कि साँस/श्वसन संक्रमण रोग पुरी दुनिया भर में फैल रहा है। भारत में भी इस संक्रमण के मामले दर्ज किए गए और सरकार इस बीमारी को फैलने से रोकने का भरपूर प्रयास कर रही है। कोरोना वायरस (COVID-19) चीन और अमेरिका सहित अन्य देशों में व्यक्ति से व्यक्ति में फैलने वाला एक नया वायरस स्ट्रेन है। कुछ मामलों में, चीन के बाहर पाए गए मामले चीन से आए यात्रियों से संबंधित हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञ चिंतित हैं क्योंकि इस नए वायरस के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है और इससे कुछ लोगों में गंभीर बीमारी और निमोनिया होने की संभावना होती है।

सामाजिक संचार माध्यम :-

सोशल मीडिया या सामाजिक संचार माध्यम संचार के वह महत्वपूर्ण उपकरण है जिसका उपयोग सूचनाओं को संग्रहीत कर प्रसारित करने के लिए किया जाता है। जैसे-समाचार पत्र और पत्रिकाएं, टेलीविजन, रेडियो, होर्डिंग, टेलीफोन, इंटरनेट, फैक्स और होर्डिंग इत्यादि प्रकार के संचार के साधन शामिल हैं। सोशल मीडिया समाज के आम लोगों तक व्यापक रूप से पहुंचता है और उन्हें सर्वाधिक प्रभावित करता है। सोशल मीडिया के द्वारा उन संचार चैनलों को संदर्भित करता है जिनके माध्यम से हम समाचार, संगीत, फिल्में, शिक्षा, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इत्यादि प्रकार के संदेश या तथ्यों का प्रसार करते हैं। संदेशों या सूचनाओं को भौतिक और ऑनलाईन जब हम बहुत बड़ी संख्या या जन समूह के लोगों तक पहुँचने की बात करते हैं तो हम उसे मास मीडिया या जन संचार माध्यम कहते हैं। इसमें पारंपरिक मीडिया जिसमें मुखर, मौखिक, संगीत और दृश्य लोक कला रूपों को एक समाज या समाज के

समूह को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रेषित किया जाता है। इसमें समाचार पत्र और पत्रिकाएं, टेलीविजन, रेडियो, होर्डिंग, टेलीफोन, केबल और उपग्रह, प्रिंट और होर्डिंग शामिल हैं। आधुनिक भारतीय परिदृश्य में भी पारंपरिक मीडिया सबसे विश्वसनीय स्रोत है। इस प्रकार के संचार माध्यमों को पारंपरिक मीडिया कहते है जिनका उपयोग हम कई युगों या वर्षो से करते हुए आ रहे है ओर वर्तमान में भी हमारे लिए उतने विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण है जितने विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण युगों या वर्षो पूर्व थे। इसमें न्यू मीडिया वर्तमान कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के उपयोग से संभव इलेक्ट्रॉनिक संचार के विभिन्न माध्यम जिनका उपयोग करके संदेशों या सूचनाओं हम वेबसाइट और ब्लॉग, मोबाइल ऐप्स, ऑडियो और वीडियो स्ट्रीमिंग, वेब विज्ञापन, चैट रूम, डीवीडी और सीडी-रोम मीडिया, ईमेल, आभासी वास्तविकता वातावरण, ऑनलाइन समुदाय, डिजिटल कैमरे, सोशल नेटवर्क, प्लेटफार्म साझा करना, टेलीफोन इत्यादि उपकरणों का किया जाता है। नया मीडिया इंटरनेट के माध्यम से को चंद सेकण्ड में संदेशों या सूचनाओं को ऑनलाइन और सामाजिक रूप से दोस्तों और सहकर्मियों के साथ साझा करना आसान कर दिया है।

संबंधित शोध :-

संबंधित शोध का शिर्षक ''कोविड-19 के दौरान विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया की भूमिका का अध्ययन।'' वैश्विक महामारी कोरोना से संबंधित कोई शोध कार्य शोधकर्ताओं को उपलब्ध नहीं हो पाया है। इससे प्रस्तुत शोध की आवश्यकता प्रतिपादित होती है।

औचित्य :-

कोरोना आज एक वैश्विक महामारी बन चुकी है। भारत में भी यह वायरस तेजी से अपने पैर पसार रहा है। देश के वैज्ञानिक संस्थान के निदान से जुड़े अनुसंधानों में अनेक प्रयोगशालाओं में इस उद्देश्य से महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य चल रहा है। मनुष्य भले अपने आप को पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझता हो परंतु प्रकृति के लिए मनुष्य और कीड़े में कोई अंतर नहीं है। प्रकृति बार-बार मनुष्य को इसका अहसास भी कराती है। कोविड-19 सारस कोरोना वायरस-2 के संक्रमण ने सारी दुनिया में कोहराम मचा रखा है। हमारे देश में भी इससे संक्रमित और मरने वाले रोगियों की संख्या भय और चिंता का विषय बनी हुई है। सरकार और मीडिया के लिए परीक्षा की घड़ी है क्योंकि कोविड-19 का प्रसार जारी है। लोकतंत्र में पत्रकारिता की एक महान भूमिका होती है। क्योंकि इसे आदर्श रूप में वस्तुनिष्ठ सूचना और आलोचनात्मक विमर्श के मंच के रूप में देखा जाता है। कोविड-19 की घटनाएं संकट के समय किसी देश की स्वस्थ पत्रकारिता की जांच करने का अवसर प्रदान करती है। इस महामारी ने मीडिया की विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में रुचि बढ़ाई है। वैज्ञानिक इसे एक अवसर के रूप में देख रहे हैं जिससे लोगों का विश्वास विज्ञान में बड़े और वैज्ञानिक चेतना का विकास हो सके। मीडिया भी भविष्य के वैज्ञानिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता रहे।

आज का समाज कोरोना सेंट्रिक हो गया है और कोरोना महामारी के कारण आत्म केंद्रित हो गया है। व्यक्ति परस्पर भय और शंका के वातावरण में सिमटा हुआ है। समाज में कोरोना के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, रीति-रीवाज, सोच-विचार, रहन-सहन, कार्य करने की शैली इत्यादि जीवन शैली में महत्वपूर्ण बदलाव आ गया है। जब दुनिया भर की आबादी अपने घरों से बाहर नहीं जा सकती, तो यह सोशल मीडिया मनोरंजन का एकमात्र विकल्प था और उन्हें दुनिया से जोड़े रखता था। इस शोध से पता चलता है कि वे सोशल मीडिया पर अपने परिवेश से कितने जुड़े और जागरूक थे। इस हेतु शोधकर्ताओं द्वारा 'कोविड-19 के दौरान विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया की भूमिकाओं को ज्ञात करने के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। इस शोध के माध्यम से कोविड -19 के दौरान सोशल मीडिया ने जो महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है के संदर्भ में सटीक तथ्यों को प्रदर्शित करने में सहायक होगा।

उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध का अग्र उद्देश्य था-

1. शिक्षा अध्ययनशाला में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया कि भूमिका के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :-

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य - कोविड-19 अवधि के दौरान विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया कि भूमिका को ज्ञात करने के लिए सर्वेक्षण शोध पद्धति है का उपयोग किया गया।

न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध की समष्टि इन्दौर शहर बी.एड. में अध्ययनरत् विद्यार्थी (प्रशिक्षणार्थी) थे। इस समष्टि में से ''शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय'' भवरकुंवा इन्दौर में अध्ययनरत तृतीय सेमेस्टर (वर्ष 2020-2021) के 70 विद्यार्थियों का उद्देश्यपरक न्यादर्श तकनीक के द्वारा चयन किया गया। न्यादर्श में 35 छात्र व 35 छात्राएँ दोनों सम्मिलित थे।

उपकरण :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु विद्यार्थियों की ''कोविड-19 अवधि के दौरान विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया कि भूमिका'' परिवर्ती से संबंधित प्रदत एकत्र किए गए थे। इस परिवर्ती के आकलन हेतु शोधकर्ताओं द्वारा निर्मित 'प्रश्नावली परीक्षण' (गुगल फॉम के द्वारा) का उपयोग किया गया। इस जागरूकता परीक्षण में कोविड-19 के दौरान विश्व स्वास्थ्य संगठन, केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के द्वारा जागरूकता के प्रति दिए गए दिशा-निर्देशों पर आधारित कुल 21 बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित किया गया। परीक्षण की अवधि 30 मिनिट 21 थी।

प्रदश संकलन :-

सर्वप्रथम न्यादर्श हेतु चयनित शिक्षा अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के विभागाध्यक्ष को शोध अध्ययन की उपयोगिता बताई गई। उनकी पूर्ण संतुष्टि के पश्चात क्रियान्वित करने के लिए अनुमति ली गई। तत्पश्चात अध्यापकों से चर्चा कर आत्मीय संबंध स्थापित कर शोध के उद्देश्यों से अवगत कराया गया। उन्हे विश्वास दिलाया गया कि प्रस्तुत शोध के परिणामों को गोपनीय रखा जायेगा और केवल शोध कार्य हेतु उपयोग में लाया जायेगा। तत्पश्चात् समस्त छात्र एवं छात्राओं से शोधाकर्ताओं द्वारा निर्मित 'प्रश्नावली परीक्षण' भरवायी गयी। शोध के आश्रित चर के आकलन हेतु आवश्यक 'विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया की भूमिका' से संबंधित 'प्रश्नावली परीक्षण' (गुगल फॉम के द्वारा) से प्राप्त कर ली गयी।

प्रदश विश्लेषण :-

प्रस्तुत शोध में ''शिक्षा अध्ययन शाला में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जागरूक करने में सोशल मीडिया की भूमिका के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना हेतु प्रदत्त विश्लेषण हेतु सांख्यकीय पद्धत्ति का उपयोग किया गया।

परिणाम :-

प्रदण विश्लेषण से प्राप्त परिणाम को सारणी में प्रदर्शित किया गया है-

क्र.	कथन	अ	ब	स	द
1.	संचार क्या है?	सूचना प्रेषण हस्तांतरण की प्रक्रिया (7.3%)	सूचना भेजना और प्राप्त करना (8.1%)	सूचना का आदान-प्रदान (4.1%)	उपरोक्त सभी (80.5%)
2.	निम्नलिखित में से कौन सा मीडिया का प्रकार नहीं है?	प्रिंट मीडिया (12.2%)	सोशल मीडिया (2.3%)	बिजनेस (80.5%)	टेलीविजन (5.1%)
3.	निम्नलिखित में से कौन सा एनालॉग मीडिया का उदाहरण है-	कंप्यूटर (24.4%)	सोशल मीडिया (12.2%)	वेबसाइट (19.5%)	टीवी, रेडियो (43.9%)
4.	निम्नलिखित में से कौन एक सोशल मीडिया प्लेटफार्म नहीं है?	फेसबुक (4.9%)	व्हाट्सएप (00%)	इंस्टाग्राम एवं टवीटर (4.9%)	गुगल डॉट कॉम (90.2%)
5.	सोशल मीडिया में शामिल हैं :	अखबार (मुद्रित) (26.8%)	वेब सीरीज (7.3%)	ब्लॉगस (टम्बलर) (24.4%)	दोस्त (41.5%)
6.	लिक्डइन के लिए डिज़ाइन किया गया है :	व्यापार के समुदाय (68.3%)	छात्र (14.6%)	बैंकर (4.9%)	शिक्षक (12.2%)
7.	फेसबुक के संस्थापक कौन हैं?	टिम बर्नर्स ली (4.9%)	मार्क जुकरबर्ग (82.9%)	सुंदर पिचाई (4.9%)	स्टीफन हॉकिक (7.3%)
8.	कोविड-19 की शुरुआत किस देश से हुई थी?	भारत (00%)	जापान (2.94%)	चीन (97.6%)	यूएसए (00%)
9.	भारत सरकार द्वारा कोविड-19 के दौरान कौन सा एप्लिकेशन लान्च किया गया था?	आरोग्य सेतु (92.7%)	कोविन (2.3%)	कोवा-पंजाब (5%)	जनसहायक (00%)
10.	पीएम मोदी ने 'जनता कर्फ्यू' की घोषणा कब की थी?	21 मार्च (31.7%)	22 मार्च (56.1%)	23 मार्च (7.2%)	24 मार्च (5%)

11.	वीडियो और मनोरंजन बनाने के लिए कोविड-19 के दौरान सबसे लोकप्रिय एप्लिकेशन कौन सा है?	यूटयूब (22%)	टिक टॉक (70.7%)	एमएक्स प्लेयर (2%)	एफबी लाइव (5.3%)
12.	कोविड-19 हेल्पलाइन नंबर क्या है?	1075 (63.4%)	1111 (7.3%)	1001 (19.5%)	1234 (9.8%)
13.	कोविड-19 के दौरान किस मैसेजिंग , flyd sku dk mi ;kx c<+dj 40% हो गया?	पाठ संदेश (14.6%)	जीमेल (7.3%)	व्हाट्सएप (68.3%)	इंस्टा संदेश (9.8%)
14.	सक्रिय कोरोना मामलों की अधिकारिक संख्या को ट्रैक करने के लिए भारत सरकार द्वारा कौन सा एप्लिकेशन लान्च किया गया था?	आरोग्य सेतु (82.9%)	मॉय गोर्वमेंट ऐप (9.8%)	प्रेक्टो ऐप (5.3%)	पीएम केयर्स (2%)
15.	केंद्र सरकार द्वारा शुरू किए गए PM CARES में दान के लिए किस UPI भुगतान गेटवे का उपयोग नहीं किया गया था?	भीम यूपीआई (14.6%)	पेटीएम (9.8%)	फोनपे (4.9%)	क्रिप्टोक्यूरेंसी (70.7%)
16.	कोविड-19 के दौरान सीखने और अध्ययन करने के लिए किस पद्धति का उपयोग किया जाता है?	आनलाइन शिक्षण (97.6%)	भ्रमण/प्रदर्शन (0%)	कक्षा शिक्षण (0%)	ग्रुप अध्ययन (2.94%)
17.	ऑनलाइन पढ़ाई प्राथमिक कक्षा के छात्रों के लिए अच्छी है या बुरी?	शुभ (9.8%)	अशुभ (34.1%)	नहीं (31.7%)	हाँ (29.3%)
18.	कोविड-19 के दौरान सोशल मीडिया की क्या भूमिका है?	नेटवर्किंग (2.5%)	जागरूकता (19.5%)	मनोरंजन (0%)	उपरोक्त सभी (78%)
19.	मध्य प्रदेश सरकार ने कोरोना के लिए कौन सा एप्लिकेशन लान्च किया?	कवच (31.7%)	एमपी कोविड रिस्पांस ऐप (39%)	सार्थक ऐप (26.8%)	जनसहायक (2.5%)
20.	कक्षा 1 से 12वीं तक स्कूली शिक्षा के लिए केंद्र सरकार द्वारा कौन सा एप्लिकेशन लान्च किया गया था?	सयिम (34.1%)	आकाश (7.3%)	दीक्षा (41.5%)	निर्भय (17.1%)
21.	D2H के माध्यम से छात्रों को पढ़ाने के लिए सरकार ने 32 टीवी चैनल मुफ्त में लान्च किए?	स्वयं प्रभा (90.2%)	स्टार प्लस (2.3%)	रंग (5.2%)	कार्टून नेटवर्क (2.3%)

निष्कर्ष एवं चर्चा :-

प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि समस्त विद्यार्थी सामाजिक संचार माध्यम के साथ साथ शैक्षिक तकनीक के बारे में भी जागरूक है। वह कोविड-19 के कारण लगे हुए लॉकडाउन की अवधि के दौरान भी सामाजिक संचार माध्यमों के प्रति सक्रिय रहे है। उन्हें संचार माध्यम के प्रकारों का एवं उनका कैसे उपयोग किया जाए इसका पर्याप्त ज्ञान है। विद्यार्थी वैश्विक महामारी की अवधि के दौरान भी जागरूक और सावधान थे यानी उन्होंने केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जो दिशा निर्देश प्रदान किए गए हैं उनको पालन किया गया। विद्यार्थी केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संचालित की गई योजनाओं से अवगत होते हुए अपना और अपने परिवार को सुरक्षित रखा।

सन्दर्भ :-

1. https://www.cambridge.org/core/journals/disaster-medicine-and-public-health- preparedness/article/important-role-of-social-media-during-the-covid19-epidemic/CF0B3DC60B5786AF65464F97253C6BA5
2. https://cio.eletsonline.com/article/india-inc-the-role-of-social-media-during-covid/66114/
3. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC7557800/
4. https://www.ijam-web.org/article.asp?issn=2455- 5568;year=2020;volume=6;issue=2;spage=70;epage=75;aulast=Sahni
5. https://covid19.researcher.life/article/role-of-social-media-in-covid-19-pandemic/abd60bf3- 9ea9-49e4-828a-e0650844cd44
6. https://www.course5i.com/blogs/impact-of-covid-19-on-media-and-entertainment-in-india/
7. https://www.researchgate.net/publication/342787067_Impact_of_COVID- 19_and_Pandemic_Lockdown_in_India_Role_of_Media_during_Lockdown
8. https://ijmsweb.com/role-of-mass-media-and-its-impact-on-general-public-during-coronavirus- disease-2019-pandemic-in-north-india-an-online-assessment.
9. https://www.researchgate.net/publication/342409391_Role_of_Social_Media_in_the_ coverage_of_Coronavirus_ COVID_19_pandemic
10. https://www.thelancet.com/journals/landig/article/PIIS2589-7500(20)30315-0/fulltext
11. https://www.questionpro.com/blog/surveys.
12. https://courses.lumenlearning.com/suny-hccc-research-methods/chapter/chapter-9-survey- research.

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 59-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान में शिक्षा का परिवर्तित परिदृश्य : भौतिक व व्यक्ति केंद्रित

–डा0 श्रीमती सविता सिंह
एसोसियेट प्रोफेसर शिक्षक शिक्षा विभाग, ए0के0पी0जी0 कॉलेज, शिकोहाबाद जिला फिरोजाबाद।

सारांश :–

शिक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से ही मानव शिशु का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होकर वह समाज में उपयुक्त स्थान ग्रहण करता है, उसके चरित्र का निर्माण होता है, उसका सामाजिकीकरण होता है और वह 'मनुष्य' संज्ञा पाने के योग्य बनता है। सहस्रों वर्षो से उस समाज तथा राष्ट्र द्वारा अर्जित अनुभवजन्य ज्ञान, रीति–रिवाज–परम्पराएँ तथा सांस्कृतिक धरोहर आदि को शिक्षा के माध्यम से ही अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है।

भूमिका :–

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को, ज्ञान प्राप्ति को जीवन की श्रेष्ठतम, पवित्रतम प्रक्रिया माना गया है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में उद्‌घोष करते हैं, 'नहि ज्ञानेन सृशं पवित्रमिह विद्यते'। महाभारत में कहा गया, 'नास्ति विद्यासमं चक्षु:' अर्थात् विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं है। शिक्षा का सम्बन्ध इस प्रकार सीधे जीवन से जुड़ता है। जीवन का लक्ष्य और शिक्षा का लक्ष्य एक ही है, शिक्षा व जीवन एकरस हैं। जीवन की पूर्णता के प्रकटीकरण के लिए शिक्षा ही साधन है। स्वामी विवेकानन्द के प्रसिद्ध कथन, ''अन्तर्निहित पूर्णता का प्रकटीकरण ही शिक्षा है'' का भी यही निहितार्थ है। इसीलिए शिक्षा का दर्शन भी राष्ट्र के जीवनदर्शन पर ही आधारित होना चाहिए। देश की संस्कृति ही शिक्षा का एकमेव आधार होनी चाहिए। भारत की संस्कृति और जीवन दर्शन का आधार अध्यात्म है। यही भारत का अन्यतम वैशिष्ट्य है। अध्यात्म का सम्बन्ध आत्मा से है, जोकि मानव में परमचैतन्य सत्ता की उपस्थिति का अन्तरतम मर्म है। भारतीय दर्शन में यह आत्मा ही समस्त ज्ञान का आधार है। ज्ञान, समस्त अन्तर्निहित चेतना का प्रकटीकरण, संवर्धन और विकास है, और शिक्षा मुख्यत: इसी ज्ञानार्जन की साधना है। शिक्षा की पद्धति संस्कृति आधारित होगी तभी पंडित दीनदयाल जी के शब्दों में ''ज्ञान, चरित्र एवं संस्कृति की त्रिवेणी के संगम से जीवन को तीर्थराज प्रयाग'' बनायेगी।

शिक्षा की अवधारणा :–

'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति 'शिक्ष' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'सीखना'। सीखने की प्रक्रिया कर्मेन्द्रियों–ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभूतियों के आधार पर होती है, जिनको नियंत्रण करने का कार्य 'मन' का है। ज्ञानार्जन के लिए मन का शान्त, एकाग्र और अनासक्त होना आवश्यक है परन्तु जिस प्रकार शिक्षा और समाज का जैसा आपाधापी का वातावरण है, उसमें इस शान्तता, एकाग्रता और अनासक्ति के लिए भी स्थान नहीं है।

शिक्षा का संकुचित रूप :–

वर्तमान में शिक्षा सम्बन्धी शिक्षकों और अभिभाविकों का दृष्टिकोण संकुचित होता जा रहा है जिसमें सारा जोर

केवल बालकों के बौद्धिक विकास को लक्ष्यित है। परन्तु यहाँ भी दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण है। जहाँ ज्ञान का निकष, अवलोकन, संश्लेषण-विश्लेषण, तुलना, तर्कक्षमता और निष्कर्ष निकालने का विवेक अर्थात् निर्णय क्षमता के विकास को माना जाना चाहिए था, हमारी शिक्षा पद्धति ने केवल सूचना-संग्रह तथा स्मृति-संधारण क्षमता को ही बौद्धिक विकास का पर्याय मान लिया। निर्णयात्मक विवेक और तर्कसंगत अभिव्यक्ति, यह दोनों तत्व पिछड़ गए। ''मैं पढ़ा रहा हूँ सुन लो, पुस्तक में लिखा है पढ़ लो, जो लिखाया है याद कर लो और परीक्षा की उत्तरपुस्तिका में लिख दो, 'पास' या 'फेल' होना इसी पर निर्भर है। तथ्यों का अवलोकन करना, स्वयं करके सीखना, सीखे हुए को जीवन में प्रयोग करने की क्षमता अर्थात् बोध और कौशल्य-विकास, इन दोनों व्यावहारिक पक्षों को वर्तमान शिक्षा पद्धति में उपेक्षित कर दिया गया है। मानविकी के विषयों को छोड़ भी दें तो भी विज्ञान की तकनीक से भिन्न शाखाओं अर्थात् Pure sciences में प्रवेश लेने को विद्यार्थी तैयार नहीं क्योंकि उनसे जुड़े कैरियर विकल्पों में अच्छे पैकेज नहीं।

शिक्षा में धर्म :–

मनोविज्ञान के अनुसार सभी प्राणियों में मूल प्रवृत्तियाँ समान होती हैं। अपने यहाँ इसीलिए 'आहार निद्रा भय मैथुनं च' की मूल प्रवृत्तियों से मनुष्य को पृथक चिन्हित करने के लिए अन्तर का आधार धर्म को माना गया। 'धार्मेणहीनाः पशुभिः समानाः'। धर्म का व्यावहारिक स्वरूप संस्कृति में अभिहित होता है। संस्कारों के विकास के माध्यम से प्रवृत्तियों का उन्नयन ही संस्कृति है, इसीलिए शिक्षा को इसका साधन मानते हुए धर्माधारित तथा संस्कृतिपरक शिक्षा की बात कही गई है। आज UNESCO भी भारत के इस मूल विचार का अनुगमन शिक्षा के स्वरूप को Rooted in culture, committed to progress कहकर करता है ।

उद्देश्य :–

वर्तमान में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था सम्पूर्ण विकास के उद्देश्य को पूर्ण नहीं करती है इसलिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो हमारे मन में ज्ञान के लिए अनुराग और उसकी भूख पैदा करे। इसलिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो हमारे मन में ज्ञान के लिए अनुराग और उसकी भूख पैदा करे। यदि वह असंख्य प्रश्नों को जन्म दे तो अनेक प्रश्नों के उत्तर भी तैयार करे।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मनुष्य को मानव बनाने की प्रक्रिया से सम्बंधित है जिससे वह एक सम्पूर्ण मानव की अवधारणा को सार्थक कर सके।

स्व में सम्पूर्णता :–

मनुष्य की भी सामान्य प्रवृत्ति अन्य प्राणियों की भाँति ही स्वार्थ की तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित होती है। परन्तु अपनी इस प्राथमिक प्रवृत्ति से विकास करके मानव अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से आगे बढ़कर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है। व्यष्टि से समष्टि व सृष्टि से होते हुए उसकी परमेष्टि तक की यह विकास यात्र शिक्षा के माध्यम से ही पूर्ण होती है। 'स्व' का विकास क्यों किया जाये? इस प्रश्न का उत्तर हमारे ऋषि-मनीषियों ने खोजा कि सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में एक ही परमचैतन्य तत्व की उपस्थिति है। उस अविनाशी तत्व की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। उस परमसत्ता का जो अंश मुझमें है, वही सभी मनुष्यों-पशुओं-पक्षियों-वृक्ष-वनस्पति आदि में भी है। इसी से 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' के भाव का जागरण होता है। इसी से मनुष्य में आध्यात्मिकता और नैतिकता के तत्व का विकास होता है, जोकि उसकी पूर्णता का प्रतीक है, 'स्व' से 'सर्व' तक की विकास यात्रा है। विकास का यह स्तर प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य है, भारत का शिक्षा दर्शन है।

प्रचलित शिक्षा व्यवस्था :–

भारत में प्रचलित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, उपर्युक्त वर्णित आधारभूत बातों में से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं

करती। वास्तव में, 'भारतीय शिक्षा व्यवस्था' में न भारतीयता है, न शिक्षा के तत्व और न ही व्यवस्था या पद्धति। यह आश्चर्यमिश्रित खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के बाद भी एक स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए उस राष्ट्र के मूलभूत दर्शन पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। न तो यह शिक्षा प्रणाली जीवन आदर्शों के विकास की बात करती है, न ही उसकी दृष्टि बालक के सर्वांगीण विकास के माध्यम से उसे एक राष्ट्रभक्त, समाजोपयोगी, जीवनदृष्टि सम्पन्न तथा शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षमताओं से सम्पन्न अगली पीढ़ी का जिम्मेदार नागरिक बनाने की ओर है। यह प्रणाली धर्म-संस्कृति तथा जीवन-मूल्यों के विकास की भी कोई व्यवस्था नहीं देती, जबकि भारत के आध्यात्मिक वातावरण के उत्थान के लिए शिक्षा के मूलभूत लक्ष्य में जीवन का दर्शन अंगीभूत होना चाहिए। हीन दौड़ में शामिल करने का मार्ग दिखाती है। कैरियर के नाम पर बड़े पैकेज वाली नौकरियों की तलाश ही शिक्षा का एकमेव उद्देश्य रह गया है। विष्णु पुराण में कहा गया- 'सा विद्या या विमुक्तये'। विमुक्ति का मार्ग दिखाने वाली विद्या की आज किसी को आवश्यकता नहीं रह गई है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन। जीवन विकास का मार्ग रूपी ज्ञान जीवन का लक्ष्य ज्ञान। ज्ञान के प्रकाश में ही जीवन के विविध पक्षों का विकास आदि बातें अब कालबाह्य जैसी मानी जाने लगी हैं। सत्यान्वेषण ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य है, परन्तु इस 'सत्यम्' के साथ ही 'शिवम्' और 'सुन्दरम्' भी संस्कृति का अंग है। अतः संस्कृति को सम्पूर्ण जीवन के परिष्कार, ज्ञान के उपार्जन तथा सत्य के अन्वेषण का सूत्र मानते हुए, उसके साधन के रूप में शिक्षा को नौकरी प्राप्ति के योग्य बनाने वाली 'पढ़ाई' तक सीमित न मानकर जीवन निर्माण के व्यापक स्वरूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

व्यवहार में परिवर्तन :-

व्यवहार में परिवर्तन (Modification of Behaviour) को शिक्षाशास्त्री शिक्षा का उद्देश्य कहते हैं। इसे चारित्रिक विकास, जीवनदृष्टि या जीवन-मूल्यों का विकास भी कहा जा सकता है। मन-वचन-कर्म की एकरूपता ही चरित्र है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यवहारकुशलता को वाक्चातुर्य के साथ ही जोड़ती है, एटीकेट्स या शिष्टाचार को सभ्यता की निशानी माना जाने लगा है। ऊपर से पोलिश्ड परन्तु अन्दर से विद्वेष पालने वालों को जेन्टलमैन माना जाता है। भारत की शिक्षा में भावना (मन), ज्ञान (वचन) तथा क्रिया (कर्म) की समानता से युक्त व्यक्ति को सुसंस्कृत माना गया। प्रियं च नोनृतं ब्रूयात् यह जीवन व्यवहार भारत की संस्कृति है।

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं' गीता का संदेश है। श्रद्धा के बिना ज्ञान नहीं मिलता। माता-पिता-गुरुजन से लेकर मातृभूमि, ज्ञानी-विज्ञानी-शौर्यवान् पूर्वज, सांस्कृतिक आस्था के केन्द्रों तक, इन सबके प्रति श्रद्धाभाव आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में इस पक्ष की तो नितान्त उपेक्षा है। मण्डर्न होने का अर्थ ही इतना है कि पुरानी सारी बातों को अच्छे-बुरे का, उपयोगिता का विचार किए बिना पुरातनपंथी-दकियानूसी-कालबाह्य मानकर नकार दिया जाये। जीवन दृष्टि के विकास, समाज की एकता व समरसता तथा राष्ट्र की अखण्डता भी श्रद्धा भाव पर ही आधारित है।

पाश्चात्य का अनुसरण :-

वर्तमान शिक्षा पद्धति ने एक और भावना को भड़काने का काम किया है। 'मैं', यानी व्यक्ति सृष्टि के केन्द्र में है, उसका जीवन, उसकी सुख-सुविधा, उसकी निजता, उसकी रुचि-अरुचि यह प्रधान है और उस पर आने वाले किसी भी व्यवधान को स्वीकार न करना। यह पाश्चात्य दृष्टिकोण ही प्रमुख विचार बन गया है। परिणामस्वरूप, अन्य व्यक्ति, परिवार, समाज, जीव-जन्तु, वृक्ष-वनस्पति, प्रणति, पंचमहाभूत युद्र समस्त सृष्टि गौण है, और इस 'व्यक्ति' के उपयोग के लिए है। यह उपयोग दोहन और फिर शोषण तक आगे जाता है। पर्यावरण का संरक्षण, पुनर्नवीकरण, सबके साथ बाँटना अथवा उससे जुड़े अन्य विचार। स्वच्छता, सुव्यवस्था, अनुशासन, देशभक्ति, सामाजिक दायित्वबोध उपेक्षित हो गए हैं। सृष्टि के समस्त संसाधनों के साथ-साथ अन्य 'व्यक्ति' का भी उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया जाये यह विचार इस सीमा तक बढ़ गया है कि धीरे-धीरे 'मानव' स्वयं ही 'संसाधन' बन गया है।

भौतिकता और व्यक्ति केन्द्रितता :-

भौतिकता और व्यक्ति केन्द्रितता, इन दोनों के कारण व्यक्ति, समाज, प्रकृति और सम्पूर्ण सृष्टि ही आज संकटग्रस्त हैं। आज देश को ऐसी ही भारत-केन्द्रित, चरित्र-निर्मात्री, मानव-निर्मात्री तथा राष्ट्र के जीवन दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जो अगली पीढ़ी को स्वावलम्बी, चरित्रवान, राष्ट्रभक्त जिम्मेदार नागरिकों के रूप में विकसित करे, उन्हें आत्मकेन्द्रित के स्थान पर समाजोपयोगी-राष्ट्रोपयोगी बनाये। विश्वास करें, अच्छे दिन आ रहे हैं परन्तु अच्छे दिन केवल सत्ता परिवर्तन से नहीं समाज जागरण से आयेंगे, जिसके लिए शिक्षा ही एकमात्र उपकरण है।

निष्कर्ष :-

'सत्यम, शिवम और सुंदरम' अनंत मूल्य समझे जाते हैं। ये सबसे अधिक मूल्यवान वस्तुएँ हैं जो स्वतः अपना अस्तित्व रखती है और हमारे आदर एवं निष्ठा की पात्र हैं। हम केवल धर्म और नैतिकता के माध्यम से ही इन मूल्यों को खोजकर और प्राप्त करके अपने जीवन को पूर्ण बना सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. दुबे, ए.पीरू लागु नैतिकता।
2. जायसवाल, सीता राम, समायोजन विज्ञानं 1999, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कपिल, डॉक्टर एच.के. अनुसन्धान विधियाँ 1989 हर प्रकाश भार्गव, आगरा।
4. पाण्डेय, राम शकल, मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य 1982 हर प्रकाश भार्गव, आगरा।
5. सिन्हा, जे.एन. एक मैन्युअल ऑफ एथिक्स।
6. सरीन, डॉक्टर शशीकला शैक्षिक अनुसन्धान विधियाँ 1998 विनोद पुस्तक मदिंर, आगरा।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 63-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत के आर्थिक विकास में बाधाऐं : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

–अंजली कुमारी

शोध छात्र (पी0एच्0डी), समाजशास्त्र विभाग, पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ, बिहार।

सारांश :–

समय के बदलाव के साथ आर्थिक व्यवस्था में भी कफी बदलाव आए हैं। औद्योगीकरण को आर्थिक व्यवस्था में हुए बदलाव में से एक प्रमुख कारण माना जा सकता है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज में काफी परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन ने अनेक प्रकार की समस्याऐं भी उत्पन्न की। जिससे आर्थिक विकास में बाधाऐं आए। इन बाधाऐं को दूर करन के लिए हमें पहले आर्थिक व्यवस्था के संरचनागत ढाँचा जिसके तहत वस्तुओं के उत्पादन, प्रयोग वितरण आदि को समझना तथा इन वस्तुओं के उत्पादन में कौन–कौन से तकनीक का प्रयोग किया जाए जिससे वर्तमान तथा भविष्य के लिए लाभदायक हो। सरकार ने भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के ''आत्मनिर्भर भारत अभियान'', मेक इन इंडिया का शुभारंभ किया। हम इन अभियानों को बढ़ावा देकर देश की अर्थव्यवस्था के बाधा को दूर कर इसमें सुधार ला सकते हैं।

शब्द कुंजी– आर्थिक विकास, आर्थिक विकास में बाधाऐं भारत की अर्थव्यवस्था।

प्रस्तावना :–

मनुष्य को जीवित रहने के लिए उसे कुछ मूलभूत आवश्यकता की जरूरत होती है। इन आवश्यकताओं की जरूरत होती है। इन आवश्यकताओं में हम कह सकते हैं। भोजन, वस्त्र तथा उसका निवास। इसको प्राप्त किये बिना मनुष्य का जीवित रह पाना कठिन है। और उसका सामाजिक जीवन भी संभव नहीं है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के दौरान मनुष्य के द्वारा किया गया प्रयास अर्थव्यवस्था को जन्म देती है।

इस अर्थव्यवस्था के विकास के बाद इसके कई चरणों में विकास होता रहा पहले चरण, में मनुष्य भोजन एकत्रित करने तथा शिकार करने में लगा रहता था भोजन एकत्रित में वह फल, कन्दमूल से अपना जीवन यापन करता था उस अवस्था में लोग सम्पत्ति जमा करने या व्यापार में नहीं लगे रहते थे उसके बाद दूसरा चरण, जिसे चरागाह अवस्था कहते हैं। इस समय मनुष्य पशु का शिकार करने की बजाय उसे पालने लगे उसे अपना सम्पत्ति समझने लगे। चरागाह भूमि को निजी सम्पत्ति समझते तथा भूमि की सार्वजनिक सम्पत्ति समझने लगे। तीसरा चरण इस अवस्था में मनुष्य कृषि कार्य करने लगे। भूमि तथा कृषि उपकरणों को अपना सम्पत्ति समझने लगे। इस अवस्था में जमींदारी प्रथा का प्रारंभ हुआ। तथा इसके साथ हीं मुद्रा और बाजारों की स्थापना हुई। चौथे चरण जिसे अभी आधुनिक युग को कहा जा सकता है। इस युग में नई आविष्कारों एवं मशीनों के उपयोग से उद्योगों की स्थापना में अपना सहयोग दिया। उद्योगों में अत्यधिक मात्र में उत्पादन बढ़ा। नई संचार प्रक्रिया ने व्यापार को और भी सरल बना दिया। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिला। साथ ही साथ इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आए। जैसे– श्रम समस्याओं ने जन्म लिया, वितरण एवं विनिमय की नई व्यवस्था उत्पन्न हुई, मुद्रा का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक ओद्यौगिक व्यवस्था ने अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दिया। जिससे भारत के आर्थिक विकास में अनेक बाधाऐं उत्पन्न हुए।

अर्थव्यवस्था :–

अगर हम अर्थव्यवस्था को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखते है तो हमें सम्पत्ति एवं पूँजी की अवधारणा को समझना होगा। अगर हमें सम्पत्ति की बात करे तो एक प्रमुख समाजशास्त्री पियरे जोसेफ पुरूदाँ ने कहा ''सम्पत्ति'' चोरी से कमाई जाती है। यह ईमानदारी, परिश्रम और न्याय से कभी कमाया ही नही जा सकता।'' इसी तरह अगर पूँजी को समझे तो पूँजी वह धन जिससे लाभ प्राप्त किया जा सके। जिसका संचय करना आवश्यक हो। सामान्यतः उद्योगपति से अपने व्यवसाय में लगाता है। इसके दो प्रकार होते हैं एक को स्थिर पूँजी कह सकते है जिसमें सम्पत्तियों की प्राप्त करने के लिए जो धनराशि लगायी जाती है। तथा दूसरा को कार्यशील पूँजी कह सकते हैं। जिसे व्यवसाय के दैनिक कार्यों के लिए इस्तेमाल होती है।

इसके अलावा Share को भी पूँजी का एक निश्चित भाग मान सकते हैं। इसमें भी अधिकृत अंश पूंजी, निर्गमित अंशपूँजी प्रार्थित अंशपूँजी, याचित अंशपूँजी, प्रदत्त अंशपूँजी, संचित अंशपूँजी को देखा जाता है।

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ :–

''रोस्टो'' ने आर्थिक विकास की पाँच अवस्था बताई है जिसे ग्राफ के द्वारा समझा जा सकता है।

रेखाचित्र–1 आर्थिक विकास के उत्कर्ष की अवस्थाएँ

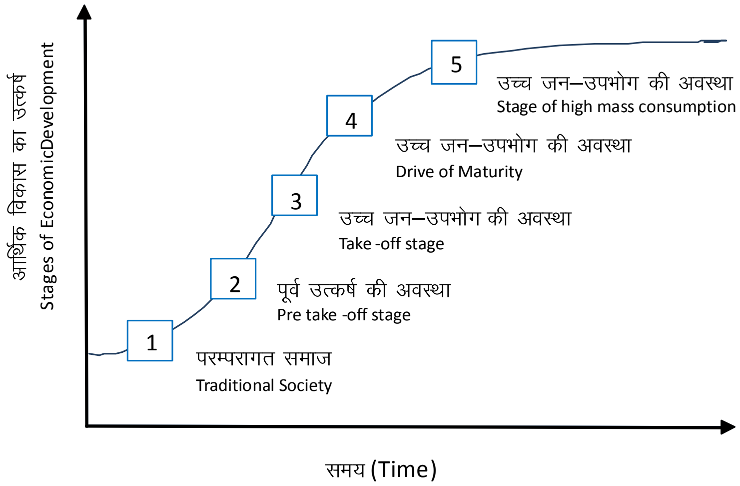

आर्थिक विकास के सामाजिक परिणाम :–

सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से देखे तो समाज पहले काफी अविकसित था। गरीबी की स्थिति समाज में बनी रहती थी। समाज के लोग प्रकृति पर निर्भर रहते थे। तथा कई सारे कठिनाई को झेलते थे। धीरे-धीरे समय में परिवर्तन होता गया। समाज की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार होता गया। लोगों की प्रगति होती गई। समाज के लोग भोजन, वस्त्र का उत्पादन तथा घर का निर्माण करने लगे। लेकिन समाज की यह सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति समाज के सभी लोगों को समान रूप से नही मिल पाया। समाज मे दो वर्गों का उदय हुआ। एक को अमीर तथा दूसरा गरीब कह सकते हैं। जो लोग अमीर थे वे आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शक्तिशाली और प्रतिष्ठित होते तथा दूसरा गरीब लोग आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि उतने शक्तिशाली और प्रतिष्ठित नहीं होते जितने की पहले वर्ग के लोग।

जिसका फलतः यह परिणाम हुआ की समाज में निर्धनता बढ़ती गई। अमीर लोग और अमीर होते गए। और गरीब लोग और गरीब होते गए।

भारत के आर्थिक विकास में बाधाएँ :–

भारत के आर्थिक विकास को देखे तो इसके विकास में बाधा देने वाले कई कारक उभरकर सामने आते हैं। भारत गाँवों का देश है। देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है। इनका मुख्य कार्य कृषि है। जनसंख्या

की भारी निर्भरता कृषि पर निर्भर है। जो भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन को बताता है। यह कृषि व्यवस्था जनसंख्या के माँगो और पूर्ति को पूरा करने में लगा रहा है। इस कृषि व्यवस्था से देश के विकास में मात्र G.D.P का 17 प्रतिशत योगदान दे पाता है। इसी तरह अगर हम भारत की जनसंख्या की और देखें तो यह विश्व में दूसरे स्थान पर है। यहाँ पर उच्च स्तर पर जन्म दर और मृत्यु दर का गिरता स्तर है। इस जनसंख्या की बुनियादि आवश्यकताओं को धयान में रखते हुए सरकार इसके भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा पर आर्थिक बोझ बढ़ता जा रहा है। अगर हम तकनीक व्यवस्था की ओर देखते हैं तो हर दिन नई-नई तकनीकों का आविष्कार किया जाता रहा है। लेकिन इस तकनीकी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए पूँजी, शिक्षित तथा कुशल कर्मचारियों की जरूरत होती है। लेकिन हमारी देश की इतनी बड़ी जनसंख्या होने के बावजूद मानव कौशलों की कमी और अकुशल श्रमशक्ति की अनुपस्थिति आर्थिक विकास में बड़ी बाधाऐं है।

भारत की आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष रूप में इतनी बाधाऐं होने के बावजूद अगर हम अप्रत्यक्ष रूप में कारक के रूप में सामने आते हैं। संवैधानिक रूप से हम जाति प्रथा के सिद्धांत को समाप्त कर देने के बावजूद कुछ जातियों द्वारा आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कार्यो पर एकाधिकार कर लिया गया है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में समाजिक अशांति उत्पन्न होती है। कहीं न कहीं ये अशांति हमारे राष्ट्र की स्वस्थ आर्थिक विकास पर बाधाऐं डालती है। अगर अभी की वर्त्तमान समय की बात करे तो कोविड-19 महामारी की वजह से विश्व की अर्थव्यवस्था संकट का सामना कर रहा है। कहा जाता है कि 1930 के महामंदी के बाद कोविड-19 की वजह से ऐसी महामंदी आई है। इस महामारी के वजह से हमारे देश में स्वास्थ्य तथा आर्थिक दोनो स्थितियों का बड़े चुनौति ढ़ंग से सामना करना पड़ा हे। कोविड-19 को भारत की अर्थव्यवस्था में सबसे बड़ा बाधा के रूप में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष :-

भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए सरकार को सबसे पहले नीतियों में जरूरत के अनुसार बदलाव तथा नई नीतियाँ बनाने चाहिए। इसके साथ ही गरीबी तथा बेरोजगारी को दूर करने के लिए अस्थायी रोजगार कार्यक्रमों के द्वारा लोगों को जागरूक करना होगा। आर्थिक विकास के लिए पूँजी तथा श्रम दोनो की आवश्यकता होती है। सरकार को इन दोनों क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा। साथ ही भारत कृषि प्रधान देश है। इसके लिए सरकार को कृषि क्षेत्र में नीतिगत विशेष ध्यान की आवश्यकता है जिससे इस क्षेत्र में रोजगार तथा आय में वृद्धि हो सकेगा। इसी तरह सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योग में ध्यान देने की आवश्यकता है। संभवत: इन सब प्रयासों के द्वारा देश की आर्थिक विकास की बाधाओं को दूर कर विकास किया जा सकता है।

संदर्भ :-

1. जे.पी.सिंह (2013), तृतीय संस्करण (PHI) : समाजशास्त्र अवधारणा एवं सिद्धांत, पृष्ठ सं0- 465
2. योजना, नवम्बर 2020
3. प्रो0 गुप्ता, डॉ0 शर्मा (2019), समाजशास्त्र : साहित्य भवन, पृ0सं0 449
4. वही, अध्याय - 35/454
5. जे.पी.सिंह (2013), तृतीय संस्करण (PHI) : समाजशास्त्र अवधारणा एवं सिद्धांत, पृष्ठ सं0- 466
6. वही अध्याय - 21/478
7. वही, अध्याय - 21/479

Email- anjali.ktr1@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 66-68

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान सन्दर्भ में महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की महत्ता

–डा0 श्रीमती सविता सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर शिक्षक शिक्षा विभाग, ए0के0पी0जी0 कॉलेज, शिकोहाबाद, जिला फिरोजाबाद।

सारांश :–

भारतीय विकासवादी समाज में गॉधीवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका प्रयोग शायद ही जीवन के किसी क्षेत्र से अछूता हो। उनके विचारो की प्रांसगिकता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति बराक ओबामा भारत दौरे के दौरान कहा यदि गॉधी जी नही होते तो मैं अमेरिका का राष्ट्रपति नहीं होता। महात्मा गॉधी के शैक्षिक विचार वर्तमान मे आध्यात्मिक मार्गो से जुड़कर लोगो को जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त कर रहे है।

प्रस्तावना :–

आज सम्पूर्ण विश्व आधुनिकता की दौड मे है और विश्व का प्रत्येक राष्ट्र स्वयं को इस दौड मे सबसे आगे देखना चाहता है। वर्तमान मे भू मंडलीकरण या वैश्वीकरण सबसे प्रचलित शब्द है यह एक ऐसी स्थिति को उजागर करती है जिसमें सम्पूर्ण विश्व समाज को एक परिवार के रूप में देखा जाता है इसमें लाइसेंस मुक्त आर्थिक व्यवस्था पर बल दिया जाता है। विदेशी पूंजी के मुक्त प्रभा की अनुमति, सेवा गौत्र विशेषकर बैंकिग, बीमा तथा जहाजरानी गौत्रों में विदेशी पूंजी के निवेश की छूट तथा रूपये को पूर्ण परिवर्तन प्रदान करना इत्यादि इसमें शामिल है। महात्मा गॉधी के व्यक्तित्व व विचारो का प्रभाव है कि गॉधी जी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर को 1959 मे राजस्थान के नागौर जिले मे पंचायतीराज व्यवस्था का शुभारम्भ किया गया। यह महात्मा गॉधी के शैक्षिक विचारों का प्रणाम है कि उन्होंने व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए नेतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा को व्यक्तित्व की सम्पूर्णता के रूप में स्वीकार किया है।

उद्देश्य :–

1. गांधीजी के शिक्षा दर्शन में निहित आत्मिक विकास का अध्ययन।
2. महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन में निहित शांति सद्भाव सम्बन्धि विचारों का अध्ययन करना।
3. अपने शिक्षा दर्शन दर्शन ‍ग़्रारा सर्व धर्म सम्भाव को जाग्रत करना।

महात्मा गॉधी की शिक्षा की परिकल्पना :–

अ– गॉधी जी के सैद्धान्तिक विचार –

1. 6 से 14 वर्ष तक के बालकों को नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा दी जाये।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी न कि अंग्रेजी।
3. शिक्षा शिल्प केन्द्रित होगी।
4. हस्तकला, करघा की शिक्षा दी जायेगी जैसे कृषि, कताई, बुनाई लकडी का का मछली पालन, मिट्टी का काम, चरखा आदि।

ब– शिक्षा का उद्देश्य :–

गॉधी जी के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों को निम्नक्रम में व्यक्त कर सकते हैं –

1. तात्कालिक उद्देश्य।
2. सर्वोच्च उद्देश्य
3. सास्कृतिक।
4. चारीत्रिक।
5. आयात्मिक।

स. पाठ्यक्रम निर्माण :–

गॉधी जी ने अपने द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की।

(1) हस्तकला एवं उद्योग

(2) मातृभाषा

(3) हिन्दुस्तानी

(4) व्यवहारिक गणित

(5) सामाजिक विज्ञानं

(6) सामान्य विज्ञानं

(7) संगीत

(8) चित्र कला

(9) आचरण शिक्षा

(10) स्वास्थ्य विज्ञानं

द. शिक्षण विधियाँ :–

1. करके सीखने और स्वंय के अनुभव से सीखना :–

गांधीजी शिक्षा में सबसे अधिक जोर क्रिया पैर देते थे व पुस्तकीय शिक्षा के विरुद्ध थे वो स्वंय करके सीखने को उत्तम मानते हैं।

2. नवीन शिक्षण विधि :–

गांधीजी के अनुसार बालक को सक्रिय कार्यकर्ता, निरक्षण कर्ता तथा प्रयोग कर्ता बनाया जाये।

3. सह–सम्बन्ध विधि :–

गांधीजी ने सीखने में विभिन्न विषयों मे समन्वय स्थापित करने पर बल दिया उनके अनुसार समस्त विषयों मे सम्बन्ध स्थापित करके अध्यापन करना चाहिये।

ड. शिक्षा और अनुशासन :–

गांधीजी के अनुसार अनुशासन आत्मप्रेरित होना चाहिये वो दमन विधि का विरोध करते थे और आत्म बल पर जोड़ देते थे उनके अनुसार बच्चों के सामने उच्च विचार और आदर्श रखा जाये तो व अनुकरण से खुद ही प्रेरित होंगे।

च. शिक्षा और शिक्षक शिक्षार्थी व विद्यालय :–

गांधीजी का दृष्टिकोण आदर्शवादी है उनका मानना था कि शिक्षक को बालकों से जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये और शिक्षक को सत्य, आहिंसा, न्याय, परिश्रम आदि गुडों से युक्त होना चाहिये विद्यालय के बारे मे गांधीजी का कथन है की विद्यालय प्रणति की गोद मे किसी सुरम्य स्थान पर होना चाहिये।

निष्कर्ष :–

महात्मा गांधी के शिक्षा–विचारों में निहित शिक्षा के शिद्दंथ जैसे उद्योग द्वारा शिक्षा से लोगों का एक दूसरों से आपसी मेल–जोल, समवायी शिक्षा से सामाजिक, सांस्कृतिक एवां औद्योयोगिक पर्वावरण के साथ मेल–जोल करना और शिक्षा में स्वावलम्बन से समाज उपयोगी उत्पादन कायों में सहभागी बनना आदि बाबतों से शांति एवां सदभाव और सम्पूर्ण मानव की शिक्षा निष्पन्न होती है।

सुझाव :–

1. वर्तमान सामाजिक, साांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं अन्य विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का समाधान गांधी के शिक्षा–दर्शन से निष्पन्न शांति एवं सदभाव' की शिक्षा से हो पाएगा।
2. शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर महात्मा गांधी के शिक्षा–विचारों को एक विषय के रूप में स्थान देना चाहिये।
3. सर्वांगी विकास करने हेतु महात्मा गांधी के शिक्षा–विचारों से बालकों को अवगत करना चाहिये।
4. सरकार, समाज एवं शैक्षिक संस्थाओं के द्वारा महात्मा गांधी के शिक्षा–विचारों का प्रचार–प्रसार करने का प्रयास करना चाहिये।

सन्दर्भ :–

1. अवस्थी डॉक्टर ए0पी0, भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, नवरंग आफ्सेट प्रिंटर्स, 2009–10 पेज 225
2. गुप्ता, विश्व प्रकाश (2006) महात्मा गांधी–व्यक्ति और विचार, नई दिल्ली राधा पब्लिकेशन।
3. द्विवेदी, कमला (1986) गांधी जी का शिक्षादर्शन, नई दिल्ली श्री पब्लिशिंग हाउस।
4. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, (1999), गांधीजी के शैक्षिक विचार, दिल्ली।
5. सत्यमूर्ति, (1999) महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन, दिल्ली अरुण प्रकाशन।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 69-72
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Impact of Media on Political Parties in India

-Ajay Kumar Singh
Assistant professor in Political Science, Dr. P.N. Singh Degree College, Chapra

Historically, media has simulated many crest and troughs in Indian politics: Isolation of media from politics is never demanded. Each political party remains panic stricken about the media because of their own pitfalls. That is how Anna Hazare or Arvind Kejriwal gain immense popularity. The political parties become desperate to insulate such confidential decisions from the media and the professional journalists are highly obliged to accept such challenges of breaking barrier laid out so immaculately. The job of the media person is certainly to elevate facts and to destroy the camouflaging of the ruling parties. Undoubtedly, today's media blessed with technology marvels have been holistically accomplishing their jobs.

It is also true that some political leaders deliberately leak out information to their favourite journalists. It is hearsay that money woven business world hardly mind to extend the highest level of financial aids as some specialized news could raise their unique selling points, which are ultimately transformed to tangible monitory gains.

The close association between political leaders and media has raised acrimonious debates many times in India. Many leaders have been found to use media with vested concern to salvage the interests of people. Such intermingling relationship often aids the media to unfold even highly confidential proceedings which should have been otherwise completely forbidden.

The recent reshuffle (2013) in ministerial portfolios at the Centre has elevated some burning questions regarding the alleged relationship between the press and politicians. Brushing asides controversies, whether the current reshuffle may turn around the vote bank in the coming general election, it must be noted that most of the changes in the ministry have been highlighted in several news papers and magazines a couple of days back. There had been clear evidence about transmission of the news that Rahul Gandhi would not be involved in the government or granted any portfolio. The news of some new cabinet ministers from West Bengal had been flashed in several media.

In spite of due diligence to the caliber of professional journalists, we must not decline to accept that such vivid tally is possible only when the information oozes out from top brasses or their allies. West Bengal witnessed such an instance whereby Mamata Baneerjee had forbidden the use of cell phones in a meeting, at which the Trinamul Congress took a landmark stance to quit the Government

at Centre. Mamata was more worried as her party has only paved the way for a few journalists to the prestigious slots of MP cadre. However, all such bits and pieces had come out at a later stage so that virginity of announcement of the decision of quitting could be established.[1]

Politics in India works within a framework of a federal parliamentary multi-party system. The President of India is the formal head of state and holds substantial reserve powers, while the Prime Minister of the country is the head of government enforcing executive powers. The federal legislative power is vested in both the government and the two chambers of parliament, while the judiciary is independent of both the executive and the legislature. The vibrant and free media in India is considered to be the fourth estate of democracy. Both print and electronic media have been playing the role of watchdog of democracy, while enjoying almost unlimited access to information and without major regulations imposed upon their operation.

Media and Parties : Historical Background :-

In India, internet and cable television have brought about meaningful changes to public and private spheres of life more quickly than education, industrialization or any other socio-economic factor. Electronic media had no role to play for a decade after independence. Print media and radio served as the primary means of political information and mobilization. Mass media received a boost in September 1959 as a result of the introduction of television to urban India. The government controlled national television network began as a 'modest enterprise' since viewers had access to one channel, while the bigger cities / metropolis had access to two channels. However, the goals of state regulated electronic media were restricted to educational and entertainment based programs.[2]

In 1991 the Indian television network was deregulated and cable-satellite network emerged for the first time. From its modest beginning with tow channels in 1990, the Indian audience got access to five hundred and fifteen cable-satellite channels by June 2010. Moreover, there were thirty three 24 hour news channels that would constantly engage in political and economic debates and conduct opinion/ exit polls in election years[3].

The number of satellite- radio stations grew from 6 during the 1990s to 312 by the middle of the last decade. These would include the community radio systems that became very successful in three states including Karnataka, Gujarat and Uttaranchal, serving as the key medium for engaging in grassroots activism, by operating independent of state and commercial control. The service providers for these stations were non- governmental organizations using radio for generating development and community education. More specifically community radio served as a tool for empowerment that allowed local citizens the opportunity to seek accountability for state action.[4]

The deregulation of the television network in the 1990s was accompanied by the internet revolution. From 1992 to 2010, the number of internet users grew from none to 81,000,00.[5] Today internet has emerged as a new medium for information delivery. The internet holds the promise of 'enhancing democracy and changing traditional one-way process of political communications.'[6] The

role of the internet in providing for political information becomes relevant since majority of the Indian population is relatively young. According to a recent estimate, by 2020 the average age of an Indian will be 29 years, in comparison to 37 for China and 48 for Japan[7]

In India, there have been several studies on the nature and functions of the media.[8] In fact, much of these studies have focused on the role of the Indian media in the post liberalization period. However, these studies mainly focus on the cultural impact of the media and the influence of television on rural India.

In the post 1991 period following de-regulation of the television networks, and a growing nexus between market reforms and technological advancement, interaction between media effect on political behaviour underwent some changes. Riding high on the success of what emerged as successful alliance between neoliberalism and Hindutva in 2003 the BJP led NDA coalition launched a nationwide television campaign with the slogan 'India Shining'. The NDA government spent an estimated twenty million NDA government spent an estimated twenty million dollars of the taxpayers' money were used to air the campaign in print and electronic media, in all languages.[9] The campaign was aired 9,472 times making it the second most viewed advertisement between December 2003-January 2004.[10]

In print media similar successes went achieved in terms of its popularity, as it became the and regional newspapers. The New York based advertisement agency. Grey Worldwide was the brainpower behind the 60 second media blitz, focusing on a 'fell good' propaganda that were accompanied by the economic liberalization mantra along with images of India's industrial and agricultural development, the emergent middle- power by 2020.[11] The electoral cempaign received further boost after the BJP decided to use the traditional campaign strategy of road rallies along with the Bharat Uday Yatra and India Shining campaign, launched in print and electronic media.[12]

Chaffee and Kahnihan's argument that television could be more informative source than the print media under certain circumstances seems to have some relevance for India.[13] The proliferations of cable-Satellite and radio in India over the last twenty years are an indication of the emergence of television as a useful alternative of information delivery. This growing popularity of television as a primary communication medium could also be attributed to the inaccessibility of print media to certain sections of population due to the problems of illiteracy, poverty and linguistic heterogeneity. We should further argue that Indian print media over the years have come to represent an elitist-subculture as they were set up by industrial corporations and business houses and serve as their mouth piece for small group of educated middle- class elites.

The popularity of the Cable- Satellite television indicates that India has now entered the era of electronic capitalism. The print media uses the trajectory of information delivery that oscillates between catering to the regional or national level. The mode of information delivery for the electronic media is more nuanced, since it starts out by claiming its niche at the national level, before reinforcing itself into the local and regional values[14]

We would thus argue that the role played by television in constructing the post- modernist Indian identity, had influenced political parties to succumb to the temptation of using the televised space for communicating political agenda and achieving electoral success. The India shining is a great example of how the BJP and its affiliates attempted to capture the neoliberal imagery of progress through political advertisement. The validity of our claims are once more established when we book at the political advertisement, Jai- Ho (Hail India) of the Congress Party. In March 2009 the Congress Party led government acquired the copyrights of Jai Ho for $ 200,000 to use the song as part of its political campaign for the upcoming general elections15 Thus the time has come when the media have been playing a significant role in the formation of political opinion and political parties often capitalize this opportunity.

NOTES & REFERENCES :

1. 'Alleged relationship between Politics and Media'. retrieved from http: //www. knowledgement. org/ political-world/ alleged- relationship- between- politics- politics-and media 16/3/2014.
2. Satpathi, Sayantani & Roy, Oindrila, ' The Impact of the Electronic Media on the Modern Indian Voter : A Study of the Post Liberalization Era', Global Media Journal, Indian edition / Summer Issue, June 2011, p. 3.
3. Press Trust of India, 'Facebook beats Orkut in India', Times of India, 25 August, 2010.
4. Shaw, P. 'Radio in India : Problems of public broadcasting and hope', Media Asia and Asian Communication Quarterly, 2005.
5. International Telecommunication Union, World Telecommunication / ICT Indicators Database, 2008. Retrieved from http://www.itue.int/ITU
6. Grossman, L.K. The Electronic Republic : Reshaping Democracy in the Information Age, Viking, New York, 1995, p. 149; Oblak, T. & Zeljan, K. 'Slovenian online campaigning during the 2004 European Parliament election : Between struggling self-promotion and mobilization' in Kluver, R. (ed.) The Internet and National Elections : A Comparative Study of Web Campaigning, Rutledge, New York, 2007, p. 60
7. Satpathi, Sayantani & Roy, Oindrila, op.cit, p.4
8. Fernandez, L. 'Nationalizing the global : Media Images, Cultwral Politics and the Middle Class in India', Media, Culture, 22 (5), 2000, pp 611-28, Johmson, K. 'Media and Social Change : The Modernizing Influences of Television in Rural India', Media, Culture, 23(2), 2001, pp. 147-169; Kluver, R. (ed.) op.cit; Prasad, B.K. Media and Social life in India, Amol Publications, New Delhi, 2005; Sonawalkar, P. 'India : Makings of little Cultural / Media Imperialism'. International Communication Gazette, 63 (6), 2001, pp. 505-519.
9. Zora, P. & Woreck, D. 'HRW Documents Repression in Kashmir'. Concurrent Org. 2004 Retrieved from http : // www. countrcurrents. org/ Kashmir- hrw 011206. htm
10. Chandran, B. ' India shining glows on TV ads list', Business Standard, February 24, 2004.
11. Kohli, A. 'Politics of Economic Growth in India (1980-2005) Economic and Political Weekly, 40 (13), 2006, pp. 1251-1259.
12. Wyatt, A. 'Building the temples of Post-modern India : Economic Constructions of National Identity', Contemporary South Asia. 14 (4), 2005, p 477.
13. Chaffee, S. & Kahnihan, S.F. ' Learning about Politics from the Mass Media', Political Communication 14(4), 1997, pp. 421-30.
14. Rajagopal, A. Politics after Telivision : Religious Nationalism and the Reshaping of the Indian Public, Combridge University Press, new York, 2004, p. 289.
15. Satpathi, Sayantani & Roy, Oindrila. op.cit. p. 14.

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 73-77
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जाति प्रथा का बदलता स्वरूप

–खुशबू परवीन

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

भारतीय जाति-व्यवस्था जन्म से ही व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक स्थिति प्रदान करती है जिसमें आजीवन कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातियों को एक-दूसरे से अलग करने के लिए विवाह, खान-पान, धार्मिक अनुष्ठान और सम्पर्क आदि के क्षेत्र में कुछ नियंत्रण होते हैं जिनके चलते विभिन्न जातियां एक-दूसरे के प्रति कुछ सामाजिक दूरी अनुभव करती हैं। कुछ जातियों का स्थान उच्च तथा कुछ का निम्न होता है। इसमें व्यक्तिगत हैसियत, क्षमता, योग्यता या कुशलता का कोई महत्व नहीं होता। तात्पर्य यह कि भारतीय जाति-व्यवस्था में रक्त की शुद्धता को गौण तथा 'जन्म' और 'सामाजिक दूरी' को महत्वपूर्ण आधार माना जाता है।

इसके प्रमाणस्वरूप अनेक देशी-विदेशी विद्वानों के एतद् संबंधी विचार उद्धृत किये जा सकते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री चार्ल्स कूले ने लिखा है- "When a class is somewhat strictly hereditary, we may call it a caste"[1] इस परिभाषा के अनुसार जाति-व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति को जन्म से एक विशेष जाति की सदस्यता ही प्राप्त नहीं होती, बल्कि सामाजिक स्थिति का हस्तांतरण भी पिता से पुत्र को होता है जिसमें आजीवन कोई परिवर्तन नहीं होता। प्रसिद्ध मानवशास्त्री हॉवेल ने आनुवंशिकता के साथ अंतर्विवाह के प्रतिबंध को भी जोड़ दिया है।[2] भारतीय विद्वान डॉ० डी० सी० मजूमदार एवं मदन ने जन्म के साथ जाति की अपरिवर्तनशीलता पर सर्वाधिक बल देते हुए लिखा है कि "Caste is a closed class."[3] सभी मतों का समाहार करते हुए प्रख्यात समाजशास्त्री मिशेल ने कहा है कि ''जाति-व्यवस्था धार्मिक विश्वासों पर आधारित एक ऐसे आनुवंशिक संस्तरण, अन्तर्विवाही तथा व्यावसायिक समूह की ओर संकेत करती है जिसमें अनेक कर्मकांडों तथा संस्कारों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को पूर्व निर्धारित करके इनमें किसी प्रकार के भी परिवर्तन पर नियंत्रण लगा दिया गया है।''[4] भारत की जाति-व्यवस्था को यह विचार बहुत दूर तक समझाने में समर्थ है, पर इसमें 'सामाजिक दूरी' की अपेक्षा धार्मिक विश्वासों और बाह्याचारों को अधिक महत्व दिया गया है। वास्तव में 'जाति' एक जटिल व्यवस्था है जिसमें व्यवहार के बहुत-से नियमों का समावेश है। इस विषय पर लगभग पांच हजार ग्रंथ लिखे गए हैं।[5] जो इसकी जटिलता प्रमाणित करते हैं। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि खण्डनात्मक विभाजन, ऊंच-नीच का स्तरण, व्यवसाय की आनुवंशिक प्रकृति, खान-पान और सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध, वैवाहिक प्रतिबंध, सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताएं आदि जाति-व्यवस्था की प्रकृति को स्पष्ट करने वाले तत्व हैं।

जाति-व्यवस्था केवल भारत में ही नहीं पायी जाती है। किंग्सले डेविस का कहना है कि जाति-व्यवस्था संसार के सभी भागों में विद्यमान है और वह सभी धर्मों के लगभग सभी व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं "It is present in all regions and effects nearly every person regardless of his religion."[6] यह कथन वास्तविकता से दूर नहीं है। पूर्ण सामाजिक समानता का दावा करने वाले मुसलमानों में भी 1911 की जगणणना के अनुसार 94 जातियां पायी गयी थी। इसी प्रकार यूरोप में अनेक अल्पसंख्यक समूहों को 'जाति' से संबोधित किया जाता है। यूरोप निवासी

'जिप्सी' तथा 'यहूदियों' को विशेष रूप से निम्न जाति का समझा जाता है और इसी के आधार पर उनसे सामाजिक दूरी बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। अमेरिका में प्रजाति के आधार पर नीग्रो व्यक्तियों को निम्न जाति का माना जाता है और जन्म से ही गोरे अमेरिकी बच्चों को उनसे भेद-भाव रखना सिखाया जाता है। आधुनिक विश्व इतिहास इसकी साक्षी है कि अमेरिकी समाज में श्वेत और काले रंग की असमानता को दूर करने के प्रयास में ही अब्राहम लिंकन, जॉन एफ० कैनेडी और मार्टिन लूथर किंग जैसे नेताओं की नृशंसा हत्याएं की गई। ईसाइयों में भी धर्म के आधार पर कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट-दो प्रमुख वर्ग हैं जिनमें जाति के समान ही अनेक प्रकार के प्रतिबंध, नियंत्रण और सामाजिक दूरी जैसी विशेषताएं विद्यमान हैं। इस प्रकार जाति-व्यवस्था किसी-न-किसी रूप में विश्वव्यापी है, भले ही उसे हम कहीं वर्ग-भेद, कहीं रंग-भेद या धर्म-भेद का नाम दें। इन सभी व्यवस्थाओं में कही न कहीं जन्म आधारित, आनुवंशिकता पर निर्भर और सामाजिक-सांस्कृतिक विभेद के रूप में वही जाति-व्यवस्था कायम है जो भारत में है। अंतर केवल यह माना जा सकता है कि जाति-प्रथा का जो व्यापक, रूढ़ और चरम रूप भारत में देखने को मिलता है, वह अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है। इसी कारण यहां जातिय संघर्षों का लंबा इतिहास है और बिहार में इस प्रथा या व्यवस्था का विकट रूप दिखाई पड़ता है।

भारत में जाति-व्यवस्था के वर्तमान रूप की भले ही अत्यधिक आलोचना की जाती हो, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो अतीत में जाति-व्यवस्था का निर्माण एक उपयोगी सामाजिक संस्था के रूप में किया गया था। पश्चिमी विचारकों ने जाति के वर्तमान रूप और उसके बाहरी ढांचे के आधार पर ही इसे हिन्दू-समाज की असमानता का प्रतीक कह दिया। डेविस ने तो यहां तक कहा कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्थ को यदि एक ही वाक्य में स्पष्ट करना हो तो यह कहना चाहिए कि सम्पूर्ण मानव-इतिहास में भारतीय समाज वह महत्वपूर्ण प्रयत्न है जिसने सामाजिक संबंधों की स्थापना में जन्मजात असमानता को पथ-प्रदर्शक सिद्धांत के रूप में लागू किया है। उन्हीं के शब्दों में कहें तो "It is most thorough-going attempt known in human history to introduce inequality as the guiding principle in social relationship."[7] जाति-व्यवस्था के मौलिक कार्यों और गुणों से इस कथन की असत्यता प्रमाणित हो जाती है। वास्तविकता यह है कि भारतीय जाति-प्रथा में सैद्धांतिक असमानता होते हुए भी सभी जाति के सदस्यों को विकास के समान अवसर प्राप्त हैं, जबकि पश्चिमी समाजों में समान अवसरों के आदर्श के बाद भी असमानता का नग्न रूप देखने को मिलता है। हट्टन के विश्लेषण के अनुसार व्यक्तिगत-जीवन में व्यवसाय के निर्धारण, मानसिक सुरक्षा, व्यवहारों के नियंत्रण और सामाजिक सुरक्षा जैसे लाभ तो जाति-व्यवस्था से प्राप्त होते ही हैं, सामाजिक जीवन में भी एकता और संरक्षण, संस्कृति के स्थायित्व, रक्त की शुद्धता, श्रम-विभाजन के प्रति निष्ठा आदि के साथ-साथ शैक्षणिक और मनोरंजनात्मक कार्यों से युक्त सांस्कृतिक और व्यावसायिक शिक्षा का जैसा प्रबंध किया गया था, वैसा किसी अन्य व्यवस्था में संभव नहीं था।

लेकिन इस जाति-व्यवस्था से यद्यपि अतीत में समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान भले ही मिला हा, वर्तमान समाज की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं से अनुकूलन न कर पाने और सामंजस्य नहीं बिठा पाने के कारण यह व्यवस्था एक सड़ी-गली और जीर्ण स्थिति में पहुंच गई है। डॉ० राधाकृष्णन ने ठीक ही लिखा है कि दुर्भाग्यवश वही जाति-प्रथा जिसका विकास सामाजिक संगठन की रक्षा के एक साधन के रूप में किया गया था, आज उसी समाज की प्रगति में बाधक बन रही है।[8] इससे सामाजिक क्षेत्र में जहां जन्मजात असमानता, संकीर्णता, अस्पृश्यता, सांस्कृतिक संघर्ष, स्त्रियों की निम्न स्थिति जैसे विकार आ गए हैं, वहीं आर्थिक क्षेत्र में कार्यकुशलता के अभाव में उत्पादन में कमी आ गई है, एक व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय में जाने की प्रवृत्ति क्षीण होने से व्यावसायिक गतिशीलता में भी बाधा उत्पन्न हो गई है जिससे एक विशाल अनुत्पादक वर्ग का निर्माण हो गया है जो शोषण और अपराध वृत्ति में लग गया है। जाति भावना से ग्रसित व्यक्ति संकीर्णता और गतानुगतिकता का शिकार

हो गया है तथा वैश्विक विकास की होड़ में इस व्यवस्था से ग्रस्त समाज पीछे पड़ता जा रहा है। सामाजिक-सांस्कृतिक सौहार्द्र में कमी आ गई है तथा प्रथाओं की मूल कल्याणकारी भावना का सर्वथा लोप होता जा रहा है। सहिष्णुता, उदारता, बंधुत्व, परोपकार और समष्टिभाव जैसे मानवीय गुण दुर्लभ हो गए हैं और नई पीढ़ी का एक बड़ा वर्ग जहां स्वयं को इस व्यवस्था की कैद में छटपटाता हुआ भी अनुभव कर रहा है वहीं एक दूसरा वर्ग इस प्रथा को जड़ता और तर्कहीनतापूर्वक पकड़े रहने को आतुर दिखाई दे रहा है जिससे उससे उसके कई स्वार्थों की सिद्धि हो रही है।

तात्पर्य यह है कि जाति-व्यवस्था आज से दो हजार वर्ष पूर्व चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण व्यवस्था क्यों न रही हो, वर्तमान के प्रजातांत्रिक युग और ढांचे में यह इतनी अनुपयुक्त और विकास-विरोधी हो गई है कि इससे सम्पूर्ण सामाजिक संगइन और राजनीतिक वातावरण विषाक्त बन गया हैं समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक चेतना प्रजातंत्र के प्रमुख आधार स्तंभ हैं, जबकि जाति-व्यवस्था ने इन तीनों ही आदर्शों की अवहेलना करके भाग्य के अधीन जीवित रहने वाले एक प्रायः निष्क्रिय समाज का निर्माण किया हैं यह व्यवस्था जन्म से ही व्यक्ति को असमान सामाजिक स्थिति प्रदान करती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न जातियों के बीच सहृदयता और भ्रातृत्व का विकास अत्यंत कठिन है। इस विभाजन के कारण कुछ जाति-समूहों की स्थिति इतनी गिर गयी कि उनमें सामाजिक जागरूकता विकसित करना असंभव जैसा हो गया है। सभी जातियां एक-दूसरे से इतनी दूर हो गई कि विकास-योजनाओं में मिल-जुलकर काम करना उनके लिए असंभव हो गया है, जबकि प्रजातांत्र में सभी जनता के सहयोग की आवश्यकता होती है। समुचित शिक्षा के प्रसार से जातिवाद का यह प्रभाव कुछ कम हो सकता था, औद्योगीकरण आदि से इसका कुप्रभाव कुछ कम हो सकता था, लेकिन इन क्षेत्रें में सरकारी प्रयास आधे-अधूरे ही सिद्ध हुए हैं। देखा तो यह जा रहा है कि प्रच्छन्न रूप से सत्तालोलुप राजनीतिक दल जातिवाद को वोट-बैंक के रूप में इस्तेमाल करने के उद्देश्य से इस व्यवस्था को पोषण और प्रोत्साहन ही प्रदान कर रही हैं। इससे लोकतंत्र के विकास में गंभीर अवरोध उत्पन्न हो गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो अतीत की सभी संस्थाओं के समान जाति-व्यवस्था में भी प्रत्येक युग में कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। लेकिन वर्तमान युग में जाति-व्यवस्था की संरचना तथा प्रतिबंधों में होने वाले परिवर्तन कहीं अधिक व्यापक और स्पष्ट हैं। इन परिवर्तनों का आरंभ मुख्य रूप से उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ, जब राजा राममोहन राय और कुछ अन्य प्रगतिशील व्यक्तियों ने जाति-व्यवस्था के विरोध में आवाज उठाना आरंभ किया। भारत में स्वतंत्र होने के बाद से जाति-प्रथा तथा इससे संबंधित प्रतिबंधों में इतना परिवर्तन हो गया है कि जाति अब प्रायः एक विघटित संस्था प्रतीत होती है। ब्राह्मण जाति की शक्ति में ह्रास हुआ है। शिक्षा का प्रसार होने से रूढ़िवादी सिद्धांतों का प्रभाव कम हो रहा है। धर्माचार का परंपरागत पक्ष दुर्बल हुआ है। आज जन्म के स्थान पर व्यक्ति के परिश्रम और योग्यता को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। तथाकथित अछूतों को आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में अन्य व्यक्तियों के समान ही अधिकार दिये गए हैं। संविधान के अनुच्छेद-17 के अनुसार अछूतों की सभी निर्योग्यताएं समाप्त करके उन्हें समाज का महत्वपूर्ण अंग माना लिया गया है।

इसी प्रकार व्यवसाय के क्षेत्र में इतनी गतिशीलता आ गई है कि व्यावहारिक रूप से आज प्रत्येक जाति का सदस्य अपनी रूचि के अनुसार कोई भी व्यवसाय कर सकता है। शूद्र समाज के लोग धार्मिक पुस्तकों की जिल्दसाजी करते हैं, उच्च जाति के बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं, जबकि ब्राह्मण जाति के लोग स्वास्थ्य और सफाई विभाग में कार्य करते हैं, जूते की दूकान का संचालन करते हैं तथा कपड़ा धोने की लौंड्रियां चलाते हैं। जाति-प्रथा के स्थायित्व का एक महत्वपूर्ण कारण विवाह और खानपान के क्षेत्र में प्रत्येक सदस्य का अपने जाति-समूह में ही सीमित रहना था, लेकिन वर्तमान समय में अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम-विवाहों की संस्था विकसित हो रही है तथा सभी जाति के लोग सामूहिक भोजन के आयोजनों में होटल, कैन्टीन आदि जगहों पर एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। शिक्षा और सामाजिक जागरूकता के कारण जन्म को सामाजिक स्थिति के निर्धारण का एकमात्र आधार नहीं माना जाता।

व्यक्तित्व, योग्यता और कुशलता का महत्व अब अधिक हो गया है। आज अधिकांश व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि अतीत में जाति-व्यवस्था चाहे जितनी उपयोगी रही हो, लेकिन अब वह केवल एक रूढ़ि है, उसकी विशेष उपयोगिता नहीं है। जाति-व्यवस्था का संबंधा किसी अलौकिक शक्ति से मानने को आज कोई तैयार नहीं है। आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण, शहरीकरण, धन का महत्व, सरकार द्वारा किये गये संवैधानिक और कानूनी प्रयास, स्त्री-शिक्षा में वृद्धि, समाजसुधार आंदोलन, राष्ट्रीय आंदोलन, जाति-पंचायतों का विघटन, संयुक्त परिवार परंपरा में ह्रास इत्यादि जाति-व्यवस्था के ढांचे और जातिगत नियमों और प्रतिबंधों में होने वाले परिवर्तनों के मुख्य कारण रहे हैं।

इसके बावजूद यह सत्य है कि आज अस्पृश्यता के उन्मूलन, स्वतंत्र सामाजिक सम्पर्क और व्यावसायिक स्वतंत्रता के वातावरण में जाति-व्यवस्था के बंधन स्थायी नहीं रह सकते, लेकिन जाति के आधार पर अपने राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों को पूरा करने की मनोवृत्ति में यदि कमी नहीं हुई तो जातिगत नियंत्रणों से पूर्ण छूटकारा पाने की संभावना बिल्कुल भी नहीं की जा सकती। कई समाजशास्त्रियों का मानना है कि जब तक जाति के अन्दर विवाह पर जोर रहेगा और जातीय एकता की भावना रहेगी तब तक जाति-व्यवस्था का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य बना रहेगा। यद्यपि जाति-प्रथा को आज गंभीर चुनौती मिल रही है, पर अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि सामाजिक संस्थाओं को एकाएक समाप्त न करके यदि उसकी कमियों को दूर किया जाये तो वे पहले से कहीं अधिक उपयोगी बन सकती हैं। यह ठीक है कि जाति-प्रथा ने समाज में शोषण, विभेद और घृणा को बढ़ावा दिया है, फिर भी मजूमदार जैसे लोग मानते हैं कि एक जाति का दूसरी जाति के द्वारा शोषण और इसी प्रकार की दूसरी सहयोगी प्रथाओं को नष्ट कर देना चाहिए, न कि सम्पूर्ण व्यवस्थ को, टूटी हुई विषपूर्ण अंगुली को ही काटना चाहिए न कि संपूर्ण हाथ को। उन्हीं के शब्दों में "Exploitation of one caste by another and such other harmful contents of the system should be done away with, not the whole system, the broken poisoned finger should be removed, not the whole hand."[9] वास्तविकता यह भी है कि भारतीय जाति-वयवस्था में सामाजिक वर्ग की सभी विशेषताओं ने जन्म लेना आरंभ कर दिया हैं संभव है कि भविष्य में जातिगत स्तरीकरण एक वर्गगत स्तरीकरण में बदल जाये लेकिन जाति और वर्ग के सिद्धांत एक-दूसरे से इतने भिन्न हैं कि इसकी संभावना में संदेह भी कम नहीं है।

अखिल विश्व में दुर्लभ अनेक भारतीय विशेषताओं और विरोधाभासों में से एक यहां की जाति-व्यवस्था है। बिहार में जाति-प्रथा की मानसिकता और भी गहरी है। आर्थिक रूप समृद्ध और वृहत् भू-खंड के स्वामी जातियां अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों को और भी सुदृढ़ करने में लगी रहती हैं। फलतः, अन्य जातियों के लोग, जिनका शोषण-उत्पीड़न इन जातियों द्वारा किया जाता है, इन तथाकथित उच्च समर्थ जातियों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए संगठित होती रहती हैं जिसमें परिणामस्वरूप शृंखलाबद्ध जातीय संघर्षों का सिलसिला शुरू हो जाता है। लगभग पौने दो लाख वर्ग-किलोमीटर क्षेत्रफल तथा प्रायः दस करोड़ की आबादी वाला बिहार प्रांत प्रचुर नैसर्गिक साधनों से सम्पन्न क्षेत्र है, पर समाज की रूप-रेखा अभी भी सामंतवादी मानसिकता से ग्रस्त है। मध्यवर्ती जमींदारों का समूह स्वतंत्रता से क्रियान्वित करने एवं अर्जित भूमि को भूमिहीनों के बीच वितरित करने में बराबर बाधाएं खड़ी करता रहा हैं इससे सर्वाधिक क्षति दलितों या हरिजनों को हुई है। आज भी ये मध्यवर्ती जमींदार निम्न जाति के लोग से वही सम्मान और सुविधाओं की अपेक्षा रखते हैं जो इनके पूर्वज उनसे प्राप्त किया करते थे। अपनी इस प्रतिगामी प्रवृत्ति को सभ्यता का स्वरूप देने के लिए इन लोगों ने उच्च जातियों को सामाजिक श्रेष्ठता का जामा पहना रखा है जो उनके क्रियाकलापों को तर्कसंगत बना सके। स्वभावतः जातीयता सुधार विरोधाी बनाने का उपक्रम करती है।

लेकिन कुछ क्षेत्रों में जहां पिछड़े लोगों की संख्या अधिक है वहां इन लोगों ने अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति ऐसी बना ली है कि वे उच्च जातियों को चुनौती दे सकें। परिणामस्वरूप, ग्राम्य वातावरण में विभिन्न जातियों

में तनावपूर्ण संघर्ष हो जाते हैं, खासकर तब, जब अलग-अलग जातियों का अलग संगठन या समूह बन जाता है। पिछड़ी जाति के घटकों ने भी वही मार्ग अपना लिया है जो उच्च जाति वाले अपनाते रहे हैं। यह सत्य है कि ऐसी परिस्थिति रातों-रात निर्मित नहीं होती। इस तरह के परिवर्तन लाने का मुख्य श्रेय राजनीतिक तथा आर्थिक बलाघातों को ही है। इस प्रकार के ध्रुवीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में संघर्ष और तनाव बहुधा हिंसात्मक एवं उग्र हो जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे विगत साठ वर्षों में ही स्वतंत्र भारत में महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आदर्शों को भुला दिया गया है और यहां के बुद्धिजीवियों के दिमाग में कार्ल मार्क्स के भौतिक द्वन्द्वात्मक सिद्धांत के रूप ही ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई देने लगे हैं जिसमें आर्थिक कारक एवं शोषण के कारण उग्र और हिंसात्मक वर्ग-संघर्षों की वृद्धि हुई है।[10]

संदर्भ :-

1. कूले, चार्ल्स हर्टन (1909) सोशल ऑरगनाइजेशन : ए स्टडी ऑफ द लार्जन माइन्ड, सी. स्क्रीबनरर्स सन्स, पृ. 12
2. होबेल, ई. एडमसन (1918) मैन इन द प्रीमीटिव वर्ल्ड : एन इन्ट्रोडक्शन टू एंथ्रोपोलॉजी, फौरगोटेन बुक्स, पृ. 325
3. मजुमदार, डी.एन. व मदन, टी. एन. (2018) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपॉलौजी, मयूर बुक्स, पृ. 211
4. मिचेल, जी. डी. (सम्पा.) (1975) ए डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, रूटलेज एंड केगन पॉल, पृ. 182
5. हट्टन, जे. एच. (1946) कास्ट इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रीफेस।
6. डेविस, किंग्सले (1949) ह्यूमन सोसाइटी, कॉलियर मैकमिलन लिमिटेड, पृ. 380
7. पूर्वोक्त, पृ. 377
8. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1969) राधाकृष्णनन रीडर : एन एनथोलॉजी, भारतीय विद्याभवन, पृ. 174
9. मजुमदार, डी. एन. व मदन, टी. एन. (2018) पूर्वोल्लेखित, पृ. 238
10. सिंह, पी. के. (1991) जीनेसिस ऑफ रूरल वायलेंस : एन एनालिसिस ऑफ सोशियो- इकोनोमिक फैक्टर्स (अप्रकाशित पी-एच.डी. थीसीस, भागलपुर विश्वविद्यालय)

www.bohalsm.blogspot.com Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 78-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में सुधार : कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

–कुमारी माया रानी

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

भारत में न्याय-प्रशासन-विषयक अध्ययन के वर्णन, विश्लेषण एवं तद्विषयक निष्कर्षात्मक प्रस्तुति में सुझावों के शृंखला क्रम में सामाजिक-न्याय की दिशा में न्याय-प्रशासन का मूल्यांकन समानांतर महत्व रखता है। भारत के संविधान के समाज दर्शन को, जिसे देश के प्रशासन में मौलिक होना चाहिये, व्यापक वैधानिक शल्य क्रिया के बिना व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता।[1] न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में राज्य ने ऐसा विधि निर्माण किया है जिससे पिछले कुछ वर्षो में न्यायिक क्षेत्र में आई कर्मठता ने न्याय-प्रशासन के नये आयाम अनावृत किये हैं। न्याय-प्रशासन को धाराबद्ध करने के प्रश्न पर विचारण करते समय यह तथ्य मुखरित हुआ कि ''न्याय तक पहुँच'' एक सुदृढ़ एवं कुशल न्याय प्रशासन के तंत्र के आवश्यक तत्वों में से एक है। विधि को न केवल न्याय की बात करनी चाहिए बल्कि न्याय देना भी चाहिये और इसलिये न्यायिक पद्धति को लोगों की विशेषकर वंचित वर्ग की सुगम पहुँच में लाया जाना चाहिये। इस उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संपूर्ण भारत में आरंभ किये गये विधिक सेवा कार्यक्रम के विविध क्षेत्रों में आवश्यक सुधार किये जाने अनिवार्य हैं। विधिक सेवा योजना को कारगर एवं अधिकाधिक उपयोगी बनाये जाने वाले सुझावों की शृंखला को निम्नांकित क्रम से विश्लेषित किया जा सकता है -

विधिक सेवा कार्यक्रम : अपेक्षित सुझाव :-

न्याय का प्रतीक संभार या तुला है। इस संतुलन को बनाये रखने हेतु ''विधिक सेवा योना'' न्याय-प्रशासन के इस पहलू को उजागर करती है कि ''सम न्याय' एवं ''विधिक प्रावधान'' केवल पुस्तक में सजावटी अक्षर मात्र नहीं हैं, उनका व्यावहारिक क्रियान्वन भी अनिवार्य है। विधिक सेवाओं को अधिकाधिक सुलभ, सार्थक एवं जनोपयोगी बनाने एवं इसकी प्रभावोत्पादकता हेतु कुछ आवश्यक कदम उठाये जाने की आवश्यकता है, जो इस प्रकार हैं-

(क) सर्वप्रथम, न्यायाधीशों के स्तर पर, विधिक सेवा योजना के कर्णधारों में सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता होनी चाहिये तथा इस हेतु न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। विविध सेवा कार्यक्रम को लक्ष्योन्मुख एवं सफल बनाने हेतु न्यायाधीशों के रिक्त पदों की भर्ती को सरकारी द्वारा सर्वोपरिता दी जानी अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के पश्चात् उनके स्थान पर शीघ्र नियुक्ति की व्यवस्था किये जाने का सुझाव भी महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य है।[2] कार्यक्रम की सफलता हेतु न्यायिक अधिकारी की सजगता, कर्त्तव्यनिष्ठता, ईमानदारी, निष्पक्षता भी सर्वाधिक अपरिहार्य है ताकि उनके सही निर्देशन में इस योजना को वास्तविक उद्देश्य प्राप्ति के परिणामों से जोड़ा जाये।

(ख) अधिवक्ताओं की नियुक्ति का दायित्व पीठासीन अधिकारियों पर डाला जाना भी एक उपयोगी सुझाव है ताकि स्वविवेक से प्रकरण की प्रकृति एवं पक्षकार की इच्छा को दृष्टिगत रखते हुए, निर्धन व्यक्ति हेतु अधिवक्ता की नियुक्ति की जा सके।[3]

विधिक सहायता योजना के महत्वपूर्ण आयामों में निर्धनों को निःशुल्क विधिक सहायता दिये जाने के कार्यक्रम

का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस कार्यक्रम की सफलता हेतु अभिभावक वर्ग की सहायता एवं सक्रियता अनिवार्य है तथा इस हेतु आवश्यक है कि, कुशल वरिष्ठ अधिवक्ताओं की नियुक्ति की जाये तथा अभिभावकों की सूची बार-कौंसिल एवं न्यायालयों के सहयोग से बनायी जानी चाहिए। इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण आवश्यकता यह भी है कि अधिवक्ताओं को पर्याप्त पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये तथा विधिक सहायता के प्रोत्साहित करने हेतु विधिक सहायता अनुदत्त करने वाले अभिभाषकों को समाज में विशिष्ट दिन या अवसर पर सम्मानित किया जाना चाहिये। इस वर्ग की गुणवत्ता में सुधार भी एक अहम विषय है। अभिभाषकों की गुणवत्ता में सुधार हेतु अनुभव एवं योग्यता के साथ-साथ त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं व्यवहारकुशलता के गुण भी अपेक्षित हैं।

(ग) विधिक सहायता योजना के अंतर्गत पक्षकारों को आर्थिक लाभ प्रदान किया जाता है। इस क्षेत्र में प्रक्रियागत कठिनाइयों को दूर करने हेतु निम्नलिखित उपयोगी सुझाव दिये जा सकते हैं-

(1) निर्धन पक्षकारों को उपस्थित होने से माफी आदेशात्मक होनी चाहिये। अत्यावश्यक परिस्थितियों में ही उन्हें बुलाया जाना चाहिए तथा बुलाने से पूर्व न्यायालय द्वारा उन्हें लिखित सूचना दी जानी चाहिए।

(2) इस क्षेत्र में पक्षकारों को साक्षी-व्यय की कठिनाई से राहत दिलाने हेतु आपराधिक प्रकरणों की तरह सिविल प्रकरणों में भी साक्षीकरण को साक्षी व्यय दिया जाना चाहिये।

न्यायिक अधिकारी, अभिभाषक एवं पक्षकार सभी स्तरों पर विविध सहायता योजना को अधिकाधिक सफल बनाये जाने के अतिरिक्त इस कार्यक्रम की प्रभावोत्पादकता हेतु कुछ अन्य सुझाव भी उपयोगी हो सकते हैं, यथा-

(घ) विधिक सहायता योजना का और अधिाक विस्तार किया जाना चाहिए तथा इस हेतु जगह-जगह पर विधिक सहायता केंद्र स्थापित किये जाने चाहिये। विधिक सहायता ग्राम चौकियां स्थापित करके इस योजना को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ङ) गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं एवं सेवानिवृत्त कर्मचारियों के सहयोग को अधिकाधिक जोड़ने हेतु सरकारी प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

(च) इस कार्यक्रम के क्षेत्र में सहयोगी अन्य संगठनों को राज्य प्रशासन एवं विधिक विधि छात्रों को इस योजना से अवगत कराया जाना भी अनिवार्य है ताकि भविष्य में प्रशिक्षित वकीलों के रूप में उनका सहयोग एवं योगदान मिल सके।

(छ) कुछ विधिक मामलों में, विधि शिक्षकों का सहयोग अपेक्षित है। साथ ही, विधि छात्रों को इस योजना से अवगत कराया जाना भी अनिवार्य है ताकि भविष्य में प्रशिक्षित वकीलों के रूप में उनका सहयोग एवं योगदान मिल सके।

(ज) जनसाधारण तक इस योजना की जानकारी पहुंचाने हेतु योजना का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार किया जाना अनिवार्य है।

(झ) विधिक सहायता कार्यक्रम के व्यावहारिक पक्ष की क्रियान्विति में ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि जन साधारण को कानूनी सहायता देना दान नहीं समझा जाये, अपितु विधि एवं शासन के लोकतांत्रिक रूप को सशक्त बनाने हेतु इसे अनिवार्य सामाजिक सेवा माना जाये।[4]

विधिक साक्षरता की गुणवत्ता में सुधार हेतु सुझाव :-

विधिक सहायता योजना की एक मुख्य कड़ी के रूप में विधिक साक्षरता अभियान की योजना भी महत्वपूर्ण है। इसके व्यावहारिक स्वरूप को अधिक गतिशील बनाये जाने की आवश्यकता है। इस क्रम में निम्नांकित बिन्दु दृष्टव्य हैं-

(क) समाजसेवी संस्थाओं, निजी संस्थाओं एवं विकास अधिकारी, पंचायतों के माध्यम से योजना प्रसार में

महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

(ख) आकाशवाणी, दूरदर्शन, जनसंपर्क विभाग, जन-प्रतिनिधि इस मामले में महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं।

(ग) इस हेतु प्रादेशिक भाषाओं एवं राष्ट्रीय भाषाओं में कानूनी साक्षरता अभियान चलाने के लिये सुबोध साहित्य का प्रकाशन करना चाहिए।

(घ) चलचित्रें में तथा विधिाक सहायता की चर्चा भाषण कार्यक्रमों में एवं कानूनी साक्षरता अभियान हेतु प्रशिक्षण प्रस्तावित किये जाकर भी इसके लक्ष्य को व्यापक बनाया जा सकता है।

(ड़) विधिक साक्षरता को प्रभावी बनाने हेतु विधिक साक्षरता शिविरों के आयोजना का प्रावधान है। इन्हें एक सुनिश्चित अवधि के अंतराल से आयोजित किया जाना चाहिये। इन शिविरों के आयोजन को और अधिक उपयोगी बनाने हेतु सभी राज्यों में बार के सदस्यों, राजस्व अधिकारियों, नये अधिवक्ताओं, सेवानिवृत्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों को अधिकाधिक संयुक्त किया जाना आवश्यक है।

(च) जनसाधारण में सामान्य विधि चेतना की जागृति, विश्वविद्यालय विधि संकाय में पेरालीगल क्लीलिक स्थापित करना, विधि प्राध्यापकों द्वारा कोर्ट को कानूनी सहातया मामलों में पैरवी करना, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के समाजशास्त्र विभागों द्वारा कानूनी सहायता के मामले में सर्वेक्षण करना, शोध करना आदि इस क्रम में महत्वपूर्ण सुझाव है।[5]

यदि राज्यों से आरंभ कर जिला क्षेत्र की सीमाओं का हर नागरिक अपने कानूनी अधिकारों के प्रति साक्षर होकर जागरूक संघर्ष में जुट जाये तो निश्चिततः सामाजिक-न्याय, न्याय-प्रशासन के द्वितिज को आलोकित करेगा, कानून के शासन एवं न्याय की तुला की प्रतिष्ठा होगा तथा हर पीड़ित व्यक्ति के आंसू पोंछकर न्याय-प्रशासन की क्षमताओं में वृद्धि को संभव बनाया जा सकेगा।

लोक-अदालतों के सफलतापूर्वक संचालन हेतु सुझाव :-

लोक-अदालत न्याय को सिंहासन से उतार कर जमीन पर लाने हेतु एक सफलतम प्रयोग रहा है।[6] यह व्यवस्था यदि समुचित रूप से अस्तित्व में आ जाये तो यह विधि न्यायालय का स्थानापन्न तो नहीं हो सकती, किंतु वर्तमान न्यायिक संस्थाओं की उपयोगी भुजा सिद्ध हो सकती है।[7] व्यावहारिक स्तर पर लोक अदालत व्यवस्था से की गई ये अपेक्षाएं संपूर्ण भारत के समस्त राज्यों एवं जिलों में किसी न किसी रूप में साकार भी हुई हैं। किंतु, इस व्यवस्था में व्याप्त खामियों को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लोक अदालत व्यवस्था की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं-

(क) लोक अदालत व्यवस्था की फ़लता हेतु यह आवश्यक है कि साधारण जन को इसके बारे में जानकारी हो। इस हेतु प्रशासन की निचली इकाइयों तक इसका व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया जाना आवश्यक है।

(ख) लोक अदालतों के आयोजन हेतु व्यवहार में आने वाली वित्तीय समस्याओं के निराकरण हेतु राज्यों की सरकारों द्वारा पर्याप्त धन, कर्मचारीगण, भवन, वाहन, फर्नीचर आदि समुचित मात्र में उपलब्ध कराये जाने चाहिये। कर्यक्रम हेतु यथेष्ट आर्थिक मदों का निर्धारण आवश्यक है।

(ग) लोक अदालतों के कर्यक्षेत्र का विस्तार किये जाने की आवश्यकता है। इस हेतु राजस्व तथा भूमि संबंधी विवादों के हल हेतु इनके आयोजन को अधिक विस्तार प्रदान किया जा सकता है। इसके अलावा गंभीर प्रवृत्ति के अपराधों से तथा नाकाबिल राजीनामा अपराधों की श्रेणी में इनका संबंध नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

(घ) लोक अदालत व्यवस्था न्यायिक कार्य का हिस्सा है। इसमें न्यायिक अधिकारी की भूमिका भी पक्षकार की होनी चाहिये। पीठासीन न्यायिक अधिकारियों द्वारा पक्षकारों को समझाकर उनके मध्य सम्मानजनक समझौते का प्रयास कराया जाना चाहिये तथा राजनीनाम होने पर पीड़ित पक्ष को उचित मुआवजा दिलाने में उसकी सक्रियता हो

ताकि पक्षकारों को महसूस हो कि उनके हितों पर कुठाराघात नहीं हुआ है।

(ड़) लोक अदालतों की सफलता हेतु अधिवक्तागण के रचनात्मक सहयोग की भी अनिवार्यता है। इस हेतु यह आवश्यक है कि अधिवक्तागण पक्षकारों को सही बात समझा कर लाभ-हानि बताते हुये जो मामले वास्तव में राजीनामे योग्य हों, उनका निस्तारण करवाने में सक्रिय एवं निःस्वार्थ भूमिका निभायें।

(च) लोक अदालतों में परामर्शदाताओं के रूप में विवादरहित व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिये। इसके लिये इनके चुनाव में कुछ निश्चित नियम अपनाये जाने चाहिये, यथा-परामर्शदाता के रूप में की जाने वाली नियुक्ति में कुछ व्यक्ति ऐसे हों जो न्यायिक अधिकारी या वकील के रूप में न्याय कार्य का 10 वर्ष का अनुभव रखते हों, कुछ विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ हों, कुछ में ग्रामीणों का प्रतिनिधित्व हो तथा स्थानीय विकास संस्थाओं को भी इनमें शामिल किया जाये।

(छ) लोक अदालतों की व्यवस्था में प्रक्रियागत कमजोरियों के निराकरण के सुझाव रूप में इसकी समझौता प्रक्रिया का अधिकाधिक सरलीकरण किये जाने का सुझाव भी उपयोगी है ताकि मामलों के निस्तारण में शीघ्रता हो एवं अदालतों का बोझ भी कम हो जाये। इसके अलावा राजीनामा कराते समय पीड़ित पक्ष की पीड़ा को अधिकारीगण एवं काउन्सलर्स द्वारा अच्छी तरह समझना चाहिये एवं सम्मानजनक समझौता कराना चाहिये ताकि पक्षकारों के विवादों का स्थायी निराकरण संभव हो सके। लोक अदालतों में उपस्थित जनसमुदाय एवं विभिन्न प्रकरणों से जुड़े पक्षकारों के बीच सरल भाषा में मुद्रित विधि साहित्य का वितरण किया जाना चाहिए। जनता को यह समझाया जाना एवं प्रेरित किया जान चाहिये कि वे इस प्रकार आपसी कटुता, द्वेष एवं वैमनस्य को भुलाकर आपसी बातचीत के जरिये सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में अपने विवादों का लोक-अदालत के माध्यम से निपटारा कर सकते हैं।

वस्तुतः व्यवहार में लोक-अदालत की सुदृढ़ता तभी कायम हो सकती है जब न्याय-प्रशासन के सभी स्तरों पर इसके प्रति आस्था, त्याग, कर्तव्यपरायणता जैसे नैतिक दृष्टिकोणों को व्यवहार रूप दिया जाये। यह अभिनव प्रयोग जक व्यापक रूप से प्रचलन में आयेगा तभी भारत का हर पांचवां व्यक्ति, जो एक दशक या दो दशक तक पीड़िता रहा है, को न्याय मिल सकेगा।

लोकहितवाद के व्यावहारिक पक्ष को मजबूत बनाने एवं समाज के कमजोर वर्गों के संवैधानिक एवं विधिक अधिकारों की सुरक्षा को संबल प्रदान किया है। पिछले एक दशक से लोकहितवाद की अवधारणा ने न्यायिक क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सामाजिक हित के वादों की रणनीति की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस सीमा तक समुदाय के वर्गों को वास्तविक राहत उपलब्ध कराने में समर्थ है और यदि न्यायालय द्वारा सामाजिक हित में पारित आदेश मात्र कागजी दस्तावेज ही रह जाते हैं तो वह रणनीति अपने समस्त अर्थों एवं प्रयोजनों से वंचित रह जायेगी। इस दृष्टि से न्याय-प्रशासन के अंतर्गत इन वादों से संबंधित नीति के बारे में पर्याप्त चिंतन एवं विचार की आवश्यकता है। लोकहितवाद की अवधारणा एवं इसके प्रकरणों की व्यवस्था को अधिक जनोपयोगी एवं प्रभावशाली बनाये जाने हेतु निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

(क) न्यायालय की प्रक्रिया सबके लिये एकरूप हो, इस हेतु लोकहित मुकदमों में तथ्य संबंधी प्रश्न तथ्य मूल्यांकन के प्रश्न उत्पन्न होने पर न्यायालय को वर्तमान प्रतिकूल पक्ष वाली कार्यवाही में प्रचलित आम पद्धति का अनुसरण करना चाहिये। साथ ही, जनहितवाद प्रकरणों की लंबी सूची पर नियंत्रण की आवश्यकता से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इस हेतु दर्ज किये गये प्रार्थना पत्रों की समीक्षा करते हुए, यह देखा जाना चाहिये कि याचिका दायर करने वाला व्यक्ति इसके माध्यम से निजी स्वार्थ एवं लोकप्रियता प्राप्त करने का प्रयास तो नहीं कर रहा? यदि किसी लोकहित मुकदमें में उस व्यक्ति का निजी हित है तो उसे जनसेवी नहीं माना जा सकता और उसे न्यायालय में समावेदन करने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिये।[8]

(ख) लोकहितवाद प्रकरणों के आंदोलन में हितबद्ध वकीलों द्वारा लोकहित के मुकदमों में मदद करने के अपने प्रयासों को अवरुद्ध किये बिना पक्षकारों की आवश्यकताओं को पूरा करने का विशेष उत्साह दिखाना भी अनिवार्यता है।

(ग) जनहितवादों को दायर करना ही पर्याप्त नहीं, अपितु न्यायालय के द्वारा उक्त वादों में दिये गये निर्णयों की अनुपालन की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिये। जो याचिकाएं प्रशासन से संबंधित हो उनमें किये गये निर्णयों को प्रशासन द्वारा प्राथमिकता देते हुए लागू करना चाहिये।

पिछड़े एवं कमजोर वर्गों हेतु विधिक सेवाओं एवं न्यायिक संरक्षण के विस्तार की आवश्यकता :-

(क) न्याय-प्रशासन के अंतर्गत विधिक सहायता के बहुआयामी विस्तार क्रम में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये भी विशिष्ट उपबंध निर्धारित किये गये हैं। इस क्षेत्र में विधिक सेवा योजनाओं को अधिक उपयोगी एवं कारगर बनाये जाने हेतु समस्त राज्यों में राज्य विधिक सहायता बोर्ड के अंतर्गत एक अनुसंधान और विकास एकक की स्थापना द्वारा विधिक सहायता की प्रणाली की कमजोरियों को दूर करने एवं योजना को अमल में लाने के लिए आवश्यक उपाय किये जाने चाहिए। विधिक सहायता हेतु समाजसेवी संगठनों, विधिक क्षेत्र से संबंधित लोगों, प्रशासनकों, पुलिस अधिकारियों की सहायता भी वांछनीय है। अत्याचार के शिकार लोगों को तुरंत वित्तीय राहत के प्रावधान सुनिश्चित किये जाने तथा विधिक सहायता संगठनों को वांछित प्राधिकार तथा संसाधन प्रदान किये जाने चाहिये। वस्तुतः अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से संबंधित विशेष विधियों के अधीन मामलों के विचारण हेतु विशेष दांडक प्रक्रिया संविधानिक तौर पर अनुज्ञेय है तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय है।[9] चूंकि विधिक सहायता का कार्य बहुआयामी है, अतः समस्त स्तरों पर विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक और सामाजिक कार्यवाही द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के वर्गों की स्थिति में सुधार तथा उनके हितों के संरक्षण से अपेक्षित सफलता संभव हो पायेगी।

(ख) न्याय-प्रशासन एवं सामाजिक-न्याय के विचारण क्षेत्र में कमजोर वर्ग के रूप में महिलाओं एवं बालकों की स्थिति का मूल्यांकन भी अनिवार्य है। आज के कल्याणकारी राज्य में सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल प्रतिक्रियात्मक विधि को सामाजिक व्यवस्था के सर्वोपरि दस्तावेज के रूप में कार्य करना चाहिये। भारतीय संदर्भ में चले आ रहे रूढ़िजन्य परंपरागत सामाजिक ढांचे में किसी क्रांतिकारी परिवर्तन को आकस्मिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता, परंतु भूतकाल का आदर करते समय व्यावहारिक पहलुओं के आधार पर परिवर्तन करते रहना अनिवार्य है।[10] दहेज हेतु हत्या, वधू-दहन एवं अन्य कुत्सित अपराधों की वृद्धि, समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति को व्यक्त करती है। ये अपराध समाज, नारी एवं गरीबी के प्रति भी अपराध हैं। इन पर समाज सुधारकों के अलावा विधि निर्माताओं, विधि व्याख्याताओं तथा विधि प्रवर्तन तंत्र द्वारा गंभीरता से विचार किये जाने की आवश्यकता है तथा एक बेहतर एवं कठोर निवारक विधायन भी अपेक्षित है।

एक विडंबना यह है कि महिलाएं बहुधा अपने कानूनी अधिकारों से अनभिज्ञ रहती हैं। वे स्वयं को मुकदमेबाजी में उलझाना हेय समझती रही है। मजबूरीवश महिलाएं बहुधा उत्तराधिकार, भरण-पोषण, पृथक्करण, तलाक तथा संतान की अभिरक्षा आदि की कार्यवाही में सफल नहीं हो पातीं। मुकदमेबाजी द्वारा पुरुष प्रधान समाज में नारी का पारिवारिक जीव कष्टप्रद हो जाता है।[11] न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता के कारण प्रायः अपराधी छूट जाते हैं और समाज में अपराध फैलाते हैं। बहुत से कानूनों यथा दंडित कानूनों में पर्याप्त संशोधन आने से न्याय-प्रक्रिया की जटिलता की बहुत-सी गंभीर गुत्थियों को सुलझा लिया गया है। वैवाहिक विवादों में भी पिछली कुछ दशाब्दियों में पर्याप्त सुधार हुआ है। विवाह-विच्छेद एवं भरण-पोषण हेतु हिंदू-विधि के संहिताबद्ध करने के साथ ही अन्य अधिनियम पारित हुए जिनके प्रादुर्भाव से पर्याप्त परिवर्तन आया है। इन अधिनियमों एवं इन पर आधारित न्याय-निर्णयों के द्वारा महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य परिलक्षित हुआ है, किंतु अभी और सुधार एवं सामाजिक चेतना की आवश्यकता है। इन सब

स्थितियों में संविधान की समानता को व्यवहार में परिणत करने की आवश्यकता है। संविधान की भावना को न्याय-परिसर की वस्तु ही नहीं बनाना चाहिये, अपितु उसे जन-जन के हृदय में उतारना भी जरूरी है। जब तक महिलाओं में वैधानिक चेतना जागृत नहीं होगी तब तक विधि एवं न्याय जगत की कार्यवाही अपंक ही रहेगी। आवश्यकता इस बात की है कि भारत में जो कानून महिलाओं के लिये बने हैं उनका ज्ञान भी महिलाओं को हो, इस हेतु ''महिला विकास एवं अनुसंधान केन्द्रों द्वारा व्यापक प्रयास किये जाने चाहिये।''

(ग) महिलाओं के साथ-साथ बालकों की अभिरक्षा के क्षेत्र में भी व्यावहारिक स्तर पर प्रयास किये जाने अनिवार्य हैं। विशेष कठिन परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहे बच्चों के संरक्षण के संबंध में, विधि-निर्माण के क्षेत्र में लिंग-अनुपात की विषमता कम करने, बाल विवाह, बाल श्रम पर प्रतिबंध संबंधी विधियों के निर्माण के साथ-साथ उनकी देखभाल, संरक्षण, उपचार एवं पुनर्वास सुविधाएं भी बढ़ाई गई हैं, किंतु बालकों की निरीह अवस्था का क्षेत्र बहुत बड़ा है। यही कारण है कि इन विधियों के उल्लंघन के उदाहरण आज भी व्यवस्था में व्याप्त हैं। विधियों के पालन एवं उल्लंघन का दायित्व समाज का होता है। इस हेतु बाल हितों को आघात पहंचाने वाले अपराधी को गंभीरतापूर्वक लेते हुए समझ में उसके निवारण के उदाहरण प्रस्तुत किये जाने चाहिये। बालकों की अपराधवृत्तियों में अपराधों के सुधार की व्यवस्था को भी नवीनीकृत किया जाना आवश्यक है।

न्याय-प्रशासन को सुधारने में समाज की भी अहम भूमिका होती है। कोई भी व्यवस्था समाज के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती। न्यायालयों की वयवस्था इसलिए की जाती है कि सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे। न्याय-प्रशासन समाज का ही एक अंग है एवं समाज के लिये ही गठित किया जाता है। न्याय-प्रशासन के कई क्षेत्रें में व्याप्त विसंगतियों हेतु समाज को भी दायित्वमुक्त नहीं किया जा सकता। अपराधी समाज में पैदा होते हैं, अस्तु भ्रष्ट तरीकों के विरोध में समाज की दृढ़-प्रतिज्ञा न्याय-प्रशासन को सुदृढ़ बना सकती है।[12] यथा-दोषी व्यक्तियों की शिकायत जागरूक व्यक्तियों द्वारा स्वयं जाकर की जानी चाहिये। व्यक्तियों को चाहिये कि स्वयं कानून का पालन न करने वालों को न्यायालय तक पहुंचाएं।

कानूनों एवं नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। सामाजिक-क्रांति लाने में समाज-सुधारकों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। यह वर्ग बिना परवाह किये सुधारों को समाज के लिये हितकारी समझता है, उसके लिये समाज का विरोध भी सहन करता है, किंतु धीरे-धीरे जनमत उसकी नैतिकता एवं निष्ठा के बल के आगे नतमस्तक हो जाता है। सती-प्रथा, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, दहेज उन्मूलन, अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे विषयों में कुप्रथाओं के विरुद्ध जनमत तैयार किया गया और शनैः-शनैः इस दिशा में वांछित कानून भी बने। अब भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें कार्यपालिका एवं न्यायपालिका दखल नहीं देना चाहती एवं स्वतंत्रता के पश्चात् समाज-सुधारकों को समाजसेवी संगठनों का उत्साह भी ठंडा पड़ता जा रहा है। लोकतंत्र को जिस नैतिक बल की आवश्यकता है वह नैतिक बल जन-जागरण में जितना प्राप्त होत है उतना न्यायिक या विधायी संस्थाओं में नहीं। अतः लोक-शक्ति एवं उसे सही दिशा देने के प्रयासों को मजबूती प्रदान किया जाना आवश्यक है।[13]

न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण सुझाव ''विधिवेत्ताओं की प्रासंगिकता'' से संबंधित है। विधि -व्यवस्था के अनेक विधियां एवं विधि संशोधन ऐसे हैं जिनका स्रोत मुख्यतया किसी विधि वेत्ता के विचार, टिकाएं, समालोचनाएं, शोध-ग्रंथ, शोध-लेख अथवा विभिन्न विधिवेत्ताओं के विचारों का निष्कर्ष हैं। न्याय-प्रशासन के सही मूल्यांकन हेतु इन विधिवेत्ताओं की विधिक देन को संकलित करना तथा उनका अध्ययन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।[14] आवश्यकता इस बात की है कि प्रमुख विधिवेत्ताओं के योगदान को प्रकाश में लाया जाये। यह कार्य अवश्य ही शोधपूर्ण एवं कठिन जिम्मेदारी का है, किंतु न्याय-प्रशासन में इस प्रकार के प्रयासों की क्रियान्विति निश्चित ही महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

अंतिम रूप में, भारत में न्याय-प्रशासन का क्षेत्र आज अपनी परिधि में नये सुधारों के लिये विचारों को आमंत्रित कर रहा है। इस हेतु न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में शोध कार्यों की आवश्यकता का तथ्य महत्वपूर्ण है। समस्त विश्व में भारत की न्यायपालिका का सम्मान है। इसके सम्मान, गरिमा एवं कांति को चिरंतन बनाये रखने हेतु न्याय-प्रणाली को चारों ओर से होने वाले आघातों, अनास्था के वातावरण एवं प्रतिकूलताएं उत्पन्न करने वाली स्थितियों से उबारने की महती आवश्यकता है। इस निमित्त शीघ्र ही यथावश्यक सुझाये गये संस्थागत सुधारों की क्रियान्विति एक अपरिहार्यता है। यह कार्य जितनी जल्दी हो सके उतना ही बेहतर होगा। नीचे से ऊपर तक सभी स्तरों की न्याय-प्रणाली को सुसंगत बनाये तथा इसके नूतन विस्तार क्षेत्रों संबंधी नये विकल्पों की तलाश करना आज के समय की महत्वपूर्ण मांग है। इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों को और अधिक प्रोत्साहन देते हुए न्याय-व्यवस्था के नूतन प्रयोगों एवं उपयोगी आधारों को सुचारू रूप से विकसित किया जाना वर्तमान युग की गंभीर आवश्यकता है। निःसन्देह यह कार्य रचनात्मक चिन्तन, मन्थन एवं सकारात्मक क्रियाशीलता के बिना सम्भव नहीं हो सकता है, अतः इस हेतु वांछित वातावरण का निर्माण किया जाना और पूर्ण ईमानदारी से प्रयत्नरत रहना बहुत ही आवश्यक है, तभी एक आदर्श न्याय-व्यवस्था के लक्ष्य की सम्पूर्ति सम्भव हो सकती है।

संदर्भ :-

1. अय्यर, वी० आर० के० (1972) लॉ एन्ड द पीपुल, दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ० 70
2. भाटिया, सुरेश कुमार (1984) निर्धन विधिक सहायता, जयपुर, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ० 88
3. मेहता, सुंदरलाल (1984) ''विधिक सहायता-न्यायालय के परिप्रेक्ष्य में,'' प्रशासनिका, खंड -XIII, सं०- 3-4, जुलाई-दिसंबर, पृ० 91
4. गडकर, गजेन्द्र (1968) संडे स्टैन्डर्ड, 7 अप्रैल
5. जैन, पी० जी० (1989) ''लीगल ऐड एंड नेशनल रेस्पोनसिविलिटी स्कोप ऑफ इट्स इम्प्लीमेंट इन इंडियन यूनिवर्सिटीज'', इंडियन सोशियो-लीगल जर्नल, खंड V, बीकानेर, पृ० 131
6. विश्वकर्मा, प्रेमचंद (1990) ''ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में लोक अदालत की भूमिका'', विधिका, वर्ष-2, अप्रैल-जून
7. नाथ, सुरेन्द्र (1985) ''ग्रामीण भारत में न्याय-प्रशासन के लिए लोक-न्यायालयों की स्थापना एवं इसकी पूर्वापेक्षाएँ'' के० एल० जे०, पृ० 22-23
8. न्यायमूर्ति मजूमदार, एस० वी० (1991) ''लोकहित मुकदमा'' विधिक सहायता संवाद पत्र, दिल्ली : जुलाई- दिसंबर, पृ० 15
9. कृष्णा अय्यर समिति प्रतिवेदन, 1973
10. न्यायमूर्ति लोढ़ा, गुमानमल (1986) न्यायिक क्रांति के बदलते आयाम, जयपुरः यूनिक ट्रेडर्स, पृ० 415
11. श्रीवास्तव, सुधारानी (1997) भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति, नई दिल्ली : कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, पृ० 11-19
12. बहादुर, कृष्ण (1990) ''समाज एवं कानून'', विधिका, वर्ष-2 अंक-3, जुलाई-सितम्बर
13. गोयल, कैलाश (1990) ''हमारी न्याय प्रणाली-वर्तमान न्यायिक प्रक्रियाएँ एवं सामाजिक आकांक्षाएँ'', विधिका, वर्ष-2, अंक-3, जुलाई-सितंबर, पृ० 45
14. स्वरूप, कृष्ण (1990) ''विधिवेत्ताओं की प्रासंगिकता'', विधिका, 2 (2), पृ० 161-163

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 85-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार में सामाजिक न्याय के साथ विकास की चुनौतियाँ

–शनि कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, जयप्रकाण विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं की प्रासंगिकता सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को सुनिश्चित करने में ही निहित है। राजनीतिक विचार की यह परम्परा अपने आप में काफी पुरातन है। जर्मन विचारक इमानुएल कांट मानव स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय के लिए अपरिहार्य मानते हैं। समकालीन युग में इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए प्रसिद्ध विचारक जॉन रॉल्स ने सामाजिक न्याय का एक विस्तृत दर्णन प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार समाज के बुनियादी ढांचे के आंकलन में ही हम यह पता लगा सकते हैं कि सामाजिक संसाधानों का न्यायसंगत वितरण हो रहा है या नहीं। वस्तुतः बुनियादी ढांचे के अन्तर्गत सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक ढांचों का समावेश किया जाता है जिनके माध्यम से सिर्फ समावेशी विकास ही नहीं बल्कि वितरणात्मक न्याय को भी सुनिश्चित किया जाता है। संभवतः यही कारण है कि भारत की 12वीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास को विशेष महत्त्व दिया गया है। अतः यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि प्राकृतिक सम्पदा तथा सामान्य मानवीय प्रयासों के प्रतिफल पर समाज के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। इतना ही नहीं, इस अधिकार को यदि हम आजीविका के साथ जोड़ दें तो किसी भी शर्त चाहे वह योग्यता का आधार ही क्यों न हो, पर उसे नकारा नहीं जा सकता। सचमुच में यही विचार सामाजिक न्याय तथा समावेशी विकास दोनों का आधार स्तम्भ है। इसके अतिरिक्त, इन दोनों अवधारणाओं को इस अर्थ में स्थापित करने में जॉन रॉल्स का बहुत बड़ा योगदान है। यह बात और भी महत्वपूर्ण है कि बहुत सी सीमाओं के बावजूद, लोकतांत्रिक देशों में रॉल्स के विचार का काफी असर दिखाई देता है।

शीत युद्ध के उपरांत नियतिवाद के विचार का दुनिया के इतिहास में क्रमशः ह्रास हुआ है। इसका एक सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि हम आज मानवीय मूल्यों तथा स्वतंत्रताओं को कम करके या समाप्त करे किसी भी महान आदर्श की स्थापना नहीं कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है कि विचारों और आदर्शो का आधार समाप्त करना कहां तक उचित है? इस अनुभव ने विचारों के द्वारा किसी भी सामाजिक वर्ग के गैर समावेश को प्रभावी तरीके से अवरूद्ध किया है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य को ध्यान मे रखकर इन दोनों अवधारणाओं को जिन चीजों से चुनौतियां मिल रही हैं, उसका बिहार के संदर्भ में विश्लेषण करना इस लेख का उद्देश्य है। उल्लेखनीय है कि भारत के संविधान में समाज के कमजोर वर्गो को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रावधान का उपाय किया गया है। उदाहरण के तौर पर संविधान का अनुच्छेद 334 अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए संसद तथा विधानसभाओं में सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 335 देश के सार्वजनिक सेवाओं में इन समूहों की नियुक्ति के लिए आरक्षण की व्यवस्था करता है। स्पष्टतौर पर संविधान निर्माताओं का यह मानना था कि भारत की सामाजिक संरचना की असमानता को दूर करने के लिए सिर्फ मताधिकार और अवसर की समानता अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इसलिए इन जातियों और जनजातियों के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किया गया। निस्संदेह हम यह कह सकते

हैं कि हमारा संविधाान व्यक्ति-केन्द्रित अधिकारों के साथ-साथ समूह केन्द्रित अधिकारों को भी समुचित स्थान प्रदान करता है। मूलतः इसका उद्देश्य यह था कि भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में सामाजिक न्याय के माध्यम से किस तरह समावेशी विकास सुनिश्चित किया जाए। जहां तक बिहार का प्रश्न है तो यह मानना कठिन नहीं है कि वर्तमान सरकार ने पिछले कुछ वर्षो में स्थिति में काफी सुधार किया है। शासन व्यवस्था में सुधार के साथ-साथ बुनियादी सुविधाएं भी अपेक्षाकृत बढ़ी हैं तथा राज्य की संस्थाएं, ऐसा प्रतीत होता है, प्रभावी तरीके से अपने कार्यो का निष्पादन कर रहीं हैं। परंतु अभी भी समावेशी विकास के मार्ग में बहुत सी चुनौतियां है।

इन चुनौतियों की प्रकृति मूलतः अपने आप में संरचनात्मक है। अगर संरचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भूमि सुधार का राज्य में सर्वथा अभाव है तथा इसके साथ-साथ तकनीकी तथा बुनियादी सुविधाओं के क्षेत्र में गरीबों की पहुंच लगभग ना के बराबर है। यहां तक कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में इनकी सहभागिता महज औपचारिक भर बनकर रह गई है। यह ठीक है कि आर्थिक वृद्धि के द्वारा अर्थव्यवस्था गतिशील हुई है, लेकिन इसके साथ गरीबों के असंतोष को दूर करने के लिए वितरण के प्रश्न को भी निर्णायक तरीके से उठाना पड़ेगा। लेकिन दुर्भाग्यवश जिस तरह से भूमि सुधार पर डी. बन्दोपाध्याय समिति की सिफारिणों को अनायास और अचानक खारिज कर दिया गया है, उससे सरकार की समावेशी तथा जनोन्मुखी शासन के दावे के प्रति एक संदेह उत्पन्न होता है। इसके अलावा, विकास का आर्थिक पहलू कभी प्रत्यक्ष तथा कभी अप्रत्यक्ष रूप से इसके महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पक्ष की अवहेलना करता है। इसलिए यह परीक्षण करना आवश्यक है कि किस तरह रही है। दूसरे शब्दों में, राज्य का मौजूदा राजनीतिक नेतृत्व किस तरह गरीबों, भूमिहीनों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं और अनुसूचित जाति और जनजातियों को सशक्त बनाने का प्रयास कर रहा है, यह विचारणीय प्रश्न है।

बिहार में ग्रामीण कृषि संघर्ष का एक पुराना इतिहास रहा है। 1920 का दशक दो प्रमुख आंदोलनों - स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व में किसान सभा का आंदोलन तथा त्रिवेणी संघ के नेतृत्व में पिछड़े वर्गो का आन्दोलन का दशक रहा है। लेकिन इन आन्दोलनों का लाभ विशेष रूप से उच्च जाति तथा उच्च पिछड़े वर्गो के भू-स्वामियों को ही मिला, और भूमिहीन वर्ग तथा निम्न जातियाँ इससे सर्वथा वंचित रहे। इतना ही नहीं, इन वर्गो को आजादी के पश्चात् अर्द्ध सामन्ती कृषि व्यवस्था में शोषण, अन्याय तथा अत्याचार का शिकार होना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में 1970 के दशक के शुरूआती दौर में उग्र किसान आंदोलन के द्वारा इन वर्गो को लामबन्द किया गया जिसके फलस्वरूप इनमे एक नई ऊर्जा और आत्मविश्वास का संचार हुआ। हालांकि इस आंदोलन को नक्सलवादी करार देते हुए राज्य ने इसे कठोरता से कुचल दिया, फिर भी यह गरीबों की जनवादी लड़ाई को दिशा देने में सफल रहा है। अब इस लड़ाई का केन्द्र बिन्दु -भूमि, मजदूरी और इज्जत प्रमुखता से उभर कर सामने आए। उस समय से लेकर आज तक ये तीनों माँगें समय-समय पर गरीब किसानों के द्वारा उठायी जा रही हैं। इन प्रयासों के बावजूद संरचनात्मक कठिनाइयाँ पूर्ववत् बनी हुई हैं। इसकी परिस्थितिजन्यता को निम्नलिखित तीन तरीकों से समझा जा सकता है :

(क) अगर सामन्ती हित मजबूत है और उसके विरूद्ध कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं है तो ऐसी स्थिति में, सामन्तशाही सर्वोपरि रहेगी। स्वतंत्रतापूर्व बिहार की यही स्थिति थी।

(ख) अगर मजबूत राजनीतिक आन्दोलन विद्यमान है तथा विरोधी शक्तियाँ कमजोर हैं तो सुधार और परिवर्तन संभव है। स्वतंत्रता पश्चात् राजनीतिक आन्दोलनों का पलड़ा भारी था जिसके फलस्वरूप बिहार में जमींदारी उन्मूलन संभव हो सका।

(ग) अगर दोनों ही शक्तियाँ राजनीतिक आंदोलन तथा स्वार्थी तत्व समान रूप से मजबूत होंगी तो तनाव बढ़ेगा और इस तनाव में राज्य का स्वार्थी तत्वों को अप्रत्यक्ष सहयोग, स्थिति को उनके पक्ष में कर देगी।

समाज और राज्य-व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर वर्चस्व-विरोध का यह द्वन्द्व अन्ततः लोकतांत्रिक शक्तियों का

मार्ग प्रशस्त करेगा जिसके फलस्वरूप समाज के हाशिए पर रहने वाले लोग व्यवस्था के हिस्सा बन पाएंगे।

इस प्रकार भूमि और जाति की मिलीभगत, गरीबों की भूमिहीनता तथा लिंग आधारित अन्याय पर बिहार के नीति निर्माणकर्ताओं ने अभी तक समुचित ध्यान नहीं दिया है। जहां तक भूमि सुधार कानून का सवाल है तो उसकी एक बहुत बड़ी कमजोरी यह रही है कि वह भूमि को बहुत हद तक उत्पादन का एक स्वतंत्र साधन मानता है जबकि ठीक इसके विपरीत भूमि मजबूती के साथ सामाजिक संस्थाओं, जैसे जाति के साथ जुड़ी हुई है। यह ठीक है कि सरकार ने जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी, बिचौलियों का अन्त कर दिया और रैयतों की रक्षा तथा भू-हदबन्दी के लिए कानूनों का निर्माण किया। परंतु इन कानूनों और प्रावधानों को क्रियान्वित करने में सरकार लगभग असफल रही है और आज भी भू-स्वामियों के हाथ में जमीन तथा उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण है। मुट्ठी भर भू-स्वामियों के हाथ में जमीन के केन्द्रित होने से भूमि प्रबंधन पर गहरा असर पड़ा है। परिणामस्वरूप इसका बुरा प्रभाव भूमि की उत्पादकता पर पड़ता है और यह दिनोंदिन घटती जाती है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि बिहार में भूमि सुधार की योजना बहुत हद तक अधुरी और अपूर्ण है।

यह आश्चर्य की बात है कि 1950 में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन करने वाले राज्यों में अग्रणी होने के बावजूद बिहार में आज भी निर्धनता तथा भूमिहीनता व्याप्त है। कारण स्पण्ट है जिन भूमि सुधार अधिनियमों को जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् तत्काल लागू होना था, वे 1970 के दशक में कई संशोधनों और पुनसंशोधनों के बाद लागू हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि भू-स्वामियों को अपने जाने-अनजाने लोगों के नाम भूमि हस्तांतरण में आवश्यक परिवर्तन करने का पर्याप्त समय मिल गया। जिससे आसानी से वे भू-हदबन्दी कानूनों को निष्क्रिय कर पाएं। नतीजतन बिलम्बकारी तथा अधुरे भूमि सुधार कानून ने बिहार में व्यापक रूप से भूमिहीनता के हालात कायम कर दिए। वर्तमान में भी भूमिहीनों की दशा में सुधार नहीं हुआ है बल्कि उन्हें और भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। जहाँ 1990 के शुरू में भूमिहीनता सिर्फ आठ प्रतिशत थी वहीं 90 के दशक में यह बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई। ग्रामीण भूमिहीनों की संख्या जो 1993-1994 में 67 प्रतिशत थी वह अब आठ प्रतिशत से बढ़कर 2011-12में 75 प्रतिशत हो गई। गरीबी दूर करने के लिए भूमि का उत्पादन के साधन के रूप में गरीबों के नियंत्रण में होना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वह इस बात से साबित होती है कि जहाँ एक ओर 1990 के दशक में भूमि कृषकों के प्रत्येक श्रेणी में गरीबी की स्थिति में स्पष्ट रूप से गिरावट दिखी, वहीं भूमिहीनों में गरीबी की स्थिति 51 प्रतिशत से बढ़कर 56 प्रतिशत हो गई। भू-स्वामित्व का आधार बिहार में असमान है, वह एन.एस.एस.ओ. के आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। सीमान्त और छोटे भूमि किसानों की संख्या 96.5 प्रतिशत है और पूरी जमीन के 66 प्रतिशत भाग उनके पास है। वही मझोले और बड़े भूमि किसानों की संख्या सिर्फ 3.5 प्रतिशत है और पूरी जमीन के 33 प्रतिशत हिस्से पर उनका अधिकार है। वहीं बहुत बड़े भू-स्वामियों की संख्या मात्र 0.1 प्रतिशत है जबकि बिहार के समुचे जमीन के 4.63 प्रतिशत पर उनका अधिकार है। इस प्रकार उपर्युक्त आँकड़े बिहार के असमान भू-स्वामित्व ढाँचे को दर्शाते हैं। यही कारण है कि बिहार में कृषि संघर्ष का यह एक मुख्य मुद्दा रहा है कि भूमि-हदबंदी से प्राप्त अतिरिक्त भूमि का वितरण किया जाये तथा कृषि लायक आम सरकारी भूमि पर गरीबों को स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया जाये। सीमान्त तथा भूमिहीन किसानों की लम्बे समय से यह एक मजबूत मॉग रही है कि जो जमीन गैर-कानूनी तरीके से अमीर भू-स्वामियों के कब्जें में है, उसका वितरण उनमें किया जाय। इस माँग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अभी भी जमीन का बड़ा हिस्सा वितरण के लिए उपलब्ध है, बशर्ते की भू-हदबंदी कानूनों को तर्कसंगत बनाते हुए पूरे संजीदगी के साथ उनको क्रियान्वित किया जाये ताकि समय रहते हुए ग्रामीण हिंसा और असंतोष को दूर किया जा सके।

यह उल्लेख करना अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बिहार के मौजूदा असमान भूमि संबंधों के संदर्भ में

नीतीश कुमार की बिहार सरकार ने 2007 में बिहार भूमि सुधार आयोग का गठन किया। इस आयोग का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह बताएँ कि कैसे भूमि सुधार को लागू करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकता है। आयोग ने अपने रिपोर्ट, 2008 में जमा की। इस रिपोर्ट में मुख्य रूप से कृषि संबंध के तीन आयामों–बटाईदारी, भूमि हदबन्दी की सीमा तथा इससे प्राप्त भूमि का वितरण, और भूदान से प्राप्त जमीनों के वितरण पर विशेष बल दिया गया था। भूमि हदबंदी की श्रेणियों से संबंधित सभी जटिलताओं और भ्रम को दूर करते हुए आयोग ने सभी तरह की जमीनों को ध्यान में रखकर भूमि हदबंदी की एकमात्र श्रेणी 15 एकड़ जमीन का बनाया। पहले से चली आ रही अन्याय पर आधारित मौखिक बटाईदारी प्रथा को समाप्त करने की अनुशंसा आयोग ने की। इसने बंटाईदारों को मनमर्जी तरीके से हटाने के खिलाफ कठोर प्रावधान बनाए, तथा इनके पंजीकरण पर जोर दिया ताकि उन्हें एक निश्चित अवधि की गारन्टी मिल सके। इन अनुशंसाओं का उद्देश्य बटाईदारों को मदद करना था ताकि उन्हें पहले दर्ज जमीन की जुताई के आधार पर बैंकों से ऋण मिल सके। आण्चर्य और बिडम्बना की बात यह है कि आयोग का स्वयं गठन करने वाली नीतीश सरकार ने इसके रिपोर्ट को बिना विधान सभा के पटल पर रखे एक सिरे से खारिज कर दिया। कारण स्पष्ट था कि मुख्यमंत्री, बिहार के प्रभुत्वशाली सामाजिक वर्गो को नाराज करने की हिम्मत नहीं जुटा पाए। लेकिन आयोग की सिफारिशों ने गरीब किसानों को उद्वेलित किया, तथा साथ ही साथ जमीन हासिल करने की उनकी अपेक्षाएँ पहले से कहीं अधिक बढ़ गई हैं। सम्भवत: आने वाले समय में ये सिफारिशें बिहार का ऑपरेशन बरगा बन सकती हैं बशर्ते अगर कोई राजनीतिक हल गरीबों को इस मुद्दे पर लामबन्द करने में फ़ल हो जाए।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि गरीबी दूर करने में तथा विकास को समावेशी बनाने में भूमि सुधार जैसे ढाँचागत परिवर्तन कितने अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में राज्य की भूमिका और प्रकृति को भी समझना महत्त्वपूर्ण है। भारतीय राज्य की प्रकृति तथा इसके सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के राजनीतिक कार्यक्रम अपने आप में जटिल है क्योंकि इसने स्पष्ट रूप से पूँजीवादी विकास का रास्ता अपनाया है। परंतु विद्यमान सामाजिक यथार्थ पूरी तरह से बाँध रहित पूँजीवादी विकास के अनुकूल नहीं है। राज्य को भू–स्वामी वर्ग के ऐसे विकास के प्रति विरोध का सामना करना पड़ेगा जो उनके हितों के प्रतिकूल है। सामाजिक रूप से शक्तिशाली भू–स्वामी वर्ग को नाराज करने का जोखिम उठाना कठिन है क्योंकि ग्रामीण कृषि समाज में उनका एक राजनीतिक दबदबा है। यहाँ तक की पूँजीपति वर्ग भी इस वर्ग के विरूद्ध कोई भी कदम उठाने से हिचकिचाता है, क्योंकि उसे प्रतिकूल अनपेक्षित परिणामों से डर लगता है। इसलिए शुरू में इस वर्ग (पूँजीपति वर्ग) ने अर्द्ध सामन्ती वर्ग से लड़ने के बजाय हाथ मिला लिया। इस प्रकार, पश्चिमी समाजों में जिस तरह से आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएँ अपनाई गई ठीक उसके विपरीत भारत आधुनिकीकरण के मार्ग पर ऐतिहासिक रूप से दो विरोधी सामाजिक वर्गो–पूँजीपति और अर्द्ध सामन्ती वर्ग के साथ आगे बढ़ा। इस तरह देश में गरीबी, असमानता और पिछड़ेपन का मूल कारण है – पूँजीपतियों और अर्द्ध सामंती वर्गो के मेल से बना प्रभुत्व का ढाँचा। इसलिए राज्य की प्रकृति और भूमिका एक नहीं हस्तक्षेप करने वाले राज्य से बदलकर कल्याणकारी और सक्रिय क्रियाशील राज्य हो जाने के बावजूद, आज राज्य उदारीकरण के संदर्भ में एक ऐसी भूमिका निभा रही है जो बाजार अर्थव्यवस्था के अनुकूल है। राज्य, जो हाल के वर्षो में कल्याणकारी कार्यो से पीछे हटता जा रहा है उसको समझने में नागरिक समाज की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। आज बहुत से ऐसे राज्य आज बहुत से क्षेत्रों में गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर उसको हिस्सेदार बनाकर कार्य कर रहे हैं। इस सदर्भ में प्रो. अमर्त्य सेन, ज्यां ड्रेज तथा एलेक्स द वॉल को उद्धृत करना आवश्यक है। इन विचारकों का मानना है कि सार्वजनिक कार्यो के सम्पादन में राज्य द्वारा उठाए गए कदमों का बहुत महत्व है। हालांकि एलेक्स द वॉल राज्य की सीमाओं को भी रेखांकित करता है। प्रो. सेन तथा ड्रेज राज्य की लोकतांत्रिक संस्थाओं में लोगों की सक्रिय सहभागिता के माध्यम से परिवर्तन की संभावना देखते है। इस संदर्भ में स्वतंत्र प्रेस अपनी एक निर्णायक भूमिका निभाती है। परंतु स्वतंत्र प्रेस

तब तक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकती है जब तक शक्ति की संरचना किए गए वायदे और लुभावने नारों को यथार्थ में न परिवर्तित कर दे। एलेक्स द वॉल का भी यह मानना है कि जब तक सरकार और अकालग्रस्त गरीब और शोषित लोगों के बीच में एक मजबूत राजनीतिक समझौता या करारनामा नहीं हो जाता तब तक लोकतांत्रिक योजनाएँ सफल नहीं हो सकती। राज्य लोक कल्याण को राजनीति के साथ जोड़ने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परंतु यह भी ध्यान रखने की बात है कि सिर्फ उदारवादी संस्थाओं और लोक कल्याणकारी संस्थाओं की उपस्थिति मात्र से ही सभी नागरिकों को समान व्यवहार का अधिकार नहीं मिल जाता। यहाँ तक कि कुछ नितान्त बुनियादी सेवाओं में भी इस तरह की समानता का सर्वथा अभाव दिखता है। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि स्वतंत्र प्रेस होने के बावजूद गरीबी दूर करने में राज्य अभी तक असफल क्यों रहा है। यह भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि हम संस्थाओं और उनसे जुड़े क्रिया-कलापों से आगे जाकर राजनीतिक संस्कृति और प्रक्रियाओं को देखें जिसके परिधि में रहकर राज्य अपने कार्यों का संपादन करता है।

काऊंसिल फॉर सोशल डेवेलपमेंट के एक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस तरह की राजनीतिक संस्कृति समाज में व्याप्त है उससे गरीबी-उन्मूलन की नीतियों का लाभ गरीबों तथा समाज के कमजोर वर्गों को नहीं मिल सकता है। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि बहुत से गांवों में अन्त्योदय कार्ड होने के बावजूद महीनों से लोगों को दो रूपए किलो चावल नहीं मिला है। इक्के-दुक्के जगहों पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं, तथा स्वास्थ्य संबंधित आशा कार्यकर्त्ताओं अधिकांश समय अनुपस्थित होती हैं। हालांकि बिहार के सभी जिले में 2006 से ही राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार सुनिश्चित योजना को लागू किया गया परंतु उल्लेखित अध्ययन से स्पष्ट है कि लोगों के पास जॉब कार्ड है, परंतु कार्य नहीं है। इस अध्ययन के साथ-साथ बहुत से अन्य अध्ययनों का यह मानना है कि रोजगार योजना का वास्तविक उद्देश्य तकनीकी रूप से गरीबी को मापना है तथा अधिक से अधिक लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है, न कि इन लोगों को सशक्त बनाना है। इस तरह की सोच वालों का यह मानना है कि गरीबी और भूखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और उत्पादन के साधनों का गरीबों तक नहीं पहुँच होने के कारण, एक परिणाम के रूप में उभकर सामने आती है। वस्तुतः ये योजनाएँ और नीतियाँ गरीबी उन्मूलन के न तो ढांचागत कारणों को धन में रखती हैं और न ही समाज के ढाँचागत असमानता को दूर करने का प्रयास करती है। वास्तविकता यह है कि राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की प्रकृति ऐसी है जो गरीबी और असहायता को जन्म देती है, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इसका उल्लेख गरीबी को समझने में एक निर्णायक कारक के रूप में इसके बहुत सारे उपागमों में नहीं मिलता है। गरीबी की समस्या अपने आप में एक तकनीकी समाधान करने की कोशिश करते हैं तो ऐसी स्थिति में यह गरीबों और बेसहारा लोगों का मजाक उड़ाने वाली बात होगी। इतना ही नहीं, इसका एक दुष्परिणाम यह भी होगा कि गरीबी और विकास की समस्या राजनीतिक न रहकर गैर-राजनीतिक बन जाएगी। अतः हमें इसे ठीक से समझने के लिए निर्धनता की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के ऊपर विशेष ध्यान देना होगा।

काबिलेगौर है कि गरीबी-उन्मूलन तथा विकास के लिए यह आवश्यक है कि : (अ) प्रत्येक व्यक्ति का अपने श्रम पर अधिाकार हो, (आ) भूमि और उत्पादन के अन्य संसाधनों पर अधिकार हो, (इ) स्वयं के श्रम के द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर अधिकार हो।

हालांकि भूमि से संबंधित असुरक्षा के भाव का उल्लेख हमें सहत्राब्दी विकास लक्ष्य में मिलता है, परंतु इसके बावजूद गरीबी-उन्मूलन के कार्यक्रम और रणनीति में भूमि सुधार का अपेक्षाकृत अभाव प्रतीत होता है। इसका ज्वलंत उदाहरण बिहार भूमि सुधार आयोग की सिफारिशों को बिहार सरकार द्वारा सिरे से खारिज करना है।

भूमि के साथ समाज की अन्य संरचनाएँ भी समावेशी विकास के मार्ग में बाधक बनती है। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वर्ग, जाति एवं लिंग पर आधारित प्रभुत्व और शोषण के ढांचों का आमूलचूल उन्मूलन करके ही

सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इस संबंध में सशक्तीकरण का कोई भी प्रारूप तभी प्रभावी हो सकता है जब समाज का उपेक्षित वर्ग लाभकारी नीतियों का उदासीन प्राप्तकर्ता न होकर, इन नीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन में सक्रिय भागीदारी निभाए। इसके लिए परमावश्यक यह है कि उसे सोच, चयन, मोलभाव, वार्ता, योजना, निर्णय, चुनौती इत्यादि की स्वतंत्रता प्राप्त हो ताकि वह उनके लिए जो समावेशी विकास की नीतियां बनाई जायें, उनका वे सफल तरीके से एक वैकल्पिक प्रारूप प्रस्तुत कर सकें। अतः यह आवश्यक है कि एक ऐसा राजनीतिक धरातल तैयार हो जिसके अन्तर्गत भूमि-सुधार, मानवाधिकार, लैंगिक अधिकार, नागरिक समाज सुधार, संगठन-निर्माण तथा संघर्ण का अधिकार आदि प्रभावी रूप से सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को एक सशक्त आधार प्रदान कर सकें। इस प्रकार, सामाजिक साधन न्याय की स्थापना के लिए गरीबी-उन्मूलन और समावेशी विकास एक प्रभावशाली साधन के रूप में उभकर तभी आ सकते हैं जब हम सामाजिक और आर्थिक ढांचागत परिवर्तनों को फलीभूत करेंगे और उन्हें मात्र खोखले नारों और धोखेबाजी तक ही सीमित नहीं रखेंगे।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था ने पहले की तुलना में बिहार में काफी कुछ अच्छा काम किया है। परंतु यह भी सोचना आवश्यक है कि पूंजीवादी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कितनी प्रभावकारी तरीके से ढांचागत अधिकारों और समावेशी विकास को सुनिश्चित कर सकती है। अतः नव-उदारवादी भूमंडलीकरण के दौर में विकास के प्रति अति उत्साही होकर कदम उठाने से बेहतर यह होगा कि बहुत समय से लंबित पड़े भूमि सुधार तथा उससे संबंधित मुद्दों का तत्काल समाधान किया जाये ताकि लोगों में असंतोष को दूर किया जा सके। यदि ऐसा नहीं हुआ तो बिहार में समावेशी विकास का उद्देश्य अधुरा और अपूर्ण ही रह जाएगा।

संदर्भ-सूची :-

1. जॉनसन, डेविड, 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ जस्टिस वाइस्ले, ब्लैकवेल, वेस्ट एसेक्स, 2011, पृ. 201-204.
2. राजीव भार्गव, पॉलिटिक्स एण्ड एबिक्स ऑफ द इण्डियन कॉस्टीच्यूशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली-2008, पृ. 23.
3. बिहार तथा भोजपुर जिले में भूमि-सुधार की दुर्दशा का बयान करते हुए वर्ल्ड बैंक विशेषज्ञ उल्फ लैडेजिन्सकी ने लिखा है कि भूमि दस्तावेज अस्पष्ट और अपूर्ण थे जिसमें असली जोतदार रैयतों का कहीं उल्लेख नहीं था। इन रैतयों को लगातार एक प्लाट से दूसरे प्लाट पर बदल दिया जाता था ताकि टेनेन्सी कानून का उल्लंघन किया जा सके। वास्तविक भूमि जोतनेवाला रैयत सदैव असुरक्षा के भाव ग्रसित रहता था। लैडेजिन्सकी 1970, पृ. 33, मुखर्जी, कल्याण और राजेन्द्र सिंह यादव, भोजपुर : नक्सलिज्म ऑन द प्लेन्स ऑफ बिहार, न्यू देहली, 1980, राधाकृष्ण।
4. एन.एस.एस.ओ रिपोर्ट, 491:2003:4
5. बाजार अर्थव्यवस्था सामाजिक और आर्थिक रूप से प्रभुत्वशाली वर्ग का पक्षधार है, इसलिए ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में लोकतांत्रिक राज्य का दायरा अत्यधिक सीमित हो गया है। यहाँ तक कि अच्छे लक्ष्य भी हासिल हुए बिना रह जाते हैं, क्योंकि पराश्रित वर्गों का प्रभुत्व के ढाँचे को बनाए रखने में अपना स्वार्थ निहित है।
6. ड्रेज, ज्यॉ एण्ड अमर्त्य सेन, 'हंगर एण्ड पब्लिक एक्शन', ऑक्सफोर्ड, 1989, पृ. 6.
7. हैरिस, बरबारा, लिमिटेड ऑफ लेसन फॅम इण्डिया इन डोनॉल्ड कॉर्टिस एण्ड अदर्स (एडिटेड), प्रिवेटिंग फेमिन पॉलिसिस एण्ड पारस्पैक्ट्स फॉर अफ्रीका, लन्दन, 1988, रूटलेज, पृ. 165.
8. डे वॉल, एलेक्स, 'फेमिन क्राईम्स पॉलिटिक्स एण्ड द डिजास्टर रिलीफ इण्डस्ट्री इन अफ्रीका', इण्डियाना, इण्डियाना प्रेस, 1997, पृ. 11.
9. मनोरंजन मोहंती (स.) इंडिया : सोशल डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2010, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली, 2011, पृ. 234-235.
10. लार्स एम्वर्ग -पेंडरसन व नील वेबस्टर, इन द नेम ऑफ द पुअर, जेड बुक्स, लन्दन, 2002, पृ. 30.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 91-93
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Perspective on Regional Political Parties in India

-Ajay Kumar Singh
Assistant professor in Political Science, Dr. P.N. Singh Degree College, Chapra

Regional or state level political political parties emerged in India owing to geographical diversity in India. On account of large geographical boundaries, there could not be equal development of India. As a result regional dissatisfaction began to burgeon across the country and organized in the form of regional political parties in the elections. Based on regional interests, these regional parties did not get any difficulty in garnering local or regional mass support. As a sequel, these parties not only ceased the monopoly of the national parties but also played a significant role in the central and state governments.

Nowadays, regional politics has acquired primacy in the national politics. All national parties, therefore, provide a place to regional or state-level parties in the governments under coalitional programme and the formation of coalition governments mainly depends upon the role of regional parties. The contemporary Indian politics highlights the salient role of state level parties. The national party itself is active today in making its regional identity and the formation or dissolution of governments in the Centre and States is based on this regional balance.

Regionalism and Party Politics :-

Regionalism purports a small area of the country which maintains its separate identity on the basis of geographical, social, cultural economic, historical, political, ethnic and linguistic attributes. The world 'region' has verified connotations. The composing chain of a particular region is primarily 'cultural homogeneity' . A particular geographical area may be addressed as a particular region. Man is a social animal who develops emotional attachment which the vicinity of his inhabitance and regional devotion 'A region is a profound sociological fact neglected in its being treated as the nucleus of social aggregation for multiple purposes'[1]

Analyging regionalism in Indian politics Prof. Rajni Kothari maintains that the danger before the country is the secession of states from the federation. People have the apprehension that either the country will be divided into independent smaller states or dictatorship will be established if the sentiment of provincialism or demand of an autonomy or special status for states increases. The sentiment of separatism is intense and dangerous among non- aryan races who have not assimilated themselves in the mainstream of Indian culture, e.g., advises of north-east region. Separatist movement has been growing in specialised areas within the states. New problems have been evolving from

aspirations for rights of the oppressed sections and groups who have entered in the realm of politics.[2] As regards the linguistic perspective of regionalism, Southern India status prefer English to Hindi as the official language. 'The Hindi policy of the Government of India under its present leadership is, in the opinion of the South, Sheer imperialism and as Hindi imperialisms it is denounced on the platform and in the press'[3]

Another tendency of regionalism is the 'Sons of the soil doctrine' which requires special protection to the domiciles of a state or area in matters of residence, employment etc. But Indira Gandhi outrightly rejected the sons of the soil doctrine as dangerous to national integrity and detrimental to the economic development of different areas.[4]

However, discussing the positive aspect of regionalism, Dr. Khan has opined that the conception was proved wrong that the Indian federation will crack into pieces owing to regionalism.[5] On the contrary, the opinion has been proved more real that the co-existence between regionalism and nationalism is feasible.[6]

In a federal system of a country, different levels of party system are seen along with different levels of government. In Switzerland, the fundamental base of organization of political parties is canton and in the USA the national level of party is the federation of state level parties. Decentralized loose party organization is the consequence of structural aspect of the federal system[7].

The implementation of the federal system in practice does not so much depend upon the written constitution and its basic attributes but on the existing pattern of party system. 'Where a single party has control over affairs at the centre as well as in the states an alternative and extra constitutional channel become available for the operation of centre- states relationships. In practice this channel has been very active during congress party rule and has governed the tender of centre-state relationships'[8]. This was true before 1967, when the Congress was the single dominant party ruling at the Centre and in the states. 'This gave the Indian federation the Centre could not impose on the states through the apparatus of Constitution, it could enforce through party channels. India though federal in theory' became monolithic in practice.'[9]

The Congress Working Committee gave directive to the states relating to policy making in respect of Zamindari abolition, land reforms, cooperative farming and primary education. Whereas these subjects fall under the jurisdiction of states 'The working committee also supplemented the National Development Council and became an arm of the central government reaching out to influence state behaviour in legislative areas inaccessible to direct central control'[10]. The functioning of most of the national parties is based on the communist idea of democratic centralism in which the power flows from the top to the bottom.'[11] However, the working of the federal system depends upon the organizational structure of the ruling party. Sometimes central party leadership functions in unitary style and ignores the state level party leadership and party units. In such a condition, a tight federal form develops. Sometimes state level leadership and party organization works autonomously and

ignores central leadership. In this condition a loose federal form grows. The more will be the factionalisation in the political party, the looser will be the federal form and the more will be the solidarity of party at the central, level, the more tight federal system will emerge.[12]

In a federal system, the formation and development of political parties is very easy on account of existing existing separate provinces and regions. Party politics is influenced by the size, number, integrity and diversity of federating units. If the geographical size of federating provinces is large and their number is less, the possibility of the formation of regional political parties is more. If there is homogeneity among the federating units of a federation, the possibility of the development of a strong and organized regional parties increases. If a large among of autonomy is available to the constituent provinces of the union, he political regionalism will develop.

In a country where provincial or regional party is powerful, decentralized federal system will in practice takes birth. In a federal system, the advent of regional parties and their increasing power strengthen 'the concept of autonomy of states' and awaken consciousness towards regional demands. Regional political parties make the federalising process dynamic by balancing the Centre-State relations.[13]

NOTES & REFERENCES :-

1. Maheshwari, Shri Ram State Government in India Macmillan Delhi, 1979, p. 185.
2. Kothari, Rajni, Politics in India, Orient Longman, New Delhi, 1970, pp. 330-332.
3. Ruthnaswamy, M. 'Regionalism', in Seminar (23), July, 1961.
4. Noorani, A. G. 'The Sons of the Soil Doctrine', in Indian Express, 20 April 1980, p.6.
5. Khan, Rasiuddin, 'The Regional Dimensions', in Seminar (169), 1974.
6. Jones, Morris. ' Language and Region within India Union', in Masion, Phillip (ed.) India and Ceylon : Unity and Diversity, 1967.
7. Truman, David B. 'Federalism and the Party System in McMohan, W. (ed.) Federalism : Mature and Emergent. 1955, p. 133.
8. Administrative Reforms Commission on Centre- State relationships.
9. Chand, Phul, 'Federalism and Indian Political Parties' in Singhis, L.M. (ed.) Indian Parties and Politics, 1972, pp. 162-66.
10. Kochanek, S.A. The Congress Party of India : the Dynamics of One- Party Democracy Princeton, 1968, p. 154.
11. Santhanam, K. 'Political Parties and Indian Democracy', Journal of Constitutional and Parliamentary Studies, 1972, 6 (I), 1
12. Goyal, O.P. India : Government and Politics, New Delhi, 1979, p. 96.
13. Chand, Phul, op.cit, pp. 147-49.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 94-97
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार में जाति की राजनीति का समकालिक संदर्भ

-खूशबू परवीन

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

बिहार की राजनीति बहुत हद तक जाति और धर्म पर आधारित चेतना से प्रभावित रही है। 1967 तक उच्च जातियां राजनीति और राजनीतिक दलों में प्रभावी रहा। लेकिन 1967 के बाद मध्य जातियों का प्रादुर्भाव हुआ और कोइरी, यादव तथा कुर्मी जातियों ने राजनीतिक परिदृश्य में उच्च जातियों को प्रतिस्थापित किया। पासवान और चमान सरीखे दलित जातियों ने भी राजनीति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किए। 1990 के दशक के बाद बिहार की राजनीति में जनता दल (यूनाइटेड) और राष्ट्रीय जनता दल जैसे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने प्रभुता प्राप्त की जबकि राष्ट्रीय लोक समता पार्टी और जन अधिकार पार्टी जैसे छोटे राजनीतिक दल भी सक्रिय हो गए।[1]

सामाजिक विज्ञानी डॉ० शैबाल गुप्ता के अनुसार अक्टूबर 2008 में मुम्बई में बिहारी छात्रों के साथ मार पीट बिहारी उप-राष्ट्रवाद को समेकित किया है।[2]

राजनीतिक पंडितों का मानना है कि बिहार राजनीतिक रूप से देश में सबसे जागरूक राज्य है। यहां का हर व्यक्ति देश, प्रदेश और दुनिया की राजनीति को समझता है और उसका भली-भांति विश्लेषण भी करता है। इतना जागरूक होने के बाद भी ग्राम पंचायत चुनाव से लेकर विधानसभा चुनाव और लोक सभा चुनाव तक हर चुनाव में जाति हावी होती हैं इसलिए तो विकास के नाम पर केन्द्र में सत्ता हासिल करने वाले प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी को भी बिहार विधान सभा चुनाव में जाति का कार्ड खेलना पड़ा। आखिर यह सवाल उठता है यहां जातिवाद क्यों है?[3]

बिहार में जातिवाद को समझने के लिए यहां की सामाजिक व्यवस्था पर गौर करना जरूरी है जो सदियों से चली आ रही है। हिंदू धर्म में पहले समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में बांटा था। सभी के कार्य अलग-अलग थे जो उसके काम करने की क्षमता पर निर्धारित होता था। लेकिन बाद में यह जन्म पर आधारित हो गया। ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण का काम, क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय का काम, वैश्य का बेटा वैश्य का काम, शूद्र का बेटा शूद्र का काम करने लगा। इससे समाज में एक-दूसरे के बीच दूरियां पनपने लगी। फिर धीरे-धीरे यह छूआछूत में तब्दीली हो गया। ब्राह्मण पठन-पाठन और क्षत्रिय राजकाम चलाने का कार्य करता था इसलिय यह श्रेष्ठ कहलाने लगा। वैश्य व्यापार करता था, यह न तो श्रेष्ठ था ना ही निम्न था। लेकिन शूद्र साफ सफाई और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करता था। इसलिए इसकी स्थिति सामाजिक और आर्थिक तौर पर दयनीय होती चली गयी जिससे हिंदू समाज में असमानता और भेदभाव बढ़ता चला गया।

हिंदू समाज की यह स्थिति आजादी के बाद भी जारी रही लेकिन धीरे-धीरे इसमें सुधार हुआ। आजादी के बाद बिहार में लोकतांत्रिक सरकार बनी। लेकिन सामाजिक व्यवस्था में कोई खास बदलाव नहीं हुआ। गांवों में ऊंची जातियों का पिछड़ी जातियों और दलितों पर निरंकुशता लगातार चल रहा था। ऊंची जाति के लोग उसे अपने सामने कुर्सी पर बैठने तक नहीं देते। इतना आतंक था कि कुछ भी उनके खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। चुनाव में वोट डालने की बात तो दूर की बात थी। इस स्थिति के लिए पिछड़ी जातियों और दलितों की आर्थिक हालात भी

जिम्मेदार थी जिसकी वजह से दबंगों और सामंतों के नीचे उसे झुककर रहना पड़ता था, उसकी चाकरी करनी पड़ती थी।[4]

बोफोर्स कांड के बाद 1989 में केंद्र में बी.पी. सिंह के नेतृत्व में जनता दल की सरकार बनी। उसी दरम्यान बिहार में लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार और राम विलास पासवान जनता दल के बड़े नेता के तौर पर उभर कर सामने आए। उन्होंने समाज की इस स्थिति को समझा और इसे अपना राजनीति मुद्दा बनाया। 1990 का चुनाव अगड़ा बनाम पिछड़ा को मुद्दा बनाकर लड़ा और लालू यादव के नेतृत्व में बिहार में सरकार बनी। इसके बाद बिहार में सामाजिक बदलाव देखने को मिला। पिछड़ों और दलितों की राजनीतिक सक्रियता बढ़ी और वे ऊंची जातियों के लोगों के सामने तनकर खड़े होने लगे जिसका श्रेय लालू प्रसाद यादव को गया। उसके बाद से जातीय गोलबंद जमकर होने लगी। सभी पिछड़ी जातियां ऊंची जातियों के खिलाफ गोल बंद होने लगी। लालू यादव के शासन काल में पिछड़ी जातियों का बोल बाला बढ़ गया। अगड़ी जाति बैकफुट पर आ गई जो पहले प्रदेश की राजनीति को लीड करती थी। इस तरह लालू प्रसाद यादव ने बिहार में 15 साल तक राज किया। लेकिन लालू के बढ़ते अहंकार के चलते उनके खास दोस्त नीतीश कुमार से उनकी खटपट हो गयी।

नीतीश कुमार और लालू प्रसाद यादव के रास्ते अलग हो गए। नीतीश ने समता पार्टी बनाई और लालू ने राष्ट्रीय जनता दल। रामविलास पासवान ने भी अलग होकर लोक जनशक्ति पार्टी बनाई। फिर बिहार में राजनीतिक समीकरण बदल गया। नीतीश ने भाजपा के साथ पिछड़ा और अगड़ा को एक साथ लेकर 2005 में सरकार बनाई जो 10 साल तक चली। 1990 से लेकर अब तक इन 25 वर्षों में बिहार की राजनीति में जातिवाद पूरी तरह से समाहित हो गया। हर जाति के लोग चाहे कितने भी पड़े लिखे क्यों न हो अपनी ही जाति के उम्मीदवार को वोट देना चाहते हैं चाहे उम्मीदवार क्रिमिनल क्यों न हो।

अपनी ही जाति के उम्मीदवार को वोट देने का खास कारण यह है, जब ऊंची जातियों के लोगों समकक्ष नीची जातियों के लोगों खड़े होने लगे तो समाज में कई बार संघर्ष हुआ, मारपीट हुई, क्योंकि वर्चस्ववादी और सामंतवादी सोच वाले लोग निचली जातियों के लोगों को अपने समकक्ष खड़े होने देना नहीं चाहते थे। इसलिए अपने बचाव में लोग अपनी जातियों के दबंगों को चुनकर विधानसभा पहुंचे। इसी तरह ऊंची जाति, पिछड़ी जाति, दलित अपने-अपने हितों को देखकर अपनी-अपनी जाति के उम्मीदवार को वोट करने लगे। लेकिन धीरे-धीरे जातिवाद में कमी आई हैं लेकिन इसकी जड़े समाज में आज भी मजबूत है जिसका असर इस चुनाव में भी देखने को मिला।[5]

बिहार में राजनीति और शासन को जाति कैसे आकार देती है?

सत्ता के सामाजिक संतुलन के बारे में बिहार चुनाव क्या कहता है? हालांकि अधिकांश दलों ने अपने मूल सामाजिक आधार से परे पहुंचने का प्रयास किया, लेकिन कुछ पूर्वानुमानिक पैटर्न थे। भाजपा द्वारा मैदान में उतारे गए लगभग आधे उम्मीदवार अगड़ी जातियों के थे और लोक नीति-सी. एस. डी. एस. के बाद के चुनावों के अनुसार, अधिकांश उच्च जाति के मतदाताओं ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) का समर्थन किया।

राजद के भीतर के आधे टिकट यादव और मुस्लिमों के पास गए जिन्होंने भारी मतों से इसका समर्थन किया। कुर्मी और अति पिछड़ा वर्ग (ई.बी.सी.) ने जनता दल (यूनाइटेड) का समर्थन किया। यह कोई झटका नहीं है कि चुनावों में जाति का मुद्दा, हालांकि इस बात से जुड़ा होना चाहिए कि सरकार क्या करती है? क्या ऐतिहासिक विकास हमें एक प्रकार की बीमा पॉलिसियों के वारे में शिक्षित करते हैं जो बाद के अधिकारियों को प्राथमिकता देने की अधिक संभावना है?

आजादी के लंबे समय बाद प्राथमिक तौर पर बिहार की राजनीति में कांग्रेस के भीतर अगड़ी जातियां हावी थीं। 1990 के चुनाव तक उच्च जाति के जमींदारों ने लगातार 40 प्रतिशत से अधिक सत्तारूढ़ गठबंधन बनाए। इनमें से

3 से अधिाक राज्य वित्त लंबे समय तक, शाायद आश्चर्यजनक रूप से, कृषि और सिंचाई में निवेश नहीं गए।

जमींदारी उन्मूलन और हरित क्रांति के लाभकारी गुणों के कारण 1950 के दशक से एक अन्य पिछड़ी जाति (ओ.बी.सी.) मध्यम वर्ग का उदय होना शुरू हुआ। जैसे ही उच्च जाति के जमींदारों का गढ़ कमजोर हुआ, यादवों, कुर्मियों और कोइरी ने खुद को राजनीतिक रूप से मुखर कर लिया। यह पहली बार पूरे कांग्रेस में जातिगत लड़ाई में दिखाया गया था।

जैसा कि सैमुअल हंटिंगटन ने भविष्यवाणी की थी, बढ़ती सामाजिक लामबंदी को बढ़ाने के लिए वर्तमान प्रतिष्ठानों की कमी से राजनीतिक अराजकता पैदा हुई। 1967 से 1972 के बीच, बिहार अधिकारियों के व पूरी तरह से अलग समायोजन और राष्ट्रपति शासन के तीन अवधियों के माध्यम से चला गया।[6]

1967 में कांग्रेस की गिरावट ने छोटे दलों के उभरने के लिए जगह बनाई। इस अवधि में जयप्रकाश नारायण (जे.पी.) आंदोलन का उदय हुआ। लालू प्रसाद और नीतीश कुमार सहित अधिकांश समकालीन ओ.बी.सी. राजनीतिक नेता जे. पी. आंदोलन के लिए अपने राजनीतिक कैरियर का तलाश करते हैं। कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व वाली पहली गैर-कांग्रेसी सरकार ने 1977 में जीत हासिल की और 1990 में, प्रसाद के नेतृत्व वाली पहली ओ.बी.सी. बहुमत वाली सरकार ने सत्ता संभाली। इस चुनाव ने बिहार में उच्च जाति के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया।

शासन में राजद का खराब रिकार्ड कोई रहस्य नहीं है। राज्य के विकास व्यय में निरपेक्ष रूप से और समग्र बजट के अनुपात में गिरावट आई। जैसे ही देश के बाकी हिस्सों में आर्थिक उदारीकरण का लाभ उठाया, बिहार की प्रति व्यक्ति आय में गिरावट आई। लेकिन यह अवधि निचली जाति के सशक्तिरण के लिए परिवर्तनकारी साबित हुई।

पहली बार, राज्य विधानसभा में सामाजिक न्याय पर स्पष्ट रूप से चर्चा की गयी थी। वास्तव में, लगभग 20 प्रतिशत नीति भाषण पहचान आधारित मुद्दों के लिए समर्पित थे।

सत्ता के पदों पर निचली जाति के अधिकारियों की नियुक्ति सरकार का प्रमुख एजेंडा बन गया। मेरे प्राथमिक शोध के आधार पर, हालांकि उच्च जातियों पर उच्च नौकरशाही का वर्चस्व बना रहा, यादव और मुस्लिम राज्य के नागरिक अधिकारियों को राजद के अधीन भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) में पदोन्नति किए जाने की संभावना पांच गुना अधिक थी।[7]

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थानीय स्तर पर, इस अवधि में ओ.बी.सी. और दलित बी.डी.ओ. और एस. एच.ओ. का अनुपात दो गुना हो गया। हालांकि इस प्रक्रिया में, कमांड और अधिकारिक प्रक्रियाओं की श्रृंखला टूट गई थी। मुख्यमंत्री कार्यालय में सत्ता केंद्रित हो गयी। नौकरशाही में उच्च जाति के प्रभुत्व को बनाए रखने से बचने के लिए पद खाली रहते हैं। परिणामस्वरूप राज्य की क्षमता बिगड़ गयी।

अलग 15 साल, नीतीश कुमार के तहत, राज्य की राजनीति में एक और विशिष्ट चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। समकालीन बिहार में एक ब्राह्मण मुख्यमंत्री अकल्पनीय होगा, लेकिन भाजपा-जद (यू.) गठबंधन के तरत सरकार में उच्च जाति का प्रतिनिधित्व एक बार फिर बढ़ गया। त्रिवेदी सेंटर फॉर पॉलिटिकल डेटा के आंकड़ों के अनुसार, 2020 के स्वर्णों का अनुपात पिछले चुनाव की तुलना में अधिक है। यह नीति के लिए निहितार्थ है।[8]

राजद के कार्यकाल में राज्य की क्षमता कम थी, फिर भी खर्च करने वाले पैटर्न सामाजिक क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो गए। जेडी (यू.) बीजेपी गठबंधन के तहत, राज्य ने सड़कों पर सबसे नाटकीय वृद्धि के साथ, आर्थिक खर्च में आनुपातिक वृद्धि देखी। केंद्र से संसाधनों की अधिक उपलब्धता के कारण सामाजिक क्षेत्रों में निरपेक्ष व्यय बहुत अधिक बढ़ गया।

हालांकि अलग पांच वर्षो में सरकार के नीतिगत एजेंडे की भविष्यवाणी करना मुश्किल है, लेकिन पिछले रूझानों से दो नतीजे सामने आते हैं। एक, केंद्र और राज्य दोनों जगहों पर बी.जे.पी. की मौजूदगी केंद्रीय हस्तांतरण के माध्यम

से बिहार के मदद करेगी। और दो, इन संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक क्षेत्रों के लिए समर्पित होने की संभावना है।

शोध बताते हैं कि स्वर्णों के अधिक प्रतिनिधित्व से विकासवादी उन्मुखीकरण पर जोर दिया जाता है, न कि पुनर्वितरण की नीतियों के बजाय, हम अन्य कारकों जैसे कि राजनीतिक विचारधारा, भागीदारी आय और राज्य क्षमता के लिए जिम्मेदार होते हैं।[९]

संक्षेप में, जाति और जाति-आधारित प्रतिनिधित्व केवल चुनाव के परिणाम को समझने में नहीं, बल्कि नीति के लिए भी मायने रखते हैं। राज्य में सत्ता में कौन है इसका राज्य पर क्या असर पड़ता है।

संदर्भ :-

1. कुमार, संजय (5 जून 2018) पोस्ट मंडल पॉलिटिक्स इन बिहार : चेंजिंग इलेक्टोरल पैटर्न्स, सेज पब्लिकेशन्स
2. फैजन, अहमद (2008) ''बिहार वायोलेन्स : राज द गेनर'', द टाइम्स ऑफ इंडिया, पूणे, 27 अक्टूबर, पृ. 6
3. सिंह, रामानुज (3 नवंबर 2015 को अपडेटेड) ''क्यों है बिहार में जातिवाद'', जी न्यूज हिंदी
4. पूर्वोक्त
5. पूर्वोक्त
6. चक्रवर्ती, पौलोमी (19 नवंबर 2020 को अपडेटेड) ''इन बिहार, हाउ कास्ट शेप्स पॉलिटिक्स एंड गवर्नेन्स'', हिंदुस्तान टाइम्स।
7. पूर्वोक्त।
8. पूर्वोक्त।
9. पूर्वोक्त।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 98-103
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में सामाजिक न्याय के प्रशासन में व्याप्त समस्याओं का परिशीलन

–कुमारी माया रानी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

भारत का संविधान विश्व का एक अग्रणी संविधान है जिसने अपने प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय के संकल्पों को व्यक्त किया है तथा न्याय-प्रशासन को सरकार के एक सहायक उपांग के रूप में न्याय-दर्शन को व्यावहारिक बनाने का दायित्व प्रदान किया है। इस क्षेत्र में पिछले तीन दशकों से बहुत अधिक प्रयास किए गए हैं। न्याय प्रशासन के अंतर्गत इन प्रयास क्षेत्रों की तह तक पहुँचने पर अनेक समस्याओं एवं चुनौती क्षेत्रों को उद्घाटित किया जा सकता है जिनकी व्याख्या निम्नांकित क्रम में की जा सकती है-

1. विधिक सहायता कार्यक्रम के क्षेत्र में व्याप्त समस्याएँ :-

भारत में न्यायिक प्रक्रिया को सहज एवं सुलभ बनाने के प्रयासों में विधिक सहायता संबंधी योजना के क्रियान्वयन संबंधी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। विधिक सहायता को सम-न्याय एवं सामाजिक-न्याय के उद्देश्य के साथ लक्ष्योन्मुख बनाया गया है, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से सामाजिक-न्याय की स्थिति का अवलोकन करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि सामाजिक-न्याय और सम-न्याय की ऊंची उद्घोषणाएं निर्धन और पद-दलित के लिये आज भी मरु-मरीचिका समान हैं।

आज भी सामाजिक-न्याय लोगों को पहुंच से बहुत दूर है।[1] इस क्षेत्र में व्यावहारिक स्तर पर अनेक कठिनाइयों एवं समस्याओं को अनुभव किया गय है जिनका विश्लेषण निम्नांकित बिंदुओं में किया जा सकता है-

(क) न्यायालयों की अपर्याप्त संख्या :- उचित संख्या में न्यायालयों की अपर्याप्तता एक ऐसी सीमा रेखा है जो न केवल सस्ते एवं सुलभ न्याय के सिद्धांत का हनन करती है, अपितु विधिक सहायता कार्यक्रम के लक्ष्य एवं उद्देश्य भी इससे सीमित हो जाते हैं। केंद्र एवं राज्य स्तर पर ऐसे अनेक अधिनियम बनाये गये हैं जो दीवानी एवं फौजदारी विवादों को जन्म देते हैं। देश की बढ़ती जनसंख्या तथा नागरिकों के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के कारण विवाद बहुत बढ़ गये हैं और उनके अनुपात में न्यायिक अधिकारियों की संख्या नहीं बढ़ पाई है। न्यायाधीशों की अपर्याप्तता के कारण व्यवहार में विधिक सहायता के समस्त प्रयास धीमे पड़ जाते हैं।

(ख) अभिभाषक वर्ग के सक्रिय सहयोग एवं सेवाओं की अपर्याप्तता :- विधिक सहायता की प्रक्रियात्मक कार्यवाहियों में अभिभाषक वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्य स्तर पर उच्च-न्यायालय विधिक सहायता एवं सलाहकार समिति तथा उनके निर्देश में जो जिला-स्तरीय समितियां गठित की गई हैं उनमें विधिक मामलों में आर्थिक सहायता देने के संबंध में प्रावधान अधिक सरल एवं सुलभ बनाने में अभिभाषक वर्ग को महत्वपूर्ण कड़ी माना गया है किंतु इस योजना के अंतर्गत अभिभाषकों को आवंटित की जाने वाली धन-राशि एवं पारिश्रमिक अपर्याप्त होने के कारण अनुभवी अभिभाषक इसमें अपना योगदान निष्ठा एवं लगन से नहीं दे पाते। अभिभाषक वर्ग के लिये इस योजना हेतु समय, साहस एवं धन जुटाने के संभव प्रयासों के प्रति उत्साह का अभाव पाया गया है।[2]

(ग) पक्षकारों की कानूनी अनभिज्ञता :- सामान्यत: निर्धन पक्षकारों को यह पता नहीं होता है कि उनके कानूनी अधिकार क्या हैं और कानून के अंतर्गत उनके क्या दायित्व हैं। कहीं-कहीं पर सामाजिक मान्यताएं, परंपराएं

तथा रीति-रिवाज ऐसे हैं जो कानून से मेल नहीं खाते। आम जनता को अधिकारों की जानकारी है किंतु इसकी जानकारी नहीं है कि अधिकारों को प्राप्त करने के लिये उन्हें क्या करना चाहिये।[3]

(घ) साक्षी–व्यय की समस्या :– निर्धन पक्षकारों को साक्षी-व्यय की कठिनाई भी उठानी पड़ती है। निर्धन व्यक्ति कभी-कभी धन के अभाव में साक्षीगण को अपने पक्ष में परीक्षित किये जाने हेतु उपस्थित रख पाने में असमर्थ होता है तथा साक्षीगण के कथन या साक्ष्य के अभाव में निर्धन व्यक्ति सही न्याय से वंचित रह जाता है।

(ड़) आर्थिक कमजोरी :– निर्धन पक्षकार अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण अच्छे अधिवक्ता की सेवाएं प्राप्त नहीं कर सकता। अधिवक्ताओं की आय का एकमात्र स्रोत पक्षकार द्वारा दिये जाने वाला शुल्क होता है। कुछ अधिवक्ता स्वेच्छा से निर्धन व्यक्तियों को अपनी सेवायें देने के लिए न्यायालय के समक्ष अपने आपको प्रस्तुत करते हैं। निर्धन व्यक्ति प्रायः यह भी अनुभव करते हैं कि उनके अधिवक्ता को दिये जाने वाले वांछित मान देय एवं शुल्क के अभाव में अधिवक्ता उनसे संबद्ध प्रकरणों में रूचि नहीं दिखाते।

(च) राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सेवा योजनाओं के व्यापक विस्तार के बावजूद इसका क्रियान्वयन पक्ष अभी की सुदृढ़ नहीं है। विधि परामर्श केन्द्रों की स्थापना हो अथवा क्लिनीकल ऐजुकेशन का संदर्भ, इससे संबंधित कोई भी कार्य अथवा प्रगति इस योजना के अंतर्गत निर्धारित नहीं की गई है। विधिक सहायता के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष की आवश्यक जानकारी का साहित्य उपलब्ध नहीं होना भी एक समस्या है।[4]

2. विधिक साक्षरता का क्रियान्वयन एवं समस्याएं :–

भारत में अधिकांश जनता ग्रामीण परिवेश एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहती है, जहां विधिक ज्ञान का नितांत अभाव है। साधारण जनता को उपयोगी कारणों की जानकारी देने के लिए विधिक साक्षरता अभियान को गति प्रदान की जाती है, किंतु इस कार्यक्रम के व्यावहारिक पक्ष का मूल्यांकन करने पर इस योजना के कई सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोष परिलक्षित होते हैं, यथा- सामान्यतया विधिक साक्षरता से पूर्व विधिक चेतना के प्रयासों को महत्व नहीं दिया जाता। देश की अधिकांश से अधिक जनता आज भी सामान्य कानूनों से अनभिज्ञ है। कानूनों का जंगल इतना पेचीदा है कि आम आदमी तो क्या शिक्षित समाज के लोग भी उसका ज्ञान मुश्किल से हो पात है। विधिक सेवा कार्यक्रम के अंतर्गत विधिक साक्षरता शिविरों के आयोजन के व्यावहारिक पक्ष में भी कुछ कमियां पाई जाती हैं जिनके कारण इनका आयोजन मात्र औपचारिकता बन कर रह जाता है। विधिक सहायता योजना के उपरोक्त वर्णित कमजोर पक्षों की व्याख्या इसके मजबूत एवं प्रभावी क्रियान्वयन को आवश्यक बनाती है।

3. लोक–अदालत व्यवस्था का क्षेत्र एवं कठिनाईयां :–

राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सहायता का कार्यक्रम बहुआयामी है। विवादियों को मुकदमेबाजी से यथासंभव परावृत्त रखने, उनके विवादों को बातचीत एवं समझौते के आधार पर तय किये जाने, न्यायालयों में मुकदमों के बढ़ते अंबार को कम करने एवं जनता के समय एवं धन को व्यर्थ की बर्बादी से बचाने हेतु लोक-अदालतें स्थापित की गई। इस व्यवस्था के सर्जनात्मक पहलू भी हैं किन्तु इस व्यवस्था में कुछ प्रमुख दोष भी उजागर हुए है। न्यायिक क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएं भी इसके कमजोर पक्ष को उजागर करती हैं।[5] सामान्य प्रक्रिया में न्यायाधीश स्वतंत्र रूप से अकेले में विचार करता है, मुकदमें के पक्ष और विपक्ष में तर्क सुन कर गवाही के आधार पर सच्चाई खोजता है। यह सब लोक-अदालतों में संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त भी इस व्यवस्था में कई दोष गिनाये जाते हैं जिनकी व्याख्या निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत की जा सकती है-

(क) ग्रामीण स्तर पर इसका संगठन कमजोर है। व्यवहार में इसका संस्थागत ढांचा मजबूत न होने के कारण ग्रामीण जनता को विवाद सुलझाने हेतु दूर-दूर से केन्द्रीय लोक-अदालत में आना पड़ता है।

(ख) लोक-अदालतों के आयोजन की सूचना की व्यवस्था समुचित न होने के कारण सामान्य जन इससे

मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है। पक्षकारों तक सूचना सही समय पर न पहुंच जाने के कारण दोनों में से एक के अनुपस्थित होने पर मुकदमें का निस्तारण नहीं हो पाता।

(ग) लोक-अदालतों के द्वारा आशानुरूप सफलता प्राप्त न करने का एक कारण, अधिकतर वादों में राज्य का अभियोजक होना है। जहां राज्य सरकार एक पक्षकार एक पक्षकार होती हैं, वहां विवादित पक्षकरों में राजनीना में के लिये सक्षम प्रशासनिक अधिकारी प्राप्त नहीं होने। जब तक सरकारी अधिकारी सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते मामलों निस्तारित नहीं हो पाता क्योंकि अभियोजन के तैयार नहीं होने की स्थिति में समझौता संभव नहीं हो सकता।

(घ) लोक-अदालतों में अध्यक्ष के प्रभाव और महत्व के कारण अन्य इकाइयों की भूमिका गौण हो जाती है तथा इसमें रखे जाने वाले कौंसलर्स की नियुक्ति पर भी गंभीरता से ध्यान नहीं दिया जाता।

(ड़) इस व्यवस्था में वादों को वर्गीकृत कर सूचीबद्ध किये जाने का अभाव है, साथ ही जिन मुकदमों का निस्तारण किया जाना होता है, उनकी सूची पहले से ही समन्वयकों को न भेजी जाने के कारण उनका पर्याप्त सहयोग भी नहीं मिल पाता। ऐसा विशेष तौर पर वैवाहिक मामलों एवं बैंक संबंधी वादों में होता है।

(च) लोक-अदालतों की कार्यवाही के अंतर्गत बोर्ड के सभी सदस्यों की राय में एकमतता का अभाव, व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्ति तथा विवाद के अंतर्गत शीघ्र निर्णय पर पहंचने की कठिनाइयां भी पाई जाती हैं। नियुक्त निर्णायक मंडल को मानदेय से वंचित रखा रखा जाता है[6] जिससे उनकी सक्रियता प्रभावित होती है।

(छ) पीड़ित पक्षों को उचित एवं वांछित मुआवजा दिलवाये जाने के प्रति गंभीर प्रयासों का अभाव पाया जाता है।

(ज) लोक-अदालत व्यवस्था के अंतर्गत विवादों की प्रक्रिया इस प्रकार की है कि अपराधी को वास्तव में यह महसूस नहीं होता कि उसने गलती की है एवं परिवादी पक्ष उसे गलती के लिये क्षमा कर रहा है। इस कारण भविष्य में समझौते के माध्यम से किये गये प्रयासों पर प्रश्नचिन्ह लग जाते हैं।

(झ) लोक-अदालतों की कार्य-प्रक्रिया के अंतर्गत न्यायाधीशों द्वारा वादों पर अकेले स्वतंत्र रूप से विचारण एवं गवाही के आधार पर सच्चाई पता न लगाने का तथा अभिभाषकों पर अधिक उत्साहजनक रूचि नहीं लेने का आरोप भी लगाया जाता है।

(ण) लोक-अदालत व्यवस्था का एक स्वाभाविक दोष यह भी गिनाया जाता है कि इसकी प्रक्रिया में एकरूपता का अभाव है, इसके नियमों और प्रक्रिया में लोचशीलता अधिक पाई जाती है तथा इसके नियमों, कार्य-प्रणाली आदि से संबंधित समस्याओं की जिला-स्तर पर समीक्षा भी नहीं की जाती।

इन विभिन्न दोषों के बावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि लोक-अलादत की अवधारणा नैसर्गिक न्याय, सद्भावपूर्ण निष्कर्ष एवं मानवीय संवेदनाओं पर आधारित है। वर्तमान में जटिल सामाजिक-आर्थिक विषमताओं एवं परिस्थितियों में न्याय प्राप्ति हेतु 'लोक-अदालत' एक महत्वपूर्ण विकल्प है अतः ऐसी संस्थाओं को त्वरित गति से प्रोत्साहन देकर जनसाधारण में न्याय के प्रति आस्था और विश्वास पैदा करने की आवश्यकता है, साथ ही इसे अधिक सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु सतत प्रयत्नों की आवश्यकता से भी इंकार नहीं किया जा सकता।

4. लोकहितवाद का क्षेत्र एवं व्यावहारिक समस्याएं :-

भारत में न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में सार्वजनिक हित में मुकदमेबाजी के सिद्धांत का आरंभ एवं विस्तार एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इससे कानून के सम्मुख समानता का सिद्धांत सुनिश्चित हुआ है तथा इसके माध्यम से सर्वोच्च-न्यायालय एवं उच्च-न्यायालयों में जागरूक, नागरिकों, वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं या ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा गरीब अथवा कमजोर वर्ग के सदस्यों की ओर से वाद दायर करने की लंबी शुरूआत हुई है। व्यावहारिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर लोकहितवाद वादों के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण समस्याएं उजागर होती हैं जिनका विश्लेषण

अग्रांकित बिंदुओं में किया जा सकता है-

(क) लोकहित वादों से संबंधित समस्याओं में सर्वप्रमुख समस्या लोकहित मुकद्दमे को पहचानने के बारे में है। इनके अंतर्गत यह अवधारित करने का प्रश्न शामिल है कि कोई मुकदमा वास्तविक रूप में कहां तक लोकहित मुकदमा है, कहां तक जनसेवी व्यक्ति ईमानदार, सच्चा और पर्याप्त गंभीर है, तथा कहां तक वह एक विशिष्ट, दलित वर्ग या उपवर्ग आदि का सही-सही प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि कई जनहित याचिकाएं सस्ती लोकप्रिता प्राप्त करने अथवा जिनी स्वार्थ अथवा राजनीतिक प्रयोजनों के लिये दायर की जाती है।

(ख) लोकहित वादों के संचालन से जुड़ी एक समस्या यह भी दृष्टिगोचर होती है कि इस आंदोलन का संचालन और प्रयोजन विभिन्न न्यायालयों में काम करने वाले कुछ जनसेवी वकीलों द्वारा किया जाता है।[7] यद्यपि कुछ प्रबुद्ध सामाजिक-संगठन और जनसेवी व्यक्ति एसे वादों को प्रायोजित करने के लिये आगे आ रहे हैं और इस प्रकार उपर्युक्त वकील को ऐसे मुकदमे सौंपने का काम आसान होता जा रहा है।

(ग) लोकहिवाद आंदोलन एवं लोकतांत्रिक प्रक्रिया में परस्पर विरोध की स्थिति भी कुछ उदाहरणों में उभर कर आती है। साथ ही यह स्वाभाविक दोष भी लोकहितवाद के प्रकरणों के व्यवहार में उभर कर आता है कि न्यायिक प्रक्रिया की पेचीदगियों के कारण असंख्य वाद न्यायिक-प्रक्रिया एवं अपील के घेरे में ही समापन प्रायः हो जाते हैं।

(घ) लोकहितवादों की बढ़ती संख्या के कारण मुकदमों का अंबार बढ़ता जाना भी एक गंभीर समस्या है। इस कारण पक्षकारों के मुकदमे लंबे समय तक अनुसुने रहने लगे हैं क्योंकि न्यायालयों को अधिकांश समय लोकहितवादों की याचिकाओं की सुनवाई में ही लग जाता है।

(ड़) लोकहितवादों के संबंध में अन्य सबसे बड़ा दोष यह भी उभर कर आता है कि अदालत से न्याय-निर्णयन हो जाने के पश्चात् उसकी कार्यवाही की स्थिति असंतोषजनक है। ऐसी याचिकाएं जिनका संबंध प्रशासन से होता है उनक फैसलों की क्रियान्विति में बहु विलंब होता है। स्वयं कानून बनाने वाली सरकार ऐसे मामलों के अनुपालन के प्रति उदासीन रहती है।

5. अनुसूचित जाति-जनजाति हेतु विधिक एवं न्यायिक प्रावधान एवं समस्याएं :-

प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली में कल्याणकारी राज्यों में समाज की कोई भी गतिविधि, जिसमें मानव या व्यक्ति का हित हो, विधि के क्षेत्राधिकार से परे नहीं रह सकती। प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इस बात की चेष्ठा करे कि जनता को सभी स्तरों पर समानता का व्यवहार मिले। किसी भी शक्तिशाली वर्ग द्वारा कमजोर वर्ग का शोषण नहीं हो तथा जनता के सर्वांगीण विकास हेतु सभी प्रकार की सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध कराये जाते रहे। सामाजिक लक्ष्यों के रूप में प्रस्तुत करते हुए भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्य की जनता के दुर्बलतम वर्गों की, विशेषकर अनुसूचित जाति एवं जनजाति हेतु विधिक एवं न्यायिक प्रावधानों की सुरक्षा एवं योजनाएं प्रदान की गई हैं। किंतु व्यवहार में इन्हें लागू करने के क्षेत्र में भी कुछ प्रमुख बाधाएं एवं विसंगतियां पाई जाती है जिनका उल्लेख निम्नांकित क्रम में किया जा सकता है-

(क) विधिक सहायता योजना के अंतर्गत अकेले अधिवक्ता और न्यायाशीश न्याय-तंत्र के माध्यम से ऐसी विस्तृत सेवाओं को उपलब्ध नही करा सकते।[8] इस योजना के लिये सरकार के अलावा अन्य अभिकरणों, स्वयंसेवी संगठनों आदि के सहयोग का अभाव है।

(ख) कई प्रश्न ऐसे हैं जो विधिक सहायता एवं अनुसूचित जाति-जनजाति से संबंधित अन्य योजनाओं की क्रियान्विति में बाधा प्रस्तुत करते हैं, यथा- यह कठिन प्रश्न है कि क्या विधिक सहायता उन अधिकारों और उपचारों की अनिवार्य जानकारी हासिल कर सकती है जो संबंधित लोगों की रोजमर्रा जिंदगी पर प्रभाव डालते हैं और कौशल तथा साधनों सहित जब कभी आवश्यक हो, विधि का सहारा ले सकती है।

(ग) विधिक सहायता व्यक्ति-व्यक्ति से परस्पर संबंधों और सांस्कृतिक विशेषताओं को उपान्तरित करने में मदद कर सकने, शोषकों और शोषितों में एक नई विधिक संस्कृति के लिये आंदोलन शुरू करने और उसे दिशा देने में विधि, शासन समता और सामाजिक-न्याय के लिए सहायक है, यह भी एक मूलभूत प्रश्न है।

(घ) विधिक सहायता हेतु समुचित उपकरणों और सामरिक नीतियों, प्रक्रियाएं तथा उपचार विकसित कर सकने का प्रश्न भी गंभीर है।

(ड़) विधिक सहायता द्वारा इन जातियों को सताने एवं शोषण करने पर रोक लगाना या निवारक सेवाओं द्वारा जल्दी से जल्दी ऐसी घटनाओं को दबा देना एक कठिन कार्य है।

विधिक सहायता के अतिरिक्त इन जातियों पर अत्याचार निवारण हेतु विशेष अधिनियम स्थापित हैं, जिसके अंतर्गत विशिष्ट न्यायालयों के प्रकोष्ठ स्थापित किये गये हैं। इस अधिनियम के विविध प्रावधान अनुसूचित जाति एवं जनजाति को न्यायिक संरक्षण प्रदान करते हैं। व्यवहार ने इस अधिनियम के अंतर्गत यदि पक्षकारों के बीच पुनः मधुर संबंध स्थापित करने की आशा है और वे राजीनामा करना चहाते हैं तो राजीनामा पेश करने की व्यवस्था निहित नहीं है। जबकि यह एक ऐसा उपाय है जिससे अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों पर किये गये अत्याचारों के घावों पर मरहम रखा जा सकता है।

6. महिला एवं बाल वर्ग के क्षेत्र में व्याप्त समस्याएँ :-

भारत एक कल्याणकारी देश है। भारतीय संविधान न केवल नागरिकों के मूल अधिकारों का सुरक्षा प्रहरी है, अपितु समाज के कमजोर वर्ग के लिये सामाजिक और आर्थिक समानता को भी सुनिश्चित करता हैं महिलाओं और बालकों का कल्याण इसका सर्वोपरि लक्ष्य है। व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखा जाये महिला एवं बाल-कल्याण का क्षेत्र भी विविध चुनौतियों से भरा है। न्याय निर्णयों द्वारा महिलाओं की स्थिति में विविध क्षेत्रों में कुछ सुधार परिलक्षित हुए हैं किंतु अभी भी और सुधार और सामाजिक चेतना की आवश्यकता है। आज महिलाओं के जो कानून भारतीय संविधान के अंतर्गत बने हैं, वे पर्याप्त नहीं है। लगभग ९० प्रतिशत महिलायें अशिक्षित हैं, उन्हें न तो कानून की वास्तविक जानकारी ही है और न उन्हें मार्गदर्शन देने वाला कोई है। महिलाओं के हित के लिए जो कानून बने हैं वे कई रूपों में व्यवहारिक भी नहीं हैं। इसके अलावा महिलाओं से संबंधित हिंसात्मक शारीरिक शोषण, दहेज हत्याओं, दहेज यातनाओं, कामकाजी महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न के अपराधिक मामलों के सर्वेक्षण एवं आंकड़े चौंकाने वाले हैं। न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता के कारण प्रायः अपराधी छूट जाते हैं।

महिलाओं के अलावा बच्चों की देखभाल ऐसा विषय है जिसके लिये भारत का संविधान एवं राज्यतंत्र प्रतिबद्ध है। इस संबंध में नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत था विविधि बाल योजनाओं के अंतर्गत बाल-विवाह निषेध, अक्षम एवं अनाथ बच्चों हेत बाल निकेतन एवं बाल श्रम प्रतिबंध हेतु विविध विधायनों की सुरक्षा के प्रावधान भी किये गये हैं किंतु इन सबके बावजूद उपेक्षित, निराश्रित एवं अन्य बच्चों के लये देखभाल, संरक्षण उपचार और पुनर्वास सुविधाओं में व्यवहारिक स्तर पर बहुत अधिक आशाजनक प्रगति नहीं है। लिंग अनुपात की विषमता में भी मानवशास्त्री अध्ययनों से यह पता चलता है कि लड़कियों की मृत्यु-दर ऊंची होती है। बाल-विवाह उन्मूलन अभी पूरी तरह सफल नहीं है। बाल-बजदूरी अभी भी विद्यमान है। शेष के विरूद्ध अधिकार की सुरक्षा के कई अधिनियमों के बावजूद देश के विभिन्न भागों में बालकों का भिन्न-भिन्न तरीकों से शोषण होता है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि बेगार, शोषण, बालश्रम इन सभी का कारण दरिद्रता और उपेक्षा है। सामाजिक-नयाय की संकल्पना को साकार रूप प्रदान किये जाने हेतु इन समस्त दयनीय पहलुओं की उपेक्षा न करते हुए सामाजिक विधायन के क्षेत्र में इन्हें प्राथमिकता एवं न्यायपालिका द्वारा विधायनों के उचित पालन पर बल दिये जाने की आवश्यकता है।

भारत में न्याय-प्रशासन के राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय एवं अधीनस्थ स्तरीय अध्ययन में क्रमशः उच्चतम न्यायालय,

उच्च-न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय एवं सामाजिक-न्याय के क्षेत्र में समस्याओं के विस्तृत विश्लेषण के पश्चात् कुछ अहम प्रश्न उत्पन्न होते हैं। क्या आने वाले वर्षों में न्याय-व्यवस्था कोई साहसी एवं क्रियाशील रूख अपनायेगी अथवा केवल विधि की भूमिका में यथास्थिति बनाये रखना चाहेगी? क्या भारत में न्याय-प्रशासन विधि की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के कार्य में विवेक एवं साहस द्वारा योगदन कर सकेगा, जिससे सामाजिक-न्याय जनसाधारण तक पहुंच सके। इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर स्वरूप न्याय-प्रशासन को परिष्कृत करना वर्तमान समय की पहली आवश्यकता है। भारत के संविधान निर्माताओं ने भारत के करोड़ों लोगों की आशाओं एवं आकांक्षाओं को स्वर प्रदान कर जो अलख जगाई है वह आग परंपरागत, सामंतवादी मर्यादाओं पर आधारित समाज की असमान संरचना को अपने में समेट रही है और सामान्य नागरिक के लिये सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान कर रही है। न्याय-प्रशासन को उन सब स्थितियों से गुजरना होगा, जिनसे वह अपनी सभी समस्याओं से उबर सके एवं अपनी शुद्धता एवं कांति को कायम रख सके। समाज के कमजोर वर्गों की सेवाओं के लिये विधि का विकास एवं उसमें परिवर्तन कर न्याय-प्रशासन को लाखों लोगों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप बनाना होगा, सामाजिक-न्याय प्रदान करने के साधान के रूप में विकसित करने के उद्देश्य बनाना होगा, सामाजिक-नयाय प्रदान करने के साधन के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से इसकी व्यावहारिक व्याख्या करनी होगी, पुराने एवं अनुपयोगी नियमों एवं प्रथाओं को समाप्त कर नये साधन, नये तरीके विकसित कर, सामान्य नागरिक तय न्याय पहुंचाने के लिये नयी व्यूह-रचना करनी होगी। संपूर्ण देश में न्याय-प्रशासन के लिये यह ऐसी चुनौती है जिसका सामना सृजन एवं चिंतन से ही किया जा सकता है।

संदर्भ :-

1. मदान, नरेन्द्र लाल (1980) भारत में विधि व्यवस्था, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० 10
2. श्रीवास्तव, भगवान (1984) ''निर्धन को न्याय: विधिक सहायता'', प्रशासनिक, जुलाई-दिसम्बर पृ० 89
3. वर्मा, एस० के० (1985) ''पीपुल्स कोर्ट एंड डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ जुडिसियल एडमिनिस्ट्रेशन इन रूरल एरियाज'', पंचायत संदेश, वो० 25, सितंबर- अक्टूबर, पृ० 5-7
4. जैन, डी० जी० (1989) ''लीगल ऐड : ए सोशल एंड नेशनल रिस्पोनसिबिलिटी-स्कोप ऑफ इट्स इम्पलीमेंट इन इंडियन यूनिवर्सिटीज,'' इंडियन-सोशियो-लीगल जर्नल, खंड-टए बीकानेर : आई. आई. सी. एल. पृ० 131
5. मदन, नरेन्द्र लाल पूर्वोल्लेखित, पृ० 33-34
6. न्यायमूर्ति भगवती, पी.एन. (1982) ''गरीब की झोपड़ी तक न्याय पहुँचाने का संकल्प'', योजना, वो० 26 (1), फरवरी 16-28, पृ० 10-17
7. न्यायमूर्ति मजूदार, एस० बी० (1991) ''लोकहित मुकदमा'', विधिक सहायता संवाद-पत्र (भाग 2 और 3), जुलाई-दिसंबर, पृ. 16
8. मेनन माधव, एन. आर. (1990) ''समाज के कमजोर वर्गों के साथ किए जा रहे अत्याचारों का मुकाबला करने में विधिक सहायता की भूमिका ''विधिक सहायता संवाद-पत्र (भाग 1 से 4), मई-फरवरी, पृ. 20-21

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 104-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में समावेशी विकास, सामाजिक न्याय एवं आरक्षण

–शनि कुमार

शोध–छात्र, राजनीति विज्ञान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

आधुनिक विश्व में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के स्वतंत्रता घोषणा में यह कहा गया कि ''हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य को परमात्मा ने एक समान बनाया है''। फ्रांस की राज्यक्रांति ने ''समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व'' के नारे के अन्तर्गत मनुष्य के सर्वांगीण विकास के नये परिवेश का उद्‌घाटन किया। इस प्रकार लोकसत्ता के सिद्धांत पर बल दिया जाने लगा जिसका सार है कि ''मानव–मानव में कोई अंतर नहीं है''। कालक्रम में विघटित सोवियत संविधान तथा स्वयं हमारे संविधान के प्रस्तावना के माध्यम से धर्म, लिंग, जाति, भाषा, रंग, सम्प्रदाय आदि के भेदभाव के बिना मानव की गरिमा को अक्षुष्ण रखने हेतु संविधान के प्रावधान किये गये। जनतंत्र का मूलमंत्र भी मानव की इसी गरिमा की अभिव्यंजना है। प्रसिद्ध दार्शनिक जीन जैक्स रूसों ने लिखा है कि ''मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है पर हर जगह वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है''। अपने इस सूक्ति से उसने शोषण और असमानता के बंधन में जकड़े हुए जनसाधारण को स्वतंत्र होने, स्वाधीनता, आजादी और समानता के बेहतर जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को व्यक्त किया है।

किंतु ये आदर्श ऐतिहासिक और वास्तविक स्वरूप से मेल नहीं खाता है। समाज में सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक असमानताएँ व्याप्त है। इसी अवरोध को दूर करने के लिए तथा एक समावेणी जीवनशैली की प्राप्ति हेतु संविधान में आरक्षण के उपबंध किये गये। क्योंकि जब तक विकास की मुख्यधारा से समाज के अंतिम व्यक्ति को नहीं जोड़ा जाता तब तक यह अरण्यरोदन ही साबित होगा। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय को प्राथमिकता देकर इसी सत्य और तथ्य को उजागर किया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि समावेशी विकास का विचार दरिद्रता को दूर करने, अवसर की समानता को आवेष्ठित करने एवं सामाजिक गतिमयता को संचालित करने में निहित है। विशेषकर सामाजिक दृष्टि से विभिन्न समूहों को उनके परम्परागत कार्य एवं कौशल से आगे बढ़ाकर उन्हें विशेष अवसर प्रदान करने से है।

भारतीय प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास वर्णाश्रम के अन्तर्गत सीढ़ीनुमा जाति व्यवस्था द्वारा एक ओर ब्राह्मण के रूप में शीर्ष वर्ग को महिमा मंडित करता था तो दूसरी ओर शूद्र के रूप में विशाल बहुमत को अधिकार वंचित और कर्तव्यों की बेड़ी में बांधकर सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक विषमता की भट्‌ठी में झोंकता रहा था। निम्न जातियों के ये व्यक्ति स्पर्श न करने योग्य तथा अपवित्र माने गये। हिन्दू वर्ग की इन तथाकथित निम्न जातियों को संविधान में अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए क्षेत्रें में रहनेवाली जातियों को अनुसूचित जनजातियों का नाम दिया गया है। महिलाओं के साथ भी उसके लिंग के नकारात्मक अर्थ के कारण भेदभाव किया जाता रहा है। अन्य अल्पसंख्यक समुदायों खासकर देश के कुछ हिस्सों के मुस्लिम समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर की जाँच के लिए गठित सच्चर समिति में की है। इन्हीं सीमांत समूहों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन की मुख्यधारा में लाने की कोशिश समावेशी विकास की धारणा है। यानि अंतज्य के चतुर्दिक विकास की धारणा जो आज की

जनतंत्रीय प्रणाली की विशेषता है।

पूँजीवाद के प्रत्येक चरण को विकास विषयक धारणाओं की एक विशेष श्रृखंला रखनेवाले के रूप में देखा जा सकता है। साठ के दशक से विकास को सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से व्यक्त किया जाने लगा, जो कि स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा, सम्पति के पुर्नवितरण तथा राजनीतिक निर्णयन में जनभागीदारी के साथ जुड़ गया। मौलिक आवश्यकताओं पर जोर दिया जाने लगा। विकास की इन अवधारणा में सर्वाधिक व्यापक अभिव्यक्ति 'अर्मत्य सेन के स्वतंत्रता के रूप में विकास' के सूत्रीकरण में पाई गई है। (अर्मत्य सेन, डिवलपमेंट ऐज फ्रीडम, ऑक्सफोर्ड, 1999)

वैश्वीकरण के युग में विकास का जो परिदृश्य उभरा है उसे ''चाँदी की चमक के पीछे काले बादलों की छाया'' कह सकते हैं। जहाँ अमीरी और गरीबी की बड़ी खाई, ग्राम एवं नगरों की असमानता तथा राज्यों के बीच असमानता बड़े रूप में परिलक्षित हो रही है। अतः एक चिंतन के प्रभावशाली सूत्र ने विकास की आवश्यकता को सामाजिक न्याय हेतु वृहत्तर विषय के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया। ब्रिटिश विकास अर्थशास्त्री डडली सीअर्स ने उदाहरण के लिए साठ के दशकोत्तर में अपने लेखों की एक श्रृंखला में विकास को सिर्फ वृद्धि के साथ जोड़े जाने पर सवाल उठाना शुरू किया। उन्होंने गरीबी, बेरोजगारी और असमानता पर विकास के प्रभाव को खोजते हुए उसके परिणामों पर ध्यान केन्द्रित किया। औलिवर वैंडले हौलम्स ने कहा था कि ''असमानों के साथ समान व्यवहार से बढ़कर कोई असमानता नहीं।''यहाँ ऐसे सकारात्मक भेदभाव को उत्पन्न करने की जरूरत है जो मानवता को अधिक मानवीय एवं प्रगतिशील बना दे। अरस्तू ने भी अपनी पुस्तक एथिक्स में लिखा था कि न्याय ही समानता है। उनके अनुसार जो चीजें समान उनके साथ समान और जो चीजें असमान है उनके साथ असमान व्यवहार किया जाना चाहिए अन्याय तब होता है जब समानों के साथ असमान और असमानों के साथ समान व्यवहार किया जाए। सकारात्मक कार्य सामाजिक अन्याय को दूर करने के लिए आवश्यक बन जाता है। यह समाधान के सिद्धांत पर आधारित है कि असंगत असमानाताओं को सुधारा जाये।

भारत में सभ्यता के एक विशाल फलक पर जातियों के आधार पर बटे पिछड़े और दलित निश्चय ही अछूते थे पर स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न धाराओं ने समाज की इस दुखती रग को पहचान कर सामाजिक न्याय के प्रावधान को हमारे संविधान में समाविष्ट किया। संविधान की प्रस्तावना में ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय को सम्मिलित कर विकास के साथ सामाजिक न्याय को स्थान दिया गया। समाज के वंचित वर्गों को समाज की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए संविधान के भाग तीन मौलिक अधिकार में प्रावधान किये गये तथा राज्यों के नीति निर्देशक तत्वों द्वारा राज्यों को निर्देश दिया गया। समावेशी विकास एवं सामाजिक न्याय के इसी वचनबद्धता के कारण संविधान में पिछड़े वर्गों के लिए विशेष उपबंध आरक्षण के प्रावधान किये गये।

विशेष उपबंध को पूना पैक्ट 1932 के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। ब्रितानी सरकार के मेकडॉनल्ड अवार्ड जिसके तहत अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र आवंटित किये जाने की बात कही गयी थी जिसके विरोा में महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन किया परंतु आगे चलकर गाँधी काँग्रेस के अन्य नेताओं तथा अनुसूचित जातियों की पैरवी कर रहे डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के बीच लम्बी वार्ताओं के बाद यह सहमति बनी कि जब कभी भी भारत को स्वतंत्रता मिलेगी तथा भारत की अपनी संवैधानिक व्यवस्था लागू होंगी अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होंगे। इतना हीं नहीं स्थानीय निकायों, शैक्षणिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं में इन वर्गों को विशेष रूप से प्रतिनिधित्व दिये जाने के प्रति बचनबद्धता व्यक्त की गई। फलस्वरूप संविधान निर्माता ने इस विशेष उपबंध का प्रावधान रखा, भले ही ऐसे प्रावधान मौलिक अधिकारों, समानता एवं स्वतंत्रा का अतिक्रमण ही क्यों न करते हों।

संविधान के अध्याय 16 में आंग्ल भारतीय समुदाय, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों के लिए

विशेष प्रावधान की व्यवस्था की गयी है। इन विशेष प्रावधानों का उददे्श्य संविधान के अनुच्छेद 46 में इस प्रकार स्पष्ट किया गया कि राज्य जनता के दुर्बलतर अंगों के विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से रक्षा करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।'

संविधान के अध्याय 16 के 13 अनुच्छेदों (अनु0 330 से 342 तक) में इन वर्गों के लिए विशेष व्यवस्थायें की गयी। ये व्यवस्था कोई चिरस्थाई व्यवस्था न होकर अल्पकालीन व्यवस्था है। यह इस विचार पर आधारित था कि जैसे ही सामाजिक समानता के निर्धारित लक्ष्य को पा लिया जायेगा तो यह व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। अतः संविधान के लागू होने के बाद इसे 10 वर्ष तक अर्थात् 1960 तक बनाये रखने की व्यवस्था की गई। लेकिन बाद में संवैधानिक संशोधनों के आधार पर इन विशेष व्यवस्थाओं की अवधि को लगातार बढ़ाया जाता रहा।

संविधान के अध्याय 16 के अनुच्छेद 331 द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह लोकसभा में अधिक से अधिक दो आंगल भारतीयों को नियुक्त कर सकता है यदि उसके मत में आंगल भारतीय वर्ग को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है। इसी प्रकार अनुच्छेद 333 द्वारा राज्यों के राज्यपालों को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि उनके विचार में विधानसभाओं को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि उनके विचार में विधानसभाओं में आंगल भारतीय समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है तो वे आवश्यकतानुसार उसके प्रतिनिधित्व नामजद कर सकते हैं। संविधान लागू किये जाने के 10 वर्ष बाद इस समुदाय को सरकारी सेवाओं में विशेष सुविधायें तथा शिक्षण संस्थाओं के लिए भी विशेष अनुदानों की व्यवस्था की गई थी। अब यह व्यवस्था समाप्त हो गयी है।

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संबंध में प्रमुख रूप से निम्नलिखित विशेष व्यवस्थाएँ की गयी। सबसे पहले तो संविधान में इन वर्गों के लिए लोकसभा तथा विधानसभा के लिए स्थान आरक्षित रखने का प्रावधान किया गया। इन जातियों के व्यक्ति सुरक्षित स्थानों के अतिरिक्त अन्य निर्वाचन क्षेत्रें से भी चुनाव लड़ सकते है। वर्तमान में लोकसभा में कुल निर्वाचन स्थानों की संख्या 543 है, जिसमें अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए 79 और 40 स्थान सुरक्षित है। विधानमंडल में प्रतिनिधित्व के साथ-साथ अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को केन्द्र एवं राज्यों के मंत्रिमंडल में भी सदैव प्रतिनिधित्व प्राप्त रहा है। अनुच्छेद 335 के अंतर्गत अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए केन्द्र और राज्य सरकार की प्रशासनिक सेवाओं में प्रशासनिक कुशलता के अनुकूल स्थान सुरक्षित रखने की भी व्यवस्था है। इन जातियों को शासकीय सेवाओं में प्रतिनिधित्व देने के लिए जो रियायतें प्रदान की गयीं है उनमें मुख्य है आयु सीमाओं में छूट, योग्यता स्तर पर छूट, कार्यकुशलता का निम्नतर स्तर पूरा करने पर उनका चयन तथा नीचे की श्रेणियों में उनकी नियुक्ति एवं पदोन्नति का विशेष प्रबंध। संविधान आरक्षित स्थानों के प्रतिशत एवं समय सीमा निर्धारण नहीं करता बल्कि प्रशासन द्वारा नियमों के अन्तर्गत इसे निर्धारित करने की व्यवस्था है। इन जातियों के हितों की रक्षा हेतु तथा उनसे संबंधित विषयों की जाँच करने के लिए संविधान 338 में एक विशेष पदाधिकारी की भी व्यवस्था करता है। इस व्यवस्था को और प्रभावी बनाया गया और 66वें संवैधानिक संशोधन 1990 के द्वारा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग की स्थापना कर उसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 340 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रपति दो आयोगों की नियुक्ति करेगा। प्रथम-अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासन तथा अनुसूचित जातियों के कल्याण संबंधी मामलों की जाँच करना होगा तथा दूसरे का कार्य पिछड़ी हुई जातियों की शैक्षणिक तथा सामाजिक स्थिति की जाँच करना होगा। इसके अतिरिक्त आयोग उनके उन्नति के उपायों की ओर संघ का ध्यान आकर्षित करेगा। संविधान के भाग 16 में की गयी इन व्यवस्थाओं

के अलावा संविधान के अनुच्छेद 275 के अनुसार अनुसूचित जातियों के विकास के उद्देश्य से बनायी गयी योजनाओं के लिए राज्य सरकारों को विशेष अनुदान देने की व्यवस्था है। संविधान के एक विशेष उपबंध के अन्तर्गत बिहार, मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा में जनजातियों के कल्याण के लिए मंत्रालय की भी व्यवस्था है। इस समय तो अनेक राज्यों मे इस प्रकार के मंत्रालय हैं। अनुच्छेद 19(5) के अनुसार अनुसूचित जनजातियों के हितों के रक्षा के लिए स्वतंत्रता के अधिकार को भी परिसीमित करने का प्रावधान है।

भारतीय संविधान सामाजिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित है। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए ही संविधान में दलित वर्गों की स्थिति में सुधार के सभी संभव प्रयत्न किये गये हैं। इन दलित वर्गों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के अलावा अन्य पिछड़े वर्ग आते हैं। अतः इनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए भी संविधान में विशेष व्यवस्था हैं। पिछड़े वर्गों में प्रमुख रूप से ये जातियाँ आती हैं नाई, बढ़ई, दर्जी, अहीर, गड़रिया, सहनी, कुर्मी, बघेल, लोधी आदि। सामाजिक न्याय के आलोक में अनु0 15 (4) सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के उन्नयन तथा अनु0 16(4) सेवाओं में पिछड़े को पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण की व्यवस्था करता है।

संविधान में इन पिछड़े वर्ग शब्द समूह का अनुच्छेद 340 में भी प्रयोग हुआ है। अनुच्छेद 340 (1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति को सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं तथा उनकी कठिनाइयों के अनुसंधान हेतु आयोग की नियुक्ति करने की शक्ति प्राप्त है। इस शक्ति के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा दो आयोगों प्रथम 29 जनवरी 1953 को काका कालेलकर आयोग तथा जनवरी 1979 को मंडल आयोग का गठन किया गया।

काका कालेलकर आयोग ने 2399 जातियों को पिछड़ी जाति घोषित किया। आयोग ने पिछड़े वर्ग की पहचान के लिये सामाजिक तथा शैक्षणिक मानदण्ड को स्पण्टतया परिभाषित नहीं किया। अतः विवाद ने जन्म ले लिया और आरक्षण की सिफारिश को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। केन्द्र सरकार ने दूसरी बार जनता पार्टी के शासनकाल में 1 जनवरी 1979 को बिहार के वी.पी. मंडल की अध्यक्षता में पिछड़े वर्ग आयोग का गठन किया। इस बीच 1963 में आरक्षण के विरोध में बालाजी बनाम मैसूर राज्य का एक मुकदमा उच्चतम न्यायालय में दायर हुआ था जिसमे माननीय उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से कम रखने का निर्णय दिया। मंडल आयोग ने राष्ट्रपति द्वारा निर्देशित बिन्दुओं और उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देशित आरक्षण की सीमा को ध्यान में रखकर 31 दिसम्बर 1980 को सरकार को अपना प्रतिवेदन सौंपा। मंडल आयोग के आंकड़ों के मुताबिक अनुसूचित जाति एवं जनजाति को 22.56 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त था इसलिए उच्चतम न्यायालय के सीमांकन के आलोक में 52 प्रतिशत पिछड़ों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। मंडल आयोग का प्रतिवेदन भी 1980 से 1990 तक ठंडे बस्ते में पड़ा रहा। सरकार की नीति टालमटोल की ही रही।

प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार अपने चुनावी घोषणा पत्र के वादे के अनुरूप 07 अगस्त 1990 को सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा कर दी। लाभान्वित होने वाले वर्ग ने जहाँ इसका गर्म जोशी से स्वागत किया वहीं आरक्षण विरोधियों ने इसे राजनीतिक कारणों से प्रेरित बताकर प्रतिकार रूप में मार-पीट, खून-खराबा, राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति तथा आत्मदाह तक किया। फलस्वरूप भाजपा ने मोर्चा सरकार ने अपना समर्थन वापस ले लिया तथा वी.पी. सिंह की सरकार गिर गई। मंडल आयोग से संबंधित यह निर्णय कानूनी पचड़ों में भी पड़ गया। सर्वोच्च न्यायालय ने 1 अक्टूबर 1990 को मंडल रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर स्थगन आदेश जारी कर दिया।

मध्यावधि चुनाव के बाद श्री नरसिम्हाराव के नेतृत्व में कांग्रेस सत्ता में आई। जिसने 25 सितम्बर 1991 को सामाजिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़े एवं अन्य वर्गों, उच्च जातियों के निर्धन लोगों को भी 10 प्रतिशत आरक्षण का प्रस्ताव दिया। नरसिम्हाराव शासन की उपर्युक्त घोषणा को भी सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई जो चन्द्रास्वामी

बनाम भारत संघ के नाम से चर्चित है। न्यायालय ने नरसिम्हाराव सरकार की अधिसूचना को 25 सितम्बर 1991 को अवैध घोषित कर दिया तथा वी. पी. सिंह सरकार की 07 अगस्त 1990 की अधिसूचना को वैध। परंतु न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि पिछड़ी जातियों के सम्पन्न व्यक्यिों को आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा।

पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए संसद में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम 1993 पारित किया जिसके अधीन अगस्त 1993 में न्यायमूर्ति आर.एन. प्रसाद की अध्यक्षता में पाँच सदस्यीय राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना की गई। आयोग की सिफारिण के आधार पर पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था 8 सितम्बर 1993 से लागू कर दी गयी। केन्द्र सरकार द्वारा यह व्यवस्था लागू किये जाने के बाद राज्य स्तर पर भी आरक्षण की व्यवस्था को लागू किया गया। परंतु विभिन्न राज्यों में आरक्षण का प्रतिशत भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में अन्य पिछड़े वर्गों का 27 प्रतिशत आरक्षण लेकिन मध्यप्रदेश 14 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है। राजस्थान में अक्टूबर 1999 में जाटों को भी अन्य पिछड़े वर्गों में सम्मिलित कर उन्हें भी इस वर्ग के भीतर आरक्षण की सुविधा प्रदान कर दी गई है। अपने लम्बे इतिहास के क्रम में तमिलनाडु राज्य आरक्षित पद्धति के मामले में अग्रणी रहा है। यहाँ 1921 में ही पिछड़ी जातियों के आरक्षण के लिए कानून पास किया गया था। तत्पश्चात् इस प्रकार का कानून बम्बई प्रेसीडेन्सी द्वारा 1931 में तथा 1935 में त्रावणकोर रियासत द्वारा बनाया गया। आज भी तमिलनाडु में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की आबादी का प्रतिशत सबसे अधिक है। इतना ही नहीं शिक्षा और नियोजन के अन्तर्गत इस राज्य में जातिगत आरक्षण 69 प्रतिशत है जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित 50 प्रतिशत आरक्षण सीमा से भी ऊपर है जो अभी अदालती पेंच में फँसा है। यह वैधानिक जाँच का कहीं शिकार न हो जाय इसलिए इसे नौवीं अनुसूची में डाल दिया गया है।

यह ध्यातव्य है कि सामाजिक पिछड़ेपन के तर्क को आगे बढ़ाते हुए आन्ध्र प्रदेश ने राज्य में आजीविका और शिक्षा में मुसलमानों के लिए चार प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया है। यह उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिकूल निर्णय और वैधानिक जाँच की पुनरावृति की ओर ले जाता है। पश्चिम बंगाल की सरकार के द्वारा अल्पसंख्यक मुसलमानों को आरक्षण प्रदान करना, श्री रामविलास पासवान और श्री लालू प्रसाद द्वारा अल्पसंख्यक मुसलमानों को आरक्षण का वादा करना और अगड़ी जातियों के कमजोर वर्गों को 10 प्रतिशत आरक्षण ने शेष राज्यों के लिए भी रास्ता खोल दिया है। राजस्थान में गुर्जरों को तीन प्रतिशत विशेष आरक्षण और अगड़ी जातियों के कमजोर वर्गों को 14 प्रतिणत आरक्षण का प्रावधान इसी का एक हिस्सा है।

भारतीय संविधान भाषागत अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की रक्षा के लिए भी संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद 350, 350(क), 350(ख) में भाषागत अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष व्यवस्था है। 1990 से ही महिलाओं के लिए भारतीय विधायी संस्थाओं में एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने की बात भी उठायी जा रही है। 1996, 1998 तथा 1999 में महिला आरक्षण विधेयक संसद में प्रस्तावित किया जा चुका है लेकिन तीनों ही बार इस विधेयक को अशालीनता की सीमा तक उग्र विरोध का सामना करना पड़ा हैं। मार्च 2003 में सर्वदलीय बैठक में सपा और राजद सदस्य भी विधेयक का विरोध करने पर अड़े रहे। 22 फरवरी 2010 को पुनः राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने संसद के बजट सत्र के शुरूआत में ही महिला आरक्षण बिल को लागू किये जाने की बात उठायी। बिल को केन्द्रीय कैबिनेट की मंजूरी के साथ राज्यसभा का भी अनुमोदन प्राप्त हुआ परंतु उसके आगे यह नहीं बढ़ पाया। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन द्वारा पंचायतीराज में दो-तिहाई महिलाओं का आरक्षण एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण एक महत्वपूर्ण कदम है। जनतंत्र के तीसरी परत के रूप में पंचायती राज व्यवस्था में बिहार की नीतिश सरकार ने महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया है। महिलाओं के आरक्षण में कहीं कोई बाधा नहीं है। सरकार को आर्थिक बोझ भी उठाना नहीं पड़ा है। केवल जरूरत है राजनीतिज्ञों के मन से असुरक्षित भविष्य के भय को दूर करने की।

उल्लेखित संवैधानिक उपबन्धों के माध्यम से भारत के सभी सामाजिक समूहों को जोड़ने के वैधानिक राजनीतिक प्रयत्न जारी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आरक्षण के द्वारा सामाजिक परिवर्तन आया है और सदियों की सामाजिक व्यवस्था को इसने झकझोरा है। इसने सामाजिक दृष्टि से विपन्न समूहों को तथा समाज की मुख्यधारा के संदर्भ में सामाजिक अलगाव से अभिशप्त समाज को उनके परम्परागत कार्य एवम् कौशल से आगे बढ़ाकर विशेष अवसर प्रदान किया है तथा उसे समाज से जोड़ने का प्रयास किया है। तथापि इस परिवर्तन ने आर्थिक उन्नयन की दृष्टि से बहुत कम सफलता पायी है। यदि हम उल्लेखित संदर्भ का अध्ययन आंकड़ों के आधार पर करें तो रोचक प्रतीत होता है कि परम्परागत पिछड़े मुसलमान जो आरक्षण से बाहर रखे गये और आरक्षण प्राप्त हिन्दुओं के पिछड़े समुदायों के बीच कोई अन्तर नहीं आया है। स्वतंत्र सर्वे इस बात की ओर इंगित करता है कि आरक्षण का लाभ शायद ही समाज के विभिन्न वर्गों की अंतिम तबके तक पहुँचा हो बल्कि अक्सर इसका लाभ उन समूहों के बीच की मलाईदार परत ही ले जाती है। राष्ट्रीय सेम्पुल सर्वे द्वारा किये गये जातीय आधार पर सर्वे निसदेह यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक दृष्टि से पिछड़े समुदाय, आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़े हैं। पर समस्या यह है कि आरक्षण के लिए सही समूह की पहचान कैसे की जाये तथा इस गणना में किसे शामिल किया जाये। आरक्षण के इस लहकती दशा में किसी भी आकड़ें का प्रदर्शन राजनीतिक उथल-पुथल और राजनीतिक असंतोष की ओर ले जाता है।

समावेशी विकास के इस मॉडल का दूसरा खतरा यह है कि इसने जातीय संरचना को शाश्वत बना दिया है। क्योंकि कल तक जो विपन्न समुदाय था आज आर्थिक दृष्टि से सशक्त हो गया है वह इस लाभ से वंचित नहीं रहना चाहता। राजस्थान का मीना समुदाय तथा उत्तर प्रदेश का लोध इस समावेशी विकास की शाश्वतता के प्रमुख उदाहरण है। इससे भी बढ़कर आर्थिक विपन्नता से ऊपर उठने के बावजूद भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के दायरे से बाहर किये जाने के उदाहरण नहीं मिलते बल्कि राजनीतिक अवसरवादिता ने इसमें और जोड़ा ही है और यह परम्परा मतों के ध्रुवीकरण के लिए एक औजार के रूप में कायम है।

मेरी दृष्टि में संविधान निर्माताओं की भावना राज्य की नीति निर्देशक तत्वों में परिलक्षित हुई तथा श्रीमति इन्दिरा गांधी के काल में बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा प्रिवीपर्स के उन्मूलन जैसे दो महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम सामाजिक विकास तथा आर्थिक जड़ता के निराकरण के लिए प्रमुख रहे। यद्यपि योजनाओं के निर्माण के क्रम में तथा विकास के सभी आयामों को परस्पर सम्बद्ध और अवलम्बित दृष्टिकोण से देखने में जाने अनजाने कोताही भी होती है। हम यह भी नहीं समझ पाये हैं कि भारत के अन्तर्गत जातियाँ वर्ग की ही रूढ़ रूप रही हैं। अत: जातीय आधार पर ही आरक्षण मिलना चाहिए। पर असलियत यह है कि अतीत में जिन वर्गों का उत्पादन के साधन पर नियंत्रण था तथा सुविधा प्राप्त थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहलाये और सुविधाहीन शूद्र। अस्तु जातिया शाश्वत नहीं है बल्कि ये विभाजन, उत्पादन के साधन पर नियंत्रण और उसके अभाव के कारण हुआ है। जरूरत है आर्थिक सुविधा का मार्ग प्रशस्त कर इस जाति और वर्ग की दीवार को ध्वस्त करने की। आरक्षण का प्रावधान व्यक्ति के लिए हो जो गरीबी, अशिक्षा तथा पिछड़ेपन के शिकार हैं न कि जाति के लिए।

दूसरी समस्या आरक्षण के कारण जातीय द्वेष है। भारत जैसे देश में सार्वजनिक उपक्रम जहाँ आर्थिक लाभ के साथ मानवीय मूल्यों से जुड़े हैं वहीं निजीकरण की संस्थाएँ मूल्यों से तिरोहित और मुनाफे की नीति पर आधारित है। ऐसे में रोजगार का अभाव ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है पुराने सामंती अवशेष के कारण उच्च वर्गों में यह धारणा बनती है कि जातीय, जैविक, लैंगिक, साम्प्रदायिक, भाषायी और क्षेत्रीय विशेषाधिकार ही सारे संकटों के जड़ में है जो सही नहीं है। यदि काम के अधिकार को प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकार के रूप में घोषित कर दिया जाये और रोजगार के अवसर सुनिश्चित हो जाये तो न तो जातीय विद्वेष रहेगा और न अन्य विभेदक असंतुलन। अत: तेज आर्थिक विकास और रोजगार के इंतजाम रोजगार गारंटी स्कीम तथा इसी प्रकार के आय बढ़ाने वाले कदमों से यह समस्या

हल हो सकती है।

तीसरे यदि आर्थिक सम्पन्नता पाना साध्य है तो इसके लिए सामाजिक वातावरण के साथ शैक्षणिक स्तर में सुधार उसका साधन है। शिक्षा की प्रगति दर जितनी अधिक होगी आर्थिक विकास उतना ही अधिक होगा। पिछड़े वर्ग को भी ज्ञान-विज्ञान, बुद्धि-विवेक, कौशल और तकनीक से लैस रोजगार के अवसरों में हिस्सेदारी प्राप्त करने की अर्हता पूरी करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। स्त्री शिक्षा पर खासकर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि इसका सीधा प्रभाव सामाजिक विकास पर पड़ता है। शिक्षा सामाजिक गति का एक महत्वपूर्ण जरिया है। आरक्षण की नीतियों के फायदे भी बिना शिक्षा के नहीं उठाये जा सकते।

निष्कर्षतः आरक्षण समावेशी विकास का संक्रमणशील समाधान हो सकता है उसका स्थायी पाथेय नहीं। स्थायी पाथेय सभी व्यक्तियों के काम के अधिकार तथा काम के कर्त्तव्य है। वर्तमान आरक्षण राजनीतिक दलों को सामाजिक रूप से दलित और पिछड़े वर्गों के रूप में मुँहमांगा हथकण्डा प्रदान करता है। महाश्वेता देवी के शब्दों में गरीबी इनका (राजनीतिक दलों) एक औजार है जिसे वे शाश्वत रखना चाहते हैं। एक बार यदि काम का अधिकार दे दिया जाये तो राजनीतिक दलों को सत्ता की रोटी पाने के लिए जातियों के आधार पर शोषण करने का बहाना मिट जायेगा।

संदर्भ सूची :-

1. वसु डी. डी. - भारत का संविधान एक परिचय, प्रेन्टीस हॉल ऑफ इंडिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1995
2. चन्द्र विपीन - आजादी के बाद का भारत-1947-2009, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002
3. ज्यो ड्रेज और अर्मत्य सेन - इंडिया इकोनोमिक डेवलपमेंट एंड सोशल आपेर्चुनिटी, दिल्ली, 1995.
4. सिंह, परमानन्द - रिजरवेशन क्राइसिस इन इंडिया- नीड फार ए नेशनल कनसेनसस- कानपुर लॉ जनरल वॉल्यूम, 4, 1987
5. रिपोर्ट ऑफ वैकवर्ड क्लासेज कमीशन, 1953- वोल्यूम-1, पारा 19-22.
6. पी. अरूणाचलम - इनक्लूसिव ग्रोथ इन इंडिया - सीरीयल्स पब्लिकेशन, 2010
7. आर यू. सिंह, ऐ.के. ठाकुर - इनक्लूसिव ग्रोथ इन इंडिया - दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, 2009
8. अमलेश बनर्जी - इन्क्लूसिव ग्रोथ इन ऐज ऑफ ग्लोबलाइजेशन- कनिका पब्लिकेशन, 2009
9. रॉल्सजान - ए थ्योरी ऑफ जस्टिस हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971
10. लारेन, जोर्ज - क्योरिज ऑफ डेवलेपमेंट पॉलिटी- कैम्ब्रिज, 1989.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 111-115
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. स्तर के छात्रध्यापक एवं छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

–किरन सिंह

शोधकत्री, हड़िया पी.जी. कालेज, हड़िया, प्रयागराज।

सारांश :–

''शिक्षा मात्र मनुष्य के अन्तस्थल के अंधकार को मिटाने वाली कुंजी ही नहीं अपितु राष्ट्र के विकास की जीवंतता का प्रमाण है। अतः शिक्षा के द्वारा की हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारा देश सदैव से ही इस दिशा में प्रयत्नशील रहा है। प्राचीन काल में हमारी भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान की प्राप्ति करना था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक एवं चारित्रिक विकास करना था। जिससे एक श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण हो सके। शिक्षा की आधारशिला शिक्षक होता है इस बात को कोई नकार नहीं सकता। शिक्षक को प्रदर्शक की संज्ञा दी गई है। वही अपने ज्ञान एवं कौशल के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए अभी प्रेरित करता है।

वर्तमान समय विकास का है जिसमें शिक्षा की अहम भूमिका है। इस भूमिका के निर्वहन में ग्रामीण क्षेत्र के नागरिकों का भी अहम योगदान है। आज व्यावसायिक तथा आर्थिक प्रगति के दौर ने ग्रामीण क्षेत्र के नागरिकों को भी उतना ही जागरूक किया है जितना कि शहरी क्षेत्र को। समाज में शिक्षण व्यवसाय को दृष्टिगत रखते हुए शोधकत्री ने प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापक एवं छात्रध्यापिकाओं की अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

मूल शब्द :– ग्रामीण क्षेत्र, बी.एड. प्रशिक्षु, शैक्षिक अभिप्रेरणा।

प्रस्तावना :–

किसी भी राष्ट्र के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान वहां की शिक्षा व्यवस्था का होता है। वही राष्ट्र सर्वाधिक उन्नति करता है जहां की शिक्षा श्रेष्ठ हो। इस शैक्षिक व्यवस्था को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर करने का दायित्व शिक्षक का माना जाता है। शिक्षक को समाज में पथ प्रदर्शक की संज्ञा दी गई है और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह भावी नागरिकों के विकास में अपना सम्पूर्ण सहयोग देगा। शिक्षक का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध विद्वान एच. जी. वेल्स ने शिक्षक के कार्य का महत्व देखते हुए उसे 'राष्ट्र का निर्माता' कहां है। जिसमें सबसे प्रमुख भूमिका होती है शिक्षक प्रशिक्षकों की जो एक सामान्य विद्यार्थी को प्रशिक्षित कर विभिन्न कौशलों से युद्ध एक शिक्षक के रूप में उसका निर्माण करते हैं। वर्तमान समय में बदलते हुए सामाजिक परिवेश में शिक्षण व्यवसाय के प्रति समाज के लोगों में वह सम्मानजनक स्थिति नहीं रह गई है जो पूर्व में थी। आज के आर्थिक विकास के युग में शिक्षण व्यवसाय के प्रति लोगों आकर्षण कम हुआ है।

अध्यापकों के सफल प्रयास द्वारा ही देश विकसित एवं समृद्ध होता है। इसके लिए हमें उच्च कोटि के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों की आवश्यकता है। क्योंकि वही अपनी शिक्षा द्वारा उच्च आदर्श वाले छात्रों को तैयार कर सकते हैं। अतः देश के लिए अध्यापक प्रशिक्षण का विशेष स्थान है। अध्यापक प्रशिक्षण के महत्व को बताते हुए डा.

राधाकृष्णन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं ''समाज में अध्यापक का स्थान महत्वपूर्ण है यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परंपरा और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केंद्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायक होता है। वस्तुतः किसी भी देश का अस्तर वहां के शिक्षकों पर निर्भर करता है और शिक्षकों की योग्यता एवं क्षमता उनके प्रशिक्षण या शिक्षा पर निर्भर करती है। अतः पूर्ण संपूर्ण शिक्षा प्रणाली की धूरी अध्यापक ही है।''

शिक्षक प्रशिक्षण प्रत्येक शिक्षा व्यवसाय का अभिन्न अंग है। यह समाज एवं राष्ट्र के चरित्र उसकी संस्कृति एवं लोकाचार से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होती है। शिक्षा जगत में विशेष रूप से शिक्षक प्रशिक्षणार्थी जोकि भावी अध्यापक के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं तथा अध्यापन व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं वह बी.एड़. या अन्य अध्यापक की प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश लेते हैं। वे विषय वार विभिन्न वर्गों ग्रामीण/शहरी और कला/विज्ञान आदि से होते हैं।

प्रस्तुत शोध में इसी दृष्टिकोण को अपनाया गया है और यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कैसा प्रभाव पड़ता है। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा से तात्पर्य प्रशिक्षण से संबंधित उत्तेजना से है, जिससे प्रशिक्षणार्थियों को प्रेरणा मिलती है। संपूर्ण शिक्षा जगत में शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के संदर्भ में दो प्रकार के विचारधारा है।

प्रथम मान्यता यह है कि शिक्षण एक कला है जो जन्मजात पाई जाती है। जिस से प्रेरित होकर व्यक्ति अध्यापन कार्य करता है। हमारे प्राचीन काल के ऋषि, महर्षि इसी श्रेणी में आते हैं। उस काल में भी हमारे यहां शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य होता था, किंतु वह आज की भांति प्रशिक्षण केंद्रों में ना होकर आश्रमों में या गुरुकुल में होता था। उस काल में शिक्षक प्रशिक्षण का उद्देश्य व्यवसायिक ना होकर आध्यात्मिक था।

द्वितीय मान्यता नवीन विचारधारा के रूप में आती है। इनकी यह मान्यता है कि शिक्षण एक विशिष्ट निश्चित प्रक्रिया है जिसे प्रशिक्षित लोग ही कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रभावित होकर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य सर्वप्रथम 1793 ई0 में पश्चिम बंगाल के श्रीरामपुर के नर्ण्मल स्कूल के रूप में शुरू किया गया। शिक्षक प्रशिक्षण भावी शिक्षक के लिए एक अभिप्रेरणा का कार्य करता है। जो शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के शैक्षिक क्रियाकलापों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रजातांत्रिक समाजोपयोगी नागरिक और सामुदायिक व्यक्तित्व का निर्माण करना हैं। जो भावी नागरिकों के सर्वांगीण विकास को संभव बना सके। शिक्षक, शिक्षा पाठ्यक्रम को सैद्धांतिक कम प्रायोगिक तथा व्यवहारिक बनाने के लिए प्रेरित करता है। शैक्षिक क्षेत्र में प्रगति के लिए शैक्षिक अभिप्रेरणा का होना अति आवश्यक है। अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को व्यवहार करने की शक्ति प्रदान करती है तथा एक खास उद्देश्य की ओर व्यवहार को ले जाती है। अभिप्रेरणा अधिगम प्रक्रिया का स्थानांतरण करने में सहायक होते है। शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षा प्रक्रिया या अधिगम अंतरण में अभिप्रेरणा का कार्य करता है।

अभिप्रेरणा के संदर्भ में :–

अध्ययन का उद्देश्य :– ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड स्तर के छात्रध्यापक एवं छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

- ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़.स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
- ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़.स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना :–

- ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्राध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई

प्रभाव नहीं पड़ता।

- ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

शोध की विधि :–

शोध कार्य को अधिक प्रभावी बनाने के लिए तथा अधिक सफलता अर्जित करने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया से करना आवश्यक हो जाता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है। इस विधि के अंतर्गत वर्तमान तत्वों का अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है। विषय की वर्तमान स्थिति क्या है? वर्तमान दशाओं, क्रियाओं, अभिवृद्धि तथा स्थिति में विषय ज्ञान प्राप्त करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा क्या उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने के लिए 'टी' अनुपात का प्रयोग किया गया है और प्राप्त परिणामों के आधार पर परिकल्पना का 0.5 स्तर पर परीक्षण किया गया। कथनों के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के रुझान को ज्ञात करने के लिए प्रतिशतीय विश्लेषण का प्रयोग किया गया है।

प्रतिदर्श चयन :– शोधकत्री ने प्रतिदर्श के रूप में इलाहाबाद जनपद के 150 ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का चयन (जिसमें 75 पुरुष एवं 75 महिला प्रशिक्षणार्थी) यादृच्छिक विधि से किया है।

परिणाम तथा विवेचना

उद्देश्य 1 : ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़.स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का विवेचन एवं व्याख्या :–

प्रस्तुत अध्ययन का प्रथम उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के बी. एड़. स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़.स्तर के 75 छात्रध्यापकों द्वारा दी गत्र प्रश्नावली के माध्यम से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए हैं।

सारणी 1:1

लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र के B.Ed स्तर के छात्र अध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का विश्लेषण

अभिप्रेरणा :– सारणी संख्या 1:1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा का मध्यमान 164.45 एवं मानक विचलन 55.964 प्राप्त हुआ है। जिसका परीगणित 'टी' मान 0.95 है जो कि 'टी : मान .05=1.97 अस्तर पर असार्थक है। मध्यमान का अंतर स्पष्ट करता है कि लिंग के आधार पर बी.एड़. स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के छात्रध्यापकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है। इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृति की जाती है।

उपरोक्त गणना से यह स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर नहह होता है।

उद्देश्य 2 :- ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन एवं व्याख्या:-

प्रस्तुत अध्ययन का द्वितीय उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं के शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु शोधकत्री ने ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की 75 छात्रध्यापिकाओं द्वारा दी गई शैक्षिक अभिप्रेरणा प्रश्नावली के माध्यम से निम्न आंकड़े प्राप्त किए।

लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का विश्लेषण और व्याख्या :–

सारणी 1:2

क्र.सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी का मान	सार्थकता स्तर
1.	ग्रामीण क्षेत्र की छात्रध्यापिकाएं	75	215.186	52.448	1.05	'टी' 05=1.97 असार्थक

सारणी संख्या 1:2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं के शैक्षिक अभिप्रेरणा का मध्यमान 215.186 एवं मानक विचलन 52.448 प्राप्त हुआ है जिसका परीगणित 'टी' मान जो कि 1.05 है जो कि 'टी' मान .05=1.97 स्तर पर सार्थक है। मध्यमान का यह अंतर स्पष्ट करता है कि लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है। इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त गणना से स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं के शैक्षिक अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर नहीं होता है।

अध्ययन का निष्कर्ष एवं व्यारव्या :-

ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन एवं व्यारव्या :-

उद्देश्य :- 1. प्रथम उद्देश्य की सारणी संख्या 1:1 में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

2. शोधकर्त्री ने जब अपनी शैक्षिक अभिप्रेरणा प्रश्नावली के साथ ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापकों के समक्ष पहुंची तो पाया कि उनमें बी.एड़. पाठ्यक्रम के प्रति बहुत अधिक जागरूकता नहीं है। फिर भी एक विकल्प के रूप में वे एक व्यवसायिक पाठ्यक्रम की योग्यता प्राप्त करने में रुचि रखते हैं। अत: यह परिकल्पना लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षोत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापकों की शैक्षिक अभिप्रेरणा पर पड़ने प्रभाव का कोई सार्थक अंतर नहीं होता है। अत: परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उद्देश्य :- 2. ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन एवं व्यारव्या :-

1. द्वितीय उद्देश्य की सारणी संख्या 1:2 से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि 'लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।' अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

2. जब शोधकर्त्री ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं के समक्ष अपने शैक्षिक अभिप्रेरणा प्रश्नावली के साथ पहुंची तो पाया के छात्रध्यापकों की अपेक्षा बी.एड़. छात्रध्यापिकाओं में बी.एड़। पाठ्यक्रम के प्रति रुचि है। व्यवसायिक पाठ्यक्रम के विकल्प के रूप में बी.एड. को वरीयता देती हैं। अत: यह परिकल्पना 'लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की बी.एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है। अत: यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

3. शोधकर्त्री ने अपनी शैक्षिक अभिप्रेरणा प्रश्नावली के साथ ग्रामीण क्षेत्र के छात्रध्यापिकाओं से संपर्क किया तो यह पाया कि उनके अभिभावकों में इस पाठ्यक्रम के प्रति सहमति है। उनका मानना है कि इस कोर्स को पूर्ण करने के उपरांत जो रोजगार इन छात्रध्यापिकाओं को करने को मिलेगा उसे करने के साथ-साथ वे अपने परिवारिक जिम्मेदारियों को भी कुशलतापूर्वक पूर्ण कर सकेंगी। अत: यह परिकल्पना 'लिंग के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की बी.

एड़. स्तर की छात्रध्यापिकाओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।' स्वीकृत की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के छात्रध्यापक एवं छात्रध्यापिकाओं ने स्वीकार किया है कि व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में के अंतर्गत बी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त करना रोजगार प्राप्ति में सहायक हैं उन्होंने उक्त पाठ्यक्रम के प्रति अपने अत्यधिक रुचि तो नहीं दिखाई किंतु विकल्प के रूप में सहमति जताई। छात्रध्यापिकाओं ने अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति के आधार पर भी इस पाठ्यक्रम के प्रति अपनी रुचि दर्शाई। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड़. स्तर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा पर सार्थक प्रभाव होता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. अग्रवाल, जे0सी0 (2009) शैक्षिक तकनीकी व प्रबंधन आगरा श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
2. सिंह, मयाशंकर, अध्यापक शिक्षा असमंजस में, नई दिल्ली अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
3. गुप्ता, एस0पी0 उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन।
4. सिंह, डा0 अरुण कुमार, भारती भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।
5. अस्थाना विपिन एवं श्रीवास्तव विजया– (2012–13) शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेसन्स, आगरा।
6. गुप्ता डॉ0 एस0 पी0–(2003) सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

मो0–8381849045

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 116-124
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरिशंकर परसाई के कथा साहित्य में समकालीन समाज के यथार्थ चित्रण

–डा. भागेश देवन
Hindi Teacher, Minoriti Murarjidesai Residenctial School, Veranapura Cross (Near Coffee Stop)
Gundlupete, Chamarajanagara District -571111, Karnataka

हरिशंकर परसाई नई कहानी के प्रगतिशील धारा के प्रमुख रचनाकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से हिंदी कहानी को एक नया संस्कार तथा एक नई रुचि प्रदान की और उनकी कहानियाँ हिंदी कथा साहित्य को नए तेवर तथा नई रंगत प्रदान करती हैं। एक साधारण विषय भी उनकी कहानी में आकर असाधारण बन जाता है।

परसाई 'नई कहानी' के साथ पैदा तो हुए पर एक अपवाद के रूप में उनकी पहचान हमेशा बनी रही। आलोचकों में उनकी कहानियों को लेकर मतभेद सदैव रहा है। बहुत से आलोचकों को लगा कि उनकी कहानियाँ सही मानने में कहानी का जो परंपरागत ढोंचा है, उसमें फिट नहीं बैठती है । कहीं वह रेखाचित्र के करीब होती है, तो कहीं रिपोर्टर्स के अंदाज में बयां होती है, तो कहीं साक्षात्कार की शैली में पेश होती है, तो कहीं संस्मरण का आभास देती है। लेकिन परसाई जैसे कालजई लेखक से हम यह अपेक्षा क्यों पाले कि वह ट्रेडिशनल फार्म में ही अपनी कहानियों को फिट करें? लेकिन जैसा लेखक ही कहानी के पुराने सांचौं को दरकिनार करते हुए नहीं फार्मेट में नई तेवर वाली कहानियाँ लिख सकता था और यह काम परसाई ने बखूबी किया। कविता के क्षेत्र में ऐसा ही काम निराला करते हैं, तो कहानी के क्षेत्र में परसाई। निराला के नक्शे कदम पर चलते दिखाई देते हैं। वैसे भी 'परसाई जी फार्म के नहीं कंटेंट के साहित्यकार है।'[1]

कंटेंट की दृष्टि से परसाई का कथा साहित्य समकालीन भारतीय समाज का आईना है। रविंद्रनाथ त्यागी के अनुसार 'आजादी के पहले का हिंदुस्तान जानने के लिए जैसे प्रेमचंद ही पढ़ना काफी है, उसी तरह आजादी के बाद के भारत का सच्चा दस्तावेज परसाई की रचनाओं में सुरक्षित है।'[2]

हरिशंकर परसाई जब साहित्य की दुनिया में कदम रखते हैं, तब तक देश आजाद हो चुका था। अभी आजादी तो आई पर वह आजादी मुठ्ठी भर लोगों तक सीमित रह गई। इस आजादी के आने के बाद हिंदुस्तान का चरित्र जिस तेजी से बदला वह अपने आप में चौंकाने वाला था। सही मायने में अधूरी राजनीतिक स्वतंत्रता ने देश के आम लोगों को त्रस्त कर दिया। अपनी वर्षो की गुलामी के जंजीर तोड़कर हिंदुस्तान अपने लोकतंत्र की नीव रखता है, तथा अनेक आशाओं और योजनाओं के बल पर एक ऐसा हिंदुस्तान का सपना देखा जाने लगता है, जहाँ सब को काम मिल सके, जहाँ सबको पेट भरने का अधिकार मिल सके, जहाँ सब को पढ़ने का अधिकार मिल सके, जहाँ भ्रष्टाचार ना हो, जहाँ देश सेवा के नाम पर जनता को लूटने वाले जनप्रतिनिधि ना हो, धर्म के नाम पर दंगे की ज्वाला पैदा करने वाले ठेकेदार ना हो, जहाँ सांप्रदायिकता व जातिवाद का जहर ना हो, जहाँ भ्रष्ट व निकम्मी नौकरशाही ना हो, जहाँ भाईचारा हो, सद्‌भावना हो, जहाँ सब को सम्मान के साथ जीने का अधिकार हो, लेकिन ऐसे हिंदुस्तान का स्वप्न देखना आसमान से चाँद-तारे तोड़ने के समान था।

परसाई के कथा साहित्य के केंद्र में यही आम आदमी है। इसी की रोजमर्रा की तकलीफों को वह जबान देते हैं, तथा उसकी तकलीफों के लिए जिम्मेदार ताकतों को बेनकाब भी करते हैं। वह उन कारणों की पड़ताल भी करते हैं। जिनकी वजह से हिंदुस्तान का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक परिवेश लगातार बिगड़ता चला गया। उनकी कहानियाँ हमारे अपने समय के यथार्थ से सिर्फ रूबरू ही नहीं कराते हैं, बल्कि एक विकल्प की तलाश के प्रति रोशनाई भी पैदा करती है। जब हम हरिशंकर परसाई के कथा साहित्य के संसार में गुजरते हैं, तब हमें यह पता चलेगा कि वहाँ हमेशा पूरा समकालीन समाज अपनी पूरी विसंगतियाँ और अंतर्विरोधों के साथ साँस ले रहा है। वहाँ मध्यवर्ग है, समाज से कटा हुआ घोंघा रूपी बुद्धिजीवी है, भ्रष्टाचार में डूबा नौकरशाह है, जाति, धर्म, संप्रदाय तथा देश सेवा के नाम पर राजनीति करने वाले अवसरवादी नेता गण हैं। अध्यात्म तथा धर्म की खाल ओढ़नेवाले ठग, आचार्य और गुरुओं की फौज भी है, इन्हीं के साथ-साथ मेहनतकश आम आदमी है, औरत भी है, यह औरत सामाजिक कुसंस्कारों को परे ढकेलती हुई आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ती हुई तट की खोज करती है। वह स्त्री अपने परिवार में संस्कारों के नाम पर अपना जीवन तक चुपचाप स्वाह कर देती है।

समकालीन समाज के शिक्षण और स्त्री-समाज से जुड़ा हुआ यथार्थ :-

किसी भी राष्ट्र के सभ्य व संस्कृत होने की राह उसकी शिक्षा व्यवस्था से होकर गुजरती है। शिक्षा राष्ट्र की संपदा होती है और इसी संपदा के बलबूते राष्ट्र अपनी प्रगति की ऊंची उड़ान भरता है। अपने सपनों को पंख देता है, पर जब इस व्यवस्था की नींव कमजोर पड़ने लगती है, तब हमारा वर्तमान तो विकृत होता ही है, मात्र नहीं भविष्य की उज्ज्वलता भी मद्दिम पड़ जाती है। आजादी के कुछ ही वर्षो बाद ही शिक्षा का व्यवसायीकरण बड़ी तेजी से हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में माफियाराज चलाया जाने लगा। शिक्षा की मर्यादा लांघी जाने लगी। शिक्षा के केंद्र पूंजी की दुकान में बदल गए। अब विश्वविद्यालय ज्ञान, विज्ञान के केंद्र से ज्यादा गलत राजनीति व व्यक्तिगत उठापटक के अखाड़े बन गए अध्यापक राजनीतिज्ञों के तलवे सहलाने वाले चाटुकार बन गए। शिक्षा के क्षेत्र में जो विद्रूपीकरण हुआ, वह परसाई की कलम की धार और वार में आने से नहीं बच सका है। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त अंतर्विरोध व पाखंड परसाई की कहानियों में खुलकर सामने आए हैं।

आचार्य जी की 'एक्सटिंक्शन तथा बगीचा,' 'ग्रांट अभी तक नहीं आई,' 'रिसर्च का चक्कर,' 'इतिश्री रिसर्च,' 'बेताल की छब्बीसवीं कथा,' 'ढपोलशंख जी मास्टर हो गएश आदि अनेक कहानियाँ हमारे समकालीन शिक्षा जगत की असंगतियों को सामने लाती है। शिक्षा और राजनीति का संबंध जगजाहिर है। पहले राजनेता शिक्षकों के सामने सिर झुकाते थे, उनका सम्मान करते थे, पर आज शिक्षक ही राजनेताओं के आगे पीछे दुम हिलाते हुए नजर आते हैं, जी हुजूरी की बीमारी से शिक्षक वर्ग भी ग्रस्त हो गया है। इसकी झांकी हमें 'ग्रांट अभी तक नहीं आई' कहानी में देखने को मिलती है। इसमें विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों का वर्णन मिलता है, जो एक मंत्री के सामने ग्रांट पाने के लिए तथा उनकी कृपा दृष्टि के लिए मेरुदंड विहीन प्राणी बने हुए हैं। विद्या व ज्ञान के सेवक ग्रांट एवं मंत्री के सेवक बनकर खड़े हुए हैं। परसाई इसका सुंदर चित्र प्रस्तुत करते हैं- 'मंत्री देश की गरीबों का जिक्र कर उदास होता है, वो चेहरे भी उदासी में डूब जाते हैं, देखते रहते हैं, मंत्री कब उदासी से उभरता है, उसके उभरते ही चेहरे भी उभरकर मुस्काने लगते हैं। दर्शनशास्त्र, इतिहास, संस्कृति के चेहरे 'रिफ्लेक्ट' कर रहे हैं।'[3] सिर्फ चेहरे ही नहीं बने हुए हैं, बल्कि चाटुकारिता के बोझ तले दबकर दरबारी भी बन गए हैं।

शिक्षा के नाम पर डिग्रियों के लिए जो कुछ चक्कर चलाया जाता है, परसाई उसका भी पर्दाफाश करते हैं। उनकी अनेक कहानियाँ ऐसी है, जहाँ शिक्षा जगत की सबसे बड़ी डिग्री पी.एच.डी. या रिसर्च व्यापार का जायजा लिया गया है। 'रिसर्च का चक्कर' तथा 'इतिश्री रिसर्च' नामक कहानियाँ इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में काफी उल्लेखनीय है। 'रिसर्च का चक्कर' नामक कहानी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त चक्रमपूर्ण स्थितियों का खुलासा करती

है। जहाँ रिसर्च के नाम पर ज्ञान की नहीं, बल्कि चमचेबाजी, झूठ-फरेब तथा गुटबाजी का प्रशिक्षण दिया जाता है। रिसर्च के नाम पर देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में जो प्रहसन किया जाता है। जिसमें समय तथा धन का अपव्यय तो होता ही है, देश के भविष्य के साथ भी खिलवाड़ होता है। परसाई इन सारी विसंगतियों का अनावरण बड़ी साफगोई के साथ करते हैं। 'डॉक्टर साहब प्रसन्न हुए। कहने लगे पहले रिसर्च का अर्थ समझ लो, इसका अर्थ है- फिर से खोजना, यानी जो पहले ही खोजा जा चुका है, उसे फिर से खोजना 'रिसर्च' कहलाता है। भारत के विश्वविद्यालयों में जो प्रोफेसरात हमारे विरोधी है, उनके ग्रंथों और निष्कर्षों को तुम्हें नहीं देखना है, दूसरी बात यह है कि विश्वविद्यालय ज्ञान का विशाल कुंड है। इसमें जितना ज्ञान भर सकता है उतना भरा हुआ है। अगर बाहर से ज्ञान लाकर भरा जाएगा तो यह कुंड फूट जाएगा। हर अध्यापक और छात्र का यह कर्तव्य है कि इस कुंड में बाहर से ज्ञान जल ना आने दे। ...ऐसे हर छेद पर अंगुली रखे रहो, जहाँ से ज्ञान भीतर घुस रहा है। यानी अब रिसर्च का ज्ञान से संबंध नहीं रह गया है। विश्वविद्यालय ज्ञान-अर्जन के क्षेत्र में कूप-मंडूकता का ही परिचय दे रहे हैं।

पहले साधु व विद्वानों की जाति नहीं पूछी जाती थी, पर अब रिसर्च के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए जाती, गुट तथा एकनिष्ठता भी देखी जाती है। परसाई इसका खुला वर्णन करते हैं- 'मैंने भी कहा गुरुदेव मैं रिसर्च करना चाहता हूँ।'

उन्होंने पूछा क्यों? मैंने प्रभाव डालने के इरादे से कहा, मुझ में ज्ञान की पिपासा है, मैं किसी विषय का गंभीर और सर्वांग अध्ययन करना चाहता हूँ।

आचार्य जी बोले- तुम्हारी उम्र कम नहीं है, पर तुम में अभी स्कूली बच्चों की तरह ज्ञान के प्रति उत्साह है, यह प्रौढ़ मानस का लक्षण नहीं है। अच्छा पहले यह बताओ, तुम कौन जात हो?

मेरी उलझन देखकर आचार्य ने पूछा 'ब्राम्हण कि कायस्थ?'

मैंने कहा- दोनों नहीं।

उन्होंने पूछा, मगर तुम्हें कौन अच्छा लगता है- ब्राह्मण कि कायस्थ? यहाँ ब्राह्मणों ने अपना गुट बना रखा है, जिसके नेता है, डॉक्टर शर्मा। हमने भी अपना गुट बना रखा है-कायस्थ गुट। उसके नेतृत्व का भार मुझ अकिंचन पर है। तुम मगर ब्राम्हण गुट के प्रति निष्ठावान हो तो डॉक्टर शर्मा के पास जाओ।'[5] यह कई विश्वविद्यालयों की दशा है, जिन विश्वविद्यालयों में देश की भविष्य गढ़ा जाता है।

परसाई जी की और एक कहानी 'इतिश्री रिसर्च' यहाँ उल्लेखनीय है। इसमें परसाई जी ने बुद्धिजीवी और राजनीतिज्ञ के संबंध और स्वरूप को बड़ी बारीकी के साथ अंतर्ग्रथित किया है। कहानी में दो भाग है। पहले भाग में एक राजनीतिज्ञ गोपालचंद का चयन किया गया है, जो स्वतंत्रता संग्राम में जेल की यात्रा कर चुका है। अब वह अपनी देश सेवा की कीमत वसूलना चाहता है। बात-बात में त्याग, देश-प्रेम, सेवा, परोपकार, मूल्यों की बात करता है, पर वह बात तक ही सीमित रहता है। आज राजनीतिक राजनीतिज्ञों के लिए बलिदान, त्याग, देशप्रेम और देशसेवा जैसी बातें फैशन ही मानी जाती है। परिवारवाद से ग्रस्त ऐसे नेता अपनी विरासत को अपनी आने वाली पीढ़ी हेतु सुरक्षित रखने के लिए नाना प्रकार की जुगत भिड़ाते हैं- 'उन्होंने हाल ही में करीब चार लाख रुपए चंदा करके स्वतंत्रता-संग्राम के शहीदों की स्मृति में एक भव्य 'बली-स्मारक' का निर्माण करवाया था। वे इसके प्रवेश द्वार पर देशप्रेम और बलिदान की कोई कविता अंकित करना चाहते थे। उलझने यही थी कि वे पंक्तियाँ किस कवि की हो।'[6] और यह उलझन भी नेता गोपालचंद अपनी फारामती व स्वार्थी बुद्धि से सुलझा लेता है। अंत में वह यह तैयार करता है कि वह अपने नालायक पुत्र गोबरधनदास की कविता को 'बलि स्मारक' के प्रवेश द्वार पर अंकित करवाएगा, ताकि आने वाली पीढ़ियों तक उसका व उसके पुत्र का नाम अमर हो जावे। वह अपने पुत्र को बुलाकर फौरन आदेश देता है- 'तू मुझे कल चार पंक्तियाँ देशभक्ति और बलिदान के संबंध में लिखकर दे देना।' इस तरह आज राजनेता साहित्य की दिशा

व दशा तय करेंगे। साहित्य जो राजनीति के आगे चलने वाला मशाल अब वह राजनीति के पीछे चलने लगा है।

कहानी के दूसरा आयाम हमारे विश्वविद्यालयों में शोध की क्रिया-प्रक्रियाओं के स्वरूप पर प्रकाश डालता है। इस भाग में एक शोध निर्देशक खुदाई में मिले बली स्तंभ पर खुद ही राजनीतिज्ञ पुत्र की कविता को अपने जमाने की श्रेष्ठ कविता सिद्ध करने के लिए कैसे-कैसे प्रमाण व तर्क जुटा लेता है। जब शोध निदेशक का शोधार्थी छात्र जब यह सवाल करता है कि केवल चार पंक्तियों के आधार पर उस कवि को श्रेष्ठ कैसे घोषित किया जाए तथा उसके शेष साहित्य के बारे में क्या बताया जाए? तब शोध निदेशक गुरुजी अपने ज्ञान की पिटारी से ऐसा सहज समाधान पेश करते हैं जो विश्वविद्यालयों में शोध के वातावरण को सजीवता प्रदान करना है। 'डॉक्टर साहब ने कहा, यह तो बहुत ही सहज है, लिखो कि उनका शेष साहित्य काल के प्रवाह में दब गया। उस युग में कवियों में गुटबंदियाँ थीं। गोबरधनदास अत्यंत सरल प्रणति के गरीब आदमी थे,... वे किसी गुट में सम्मिलित नहीं थे।... उनकी अवहेलना की गई, उन्हें कोई प्रकाशक नहीं मिला। उनकी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थी, पर अन्य कवियों ने प्रकाशकों से वे पुस्तकें खरीद कर जला दी। रॉबर्ट के मुख पर उल्लास छा गया। बोला और यह भी लिख दूँ न कि इन्होंने सौ से ऊपर ग्रंथ लिखे थे।

हाँ, हाँ, बल्कि दो सौ और यह भी लिखो कि उस समय देशप्रेम से उन्मत्त जन समूह गोबरधनदास की वह ओजपूर्ण कविताएँ गाता हुआ बलि पथ पर बढ़ता था। गुरु ने शोध आगे बढ़ाई, रॉबर्ट ने शंका की लेकिन सर वैसे देखा जाए तो यह पंक्तियाँ बहुत रद्दी है। निष्कर्ष गलत न हो जाए। डॉक्टर साहब ने डांटा। राबर्ट तुम्हें शोध का सबसे पहला नियम नहीं आता। अरे, जो प्राचीन है वह सबसे उत्तम है और शोध का प्रयोजन ही यह है कि जिसमें जो चीज न हो उसे खोजा जाएँ। इस प्रकार गोबरधनदास की चार पंक्तियाँ वाली कविता विश्वविद्यालय के प्रांगण में शोध निर्देशक की विशेष अनुकंपा पर क्रांतिकारी खोज सिद्ध हुई, तथा गोबरधनदास निराला, दिनकर को पछाड़ते हुए बीसवीं सदी के सबसे महान राष्ट्रीय कवि घोषित हुए। यह हमारी शोध दृष्टि, जो किसी को भी महान सिद्ध कर सकती है।

अध्यापन तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी भाई-भतीजावाद तथा परिवारवाद का दीमक लग चुका है। जो अपने वाले नौनिहालों का भविष्य तो चौपट कर ही रहा है तथा पूर्ण वर्तमान को अपने अधकचरे ज्ञान तथा गलत शिक्षा के आधार पर पंगु भी बना रहा है। शिक्षा के गलियारे में सब कुछ बिक रहा है।

नारी समाज परिवार का ही नहीं समाज का ही हिस्सा है। कोई भी स्त्री को नजरअंदाज करना संभव नहीं होता। कोई भी व्यक्ति या समाज का प्रगतिशीलता व संवेदनशीलता का पता भी इस बात से चलता है। स्त्री के प्रति आज भी हमारा समाज अंतर्विरोधों का शिकार है। आज जहाँ एक तरफ स्त्रियाँ आजादी की स्वच्छंद उड़ान भर रही है तथा उन क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा व योग्यता का लोहा मनवा रही है, जो अब तक पुरुषों के अधिकार में थे, तो दूसरी तरफ हमारे सभ्य समाज में सबसे ज्यादा अपराध और अत्याचार का शिकार भी स्त्रियाँ ही हो रही है। एक तरफ हमारा समाज स्त्रियों की आजादी की वकालत करता है, तो दूसरी तरफ वह उसके पैरों में रूढ़ियों की जंजीरे भी डालना चाहता है। वैसे भी हमारे समाज में उन लोगों की कमी नहीं है जो स्त्री की स्वतंत्रता व उसके अधिकारों के बारे में बातें तो बहुत करते हैं, पर जब अपनी स्त्री की बात आती है तो पक्का रूढ़ीवादी बन जाते हैं। ऐसे ही दोहरी मानसिकता वाले सेवक जी का असली चेहरा परसाई अपनी लघु कथा 'उपदेश' में दिखलाते हैं। 'सेवक जी घर पहुंचे, थोड़ी देर बाद लड़के ने आकर कहा, पिताजी अम्मा नारी मंगल समिति के कार्यक्रमों में भाग लेने जाना चाहती है। सेवक जी की आंखें चढ़ गई-बोले कह दे कहीं नहीं जाना है, जहाँ देखो वहाँ मुंह उठाये चल दी। कुछ लाज-शर्म भी है या नहीं।'

लड़का था वाचाल उसने कहा 'पिताजी अभी तो आपने सभा में कहा था कि स्त्री को बाहर समाज में निकलना चाहिए। सेवक जी ने समझाया- 'तू अभी नादान है। बात समझता नहीं है। अरे जब यह कहा जाए कि स्त्री बाहर

निकले तब यह अर्थ होता है कि दूसरों की स्त्रियाँ निकले, अपनी नहीं।'[7] यह दोहरी मानसिकता हमारे समाज के रग-रग में बसी हुई है। स्त्री से जुड़े मुद्दे को उठाती हुए परसाई द्वारा रचित और यह कहानी 'भीतर का घाव' एक मार्मिक कहानी है जो हमारे समाज के भयवाह यथार्थ को सामने लाती है। इसमें व्यंग्य की तीखी मार की अपेक्षा करुणा की सघन धार है, जो हमें अंदर तक विचलित कर देती है। यहाँ करुणा तो है, पर कोरी भावुकता नहीं है, इसमें समाज की बुनियादी विकृति पर प्रहार है। परिवार में वह बहू के प्रति कितनी मानवीयता एवं निर्ममता भरती जाती है जो अपने साथ भारी भरकम दहेज नहीं लाती। दहेज के लोभी अपनी सारी मानवीयता को तिलांजलि देकर कैसे नरपशु के रूप में तब्दील हो जाते हैं? इस का यथार्थ चित्रण कहानी में है।

'तट की खोज' परसाई जी के एक दीर्घ कहानी है, जो सन 1958 में छपी थी। जिसमें मध्यम वर्गीय समाज में स्त्री-पुरुष के संबंधों को केंद्र करके समाज के अनेक अंतर्विरोध व विसंगति पूर्ण चरित्र को विश्लेषण किया गया है। इस दीर्घ कथा के केंद्र में एक स्त्री है, जो मध्यवर्ग की मिथ्या-नैतिकता की शिकार बनती है, पर वह अपने स्वाभिमान तथा साहस के बलबूते मध्यवर्गीय समाज की चुनौतियों का सामना करती हुई अपनी अस्मिता के तलाश के नए पैमाने भी गढ़ती है। आलोचक वीर भारत तलवार का कहना है कि- 'यह एक महत्वपूर्ण कहानी है। इसकी खासियत नायिका की वह भावुकता रहित दृष्टि है, जो सहानुभूति और सहारे के पीछे छुपी वास्तविक संबंध भावना को निर्ममता से पहचान लेती है।'[8]

इस दीर्घ कथा में दो पुरुष चरित्र भी है। एक महेंद्रनाथ जो पढ़ा-लिखा बुद्धिजीवी है। विद्रोह और क्रांति की बात करता है, पर संस्कारों के नाम पर एक ओढ़ा हुआ जीवन भी जीता है। ऊपर से प्रगतिशील परंतु अंदर से रूढ़ियों का गुलाम है, तथा लोग क्या कहेंगे, जुमले की उसे ज्यादा फिक्र है। दूसरा युवक मनोहरलाल है, जो बड़ी-बड़ी बातें तो नहीं करता है, बावजूद इसके वह उदार व प्रगतिशील विचारों वाला युवक है।

इस दीर्घ कथा में स्त्री विमर्श को एक नई दिशा भी दी गई है। शीला जो इस कथा की नायिका है। अपने आप में एक सशक्त चरित्र है। वह सामाजिक यथार्थ से टकराकर टूटती नहीं है, बल्कि स्त्री अस्मिता को एक ठोस जमीन प्रदान करती है। इस कथा में सिर्फ स्त्री विमर्श ही नहीं उभरता, बल्कि मध्यवर्ग में व्याप्त नाना प्रकार की विसंगतियाँ भी उभर कर सामने आती है। 'शीला' के माध्यम से परसाई मध्यवर्गीय मानसिकता के अंतर्विरोधों की बखिया भी उधेड़ते हैं। शीला कॉलेज में अपनी पढ़ाई पूरी कर रही है, पर वह यह जानती है कि 'सामान्य आदमी जब बेटी का विवाह नहीं कर पाता, तो कॉलेज में दाखिल करा के 'अभी पढ़ रही है' कह कर संतोष कर लेता है।... लड़की के कॉलेज में पढ़ने से पिता कुछ समय के लिए जिल्लत से बच जाता है। लोगों से कहने के बदले के विवाह नहीं हो पा रहा है, वह यह कह सकने की सुविधा पा लेता है कि अभी पढ़ रही है।'[9] शीला के पिता जो सरकारी रिटायर्ड नौकर थे, अभी थोड़ी से पेंशन पर घर की गाड़ी खींच रहे थे। सामान्य पिताओं की तरह उसकी भी यही चिंता थी कि बेटी की शादी हो जाए। पर हर बार लड़केवालों की मांग उनके सामर्थ्य की सीमा लांघ जाती है।

इस कथा में महेंद्रनाथ के माध्यम से उन वाग्वीरों तथा कलमजीवी भद्र शिक्षित वर्ग की पोल खोली गई है, जो अपने लेखों में बढ़-चढ़कर क्रांति की बात करता है। व्यवस्था में परिवर्तन की बात करता है, पर अंदर ही अंदर वह केंचुआ-सा मेरुदंड विहीन लिजालिजा प्राणी होता है। दोहरे मुखोटे वाला महेंद्रनाथ शीला को पत्र लिखकर अपने प्रेम का निवेदन करता है, पर गुंडों द्वारा पीछा किए जाने पर जब शीला उसके घर में घुस कर अपनी इज्जत बचाती है, उस समय समाज द्वारा शीला पर लांछन लगाया जाता है, तब महेंद्रनाथ शीला को नीचा दिखा देता है, जब शीला पर पूरा समाज झूठी बदनामी की कालिख पोता है, तब महेंद्रनाथ जैसा पढ़ा-लिखा क्रांति व परिवर्तन की बात करनेवाला आदमी चुपके से पीछे के दरवाजे से खिसक जाता है, क्योंकि उसके लिए झूठी प्रतिष्ठा ही सब कुछ है।

'मनोहरलाल' कहानी के और एक पात्र है। यह महेंद्रनाथ के विलोम चरित्र के रूप में उपस्थित है, जो उदार

विचारों वाला युवक है, तथा शीला के प्रति करुणा व सहानुभूति रखता है। वह उसका सहारा बनना चाहता है, पर शीला यह सहारे को अस्वीकार कर देती है, क्योंकि उसका यह मानना है कि पुरुष और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का स्वाभाविक संबंध जरूरी है। जीवन के विकास का उत्तम मार्ग है। पर इस व्यापार में हम 'बेसहारे' मानी जाती है, और पुरुष सबल सहारा। इसलिए हर कीमत पर, हर परिस्थिति में नारी को पुरुष का सहारा चाहिए ही ऐसी धारणा जमकर बैठ गई है। पुरुष से अधिक नारी के मन में वृक्ष और लता के रूपक बन गया है। बस ऐसी हीनता ने हमारी ऐसी दुर्दशा कर दी है। अगर यह सहारा न मिले तो? तो क्या मेरी जैसी स्त्री मर जाए?... परस्पर सहारे की बात हो तो बहुत अच्छा है। लेकिन लता और वृक्ष? नहीं, नहीं।'[10] यहाँ परसाई स्त्री-विमर्श को एक नया आयाम देते हैं। स्त्री-विमर्श के नाम पर स्त्री अस्मिता को देश की आजादी के रूप में लेने का जो फैशन चल रहा है, परसाई उससे अलग स्त्री अस्मिता को स्त्री के सम्मान पूर्वक व बराबरी से जीने के अधिकार से जोड़ते हैं। यहाँ शीला मनोहर को अपना फैसला सुनाकर एक नई दिशा की तलाश में घर छोड़ देती है। परसाई शीला के इस गृहत्याग के माध्यम से यदि पुरुष गृहत्याग करता है, तो वह साधु है पर यदि नारी गृहत्याग करती है तो वह कुलटा है, इस कथन का प्रतिवाद करते हैं।

समकालीन समाज से जुड़ा राजनीतिक यथार्थ :-

आजादी के बाद सबसे ज्यादा विसंगतियाँ राजनीति के प्रांगण में ही पनपती रही है। वैसे तो आज समाज का हर क्षेत्र ही बीमार है, पर राजनीति का क्षेत्र सर्वाधिक रोग ग्रस्त है। परसाई के कथा साहित्य में अधिकांश कहानियाँ भारतीय राजनीति के अंतर्विरोध एवं विसंगतियों पर लिखी गई है। आजादी के कुछ वर्षो ही बाद भारतीय राजनीति में जो गिरावट आई, वह अपने आप में बेहद चिंताजनक थी। आजादी से पहले तक लोग देशसेवा करने राजनीति में जाते थे। राजनीति एक मिशन के तहत की जाती थी, पर आजादी मिलते ही देशसेवा करने वाले परिवारवाद, अवसरवादी, जातिवाद, भाई भतीजावाद, सत्तावाद के साधक बन गए। अब राजनीति मिशन से प्रोफेशन बन गई। सत्ता का स्वाद पाते ही हमारे जन सेवकों का दिमाग खराब होने लगा। वे अब अपने आप को देश की जनता का भाग्य विधाता मानने लगे। कुर्सी मिलते ही मूल्य बदल गए। सिद्धांतों का गला घोंटा जाने लगा। इस तरह भारतीय राजनीति के संपूर्ण विरोधाभासी चरित्र को परसाई अपनी कहानियों में कभी सपाट तो कभी दंत कथाओं के माध्यम से, तो कभी पुराण कथाओं तथा कभी फेंटेसी के माध्यम से बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

'भेड़ें और भेड़िए' कहानी परसाई की एक महत्वपूर्ण कहानी है। आजादी के बाद हमारे राजनेता भेड़ियों के रूप में तब्दील हो गए, तथा जनता की हालत भेड़ों की तरह हो गई। इस कहानी में यह भी दिखाया गया है कि कैसे हमारे यहाँ राजनेता चुनावों में अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए जनता को आश्वासन पर आश्वासन देते हैं। सुरक्षा का, गरीबी हटाने का, महंगाई रोकने का, मंदिर बनाने का, वगैरह-वगैरह, पर चुनाव जीतते ही सारा परिदृश्य बदल जाता है। जनता आश्वासनों पर विश्वास करके वोट तो देती हैं, पर उनकी हालत भेड़ियों के राज्य में भेड़ों की तरह हो जाती है। चुनाव में जीतते ही राजनेता भेड़िए की शक्ल अपना लेते हैं और पंचायत में भेड़ों के हितों की रक्षा के लिए भेड़िए प्रतिनिधि बनकर गए। और पंचायत में भेड़ियों ने भेड़ों की भलाई के लिए पहला कानून यह बनाया कि हर भेड़िए को सवेरे नाश्ते के लिए भेड़ का यह मुलायम बच्चा दिया जाए। दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़, तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए। इसलिए आधी ही भेड़ भेज दी जाए। जब जनता और राजनेता का संबंध भेड़ और भेड़ियों की तरह हो जाए तो इस अवस्था तथा व्यवस्था में लोकतंत्र की सुरक्षा कैसे हो पाएगी? यह प्रश्न विचलित करता है। परसाई इस प्रश्न को बड़ी ईमानदारी के साथ अपनी रचनाओं में उठाते रहे हैं। सन् 1962 के आम चुनाव में कांग्रेस में नए खून को टिकट देने की मांग पर परसाई 'सज्जन, दुर्जन और कांग्रेसजन' की कहानी में भैया साहब के द्वारा भारतीय नेताओं में व्याप्त कुर्सी प्रेम को स्पष्ट तौर पर दिख लाते हैं। 'जवानों को धीरज नहीं है। अरे, उनके सामने

तो पद ग्रहण करने के लिए जिंदगी पड़ी है। उन्हें क्या जल्दी है? हमारे पास तो मुश्किल से पांच-दस साल होंगे... पुराना चावल अच्छा होता है। मैं तो वह दिन देखना चाहता हूँ, जब विधानमंडलों और सचिवालय के सामने एंबुलेंस गाड़ियाँ खड़ी हो और उसमें से स्ट्रक्चर पर उठाकर सदस्य और मंत्री भीतर ले जाये जाए।'[11] यह पदलोलुप वृद्ध नेता का सपना है।

परसाई आजाद भारत के उन रचनाकारों में है, जो जोखिम उठाकर भी अपनी बात कहने से नहीं हिचकते हैं। बेलागपन के धनी परसाई अपनी बात रखने के क्रम में किसी भी सत्ता की परवाह नहीं करते हैं। सच को बयान करने के लिए सीमा तक जा सकते हैं। राजनीति का सबसे जीवंत उदाहरण गांधीवाद और समाजवाद के संदर्भ में देखने को मिला। गांधीवाद की खटिया खड़ी करने में तथाकथित गांधीवादियों ने जिस भूमिका का निर्वाह किया, वह विचार करने की बात है। 'राजनीति का बंटवारा' परसाई की एक महत्वपूर्ण कहानी है। जिसमें अपने स्वार्थों की पूर्ति के खातिर अपने पारिवारिक सदस्यों के बीच राजनीतिक दलों का बंदरबांट कर लिया जाता है। कहानी में एक वयोवृद्ध भैया जी है, जो देशभक्त है। स्वाधीनता संग्राम में पाँच साल जेल की सजा काट चुके हैं, और अब उसकी कीमत वसूलना चाहते हैं। इनके परिवार ने कई एजेंसियां ले रखी है। कई चीजों के स्टॉकिस्ट है। इस परिवार की सबसे बड़ी चिंता यह है कि नगर निगम में किस पार्टी की जीत होगी? चुंगी की चोरी कैसे की जाएगी? ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कैसे कमाया जाएगा? इन सारी चिंताओं को वयोवृद्ध भैया जी अपने अनुभव ज्ञान की चालाकी से हल कर लेते हैं। सत्ता सुख और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए तिजोरी भरने की ललक की वजह से भैया जी अपने परिवार के हर सदस्य के बीच विभिन्न राजनीतिक दलों का बंटवारा कर देते हैं।

'भैया जी ने कहा- मेरी पवित्र आत्मा से समस्या का समाधान निकल आया। तुममें से हर एक-एक पार्टी के सदस्य हो जाओं। मैं कांग्रेस में हूँ और संगठन कांग्रेस में भी, तुम छोटे जन संघ के सदस्य हो जाओ, फिर बड़े भतीजे से कहा, तुम समाजवादी पार्टी के सदस्य हो जाओ, फिर छोटे भतीजे से कहा, तुम कम्युनिस्ट हो जाओ। सबसे छोटे भाई से कहा, तुम मार्क्सवादी पार्टी में शामिल हो जाओ और वह बिगड़ा लौंडा जो है, वह नक्सलवादी ही हो गया है।

परिवार ने संतोष की सांस ली। भैया जी खुश थे। कहने लगे, देखा तुमने, राजनैतिक ज्ञान इसे कहते हैं। अब अपने घर में सब पार्टियाँ हो गई। किसी का भी नगर निगम हो, चुंगी चोरी पटकी। हमने सारी पार्टियों को तिजोरी में बंद कर लिया है।'[12]

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से लिखा हुआ परसाई की कहानी 'प्रजावादी-समाजवादी' महत्वपूर्ण कहानी है। जिसमें सिद्धांतों के आड़ में सत्ता सुख प्राप्त करने वाले नेता की पोल खुली हुई है। 'मैंने पूछा, आगाजी आपने कांग्रेस क्यों छोड़ी?

वे बोले सैद्धांतिक मतभेद के कारण मैं सिद्धांत का पक्का आदमी हूँ। सिद्धांत को त्याग कर मैं किसी दल में नहीं रह सकता।

मैंने कहा- सैद्धांतिक मतभेदों को जरा और स्पष्ट करके समझाइए।

उन्होंने कहा सन 1952 की बात है। पहला आम चुनाव होने वाला था। उस समय कांग्रेस का टिकट मुझे न देकर मेरे प्रतिस्पर्धी मोहनलाल को दे दिया गया। बस मेरा सिद्धांत एक मतभेद हो गया और मैंने कांग्रेस छोड़ दी। सिद्धांत का पक्का हूँ मैं, तभी समाजवाद के नेताओं ने कहा कि हम सन् 1952 में सरकार बनाएंगे, जिसे आना हो आ जाओ। मैं उनकी पार्टी में चला गया। भाई जो सरकार बनाने वाला हो उसके साथ रहना चाहिए।'[13] जहाँ ऐसे जनसेवक हो, वहाँ भारतीय जनतंत्र का भविष्य उज्जवल कैसे हो सकता है? ऐसे नेताओं की नजर में ना जनता की कोई कीमत है और न उन्हें लोकतंत्र की परवाह है। विश्व के महान लोकतंत्र में जनता का बस यही महत्व रह गया है कि उसके

वोटों से सरकार बनती है, पर वह सरकारें जनता की आवाज नहीं सुन पाती है, और जब जनता अपनी आवाज सुनाने के लिए सरकार के समक्ष प्रदर्शन करती है, तो बदले में उसे गोली व लाठीचार्ज का शिकार होना पड़ता है।

समकालीन समाज के धार्मिक यथार्थः –

राजनीति व प्रशासन के बाद हरिशंकर परसाई की कहानियों में व्यंग्यास्त्र का सबसे बड़ा लक्ष्य समकालीन समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबर रहे हैं। राजनीति की तरह धर्म का भी समाज पर सबसे गहरा असर पड़ा है। राजनीति व धर्म दोनों ही समाज को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धार्मिक आडंबर एवं विसंगतियाँ इस देश की सनातन समस्याओं में से एक हैं। साधु, महात्मा, प्रवचनकर्ता, स्वामीजी, महाराजों की फौज आजादी के बाद जितनी तेजी से बढ़ी है, वह अपने आप में चिंता पैदा करने वाली बात है। पर समाज चिंतित होने की वजह आँख–कान मूंदकर उन में डुबकी लगाने को आतुर है। 'आधुनिक संत' सिर्फ देश में ही नहीं बल्कि विविध सुविधाओं से सज्जित बड़े–बड़े जहाजों तथा क्रूज़ में सवार होकर बड़े–बड़े धत्ता सेठों को प्रवचन देते हैं। विदेशों की सैर करते हैं। शिष्य बनाते हैं। साथ ही पैसा भी बनाते हैं। बड़े–बड़े संत महात्मा अपने प्रचार के लिए एजेंट तक नियुक्त करते हुए, स्वयं राजनेताओं के दरबार में भी हाजिर लगाते हैं। जहाँ धर्म में अर्थ व सत्ता का समागम हो जाए तो वहाँ व्यभिचार विकार और अनाचार में आने से कोई नहीं रोक सकता। 'राग–विराग' एक उल्लेखनीय कहानी है। जिसमें मौकापरस्त साधु पर प्रहार किया गया है। इस कहानी में उस पाखंडी साधु की पोल खुल गई है, जो विराग के माध्यम से राग की साधना करता है। जो अपने आप को सन्यासी कहता है। गीता का पाठ करता है, तथा स्त्री के संग को वर्जित मानता है, पर जब उस सन्यासी के बगल में एक स्त्री आकर बैठ जाती है, तब उसका सारा पाखंड उतर जाता है। जोगी का भोगी रूप सामने आ जाता है। परसाई उन लोगों की भी खबर लेते हैं, जो धर्म की आड़ में अपना उल्लू सीधा करते हैं।

'वैष्णव की फिसलन' परसाई की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। जिसमें यह एसे पाखंडी धर्मात्मा का चित्रण है, जो धर्म व नीति का बार–बार जिक्र करता है पर जरूरत पड़ने पर धर्म को धंधे से जोड़कर अपने सभी गलत कामों को सही सिद्ध करने के प्रपंच में उलझा रहता है। भगवान के नाम पर वह मुनाफा भी ईश्वर के नाम पर कमाता है। वैष्णव दो घंटे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं। फिर गादी–तकिए वाली बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते हैं। धर्म धंधे से जुड़ जाएं इसी को योग कहते हैं। वैष्णव के नंबर दो का बहुत पैसा हो गया है। कई एजेंसियां ले रखी है। स्टॉकिस्ट है। जब चाहे माल दबाकर ब्लैक करने लगते हैं। मगर दो घंटे विष्णु पूजा में कभी नागा नहीं करते।'[14]

ऐसे पाखंडी धार्मिक व्यक्ति धर्म के नाम पर कलंक है। दूसरों का हक मारकर, दूसरों का शोषण कर ऐसे धर्मभीरु व्यक्ति किसी भी सभ्य समाज के लिए अभिशाप है। वह व्यक्ति आदमी को तो छोड़िए ईश्वर को भी अपने धंधे में फायदे के लिए इस्तेमाल करने लगता है। 'वैष्णवी एक दिन प्रभु की पूजा के बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, 'प्रभु आपके ही आशीर्वाद से मेरे पास इतना सारा दो नंबर का धन इकठ्ठा हो गया है। अब मैं इसका क्या करुं? आप ही रास्ता बताइए... तभी वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज उठी, आदम माया जोड़ी है तो माया का उपयोग भी सीख, तू एक बड़ा होटल खोल, आजकल होटल बहुत चल रहे हैं।'[15] अपनी आत्मा की चालाकियों को ईश्वर की आवाज बताकर वह अपना मतलब साधता है। यहाँ तक कि ईश्वर को साक्षी बनाकर होटल भी खोलता है और होटल में सुरासुंदरी, मांसाहार आदि की व्यवस्था करके भी पक्का वैष्णव बनने का ढोंग किए रहता है। यहाँ परसाई उस मानसिकता पर प्रहार करते हैं, जो ईश्वर को भी अपना मतलब निकालने का माध्यम मानते हैं। हिंदुस्तान की उत्सवप्रियता का भाण्डाफोड़ करती हुई परसाई की एक और लघु कथा 'देवभक्ति' बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उत्सवप्रियता तथा धार्मिक आयोजनों के पीछे किस प्रकार की मानसिकता काम करती है, परसाई उसका सुंदर वर्णन करते हैं। शहर में गणेशोत्सव बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता है। आखिरी दिन गणेश विसर्जन के लिए जो जुलूस निकलता है, उसमें

सबसे आगे ब्राम्हणों के गणेश होते हैं। इस साल ब्राह्मणों के गणेश का रथ उठने में जरा देर हो गई। इसलिए तेलियों के गणेश जी आगे हो गए। जब यह बात ब्राह्मणों को मालूम हुई तो वे बड़े क्रोधित हुए बोले- तेलियों के गणेश की ऐसी तैसी, हमारा गणेश आगे जाएगा।'[16] यहाँ पर भक्तों और भक्ति के अंतर्विरोध खुलकर सामने आ जाते हैं। भक्ति में भी जाति, अभिमान छूट नहीं पाता है, जो भक्ति कभी दिलों को जोड़ने वाली थी। वह आज प्रदर्शन व दिखावा की वजह से तोड़ने वाली अधिक हो गई है।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि कहानियाँ समकालीन समाज के हर पहलू को बड़ी गंभीरता से पेश करती है। समाज का जो भी हिस्सा अंतर्विरोध के व्यामोह से ग्रस्त हुआ, परसाई की नजर से बच नहीं पाया है। हर प्रकार की विसंगतियों का अनावरण करती हुई उनकी कहानियाँ कहीं भी नकारात्मक नहीं हो पाती है, क्योंकि हरिशंकर परसाई सकारात्मक मूल्यों में विश्वास करने वाले रचनाकार है, और परसाई जी अपनी कहानियों के माध्यम समकालीन समाज के विभिन्न पहलुओं के यथार्थ का अद्भुत आख्यान किए गए हैं।

संदर्भ सूची :-

1. आंखों देखी, क्रांति कुमार जैन, पृष्ठ संख्या 115
2. वागर्थ अंक 7, सितंबर 1995, रविंद्रनाथ त्यागी पृष्ठ संख्या 21
3. ग्रांट अभी तक नहीं आई, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 106
4. रिसर्च का चक्कर, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 112 से 113
5. रिसर्च का चक्कर, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 106
6. इतिश्री रिसर्च, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 372
7. उपदेश, परसाई रचनावली-2, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 339
8. सामना, वीर भारत तलवार, पृष्ठ संख्या 187
9. तट की खोज, परसाई रचनावली-2, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 93
10. तट की खोज, परसाई रचनावली-2, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 125
11. सज्जन-दुर्जन और कांग्रेसजन, परसाई रचनावली-2, हरिशंकर परसाई
12. राजनीति का बंटवारा, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 159
13. प्रजाबादी-समाजवादी, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 182
14. वैष्णव की फिसलन, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 165
15. वैष्णव की फिसलन, परसाई रचनावली-1, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 165
16. देशभक्त, परसाई रचनावली-2, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ संख्या 332-333

9663908289

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 125-128
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Study of Sixty-Six in Kamala Das's Poem My Mother at Sixty-Six

-Rajesh Kumar Mishra
Former Honorary Director, Panjab University Rural Centre Kauni, Sri Muktsar Sahib, Punjab

Kamala Das (born in Malabar, Kerala) is recognized as one of the India's foremost poets and a tale weaver – weaving the rhythm of life into a tale of soul – a poet who loves to be loved in silence. She says, "I wanted to fill my life with as many experiences as I can manage to garner because I do not believe that one can born again". (Warrior Interview)

'My Mother at Sixty Six' is a moving poem written by Indian poet Kamla Das, who wrote under the pen name of 'Madhavikutty'. She portrays her sentiment of adore and affection towards her elderly mother and the theme of the poem is 'getting old' which is the law of the nature. Kamala Das also portrays the helplessness and aspirations and pain of the young generation. It portrays the different stages of life and how everybody grows old and faces various situations that life throws at them. Rajyalaxmi said;

Our models have been neither exclusively Indian nor British, but "cosmopolitan. Europe, Africa, America as well as Asia have all become a part of our cultural consciousness, offering impetus and stimulation. Our poets have been suddenly lifted from an exclusive to an extensive variety of imaginative understanding. They have been elevated from a conventional to a cosmopolitan culture, to deal with the new-fangled outline of things with attainment of a new-fangled analysis for human fortune. Time has distorted as well as requires a new-fangled representation. This has been mostly convened by the poet."(1)

The poet wanted to convey that every child has a fear of losing his or her mother since the very early days of life and no matter how old they grow, the fear always persists and it only grows when you see them growing old. She tells her mother positively "see you soon", because separation always precedes reconciliation. Bidding farewell means or designates the birth of new hopes and dreams. So, she accepts the intimidating milestones of life and all she did was "smile and smile and smile";

> I looked again at her wan
> Pale
> as a late winter's moon, and felt that
> old
> familiar ache, my childhood fear,
> but all I said was, see you soon,
> Amma (Text)

Kamala Das also uses the device of metaphor in line when she speaks 'Trees sprinting, the merry children spilling out of their homes' to show the contrary image of her mother's age and approaching end. K. N. Daruwalla

rightly said;

"At that time, why ought to I walk the Kafka strike or the wilderness At what time, mother you are close to give single huge, extensive overpower". (2)

No doubt, her appearance in most of her poems is of open-minded female as Ramesh K. Gupta rightly said; " of open-minded female who yearn for to smash envelop, put up approximately yearning as well as to break the entire obstructions as well as turns into complimentary from all sexual as well as collective bondages. A lot of her poems are occupied of narratives of sex along with sexual category."(3)

But in this poem, she realizes the law of nature that every creature on earth is at the mercy of some higher power. The speaker wonders that she too is like a fly and might be brushed away by some higher power. A sensory and deeply sensitive poem, My Mother at Sixty-Six is a first person confessional poem that captures the reader's attention and provides a glimpse of the subtle intricacies of a mother-daughter relationship.

The poet is deeply melancholic about her mother but she tried to divert her attention towards the beauty of the world but to no avail. The irony is that we come closer only to depart and we act like we do not know about it.

> ……………………………………..her face
> ashen like that
> of a corpse and realised with pain
> that she was as old as she
> looked, but soon
> put that thought away, and
> looked out at Young
> Trees sprinting, the merry children spilling
> out of their homes (Text)

She tried to push this painful thought to the back of her mind and looked out of the window. Outside the trees seemed to run backwards with great energy. She saw young children rushing out of their homes to play. A contrasting picture has been painted with the pale and weak dozing mother on one side and the young trees and energetic children on the other.

In this paper, I will try to find out, why Kamala Das has mentioned the age Sixty Six in this poem My Mother at Sixty Six.

Relationship is the focus of the poem and Mother stands in her life like a tree. The poet is carried away by her childhood premonition of losing her mother and a deep sense of never-happened-before isolation creeps into the heart of the poet i.e. a daughter's pain of losing her mother, and as she knows that death of her mother is inevitable.

The title, "My Mother at Sixty-Six" is an excellent example of showing an ever - unfailing relationship between a daughter and her mother. The number 66 seems Kamala Das indicates the estrangement has just begun, and it's absolutely way afar to meet the end.

In some Hermetic systems, 6 means "beauty" so mother is always very beautiful for daughters and Kamala Das looks her mother with the same zeal. Secondly, 6 is considered a "perfect number", since it is equal to the sum of its divisors i.e. 6 is divisible by 1, 2, 3 and 1+2+3 = 6.

6+6 = 12, the number of signs in Zodiac, and so may represent the totality of creation i.e. Sixty-Six

signifies a mother is the symbol of totality of Creation as well as she is like "Anahata (the Heart Chakra) in the family. Anahata (also known as Padma-sundara) is symbolized by a lotus flower with twelve petals. Like Anahata, the word Mother involves;

"complex emotions, compassion, tenderness, unconditional love, equilibrium, rejection and well-being. Physically Anahata governs circulation, emotionally it governs unconditional love for the self and others, mentally it governs passion, and spiritually it governs devotion."[4]

The Six points of the star symbolize that God's rule over the Universe is same in all six directions i.e. North, South, East, West, Up and Down and likewise Mother is the central figure and holds control over the entire family not by force but by love and affection.

The 'hexagon', or the Star of David, has six points, consisting of two interlocking, relatively inverted equilateral triangles, perhaps representing a correspondence between Heaven and Earth and is an important symbol in Jewish Religion.

The hexagram, a mandala symbol called satkona yantra or sadkona yantra found on ancient South Indian Hindu temples, symbolizes the nara-narayan or a perfect meditative state of balance achieved between Man and God, if maintained results in Moksha or Nirvana i.e. release from the bounds of the Earthly world and its material trappings.

Hexagram can be seen as the combination of the four elements i.e. triangle pointing upwards symbolizes 'Air', and with a horizontal line across it's centre symbolizes 'Fire', likewise triangle pointing downward symbolizes 'Earth', and with a horizontal line across it's centre symbolizes 'Water'.

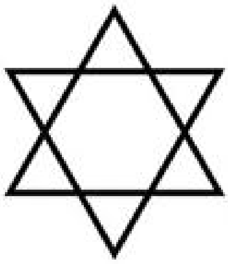

The two triangles, one pointed up and the other down, locked in harmonious embrace i.e. two compounds are called Om (It is the essence of the entire universe. It can also be identified as a deeply religious symbol in Indian philosophy, where it is believed that God first created sound and everything then arose from it. The Upanishads claim that Om is indeed God in the form of sound) and Hrim (In sanskrit, the name Hrim is most often used as the name of a Boy/Male. And in Indian, Sanskrit, the Boy/Male name Hrim means One who Takes Away) and symbolizes man's position between Earth and Sky. The down ward triangle symbolizes "Shakti", the secret embodiment of femininity and the upward triangle symbolizes "Shiva or Agni Tattva", representing the focused aspects of masculinity.Mystical Union of two triangles represent Creation, occurring through the divine union of male and female. The two locked triangles are also known as "Shanmukha"- the six – faced, representing the six faces of Shiva and Shakti's progeny "Kartikeya".

The two triangle represents dichotomies inherent in man i.e. good or evil or spiritual verses physical and triangle pointing up symbolizes our good deeds, which goes up to the heaven and then activate a flow of goodness back down to the world, symbolized by the triangle pointing down. The two triangles represent the reciprocal responsibilities of mother and the children.

Nations rise and fall, empires prosper or crumble and men are stirred to great accomplishments or driven

to shameful failure often because of the influence of a wife or mother. The wise poet has properly said, "The hand that rocks the cradle, is the hand that rules the world."

Motherhood, while being a great privilege, also involves obligation. No task on earth requires more dedication, greater skill or fuller commitment. Her responsibilities demand devotion to the highest ideals and patient perseverance over long years of time. Her task is formidable because there is no human obligation that is less adaptable to substitution than motherhood. You can substitute for the teacher, policeman, governor and almost anyone else but no one has found an adequate substitute for a mother's love.

Hexagram is made up of two equilateral triangles, so it is very pertinent here to see the properties of an equilateral triangle i.e. all sides are equal, all angles are equal and when a perpendicular is drawn on base from an opposite vertex, it bisects the base.

Though, Kamala Das clearly finds a series of situations where she became merely a puppet in the hands of male domination. But, as a poet she thinks, it is her duty to report every detail in real life faithfully. Dr. Konnur rightly points out when he says;

“Kamala Das' autobiography clearly shows how her urge for identity and liberation finds its fulfillment in the superimposition of her poetic self over the domestic self which compelled her to play the monotonous and enslaved role of a wife".[5]

At the same time she knows, that Mother’s position in the family is pivotal, like hexagon in hexagram, so her love and affection for each member of the family is equal and in worse case, if she needs to divide love then she blesses all the children equally, like perpendicular of an equilateral triangle. Since her position is central in the family, so she has full control over the family and the mother and tries to bring out the eternal bond between mother and the child.

References :-

1. Interview with Rajyalaxmi
2. Singh, R.K. “The Poetry of Keki N. Daruwalla”, Jaipur, 2002 Book Enclave, p.13.
3. Gupta, Ramesh K. “A Feminist Voice- A Study of Kamala Das Poems, in Indian English Literature”, New Delhi 2002, p.45.
4. The Chakra Bible, Patricia Mercier, Octopus Publishing Group Ltd. 2007, p. 199
5. Konnur, D.R. “Post-Independence Literary Autobiography in Indian Writing in English with special Reference to Kamala Das, Dom Moraes, Nayantara Sahgal and Sasthi Brata” 1986, Ph.D. Thesis.

e-mail – drkm50@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 129-131
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

INDIAN FOREIGN POLICY AND NEHRU

-Kumari Neha
Department of Political Science, St. Bede's College Navbahar Shimla Himachal Pradesh 171002.

ABSTRACT :-

J.L Nehru was an Indian Nationalist leader and statesman who became the First Prime Minister of Independent India in 1947. Nehru was the architect of Indian Foreign Policy. He laid the foundation of India's Foreign Policy after independence. Nehru's contribution to Indian Foreign Poy is undisputed and unmatchable. This paper seeks to analyse the Foreign Policy with special impact of Nehru on Indian Foreign Policy.

Key words : J.L Nehru Nationalist, Statesman, Architect, Foreign Policy.

INTRODUCTION :-

Study of Foreign Policy is one of the important parts of International Relations. It is generally accepted as one of the means of state to achieve its National Interest. It serves a country's interests by contributing to its economics and social progress. "Foreign Policy and Diplomacy have been described as wheels with which the process of International Relation operates". (1) Foreign Policy plays very important in any country. In this era of Globalization states are interdependent and no state can remain in isolation therefor it is very important for every country to interact with each other for many reasons. Every nation interacts with others on the basis of some principles .in general these principles are known as foreign policy.

"The formulation of Foreign Policy is inconceivable without giving a predominant role to the interplay of national interests". (2) An important aim of the foreign Policy of any country is to achieve and secure its National Interests. Like other countries the aim and purpose of Indian Foreign policy is to promote its National Interest.

NEHRUS'S INFLUENCE ON INDIAN FOREIGN POLICY :-

Foreign Policy of any country is determined by various Internal and external Factors like Geography, size, Historical background, Economic development, Culture, Government setup and values philosophy and Personalities of Leaders. "Indian foreign Policy was inspired by ideals and vision of leaders of its independent movements and reflected the finest elements of its culture and philosophical heritage. It started taking shape during the independent movements itself. Leaders like Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru, Subash Chandra Bose and Ram Manohar Lohia were principally responsible for providing its philosophical and intellectual content" (3). Some of its major foundations were laid by J.L Nehru at Asian Relation Conference held in Delhi in March 1947.

NON -ALIGNMENT AND NEHRU :-

Nehru's policy of neutrality paved the way for the establishment of Non-Alignment Movement (NAM). He wanted India to have an identity that would be independent from any group or commitment. The first Afro-Asian Conference which is famously known as Bandung Conference of 1955 held in Indonesia was considered as an Important first step towards formation of Non-Alignment Movement. After India many other countries like Burma, China, Laos, Yugoslavia and Cambodia adopted this policy of non-Alignment. J L Nehru defended and promoted NAM due to three main reasons. Firstly, he wanted that every country should be independent or free from external interference in operation of its Foreign Policy.

Secondly, Nehru had full confidence that NAM would establish world peace and for India maintenance of peace was not only a moral but a prerequisite for perusing development. And lastly, he adopted this policy of NAM due to Economic Backwardness of India. After independence foreign aid was an important component of developing our economy and India needed economic aids from both Eastern and Western block for its development. The pursuit of the development goal through NAM was necessary for giving substance to India's hard-won freedom

NEHRU AND PANCHSHEEL :-

Along with Non-Alignment Movements Panchsheel is the second important principle of Indian Foreign Policy. Nehru was a democrat and had full faith in Democracy and Peace which lead to the formation of five principles of peaceful coexistence commonly known as Panchsheel. Nehru said; "I imagined that if these principles were adopted in relations of various countries with each other, a great deal of the trouble of the present day would probably disappear." Though these principles were signed between India and China but these also influence or determine India's relation or conduct with other countries as well. The policy od NAM was also based on these five principles of Panchsheel. The Panchsheel agreement was signed on 24th April 1955.These five principles of Panchsheel are:

1. Mutual respect for each other's territorial integrity and Sovereignty;
2. Mutual non-aggression;
3. Mutual non-interference in each other's internal affairs;
4. Equal and mutual benefit;
5. Peaceful co-existence.

Nehru maintained good relation with both USA and USSR and also criticize their policies at different times. Under J.L Nehru's leadership India also played important role in Korean war crisis and maintained a neutral position because Nehru was of the opinion that Korean crisis could lead to World War 3. In United Nations India voted against the North Korean invasion of South Korea. India was appointed as Chairman of the Neutral Nations Repatriation Commission for recognizing India's efforts to resolve Korean crisis.

Since independence India was in full favour to maintain good relations with its neighbours. Nehru tried to build bridges of cooperation to maintain good relation with all neighbouring countries of India. In this regard The Liaquat-Nehru Pact was signed in 1950 between India and Pakistan to protect the interests of minorities in the two countries. The main reason to sign this was to prevent communal riots in both countries in 1960 another treaty Indus Water treaty was signed by Nehru and Mohammad Ayub khan. Panchsheel agreement was signed between India and China on Tibet issue in 1955. This was signed between Nehru the then Prime Minister and 1st Chinese Prime minister Chou En-Lai.

The struggle against Colonialism Imperialism and Apartheid has been the main part of the Ideology of Indian Foreign Policy. Nehru always raised his voice against imperialism, colonialism. racism and Apartheid from time to time. The stance of Indian policy against imperialism and apartheid derived from Gandhain thought. Indian Foreign policy was formulated in keeping India's National experience of colonialism. As a former colonized state, India was loath to limit its foreign policy options through an alignment with either super power. Along with this UN has always been at the centre of Indian Global vision and a preferred instrumentality for serving its Foreign Policy ends. There-fore India actively supported the UN and took initiative from time to time strengthen the multilateral system underpinned bi it.

"Indian foreign policy can be divided into three main parts. The first or initial phase began under Nehru's leadership after independence and lasted until 1961. The second phase extended from 1962 to 1991the third and current phase began in 1991 and continues to the present day". (4) This first phase was dominated policy of Non-

Alignment Movement (NAM) and Panchsheel. The second phase India adopted Look East Policy under the leadership of Narsimha Rao the then Prime minister of India. This policy was formed by government to cultivate and strengthen economic and strategic relations with the nations of Southeast Asia. This aspect of India's foreign Policy also serves to position India as a counterweight to strategic influence of the People 's Republic of China in the region.

In 1996 Gujral Doctrine was formulated by IK Gujral the then Minister of external affairs. Gujral doctrine is a set of principles to guide and help the conduct of Indian Foreign Policy with its immediate neighbours. This doctrine says as a big brother India should give concession to its small neighbours without any reciprocity.

Recently India has adopted more dynamic and flexible approach like neighbourhood policy first for good social cultural and economic relations with its neighbours. Presently India is giving very much importance to economic aspect in its foreign policy. "A new 'Modi Doctrine' has emerged in Indian Foreign Policy after 2014". (5) The slogan given by Modi is "Come make in India" and he wants to project India as 'Vishwa Guru'.

It spites of so many changes we cannot say that foreign policy of India has totally changed because Foreign Policy changes under the new government cannot be regarded as a major change because the goals and strategies of Indian Foreign are still same. Basic principles of Indian Foreign Policy like Non alignment, Panchsheel, opposition to colonialism and apartheid, supporter of world peace and faith in United Nation which were formulated by the architect of Indian Foreign policy Jawaharlal Nehru. The goal enshrined by first Prime Minister Jawaharlal Nehru in Foreign Policy of the country remain relevant even today and have assumed greater salience in the era of economic liberalisation. These all principles are still there in Indian Foreign Policy and guiding India relations with other countries.

References :-

1. Khanna V N (2007). Foreign Policy of India. Vikas Publication House, Noida.pp.1.
2. Khilnani Niranjan M (1984). Realities of Indian Foreign Policy. ABC Publishing House. New Delhi.pp.3.
3. Dubey Muchkund (2016). India's Foreign Policy. Orient BlackSwan.Heydrabad.pp.3.
4. Ganguly Sumit (2012). India's Foreign Policy: Retrospect and Prospect. Oxford University Press, pp.1.
5. Ian Hall (2015). Is a 'Modi doctrine' emerging in Indian Foreign Policy? Research Gate. https://www.researchgate.net/publication/272425955.

Mobile – 8988105225 (WhatsApp), 7018175486.
Email -nehajhoitahpu@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 132-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Farmers Movements in India

-Dr. Shaji John

Assistant Professor, Department of Politics, Alphonsa College Pala, Kottayam Dist. Kerala

ABSTRACT :-

The farmer holds a very important position in the traditional Indian society and farmers conglomerates have often been helpful in solving their personal and familial problems. But the farmers, especially the small farmers have been an exploited lot, both economically and socially. It is such inhuman treatment which compelled them to come together and bargain to secure their needs. Moreover, when the state fails to protect them they need an agency like the farmers association to protect them and their interests. Today they oppose unnecessary taxations and demand more public investment in agriculture. The Indian farmers have shrewdly calculated that their effectiveness is greatest when they work as a pressure group by remaining outside the framework of established political parties.

Key words :- New Social Movements (NSM), political parties. farmers association.

INTRODUCTION :-

India being primarily an agricultural country the agrarian question still remains central to its developmental discourse. All these discourses point towards the fact that the structure and process of agrarian economy posed serious problems in the effort to bring about a sense of egalitarianism in the socio, economic and political realms. The earlier structure was fostered by the ruling class for extracting exorbitant rent or revenue from the tillers of the land through various anti-farmer measures. These measures subsequently led to protest movements by the peasantry in various parts of the country. With the emergence of the merchant class, the role of peasants as a source of capital declined. But their primary task of producing food and fiber remained as such. Peasants always absorbed the dislocations caused by strife and wars which were so common all over India. It was only in the face of unbearable onslaughts that the farmers rose up in revolt in several places.

Civil society organizations and social movements have a critical role to play in making the state more democratic. First, the associational networks of civic organizations and movements can provide vital information about social needs as well as the mobilizational infrastructure that makes continuous and meaningful participation possible. Second, civil society organizations, by the rotating credit schemes or contentious social movements help, develop and nurture the democratic and technical capacities of individuals. They often promote forms of demand-making that are far more deliberative than those of more hierarchical organizations.

Movements can play a critical role in occasioning such a shift not only by mobilizing public support for reforms but also by popularizing more participatory institutions and processes through prefigurative actions. Moreover, because democratic decentralization goes beyond legislative acts and resource reallocations, its effectiveness and most importantly its sustainability require far more than the capacities of the state.

The distinction between an agitation and a Movement is the same as between a battle and a war. Agitation forms the operational parts of a movement but a movement is more than the sum of its agitations. A movement can

also originate from sporadic agitation with no larger perspectives and goals initially. A movement has a class base and intends to alter the existing social order or the power structure at least at the regional level where it takes places. It has also an ideology to justify it.

Social Movements :-

It was the German Sociologist Loreng Union Stein who introduced the term Social Movement, in a book titled 'History of the French Social Movements from 1789 to the Present'. At first it conveyed the idea of a continuous, unitary process by which the whole working class gained self-consciousness and power. According to Die Gegennart "Social Movements are in general nothing other than a first search for a valid historical outcome."[3] Social movements are the most widely accepted form of a series of agitations. They are conscious, concentrated and sustained efforts by ordinary people to change some aspects of their society by using extra constitutional means. They are more conscious and organized than fads and fashions. They are composed mainly of ordinary people as opposed to army officers, politicians or economic elites. They need not be explicitly political, but many are. Social movement is a collective, organized, sustained and non institutional challenge to authorities, power holders or cultural beliefs and practices. Political action is a paradigm of social action that sheds light on actions in all spheres of life.

Social movements have a political dimension too. Majority of social movements are making demands directly. Thus the state is involved as not only the target, but also the adjudicator of grievances. In this view, which has come to be known as political process theory, social movements are also seen as eminently rational. Indeed, they were little more than part of normal politics that used extra constitutional means. By highlighting social movements interaction with the state these process theories have focused on conflict and the external environment of social movements to the extent that they even explain the emergence of Social Movement as resulting from opportunities provided by the state. The most important aim of a social movement is the actualization of a particular political interest.

The paradigm that has concentrated most on social movements emerged in the political process approach. In this view economic and political shifts occur, usually independently of protestor's own efforts that open up a space for the movement. They perceive movements as primarily political making demands on the state and asking for changes in laws and policies. They see changes in the state attitude, an important opportunity which a movement needs. Movements are not made, they are launched or led by leaders.

According to Charles Tilly, social movements emerged from an innovative, consequential synthesis of three elements.[4]

(a) Sustained, organized public effort making collective claims on target authorities (campaign).

(b) Employment of combinations from among the following forms of political action - creation of special purpose associations and coalitions, public meeting, solemn procession, rallies, demonstration, petition, drives statement to and in public media.

(c) Participants' concerted representation of WUNC (W – Worthiness – Unity - Number and Commitment on the part of themselves).

Political scientists had more or less ignored the field of social movements. The term 'Social Movement' gained currency in European language in the early nineteenth century. This was a period of social upheaval. The political leaders and authors who used the term were concerned with the emancipation of exploited classes and the creation of a new society by changing the value systems as well as institutions and property relationships. Since the

early 1950's - various scholars have attempted to provide a throughgoing definition of the concept of social movement. Paul Wilkinson gives the following definition about social movements. "A social movement is a deliberate collective endeavour to promote change in any direction and by any means, not excluding violence, illegality, revolution or withdrawals into utopian community."[5] So social movements are clearly different from historical movements, tendencies and trends . It is important to note that such tendencies and trends, and the influence of the unconscious or irrational factors in human behaviour, may be of crucial importance in illuminating the problem of interpreting and explaining social movements.[6]

Sometimes, resistance of the people against dominance, direction and commands of dominant groups in society and the state is treated as a social movement. It is certainly an expression of protest. But so long as it remains at an individual level and desists from confrontation involving collective action, it is not a movement.

Another thing which is connected with social movement is that political scientists and sociologists do not make a distinction between social and political movements. Sociologists assume that social movements also include those movements which have a clear objective of bringing about political change. Rudolf Heberle (1951) argues that all movements have a political implication even if their members do not strive for political power. Political scientists therefore freely use the term social movement.[7]

The New Social Movements (NSM) :-

The central message of the new social movement is 'civil society against state'. The phrase New Social Movements is in vogue in the contemporary discourse among social scientists and activists. It is argued that New Social Movements have occured in post industrial societies. The doyen of the NSM theorists is considered to be Alain Touraine who has differentiated the old social movements from the New Social Movements based on the discursive character of NSM. Unlike the old Social Movements which opposed domination through meta-social principles, NSMs are proposed to challenge domination by a direct call to personal and collective action based on solidarity. According to him New Social Movements are the works that society performs on itself, and conflict is ultimately about the control of historicity, the cultural model that governs social practices and a struggle over normative models of society. Habermas (1981).

A Melucci (1984) and Laclau and Mouff are the other exponents of NSM theories.8 According to them NSM refers to fundamental shifts in the social structure and the emergence in post industrial societies of different actors, different issues and loci of action that are different from the old working class movements. They are social in nature (not class oriented) and located in the civil society. Based on this analysis of the various NSM theorist, Scott (1990) delineates the following characteristics of NSM.[9]

(a) They are pre-eminently social and cultural in character and then only political. They transcend class boundaries.

(b) They are located within the civil society. NSMs bypass the state. The aim is to defend civil society against the encroachment from inner colonization by the society's technocratic substructure.

(c) NSMS are concerned with cultural innovation, the creation of new life styles and a challenge to entrenched values. These NSMS are characterized by a common societal critique that aims at social change through the transformation of values, personal identities and symbols. They do so by the creation of alternative life styles.

Fuentes and Frank (1989), Escobar and Alvarez (1992), Guha (1989), Omvedt (1993), Wingnaraja (1983), Calman (1992) are some of the theorists who have discussed the relevance of NSM from a developing

country's perspective.[10]

According to Fuents and Frank (1989) these NSMS are popular social movements and expressions of people's struggle against exploitation and oppression and strive for survival and identity in a complex dependent society.[11] In such societies these movements are attempts at and instruments of democratic self-empowerment of people, and are organized independently from the state; it's institution and politics and are a reflection of people's search for alternatives. According to Guha the NSMS work at two levels simultaneously.[12] At one they are defensive, seeking to protect civil society from the tentacles of the centralizing state; at the other, they are assertive, seeking to change civil society from within and in the process putting forward a conception of the 'good life' somewhat different from that articulated by any of the established parties.

According to Gail Omvedt NSMS are revolutionary in aspiration and anti-systematic in their impact.[13] They are oriented as single-issue efforts to bring about change. These are social movements in the sense of having a broad overall organization, structure and ideology aiming at social change. They have a new ideology which is characterised by the use of non-Marxist concept of exploitation and oppression (appropriation by the state from peasants through the market) and a corresponding rejection of class, class politics and ideology together with the vanguard role of the working class and political parties. These are movements of socio-economic categories such as women, dalits and peasants that have been ignored as exploited by traditional Marxism or who are exploited in ways related to the new processes of contemporary capitalism but left unconceptualised by a preoccupation with private property and wage labour. They have grown in a period in which the solution of traditional socialism are so overwhelmingly discredited and they are concerned with the task of reinventing revolution, in spite of this single issue – orientation, with the task of reinventing revolution.[14]

A close look at Indian politics and society from the perspective of organized social actors - its political parties, mass organizations, labour unions and non- governmental groups - as well as the social movements that make up an unusually thriving sector of Indian political and social life would be quite meaningful here. Without a consideration of their role in the making of the nation's success and failures, the picture is incomplete and distorted. Almost every major Indian policy has been debated challenged or supported by a show of organized groups of constituents. While political parties are often assigned their role in India precisely the role of mobilizing and organizing constituents has been effectively and systematically undertaken by mass based organizations affiliated with political parties, as well as by smaller non-profit organizations and collectivities. These organizations range from Maoist groups operating in the countryside to established service providers such as the All India Womens Conference (AIWC) and from the large and messy coalitions around the Narmada Dam issue to the highly organized labour unions. Social movements, by and large do not embrace the master frame cynically neither does this frame determine their agendas in any direct or simple causal form. Movements are not blank slates on which masterframe is imprinted; rather function as a template of accountability to which movements bring their own histories, distinctive constituencies and ideologies.

Social movements in India have been themselves defined by a commitment to ending inequality and economic injustice, whatever the range of issues they take up. There had been three phrases of social movements in India. The first phase was characterised by the influence of Nehruvian social democracy-dilution, commitment (1947-1964). During this phase, social movement leaders for the most part seemed to have understood the political choices they faced in largely binary terms – either falling in with or standing outside the class and poverty agenda of the Nehruvian state. The discursive repertoire available to social movements were frame commitment – a

determination to sustain a movement's redistributive goals; frame dilution – a dilution of a movement's redistributive goals; and frame repudiation – a rejection of redistributive goals.

The second was a transitional phase, one in which the ideological underpinnings of poverty alleviation programme reigned supreme. Here emerged a new frame and a number of a new movements such as Dalit Movement, Environmental Movement and Naxalite Movement (1964-84).

The third phase was influenced by Mandal-Masjid sequence of events. At the economic level the global-neoliberal agenda influenced this phase. This phase witnessed the emergence of Farmers Movement and Biotechnology movement. Farmers became concerned with their material improvement (1984).

Studies on Social Movements broadly follow either a Marxist or non-Marxist framework of analysis.

Scholars following the Marxist approach are primarily interested in brining about revolutionary changes in society moving towards a socialist system. According to them the causes of social movements are to be found in the economic structure of the society. Antagonistic interests between the propertied and labour class are inherent in a class based society which generate contradictions. The former monopolises the coercive power of the state to maintain their hegemony over the exploited classes. The latter would resist, protest and occasionally revolt or launch organized and collective action against the dominance of the propertied class. It is their attempt to bring about revolutionary political change by over-throwing the dominant class in power. Even though to the Marxists, structural cause of conflicting economic interests are central to their studies, a number of Marxists scholars have begun to pay attention to ethnic, religious and other cultural functions too. According to many orthodox Marxist scholars, members of the same class not only have common interests vis-a-vis other classes, but also share a common consciousness regarding their position in society. This facilitates their collective action against the ruling class and state.

There is a great deal of variation among the non-Marxist scholars in their approach to the analysis of social movements. They differ with regard to the ideological position, the need for social and political change and the role of movements. William Kornhauser, Robert Nisbet EdwardShils are the chief exponents of Non-Marxist approach to the study of Social Movements. They are in favour of excluding the masses from day to day participation in politics which hampers the efficient functioning of the government. For example, the Indian scholars who approved of agitation for independence from foreign rule, do not approve of agitations in the post independence period. They condemned them outright as dangerous and dysfunctional for a civilized society. Such scholars advocate political change which would be confined to change in government and political institutions. A few also call for revolutionary changes but they differ from Marxist scholars in class analysis. They lay emphasis on value system, political institution and culture.

A number of reasons can be cited for the origin of Social Movements in India. The parliamentary form of government as a political institutional device, has proved to be inadequate to continue or expand the concrete democratic rights of the people. It either operates as a shell within which the authority of capital perpetuates itself, obstructing or reducing the opportunities for people to consciously participate in the process of society or is increasingly transforming itself in to a dictatorship, where capital sheds some of its democratic pretentions and rules by open, ruthless dictatorial means. The movements and protests of people will continue till adequate political institutional form for the realization and exercise of concrete democratic rights are found.

As A.R. Desai says, 'the civil and democratic' rights of the people are not protected by Constitution.'[15] As a result the movements for their protection have increased. Democracy in India has become a playground for

growing corruption, criminalization, repression and intimidation of large masses of the people. The role of the state in social transformation has been undermined. As a result, people have started asserting their rights through various struggles. He continues: "There is discontent and despair in the air still highly diffuse, fragmented and unorganized. But there is a growing awareness of rights felt politically and expressed politically and by and large still aimed at the state".[16] Kothari feels that mass mobilization at the grassroots level is both necessary and desirable.[17] Of late the civil society led by Anna Hazare a Gandhian has been leading a mass protest called 'India Against Corruption' which has attracted the attention of people all over the world.

According to Partha Chatterjee, social movements are accumulative alternative and transformatory.[18] Any social movement will naturally be subjected to the dynamic processes going on in the society and such dynamism will transform the movement itself. In the words of T.K. Oommen the movements will neither have the potentialities to root out the Ganashyam existing system completely nor will they succumb to the traditional structure entirely. He provides another typology i.e., movements as charismatic, ideological and organizational.[19]

But these typologies do not explain the dynamics of the movements which undergo changes in course of time. They do not take into consideration those movements whose objectives change during the development of the movement. Some movements do not have clear objectives in terms of the maintenance or the transformation of the system. Besides, the overt objectives and theorization of the leaders of the movement and the perception of the participants at various levels about the struggle and their own purpose for involvement may not be always the same.

Social Movements may be classified on the basis of their objectives or the quality of change they try to attain. Ghanshyam Shah classifies movements as revolt, rebellion, reforms, and revolution to bring about change in the political system.

The most reasonable classification of movements may be on the basis of participants; because in many cases the participants and issues go together. So according to Ghanshyam Shah social movements maybe classified in to the following nine types on the basis of the Socio-economic characteristics of the participants and the issue involved. (1) Peasant Movement, (2) Tribal Movement, (3) Dalit Movement, (4) Backward Caste Movements, (5) Women's Movements, (6) Industrial Working Class Movements, (7) Student Movements, (8) Middle Class Movements, (9) Human Right and Environmental Movements.[20]

Farmer Movement as a New Social Movement :-

According to Omvedt and Lindberg farmers movement is a new social movement. These claims for newness derive largely from what are perceived to be a combination of novel actions, objectives, organizational forms and ideology. There are five reasons for this argument.[21]

(a) The farmers movement has passed from the subsistence - oriented peasantry to the commodity producing farmers. While the earlier agrarian movements fought for land and better leasing arrangements against the land lords and the colonial state, the new movements see the state as the enemy and focus on agricultural prices which are largely determined by the state.

(b) They profess that they have invented new methods of agitation.

(c) They are characterized by their independence and new ideology which is anti-state, anti-urban and anti-capitalist.

(d) Several of the earlier agrarian movements were organized by political parties, mostly by the left. Unlike these, the agitational form and organizational style of the farmer's movements is non-partisan now. According to Omvedt the farmer's movements have an anti-party thrust, and these are free from all political parties

and their control.

(e) In a limited sense, by incorporating and associating with the environmentalists (greens) women, and the tribals, the farmers movements are part of the new democratic vision embracing a new set of post-material values.

The following criticisms are levelled against the claims of new farmers movement :-

a. Land continues to be on its agenda, albeit in a different form. The farmers have demanded the abolition of ceilings on land ownership. Opposition to the state is not new in India. There are historical continuation between the Gandhian led agrarian movements and the contemporary farmers movement.

b. The claims of employing novel and distinctive agitational methods are questionable. They were actually old tactics employed by farmers in Maharashtra and women in the anti-famine agitations.

c. The ideological discourse also is not new. Infact, important components of the discourse and the structuring principle of an urban-rural divide have prefigured and is symptomatic of the politics and ideology of populism. Agrarian populism has a historical lineage that can be traced back to the moral economy arrangement, the middle peasant thesis. In India-neo-populism can be traced back to Gandhi before independence and in the post independence period to the mobilization of Charan Singh.

d. The claim of being apolitical, non-party and non-electoral is not verifiable. Until 1989 the farmers movement had no interest in capturing political power. However, as a part of electoral strategy, they have at different times extended support to different political parties regardless of the political ideology of political parties. For example, Shetkari Sangathan aligned with the Congress in 1984 and 1985 during the parliamentary and Assembly election and then in 1987, it supported both the B.J.P and the Republican party.22 At the national level, the S.S has attempted to counter the ruling party by aligning itself with V.P.Singh (The Janatha Dal) during the parliamentary elections in 1989. On the other hand the farmers movement have claimed to be concerned only with grassroots democratization and not state power; on the other the farmers movement in Karnataka, Maharashtra have contested elections and organized themselves as political parties. It is also a fact that in 1994, Sharad Joshi launched the Swantantrya Bharat Party.

Farmers movements are not anti-state in their orientation. The antagonism towards the state is only partial and class specific farmers movements definitely do not want to do away with the state but only want to change the relation between the rural economy and the state. With the commoditization of agriculture they have actively collaborated with the state on many occasions. In 1991 Joshi became the Chairman of the standing Advisory Committee on Agriculture with the status of a Cabinet Minister.

e. The support for women's issues, Dalits and environmental issues, which used to corroborate their claim of being new and progressive are not valid. Some of the earlier agrarian movements had also incorporated these kind of issues, like gender by Tebbage of Telengana movement and ecological issues by Chipko movement.

CONCLUSION :-

Since 1970s the new farmers movement have become one of the most important non-parliamentary political forces in India. The main target has been the state which intervenes in the agrarian economy by supplying agricultural inputs and regulating the markets. The farmers demands include lower tax, debt relief, higher procurement prices by the government, greater subsides on inputs like fertilizers, seeds, electricity, water and pesticides. They argue that the governmental policies are increasingly favouring industry as against agriculture. Their central message is

symbolized in a simple but a powerful slogan - 'Bharat against India'. The former corresponds to rural society, economy and culture and latter to urban industrial society. As per Joshi the real contradiction is not in the village, town difference not between big and small farmers and the landless but between the agrarian society and rest of the society. The rural people argue that conditions of farmers is deteriorating in the face of growing prosperity of the urban world. They feel that there is a need to invest more in agriculture which receives much less attention.

REFERENCES :-

1. K. Raman Pillai, Kerala Rashtriyathile Anthardharakal, Kerala Bhasha Institute, Thiruvananthapuram, P. 69.
2. R. Ramakrishnan Nair, Social Structure and Political Development in Kerala, Kerala Academy of Political Science, Thiruvananthapuram, 1976, P. 18.
3. P.K.K. Menon (Ed), The History of Freedom Movement in Kerala, Government Press, Trivandrum, 1970, P. 41.
4. A.K. Gopalan, The History of Peasant Movements in India, Trivandrum, 1980, P. 32.
5. F. Bachasan, A Journey from Madras through the Countries of Mysore, Madras, 1940, P. 91.
6. Ramachandran Nair K., "The Impact of WTO on Kerala's Economy" in Prakash B.A. (ed), Kerala's Economic Development: Issues and Problems, P. 41.
7. Jose Thomas, Achievements of Karshakavedi, Karshaka Bhoomi, Pala, Vol. VIII, June 2010, P. 12.
8. R.K. Suresh Kumar, Political Evolution in Kerala, Travancore, Delhi, 1993, P. 64.
9. A.K. Poduval, Keralathile Karhsaka Prasthanam, Thiruvananthapuram, 1976,
10. Thomas P.M., "Agricultural Performance in Kerala, Kerala's Economic Development, Issues and Problems, Sage Publications, New London, Delhi, 2002, P. 181.
11. George P.S., "Dilemma of Cost of Cultivation in Kerala, Economic and Political Weekly, Vol. 23, n. 39, 24, September 1988, pp. 129-132.
12. Oommen M.A., "Land Reform and Economic Economy, Performance, Problems and Prospects, Sage Publications, New Delhi, 1994, P. 124.

E.mail: shajipunnan@gmail.com
Mob: 9496115787

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 140-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में संस्कृति : निबंध विधा के संदर्भ में

–अशोक बाळू पाटील
शोधछात्र, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध आदि साहित्य से पाठकों को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश के साथ सांस्कृतिक परिवेश का भी ज्ञान मिलता है। हिंदी के गद्य साहित्य में निबंध आधुनिक विधा है। जिसमें मानव जीवन के सभी समस्याओं का चित्रण निबंधकार संवेदनशीलता से करता है। किसी समाज, राष्ट्र, जाति की एक विशेष संस्कृति होती है। इस संस्कृति से मनुष्य के समस्त व्यद्रित्व रहन–सहन, संस्कारों का पता चलता है निबंध और निबंधकार को तब सफल माना जाता है जब उसका लेखन समाज की दृष्टि से सफल हो, किसी भी देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारिक, विभूति उस देश की संस्कृति कहलाती है। संस्कृति मनुष्य के जीवन में वह सुबह उठने के सोने तक के सभी अंतर्गत और बाहरी अच्छी बुरी क्रियाओं में व्यापी हुई है। यहाँ हम संस्कृति शब्द की संकल्पना स्पष्ट करके हिंदी साहित्य में संस्कृति निबंध विधा के संदर्भ में किस तरह निरूपित हुई है। इसकी चर्चा निम्नांकित है।

संस्कृति शब्द की संकल्पना :–

संस्कृति शब्द का अर्थ और परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत की है। राजपाल हिंदी शब्दकोश में डॉ. हरदेव बाहरी ने संस्कृति याने, 'संस्कृत रूप देने की क्रिया, परिष्कृत संस्कार, अलंकृत करना या सजाना, आचरण गत परंपरा'[1] आदि बताया है। मानक हिंदी अंग्रेजी कोष में संस्कृति को, 'Culture'[2] ऐसा शब्द है। टायलर संस्कृति संबंधी परिभाषा लिखते है कि, 'संस्कृति वह जटील संपूर्णता है। जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाए, नैतिकता, विधि, प्रथाएँ और वे सभी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ सम्मिलित की जाती है जिन्हें समाज के एक सदस्य के रूप में मानव अर्जित करता है।'[3] याने यहाँ टायलर ने समाज में स्थित रहनेवाले मानव जाति के विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया है। अत: कहना सही होगा कि, संस्कृति का अर्थ शुद्ध, संस्कार, परिष्कार और परंपरा आदि है। जो मानव जीवन में बाह्य और अंतर्गत पक्षियों से जुड़ा है, इसमें शिष्टता, बौद्धिकता और नैतिकता, मधुरता आदि लक्षण भी दिखाई देते हैं। मानवी जीवन के क्रियाकलाप, खान–पान, आचार–विचार, व्यवहार, चिंतन–मनन आदि को ही हम संस्कृति कहते हैं। यह संस्कृति युगानुरूप बदलती रहती है।

हिंदी साहित्य में संस्कृति– निबंधविधा के संदर्भ में :–

हिंदी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास आधुनिक काल की देन है। हिंदी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में निबंध एक महत्त्वपूर्ण, गौरवपूर्ण एवं सशक्त विधा है। निबंध के क्षेत्र में सभी प्रकार के विषयों का प्रवेश हो जाता है। निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिवर्तन नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय समस्याओं का वर्णन किया जाता है। हिंदी निबंध निरंतर विकासशील विधा है। भारतेंदु युग से लेकर आज तक के अनेक निबंधकारों ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे हैं। इन सभी निबंधकारों के निबंध लेखन में भाषा, साहित्य, धर्म, समाज, कला, इतिहास, ज्योतिष आदि के साथ संस्कृति संबंधी विचार भी चित्रित दिखाई देते हैं। संस्कृति समाज का व्यक्तित्व है। जो

सामाजिक परंपराओं तथा आध्यात्मिक आदर्शों के रूप में अभिव्यक्त होती है। संस्कृति जिंदगी जीने का एक तरीका है। निबंध साहित्य में विभिन्न संस्कृति संबंधी विशेषताओं को स्पष्ट करके निबंधकारों ने मानव जीवन का सर्वांगीण विकास करने के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

संस्कृति विषयक चिंतन करनेवाले हिंदी के कुछ प्रमुख निबंधकार :-

भारतेंदु युग से आज तक कई निबंधकारों ने संस्कृति विषयक निबधों का सृजन किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से प्रारंभ होने वाली यह सूची आज के वर्तमान युग में दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। इनमें से कुछ निबंधकार निम्नांकित है।

पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, पं. अंबिकादास व्यास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. गोविंद नारायण मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मिश्र बंधु, श्यामसुंदर दास, पं. माधव प्रसाद मिश्र, बाबू गोपालराय गहमारी, पूर्ण सिंह, पं. माधवप्रसाद मिश्र, पं. बेनीप्रसाद शुक्ल, पं. लक्ष्मीकांत त्रिाठी तथा पं. किशोरीलाल गोस्वामी, श्री. महेंद्रलाल गर्ग, राजा शिवप्रसाद, बाबू बालमुकुंद गुप्त, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामकृष्णदास, सियारामशरण गुप्त, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, पं. हरीभाऊ उपाध्याय, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, सूर्यकांत त्रिपाठी उर्फ निराला, सुमित्रानंदन पंत, धीरेंद्र वर्मा, महादेवी वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेए, शांतिप्रिय द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. सत्येंद्र, आचार्य विनय मोहन शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, अज्ञेय, नगेंद्र आदि के साथ आज के और भी बहुत सारे निबंधकार है। जिन्होंने संस्कृति विषयक निबंध लिखे हैं।

हिंदी निबंधकारों के संस्कृति विषयक विचार :-

हिंदी के विभिन्न निबंधकारों ने संस्कृति विषयक विचारों को अत्यंत व्यापक और विश्व स्तर पर प्रकट किया है। व्यक्ति के निर्माण में संस्कृति ही सहायक होती है। संस्कृति से ही मानव स्वयं की उन्नति करके समाज को भी उन्नत बनाने में योगदान देता है। मानव और समाज का उन्नयन करने का काम हिंदी साहित्य के अंतर्गत निबंध विधा में निबंधकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। निबंधों में मिलने वाली संस्कृति की विशेषताएँ निम्नांकित है।

1. संस्कृति में समन्वयक की भावना :-

हिंदी के लिखे निबंधों में विभिन्न विशेषताएँ मिलती है। उनमें से एक समन्वय की भावना यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जिसका चित्रण कई निबंधों में हुआ है। ज्यादातर हिंदी निबंधकारों ने निबंधों में समन्वय की भावना को रेखांकित करके सामंजस्यवादी दृष्टिकोण को सामने लाया है। भारतेंदु युग में निबंधों में प्राचीन और नवीन शैलियों का समन्वय करके संस्कृति के समन्वय की भावना को शैलियों के माध्यम से स्पष्ट किया है। डॉ. बाबूराम लिखते हैं कि, 'आलोच्य काल में निबंध लेखन का आरंभिक उद्योग होते हुए भी उसमें निबंध के सभी लक्षण विद्यमान है। इसमें प्राचीन और नवीन शैलियों का सुंदर समन्वय भी हुआ है।'[4] समन्वय की भावना को स्पष्ट करने वाले अधिकांश निबंधकारों ने दार्शनिक सिद्धांत, भोग एवं त्याग, जड़ और चेतन, भला और बुरा, देशी और विदेशी, ग्राम और शहर, बड़ा और छोटा, अमीर और गरीब, जाति, धर्म, वर्ग, प्रणति आदि में समन्वय स्थापित करने का बड़ा ही सुंदर प्रयत्न किया है। समन्वय की भावना को उजागर करनेवाले कुछ निबंधकार इस प्रकार है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, पं. प्रताप नारायण मिश्र, गोपाल प्रसाद, बालकृष्ण भट्ट, पं. अंबिकादास व्यास, बाबू बालमुकुंद, पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बाबू गुलाब राय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र आदि के साथ आज के और भी निबंधकार है।

2. लोकसंस्कृति का दर्शन –

हिंदी निबंध पढ़ने के बाद हमें मालूम होता है कि, हिंदी निबंधकारों का लोक संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। हिंदी निबंधों में चित्रित आचार-विचार, रीति-रिवाज और पर्व-त्यौहार सभी लोक संस्कृति से संबंधित है। रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, व्यवहार, नृत्यगीत, कला कौशल, भाषा आदि सब लोक संस्कृति है। लोकसंस्कृति के तत्त्व विभिन्न निबंधकारों के निबंधों में चित्रित है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि, यह संस्कृति अनुभव श्रुति और परंपरा से चलती है। डॉ. भूपेंद्र सिंह जैसे विद्वानों ने तो लोक संस्कृति को वर्तमान में विज्ञान के माध्यम से समझाने की कोशिश की है। निबंधकार कितना भी पढ़ लिख जाए आधुनिक बन जाए लेकिन उसके लिखे साहित्य में लोक संस्कृति का दर्शन होता ही है। डॉ. बाबूराम के अनुसार, 'लोक संस्णति जीवन का अभिन्न अंग है हम कितने ही आधुनिक क्यों बन जाए परंतु अपनी जमीन से पृथक नहीं हो सकते हैं।'[5] मतलब साहित्यकार लोकसंस्कृति को छोड़ के लिख नहीं सकता। निबंध साहित्य लिखनेवाले निबंधकारों के लेखनी मैं भी लोक संस्कृति विस्तृत रूप में दिखाई देती है। लोकसंस्कृति को निबंधों में दृष्टिगोचर करनेवाले कुछ निबंधकार इस प्रकार है- भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकुंद गुप्त, रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेये, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, जैनेंद्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, अमृतराय, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, शरद जोशी इसके अतिरिक्त वर्तमान कालीन और भी निबंधकार है।

3. सांस्कृतिक मूल्यों का जतन :–

सांस्कृतिक मूल्य परिवेश के अनुसार बदलते आए हैं। योग, भोग, तप, त्याग, साधना, दर्शन, व्याकरण जैसे संस्कृति के पुराने मूल्य हिंदी के आरंभ के निबंधों में दिखाई देते हैं। सांस्कृतिक जीवन में अहिंसा की जगह हिंसा, आदर की जगह अनादर और त्याग की जगह स्वार्थ के कारण भूमंडलीकरण आज के युग में सांस्कृतिक मूल्य टूटते नजर आ रहे हैं। इन टूटते सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने के लिए निबंधकारों ने आदर्श, संतोष, त्याग, शांति, अहिंसा, उदारता, कोमलता, दया, क्षमा, प्रेम, अपनत्व, आस्था आदि विभिन्न मूल्यों को निबंधों में स्थान देकर सांस्कृतिक मूल्यों को जतन करने की कोशिश की है। सांस्कृतिक मूल्यों के विस्थापन से ही निबंध साहित्य मौलिक बनता है। यह मौलिकता बनाए रखने का काम निबंधकार का है। डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं, 'आज के हिंदी निबंधकार को निबंध साहित्य की मौलिकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के काफी ईमानदारी से काम लेना होगा।'[6] यह मौलिकता बनाए रखने के लिए निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक मूल्यों के साथ सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाकर निबंधकार निबंधों का सृजन करते हैं। भारतेंदु से लेकर आज तक वर्तमान कालीन अनेक निबंधकारों ने निबंध के सर्वांगीण विकास के लिए तथा पाठकों को किसी देश समाज की सभ्यता समझाने के लिए सांस्कृतिक मूल्यों को निबंधों में स्थान दिया है। उनमें से कुछ निबंधकार इस प्रकार है- पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, प्रभाकर माचवे, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रताप नारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, जैनेंद्र, रघुवीर सहाय, शिवप्रसाद सिंह, श्री लाल शुक्ल, रमेश कुंतल मेघ इसके अतिरिद्व और भी है।

4 देश विदेश के संस्कृति का चित्रण :–

हिंदी निबंध साहित्य का सृजन करने वाले निबंधकारों में कई निबंधकार भ्रमणशील व्यक्तित्व के थे। जिसके कारण उनके निबंधों में अपनी जन्मभूमि, अपने देश के साथ विभिन्न विदेशी स्थानों का भ्रमण करके वहाँ के संस्कृति को जानकर लेखनद्वारा पाठकों के सामने रखा है। यात्रा प्रवृत्ति के कारण ही हिंदी के विभिन्न निबंधकारों के निबंधों में विषय की विविधता परिलक्षित होती है। साहित्य, धर्म, राजनीति, क्रीडा, विलास, प्रकृति, कला, उत्सव आदि विभिन्न

विशेषताओं का विवेचन संस्कृति के दृष्टि से यात्र करनेवाले निबंधकारों के निबंधों में पाया जाता है। भारतेंदु युग से लेकर आज वर्तमान युग के कुछ निबंधकारों ने भारतीय संस्कृति, तो कुछ निबंधकारों ने भारतीय संस्कृति के साथ विदेशी संस्कृति को भी अपने लेखन में स्थान दिया है। हिंदी के अनेक निबंधकार विश्व साहित्य से जुड़े होने के कारण इनके निबंध में भारत के साथ विश्व के अन्य देशों के संस्कृति का दर्शन होता है। इसमें भोजन, वेशभूषा, विज्ञान, यांत्रिकीकरण, औद्योगिकरण, रहन-सहन, शिक्षा संबंधी वर्णन, साहित्य विषय का वर्णन, कला संबंधी विवेचन जैसे संस्कृति के कई अंग सामने आते हैं।

संचारिणी निबंध मे निबंधकार लिखते हैं कि, 'यूरोप की संस्कृति, अरब संस्कृति, चीनी संस्कृति, जापानी संस्कृति, हिंदे सीआयाई संस्कृति किसी को भी भारतीय संस्कृति से कम चिंता नहीं है।'[7] इससे मालूम होता है कि, निबंधकार ने अलग-अलग देशों का भ्रमण करके बाहरी देश के और भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डाला है। इनमें से कुछ निबंधकार इस प्रकार है- बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह, बाबू श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, हरीभाऊ उपाध्याय, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, महादेवी वर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा, यशपाल, विद्यानिवास मिश्र आदि के साथ आज के उभरते हुए और भी महत्त्वपूर्ण निबंधकार है।

अत: कहना सही होगा कि, हिंदी साहित्य के अंतर्गत रेखाचित्र, उपन्यास, कहानी, यात्रा साहित्य आदि के साथ निबंध विधा में भी संस्कृति का दर्शन होता है। संस्कृति को मनुष्य के सभी अंगों से जोड़ा जाता है। मनुष्य आचरण करनेवाले रीति-रिवाज, परंपरा, रहन-सहन, खान-पान, क्रिया-कलाप, आचार-विचार, पर्व-त्यौहार, भाषा, विधि, ज्ञान, विश्वास आदि ही संस्णति है। विभिन्न भाषाओं में लिखें साहित्य में संस्कृति का विवेचन होता है। उसी तरह हिंदी के निबंध साहित्य में भी निबंधकारों ने संस्कृति संबंधित अनेक विशेषताओं को स्थान दिया है। संस्कृति संबंधी विचार प्रस्तुत करनेवाले हिंदी के बहुत सारे निबंधकार है। भारतेंदु युग से लेकर आज वर्तमान काल तक कई निबंधकारों ने समन्वयता की भावना लोक संस्कृति का दर्शन सांस्कृतिक मूल्यों का जतन तथा देश विदेश के संस्कृति का निरूपण किया है। आधुनिक काल के गद्य के निबंध विधा में निबंधकारों ने अपने लेखन में संस्कृति को स्थान इस प्रकार दिया है कि, उनके लिखे निबंध में सृष्टि का कौन सा भी अंग छूटता नहीं है। निष्कर्त है उपर्युक्त विवेचन के बाद कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य के निबंध विधा में संस्कृति का चित्रण बड़ी मात्र में दिखाई देता है, इसमें कोई भी संदेह नहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एन्ड संन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2010 पृ. 794
2. राममूर्ति सिंह, मानक हिंदी अंग्रेजी कोश, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1970 पृ. 272
3. हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र, विश्वकोश रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1998, पृ. 69
4. डॉ. बाबूराम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002 पृ. 50
5. वही पृष्ठ क्रमांक 323,
6. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियाँ, अशोक प्रकाशन. बिसवां संस्करण 2010 पृ. 668
7. विद्यानिवास मिश्र, संचारिणी (निबंध- संस्कृति और समन्वय), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली. संस्करण 1996 पृ. 20

मोबाइल नंबर - 800 7113338, ईमेल आईडी- ashok3338@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 144-146
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मशीनी अनुवाद : प्रक्रिया और चुनौतियां

–डॉ. मुकेश भार्गव
संविदा सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला,
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

भूमिका :

मशीनी अनुवाद से तात्पर्य है कि अनुवाद की प्रक्रिया मशीन यानी कम्प्यूटर सम्पन्न करें। हम कम्प्यूटर में स्त्रोत भाषा के पाठ की सामग्री का इनपुट करें और आउटपुट के रूप में उससे लक्ष्य भाषा में सम्पन्न करने की क्षमता हो, जिसके आधार पर मशीन स्त्रोत भाषा पाठ को पढ़कर उसे समझ सकें और उसमें से अनुवाद तत्व निकाल सकें। मशीनी अनुवाद में विश्लेषण की प्रक्रिया को पार्सिंग कहा जाता है। अंतरण के अंतर्गत स्त्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा के शब्दों के आधार पर अंतरण कोष तैयार किया जाता है जिसके आधार पर स्त्रोत भाषा की संरचनात्मक सामग्री का लक्ष्य भाषा की समरूपी संरचना में अंतरण किया जाता है।

समायोजन की प्रक्रिया के अंतर्गत स्त्रोत भाषा की अंतरिम सामग्री का लक्ष्य भाषा की भाषिक संरचना के आधार पर समायोजन किया जाता है। इसे मशीनी अनुवाद की भाषा में ''जेनरेशन'' कहते हैं।

इस प्रकार मानव अनुवाद तथा मशीनी अनुवाद की प्रक्रियाओं में समानता है, फर्क इतना है कि मशीनी अनुवाद में ये तीनों प्रक्रियाएँ पूर्णतया मशीन द्वारा सम्पन्न होती है। मशीनी अनुवाद के ये प्रक्रियात्मक चरण लम्बे अनुसंधान और श्रम से साधित हुए है।

आज अनुवाद की आवश्यकता इतनी बढ़ गई है कि केवल मानव अनुवादकों से यह सम्भव नहीं रह गया है।

प्रत्येक देश ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्र में हुए अनुसंधान एवं विकास से दूसरी भाषाओं की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक धरोहर की गहनता और व्यापकता से अपनी भाषाओं को सम्पन्न कराना चाहता है। मानव अनुवाद एक धीमी प्रक्रिया है मानव अनुवाद सीमित मात्र में ही अनुवाद कर सकता है जबकि मशीन तीव्र गति से सैकड़ों पृष्ठों का अनुवाद कुछ ही समय में कर सकती है। इस प्रकार मशीनी अनुवाद प्रणाली हमें बड़ी मात्र में समरूपी अनुवाद करने का त्वरित साधन उपलब्ध कराती है। आज हम सूचना प्रौद्योगिकी युग में जी रहे हैं। नई-नई सूचनाओं एवं ज्ञान-विज्ञान का विकास प्रतिक्षण हो रहा है। उन्हें अपनी भाषा में लाने तीव्रतम उपाय मशीनी अनुवाद ही है। भूमण्डलीकरण के इस युग में जो परस्पर दूरियां कम हो रही है। वहीं एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अनुवाद की आवश्यकता ही काफी है। मानव क्षमताओं की सीमितता और उपलब्धता के कारण उनकी आवश्यकता मशीन अनुवाद से ही पूरी की जा सकती है ।

वैश्विक भाषा बनने की राह पर, किसी भी भाषा के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह बहुविधा समझी जाने योग्य बने। उसे बोधगम्य बनने के लिए बहुत जन में अपनी पैठ बनाने के लिए अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। अनुवाद के माध्यम से उस भाषा को भी समझा जा सकता है, जिसको व्यक्ति जानता नहीं है। यही कारण है कि अनुवाद ने अपनी महत्ता सिद्ध की है। आज कम्प्यूटर और संचार क्रांति ने ऐसी विधि इजाद कर दी है कि मशीनों

के सहारे अनुवाद सुलभ हो गया है। बिग सर्च इंजन पर हिन्दी में मेनू से लेकर ऑन स्क्रीन की-बोर्ड और हिन्दी-अंग्रेजी में पारस्परिक (दो तरफा) अनुवाद की सुविधा आ गई है। माइँक्रोसॉफ्ट ऑफिस में काम की तरह ही बर्तनी की त्रुटियां ठीक करने का 'प्रूफिंग टूल' भी उपलब्ध है। खुद बोर्ड के भीतर भी मशीन अनुवाद होने लगा है। थियारस से लेकर ऑटो करेक्ट तक की सुविधा इसमें उपलब्ध है।

कम्प्यूटर की मदद से किए गए अनुवाद को यांत्रिक/मशीनी माना गया है। इसके पूर्व भी मशीनी अनुवाद होता रहा है। उसे शब्दानुवाद की श्रेणी में रखा गया था। शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा का उसी अर्थ में दूसरा शब्द प्रयुक्त किया जाना ही शब्दानुवाद है। इसमें भावना की सही अभिव्यक्ति ना होने से मशीनी अनुवाद माना गया है। वर्तमान समय में मशीनी अनुवाद यंत्र से जुड़ गया है। कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की सहायता से एक प्राकृतिक भाषा के पाठ (टेक्स्ट) यह कथन को दूसरी प्राकृतिक भाषा के पाठ में अनुवाद करने को मशीनी अनुवाद या यांत्रिक अनुवाद कहा जाता है। यांत्रिक अनुवाद एक बोधिक प्रक्रिया है, परिणाम है। अनुवाद चाहे मनुष्य द्वारा किया जाए या फिर मशीन द्वारा दोनों का अंतिम लक्ष्य एक ही होता है, स्त्रोत भाषा के के कथ्य को लक्ष्य भाषा में बदलना। कम्प्यूटर द्वारा भाषा और शब्द संसाधन के क्षेत्र में अनुवाद कार्य बौद्धिक स्तर की आवश्यकताओं के रूप में सामने आया है। भाषा व्यवहार के नियम मनुष्य के मस्तिष्क में संचित होते हैं। मनुष्य की बुद्धि जब कम्प्यूटर में प्रयुक्त की जाए तो वह उसके अनुसार कार्य करने को प्रस्तुत हो सकता है। मशीनी अनुवाद में भाषा के प्रयोग की युक्ति, शब्द-अर्थ संबंध एवं अर्थवत्ता जब मनुष्य की बुद्धि से संचालित होते हैं तब मशीन में प्रयुक्त होकर कृत्रिम बुद्धि के रूप में सामने आती है। मनुष्य की बुद्धि से निर्मित यह कृत्रिम बुद्धि, उसके कार्य (मनुष्य) का बौद्धिक अनुकरण करती है और पूर्व संचित नियमों से परिवर्तित होती है। मस्तिष्क में सूक्ष्म और अव्यक्त रूप में विद्यमान इन नियमों और प्रतिबंधों को एल्गोरिदम या सूत्र के माध्यम से कम्प्यूटर द्वारा परिचालित करवाना ही कृत्रिम बुद्धि कहलाती हैं।

Tracks 2015 जैसे Tools अब pdf फाइलों को पढ़क संपादित करने या अनुवाद करने की योग्य स्थिति में ला देते हैं। How for had you gone? तुम कितनी दूर तक गए थे? तुम कहां तक गए थे? तुम तुम कितनी दूर तक चले गए थे? कितनी दूर तुम चले गए थे? इसमें चयन की सुविधा आपको है। Old जो एक विशेषण है इसके कुछ प्रयोग old, men, old friend, 3 year's old हो सकते हैं, मशीनी अनुवाद इसे पुराना आदमी, पुराना मित्र, तीन वर्ष पुराना अनुवाद करेगा। अब यह तय करना आपका काम है कि किसके लिए क्या उपयुक्त है। प्रयोक्ता को यह स्वयं करना है यहाँ मशीनी अनुवाद का मजाक उड़ाने का कोई औचित्य नहीं है। मशीनी अनुवाद को लेकर लोगों के मन में यह धारणा है कि मशीन के अनुवाद में वही प्रक्रिया शामिल होती है जो कि मनुष्य द्वारा अनुवाद में प्रयोग की जाती है लेकिन मशीन यानी अनुवाद टूल की अनुवाद स्मृति अपने भीतर पहले से उपलब्ध होती है।

निकर्ष :

मशीनी अनुवाद की सीमाएँ है। सार्वभौमिक व्याकरण की कमी और विजातीय संरचनाएँ (विभिन्न भाषा परिवार) होना मशीनी अनुवाद का सबसे बड़ा अवरोधक है। एक ही शब्द के कई पर्यायवाची अनुवाद स्मृति को (चकित) विस्मृति में डाल देते हैं। मशीनी अनुवाद के विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि भाषा संबंधी नियमों का निर्माण होता रहे। इसके लिए भाषा वैज्ञानिकों की आवश्यकता होती है। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र का विकास करने वाले अभी भी अधिकतर कम्प्यूटर वैज्ञानिक है और भाषा वैज्ञानिकों का नितांत अभाव है। इसी कारण इन मशीन टूल्स की पूरी तरह व्यवहारिक हो पाने की प्रक्रिया धीमी है।

कम्प्यूटर मेमोरी सीमित होने के कारण एकत्रित आंकड़ों के चलते यह धीमा हो जाता है और अनुवाद की गति प्रभावित होती है। कम शुद्ध/संदिग्ध शब्दों/मुहावरों का अनुवाद करने में अर्थ का अनर्थ सांस्कृतिक तत्वों से भरपूर टेक्स्ट (कविता आदि) का अनुवाद निरस्त होगा। आज की आवश्कता को देखते हुए 'मशीनी अनुवाद' कार्यालयों

के लिए अत्यंत उपयोगी है। द्विभाषी कोष की सहायता से 'पैरामीटराईज्ड टेम्प्लेट' के द्वारा लक्ष्य भाषा का जेनेरेशन किया जाता है। मशीनी अनुवाद 1946 में वारेन वीवर के प्रयासों से प्रारंभ हुआ। नियमाधारित मशीनी अनुवाद से समय की बचत संभव है। इसके कई लाभ भी हैं यथा -

1. अत्यन्त अल्प समय में अनुवाद हो जाता है इससे पाठ का आशय तुरन्त सामने आ जाता है।
2. हर समय और हर जगह इसका प्रयोग संभव है।
3. कम अथवा बिना खर्च के अनुवाद संभव है।
4. मशीनी अनुवाद निजत्व एवं गोपनीयता की रक्षा करता है।
5. एक ही प्रयोग अनेक भाषाओं से अनेक भाषाओं में अनुवाद करने में सक्षम होता है, जबकि अनुवाद की सीमाएँ होती है।
6. किसी पाठ को मशीन द्वारा अनुवाद करके उसको किसी व्यक्ति द्वारा सुधार लेना एक सस्ता एवं व्यावहारिक उपाय है।
7. मशीनी अनुवाद सीधे संवाद का अवसर देता है। माध्यम अथवा बिचौलिए के अभाव में इससे सामाजिक, राजनीतिक एवं वाणिज्यिक लाभ के अवसर उपलब्ध होते हैं।
8. विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता की समाप्ति की ओर मशीनी अनुवाद का यह महत्वपूर्ण कदम है।

मशीनी अनुवाद का लाभ पता तब चलता है जब हम किसी ऐसी भाषा और लिपी से अनुवाद करते हैं, जिसका एक अक्षर भी समझ में नहीं आ रहा हो। अनुवाद करने पर अर्थ की प्राप्ति और समझ ज्ञान की नई खिड़की खोलने का अवसर देता है।

यद्यपि ''पूर्णता'' अभी भी संभव नहीं है तथापि मशीनी अनुवाद इस स्तर पर पहुँच गया है कि अब वैश्विक विचार विनिमय के लिए किसी कॉमन लैंग्वेज की आवश्यकता का आधार ही नहीं रहेगा। मशीनी अनुवाद भिन्न-भिन्न मातृभाषा वाले लोगों के बीच सेतु का कार्य करेगा। मशीनी अनुवाद की गुणवत्ता में थोड़ा और सुधार हो जाएगा तो अंग्रेजी को विदेशी भाषा के रूप में सीखने वालों की संख्या घट जाएगी। सरकारें अपनी विदेशी सीखने वाली योजनाओं को धीरे-धीरे वापस लेना प्रारंभ कर देगी। आश्चर्यजनक रूप से जिस इलेक्ट्रॉनिक क्रांति में अंगेजी भाषा को विश्व भाषा बनाया है वहीं इसका आधार भी खिसका सकती है। मशीनी अनुवाद के उपलब्ध सॉफ्टवेयर - SDL-TRADOS, word fast, Memo-Q, T03000, Antril Dehati, Across, fluency, Word finder आदि प्रमुख है। साथ ही Google का 9 भाषाओं का अपना ट्रांसलेटर टूलकिट है। भारत में मशीनी अनुवाद 1983 से प्रारंभ माना जा सकता है। T.M (Translation Memories) के द्वारा अनुवाद करके उसमें सुधार करवाना सस्ता विकल्प है।

संदर्भ सूची :-

1. अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग- एम.गोविन्द राजन भाषा संगम, चैन्नई (तमिलनाडु) मंगल अक्षर भारती, नई दिल्ली।
2. हिन्दी में अनुवाद की भूमिका और द्विभाषी कम्प्यूटरीकरण-आरिफ नजर अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. अनुवाद भाषाएँ एवं समस्याएँ - विश्वनाथ अय्यर, ज्ञान गंगा दिल्ली।
4. Machin Translation : Past, Present, Future. - W.J. Hutchins Ellis Harward Ltd. Newyork.
5. Machin Translation : Latest Developments - Harold Somers, The Oxford Handbook of Computationsl linguistics.
6. नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग : अ पाशिनियन प्रासपेक्टिव - विनीत चैतन्य एवं राजीव।
7. एन इंजीनियरिंग प्रास्पेक्टिव ऑफ मशीन ट्रांसलेशन-आर.एम.के.सिन्हा, अनिल ठाकुर, टाटा मैक्ग्राहिल्स, नई दिल्ली।
8. ए स्टडी ऑफ द ट्रांसलेशन डाइवर्जेस इन इंग्लिश एवं हिन्दी-आर.एम.के. सिन्हा, अनिल ठाकुर, कम्प्यूटर सोसायटी ऑफ इंडिया (जर्नल्स)।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 147-150
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संथाल समाज में शासन व्यवस्था प्रणाली

-SAROJINI TUDU

STATE AIDED COLLEGE TEACHER FOR BANDWAN

MAHAVIDYALAYA(PURULIA), WEST BENGAL

संथाल जनजाति मानवशास्त्रियों के विचार से प्रोटो ऑस्ट्रोलायड प्रजाति के हैं और संथाली भाषा ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार में आती है। संथाल जनजाति भारत की प्रमुख तथा प्राचीन जनजातियों में से एक है। संथालों के आदि पूर्वज 'पिलचु हाड़ाम-पिलचू बुढ़ही' ने मानव वंश की नींव डाली, पिलचू दंपत्ति के साथ पुत्र-सेन्दरा, सानदोम, चारे, माने, आचारे, डेला एवं लिटा और सात पुत्रियाँ-हिसी, डुमनी, छिता, कापरा, दानगी, पुंडगी एवं नासो, जब ये जवान हुए तो उन्होंने अनजाने में भाई-बहन में वैवाहिक संबंध स्थापित हो गया, उन्हीं के वंशज को 'होड़' कहा गया है, जब इनके वंशज अधिक बढ़ गए, तब इन्होंने गोत्र के अनुसार तथा बारह अलग-अलग गोत्र के बारह किले बनाए जो ''गढ़'' नाम से जाने जाते थे, मुरमू के लिए चम्पागढ़, सोरेन के लिए चायगढ़, मारडी के लिए बादली गढ़, किस्कू के लिए कोंयडागढ़, हाँसदा: के लिए कुटामपुरीगढ़, टुडू के लिए लुयबाड़ी लुकुयबाड़ीगढ़, हेमब्रोम के लिए खोयेरगढ़, बेसरा के लिए बिनसरियागढ़, बासके के लिए हारवालोयोंगढ़, पावरिया के लिए बामागढ़, चोंडे के लिए कोढ़ेगढ़ तथा बेदिया के लिए होलों, गाँडोगढ़ की स्थापना हुई थी। इसके बाद संथाल तोडे पुखरी, फयाय नाई, पुयाय दिशोम में और बस गये थे।

संथाल जनजाति जितनी प्राचीन है, उतनी ही प्राचीन उनका समाज और समाज के मध्य निहित संस्कार, परम्परा, विश्वास, आचार-बिचार, रीति-रिवाज है। संथाल समाज में पितृपक्षीय वंश परम्परा का प्रचलन है, जिसके अनुसार परिवार की परम्परा पिता की ओर से चलती है। संथाल समाज पितृसत्तात्मक समाज है, इस कारण नातेदारी नियम पर आधारित सभी सामाजिक समूह, परिवार, कुल समूह गोत्र पितृपक्षीय है। वैसे ही संथाली सामाजिक व्यवस्था अच्छी तरह संपादित करने के लिए स्वशासन व्यवस्था की जरुरत है।

आदिवासी समाज में सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक मामलों को सुलझाने के लिए पारम्परिक बिचार व्यवस्था है। पारम्परिक विचार व्यवस्था को दोरबार भी कहा जाता है। दोरबार निम्न प्रकार के होते हैं -

(क) ओड़ाः बिचार - किसी पारिवारिक कलहों को ओड़ा: बिचार द्वारा सुलझाया जाता है। गाँव के कुछ लोग घर के मालिक के साथ बैठकर कलह को सुलझाता है, ताकि घर की बात घर बाहर न जाये।

(ख) आतु बिचार :- किसी एक आदमी का दूसरे आदमी से झगड़ा हो, पर आतु बिचार का दरवाजा खटखटाया जाता है। इसमें गाँव का माझी बैठक बुलाता है और गाँव के बुद्धिजीवियों के साथ मिलकर झगड़ा को सुलझाता है।

(ग) पुड़सी बिचार :- गाँव में किसी विवाद को सुलझाने में असमर्थ होने पर दोरबार बुलाया जाता है। इसमें पुड़सी माझी एवं माझी होपोन भी भाग लेते हैं।

(घ) देश बिचार :- देश बिचार को पिड़ बिचार या मुलूक बिचार भी कहा जाता है। इसमें अपने क्षेत्र पीड़ के माझियों और माझी होपोन भाग लेते हैं। आदिवासी समाज के विधि के अनुसार एक क्षेत्र में एक पारगाना होता है।

अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग पारगाना होता है जो अपने-अपने क्षेत्र का प्रशासनिक पदाधिकारी के रूप में कार्य का संचालन करते हैं।

प्रत्येक पारगाना अपने क्षेत्र में शांति-व्यवस्था बनाये रखता है। सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने वाले एवं समाज को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति को आर्थिक दण्ड देता है।

(ड़) लो बिर बिचार :- लो बिर बिचार को लो मोहोल बिचार भी कहा जाता है। यह आदिवासी समाज का सुप्रीम कोर्ट है। इस दरबार में वैसे लोगों को सजा सुनाता है, जिन्हें समाज विरोधी माना जाता है।

जिस विवाद को माझी, पुड़सी माझी और पीड़ पारगाना सुलझाने में असमर्थ होते हैं, ऐसे मामलों को देश पारगाना के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस देश पारगाना का पद संथाल समाज में सबसे ऊँचा स्थान रखता है। वह जन अदालत लगाकर मामलों या विवादों का सुनवाई करता है। उनका फैसला ही अंतिम फैसला होता है, क्योंकि वह जन अदालत का मुख्य न्यायाधीश ही नहीं, बल्कि वह समाज का दिशा-निर्देशक एवं संरक्षक भी है।

संथाल जनजाति व्यवस्थित गांव में रहते हैं। उनके संगठन को आतू मोड़े होड़ यानि 'पंच' कहा जाता है। प्रत्येक गांव का अपना पंचायत होता है, जिसके सदस्य सभी वयस्क व्यक्ति होते हैं। पंचायत के प्रमुख व्यक्ति माँझी, पारानिग, जोग माँझी, जोग पारानिक और गोड़ेत हैं।

पंच या आतु मोड़े होड़ गांव के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक मामलों का निपटारा करता है। आतु मोड़े होड़ में मुख्यत: निम्न लोग आते हैं -

क. माझी :- आदिवासी समाज में गांव के मालिक को माझी कहा जाता है। वह गांव का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक गांव में माझी होता है जो गांव के लोगों के सर्वसम्मति से चयनित होता है।

गांव के लोग ऐसे व्यक्ति को माझी चुनते हैं जो अनुभवी, बुद्धिमान, व्यवहार कुशल और सामाजिक कार्यो को सम्पादित करने की जिनमें क्षमता होती है। एक माझी का चयन हो जाने पर उसे माझी पद से हटाया नहीं जा सकता है। उनके बाद माझी का पद वंश परम्परागत हो जाता है।

माझी गांव में सुख, शांति और सुरक्षा व्यवस्था को सुनिश्चित करता है तथा सभी छोटे-बड़े सामाजिक कार्यो एवं अनुष्ठानों को सम्पादित करता है। गांव में उत्पन्न विवादों एवं कलहों को पंच के माध्यम से सुलझाता है। यदि कोई व्यक्ति समाज द्वारा बनाया गया नियम का उल्लंघन करता है तो उसे आर्थिक दण्ड देना पड़ता है, जिसे 'डाडोम' कहा जाता है। आर्थिक दण्ड का अवमानना करने वाला व्यक्ति या परिवार को सामाजिक दण्ड स्वरुप सामाजिक बहिष्कार किया जाता है, जिसे निम डारवा: कहा जाता है।

माझी गांव का प्रधान होने के कारण गांव, गांव का सीमा, नदी, झरना, जलाशय, जंगल, जाहेर गाड़ आदि का देखभाल करना उनका दायित्व है।

ख. जोग माझी :- आदिवासी समाज में जोम माझी का भी प्रावधान है, जिसका स्थान माझी के बाद आता है। वह माझी के सहायक के रूप में करता है। उनके अनुपस्थिति में उसके अधिकार का उपयोग करता है।

माझी और गांव के लोग विचार-विमर्श कर जोग माझी का चयन करता है। माझी अपने गांव का सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रत्येक टोला या मोहल्ला में एक-एक जोग माझी नियुक्त कर सकता है। इस प्रकार आदिवासी समाज में जोग माझी का पद सम्मानजनक पद है।

ग. गोडेत :- गोडेत माझी का सहायक होता है। गांव के सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और प्रशासनिक गतिविधियों को व्यवस्थित एवं संचालित करता है। गोडेत का पद वंश परम्परागत नहीं है, बल्कि गांव के लोगों द्वारा चयनित होता है।

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो गोडेत उसकी सूचना घर-घर पहुँचाता है। गांव में अशांति, अकाल, महामारी होने पर अखाड़ा में बैठक बुलाना और उसका संचालन करना उसका दायित्व है। इसके अलावा गांव का आपसी विवाद और पारिवारिक कलहों का सुलझाने के लिए पक्ष-विपक्ष को बैठक में बुलाना गोडेत का मुख्य काम है। इस प्रकार गोडेत गांव का ग्रामदूत के रूप में काम करता है।

घ. **पारानिक :-** पारानिक माझी का प्रधान सहायक है। गांव के पारम्परिक सामाजिक कार्य को सम्पादित करने के पहले पारानिक से परामर्श लेता है।

ङ. **आतु होड़ :-** समाज का सबसे छोटा इकाई परिवार है। कई परिवार मिलकर टोला या मोहल्ला बनता है और कई टोला या मोहल्ला मिलकर गांव बनता है। चुँकि गांव का मालिक माझी है और उसके अधीन गांव के लोग है। इसलिए गांव के लोगों को माझी होपोन या पोरजा या आतु होड़ कहा जाता है।

आदिवासी पारम्परिक व्यवस्था में माझी, जोग माझी, गोडेत, पारानिक और आतु होड़ के अलावा नायके का पद भी है। उसका मुख्य कार्य धार्मिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करना है। सामाजिक नियम के अनुसार नायके का माझी द्वारा ग्रामीणों से विचार-विमर्श कर चयन करता है। वे लोग ऐसे व्यक्ति को चुनते हैं जिनमें पूजा-अर्चना करने का विशिष्ट गुण होता है। नायके जाहेर गाड़ में समुदायों और देवी-देवताओं के बीच धार्मिक प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। गांव सुख, शांति और समृद्धि के लिए प्रार्थना करता है। नायके का सहायक कुडाम नायके होता है। इसका पद स्थायी नहीं होता है। उसका पद ग्रामीणों के विश्वास पर्यन्त है।

निष्कर्ष :- संथाल जनजाति भारत की प्रमुख तथा प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। संथाल ही नहीं सभी आदिवासी समाज का अपना शासन व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर के प्रधान को अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है। यथा- उराँव समुदाय में परिषद् के प्रमुख व्यक्ति को 'महतो', मुण्डा समुदाय में 'मुण्डा', हो समुदाय में 'मुण्डा', खड़िया समुदाय में 'सोहोर' और संथाल समुदाय में 'माझी' कहा जाता है।

संथाली शासन व्यवस्था मुख्यतः तीन स्तरीय होती है - 1. गांव के स्तर पर, 2. गांव के समूह के स्तर पर, तथा 3. सर्वोच्च स्तर पूरे समुदाय के स्तर पर। इन तीन स्तर के अलावा संगठन स्तर इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते हैं - 1. टोला, 2. गांव, 3. पोडसी गावता, 4. परगना, 5. देश व्यवस्था। इन पांच स्तर पर भी संथाली शासन व्यवस्था देखा जा सकता है।

इस अवधि तक मैंने जो भी तथ्यों का संकलन किया है, उनका मंथन करते हुए निष्कर्ष के रूप में पाया हूँ। संथाली राजनैतिक प्रणाली बहुत ही सुसंगठित है। इनमें शासन व्यवस्था का एक निश्चित तंत्र है। आधुनिकता के प्रभाव से पंचायतों पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक एवं धार्मिक मामलों में परम्परागत पंचायत का शरण लेते हैं। न्यायालय के माध्यम से मामलों को हल करने लगे हैं। चुनाव और प्रजातंत्र की राजनीति के चलते संथाल समाज के लोगों में नये विचारों एवं नयी आकांक्षाओं का भी प्रवेश हुआ है। परम्परागत ग्रामीण नेतृत्व के स्थान पर नया शिक्षित एवं निरपेक्ष राजनैतिक नेतृत्व उभर रहा है। अतः आधुनिकता के इस दौर में राजनैतिक पहलुओं से सामाजिक परिवर्तन में गति मिली है। संताल जनजाति की शक्ति संरचना कुछ बाह्य परिवर्तन के बावजूद आज भी आन्तरिक रूप से अपने परम्परागत स्वरुप को बनाए हुए है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. खेरवाड़ वंश धेरोम पुथी, माँझी रामदास टुडू, 1882
2. हड़कोरेन मारे हापड़ामको रेयाः काथा, L.O. Skrefsrud, 1887
3. झारखण्ड की जनजातियाँ, डॉ0 चतुर्भुज साहु, 2007
4. संताल पूजा पार्षण, कलेन्द्रनाथ मान्डि, 2008
5. झारखण्डी आदिवासी जीवन और समाज, डॉ0 के0सी0 टुडू, 2013
6. संथाली भाषा लोकगीत एवं नृत्य, डॉ0 विनय कुमार, 2014
7. प्रकृति, सलीम चन्द्र सोरेन, 2017

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 151-156
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि दयानन्द का योगदान

–परांतक प्रथम

स्नात्तक, गुरू जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत के इतिहास में ऐसी अनेकों घटनाओं का विवरण मिलता है जहाँ हमें परिवर्तन के लिए उठती आवनें सुनने को मिलती है। परंतु 19वीं शताब्दी में भारत में पुनर्जागरण के फलस्वरूप अनकों बदलाव आए। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक एंव धार्मिक सुधार आंदोलन ने भारतीय इतिहास को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। साथ ही भारत में एकता एंव अखंडता की लौ को जलाया। जो स्वाधीनता आंदोलन मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। यह शताब्दी समाज सुधारकों और धर्म सुधारकों का युग बन गई और इस काल में ऐसे अनेकों महापुरूषों के उदाहरण मिलते है। जिन्होंने स्वयं का बलिदान कर समाज के उत्थान के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। इनमें आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती का नाम प्रमुख है। उन्होंने वेदों के महत्व को फिर से जागृत किया। समाज में फैली कई कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फैंका। आर्य समाज आंदोलन पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। उन्होंने वेद के ज्ञान को फैलाया और ''वेदों' की ओर लौटने'' का नारा बुलंद किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म 1824 ई. मे मोरबी जिले के स्थित गाँव टंकारा गुजरात में हुआ। उनके बचपन का नाम मूलशंकर था उनके पिता का नाम करशन जी और माँ का नाम अमृतबाई था। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था तो यह स्वाभाविक ही था के उन्हें वेद व शास्त्रों को पढने का अवसर मिला। उनकी रूचि के कारण वे संस्कृत वेद शास्त्रों व अन्य धर्म पुस्तकों के अध्ययन में लग गए। उनके जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुई जिनसे उनके मन में हिन्दू धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए विवश कर दिया। एक दिन शिवरात्री की घटना से मूलशंकर को मूर्ति पूजा के अंधविश्वास का पता चला। इस घटना को कवि प्रदीप जी नें अपने शब्दों में कुछ यूँ बताया है–

जब लगा चौदहवाँ साल तो एक दिन शिवरात्रि आई।
उस रात की घटना से कुमार की बुद्धि चकराई।।
जिस घड़ी चढे शिव के सिर पर चूहे चोरी–चारी।
मूलजी ने समझी तुरंत मूर्तिपूजा की कमजोरी।।
हर महापुरूण के लक्षण बचपन में दिख जाते है।।

इस घटना को मूलशंकर को मूर्तिपूजा पर सवाल खड़े करने के लिए विवश कर दिया और पिता जी से तर्क–वितर्क करने लगे। उन्होंने शिवरात्री को देखा कैसे चूहे शिव जी के भोग को खा रहे है। तब वह दृश्य देख वे आश्चर्यचकित रह गए और सोचने लगे जो ईश्वर खुद की रक्षा नहीं कर सकता वो दूसरों की रक्षा क्या करेगा? इस पर उन्होंने पिता जी को तर्क देते हुए कहा कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए। इस बात से चिंतिंत हो पिता जी ने उनका जल्द विवाह करने को सोचा। अपनी छोटी बहन और चाचा की मृत्यु से वे जीवन–मृत्यु के अर्थ पर गहरा चिंतम करने लगे और गूढ प्रश्न करने लगे। इससे चिन्तित हो पिता जी ने मूलशंकर का विवाह

तय कर दिया। परंतू मूलशंकर जी घर से भाग निकले और क्रांतिकारी भावों से भरे हुए वे सत्य की खोज में निकल पड़े। उन्होंने जगह-जगह घूम के योगाभ्यास करना प्रारंभ किया और उसके कुछ साल बाद स्वामी पूर्णानन्द ने उनको संन्यास दिया। जिस दिन उन्हें सन्यासी का पद प्राप्त हुआ उस दिन से वे स्वामी दयानंद सरस्वती के नाम से जाने जाते है। संन्यास के बाद गुरू की तलाश ही उनकी दिनचर्या थी। घोर तप करने के बाद उन्हें गुरू ने मिले तो वे बहूए दुःखी हो गए। परंतु तभी किसी ने उन्हें मथुरा में रहने वाले सदगुरू विनजानन्द का पता दिया। उसके बाद स्वामी जी तुरंत मथुरा की और चल पड़े। वहाँ उन्होंने गुरू के आश्रय में स्वामी जी ने खूब जमकर अभ्यास किया और सबसे मेधावी छात्र होने के कारण शिक्षा तीन वर्ण में ही पूरी कर ली। पाणिनी व्याकरण, पातंजल-योगसूत्र तथा वेद-वेदाँग का घोर अध्ययन किया। गुरू से विदा का दिन आया तो स्वामी जी गुरू के भेंट स्वरूप कुछ लोग जाए परंतु गुरूजी ने वे लोग बडे ही उदास भाव से लिए और उनकी आँखों में आँसू आ गए। गुरूजी ने उन्हें भारत में फैली कुरीतियों के बारे में बताया और गुरू दक्षिणा में उनसे माँगा के परोपकार करों सत्य शास्त्रों का उद्धार करो। गुरू जी की बातों से प्रभावित हो स्वामी जी ने आधुनिक भारत को बनाने की नींव रखी। उन्होंने सामाजिक व धार्मिक आंदोलन का एक धुआधार दौरा प्रारंभ किया। गुरू जी ने स्वामी जी को भारत मे फैले अंधकार से परिचय कराया और उन भावों को कवि प्रदीप ने अपने शब्दों में बखूबी दिखाया है वे कहते है-

गुरू बोले दयानन्द मै निज हृदय खोलता हूँ
जिस बात ने मुझे रूलाया है वो बात बोलता हूँ।
इन दिनों बड़ी दयनीय दशा है अपने भारत की।
हिल गई हैं सारी बुनियादें इस भव्य इमारत की।
पिस रही है जनता पाखण्डों की भीषण चक्की में।
आपस की फूट बनी हैं बाधा अपनी तरक्की में।
है कुरीतियों के कारा में सारा समान बन्दी।
संस्कृति के रक्षक बने है भक्षक हुए है। स्वच्छन्दी।
कर दिया है गन्दा धर्म सरोवर मोटे मगरों ने।
जंर्जरित जाले को जकड़ा है बदमाश अजगरों ने।
भक्ति है छुपी मक्कारों के मजबूत शिकंजो मे।
आर्यो की सभ्यता रोती है पापियों के फंदो मे।

इसके बाद स्वामी बड़ा आश्चर्य करते हुए गुरू को देखते रहते है। तभी गुरूजी और कुरीतियों का वर्णन करते है और कहते है-

गुरू फिर बोले ईश्वर बिकता अब खुले बाजारों में
आया है भंयकर परिवर्तन आचार विचारों में।
हर चबूतरे पर बैठी है बन-ठन कर चालाकी।
उस ठगनी ने है सबको ठगा कोई न रहा बाकी।
बीमार है सारा देश चल रही है प्रतिकूल हवा।
दिखता है नहीं कोई ऐसा जो इसकी करे दवा।
हे दयानन्द इस दुःखी देश का तुम उद्धार करो।
मँझधार में है बेडा बेटा तुम बेड़ा पार करो।
इस अंधा गुरू की यही है इच्छा इस पर ध्यान धरो

भारत के लिए तुम अपना सारा जीवन दान करो।।
संकट में है अपनी जन्मभूमी तुम जाओ करो रक्षा।
जाओ बेटे भारत के भाग्य का तुम बदलो नक्षा।

इसके बाद स्वामी जी ने भारत के कई स्थानों की यात्र की और अपने गुरू के द्वारा बताई गई बातों को अपनी आँखों से देखा। दिन रात ऋषि ने घूम-घूम कर अपना वतन देखा जब अपना वतन देखा तो हर तरफ घोर पतर देखा। उन्होंने अनेकों शास्त्र्यों किए। महर्षि दयानंद ने सब झूठे ग्रंथो की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी और अंधविश्वास में लगे लोगों को ज्ञान उपदेश दिया। वेदों के महत्व को समाज में फैलाया। स्वामी जी द्वारा कैसे धर्मो में फैली व्याप्त बुराइयों का खण्डन हुआ यह इन निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया जो कवि प्रदीप द्वारा रचित है।

धज्जियाँ उड़ादी स्वामी ने सब झूठे ग्रंथो की,
बखिया उधेड़ कर रख दी सारे मिथ्या पंथों की।
ऋषिवर ने तर्क तराजू पर सब धर्मग्रन्थ तोले,
वेदों की तुलना में निकले वा सभी ग्रथ पोले।।

इस तरह सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना प्रारंभ किया और जहाँ-जहाँ गए वहाँ स्वयं के ज्ञान संस्कृत भाषा में तर्क एंव वेदों के उदाहरणों से सभी पण्डितों एवं विद्वानों को लोहे के चने-चबवाए और अपना लोहा मनवा दिया। वे प्रचण्ड तार्किक थे और संस्कृत भाषा के बड़े ज्ञाता थे। संस्कृत में वे धारा प्रवाह बोलते थे। अपनी इस तर्क की कला और अगाध ज्ञान से उन्होंने झूठे आंडबरो को समाज से निकाल फेंका। इसके बाद वे काशी नगरी की तरफ प्रस्थान करते हैं ये नगरी पाखण्डियों की और कर्मकाण्ड की नगरी थी। वहाँ जाकर वेद का डंका स्वामी जी ने बजा दिया और संभाएँ करने लगे। वहाँ के पण्डे-पूजारियों ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रण दिया। स्वामी जी ने ज्ञान से पूरी सभा को प्रकाश प्रदान किया। स्वामी जी प्रचलित धर्मो में व्याप्त बुराईयों का कड़ा खण्डन करते थे। सर्वप्रथम उन्होंने उसी हिदू धर्म में फैली बुराईयों व पाखण्डों का खण्डन किया जिस हिंदू धर्म में उनका जन्म हुआ था। तत्पश्चात् अन्य मत पंथ व सम्प्रदायों में फैली बुराईयों का विरोध किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे न तो किसी धर्म के पक्षधार थे न ही किसी के विरोधी थे। वे केवल सत्य के पक्षधर थे समाज सुधारक थे व सत्य को बताने वाले थे इर धर्मो में आए दुर्गुणों को खत्म करना चाहते थे। काशी में हुए धार्मिक संग्राम में स्वामी जी की जीत भारत के भविष्य के लिए बड़ी ही महत्वपूर्ण थी। स्वामी जी के काशी दौरे की चर्चा भी कवि प्रदीप अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार करते है-

कुछ काल बाद स्वामी ने काशी जाने की ठानी।
उस कर्मकाण्ड की नगरी में अपनी भुकृटि तानी।
जब भरी सभा में स्वामी की आवाज बुलन्द हुई।
तब दंग हो गए लोग बोलती सबकी बन्द हुई।
वेदों में मूर्तिपूजा है कहाँ स्वामी ने सवाल किया।
काशीवालों ने बहुत सिर फोड़ा की माथापच्ची।
पर अन्त में निकली दयानंद जी की ही बात सच्ची।
मच गया तहलका अभिमानी धर्माधिकारियों मे।
भारी भगदड़ मच गई सभी पड़ित-पुजारियों में
इतिहास बताता है उस दिन काशी की हार हुई।
हर एक दिशा में ऋषिराजा की जय-जयकार हुई।

स्वामी जी की जीत ने सारे काशी में हड़कंप ला दिया और चारों तरफ स्वामी जी की जय-जयकार होने लगी। स्वामी जी सभी धर्मो में फैले दुर्गुणों का विरोध करते थे चाहे व सनातन धर्म हो या इस्लाम है या इसाई धर्म हो। उनके समकालीन सुधारकों से अलग स्वामी जी का मत शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था अपितु आर्य समाज ने आर्यवर्त से साधारण जनमानस को भी अपनी और आकर्षित किया। सन् 1872 ई. मे स्वामी जी कलकत्ता गए वहाँ देवेंद्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन ने उनका बड़ा सत्कार किया। बाह्यों समाजियों से उनका विचार-विमर्श भी हुआ किन्तु इसाईयत से प्रभावित बाह्यो समाजी विद्वान पुर्नजन्म और वेद की प्रमाणिकता के विषय में स्वामी से एकमत नहीं हो सके। कलकत्ते में ही केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली की वे यदि संस्कृत छोड़कर आर्यभाषा में लिखना-बोलना आंरभ कर दे तो देश का असीम उपकार हो सकता है स्वामी जी संस्कृत का ही प्रयोग लिखने-बोलने के लिए करते थे और चुंकि गुजरात में निवास था तो गुजराती भाषा को समझते थे परंतु हिंदी का विशेष परिज्ञान न था। तभी से स्वामी जी के व्यारव्यानों की भाषा आर्य भाषा हिन्दी हो गयी और आर्य भाषी प्रान्तों में उन्हें अगणित अनुयायी मिलने लगे। कलकत्ता के बाद स्वामी जी मुबंई की तरफ चल पड़े और वहीं 10 अप्रैल, 1875 को स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की।

उसी वर्ष आर्य समाज का मुख्य ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश'' जिसकी रचना महर्षि दयानंद सरस्वती ने 1875 में हिंदी में की थी ग्रंथ की रचना का कार्य स्वामी जी ने उदयपुर में किया। संस्करण का प्रकाशन अजमेर में हुआ था। सत्यार्थ प्रकाश की रचना का प्रमुख उद्देश्य आर्य समाज के सिद्धांतों को फैलाना था। इसके साथ साथ इसमें इसाई इस्लाम एंव अन्य कई ग्रथों व मतो का भी खण्डन हैं उस समय हिंदू धर्म एवं सस्कृति को बदनाम करने का षडयन्त्र भी चल रहा था। इसी को ध्यान रखते हुए महर्षि ने इसका नाम सत्यार्थ प्रकाश रखा अर्थात सही अर्थ पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था शताब्दियों से प्रचलित रही है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित थी। जिसकी स्वामी दयानंद ने कटु आलोचना की। उनके अनुसार किसी को जन्म के आधार पर उच्च स्थान पर पहुँचने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। वे कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करते थे वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म को लेकर होती है जन्म से नहीं राजा का बेटा आवश्यक नहीं कि क्षत्रिय ही हो ये उसके बल पराक्रम, इन्द्रजित और कल्याणकारी गुण पर निर्भर हैं उन्होंने छुआछुत तथा समुन्द्र यात्र-निशेध के विरूद्ध आवाज बुलंद की तथा जाति प्रथा का खण्डन किया। वैदिक काल के सामाजिक ढाँचे के आधार पर आर्य समाज ने स्त्रियों के उत्थान के लिए प्रयत्न किए। वैदिक काल में स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था। अतः आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा की और विशेष ध्यान दिया और आधुनिकता की तरफ कदम बढ़ाए। समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय थी।

इसका कारण बहु-विवाह तथा बाल-विवाह प्रथा थी इसीलिए आर्य समाज ने बाल-विवाह, बहु-विवाह तथा पर्दा-प्रथा का घोर खण्डन किया उन्होंने विधवा-विवाह एवं स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने 16 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के विवाह बंद करवाए। आर्य समाज में स्त्रियों की समानता पर बल दिया। आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन को जन्म दिया। शुद्धि से अभिप्राय उस संस्कार से है जिसमें गैर-हिन्दूओं, अछूतों, दलित वर्गो, तथा इसाई व मुसलमान बनाये हुए हिन्दूओं को पुनः हिन्दू धर्म में स्वीकार कर लिया जाता था। उस समय धर्म परिवर्तन बड़े खुले रूप से किया जा रहा था। आर्य समाज ने इस प्रथा को खण्डित कर दिया एवं जो हिन्दू मुसलमान ओर ईसाई बन गए थे, उन्हें शुद्ध करके पुनः हिन्दु धर्म में वापस बुला लिया गया। बाल विवाह, स्त्रियों की समाज में दयनीय दशा, वर्ण व्यवस्था एवं धर्म परिवर्तन जैसी क्रियाओं का स्वामी दयानंद ने घोर विरोध किया और उन्होंने समाज के उत्थान के लिए इन प्रथाओं का अंत हुआ और कैसे उन्होंने समाज में परिवर्तन लाया ये भी कवि प्रदीप ने अपने शब्दो में बड़े ही सुन्दरता से बतलाया है :-

उन दिनों बोलती थी घर-घर में मर्दो की तूती,
हर पुरूष समझता था औरत को पैरों की जूती।
ऋषि ने जुल्मों से छुड़वाया अबला बेचारी को,
जगदम्बा के सिंहासन पर बैठा दिया नारी को।।

इसके बाद स्वामी जी ने समाज में फैली कुरीतियों एंव दुष्प्रयाओं को कैसे खत्म किया। वह भी कवि प्रदीप अपने शब्दों में बतलाते है स्वामी जी ने कैसे स्त्रियों का उत्थान किया :-

बदकिस्मत बेवाओं के भाग भी उन्होंने चमकाए,
उनके हित नाना नारी निकेतन आश्रय खुलवाए।
स्वामी जी देख सके ना विधवाओं की करूण व्यथा,
करवा दी शुरू तुरंत उन्होंने पुर्नर्विवाह प्रथा।।

धर्म-परिवर्तन को भी स्वामी जी ने कैसे तहस-नहस किया :

होता था धर्म परिवर्तन भारत में खुल्लम-खुल्ला,
जनता को नित्य भरमाते थे पादरी और मुल्ला।
स्वामी ने उन्हें जब कसकर मारा शुद्धि का चाँटा,
सरे प्रपंचियों की दुनिया में छा गया सन्नाटा।

उन्होने जाति प्रथा को कैसे ध्वस्त किया। आर्य समाज की नींव रखी और सत्यार्थ प्रकाश जैसे महाग्रंथ की रचना की :

भारत कें सब नगरों में बम्बई था भाग्यशाली,
ऋषि जी ने पहले आर्य समाज की नीव यही डाली।
फिर उसी वर्ष स्वामी से हमें सत्यार्थ प्रकाश मिला,
मन पंछी को उड़ने के लिए नूतन आकाश मिला।
सर्दियों से दूर खड़े थे जो अपने अछुत भाई,
ऋषि ने उनके सिर पर इज्जत की पगड़ी बंधवाई।
जे तंग आ चुके थे अपमानित जीवन जीने से,
उन सब दलितों को लगा लिया स्वामी ने सीने सम।

सामाजिक सुधार के कार्य के साथ-साथ आर्य समाज ने धार्मिक सुधार के कार्य भी जन के हित में किए। आर्य समाज ने मुर्तिपूजा, कर्मकांड, बलिप्रथा, स्वर्ग ओर नरक की कल्पना तथा भाग्य में विश्वास का विरोध किया। उन्होंने वेदों की श्रेष्ठता का दावा किया तथा वेदों के आधार पर ही हवन, यज्ञ, मंत्रोच्चारण, कर्म आदि पर बल दिया। उन्होंने अनेंकेश्रूरवाद और अवतारवाद का विरोध किया। वेदों की व्यारव्या उन्होंने इस प्रकार की के वेद वैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों को स्त्रोत माने जाते हैं। आर्य समाज का यह मानना था कि कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है जो हम वेदों से प्राप्त नहीं कर सकते।

अतः हम दूसरे धर्मो और पाश्चात्य सभ्यता की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। आर्य समाज ने ने केवल हिन्दू धर्म की रक्षा की बल्कि इसाई धर्म के ढोंग और पाखण्डों पर भी भीषण प्रकार किया तथा हिन्दु धर्म की रक्षा की बल्कि इसाई धर्म के ढोंग और पाखण्डों पर भी भीषण प्रकार किया तथा हिंदू धर्म की कुरीतियों का जनाजा निकाला। स्वामी दयानंद किसी से घृणा नहीं करते थें किंतु जहाँ ढोग, पाखंड, असत्य और आंडबर देखते तो उनकी धज्जियाँ उड़ाये बिना उनको चैन न आता। उन्होंने पाखण्ड को खत्म कर एक उज्ज्वल भारत की नींव डाली। स्वामी

जी ने आधुनिकता की और भारत को अग्रसर करने के लिए शिक्षा प्रणाली में भी बड़े बदलाव किए एवं कई गुरूकूलों की नीवं भी डाली। स्वामी दयानंद सरस्वती ने एंव उनके अनुयायियों ने शैक्षणिक एंव साहित्यिक क्षेत्र पर बल दिया। स्वामी दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज की स्थापना की तथा स्वामी दयानद ने 1901 में हरिद्वार के निकट कागंडी में गुरूकुल की स्थापना की। आर्य समाज का मुख्य्य उद्देश्य अज्ञानता के अंधकार में डूब चुके भारत को ज्ञान के उज्ज्वल पथ पर आगे बढाना और एक नए आधुनिक भारत की बुनियाद बनाना था उन्होंने प्राचीन आश्रय व्यवस्था को पुनः स्थापित किया। जहाँ विद्यार्थी ब्रहाचर्य व्रत का पालन करते हुए गुरू के आश्रय में विद्या ग्रहण कर सकें। उस समय हिन्दुओं में नारी शिक्षा के विरूद्ध वातावरण व्याप्त था तथा स्त्रियों को पढ़ाना समाज में अनुचित माना जाता है। और वेदों को पढ़ना स्त्रियों के लिए वर्जित था। स्त्रियों में कठोर पर्दा-प्रथा भी स्त्रियों की शिक्षा में बाधक थी इसलिए स्वामी जी ने पर्दा-प्रथा घोर विरोध किया एवं नारी शिक्षा को और बल प्रदान किया।

महर्षि दयानंद ने शिक्षा को बहुत अधिक महत्व दिया और उनका मानना था कि व्यक्ति, समाज, राज्य और समस्त विश्व की उन्नति और सुख समृद्धि तभी सभंव हैं जब स्त्री-पुरूष शिक्षित हों भारतीय राष्ट्रवाद के प्रचार में भी स्वामी जी ने अग्रणी भूमिका निभाई। पराधीन आर्यवर्त भारत में यह कहने का साहस संभवतः सर्वप्रथम स्वामी दयानंद सरस्वती ने ही की थी कि आर्यवर्त आर्यवर्तियों का है। वे अपने प्रवचनों में श्रोताओं को प्रायः राष्ट्रवाद का उपदेश देते और देश के लिए मर मिटने की भावना करते थे। भारतीय स्वंतत्रता संग्राम में सबसे महत्वपूर्ण शब्द 'स्वराज्य' की मशाल जलाने का श्रेय स्वामी दयानंद हो ही जाता है। इसके बाद बाल गंगाधर, तिलक ने आगे बढाते हुए 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है का नारा दिया। ऐसा माना जाता है स्वामी जी के विचारों ने 1857 के विद्रोह में प्रेरणा स्त्रोत कार्य किया। स्वामी दयानंद जी ने अपनी आखरी सांस 30 अक्टूबर 1883 को अजमेर में ली। वे जोधपुर में अपनी सभाएँ कर रहे थे। वहाँ के राजा जसवंत सिंह ने उन्हें आमंत्रण दिया था वह राजा बड़ा ही विलासी था और उसके राज में भ्रष्टाचार और दुष्टों का बोलबाला था। वह एक कनीज के प्रेम में अंधा हो गया था स्वामी को राजा के हालात पर बहुत ग्लानी होती थी।

एक दिन स्वामी जी को बहुत क्रोध आ गया और काफी दुःख भी हुआ जब उन्होंने राजा कों उस कनीज की पालकी को कंधा देते हुए देखा। उन्होंने राजा को समझाया के इस तरह के कार्य राजा को शोभा नहीं देते और वह शर्म में डूब गया और स्वामी जी के चरणों में गिर माँफी मॉगने लगा। उसने कनीज से सब संबंध तोड़ दिए। इससे वह कनीज आगबबूला हो गई और स्वामी जी के रसोईये को धन का लालच दे स्वामी जी के दूध में काँच का चूरा और जहर मिलवा दिया। स्वामी जी बड़े ही दयालु थे उन्होंने रसोईये को कुछ राशि दे वहॉ से जाने की आज्ञा दी क्योंकि उसने थोड़ी देर बाद ही स्वामी जी को आकर सारा सत्य बता दिया और अपना गुनाह कबूल कर लिया। इसके बाद स्वामी जी को अजमेर ले जाया गया। जहाँ उनकी हालत और बिगड़ती चली गई अंत में स्वामी जी को आभास हो गया था कि अब अंत समय आ चुका है। उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद करते हुए कहा ''प्रभु! तूने अच्छी लीला की। आपकी इच्छा पूर्ण हो'' और पंचतत्व में विलीन हो गए। कवि प्रदीप ने अपने शब्दों में कैसे पडयत्रं की और अंतिम समय की घटना को लिखा है।

षडयन्त्र रचा ऋषि के विरूद्ध कुलटा पिशाचिनी ने,
जहरीला जाल बिछाया उस विकराल साँपिनी ने।
वेश्या ने ऋषि के रसोइये पर दौलत बरसा दी,
पाकर सम्पदा अपार वो पापी बन गया अपराधी।
सेवक ने रात में दूध में गुपचुप संखिया मिला दिया,
फिर काँच का चुरा डाल ऋषि राज को पिला दिया।

वो ले ऋषि ने पी लिया दूध वो मधुर स्वाद वाला।

अब अंत समय की घटना का कवि ने बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रकट किया है :

कुछ ही दिन में ऋषि समझ गए अब अंतकाल आया,
वे बोले हे प्रभू तूने मेरे संग खूब खेल खेला,
तेरी इच्छा से मैं समेटता हूँ जीवन मेला।
बस एक यहि बिनति है मेरी है अंतर्यामी,
मेरे बच्चों को तू सँभालना जागपालक स्वामी।
जब अन्त घड़ी आई तो ऋषि ने ओह्म शब्द बोला,
फिर चुपके से धर दिया धरा पर नाशवान चोला।

इस तरह स्वामी जी ने अंतिम विदाई ली। स्वामी दयानंद सरस्वती आधुनिक भारत के एक महान चिंतक, समाज, सुधारक तथा आर्य समाज के संस्थापक के रूप में याद किए जाते है। उनका ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश आज भी प्रेरणादायक एंव प्रासंगिक हैं स्वामी दयानंद ने सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार एंव साहित्य एवं शैक्षणिक सुधार के संबंध में जो कार्य किए वे नए आधुनिक भारत के निर्माण में अपनी अहम भूमिका रखते है। उनका आडम्बरों व पाखण्ड के खिलाफ आंदोलन धर्म परिवर्तन बाल-विवाह प्रथा, सती-प्रथा व जातिप्रथा और न जाने समाज में फैली कितनी ही कुरीतियों के विरूद्ध आवाज बुलंद की नारी शिक्षा पर बल दिया एंव एक शिक्षित समाज की कल्पना की। वेदों के ज्ञान में निहित ज्ञान को ही सर्वोपरि एवं प्रमाणित माना। गुरू के महत्व को बताया और गुरूकुल पद्धत्ति में शिक्षा की शुरूआत की। दयानंद के अनुयायियों ने दयानन्द एंगलो वैदिक विद्यालयों व कॉलेजो की नीवं रखी। स्वामी दयानन्द सरस्वती इतिहास के पन्नों पे लिखा एक अमर व उत्कृष्ट व्यक्तित्व का नाम है जिनके अनगिनत कार्यो से हमारे समाज धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में असंख्य परिवर्तन हुए और जिन्होने एक नए युग के भारत आधुनिक भारत के निर्माण में महान योगदान दिया है। स्वामी जी एंव उनके विचारों ने नव भारत के निर्माण में जो भूमिका निभाई है उन्हें शब्दों में वर्णित करना असंभव है।

संदर्भ सूची :-

1. आचार्य वेदपाल 'प्रभुशरणाश्रित'- ''दयानन्द प्रकाश'- 1986 नई दिल्ली।
2. कवि प्रदीप ''ऋषि गाथा- स्वामी दयानंद सरस्वती''।
3. भारद्वाज, पं जगदीश चन्द्र ''वसु''- ''आर्य बनाम हिन्दू'', पानीपत, भगवान दास जी आर्य।
4. आर्या, सरोज- ''मानव निर्माण- प्रथम सोपान'' जयपुर (राजस्थान)- स्वामी सेवानन्द सरस्वती वैदिक धर्म प्रचार प्रसार न्यास, जयपुर।
5. भारतीय, डॉ0 भवानीलाल-''ऋषि दयांनद की खरी-खरी बातें'' नई दिल्ली विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द।
6. सरस्वती, महर्षि दयानंद- ''सत्यार्थ प्रकाश'' दिल्ली आर्श साहित्य प्रचार ट्रस्ट (पारां संस्करणः अगस्त 1993)
7. सिहाग, नरेश, महर्षि दयानन्द सरस्वती : एक परिचय, गीना प्रकाशन, भिवानी (हरियाणा) 2018
8. सिहाग, डॉ. नरेश, महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्य समाज का हिन्दी को योगदान,
   बोहल शोध मंजूषा विशेषांक, भिवानी (हरियाणा) 2020

www.bohalsm.blogspot.com **Bohal Shodh Manjusha** ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 157-159
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दिसोम दुलाड़ क़ाहिनी

–शावाना रहमान

शोधार्थी/असिस्टेंट प्रोफेसर, सिदो कानहो विरसा विश्वविद्यालय, पुरूलिया, पछिम वंगाल

दिसोम दुलाड़ क़ाहिनी इदी काते वाडाय लाहा वाडाय लाकती काना जे दिसोम दुलाड़ दो चेत् काना। आवो वोन वाडाया जे जांहाय से जाहान जिनिस जासती बोन कुसियाक्आ, गरजाक् आ, मेनमा मानमीवाक् मोने रे से मेद रे जाहानाक़् गे आकरर्षणवोक् आ ओना गे दुलाड़ दो। एनखान दिसोम दुलाड़ दो ओना बोन मेताक् आ ओका सिमा़ आड़े भितरी रे मानमी सुख आर शान्ती एम आकाद कोवाय जांहा दो मानमी आकोवाक् कामी दाराय ते ओना सुख को हापाटिञ जों काना।

सांवहेत रे क़ाहिनीकार दो आजाक् मोने अन्तर रेयाक् गाहिर काथा को दुक आर सुक तालातेय सदरा। मेनखान ओका कारतेय ओल सदर ला़गित ओना दो सा़रिनाक् (बास्तव) उयहा़राना (काल्पनिक) बानार गे होय दाड़ेयाक् आ। सानाम क़ाहिनीकार गे को हां सा़रियाक् आ जे मेत् रे जांहागे बुकडुक् आ मोने रे उयहार रे जांहागे ञेहोड़ ञेहोड़ोक् आ। अना सदर ला़गित आच दय आटुपाटुक आ। आवरी ओल सदर भोर आजाक् हासुताय बा़ हासुड़ोक् आ। ओना हासु ते हामाल खन साहाक् ला़गिद क़ाहनी ओल तेगे होयोक् ताया।

क़ाहिनीकार दो आयमा हड़ जाहां बा़को ञेल ञामा आर जाहां बा़को उयहा़र तेयोगा अनाते जत का़मी बागी गिडी काते अना कद पोंड गोडारे चाला़ दहया।

दिसोम दुलाड़ रेनाक् क़ाहिनी पुस्ताव साहित्य बाडाय से उरुम ला़गित तेदो बारेया जिनिस चेतान रे मोने दोहो लाकति काना। चेदाक् से आबो दाबोन ञेल से बाडाय तेयोक् आकादा जे दिसोम दुलाड़ हुल आर नागामिया हुल किन दो बानार गे अरासरा से बारावारी गेया। मेनखान नोवा किन मुद रेहँ भेनेगार दो मेनाक् गेया। मित काथाते मेन गानोक् आ जे नागाम दो बास्तव (सा़रिनाक्) जिनिस काना। नोवा दो काल्पनिक से बेनाव आक् दो बा़ काना। मेनखान दिसोम दुलाड़ हुल दो क़ाहिनी से काल्पनिक हँ काना। नोवा दो काहा़नीकार आजाक् मोनेर मोतो क़ाहिनी रेन हिरो से नायक ए बेनाव राकाप एया। ओना तेगे क़ाहिनी रेन नायक दो बास्तव रुप ए ञामा।

दिसोम दुलाड़ रेदो मानी मानमी मुदरे भेदाभेद बानुक् आ। अंडे दो सानाम गे मानमी सानाम गेको समान गेया। ओनातेगे दिसोम दुलाड़ क़ाहिनी दो उनाक् गे गा़हिरा। दिसोम दुलाड़ खातिर गे संतालाक हुल दो एहप लेना। गोटा भागलपुर, राजमहल, बिरभुम एलाकारे हुल सेंगेल ते आ़डिगान जमिदार, जातेदार, महाजन, बेपरिया़ ईंरेज कोवाक् फाँद रेहंको गज आकाना, अना सांवते तेइस हाजार लेका संताल हुलगा़रिया जिवी को आलाय केदा। नोवा हुल दो आकोवाक् हासा भाषा आईकाव, आरजाव धन-दुरिव, जिवी बाती आपड़ेयाक् उपरुम बाञचाव दहय रेनाक् हुल गे तांहे काना। नोवा दो आड़ी गरब रेनाक् काथा काना, संताल हुलगा़रिया को संताल को गिरा़वासीक् ला़गित एकेन संताल पारगाना मोतो दो बा़ को बेनाव होटो आकादा। ढेर कोम तेईस हाजार संताल हुलगा़रिया हुल सेंगेल रे जिवी आलाय काते धारती जाकात सांताल कोवाक् उपरुप को बेनाव होटो आकादा। सेंड़ा होटो आकाद बोनाको वोहोक् तुल काते तांहे। नोवा धारती रे दाड़े रेनाक् लाकती, आर अना जुमित दाड़े दो बेनाव लेना संताली रड़, सेरेञ लाकचार, आर धारम टेंहाट काते।

जांहा को आतेक् मितर्टा जा़तियाक् बिगी जा बेनाव राकावोक् आ। नागाम रेनाक् सा़रिनाक् जिनिस आते का़हनिकार दो दिसोम दुलाड़ हुल का़हिनी को गावान एदा। ओना काथा रेको मेन लेका ''दिसोम दो आयो समान'' आर दिसोम रेन मानमी दो हपन लेका। हपन को एंगात ओकालेका कुसी रासका को दोहोयेया। अनका गे एंगात हं कुसी सरकाय चाल आकोवा।

नोवा धाारति रे नोंकान मानमी बानुक् कोवा जे अकय दो आपनाराक् जानाम दिसोम बा ए दुलाड़ आक् आय। जांहाय मानमी से जांहा जानाम दिसोम रेगे तांहेएन, जानाम आयो आर जानाम दिसोम ला़गित हड़मो मोने जिवीरे काटिज रेहं दुलाड़ दो ताहेन गे ताया। संताली काटिज काहनिरे दिसोम दुलाड़ आते बेनाव आकान का़हनी को मुदरे मानतान शिवलाल मान्डी बेसरा आक् 'दिसोम दुलाड़' मानतान रुपनारायण टुडू सेमआक् 'दिसोम भक्ता', मानोतान बाबुलाल मुरमु आ़दिवासी आक् 'दिसोम भक्ता' ओल को उनी मानोतानाक् गे 'दान' ꠸तुमान काहिनी नोवा हं दिसोम दुलाड़ चेतान रे ओल आकाना। ओनकागे दिवेन्दु टुडू रासकावाक् 'दिसोम दुलाड़' का़हनी रेहं दिसोम दुलाड़ रेयाक् काथा झालकाव राकाप आकाना।

जानाम दिसोम तोया दारे लागिद दुलाड़ दो होड़ होपोन एर्ना खन को उदुक् ओगु आकादा। जांहा दिसोम रेन मानवा गे आकोवाक् दिसोम लागिदते गोरोज तांहेन गेया। आर ओना गोरोज दो आकोयाक् दिसोम रे ुरगालरे तांहेन ला़गिद तेगे सिरजावक् आं। आकोवाक् जा़त, धारम पारसी, हासा, लाय-लाकचार, आरिचाली आते आकोलेका गे वोंचाव साना कोवा। आकोवाक् नोवा को जिनिस जेवेद दोहोय लागिद गे आ़डी के जोतोना आर को दुलाड़ाक् आ। नोवा को आते गे कुसी रासकारे तांहेन साना कोवा। आदो मानमी कोदो आकोवाक् नोवा उइतिज्य को वा꠸चाव दोहेय ताकोवा। ओना हं जा़त लेकाते, धरम लेकाते मानमी कोवाक् वा꠸चाव ताहेन जियोन होरा सुक, सुक्, कूसी, रासका ओका लेका काते को इदिय ताकोया ओना् लेका काते को दोहोय ताकोया। ओका ओका कोदो आरहं वांको कोराव आ। आर चेद चेद को नावानाक् को कोराव लागिद आर चेद कोदो वा कोराव लाकती काना ओना को आते गे संस्कृति दो जियाड़ोक् काना। नोंका काते मिदर्टा दिसोम रेन होड़ आको मुदरे राष्ट्रीय चेतना तेयारोक् कान ताकोवा, ओना तेगे उन दो दिसोम दुलाड़ सिरजाव ओक् कान ताकोवा।

संताली सांवहेदरे ओल आनाक् काटिज काहिनी रेनाक् जानाम दो वांगला काटिज काहिनी खोन दो प꠸चास वोछोर तायनोम होय आकाना। काहिनी आड़ी लेकान साताम चेतान रे चारचाक् काना। एनखान दिसोम दुलाड़ सातामते संताली सांवहेद रेदो लेखा`मोक् लेकागे ओल आकाना। नोवा इदी काते ओनोलिया से काथनिकार कोदो जासती दो वांको लाड़चाड़ आकादा। मेनखान एकालगे वांको चारचाव आकादा। ओनाकाथा हं लाय दो मुसकित गेया। संताली सांवहेद रे सानाम साताम वा लाडचाड़ रेनाक् कारोन लेकाते लाय गानोक् आ - एटाक् ओलोक् पारसी संवहेद तुला़जखा दो संताली सांवहेद दो दोमे ढेर दिन रेनाक् दो वा काना।

दिसोम दुलाड़ चेतान ओलोक् आकान काटिज काहनी मानोतान वावुलाल मुरमु काहिनी तालाते`लोक् आ - दिसोम फुरगार माड़ं सिदु कानहु बयहा कोड़ा दिसोम लागिद जात धोरोम लागिद् मानमी चिरगाल आते दुक् लागिद तेकिन गालमाराव एदा। आदिवासी चेतान इंरेज कोवाक् नाहाचार सिदु दो वाय साहाव दाड़ेयाक काना। ओनोलिया आ़डी जोथात काहनी तेद द गावान आकादा। विर वायार होड़ दो जिवयी रेनाक् गोनों दो वाको उयहार आ। उनकुठेन दो जात धोरोम सांवता दिसोम गे मराआ। विलाती साहेव होपोन सालाक् लाड़हायरे जुवान जोद्या जिवी-किन आलाय केदा। नोवा काहनी रे ओनोलिया दो निछरा दिसोम दुलाड़ रेयाक् स्वार्थक रूप क एम आकादा़।

'मेड़हेद रेंदा' काहनी रेहं दिसोम दुलाड़ रेनाक् काथाय साव रकाव आकादाय। काहनिकार दो कान्त ꠸तुमान मित चरित 'मेड़हेद रेंदा' गेय वेनाव आकादेया, कान्त चाकरिय पांजा लेखान, आडी लोगोन गे`म केयाय, मेनखान चाकरी का़मी वाय पांजा लेदा। चाकरी वाय कोराव लेदा। उनियाक् दो दिसोम लागिद जा़त लागिद जिवी लोयेन ताया।

आज दो सिखनात होड़ होय काते मिटिं आकादाय, मिछिल आकादाय, ओरों आकादाय सांकोवा। रेंगेच तेतां मायाक् मायाक् ए दाड़ा आकादाय। मेनरवान तेहेन गापारेन कोड़ा - कुड़ी को नेवा काहनी तालाते वाडायोक् काना मेड़हेद रेदा दो दिसोम दुलाड़ाक् काना। जांहा तिनरे जुवान कोड़ा को दिसोम चेतान, जाती चेतान, धोरोम चेतान, पारसी चेतान, दाया दुलाड वां सिरजाव आको काना आर जाहाय जुयान दो निजेराक् स्वार्थ को नेला दिसोम लागिद वांको उयहार दाड़ेयाक् काना, ओनकान अक्त मेनगानोक आ चन्डीचरन किस्कु आक् नोवा काहिनी दिसोम टुलाड़ रेनाक् होर डाहार ए उदुक् दाड़े आकोवा।

नाहाक् जुगरे गाखुड़ काहनिकार लेकाते सारदा प्रसाद किस्कु आक्`तुम वाडाय`ामोक् काना। उनिवाक् काहनी कोरे नाना हुनार साताम चेतान साव राकाव आकाना। ओनकागे दिसोम दुलाड़ रेनाक्, काथा उनियाक्, काहनिरे ज्ञातकाक राकाव आकाना।''हाला''`ुतुमान काहनिरे वायसीवाक् दिसोम दुलाड़ आडी निखुत आर पुसटाव सांहिज ए सोदोर आकादाय। वारहेट थानारेन सिपाही गोरा पालटोन, वेवसिक मोहाजोन भेकतो आर खाजना आदाय जुगगी कोवाक्, अ-आउडी सियाजारी नाहाचारते विरसावाक मोने ओनतोर रे सेंगेल जुलुक् काना। दिसोमरेन खेरवाल होहोन को नुकुवाक् नाहाचार खोन दुगोक् लागिद ते संताली हुलरेय सेलेद लेना। संताल हुलरे नुइ वारसा दो सिदु कानहु गोड़ोय एम आकाद किना। मेनरवान सुनोराम लेकान सोयतान होड़ दो स्वार्थ इदी काते आपड़े होड़ चेतान वाइरी को सोहेद आकाद कोवा। नोवा खातिर दिसोम रेनाक् लोकसान हुय आकाना। नोवा काहिनीरे हुल रेनाक् काथा वारसा आक् चरित तालाते सोदोर आकाना।

आरह`ौलोक् आ शिवलल मारडी 'वेचारा' आक् काहिनीरे दिसोम दुलाड़, दुलाड़ खातिर मानमी सानामाक् कोराव दाड़ेवाक् आय। ओना दो दिसोम दुलाड़ काहनी तालाते मानोतान वेचारा काहनी रेय फुटेल राकाव आकादा। भारत रेयाक् साधिन रांवाक्, जानाम दिसोम - जानाम एगात, इंरेज नोको - लांग कोदे, नोवा रांगाव रांगाव हंको आजोम ते होड़मो मायाम शिररे दुलाड़ सेटेरेना। लुविन वायुयाक् गोरा सिपाही आतो आतो दाड़ा काते सानाम भारत आयो रेन होपोन को दाल तोलेद को तांहे, मेनरवान लुविन वावु दो आज आयो याक् वोतोर काथाते वाय वोतोर लेना उनी दो आक् सार साप काते साते साड़िम खन वारेया सिपाहिय हाना पुरिकेद किना। लुविन वाबुआक् कोड़ाम ओसारेना। ताला ल्ि दा ताहाव ताहाक ते सिपाही सेंदड़ाय मोहोडएना, नोवा काहिनी तालाते मेनगानोक् आ सानाम लेकान आनाट को`ल तायोम दुलाड़ खातिर गे धारती रेयाक् सानाम खन दामानाक जिनिस हं को आलाय दाड़ेयाक् आ। पासेच आवो दो वावोन वाडाया जे दुलाड़ लागिद दो जाहान निहिट उमेर से सोमोय दो वां जारुड़ा। विचकोम दुलाड़रे नंकान दाड़े मेनाकआ जोहा दो मानमी जुग जुग हाविच आकोआक् हातां रेको जोगाव-जियाड़ दोहो दाड़े याक् आ।

आयमा काहनी कारगे ं्लेल आकाना जे दिसोम दुलाड़िया से नायक दोको शहिद आकाना, आर अना तेगे ं्तुम दोको होर आकादा। नोंकानाक् काहनी कोगे जासती ं्तुम दो होय आकाना से नामडाक आकाना।

गोड़ो हाताव आकान पुथी को -

1. सुहृद कुमार भोमिक - संवतालि छोटो गलपेर भुमिका।
2. दमयन्ती बेसरा - सांवहेत भाला।
3. चन्डीचरण किस्कू - तेहें्ं गापा।
4. वाबुलाल मुरमु आदिवासी - दिसोम भक्ता।
5. सारद प्रसाद किस्कु - चांवरा भंवरा।
6. महादेव हंसदा - संताली काहिनी माला।

ramhembram127@gmail.com, M.no-9382200266

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 160-161

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी नाट्य साहित्य में कुसुम कुमार का योगदान

–शिल्पा.एस.एल

शोधछात्रा, यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम।

हिन्दी नाट्य साहित्य में महिला लेखन की जो सशक्त धारा प्रवाहित हो रही है उसमें कुसुम कुमार जी का लेखन अत्यन्त गहरा और प्रवाहमान है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला रचनाकारों में कुसुम कुमार उन महिला रचनाकारों में से है, जिन्होंने दर्जनों मौलिक व सशक्त रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य भण्डार को समृद्ध बनाया है। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ भी देखा या महसूस किया, उसे शब्द का रूप प्रदान कर यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया। उनके नाटकों का विषय क्षेत्र प्रेम, सेक्स, परिवार तथा दाम्पत्य जीवन से शुरू होकर शासन तंत्र की अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक तनाव, राजनेताओं की दुरंगी राजनीति तक व्याप्त है। कुसुम कुमार जी के आठ नाटक अब तक प्रकाशित हुए हैं। संवेदना और शिल्प की दृष्टि से ये नाटक महत्वपूर्ण है।

कुसुम कुमार जी का पहला नाटक 'ओम क्रांति क्रांति' है। प्रस्तुत नाटक में एक महिला कालेज को केन्द्र बनाकर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया गया है। डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा के अनुसार यह 'दिशाहीन शिक्षा और उससे उपजी मूल्य दृष्टिहीनता को कथ्य बनाकर लिखा गया नाटक है।'' प्रस्तुत नाटक में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की त्रुटियाँ, अध्यापकों के अल्पज्ञान, गुरू शिष्य सबंधों में होने वाले अन्याय आदि का चित्रण किया गया है। साथ ही साथ शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए शांति के बदले क्रांति की तरीका अपनाने का आह्वान भी देते हैं। सत्ता और सत्ताधारियों के विरुद्ध अकेली संघर्ष करनेवाली एक नारी का चित्रण 'सुनो शेफाली' में हुई है। हरिजन शेफाली, ब्राह्मण समाजसेवक के लड़के बकुल से सच्चा प्रेम करती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि बकुल और पिता उसके दलितत्व का लाभ उठाने के लिए ही उसके साथ शादी करना चाहती है, तब वह विरोध करती है। सत्ताधारियों के छल कपट और उसमें पिसती एक दलित युवती की करूण कहानी कुसुम कुमार जी ने मार्मिक रूप से चित्रित किया है।

नारी उद्धार की आड़ में हो रहे नारी शोषण और यौन शोषण की समस्या को लेकर लिखा गया मर्मस्पर्शी नाटक है– 'संस्कार को नमस्कार'। एक महिला आश्रम को केन्द्र बनाकर लिखे गये नाटक में संस्कारचन्द के माध्यम से राजनेताओं के घटिया और घिनौना रूप को अनावृत करता है। आजकल महिला आश्रम में भी नारी सुरक्षित नहीं है। दुखित, पीड़ित, नारियाँ जिन संस्थाओं को ज़िन्दगी का सहारा मानती है, वही संस्थाओं में वे पूरी तरह बेसहारा हो जाते हैं।

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' कुसुम कुमार जी का सशक्त नाटक है, जिसमें भ्रष्टाचार पर टिकी हुई व्यवस्था और पारिवारिक उलझनों में फँसे आम आदमी की व्यथा का चित्रण किया गया है। नाटक का नायक माधोसिंह नौकरी से सेवानिवृत्त होकर छः महीने होने पर भी उसे पेशन नहीं मिलता है। कार्यालय के अक्सर लोग ठीक तरह से कार्यवाही नहीं करते हैं। जब माधोसिंह का पेशन आता है, तब उनके गुज़रे चार महीने हो चुके थे। नाटक 'जहाँ आज की प्रशासन व्यवस्था पर एक तीखा व्यंग्य करता है वहाँ महानगर की स्वार्थपूर्ण संस्कृति, आम आदमी के प्रति लालफीताशाही की निष्क्रियता और संवेदनहीनता को भी सशक्त और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है।''

जिगरपुर की रामलीला की नेपथ्य कथा के बहाने कला के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को रहस्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करनेवाला सशक्त नाटक है 'रावणलीला'। नाटक में रावण बने करतारसिंह के माध्यम से कुसुम जी निम्न वर्ग की संकटपूर्ण आर्थिक स्थिति का मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। प्रस्तुत नाटक का तथ्य यह है कि हर व्यक्ति में राम भी मौजूद है और रावण भी। प्रत्येक व्यक्ति राम बनना ही चाहता है, लेकिन जीवन के यथार्थ उसे रावण बनाता है। 'लश्कर चौक' धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता का ज़हर फैलाने वाले समाज के ठेकेदारों का पर्दाफाश करनेवाला सशक्त नाटक है। नाटक में रामदास और उसके परिवार को किस प्रकार हिन्दु धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म स्वीकारना पड़ता है, इसका मार्मिक एवं हृदयकारी चित्रण कुसुम जी ने किया है।

डायरी शैली में लिखा गया नाटक है- 'पवन चतुर्वेदी की डायरी'। पवन के बिखरे सपने, टूटते रिश्ते, जीवन की असफलताएँ आदि को डायरी के पन्ने बया करते हैं। दीपा कुचेकर के शब्दों में 'पवन का परिवेश कुछ ऐसा है जिसमें वह जीता तो है, पर खुलकर सांस नहीं ले पाता। किसी को अपना दुःख तथा परेशानियाँ बता नहीं सकता। एक घुटन भरी ज़िंदगी वह जीता है, इसलिए वह मानसिक परेशानियाँ से ग्रस्त है।'' प्रस्तुत नाटक में इस सत्य को दर्शाया है कि नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को निरर्थक समझकर परिवार की घुटन से भागना चाहती है। किन्तु व्यक्ति परिवार समाज और देश की बहुमुखी प्रतिभा के लिए नयी और पुरानी पीढ़ी को समन्वयात्मक जीवन दर्शन को अपनाना चाहिए। राजा-रानी और उससे उत्पन्न आपातकालीन स्थिति को केन्द्र बनाकर लिखा गया नाटक है- 'प्रश्नकाल'। सामान्यतः राजा प्रजा के लिए होता है, किन्तु यहाँ प्रजा राजा के लिए होता है। रानी की शासन से घुटन भरी ज़िन्दगी जीनेवाले प्रजाओं के मार्मिक चित्रण इस नाटक में चित्रित है।

कुसुम कुमार जी नाट्य लेखन को बड़ी गंभीरता से लिया है। विषय वैविद्य उनके नाटकों की विशेषता है। 'ओम क्रांति क्रांति' में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर प्रहार किया तो 'सुनो शेफाली' में दलित शोषण पर। नारी शोषण की भूमिका में लिखा गया 'संस्कार को नमस्कार' और कार्यालयीन भ्रष्टाचार को प्रस्तुत करनेवाली 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' भी उल्लेखनीय है। कुसुम जी ने अपने नाटकों में नये-नये प्रयोग करने की कोशिश की है, जो उन्हें अन्य लेखिकाओं से अलग करती है। 'रावणलीला' में उन्होंने लोक नाट्य शैली का प्रयोग किया तो 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पत्रात्मक शैली का। जीवन की जटिल अनुभूतियाँ, नेताओं की भ्रष्ट प्रवृत्तियाँ, दलित एवं पिछड़े वर्ग का शोषण, साम्प्रदायिक दंगे, पारिवारिक जीवन की टकराहट आदि कई दृष्टियों से उनके नाटक महत्वपूर्ण है। उनके अधिकांश नाटक का मंचन भी हुआ है। इसी प्रकार कुसुम कुमार जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को अपनी सर्जनात्मक क्षमताओं से समृद्ध बना दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. हिन्दी महिला नाट्य लेखन के सामाजिक सरोकार - डॉ. मिनी जोर्ज, पृ.सं. 129
2. हिन्दी महिला नाटककार- डॉ. भगवान जाधव, पृ.सं. 70
3. हिन्दी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान - डॉ. दीपा कुचेकर।

दूरभाष 9567011979

ईमेल slshilpa426@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 162-171
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

छायावादी काव्यधारा में स्त्री चेतना

–बृजलाल अरिवार
प्रभारी प्राचार्य/सहा0 प्राध्यापक, शास. महाविद्यालय ढीमरखेड़ा जिला कटनी (म0प्र0) पिन नंबर 483332

सारांश :–

छायावादी काव्यधारा हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण काव्यधाराओं में से एक है। जिसके प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी वर्मा आदि चार प्रमुख कवि हैं। ये कवि प्राचीन परम्परावादी एवं रूढ़िवादी विचारधारा से निकलकर प्राचीन, पूर्व धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथों एवं हिन्दी साहित्य की पूर्व काव्यधाराओं की अपेक्षा स्त्री चिंतन की नई दृष्टि अपनाते हैं। और उसे प्रेयसी, पत्नी, मां, माता, बहन, सरस्वती, दुर्गा, शक्ति, स्वच्छन्द रमणी, आदि अनेक रूपों में चित्रि करके एकदम 21वीं सदी के समरूप स्त्री को नया ढ़ांचा प्रदान करके समाज एवं साहित्य में गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं। यही कारण हैं कि छायावादी काव्यधारा हो या कवि दोनों ही सामाजिक जीवन में स्त्री को जीवन जीने की नई दृष्टि प्रदान करते हैं। जिसके लिए हिन्दी की यह काव्यधारा साहित्य जगत में अविस्मरणीय हैं।

मुख्य शब्द :– सामाजिक चेतना, मानवीय चिंतन, स्त्री दृष्टि, छायावाद, हिन्दी साहित्य।

प्रस्तावना :–

स्त्री के संबंध में या समाज के संबंध में लिखना मानवीय संवेदना कही जा सकती है। और यह प्रक्रिया हमारे यहां प्राचीनकाल से चली आ रही है। इस प्रक्रिया में हर काल व समय में थोडा-बहुत अन्तर मिलता ही है, जिसे प्रकृति का नियम कहा जाता है अर्थात परिवर्तन होता है। और इसी काल और समय में हुए परिवर्तन को लेकर हिन्दी के विद्वानों ने हिन्दी साहित्य को प्राचीन या आदिकाल, माध्यकाल (पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल) एवं आधुनिक काल आदि भागों में विभाजित कर दिया। इसी प्रकार हिन्दी के आधुनिक काल को विभाजित किया गया। जिसमें अनेक काव्यधाराओं के नाम दिए गए उसी में से छायावादी काव्यधारा एक है जिसके प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी वर्मा आदि चार हिन्दी के बड़े कवि है।

इसी काव्यधारा के संबंध में डॉ. नामवर सिंह जी ने लिखा है ''छायावाद का आरम्भ सामान्यत: 1920 ई. के आसपास से माना जाता है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से पता चलता है कि 1920 तक छायावाद संज्ञा का प्रचलन हो चुका था।[(1)] छायावाद-पृ. 11 किन्तु यहा हमारे अधययन का केन्द्र या विषय 'छायावाद' नहीं है, परन्तु उसमें चित्रि नारी (स्त्री) दृष्टि है, किन्तु यहां पर उक्त विचार को देना मेरा सिर्फ इतना संकेत करना है कि हिन्दी में ''छायावाद'' काव्यधारा प्रवाहित हो रही थी। जिसके कवियों ने अपने भोगे हुए क्षणों के आधार पर स्त्री के संबंध में अनेक विचार दिए हैं जिनका विश्लेषण करना मानवीय चेतना की नई दृष्टि होगी, परन्तु छायावादी कवि प्रेम सौन्दर्य, राष्ट्रीय प्रेम और प्रकृति चित्रण के रूप में अधिाक जाने जाते है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त विषयों के अतिरिक्त इस काव्य धारा या कवियों में दूसरे विचारों का चित्रण नहीं मिलता। अत: उनमें सामाजिक जीवन के अनेक विचारों का दिग्दर्शन मिलता है। उन्ही में से एक है स्त्री, चितन या स्त्री चेतना है जिसको 21वीं सदी की स्त्री और तत्कालीन समय में दिए गए छायावादी कवियों के या छायावादी काव्यधारा में मिलने वाले स्त्री संबंधी विचारों के परिप्रेक्ष्य में देखने

का प्रयास करना मेरी समझ से 21वीं सदी के स्त्री समाज या सामाजिक जीवन की मांग हो सकती है जिसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य :–

जब किसी काव्यधारा या कवि के अन्दर कविता का जन्म होता है तो उसके केन्द्र में सामाजिक चेतना ही होती है चाहे वह किसी भी रूप में हो। और इसी सामाजिक एवं मानवीय चेतना के रूप में स्त्री को केन्द्र में रखकर 21 सदी के सन्दर्भ छायावादी कविता के स्त्री संबंधी विचारों को ही देखना मेरा प्रमुख और मुख्य उद्देश्य होगा। क्योंकि परिवर्तन समय की आवश्यकता है और इसी से उसके ढ़ाचा का स्वरूप बदल है जैसे प्रकृति में पेड़-पौधों वसंत के आगमन पर अपने-पुराने पत्तों को गिरा देते हैं और नए पत्ते उसमें उगने लगते हैं और यही वो संकेत समाज को मानना चाहिए कि समय के अनुसार अपने स्वरूप में बदलाव लाना चाहिए और यही छायावादी काव्यधारा में स्त्री के संबंध में क्या नया है? उसको खोजना ही यहाँ मेरा मुख्य उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन :–

यहाँ पर मैं विदेशी साहित्य के बारे में कुछ नहीं कह सकता, किन्तु प्राचीन भारतीय धार्मिक एवं अधार्मिक ग्रंथों तथा हिन्दी साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल तक जो स्त्री संबंधी चिंतन के विचार मिलते हैं, वे ठीक नहीं कहे जा सकते, भले ही भारतीय धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को देवी या पूज्य बताया है या फिर ये हमारी भारतीय समाज की धारणा भी कही या मानी जाती है। इसके बाद यदि हिन्दी साहित्य की बात करें तो बो यह है कि आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल की जो विचारधाराएं है वे भी स्त्री चिंतन के संबंध में ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसके बाद आधुनिक काल में परिस्थितियां बदली और भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग अर्थात आधुनिक काल के छायावादी युग के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती साहित्य में स्त्री की स्थिति की संकेत सुधार संबंधी मिलते है, किन्तु महिला आलोचनाकारों की संख्या शून्य ही पाते है, परन्तु इसके उपरांत स्वतंत्रता प्राप्ति बाद 21वीं सदी में कुछ स्त्री आलोचनाकारों ने इस दिशा में कार्य किया है जैसे प्रभा खेतान, अनामिका, मृणाल पाण्डेय, क्षमा शर्मा, नाखिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, गीता श्री, एवं सरला महेश्वरी आदि ऐसे ही स्त्री आलोचनाकार है। इनकी रचनाओं में स्त्री की दुख-पीड़ा एवं करूणा की अभिव्यक्ति मिलती हैं, किन्तु यहॉ पर हमारा अध्ययन करना उचित नहीं है फिर भी कुछ आलोचकों के साहित्य का अवलोकन किया गया है क्योंकि हमें छायावादी काव्यधारा में स्त्री चेतना के सन्दर्भ में अध्ययन भारतीय वर्तमान समाज की परिधि पर किया गया है जिसमें सामाजिक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

विश्लेषण :–

साहित्य में गद्य-पद्य की स्थिति के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ. रामचन्द्र तिवारी जी ने लिखा है ''साहित्य मानव चेतना की अभिव्यक्ति है।''(2) द्धहिन्दी का गद्य साहित्य- पृ. 3 अतः मनुष्य की चेतना का प्रतिफल है साहित्य। अतः साहित्य का समाज से और समाज का साहित्य से गहरा संबंध है। जैसे प्रकृति समय के अनुसार अपना रंग बदलती रहती है। उसी प्रकार मनुष्य या समाज परिवर्तित होता रहता है अर्थात समाज में परिवर्तन होगा और यही हम छायावादी काव्यधारा में पाते है चाहे उसे हम 21वीं सदी के आधार पर स्त्री का अध्ययन करें तो पाएगें की जो स्वतंत्रता 21वीं सदी की स्त्री चाहती है वही बात का पक्ष लेती है यह काव्यधारा। इस काव्यधारा के प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवीं वर्मा आदि कवियों ने तत्कालीन स्थिति को आधार मानकर सामाजिक परिस्थितियां का विश्लेषण किया जो आज भी उपयोगी है।

स्त्री चेतना का का उद्‌भव और विकास :–

यहाँ पर सबसे पहले स्त्रे शब्द के अर्थ के बारे में जानने की कोशिश करेंगे बैसे तो 'स्त्री' इस संसार में मानव जाति में दो प्रमुख जातियां पायी जाती है पहली पुरूष एवं दूसरी 'स्त्री'। इस में जो मानव जाति में 'स्त्री' जाति है

इसी से मानव सभ्यता का या मनुष्य जाति की सृष्टि हुई इसके बिना मानव समाज की कल्पना करना असंभव है। इस जगत में मानव समाज में स्त्री, माता, मां, पत्नी, बहन, आदि अनेक रूपों में मिल सकती है। इसके बाद दूसरा शब्द यहां से मुख्य रूप से 'चेतना' है। वैसे तो सामान्य रूप से चेतना शब्द का अर्थ किसी भी विषय पर सोचना, चिंतन करना, विचार करना आदि माना जाना चाहिए किन्तु डॉ. रामचन्द्र वर्मा जी ने चेतना शब्द के अर्थ दो तरह से बताए हैं वे लिखते है '' बुद्धि, बोध करने की वृत्ति या शक्ति, जागरूकता, चेतना। दूसरा-ध्यान देना, सावधान होना, होश में आना। ''[3] लो0बृ0प्रा0हि0को0 पृ0294।

यहॉ पर हम दो तरह के अर्थो में मात्र जागरूकता, ध्यान देना एवं होश में आना आदि शब्दों को ले सकते है। चूकि यहॉ पर हमारे अध्ययन के विषय से संबंधित इतने ही शब्दों के सटीक अर्थ में देखे जा सकते है। अतः हम कह सकते है कि 'स्त्री' के बारे में ध्यान देना, स्त्री के बारे जागरूकता होना, स्त्री के संबंध में होश में आना आदि हो सकता है। अर्थात स्त्री के बारे में कब से ध्यान दिया है, स्त्री के बारे में विद्वानों या सामाज के अन्तर्मन में जागरूकता कब से आई और समाज को 'स्त्री' के सुख-दुःख की होश कब आई। इसके संबंध में मेरा यह कहना है कि 'स्त्री' के बारे प्राचीन काल से ही बहुत लिखा गया है, परन्तु समाज में उसके प्रति जागरूकता नहीं आई थी, क्योंकि हमारे प्राचीन भारतीय धार्मिक-आधार्मिक ग्रंथों में किसी न किसी रूप में 'स्त्री' संबंधी चिंतनधारा की उत्पत्ति संबंधी संकेत मिल ही जाते हैं। इस संसार में स्त्री-पुरूष में भेद नहीं होना चाहिए और न करना चाहिए क्योंकि ईश्वर ने संसार के सभी जीवों की रचना की है और सभी जीवों में ईश्वर के अंश रहते है यथा श्रीमद्भगवतगीता के पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक 7 में श्री कृष्ण कहते है :-

''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःपष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृति स्थायी कर्षति।।''

अर्थातः- इस बद्ध जगत में सारे जीव मेरे शाश्वत अंश हैं। बद्धजीवन के कारण वे छहों इंन्द्रियों से घोर संघर्ष कर रहे हैं, जिनमें मन भी सम्मिलित है। [4] श्रीमद्भागवद्गीता यथारूप - पृ. 471।

इसी प्रकार वे श्रीमद्भागवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय के 15 श्लोक में लिखते हैं :

''सर्वस्य चाहं हदि सन्निविष्टो मत्त स्मृतिज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सवैरहमव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेद विदेव चाहम।।[5] श्रीमदभगवतगीता यथा. पृ. 478।

अर्थात :- मैं प्रत्येक जीव के हृद्रय में असीम हूॅ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान, तथा विस्मृति होती है। मैं ही वेदों के द्वारा जानने योग्य हूॅ। निस्संदेह मैं वेदान्त का संकलनकर्ता तथा समस्त वेदों का जानने वाला हूॅ उक्त दोनों श्लोक में इस संसार के जीवों के संदर्भ में विचार दिए गए हैं, किन्तु ऐसी कोई बात 'स्त्री' के संबंध में नहीं कही गई, परन्तु अनुमान लगाना चाहिए क्योंकि यहाँ पर उक्त श्लोकों में किसी एक जीव की चर्चा नहीं हुई यदि महाभारत की घटनाओं की चर्चा करें तो हमारे पास लिखने के लिए पेज ही कम पड़ जायेगें। महाभारत में स्त्रियों का शोषण सबसे अधिक हुआ है और यह सभी जानते है जिसे बताने की आवश्यकता नहीं है। महाभारत में सभी बुराईयों की जड़ स्त्री को माना गया है। यथा युधिष्ठिर से भीष्म स्त्रियों के बारे में जानकारी देते हुए कहते है युधिष्ठिर के पूछने पर भीम बताता है।

''स्त्रीणां हिमूल दोषणां लघुचिता हीता स्मृता।

अर्थात् :- स्त्रियां ही सारे दोषो की जड़ है। [6] अनुशासन पर्व -अ 38 हंस - पृ. 71

इतना ही नहीं स्त्री के समान कोई दूसरा पापी भी नहीं है यथा :

''न स्त्रीभ्य किंचिद्नयद वै पपीय।
स्तरमस्ति वैः,,

अर्थात :- स्त्रियों से बढकर पापिष्ठ दूसरा कोई नहीं है। (7) अनुशासन पर्व 29 हंस -पृ 71

वास्तव में महाभारत की द्रोपदी, रामायण की कैकई, मंथरा सीता एवं शूर्पणखा आदि स्त्री पात्र समाज की दृष्टि से बुराई की जड़ ही मानी जाती है तभी तो विश्वामित्र का लक्ष्मण को सुझाव मिलता है रामायण में विश्वामित्र लक्ष्मण से कहते है।

''नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्यानरोतम्
चातुर्वर्ण्य हितार्थ हि कर्तव्यों राजसुनना।।''

अर्थात :- चारों वर्ण के हित के लिए यदि स्त्री का वध भी करना पड़े तो वह उचित है। (8) हंस- पृ. 71

धार्मिक-अधार्मिक ऐसी ढेर सारी घटनाएं है हमारे प्राचीन भारतीय ग्रंथों में जिनका जिक्र करने में भी संकोच होता है। सुधा चौधारी के शब्दों में ''अपहरण, बलात्कार पर स्त्री गमन महाकाव्य कालीन समाज की अंगभूत स्थितियां है। भीष्म ने काशीराज की तीन कन्याओं का अपहरण करके दो का विवाह अपने भाईयों विचित्रवीर्य और चित्रानंद से अम्बिका और अम्बालिका से कर दिया। इसी प्रकार के दृष्टांत बलात्कार के संबंध में देखे जा सकते हैं। रावण ने रम्भा के साथ, दण्ड ने अरजा के साथ, इन्द्र ने अहिल्या के साथ बलात्कार किया (उत्तराखंड, पृष्ठ स 35 358359) और अर्जुन में श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अपहरण किया (9) हंस - 72

अत: ऐसी अनेक घटनाएं इन भारतीय धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथों में मिल जाएंगी। वही मनुस्मृति में तो स्त्री की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक वृद्धि पर प्रश्न चिन्ह ही लग जाता है। उसके गुरूकुल के संबंध में मनु जी अपनी स्मृति के द्वितीय अध्याय के 67 श्लोक में लिखते है-

''वैवाहिको विधि: स्त्रीणां संस्कारो वैदिक: स्मृत:।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोणग्निपरिक्रिया।।

अर्थात:- स्त्रियों का वैवाहिक संस्कार (विवाह विधि) ही है। स्त्रियों के लिए पति सेवा ही गुरूकुल का वास है और घर का काम धंधा ही नित्य का हवन होता है। (10) मनु- स्मृति भाषा- टीका - पृ. 60

अत: मनु स्मृति स्त्री की बौद्धिक क्षमता के विकास में पूर्णत: प्रश्न चिन्ह लगाती है। अर्थात स्त्री के बौद्धिक विकास पर पूर्णत: रोक लगाती है और यह आदेश देती है कि पति सेवा ही उसका गुरूकुल है। इतना ही नहीं मनुस्मृति एक प्रकार से स्त्री के शारीरिक विकास को भी रोकती है। यथा मनुस्मृति में मनु जी इसके नमाध्याय के 94 वे श्लोक में स्पष्ट कहते है-

''त्रिंश-र्षोश्हेत्कन्या हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
श्यष्टवर्षोण्ष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वर:।। (11) वही- पृ. 318

अर्थात :- तीस वर्ष के उम्र का वर बारह वर्ष के उम्र की सुन्दर कन्या से एवं चौबीस वर्ष उम्र का वर आठ वर्ष की कन्या के साथ में क्लेश पाता है। अत: उस तत्कालीन समय में इसके पूर्व भी विवाह कर दिए जाते थे। जिसका परिणाम देखेगें तो पाएंगे कि इस स्थिति में स्त्री का शारीरिक विकास रूक जाता है। मेरा कहना है कि इस मनुस्मृति में जो लिखा गया है वह वेदों से लिया गया है जिसके संबंध में मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक में स्पष्ट दिया है यह :-

''य: कश्चित्कस्यचिर्मो मनुना परिकीर्तित:।
सं सर्वोशभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स:। (12) वही' - पृष्ठ 51

अर्थात्- जो कुछ किसी धर्म को मनु जी ने जैसे कहा है वह सब वेद में कहा हुआ है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। अत: इस स्मृति में मनु जी ने जो कहा है वह वेदों से लिया गया है। यदि स्त्री किसी पुरूष के अधीन न रहकर अकेली रहती है, तो पतित मानी गई है ऐसा मनु कहते है। इसके संबंध में मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के 149वें श्लोक

में मनु लिखते है :-

''पित्रा भर्त्र सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः।
एषां हि विरेहण स्त्री गर्हो कुर्यादुभे कुले।।'' (13) वही- पृ. 181

अतः स्त्री की स्वतंत्रता पूर्णतः वर्जित है उसे अकेले या पुरूष से अलग रहना नहीं चाहिए। ''महाकाव्यों में महिला-स्वातत्र्य दर्शनः वर्तमान का अतीत'' संबंधी लेख में प्राचीन भारतीय धार्मिक महाकाव्यों में वर्णित संस्कृति को लेकर सुधा चौधरी जी महिलाओं के संबंध में लिखती है ''यह महिला-दृष्टि महिलाओं को शिक्षा, संम्पत्ति एवं सत्ता से वंचित कर देने के शास्त्रीय विधान गढती है जो न केवल उन्हे मानसिक रूप से पंगु करती है अपितु सामाजिक जीवन में हर तरह से निहत्या करती है। (14) हंस- जुलाई 2017 पृ0 73

जिसके संबंध में हम विस्तार से ऊपर चर्चा कर चुके है। इतना ही यदि हम हिंन्दी साहित्य की बात करें आदिकाल में भी स्त्रियों के विकास से संबंधित कोई ठीक विचार नहीं कहे जा सकते, किन्तु फिर भी बीसलदेव रासों के रचियता नरपति नाल्ह 'राजमती' को कुलीनता संस्कार से गढते हैं जिससे इस काव्य ग्रंथ में नारी गरिमा की प्रतिष्ठा होती है। क्योकि कम से कम नाल्ह जी स्त्रियों के दुःख-करूणा तथा उसकी वेदना की ओर दृष्टि जाती है और वे लिखते हैं।

''हंस गमणि मृगलोयनी नारि। सीस समारइ दिन गिणइ।
ततषिणि ऊभी छइ राजदुवारि। नाहनइ जोवइ चिहु दिसइ।
काइ सिरजी उलगाणारी वारि। जाई दिहाडउरे झूरता।''(15) बीसलदेव पृ. 93

इतना ही नहीं राजमती आगे कहती है यथा :

''अस्त्रीय जनम काइ दीधऊ महेस। अवर जनम थाइर घणा रे नरेस।
रानि न सिर जीय रोपड़ी। धणह न सिरजीय धउलीय गाइ।
वनषंड काली कोइली। हउ बइसतीअंबानइ चंपा की डाल।
भषती द्राष बीजारडी। इणि दुष झूरइ अबला जी बाल। (16) वही पृ. 179

अतः यहां पर नाल्ह जी ने राजमती के दुःख की ओर संकेत किया है। और राजमती नारी बनने की अपेक्षा कोई दूसरें जीव के रूप में अवतरित होना चाहती है जिससे वह इस संसार में बंधन मुक्त विचरण कर सके। आदिकाल में साहित्य की रचना तो अधिक हुई है जिसमें राजाओं की वीरता तथा धार्मिक आडम्बरों का अधिक चित्रण हुआ है। वही बात करें हिन्दी के भक्तिकाल की तो 'स्त्री' को कबीर ने मायामोह, जायसी ने दुनिया का धंधा, तुलसी ने ताडन क्रिया का अधिकारी कहां है यथा जायसी नागमती दुनिया का धंधा बताते है यथा-

''नागमती यह दुनिया धंधा,
बंधा सोइ न एहि चित बंधा।'' (17) जा. ग्रंथा भू0 - पृ. 24

तो वहीं तुलसीदास जी अपने 'रामचरितमानस' में 'स्त्री' के संबंध में सुन्दरकांड में लिखते है-

''ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।''(18) श्रीरामचरित्रमानस पृ.705

उक्त दोनो भक्त कवियों के जो भी विचार रहें हो किन्तु सामान्य एवं विप्र वर्ग तो इसके अर्थ सामान्य जो प्रचलित है वहीं लगाते है। यदि रीतिकाल की बात करें तो संपूर्ण रीतिकाल में 'स्त्री' को नायिका के अतिरिक्त कोई दूसरा विचार रीतिकालीन कवियों में नहीं आया और कविता को अलंकार के बिना कविता नहीं मानते यथा केशवदास लिखते है -

''जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई, कविता बनिता मित्त। (19) हि.स.काइ. पृ.141

यहां तक जो स्त्री चेतना के आरम्भिक अंशों को संक्षेप में देने का प्रयास किया गया है। उससे प्रतीत होता है कि चाहे भारतीय धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथो की चर्चा हो या हिन्दी में आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल हो सभी कही न कहीं प्रक्षिप्त रूप में 'स्त्री' चिंतन धारा प्रवाहित होती रही है चाहे वह जिस रूप में हो किन्तु मेरा कहना है कि प्राचीनकाल से लेकर रीतिकाल तक एवं प्राचीन भारतीय धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथो से लेकर हिन्दी में रीतिकाल तक नारी के प्रति जो विद्वानों ने चिंतन दृष्टि अपनाई है वह वास्तव में हेय दृष्टि ही कहीं जा सकती। जिसके कारण स्त्रियां आज भी उसका दंश भोग रही है।

छायावादी काव्यधारा में स्त्री चेतना और हिन्दी की अन्य काव्यधाराएं :-

छायावाद हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में जिस तृतीय काव्यधारा का जन्म हुआ या प्रकट हुई उसे ही छायावाद के नाम से जाता है। यह हिन्दी में जो काव्यधारा सन् 1920 ई.के आस-पास प्रवाहित होने लगी थी, उसे छायावाद के नाम से अभिभूत किया जाने लगा था। जिसका पूर्ववर्ती काव्यधाराओं तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं तत्कालीन समय की राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियां आदि ने छायावाद की पृष्ठ भूमि तैयार हुई। इस काव्यधारा के कवियों ने तत्कालीन समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों एवं भोगे हुए क्षणों को अपनी कविता की विषय वस्तु बनाई। इस काव्यधारा आदि शुरू-शुरू में भारी विरोध किया साहित्य के विद्वानों ने, किन्तु बाद में साहित्यिक काव्यधारा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जो बाद हिन्दी की प्रतिष्ठित काव्यधाराओं में से एक है। जो प्राचीन रूढियों, परम्पराओं एवं मान्यताओं के प्रति विद्रोह करना चाहती है, उसका नष्ट करना चाहती है। इसलिए यह हिन्दी के आधुनिक काल की छायावादी, काव्यधारा हिन्दी की पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्यधाराओं में से सबसे अलग है जिसकी परिधि का व्यास व्यापक मानवीय प्रगति के लिए 21वीं सदी से कहीं अधिक चेतना की दूर दृष्टि है। इस काव्यधारा में प्रसाद, पंत, निराला, एवं महादेवी वर्मा आदि हिन्दी के चार बड़े कवियों को सम्मिलित किया जाता है। जैसाकि हम पूर्व में दिखा चुके है कि प्राचीन धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथों में एवं हिंन्दी के आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल में किस-किस तरह की स्त्री के संबंध में मान्यताएं प्रचलित हैं। लोगों की अपनी-पनी विचार धाराएं है, वे स्वतंत्र है।

हम इस बात का पूर्व में जिक्र कर चुके है कि 'स्त्री' चिंतन के आरम्भिक बीज प्राचीन धार्मिक-अधार्मिक ग्रंथो मे मिल ही जाते है चाहे वे जिस रूप में हो। वही बात हम हिन्दी के आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल आदि की भी चर्चा की जा चुकी है। यदि हमें एक बार कुछ कहना पड़े तो मैं यह कहूँगां कि कुछ सन्दर्भ में भक्तिकाल के साहित्य को छोडकर आधुनिक काल के पूर्व ''स्त्री'' की समस्त परिस्थितियों की छोड़कर विद्वानों की दृष्टि ''स्त्री'' के भोग-विलास संबंधी विचार धारा सबसे अधिक रही है। किन्तु हिन्दी के आधुनिक काल अर्थात 1857ई. के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के बाद भारतीय समाज में परिवेश की नई किरण जागी। जो एक नई उमंग, नई सूझ-बूझ के साथ आगे बढने लगा था। और इसी सामाजिक बदलते परिवेश ने साहित्यकारों के मन झकझोर दिया और लगभग दो-तीन सौ वर्षो से जो साहित्यजन जीवन से अलग था वह भारतेन्दु युगीन काव्यधारा के माध्यम से पहली बार सामाजिक सुख-दुःख अर्थात् जनजीवन कैसे जुड़ा। जिसने परवर्ती हिन्दी की काव्यधाराओं की पृष्ठ भूमि तैयार की। भारतेन्दु युगीन काव्यधारा में 'स्त्री' की अपेक्षा सबसे भारतीय सामाजिक दुर्दशा की ओर दृष्टि गई। इससे पहले उनकी राष्ट्रीय देश प्रेम की भावना अधिक है।

भारतेन्दु युगीन कविता में 'स्त्री' चिंतन की दृष्टि से देखे तो पाएंगे कि उस तत्कालीन समय में विधवा स्त्री की दुर्दशा अधिक था जिसकी ओर सुधारात्मक दृष्टि है, जिसकी दुर्दशा देखकर भारतेन्दु युगीन काव्यधारा कहती है कि इस विलकती हुई विधवा की ओर भी कोई आवाज उठाए जिसके संबध में डॉ. नागेन्द्र जी लिखते है ''प्रताप नारायण ने विधवा विलपै धोनु कटै लागत हाय गोहार नहीं।'' [20] हि0सा0का0ई0न0 पृ0 454

मेरे विचार से इसके संबंध में अधिक दृष्टि तो नहीं रमी, परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने केवल 'स्त्री' शिक्षा या महिलाओं को शिक्षित करने के उद्देश्य से बालाबोधिनी नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। परन्तु छायावादी काव्यधारा की कविता की 'विधवा' स्त्रियों की प्रति पूज्य दृष्टि है जिसके संबंध में सन् 1919 ई0 की ''विधवा'' नामक कविता में निराला स्पष्ट लिखते है :-

''वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी
वह टूटे तरू की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है। [21] अपरा- पृ. 55-56

वहीं पूर्ववर्ती द्विवेदी युगीन कविता में स्त्री को कामिनी, अबला आदि नामों से विभूषित किया गया यथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की ''नारी'' दृष्टि के लिए कान्यकुब्ज एवं अबला विलाप नामक कविताएं पर्याप्त हैं वे लिखते हैं 'स्त्री' की करूणिक दशा पर -

''हे भगवान कहॉ सोये हो? बिनती सुनलीजे
कामिनियों पर करूणा करके कमले, जरा जागा दीजै।'' [22] आ.क.क.पु.पृ 19

द्विवेदी जी दूसरी कविता 'बाल विधवा विलाप' में 'बाल विधवा' की कारूणिक दशा का चित्रण करते हुए लिखते है :-

''उच्छिष्ट, रूक्ष, अरू, नीरस अन्न खैहौ,
चांडालिनीव मुख-बाहर मूंदि जै हौं।
गालिप्रदान निशिवासर नित्य पै हौं।
हा हन्त दु:मय जीवन यों वितैहों।। [23] वही पृ. 20

जहॉ पर द्विवेदी युगीन काव्यधारा में विधवा स्त्री की दु:ख-करूणा एवं वेदना का चित्रण मिलता है तो वहीं उसे मैथिलीशरण गुप्त जी पुत्र के समक्ष एक स्त्री को अपराधिनी घोषित करते हैं :

''यथा ''यह सच है तो अब लौट चलो घर भैया,
अपराधिनी मैं हू तात, तुम्हारी मैया।।'' [24] वही पृ0क्र0-35

ते दूसरी जगह गुप्त जी ''स्त्री'' को शपथ दिलाने तक की अधिकारी बना देते हैं यथा-

''यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊॅं,
तो पति-समान ही आज पुत्र भी खोऊॅं।'' [25] वही पृ0क्र0-35

किन्तु द्विवेदी युगीन काव्याधारा की भांति छायावादी काव्यधारा में ''स्त्री'' संबंधी चिंतन दृष्टि नहीं है जिसके संबंध में जयशंकर प्रसाद की 'कामायिनी' की निम्न पंक्तियॉ देख सकते हैं यथा-

''नारी तुम केवल श्रृद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में,
पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में। [26] वही पृ0क्र0-87

यहां छायावादी काव्याधारा की ''स्त्री'' केवल श्रृद्धा और विश्वास की मूर्ति ही नहीं है वह एक मार्ग दर्शिका पथप्रदर्शक एवं सुप्त जीवन में कुछ नया करने के लिये प्रेरित करने वाली शक्ति का संचरण करती है यथा प्रसाद की निम्न पंक्तियां देखने योग्य हैं-श्रद्धा मनु से कहती है-

''दु:ख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात,
एक परदा यह झीना नील छिपाये हो, जिसमें सुख गात। [27] वही पृ0क्र0-85

भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन काव्यधाराओं की अपेक्षा छायावादी काव्यधारा में ''स्त्री'' चिंतन की व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है-यथा-श्रद्धा उपदेश देती हुई मनु से कहती है-

''औरों को हॅसते देखा मनु, हॅसों और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो, सबको सुखी बनाओ।। (28) वही पृ0क0-87

जहां छायावादी काव्यधारा में 'स्त्री' के प्रति व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण देखने को मिलती है तो वहीं दूसरी ओर इसके परवर्ती एवं समकालीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के शिखर कवि रामधारी सिंह दिनकर जी 'स्त्री' को आत्मसंघर्ष के रूप में कुन्ती को अपराध बोधिनी तथा आत्मग्लानि के रूप में चित्रित करते हैं, यथा कुन्ती कर्ण से कहती हैं :-

''लज्जित होकर तू वृथा वत्स रोता है,
निर्घोष सत्य का कब कोमल होता है,,
'धिक्कार नही तो मैं क्या और सुनूंगी,
कॉटे बोए थे, कैसे, कुसुम चुनूंगी। (29) वही पृ0क0-144

वहीं छायावाद की परवर्ती प्रयोगवादी कविता में 'स्त्री' के प्रेम की चाह रखती है अर्थात प्रयोगवादी कविता किसी एक पर विश्वास न करके किसी दूसरे की चाह रखती है यथा स0ही0वा0 अज्ञेय की कन्हाई ने प्यार किया नामक कविता की इसके पंक्तियॉ देखे-

''कभी किसी प्रेमसी से, उसी को पा लिया होता,
तो दुबारा किसी को प्यार क्यों किया होता। (30) वही पृ0क0-155

परन्तु छायावादी कविता में इसके विपरीत स्थिति देखने को मिलती है ''स्त्री'' को यहां प्रयोगवादी कविता की दृष्टि से एक दम अलग चित्रित किया गया है, यथा निराला की निम्न पंक्तियां देखी जा सकती है-

''बम्हन का लडका, मैं उसको प्यार करता हूॅ,
जात की कहारिन वह मेरे घर की है पनहारिन वह
आती है होते तड़का, उसके पीछे मैं मरता हूॅ। (31) वही पृ0क0-133

अतः छायावादी कविता में संदेह की स्थिति उत्पन्न नहीं होती प्रयोगवादी कविता की भांति अर्थात स्त्री के संबंध में जो भी दृष्टिकोण छायावादी काव्यधारा में मिलता है वह सीधा, सरल एवं स्पष्ट मिलता है। यही कारण है कि हिन्दी की यह काव्यधारा अन्य काव्यधाराओं से अलग है क्योंकि इसमें भ्रम के लिये कोई स्थान नहीं है। समकालीन कविता या समकालीन काव्यधारा के कवियों का स्त्री के प्रति अराजकतावादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है जिसके संबंध में समकालीन काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि धूमिल के सन्दर्भ में डॉ. करूणाशंकर उपाध्याय जी टिप्पणी करते हुये लिखते हैं ''नारी के प्रति धूमिल का दृष्टिकोण अराजकतावादी तथा यौन-वर्जनाओं से युक्त विस्फोटक अश्लीलता का निदर्शन है। उनकी कविता में सेक्स संबंधी शब्दावली तथा गवंई भाषा में प्रचलित यौनागों के नामों का खुला प्रयोग है। नारी के प्रति यौनवर्जनाओं, कुंठाओं, अराजकता की हीन दृष्टि तथा भोगवादी गंवई सामन्ती सोच अपनी सम्पूर्ण विकृति के साथ उनकी कविता का स्थापत्य निर्मित करती है। (32) वही पृ0क0-224

उक्त परिस्थिति को यदि हम छायावादी काव्यधारा में देखना चाहे तो निराला की कविता में देख सकते हैं क्योंकि कुछ हिन्दी के विद्वानों ने ऑख मूॅदकर आध्यात्मक रंग के चश्में अधिक चढा रखे तभी तो उनको कम दिखाई देता है सन् 1916 ई. की प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' की यह निम्न पंक्तियां देख सकते हैं यथा निराला लिखते हैं-

''जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह।
नयक ने चूमे कपोल, चूक क्षमा मांगी नहीं,

निर्दय उस नायक ने, निपट निठुराई की
कि झोंको की झाडियों से, सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल। (33) अपरा-12

इस कविता में भी वही रंग देख सकते हैं जो समकालीन कविता तथा समाज दोनो चहता है। परन्तु फिर भी अश्लीलता की हद पार नहीं होती यही अंतर पाते हैं, छायावाद कविता एवं समकालीन कविता में। 21वीं सदी की स्त्री स्वतंत्र विचरण करने में विश्वास करती है जिसे छायावादी काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि निराला की 'प्रेयसी' नामक कविता इसकी पुष्टि योग्य देखी जा सकती है वे लिखते हैं-

''पहचाना मैनें, हाथ बढकर तुमने गहा।
चल दी मैं मुक्त, साथ। (34) अपरा-पृ0-128

प्रेयसी अपने प्रेम के साथ सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर चली जाती है जबकि दोनों अलग-धर्म, जाति, कुल के हैं यथा-

''दोनो हम भिन्न वर्ण, भिन्न-जाति-भिन्न रूप,
भिन्न-धर्मभाव, पर, केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे। (35) अपरा-पृ0-127

छायावादी काव्यधारा 'स्त्री' को हर संभव स्वतंत्र रखने चाहती है जैसाकि ऊपर दी गई निराला की पंक्तियॉ इसकी साक्ष्य है जो 21वीं सदी के भारतीय 'स्त्री'' समाज की सबसे बड़ी मांग कही जा सकती है इसके अतिरिक्त वह मान-सम्मान भी चाहती है जिसकी झलक हम प्रसाद की कामायनी में देख सकते हैं यथा मुन श्रृद्धा से लिये कहते है-

''तुम देवि, आह कितनी उदार,
वह मातृमूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले तुम महती।
सबका दु:ख अपने पर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती
तुम क्षमा निलय में हो रहती।। (36) आ.क.का.पु.पृ. 88

अत: छायावादी काव्यधारा में स्त्री संबंधी जो चेतना की दृष्टि पाते हैं। वह है बंधन मुक्त स्त्री एवं जीवन की प्रगति हेतु प्रेरित करने वाली शक्ति के रूप में 'स्त्री' को चित्रित किया गया है जो 21वीं सदी ही नहीं आगे आने वाले समय में भारतीय स्त्री समाज की सबसे बड़ी मांग होगी क्योंकि इससे स्त्री को स्वतंत्रता एवं मान-सम्मान दोनों प्रतिष्ठित होते है। यही वे कड़िया है जो साहित्यिक अन्य काव्यधाराओं से छायावादी काव्यधारा अलग कहीं जा सकती है और श्रेष्ठ भी है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. छायावाद/नायवर सिंह बीसवॉ संस्करण 2016/राकमल प्रकाशन प्रा.लि.दरियागंज नई दिल्ली/पृष्ट 11
2. हिन्दी का गद्य-साहित्य/डॉ.रामचन्द्र तिवारी/संशोधित तथा परिवर्द्धित एकादस संस्करण 2016ई./विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी/ पृष्ट 3
3. लोकभारतीय बृहत प्रमाणिक हिन्दी कोश/डॉ. रामचन्द्र वर्मा पुनर्मुद्रण 2005 एवं 2006/लोक भारतीय प्रकाशन - इलाहाबाद/पृष्ट 294

4. श्रीमद्भागवतगीता यथा रूप/श्रीमद् ए.सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभूपाद/36 वॉ मुद्रण -2006/भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट हरें कृष्णधाम जुहू मुंबई -400049/ पृष्ट 471
5. वहीं पृष्ट 478
6. हंस (जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक) संजय सहाय/जुलाई-2017/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. दरियागंज नई दिल्ली/ पृष्ट 71
7. वहीं पृष्ट 71
8. वहीं पृष्ट 71
9. वहीं पृष्ट 72
10. मनु-स्मृति भाषा ढीका/श्रीगणेशदत्त पाठक/2002 ई/रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन कचौडीगली वाराणसी/ पृष्ट 60
11. वहीं पृष्ट 318
12. वहीं पृष्ट 51
13. वहीं पृष्ट 181
14. हंस (जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक) संजय सहाय/जुलाई-2017/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि.दरियागंज नई दिल्ली/ पृष्ट 73
15. बीसलदेव रासो/................................/............................../अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली-6/पृ0 93
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास/डॉ.नगेन्द्र/तैतीसवॉ संस्करण-2007/मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन नोएड़ा/ पृ0 179
17. जायसी ग्रंथावली/आचार्य रामचन्द्र शुक्ल/संस्करण-2007 इण्डियन प्रेस प्रा0लिमिटेड इलाहाबाद/ पृ0भू0 24
18. श्री रामचरितमानस (सटीक मझला साईज) हनुमानप्रसाद पाट्टार/सौवॉ सुंनमुर्दण- सं.2061/गीता प्रेस गोरखपुर/ पृ0 705
19. हिन्दी साहित्य का इतिहास/आचार्य रामचन्द्र शुक्ल/पुनारावृत्ति-2013, 2014/इंडियन प्रेस प्रा0लि0इलाहाबाद, पृ0 141
20. हिन्दी साहित्य का इतिहास/डॉ.नगेन्द्र/तैतीसवॉ संस्करण-2007/मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन नोएड़ा/ पृ0 454
21. अपरा/सूर्यकांत त्रिपाठी निराला/दूसरा छात्र संस्करण-1993, 1994/राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली पृ0 55, 56
22. आधुनिक कविता का पुनर्पाठ/करूणाशंकर उपाध्याय/पहली आवृत्ति-2013/राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0 दरियागंज नई दिल्ली/पृष्ट 19
23. वहीं पृष्ट 20
24. वहीं पृष्ट 35
25. वहीं पृष्ट 35
26. वहीं पृष्ट 87
27. वहीं पृष्ट 85
28. वहीं पृष्ट 87
29. वहीं पृष्ट 144
30. वहीं पृष्ट 155
31. वहीं पृष्ट 133
32. वहीं पृष्ट 224
33. अपरा/सूर्यकांत त्रिपाठी निराला/दूसरा छात्र संस्करण-1993, 1994/राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली पृ0 12
34. वहीं पृ0 128
35. वहीं पृ0 127
36. आधुनिक कविता का पुनर्पाठ/करूणाशंकर उपाध्याय/पहली आवृत्ति-2013/राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0 दरियागंज नई दिल्ली/पृष्ट 88

मो0नं0 - 8435921302
ई मेल आईडी.- brijlal88.ahirwar@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 172-175
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Concept of World Government

-Dr. Roop Kishore Dwivedi
Assistant Professor, Department of Political Science, L S M Govt. P G College, Pithoragarh, Uttarakhand

Abstract :-

Various political philosophers from time to time have conceived the idea of a word state. For them it is the only solution for permanent peace. Western political philosophers such as Bentham, Rousseau, Immanuel Kant, give the idea for establishment of an international government. All these earlier writers and thinkers were interested in the concept of world peace. They did not concentrate on a world state or world government. They thought of an alliance of independent States to maintain world peace. TheyMore so ever they believed in the confideration of States. But the idea of a world government or world state is based on World Federation. It believes in the merging of local sovereigniies in a World Federal Government.

Keywords : Government, political, World, federal, sovereignty, Nation.

Introduction :-

The failure of League of Nations dissapointed World statesman, thinkers and the writers. The weakness of the league let them to think of a more stable an effective world organization. In their review only a world Federation could be a panacea for permanent world peace. The rising tide of Fascism under Hitler and Mussolini open their eyes impending word catastrophe. It was just natural for them to formulate scheme for World Federation. The idea of unitary World State or Super State was rejected outright. F. L. Schuman said "Nothing can be clearer in our time than that a single World Imperium to keep the peace is an impossibility". [1] In the future as in the past and effort to unite all mankind under one rule can reasonably be expected to encounter the same resistances that defeated the ambitions of Louis XVI, Napoleon I, Wilhelm II, Hitler and Hirohito." A number of writers, therefore, came in the field of Europe and in the U.S.A to advocate the idea of a world Federation.

One of the most prominent among such writers is C. K. Streit. He gave a new idea of international political thought. The movement of a world Federation received an impetus at the hands of writers in different lands. Societies and institutions have now been organized to propagate the new ideal. The movements of world government flourished in the closing years of War and immediately, thereafter, but the cold war weakened the enthusiasm of his supporters. At the same time the great powers were not in mood to reconcile their differences or to co-operate in the evolution of a world Federal government. It is very clear that Rival blocks and grouping were not a healthy sign for the establishment of World Federation. Despite all this world federalist have not relaxed their efforts and a large amount of literature on world government is now available.

Defence of world government :-

Various arguments have been advanced in favour of world Federation of world government. Dr. A. Appdorai supports the idea of a Federal Union on four grounds. First he regards the Federal Union is the only way to secure world peace. He writes "the case for federal union is a strong one: the insecurity men live under cannot be ended without abolishing war and ensuring world peace; and world peace can be ensured only by establishing world government". This view is supported by the facts of history positive and negative. Individuals have been able to

provide for their security through Government and States have been unable to provide for national security without a common supranational government.[2]

Secondly it is said that only a single effective acceptable authority can maintain world peace. A common, coercive authority to enforce common decisions in certain matters of common interest and through its court, to declare where justice lies in dispute between states; is the sine qua non for establishment of a Federal government. It has been further observed that as a result of industrial revolution countries have become interdependence in economic affairs. Therefore the sovereign States have become out of date.

Thirdly the invention of new war techniques and the destructive methods of Warfare specially nuclear weapons have rendered the prevention of War as a dire necessity. The only of alternative is the destruction of civilization. Lastly it is contented that if somehow a Federal government is established, it is bound to function efficiently. The successful Federal experiment in USA Switzerland is a example in this direction.

The federalist in general believe that war and Anarchy stand on the same footing that an association of sovereign States or a system of collective security can never and sure world peace. It can never move in a constructive channel. By its very nature it is bound to cause destruction. It can only bring about real peace. It is argued that all lessons of the past and most of the trends of the contemporary era lead us to the conclusion that peace will remain in the melting point unless we eliminate the present International anarchy. Only a world Federation can be entrusted with this task. It is asserted that modern technological development and improvements in and transportation have rendered possible the establishment of a World Government. It is now technically possible. Central word world authorities can now exercise its control over the globe with far greater ease than many national governments have been able to do in the past over their limited territories.[3] Once the word Statesman succeeded in evolving a common scheme for a world Federation its implementation is a foregone conclusion.

Some political scientist give their arguments in support of world Federation. They believe that such a federation will lead to the evolution of foreign officers. In this way the world Federation would render one of the most useful services that could possibly be performed for mankind. They believe that major world problems relating to armed forces, economic relations, international finance, colonies and dependencies, currency, movements of population, creation of world opinion as opposed to conflicting National opinions - can only be solved through the agency of world Federation. There are still other thinkers who advocate a Federal Union on the ground of fundamental unity of mankind futility of the division of humanity on grounds of race colour, geography, language,etc..

Some philosophers are also of the view that increasing economic interdependence of peoples of the world will promote the cause of world government. But it is not true, rather it will create its own complications it will not solve the problem. At the same time it is important to contrast this economic interdependence immediately with the wide disparity in the economic strength of various nations. The white race would not tolerate being out-voted by the Asians. A system of weighted voting in favour of nations with high literacy and abundance of raw material and industrial production would be immoral. It is also believed that sometimes that the fear of mutual annihilation as a result of atomic discoveries would hasten the process of global integration. But this argument also does not hold much weight.

Enlightened men all ove the world have some sense of obligation toward their fellowmen, beyond the limits of their Nation States. This common moral sense is of vast importance for the moral and religious life of mankind, but it does not have as much immediate political relevance as is somtime supposed. The fact is that the world community still lacks the vital elements of togetherness which the national communities boast. Neither law nor police power can supply this defect. As a result of the use of police power alone the amount required by universal state to maintain order in a community which did not have natural and organic connection would be so great as to amount to tyranny.[4]

Various political thinkers supported the idea of establishment of world government. They believed that sovereignty did not bring anything but anarchy and disaster. The only alternative before the world was to conquer the World or to consent the World. They believed the establishment by consent of a world order with the common authority to which all Nations owe a common allegiance.[5] They believe that the variety of national cultures dance of peoples in various stages political and social development should be no bar to the establishment of world government for if within the ambit office single state variety can exist and groups in different stages of development can find prospects of progress, it would be more so in world organization and limited functions and powers. The other believes that the World government could not be created by war and conquest but by agreement. Beginning for the world government first be made to establish world authority in fields of public health and food. Public welfare organization could create a sense of solidarity encompassing the entire human race.

Difficulties in establishment of World Government :

It cannot be ignored at any stage that the only solution to this atomic age is world federation and it is the only solution for world peace. If you do not evolve such agency for organizing the world peace consequence may be that it can ultimately lead to third world war. It may finally lead to the end to human civilization. World Federation for World government is thus desirable and it is also proper. It will surely meet the ends of Justice. It will help in removing poverty; it will maintain law and order at the same time it will look after the common interests of all people and off all regions.[6]

But the big question is whether a World Federation is a practicable preposition whether it is possible for Nations to surrender their sovereignty. The second question is whether it is possible for individuals to merge their local interest, beliefs and practices into the wider arena of world government?

So long as human nature remains what it is, world Federation is still a dream. It may be an ideal dream or a cherished ideal. It cannot become an actuality in the near future. The process of evolution is going on among individuals and institutions both at the local, national as well as international level. The United Nations can be termed as an advanced stage in the process of world government. Under its auspices 193 nations as of now are cooperating in diverse fields such as social economic and political.7 Similarly a future United Nations will surpass our expectations and will evolve closer relationship among different nations. Nations are willingly trying to accept limitations on their sovereignty.

To eliminate the idea of sovereignty overnight or in few decades is still impossible. A Federal Union must take into account not only the hopes but the experience of mankind. The necessary conditions hardly exist as yet. Lord Bryce has said that the performance of an institution depends not merely on the material interest that support it, but on its conformity with the sentiments of the men for whom it has been made. It is futile to contend that there is anywhere, even in democratic countries, anything more than a superficial and, therefore, deceptive sentiment in favour of super state. Nations are still unprepared to sacrifice their Sovereignty.

It is accepted on all hands that logic and experience favoured establishment of world government. The world government is the only way to maintain peace. But human beings are not guided solely and always by reason and selfish interests. There are certain things more valuable than peace in their eyes. These things are freedom, sovereignty, patriotism, national conceit and above that values for their freedom fighters. Nations as well as individuals in their normal behaviour cannot be expected to discard these values of their life. Only saints or philosophers can do so. F. L. Schuman observed" To build peace through Global government, calls for qualities of daring, imagination, and creative Endeavour which seems beyond the power of rulers and ruled in an age of disenchantment and hysteria". But Schuman also further modified his view and he believed that the alternative to world government is not necessarily world war, world disorder, or world annihilation. "If men are wise an enlightened enough then they can create a new balance of power and utilise new diplomacy who decide conflicts through

bargaining."[8]

There is another strong argument against the world Federation. It is believed that if nation states are virtuous enough to surrender their sovereignty, then very problem of world government will cease to exist. It becomes an an anachornism and a useless institution. It is quite possible that some of the the States may not willingly join the Federation. It can even lead to war and thus frustrate the very purpose for which a world government is established. As long as the values of world Federation are not embraced in the ideas of such elites it seems hardly possible that the institutional charges advocated will find acceptance on the part of the ruling groups.

Another very important problem in the world Federation is that the great powers are not going to surrender their dominating positions in world affairs. They want to cling to their colonies, strategic possessions, bases, armed forces and their own institutions. They will not be able to treat the small powers on equal footing. It is not possible to give all the states equal representation in world legislature. In the absence of guarantee of parity the small states will not lend their support to getting up of a world Republic. Also, there is no guarantee there will be no ideological conflicts. It is therefore very difficult to agree about the composition of a federal legislature. It may not be very easy to allocate the armed forces among the different units of Federation big and small. The distribution of powers between the centre and the units will also be a big problem. Differences of Geography politics religion traditions and institutions will retard the working of World Republic.[9] Another major problem would be of language. It is absolutely difficult to evolve a common language for the different regions of the world. The selection and appointment of world executive will baffle the world statesman. Similarly the composition of a world court will also be very difficult. The voting procedure in the federal legislature will cause controversy among member states. The great powers may demand a veto or weightage.

Conclusion :-

Finally it can be concluded that despite scientific advancement and revolutions in means of Communications, transport and travel the formation of a world Federation remain a distant dream. There remains a big question whether it would be possible in the near future to organize the international unity on a federal basis. There will always be divisions of the people on the basis of race, colour, religion , region and nationality. There will always be a rift between white and the coloured people, east and West, the capitalist and the communist and such things will lead to fear, suspicions, hatreds and the ever-present threat of nuclear war. In spite of all these the concept of world Federation and world citizenship must remain an ideal. The time is still not accurate for the establishment of world Federation. Present circumstances and situation does not allow such a step. The difficulty with any and all proposals for World government is that they would take us from where we are to where they think we should be. It will take us across the bridges that have not been built hypothetical City that does not exist. No political leadership would advocate the abandonment national Sovereignty unless he is absolutely convinced that some larger association would actually work. In search of vital matter nobody can take chances unless he is sure of the ground.

Refrences :

1. Schuman, Nelson L.; “Restored to Freedom: The road to deliverance from the Enemy’s Finest”, 2017, p. 23.
2. Collective Security, UNESCO, p. 14.
3. Schleicher, C.P.; “Introduction to International Relations”, Prentice-Hall, Inc., New York, p. 86.
4. Niebuhr, Reinhold, “Principles and Problems of International Politics”, New York Press, 1960, p. 137
5. Monbiot ,George; “The Age of Conset: A manifesto for New World Order”, Harper Perennial, 2013, p. 24
6. White, James; “Federation World”, Paperback First edition, 1988, p. 83.
7. www.un-ilibrary.org
8. Davide, Orsi, Avgustin J. R., Nurnus, Max, “Realism in Practice” (Ed.), E-international Relations, 2018, p.93
9. Schlichter, Kurt, “People’s Republic”, Kindle, 2016, p. 22

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 176-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी भाषा का स्थान–आज के बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में

-Dr.Veena. J

Assistant Proffessor (HOD), Department of Hindi, S.D. College, Alppuzha-Pin- 688003

बीसवीं शताब्दी संपूर्ण भारत के लिए संघर्ष तथा तद्‌भव प्रगति का समय था, तो इक्कीसवीं सदी उसकी अपेक्षा ज्यादा तीव्र चमत्कारपूर्ण उपलब्धियों वाली सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति के कारण संपूर्ण दुनिया एक 'वैश्विक गाँव' के रूप में बिल्कुल बदल गयी है। अब राष्ट्र के बीच की दूरियाँ मिट गयी है। समकालीन वैश्विक व्यवस्था व्यावसायिक, सामाजिक, आर्थिक तथा वाणिज्य के आधार पर पुन: संगठन की प्रक्रिया से गुज़र रही है। इसी कारण से विश्व के महत्वपूर्ण राष्ट्रों से कंधे से कंधे मिलाने में समर्थ बनता जा रहा है। वैश्विक भाषा के रूप में अंकन करने से पहले उसके सांस्कृतिक समन्वय की क्षमता को प्रस्तुत करना समीचीन है।

सांस्कृतिक समन्वय की भाषा के रूप में हिन्दी :–

सांस्कृतिक समन्वय का भाव हिंदी भाषा एवं साहित्य को विरासत में मिला है। हिंदी साहित्य के आदि काल के धार्मिक युग में देश में, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि विविध धर्म तथा उसके साहित्य प्रचलित थे। इन साहित्य कृतियों में दूसरों के प्रति सहिष्णुता का रुख दृष्टव्य है। हिंदी के आदि स्वरूप अपभंश (पुरानी हिंदी) में लिखित प्राय: सारी रचनाओं में यह समन्वयात्मक दृष्टि देखी जा सकती है। इस प्रकार बौद्ध, जैन, शैव धर्म में व्याप्त समन्वय की भावना बाद में भी परिलक्षित हो गयी है।

हिंदी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में (भक्तिकाल) निर्गुण-सगुण विवाद काफी समय तक चला। उस समय लोक नायक तुलसीदास अपनी समन्वय भावना के साथ हिंदी साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए। राम और कृष्ण, विष्णु और शिव तुलसी के लिए एक ही थे। वे स्वयं साकार उपासक होते हुए भी निष्कार उपासकों के विरोधी नहीं थे। तुलसीदास का सम्मान हिंदु मुसलमान दोनों करते थे। रहीम और तुलसी की मित्रता भी प्रसिद्ध है। दोनों एक दूसरे के प्रशंसक है। भारतीय और इस्लामी संस्कृति के समन्वयकर्ताओं में अमीर खुसरो तथा मल्लिक मुहम्मद जायसी का योगदान महत्वपूर्ण है। भारतीयता के प्रति उनका प्रेम अनन्य है अटूट है। हिंदी का श्रेष्ठ साहित्य मुसलमानों के शासनकाल में रचे गए। इस तरह भक्तिकाल की यह समन्वय दृष्टि आगे भी चलती रही। हिंदुत्व ने जिस समन्वयात्मकता का परिचय दिया था, बाद में देश में आये अन्य धर्मावलंबियों पर भी इस का प्रभाव पड़ा। प्रसाद जी के 'चंद्रगुप्त' नाटक के एक गीत में इस की गुंजाइश है :

''अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहूँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
बरसाती आँखों के बादल, बनने जहाँ भरे करुणा जल,
लहरें टकाराती अनंत की, पाकर जहाँ किनारा।।''

'कामायनी' में प्रसादजी ने वैचारिक समन्वय का भाव प्रस्तुत किया है। इसके अलावा तत्कालीन अन्य कवियों तथा गद्यकारों की रचनाओं में भी समन्वय एवं एकता की भावना दृष्टव्य है। मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान

आदि की रचनाएँ इसका उत्तम उदाहरण है।

आज़ादी की लड़ाई का समय समन्वय भाव का और एक मौका था। देश के लिए मर मिटने की लालसा केवल हिंदुओं ने नहीं मुसलमानों ने भी की थी। तत्कालीन साहित्यकारों ने भी अपनी तूलिका के ज़रिए समन्वय भावना को बल देने का प्रयत्न किया। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में इन्होंने ऐसा लिखा है :-

''मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।''

इसके साथ गद्य साहित्य में चतुरसेन शास्त्री का 'धर्मपुत्र' भीष्म साहनी का 'तमस' आदि उपन्यास भी उत्तम उदाहरण है। आज़ादी के बाद भी साहित्य में राष्ट्रीय समन्वय की भावना जारी रही और समन्वय की यह प्रक्रिया, विरोधी विचारों को भी आत्मसात करने में सक्षम होकर आज भी जारी है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा :-

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। हिंदी भाषा के बारे में यह बात सच है कि यह अपने प्रारंभिक रूप से बिल्कुल बदलकर पूर्णतया आगे बढ़ गयी है। विचारों के आदान-प्रदान एवं साहित्य से आगे बढ़कर आज संपूर्ण राष्ट्र की नियामक शक्ति बन गयी है। आज हिंदी केवल उत्तर भारत की मातृभाषा नहीं, यह राष्ट्रभाषा है, राजभाषा है, संपर्क भाषा है, साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी है। वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। यह कहना समीचीन है कि आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से निकलकर विश्व भाषा के 'हिंद महासागर' बनने की प्रक्रिया में है।

जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे है, उसे विश्वभाषा की संज्ञा दे रहे है तो विश्व भाषा के स्वरूप का अवलोकन करना आवश्यक है। विश्वभाषा वही है, जिसके बोलने, जानने तथा चाहनेवालों की संख्या अधिक हो, और वह विश्व के अनेक देशों में फैले हो। उसमें साहित्य सृजन की लंबी परंपरा हो, और उसका साहित्य विश्वस्तरीय हो। उसकी शब्द-संपत्ति विशाल हो, और उसकी शब्द एवं अर्थ संरचना तथा लिपि मानक तथा वैज्ञानिक हो। इसमें ज्ञान-विज्ञान की पूरी सामग्री सृजित एवं प्रकाशित हो। उसमें अंतर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के संवहन की क्षमता हो, तथा-वह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में इसका स्वरूप देश, काल, स्थान तथा परिस्थिति के अनुरूप निरंतर परिवर्तित हुए है। यहाँ एक कहावत याद आती है- 'कोस कोस पर बदले पानी, और चार कोस पर बानी'। हिंदी भाषा प्रयुक्त हो रही हो, तथा उसका साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद विश्व की दूसरी महत्वपूर्ण भाषाओं में पहूँच रहा हो। वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। उपर्युक्त सभी गुणों के अलावा और भी अनेक गुण विश्व भाषा के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

जब हम वैश्विक संदर्भ में हिंदी का निरीक्षण-परीक्षण करते है तो उपर्युक्त सभी गुण न्यूनाधिक मात्रा में पाते हैं। आज हिंदी विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्वपूर्ण राष्ट्रों में किसी-न किसी रूप में प्रस्तुत होती है। आज यह बोलनेवालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। कुछ अनुसंधानकर्ता एवं हिंदी भाषा प्रेमी हिंदी को चीनी के ऊपर प्रथम अंक पर दिखाने के लिए आज भी प्रयत्नशील है। हमें इस तथ्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि अंग्रेज़ी बोलनेवाले विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए है और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशानिक, व्यावस्तिक एवं वैचारिक गतिविधियों को चलानेवाली सशक्त भाषा बनी हुई है। हिंदी के साहित्य उच्चकोटि के होते हुए भी अंग्रेज़ी के स्तर तक अब भी नहीं पहुँच पाए हैं। अंग्रेज़ी की विश्वस्तरीयता तक पहुँच पाने के लिए हिंदी को सफलतापूर्वक इस का उन्नयन करना होगा, प्रयत्नशील रहना होगा।

हिंदी की विश्वस्तरीय साहित्य परंपरा :-

हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा तेरह सौ साल से अधिक पुरानी है। छठीं शताब्दी से लेकर इक्कीसवीं

शताब्दी तक यह अनवरत धारा के रूप में प्रवाहमान है। इसका पद्य साहित्य विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखनेवाला है। इसमें लिखित प्रायः सभी गद्य-पद्य साहित्य, विशेषतया उपन्यास, कहानी, समालोचना, निबंध आदि विश्वस्तरीय है। हिंदी की शब्द संपत्ति अत्यंत विशाल एवं व्यापक है। आज हिंदी में विश्व के महत्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है।

हिंदी भाषा की लिपि 'देवनागरी' है और यह बात सर्वविदित है कि देवनागरी लिपि वैज्ञानिक ही है। यह उच्चारण पर आधारित है। इस की संरचनाएँ एक हद तक सरल है, लेकिन कहीं कुछ जटिलता भी इसमें शामिल है। मानकीकरण एवं परिमार्जन की अवस्थाओं से गुज़रने के कारण पिछले कुछ वर्षों से इस की जटिलता कम हुई है। इसकी और एक विशेषता यह भी है कि उपसर्ग एवं प्रत्यय के आधार पर नये शब्द निर्माण की क्षमता भी है। इतना ही नहीं बदलती परिस्थितियों को आत्मसात करने की क्षमता भी हिंदी भाषा को है। क्योंकि हिंदी भाषा सरल, सुबोध तथा परिवर्तनशील है।

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का महत्व :-

स्वतंत्रता संग्राम के समय से लेकर हिंदी भाषा की प्रगति के हेतु नेताओं तथा तत्कालीन रचनाकारों ने अनेक उपयोगी कार्य किए है, साहित्य व भाषण के ज़रिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह कार्यक्रम ज़ारी है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग हो रहे हैं। हमारे नेताओं तथा साहित्यकारों ने समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसके महत्व को उद्घाटित करने का भरसक प्रयास किया है।

हमारे पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी नरसिंहराव ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में भाषण देकर हमारी राष्ट्र भाषा का महत्व बढ़ाया था। अब के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी भी विदेशों में भाषण करते वक्त हिन्दी भाषा के प्रति अपना आदर प्रकट कर रहे है। यह बात सर्वविदित है कि युनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में ही संपन्न होते हैं।

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन 1972 में 'मौरीश्यस' में संपन्न हुआ था। भारत के बाहर के हिंदी भाषा क्षेत्र है मौरीश्यस। इधर नब्बे प्रतिशत स्वयं अधिक लोग हिंदी बोलनेवाले हैं। यहाँ की भाषा भोजपुरी हिंदी है। 'मौरीश्यस' के अलावा 'त्रिनिदाद', 'लंदन', 'न्यूयोर्क' जैसे विश्व प्रसिद्ध स्थानों में भी विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हो चुके है। अभी आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की प्रशंसा का पात्र बन गया था। इस प्रकार विश्व समूह में हिंदी का महत्व शीघ्र ही बढ़ता जा रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि विश्व भाषा के रूप में हिंदी भाषा का भविष्य सुरक्षित है, सकारात्मक है।

हिंदी भाषा के वैश्विक संदर्भ को बढ़ावा देने में 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। यह संस्था प्रमुख विदेशी राज्यों में भारतीय विद्यापीठों की स्थापना करके हिंदी के विश्वस्तरीय महत्व को बढ़ाने की कोशिश में है। इन विश्व विद्यालयों में अध्ययन एवं शोध की सुविधा है, जिससे अनेक विदेशी अध्येता तथा विदेश में रहनेवाले अनेक भारतीय लाभ उठा रहे हैं। हिंदी भाषा को विश्वस्तरीय बनाने में प्रवासी भारतीयों की भूमिका भी कम नहीं है।

अमेरिका, यु.ए.ई. जैसे विख्यात विदेशी राज्यों में अनेक शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। इतना ही नहीं अनुसंधान कार्य भी ज़ारी है। इसके बावजूद इन देशों से हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही है। 'विज्ञान प्रकाश' अमेरिका में प्रकाशित वैज्ञानिक हिंदी पत्रिका है, जिससे अनेक हिंदी भाषी लाभ उठा सकते हैं। इन विदेश राज्यों के 'वेबसाइट' में भी अनेक हिंदी पत्रिकाएँ मिलते है, जिसके पाठकों की संख्या

प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

इस प्रकार साहित्य, विज्ञान, वाणिज्य, शासन, अर्थ आदि विभिन्न क्षेत्रों से गुजरकर हिंदी भाषा उत्तरोत्तर बढ़कर विश्वस्तरीय बन चुकी है। हम हर वर्ष जनवरी 10 को 'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी दिवस' के रूप में मना रहे हैं और विश्व हिंदी सम्मेलन भी ज़ारी है। अब भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थाई प्रतिनिधित्व मिलने के लिए प्रयत्नरत है। इसके मार्ग में हिंदी भाषा की विश्वस्तरीयता बहुत प्रयोजन कर रहे है। यदि निकट भविष्य में बहुध्रूवीय विश्व व्यवस्था निर्मित होगी, तथा 'संयुक्त राष्ट्र संघ' का लोकतांत्रिक ढंग से विस्तार करते हुए भारत को स्थाई प्रतिनिधित्व मिलेगा, तो शीघ्र ही हिन्दी विश्व संस्था की भाषा बन जाएगी।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भारत देश तथा उसकी राष्ट्र भाषा, राजभाषा तथा संपर्क भाषा हिंदी विकास के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुके हैं। जिस तरह हिन्दी राष्ट्र भाषा से आगे निकलकर, विश्वभाषा बनने की दिशा में उत्तरोत्तर अग्रसर है, उसी प्रकार भारत के 'विकसित देश' होने में भी अधिक समय नहीं लगेगी। इसके लिए विश्व भर के देश प्रेमी मिलकर प्रयत्न करें, और हिंदी तथा देश के विकास में अपना हाथ बटाएँ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 180-181

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी कहानियों में दलित चेतना

-Dr. Shemi John

Assistant Professor, St. Thomas College (Autonomous) THRISSUR

समकालीन कहानी समसामयिक संदर्भो से जुड़ी रहती है। समकालीन कहानी में सामाजिक जीवन की जीवंत और सार्थक अभिव्यक्ति मौजूद है। समकालीन कहानीकारों ने मानव जीवन के अंत: सत्यों को-उसके आभ्यंतर यथार्थ को अपनी कहानियों के माध्यम से उद्घाटित किया है। समाज में उपेक्षित विशाल जनसमूह की व्यथाओं और वेदनाओं की ओर समकालीन कहानीकारों ने विशेष ध्यान दिया है।

सदियों पहले सामाजिक अनुशासन के लिए स्थापित वर्णात्मक व्यवस्था दलितों के लिए एक अभिशाप है। वर्णात्मक व्यवस्था के कारण दलित लोग सामाजिक शोषण का शिकार हो रहा है। बेली एफ.एम के मतानुसार, 'जाति संस्तरण में अस्पृश्य निम्नस्थ है। सवर्ण जाति के व्यक्ति इनके हाथों से भोजन तथा जलग्रहण नहीं करते। कुछ मामलों में निश्चित दूरी के भीतर उनका प्रवेश वर्जित है और कहीं-कहीं पर उनका दर्शन भी, सामाजिक अपराध है।'[1] दलित वर्ग सदियों से अस्पृश्यता और उपेक्षा का दंश झेल रहे हैं। समकालीन कहानी में दलित समाज के उत्पीड़न, संघर्ष और प्रतिरोध का यथार्थ चित्रण हुआ है। अपनी परिस्थितियों से और परिस्थिति-जन्य अनुभवों से समकालीन कहानीकारों ने साहित्य सृजन के लिए विषय वस्तु ग्रहण की है। समाज में समता, स्वतंत्रता और विश्वबंधुत्व की स्थापना ही समकालीन कहानीकारों का मक्सद है।

दलित लोग अनादिकाल से दायरों और बेड़ियों में बंधे हैं और आज तक उनसे मुक्त होने के लिए जूझ रहे हैं। भगवानदास कहार की राय में 'वस्तुत: दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य है एक ऐसे वर्ग, समूह या जाति विशेष का व्यक्ति अथवा वह जाति जिसके धन, संपत्ति, माल, अधिकार एवं श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता, शक्ति, संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता है।'[2] समकालीन कहानियों में दलितों के जीवन, उनके शोषण व उत्पीड़न को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ गीता कुम्मा सी. की राय में, 'साहित्य विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं का सबल वाहक है। अत: साहित्य की सभी विधाओं में दलित विमर्श गंभीर चर्चा का विषय बन गया है। कहानी साहित्य में भी इसकी गंभीर चर्चा हो रही है। दलित जीवन की अंतरंग झाँकी, दलित मानसिकता आदि विभिन्न आयाम समकालीन कहानी साहित्य में उपलब्ध है।'[3]

समकालीन कहानियों में दलितों की जातीय समस्या, जन्मजात भेदभाव, छुआछूत, पेशगत जड़ता जैसी त्रासदी का मार्मिक रूप दृष्टव्य है। जाति के नाम पर दलितों से घृणा करने वाली समाज व्यवस्था आज भी शामिल है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के 'कूड़ाघर' शीर्षक कहानी में दलितों के प्रति सवर्णों द्वारा किये जा रहे जातीय घृणा या भेद-भाव दृष्टिगोचर है। प्रस्तुत कहानी में डॉक्टर साहब और उनके परिवार अजबसिंह के साथ घुल मिलकर रह रहे थे। पर जब अजबसिंह के जाति का पता चलता है तो कहते हैं, 'तुम लोगों ने मकान किराए पर लेते समय नहीं बताया था कि तुम लोग एस.सी हो।'(4) भारतीय समाज में शिक्षित होकर भी व्यक्ति जातिभेद की भावना से मुक्त नहीं है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के 'अन्धड', 'शवयात्रा', 'भय' आदि कहानिय़ों में सामाजिक घृणा और अमानवीय अपमान से मुक्ति

पाने के लिए छटपटाने वाले दलित लोगों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

मोहनलाल नैमिशराय की 'घायल शहर की एक बस्ती', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'शवयात्रा', सूरजपाल चौहान की 'बदबू', मुद्राराक्षस की 'पैशाचिक' आदि कहानियों में दलितों के उत्पीड़न के विविध आयाम देखने को मिलता है। उमा देवी के शब्दों मे, 'वास्तव में दलित कहानियाँ उस मनुष्य के यथार्थ की अभिव्यक्ति है जो मनुष्य होते हुए भी पशु से भी बदत्तर जीवन जीने के लिए मजबूर है।'[(5)] आधुनिक जमाने में अर्थाभाव से पीड़ित दलित लोगों की संख्या बढ रही है। नये जमाने में जीवन की सबसे बडी विडंबना है बढती महंगाई। आर्थिक विषमता तथा महंगाई के कारण दलित और निम्नवर्ग निरंतर पिस रहा है। जिन्दगी भर अभाव, भूख तथा कर्ज के शिकार बने दलितों का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौ', शशिप्रभा शास्त्री की 'खाली झोली भरे हाथ', विपिन बिहारी की 'मुक्का' आदि कहानियों में हुआ है। समकालीन कहानियों में दलितों की आर्थिक कठिनाई, उनके मानसिक शारीरिक शोषण, उच्चवर्ग की झूठी सहानुभूति, जाति प्रथा को लेकर होने वाली समस्याएँ आदि की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

समकालीन कहानियों का मूल उद्देश्य अपने समाज को शोषण एवं उत्पीड़न की उन परंपराओं से मुक्ति दिलाकर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बराबरी दिलाना है। समकालीन कहानीकारों के हर प्रयास का केन्द्र बिन्दु मानव एवं मानवीयता की भावना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अभिनव प्रसंगवश, अप्रैल-जून 2006, पृ-53
2. प्रज्ञा साहित्य- दलित विशेषांक, पृ-92
3. सं.सि.एन.वी. अश्णामलै, दक्षिण भारत (डॉ. गीता कुम्मा सी, दलित जीवन यथार्थ और समकालीन कहानी, पृ.28
4. सलाम-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 29
5. सं.डा. हेतु भारद्वाज, पंचशील शोध समीक्षा, उमा देवी, सामाजिक पिछड़ेपन की विभीषिका और समकालीन हिन्दी दलित कहानियाँ, पृ. 93

DR SHEMI JOHN

CHITTILAPPILLY HOUSE

MATTOM P.O. THRISSUR, KERALA

PIN-680602

PHONE-9745750777

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 182-185
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भोजपुरी नवजागरण और भिखारी ठाकुर का नाट्यकर्म

–नम्रता सिंह

शोधार्थी, दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय।

नवजागरण से तात्पर्य है भारत में आधुनिकता का प्रवेश, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकसित होना और किसी भी घटना के परिप्रेक्ष्य में तार्किक मीमांसा के लिए तैयार हो जाना अर्थात् तर्क-वितर्क की खुली परंपरा का प्रारंभ। भारतीय सन्दर्भ में इस नवजागरण काल का श्रेय हम अंग्रेजों को दे सकते हैं, क्योंकि प्राचीन भारत विदेशी आक्रान्ताओं और अपनी प्रजा की आपसी कलह-टुकड़ों तथा जातीय अहंकार के बीच यह निश्चित ही नहीं कर पा रहा था कि उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व है। नवजागरण का पहला अनुभव बंगाल ने किया, बंगाल से होती हुई आधुनिकता की धारा सारे देश में पहुंची।

हिंदुस्तान में नवजागरण का श्रेय मुख्यत: बंगालियों और भोजपुरी भाषियों को जाता है। अंग्रेजी राज के विरुद्ध फ़तेह शाही के संघर्ष से शुरू होकर के संग्राम से गुजरती हुई ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरोध की जो चेतना बलिया के स्वराज के रूप में सामने आती है वह भारतीय नवजागरण के निर्माण में भोजपुरी जनता के विशेष योगदान का स्वरुप स्पष्ट करती है। इसे देखते हुए ग्रियर्सन की यह बात ठीक लगती है कि भारतीय नवजागरण के निर्माण में बंगाल के लोगों ने जो काम कलम से किया वही भोजपुरी-भाषियों ने लाठी से किया।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जब भारत में साम्प्रदायिकता, धार्मिक बाह्याडंबर, शोषण भरे कर्मकाण्ड तथा जातीय विद्वेष के विरुद्ध नवजागरण आया था, तब साहित्यिक आन्दोलन का क्रांतिकारी नेतृत्व भोजपुरी-भाषी क्षेत्र में कबीर ने किया था और वह धारा अनवरुद्ध चलती रही। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन के नेतृत्व में धार्मिक कट्टरता, कर्मकाण्ड, वर्ण-व्यवस्था, अशिक्षा, पिछड़ापन, नारी-उत्पीड़न, सांस्कृतिक विघटन आदि बहुविध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र की विसंगतियों एवं रूढ़ियों के विरुद्ध नवजागरण का दौर प्रारंभ हुआ।

इस दौर ने भारत की अस्मिता को जगाने के साथ-साथ सामाजिक मुद्दों पर भी सोचना शुरू किया। बाल विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का प्रोत्साहन, कर्मकाण्डों की तार्किक समीक्षा, राष्ट्रीय स्वतंत्रा के लिए सांगठनिक ढाँचे का निर्माण, स्त्रियों के प्रति हो रहे अत्याचार के विरुद्ध वातावरण का निर्माण, वृद्धों एवं वरीय नागरिकों के लिए सुरक्षा की व्यवस्था, भारतीय संस्कृति की विभिन्न परम्पराओं का पुनरुद्धार जैसी सकारात्मक सोच को विकसित किया गया। इस नवजागरण से अशिक्षित, अविकसित और उपेक्षित भोजपुरी-भाषी-क्षेत्र भी देर-सबेर प्रभावित हुए बिना न रह सके।

उन दिनों हमारा ग्रामीण समाज कैसा था? पीढ़ी-दर-पीढ़ी अशिक्षा व्याप्त थी। शराब के नशे की लत ने परिवारों को तबाह कर रखा था। तिलक-दहेज़ जैसे सामाजिक कोढ़ ने लड़कियों को उपभोक्ता वस्तु का दर्जा दे रखा था और उनकी बिक्री धड़ल्ले से की जाने लगी थी। बाल-विवाह की प्रथा थी और विधवाओं पर अत्याचार हो रहे थे। ज़मींदारों का शोषण बदस्तूर जारी था और शोषित-उत्पीड़ित दलित वर्ग लुटने के लिए अभिशप्त था। गंगा स्नान, तीर्थों

और मेलों में जाने वाली अबलाओं की आबरू के साथ खिलवाड़ किया जाता था। गाँव के अभावग्रस्त निर्धन युवक घर-परिवार से विमुख होकर रोजी-रोटी की चिंता में महानगरों में छिछियाते फिरते थे और उनकी नव विवाहिताएं अपने नसीब पर नौ-नौ आंसू रोतीं 'बड़मुंहवा' लोगों की काली करतूतों और हवस का शिकार होती थी। बाढ़-सूखा की विभीषिका झेलता भोजपुरी समाज नारकीय जीवन जीने को विवश था।

भिखारी ठाकुर बंगाल के पुनर्जागरण आन्दोलन से प्रभावित होकर जब अपने गाँव कुतुबपुर लौटे तब से उन्हें अपनी अंतरात्मा में अलग किस्म की छटपटाहट महसूस हुई। तब उन्होंने अपने समाज की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्यायों को बड़ी सूक्ष्मता तथा संवेदनशीलता से देखा-समझा और अपने नाटकों के जरिए उसे प्रस्तुत भी किया। जावेद अख्तर खां भिखारी ठाकुर के बारे में कहते हैं 'दरअसल वे नवजागरण कालीन चेतना की खांटी बिहारी अभिव्यक्ति हैं'। वे अपने ग्रामीण परिवेश से बाहर दुनिया देखने निकले और नये विचारों के साथ शहर (कलकत्ता) से लौटे थे, लेकिन इन विचारों को उन्होंने अपने क्षेत्र की जनता के हिसाब से अनुकूलित किया। वैचारिक अंतर्वस्तु का एक स्रोत स्थानीय अनुभव था अर्थात् कृषक समाज के भौतिक जीवन के ठोस अनुभव से और दूसरा बंगाल के समाज सुधार आंदोलनों से प्रभावित मध्यवर्ती, सुधार चाहने वाले मध्यवर्ग की आकांक्षाओं से लिया गया था। चूँकि समाज सुधार आंदोलनों के केंद्र में नारी समस्या ही थी इसलिये भिखारी के नाटकों के केन्द्र में भी नारी है। एक सामंती समाज में हाशिये की जाति होकर नारी की समस्या को उठाना समय से आगे की क्रांतिकारिता थी इसीलिये वे उस समाज की आँखों में खटकते भी रहे।

उन्होंने अपनी नाट्य रचना 'बेटी वियोग' में समाज को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि मनुष्य चंद रूपयों की खातिर अपनी लाडली बेटी का बूढ़े से बेमेल विवाह कर उसे जीवन के नरक में ढकेल देता है। बेटी वियोग की सभी करूण क्रंदन करते हुए कहती है कि 'रूपिया गिनाई लिहल, पगहा धराई दिहल, चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबू जी' यानि धन के लिए बेटी को खूंटे पर बंधे पशु की तरह बेचा जा सकता है। भिखारी ठाकुर ने एक साथ दलित चिंतन, स्त्री विमर्श, नशापान की समस्या, पलायन जैसे आज की गंभीर समस्याओं पर पूर्व में ही अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति से आज की समस्याओं को उकेर दिया था। उनके साहित्यिक अवदानों की प्रासंगिकता बरकरार है।

नाट्य में तीन प्रमाण माने गए हैं - 'लोक, वेद तथा अध्यात्म। नाट्य प्रायः वेद और अध्यात्म में प्रतिष्ठित है। वेद तथा अध्यात्म से युक्त तथा शब्द और छंद से समन्वित नाट्य लोकसिद्ध तथा लोकात्म होता है। इस स्थावर-जंगम (जड़-चेतन) लोक की भाव और चेष्टाओं का निर्णय शास्त्र से संभव नहीं। लोक में विभिन्न प्रकार के स्वभाव वाले लोग होते हैं और स्वभाव में ही नाट्य प्रतिष्ठित है। इसलिए नाट्य-प्रयोक्ता को लोक प्रमाण को स्वीकार करना चाहिए।'[1] जब अभिनय-प्रदर्शन लोक या जन-साधारण की परंपरा के अनुसार हो, वह 'लोकधर्मी' कहलाता है। लोकधर्मी नाट्य-परंपरा में भिखारी ठाकुर का विशिष्ट स्थान है। भिखारी ठाकुर के नाटकों में लोकजीवन समग्रता से उभर कर आया है। लोकधर्मी नाटक की तमाम विशेषताएँ- लोकजीवन का सम्यक चित्रण, सादगी पूर्ण दृश्य-विधान, गीत संगीत की प्रधानता, लचीलापन (सब कुछ शास्त्रीय नियम सम्मत न होकर 'इम्प्रोवाइजेशन' की पूरी गुंजाइश), ये सब भिखारी ठाकुर के नाटकों में मिलते हैं।

अपने नाटकों में उन्होंने तत्कालीन स्थानीय समस्याओं का निरूपण अत्यंत कुशलता व कलात्मकता के साथ किया है, जिससे कि वे मार्मिकता के साथ साथ मनोरंजकता की नई ऊँचाईयाँ छूने में सफल रहे। जहाँ कहीं दर्शक-वर्ग उनके नाटकों में आये करुणापूर्ण दृश्यों के साथ तादात्म्य स्थापित कर अश्रुधारा प्रवाहित करने लगता वहीं बटोहिया या विदूषक तुरंत विषय परिवर्तन कर अपनी वाकपटुता से माहौल को हल्का बना देता। उनके नाटकों में दर्शक और कलाकारों के मध्य का सम्बन्ध कृत्रिम न होकर सहज-स्वाभाविक होता। दोनों के मध्य सीधा संवाद स्थापित होता था। साथ ही उनके नाटकों के पात्रों में विशिष्टीकरण का अभाव मिलता है। इनके हर पात्र बहुआयामी

होते हैं। क्षणभर पहले जो पात्र बटोहिया या बिदेसिया की भूमिका में नजर आता दूसरे ही क्षण अपनी भूमिका निर्वाह के पश्चात मंच पर ही वह खंजरी, ढोलक बजाने वालों के मध्य शामिल हो जाता। लोकमानस प्रायः धर्म के प्रति अनुरागी हुआ करता है। लोकजीवन के कलाकार होने के कारण भिखारी ठाकुर के नाटकों में राम, कृष्ण, गंगा आदि से सम्बंधित प्रसंग प्रमुख स्थान प्राप्त करते हैं। भिखारी ने प्रसिद्ध रामायण कथा व कृष्ण कथा के विराट विस्तार में से लोकजीवन में प्रचलित अंशों को चुनकर अपने गीति-नाट्यों को सजाया। परिछावन, गुरहत्थी, लावाछिंटाई, पाणिग्रहण आदि विधियों से लेकर बारातियों के आपसी नोक-झोंक का अत्यंत विस्तार से वर्णन उनके नाटकों में मिल जाता है। कृष्णलीला सम्बन्धी भिखारी के पदों की विशेषता उनका दो रूपों में प्रयोग है। प्रायः हर पद या गाना एक ओर पद या गाना है तो दूसरी ओर संवाद का सहज रूप। यह भिखारी के नाटकीय कौशल का प्रमाण है। भिखारी के नाटकों के सामाजिक संदर्भ व परिवेश के सफल चित्रण में उनके पात्रों के नाम-चयन भी अत्यंत उपयुक्त हैं, जैसे- गबर, उपकारी, उपदर, उजागर, प्यारी, दुलारी, मलेछु, गलीच, झांटुल, उद्वास, चटक, लोभा और उपातो इत्यादि। नामों की सूची में प्रायरू हर नाम नागरिकता व प्रबुद्धता से दूर ग्राम्यता या भदेसपन के निकट है।

लोकधर्मी नाट्य-परंपरा में गीत, संगीत व नृत्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भिखारी के नाटकों में पद्यात्मकता की प्रधानता इसी महत्ता का निर्वाह करती नजर आती है। लिखित पाठ पर बहुत अधिक जोर न होने के कारण पद्य रूप में संवाद सहज रूप में स्मरणीय व संप्रेषणीय होते हैं। भिखारी के नाटकों में पात्रों का कथोपकथन अधिकांश काव्य/पद्य रूप में ही मिलता है। संस्कृत नाट्य-परंपरा की तर्ज़ पर नाटकों की शुरुआत भी मंगलाचरण से होती है। वाद्य-यंत्र भी सारे के सारे प्रचलित होते थे, जैसे- ढोलक, झाल, हारमोनियम, कंसी, सारंगी, करताल, झाँझ और खँजरी इत्यादि।

भिखारी ठाकुर ने लोकनाटकों तथा सैकड़ों लोकभजन, कीर्त्तन, गीत, कविता की रचना की और नाट्य-मंडली का विधिवत् गठन किया। उस मंडली को हर तरह से प्रशिक्षित किया और गाँव-गाँव घूमकर भोजपुरी-क्षेत्र में नवजागरण के नए रूप को फैलाया। गरीब, उपेक्षित और अशिक्षित भोजपुरिया जनता ने भिखारी ठाकुर को अपार स्नेह और अटूट समर्थन दिया। इतना ही नहीं भोजपुरी क्षेत्र के छोटे-बड़े जमींदारों ने भिखारी ठाकुर को मान-सम्मान, संरक्षण तथा सहयोग भी प्रदान किया। भिखारी ठाकुर पर आरोप भी लगते हैं कि स्वाधीनता संग्राम के उथल-पुथल भरे दौर में बाबा भिखारी ठाकुर निरपेक्ष होकर नाचते रहे, लेकिन सच्चाई ये है कि भिखारी ठाकुर के नाच का आज़ादी से सघन रिश्ता था। अंग्रेजों से देशमुक्ति के कोलाहल के बीच उनका नाच आधी आबादी के मुक्ति संघर्ष की ज़मीन रच रहा था। भिखारी ठाकुर की आवाज़ अधरतिया की आवाज़ थी। अंधेरे में रोती-कलपती और छाती पर मुक्के मार-मार कर विलाप करती स्त्रियों और दलितों की आवाज़ थी।

भिखारी ठाकुर समय से आगे देख रहे थे। बिदेसिया तब भी था, आज भी है, बस रूप-रंग-ढंग बदला है। भिखारी ठाकुर इस नब्ज़ की धड़कन को जानते थे। बद्रीनारायण भिखारी ठाकुर को समस्त भारत के किसानों की दुर्दशा का चितेरा घोषित करते हुए लिखते हैं 'भिखारी ठाकुर में भारतीय गाँव-जीवन के आर्थिक अपवाय की दर्दनाक गाथा है। पुलिस दमन, सामाजिक विसंगतियाँ नए आर्थिक दबावों से सामाजिक संबंधों के टूटन की जितनी सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक समझ भिखारी ठाकुर के साहित्य में मिलती है, उतना तत्कालीन अभिजात स्वीकृत तथा शिक्षित रचनाकारों की रचनाओं में नहीं दिखाई पड़ता।[2] भारतीय रंग जगत में दूर-दूर तक ऐसा रंगकर्मी नज़र नहीं आता, जो अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद इतनी पैनी और सूक्ष्म संवेदनशील दृष्टि रखता है। भिखारी ठाकुर बीसवीं शताब्दी के लोक कलाकार थे, जिसने वैश्विक प्रसिद्धि और ऊँचाईयाँ पाई। सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ मशाल उठाने वाले इस कलाकार/रचनाकार पर अपने पारंपरिक मूल्यों की भी छाप थी। भिखारी ठाकुर का परिवेश भी मध्यकालीन समाज-व्यवस्था से बहुत अलग नहीं था। भिखारी ठाकुर जिस तरह के जातिगत संरचना से आते थे, वहाँ इस पूरी

दकियानूसी सिस्टम से सीधे-सीधे दो-दो हाथ करना भिखारी ठाकुर के लिए संभव नहीं था।

अतः इस व्यवस्था से टकराना या इस पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करना एक कूटनीतिक चतुराई वाले प्रयास की माँग करता था और भिखारी ठाकुर जैसा कलाकार इस खेल का महारथी था। उन्होंने बड़े ही चतुराई से इस व्यवस्था को उसके बनाये मंच से चुनौती दी।

नवजागरण के आने से सबसे ज्यादा प्रभावित दलित-पीड़ित वर्ग ही हुआ। और इसी पीड़ा को भिखारी ठाकुर ने अपने संगीत के जरिये दुनिया को दिखाया और भले ही वो कबीर की भांति जनता में फटकार नहीं लगाते पर समस्यायों के साथ-साथ अक्सर वो समाधान भी दिया करते थे। शायद इसीलिए उच्च कोटि के लोग भिखारी ठाकुर को नकार रहे थे। क्योंकि वो दलितों को ऊपर उठता हुआ नहीं देख सकते थे और न ही स्त्री को आज़ाद देखना चाहते थे। भिखारी ठाकुर जैसे अल्पशिक्षित लोककलाकार से जितना बन पड़ा उसने कर दिखाया। वे निश्चित रूप से भोजपुरी नवजागरण के संवाहक हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. त्रिपाठी, राधावल्लभ, संक्षिप्त नाट्यशास्त्रम, वाणी प्रकाशन, 2009, द्वितीय आवृत्ति, नई दिल्ली, पृ. 232-33
2. द्विवेदी, भगवती प्रसाद, भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेंदु, आशु प्रकाशन, 2000, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, पृ. संख्या 102

सहायक-ग्रंथ सूची :-

1. प्रसाद सिंह, नागेंद्र, भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, 1933, द्वितीय संस्करण, पटना।
2. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, 1957, प्रथम संस्करण, दिल्ली।
3. संजीव, सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006, प्रथम संस्करण, दिल्ली।
4. पांडेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, 2008, द्वितीय संस्करण, नयी दिल्ली।

मोबाइल नं. 8074761545

ईमेल namrta.lsr@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 186-189
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वेश्याओं द्वारा प्रयुक्त भाषा

(सलाम आखिरी, पिछले पन्ने की औरतें, पासवर्ड आदि उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में)

–डॉ. सलमी सेबास्टियन
सहायक प्रोफेसर, सेंट. जोसेफस कॉलेज (स्वायत्त), इरिन्जालाकुडा

वेश्या द्वारा वेश्यावृत्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त एवं उससे जुड़े शब्द साधारण भाषा से भिन्न होते हैं। वेश्याओं के उच्च, निम्न, कॉलगर्ल आदि की भाषाएँ अलग-अलग होती हैं। वेश्याओं की भाषा के सन्दर्भ में मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास 'सलाम आखिरी' की भूमिका में लिखी है- 'दूसरी समस्या जो सामने आई वह थी इनकी भाषा को लेकर, कलकत्ता में प्रायः सभी वेश्याएँ, कुछेक नेपाली एवं आगरा वालियों को छोड़कर बंगाली भाषी हैं। अब इसे बंगला भाषा की समृद्धि कहा जाए, इस भूमि की तासीर कहा जाए या कि यहाँ के बंग साहित्य की अन्तर्शक्ति का कमाल कि अशिक्षित होते हुए भी यहाँ के सब्जीवाले, घरों में काम करनेवाली बाई, श्रमिक वगैरह भी आम हिन्दी भाषा से उच्च स्तर की भाषा बोलते हैं। वेश्याओं के लिए भी यही सत्य था। मुझे इनकी उच्च बंगाली को निम्न हिन्दी में रूपांतरित करने की कवायद करनी पड़ी, पर अंततः मुझसे यह कवायद सधी नहीं। इसी बिन्दु पर एक बार राजकमल प्रकाशन के संपादकीय विभाग ने भी ऐतराज जताया कि वेश्याएँ इतनी अच्छी भाषा कैसे बोल सकती हैं?'

वेश्याओं द्वारा प्रयुक्त भाषा साधारण भाषा होने पर भी उसमें वेश्यावृत्ति से संबंधित शब्द और गालियाँ अधिक मिलती हैं। वेश्या की देह की भाषा के सम्बन्ध में लेखिका कहती है- 'सिर्फ शरीर, सिर्फ सेक्स। इतना भी कहाँ, एक धंधे की तरह, एक ट्रांजिक्शन, खरीदारी, औरत की देह की। आदिकाल से आब तक औरत की देह पुरुष की तुष्टि के लिए और अपनी जरूरतों के लिए, उसकी पूर्ति के दूसरे साधनों के अभाव में विकाऊ रही है, लेकिन अब सुविधाओं और साधनों के लिए यह बिकाऊ हो रही है। बड़ी जटिल सवाल। आज 21वीं सदी में, औरत वही खड़ी है। फिर से देह और बिकाऊ बनी।' मधु कांकरिया इसी बात को कुछ और तरीके से कह रही है- 'सभ्यता और विकास की यात्रा, क्लोनिंग और इन्टरनेट तक पहुँची है, पर औरत वहीं खड़ी है ...अपनी देह को लिए, देह की भाषा के साथ।' लेखिका कहती है- 'मुश्किल से इनकी भाषा में सत्तर-अस्सी शब्द होते हैं-अँगिया, खटिया, अँगना, जोबना, तकिया, बतिया, कंगना, चूमा, चिपटा, लिपटा जैसी सिर्फ देह की भाषा तक ही सीमित। अधिकांश का मस्तिष्क एक बच्चे के मस्तिष्क से अधिक विक्सित अवस्था में नहीं रहता है।' मधु जी के अनुसार इन वेश्याओं की पीड़ा और इनकी भाषा एक जैसी है- 'रमा, नलिनी, मीना, चम्पा, नूरी और कृष्णा...सभी की कहानियाँ एक जैसी, दुःख एक जैसे, भाषा एक जैसी।'

मधु कांकरिया के उपन्यास 'सलाम आखिरी' में 'छुकरी' शब्द वेश्यावृत्ति के लिए लायी गयी नाबालिग लड़की को प्रयुक्त है। 'जीभ निकालते उतरी ही दबी जुबान से बताने लगी चम्पा (छुकरी वेश्यावृत्ति के निमित्त लाई गई नाबालिग लडकी को चकले की भाषा में छुकरी कहा जाता है।) कभी अपनी इच्छा से आती नहीं हैं, चोरी से लाई जाती हैं और फिर किसी भी चकले में बेच दी जाती हैं। एक बार एक मोटी रकम में उसको खरीद लेने पर, फिर हर रोज की उसकी कमाई मालकिन की पूरी अपनी। मालकिन को बस उसे खाना-कपड़ा भर देना पड़ता है। छुकरियों

का रेट बहुत 'हाई' होता है। ग्राहकों में उनकी मांग भी सबसे ज्यादा होती है। अरे नोट छापती हैं वे... लेकिन उनको रखने में झमेला भी उतना ही है। कानून... पुलिस... कचहरी... कोर्ट... सभी का।' फुसफुसाते बताती है वह, छुकरी पालना गैर कानूनी है। इसलिए हमारी मालकिन नहीं रखती छुकरी को।'

उसी तरह वेश्या के लिए प्रयुक्त शब्द है 'लाइनवाली'। मधु जी कहती हैं- 'इन गलियों में इन वेश्याओं को खुलेआम वेश्या न कहकर ढकी हुई भाषा में 'लाइनवाली' या लाइन का काम करनेवाली कहा जाता है।' वेश्यावृत्ति में वेश्या शब्द को अपमान मूलक शब्द माना जाता है, इसलिए लाइनवाली शब्द का प्रयोग किया गया है- 'हाँ इन गलियों में वेश्या को सीधा अपमानित कर वेश्या नहीं कहा जाता है, शब्दों की आड़ में उन्हें लाइन में काम करनेवाली कहा जाता है।'

वेश्या के लिए प्रयुक्त एक शब्द है '"लाइंग वेश्या'। उपन्यास में गायत्री एक "लाइंग वेश्या है। 'गायत्री से उसका कोई पूर्व परिचय भी नहीं था क्योंकि वह न तो वहाँ की बाशिन्दा ही थी और न ही किसी चकले की मालकिन के अधीन थी। वह एक प्रकार की "लाइंग वेश्या थी। वह पास के ही गाँव मागराघट से सुबह ग्यारह-बारह बजे तक आती थी और शाम ढले ही चली जाती थी।''

फुलटाइम वेश्याएँ चकले और मालकिन से स्वतंत्र वेश्याएँ हैं, जिनके लिए कमरे भी होते हैं। 'प्रायः सभी फुलटाइम वेश्याएँ जो छुकरी और अधिया सिस्टम से होती हुई अब स्वतंत्र वेश्यावृत्ति में लगी हुई थीं।'

'खानदानी वेश्या' शब्द का अर्थ है जो वेश्या किसी मजबूरी या छल के कारण वेश्या नहीं बनी थी और जो अपनी पूर्विकों से विरासत में मिली हो, वह ही खानदानी वेश्या है। 'पिंकी न तो किसी मजबूरी में वेश्या बनी थी और न ही धोखे से उसे यहाँ बेचा गया था। वह खानदानी वेश्या थी। ...वेश्या जीवन के संस्कार उसे अपनी माँ से विरासत में मिले थे।'

शरद सिंह के उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' में बेड़िया जनजाति को चित्रित किया है। इस जनजाति की स्त्रियाँ यानी बेडिनियाँ राई नृत्य करती हैं, लेकिन इनका मुख्य जीवितोपार्जन वेश्यावृत्ति है। इस जनजाति में वेश्यावृत्ति करने वालों के नाम के साथ बेड़िनी शब्द भी प्रयुद्ध होते हैं- 'क्योंकि जहाँ तक मुझे पता था, बेडिनियाँ ही राई नृत्य करती हैं और वास्तव में राई नृत्य के बहाने वे वेश्यावृत्ति करती हैं, एक जरायमपेशा समुदाय की औरतों की तरह वेश्यावृत्ति।' श्यामा बेड़िनी, फुलवा बेड़िनी आदि इसके उदाहरण हैं।

उसी प्रकार वेश्याओं को जिस स्थान से लाया गया है, उस स्थान के नाम पर पुकारने की भी रीति है। दलालों इन्हें ग्राहकों के सामने ऐसे नामों से प्रस्तुत करते है। 'सर, सुनीए तो, अबकी-बहुत वैराइटी है। आगरावाली, नेपाली, बंगाली और सर मोहम्डन भी है, खालिस मुसल्ली...'।

वेश्यावृत्ति में 'चकलाघर' शब्द की प्रधानता है। चकला के संबंध में लेखिका कहती है- '(लालबत्ती इलाके में होने के कारण "लैट का भाड़ा लगभग तिगुना है, आम इलाकों से) यह "लैट एक चकला है, वर्तमान वेश्या मैडम मीना का, जहाँ से चलाती है वह अपना राजपाट।...यह इस गली का ख़ासा समृद्ध और इज्जतदार चकला है। इसका रेट भी अपेक्षाकृत अधिक है। मैडम मीना के अधीन छः वेश्याएँ हैं।'

'कुटनी' शब्द चकले के मालकिन को कहा जाता है। इसका अर्थ है 'जिसका अन्दर स्त्री की आत्मा नहीं होती', वे सिर्फ पैसों के लिए स्त्रियों को पुरुष से मिलाती हैं। 'अधिया सिस्टम' वेश्यावृत्ति में प्रयुक्त शब्द है। चकलाघरों में किसी मालकिन के अधीन वेश्यावृत्ति करनेवाली वेश्या को अपनी वेश्यावृत्ति से मिलनेवाली रकम का एक हिस्सा उस मालकिन को देना पड़ता है। लेखिका कहती है- 'मैडम मीना के अधीन छः वेश्याएं हैं, सभी अठारह से तीस के बीच की। इन्हें दूसरी स्वतन्त्र वेश्याओं की तरह सड़क पर ग्राहकों की प्रतीक्षा में खड़े नहीं रहना पड़ता है। इनके लिए ग्राहक जुटाना मीना का काम है। लड़कियों की तरफ से वही बात भी करती है ग्राहकों से, पूरे 'कैटलॉग' के साथ।

इस व्यवस्था को इन लालबत्ती इलाकों की भाषा में अधिया सिस्टम कहा जाता है, यानी आधा-आधा, फिफ्टी-फिफ्टी।'

'डाइरेक्ट एक्शन', 'टेक आफ' और 'मंगलाचरण' आदि के संबंध भी वेश्यावृत्ति से जुडे हैं। 'यदि ग्राहक एकदम नवागन्तुक नहीं है एवं इन गलियों का अनुभव सिद्ध विजिटर है और यदि वह शॉर्ट रेट पर आया है तो कमरे में घुसते ही वह फटाफट प्रेम प्रकरण के 'डाइरेक्ट ऐक्शन' पर आ जाता है। और यदि वह लान्ग रेट पर है तो 'डाइरेक्ट ऐक्शन' से पूर्व कुछ मंगलाचरण कुछ नाटकीय भावुकता का 'छौंक'...फिर 'टेक ऑफ' उतनी बार जितनी संख्या बाहर तय हुई थी।'

वेश्यावृत्ति में रेट का भी विभाजन है। 'शोर्ट रेट' और 'लॉन्ग रेट' यह दोनों शब्द वेश्या की देह के लिए प्रयुक्त होते हैं। लेखिका व्यक्त करती है-

'रेट भी यहाँ कई तरह के।
शॉर्ट रेट। लॉग रेट।

शॉर्ट रेट यानी पाँच-सात मिनट से पन्द्रह-बीस मिनट तक का समय। लॉग रेट यानी दो-तीन घंटे से लेकर पूरी रात तक का अंतराल।

लालबत्ती इलाके की हैसियत, वेश्या के कमरे का स्तर, उम्र, देहयष्टि एवं देह के जलवे के अनुसार शॉर्ट रेट किसी भी वेश्या की बीस रुपयों से लेकर अस्सी-नब्बे, सौ-सवा सौ तक हो सकती है। लॉग रेट सौ रुपयों से लेकर पाँच सौ या हज़ार तक भी होता है। समृद्ध इलाकों की दोनों ही रेट इन दरों से ऊँची होती है।'

कमल कुमार के उपन्यास 'पासवर्ड' में यौन पर्यटन के सम्बन्ध में भी लिखा गया है। वहाँ के एक बर्मा के लड़की ने नायिका से कहते है- 'हाँ, यहाँ एक तरह का सेक्स प्रजातंत्र है, जैसा आपके यहाँ राजनीतिक प्रजातंत्र है।' यहाँ लेखिका ने 'सेक्स प्रजातंत्र' शब्द का प्रयोग किया क्योंकि थाईलैंड जैसे देशों में यौन पर्यटन ने अधिक आर्थिक स्थिति पाई है। 'मसाज हाउस' वेश्यावृत्ति के तौर पर प्रयुक्त शब्द है। थाईलैंड और बैंकाक जैसे देशों सेक्स-मसाज के लिए प्रसिद्ध है। समकालीन हिन्दी महिला उपन्यासकारों ने वेश्याओं के जगत और उनके वेदनाओं और उनकी भाषा को उकेरने का प्रयास किया हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची :-

1. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
2. शरत सिंह- पिछले पन्ने की औरतें- सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
3. कमल कुमार पासवर्ड- सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
4. सरला महेश्वरी - नारी प्रश्न- राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2007
5. अरविंद जैन- औरत होने की सज़ा- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
6. ओमप्रकाश शर्मा - समकालीन महिला लेखन- पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002
7. जगदीश्वर चतुर्वेदी- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श- अनामिका प्रकाशन, 2018
8. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- आत्मकथ्य से।
9. कमल कुमार- पासवर्ड- पृ. 20
10. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 17
11. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 134
12. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 41
13. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 29-30

14. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 18
15. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 58
16. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 66
17. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 99
18. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी-पृ. 101
19. शरद सिंह- पिछले पन्ने की औरतें- पृ. 15
20. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 14
21. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 20-21
22. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 21
23. मधु कांकरिय- सलाम आखिरी- पृ. 17
24. मधु कांकरिया- सलाम आखिरी- पृ. 15
25. कमल कुमार- पासवर्ड- पृ. 30

salmisebastian@gmail.com, 9061981658

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 190-195
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक युग में जल संरक्षण की प्रासंगिकता

–डॉ. दिव्या राणा
पी.एच.डी. (प्राचीन इतिहास), A-8E, Vatika Apartment, M.I.G. Flats, Mayapuri, New Delhi-110064

सारांश :–

जल एक ऐसा अमृत है जिसके बिना सभी जीव, जन्तु, प्राणी का जीवन शून्य है, अर्थात् वह जल पर ही निर्भर है। यदि जल न हो, पृथ्वी पर जल की कमी हो जाए या फिर जल ही जल हो जाए तो क्या होगा? ऐसे कई स्थान है जहां पर कभी-कभी सूखा पड़ता है और कहीं-कहीं बाढ़ आने से लोगों के घर तबाह हो जाते हैं। शायद इसी को प्रकृति और मानव के बीच सामंजस्य का न होना कहते हैं जिसके कारण कुएं, तालाब के पानी का सुख जाना, वर्षा का कम होना, जल संरक्षण न होना, अनुपयुक्त रुप से जल का प्रयोग में लाना, वृक्षों का काटना, बाढ़ आना आदि हो रही समस्याओं से मानव जीवन मुश्किलों से घिरा हुआ है। बाढ़ की चपेट में असम, बिहार, महाराष्ट्र आदि राज्य अक्सर आते रहते हैं। हाल में आया 'तौकाते' चक्रवात (Tauktae Cyclone 2021) से गुजरात राज्य प्रभावित हुआ। हालांकि प्रकृति के कहर से बचना संभव नहीं परंतु इससे बचने के तरीके, उपाय एवं साधन तैयार किए जा सकते हैं और भारी नुकसान से बचा जा सकता है। जल की बढ़ती समस्या एवं उपयोगिता को देखते हुए जहन में यह सवाल आता है कि क्या हम जल की समस्या से ऐसे ही जूझते रहेंगे? क्या होगा हमारी भावी पीढ़ी का? क्या आने वाला समय जल के लिए तरस जाएगा? क्या इसका कोई प्रभावकारी हल नहीं निकाला जा सकता है? आदि। अतः ऐसी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक हो जाता है तथा इन प्रश्नों का जवाब वैदिक ग्रंथों के माध्यम से एवं वर्तमान में किए गये प्रयासों के माध्यम से समझना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

प्रस्तावना :–

सिंधु घाटी सभ्यता में सिंधु नदी से कृषि एवं अन्य कार्य किए जाते थे। इसकी प्रमुखता के कारण ऋग्वेद में सिंधु नदी की पूजा[1] करने एवं उसकी प्रशंसा और बाधारहित प्रवाह[2] का वर्णन किया गया है। चूँकि यह सभ्यता तो वैदिक यगु के पहले से ही विकसित सभ्यता थी, और उस समय जल से संबंधित कोई भी ऐसी समस्या ज्यादा नहीं होती थी जिससे आम प्रजा या जनता को नुकसान पहुँचें। वैदिक काल में ऋषि-मुनियों ने जल की महत्ता और उपयोगिता को ग्रंथों में स्तुतियों के माध्यम से समझाया है। जल संबंधित कोई समस्या न हो इसका चिंतन कर बहुत पहले से ही समाधान निकालने का प्रयास करते थे। इससे पता चलता है कि उस समय के लोग कितने जल के प्रति कितने सजग रहते थे। वैदिक ग्रंथ- ऋग्वेद[3], यजुर्वेद[4], सामवेद[5], अथर्ववेद[6] में प्रकृति के महत्व, उपयोगिता, समस्या, समाधान को समझते हुए जल से संबंधित ऋचाओं की स्तुति का वर्णन मिलता है जो जल संरक्षण तथा प्राकृतिक जल आपदा से बचने के उपाय में एक प्रभावशाली दिशा-निर्देश हमारे लिए साबित हो सकते हैं।

अतः प्राणी जगत के जीवन के लिए जल एक मूल्यवान संसाधन है जिसे प्रकृति ने अमृत के रुप में धरातल पर गिराया है और लोग घरेलू कार्यो, पीने तथा विभिन्न स्थानों पर सुविधानुसार उपयोग करते हैं। धरातल पर जल दो रुप धारण करती हैं, पहला जीवनदायी और दूसरा विकराल आपदा तथा इसमें से जल आपदा के कारण को इस प्रकार

देखा जा सकता है।

जल आपदा :-

जल आपदा का कारण जल संरक्षण सही ढंग से न करना तथा बाढ़ रोकने के लिए अनुकूलतम प्रबंध का न होना है। भारी वर्षा के बाद जब प्राकृतिक जल संग्रहण मार्गों की जल धारण करने की क्षमता का दोहन करती है तब उन मार्गों से जल निकलकर आस-पास की सूखी भूमि को डूबो देती है, और यह बाढ़ का रुप ले लेती है। अगर इसी जल का संरक्षण की व्यवस्था की जाए तो बाढ़ आपदा को रोका जा सकता है। जल संरक्षण का मुख्य कारण जल शुद्धिकरण से है। सभी क्षेत्रों, राज्यों, नगरों में पानी को पीने के लिए शुद्धिकरण किया जाता है जिससे जल का तीन हिस्सा से ज्यादा बर्बाद होता है और एक हिस्सा उपयोग में आता है। दूसरा कारण गाद की सफाई सही समय पर न होना है। जब हिमालय से निकलने वाली नदियां अपने साथ बड़ी मात्रा में गाद और रेत लाती हैं तो कई सालों से इसकी सफाई न होने के कारण नदियों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है जिससे आस-पास के क्षेत्रों में पानी फैल जाता है। तीसरा कारण वनों की कटाई है। ज्यादा वन काट दिया जाता है तो मानसून नहीं बन पाता और कई स्थान सूखे पड़ जाते हैं जिससे जल संरक्षण की आवश्यकता हो जाती है। तो वहीं दूसरी तरफ पेड़, पहाड़ों पर मिट्टी के कटाव को रोकने और बारिश के पानी के लिए प्राकृतिक अवरोध पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं लेकिन जब वनों की कटाई हो जाती है तो नदियों के जल स्तर में वृद्धि हो जाती है और बाढ़ की समस्या में वृद्धि हो जाती है जो कि लोगों को बुरी तरह से प्रभावित करती है।

भारत के कुछ राज्य समतल एवं रेतीली भूमि और अधिक जनसंख्या वाले हैं जहां पानी की आवश्यकता ज्यादा होती है और कुछ जगह ज्यादा वर्षा भी नहीं होती तो ऐसी जगहों पर जल की आवश्यकता बढ़ जाती है। राज्य, नगर, नदियों और समुद्रों के किनारे बसे होने के कारण बाढ़ से प्रभावित होते रहते हैं जिसमें असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश (मैदानी क्षेत्र), ओडिसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडू, महाराष्ट्र और गुजरात के तटीय क्षेत्र शामिल है। यहां पर बाढ़ आने से कृषि भूमि तथा मानव बस्तियों के डूबने से देश की अर्थव्यवस्था तथा समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बाढ़ग्रस्त इलाकों में लोग कई बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं और वहां महामारी ज्यादा फैलने की आशंका होती है। विश्व में जल शुद्धिकरण से तीन हिस्सा पानी बर्बाद होने से ज्यादा से ज्यादा लोग प्रभावित होते हैं क्योंकि कहीं-कहीं तो साधारण पानी भी लोगों को पीने के लिए नहीं मिल पाता है। प्राचीन काल में वैदिक युग की बात करें तो जल संरक्षण एवं बाढ़ के संदर्भ में महत्वपूर्ण सूक्त मिलते हैं।

वैदिक ग्रंथों में जल संरक्षण एवं बाढ़ :-

वैदिक काल में वर्षा के पानी को एकत्रित कर, कुएं का निर्माण कर, नहरों, तालाबों एवं जलाशयों के माध्यम से जल संरक्षण किए जाने का प्रमाण मिलता है। लेकिन बाढ़ की समस्या तो वैदिक काल में भी थी। इतिहासकारों द्वारा सिंधु सभ्यता का अंत भी विभिन्न कारणों में से एक कारण बाढ़ को माना गया है। परन्तु वेदों में जल से संबंधित बाढ़ एवं अन्य समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया जाता था, इसे निम्न रुप से देखा जा सकता है:-

1. **बाढ़ समस्या-** ऋग्वेद में आर्यों ने इंद्र को अपना प्रिय देवता माना है तथा इंद्र को मनचाही वर्षा करने वाला कहा गया है। इंद्र के संदर्भ में यह कहा गया है कि अगर इंद्र चाहे तो तूफान, बाढ़, सूखापन, घनघोर वर्षा, नदियों के जल प्रवाह, समुद्र से लहरों का बढ़ना-घटना, वनों में हरियाली, कृषि, जल का अतिरिक्त बहाव या बर्बादी, जल की कमी आदि जैसा करना चाहे कर सकते हैं।

2. **बांध का टूटना-** ऋग्वेद के एक श्लोक में वृत्त द्वारा इंद्र को अहंकारी, पराक्रमी, बहुतों को ध्वंस करने वाला, शत्रु विजयी कह दिया गया था जिस कारण इंद्र ने वृत्त का वध कर दिया। वृत्त मृत अवस्था में गिरते हुए नदियों के किनारों को नष्ट कर देता है, जिससे नदी का पानी बढ़ने पर सभी स्थानों पर फैल जाता है।[7] इस तरह न रुकने

वाले जल में डूबकर वृत्त का शरीर नाममात्र भी दिखाई नहीं देता। इंद्र से बैर करने वाला वृत्त चिरनिद्रा में लीन और जल उसके ऊपर से प्रवाह हो रहा है। एक श्लोक में इंद्र को घनघोर वर्षा करने वाला कहा गया है।[8] इंद्र द्वारा वृत्त को मार दिए जाने एवं नदियों को स्वतंत्र कर दिए जाने का वर्णन है।[9] इंद्र द्वारा अपनी शक्ति एवं तेज से जल को छिन्न-भिन्न कर देने एवं पर्वतों के पंख काट जाने का उल्लेख हुआ है।[10] इस तरह इंद्र अर्थात घनघोर वर्षा होने एवं नदियों में बढ़ाव हो जाने का वर्णन ऋग्वेद में यत्र-तत्र मिलते हैं।

3. **सूखापन–** ऋग्वेद के विभिन्न श्लोकों में यह संभावना व्यक्त की गई है कि एक वर्ष में वर्षा दो या तीन बार होती थी। इंद्र-वृत्त युद्ध के माध्यम से वर्षा के महत्व को बताया गया है। वर्षा कभी-कभी न होने पर कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता था। ऋग्वेद के श्लोक में कहा गया है कि जब आकाश से धरती पर जल नहीं गिरता और धन देने वाली भूमि मानवों द्वारा पकाकर फसलों से युक्त नहीं होती थी तब इंद्र ने अपने हाथ में बज्र उठाया और अंधकार फैलाने वाले मेघ से जल दूहा।[11] तब इंद्र की स्वधा मंत्र से वर्षा होने लगी।[12] एक स्थान पर तो रुद्र द्वारा पालित दिप्तिसंपन्न एवं बलशाली मरुद्गण मरुस्थल में भी वायुरहित वर्षा की सच्ची घटना का उल्लेख हुआ है।[13] अतः कई स्थलों पर सूखा पड़ने पर अचानक वर्षा का होना, इंद्र का वरदान माना गया।

4. अथर्ववेद में वर्षा करने के लिए प्रर्जन्य देवता से प्रार्थना किए जाने का वर्णन है।[14] इससे पता चलता है कि कई वर्षो तक वर्षा नहीं होने पर जन एवं फसल का नुकसान होता था। अथर्ववेद के दूसरे मंत्र में अन्य देशों से तुलना करते हुए मरुद्गण से कहा गया है कि हे मरुद्गण! जिस देश में तुम जल वृष्टि करते हो, वहाँ तुम बलदायक अन्न एवं प्रजा का पोषण करते हो, वैसे ही हमारे यहाँ भी करो।

5. **भूकंप या धरती कंपन–** अधिक समुद्री तुफानी तरंगों से नदियों के पानी बढ़ाव, घनघोर अत्यधिक वर्षा से दोनों की संभावना बढ़ जाती है जिससे भूतल पर कंपन की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। ऋग्वेद में मरुद्गणों के गरजने की ध्वनि से धरती पर बने सभी घरों एवं उनमें रहने वाले मनुष्यों के कांपने का वर्णन है।[15] इंद्र को धन के स्वामी के रुप में स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की गई है कि इंद्र तुम धन के स्वामी हो, तुम अपने भयानक परिणाम के रुप में नदियों के जल प्रवाह से तबाही न लाओ, क्योंकि उपजाऊ जमीन, कृषि, खाद्य पदार्थो का नुकसान हो जायेगा। अतः अगर बढ़ते पाप के परिणाम रुप में तुम्हारे जल का विस्तार हुआ तो भूकंप से तबाही हो सकती है।[16]

समस्या का समाधान :–

इस तरह हमने देखा कि बाढ़ से अछूता तो वैदिक काल और आने वाले युग भी नहीं रहे हैं, परन्तु इसका उपाय अथवा समाधान ऱाजाओं द्वारा राज्यों को सुरक्षित रखने हेतु किए गये थे। राज्य के जनों को प्राकृतिक जल आपदा से कैसे सुरक्षित रखा जाए, के लिए वह हमेशा सजग रहते थे। वह अपने राज्य में नदी, नहरों, वर्षा के पानी के लिए उत्तम व्यवस्था करता था अथवा जल संरक्षण की व्यवस्था किया करते थे।[17] ऱाजा का जन के प्रति उत्तरदायित्व को बताते हुए कहा गया है कि, राजा अपने राज्य में वर्षा जल, नदी और नहरों की उत्तम व्यवस्था रखे, युद्ध के समय यदि शत्रु नदी और नहर की व्यवस्था बिगाड़ दे तो पुनः उसे ठीक करवाये जिससे राज्य में चतुर्दिक समृद्धि फैले। कौशिक सूत्र[18] में नदियों के जल के प्रवाह को मोड़कर नदियों के माध्यम से सिंचाई की विधि को नहरों का प्राचीन एवं प्रारम्भिक रुप माना जाता है, जो जल के बहाव को गाँव, नगर में जाने से रोकने में सहायक भी होता था और कृषि के काम में भी लाया जाता था। इस तरह के उपाय से बढ़ते पानी को रोका जाता था। नहरों के खोदने एवं उनके द्वारा सिंचाई की व्यवस्था के अनेक उपाय वैदिक संहिताओं में वर्णित है। यजुर्वेद[19] में काट्ट अथवा पानी काटकर खेत में ले जाने का उल्लेख है।

जल संरक्षण :–

नदियों, झरनों, सागर में वर्षा के जल का अनुपयुक्त बहाव को रोकने के लिए उसका संरक्षण कैसे किया

जाए इसकी व्यवस्था हमें वैदिक ग्रंथों में मिलता है। इन जल का कृत्रिम साधनों में उपयोग किया जाता था। उपर्युक्त समस्या का आधा समाधान तो जल संरक्षण के माध्यम से कर लिया जाता था। वेदों में विपरीत ;तुओं के लिए वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए वैदिक जन नहरों, जलाशयों एवं तालाबों का निर्माण करते थे। मोहन जोदड़ो में स्नानागार के रुप में इसका अच्छा उदाहरण मिलता है। जल संरक्षण करने के निम्नलिखित उपाय इस प्रकार हैः-

1. **जुते हुए खेत-** इसको भारी वर्षा सहन करने के योग्य बताया गया है, क्योंकि जब खेत की जुताई होती है मिट्टी ऊपर से नीचे की ओर गहरी खुरदरी हो जाती है, जिससे यह पानी अपने अंदर ज्यादा खिचती हैं। इसलिए जब ज्यादा वर्षा हो तो खाली खेतों की जुताई बार-बार करते रहना चाहिए।[20]

2. **जलाधिपति-** जल स्थान की रक्षा के लिए 'जलाधिपति' की नियुक्ति का वर्णन अथर्ववेद में किया गया है। यह जल से संबंधित सभी समस्या के समाधान के लिए एवं राजा को सचेत करने के लिए नियुक्त किया जाता था।[21]

3. **नहर निर्माण-** नहर खोदने का उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है, नदी को गाय और नवनिर्मित नहर (कुल्या) को बछड़ा से संबोधित किया गया है।[22]

4. यजुर्वेद में कुल्या एवं सरसि शब्द बांध, कुण्ड या तालाब के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। जिसका प्रयोग जल संरक्षण में किया जाता था। इसके अतिरिक्त काट्ट (बम्बा), कुख (कुआँ), सुत्थार (नाला), वैशस्त (तालाब), नीप्य (नहर जल), आवट्ट (रे या पोखरा), अवर्ष्य (बिना वर्षा जल) में जल को संरक्षित रखने का उल्लेख मिलता है।[23]

5. **खनित्रमा-** ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग नहरों के लिए किया गया है, जिससे जल का संरक्षण किया जाता था।[24]

6. **अनुपक्षित (पाच्छा)-** इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पुर का जल गाँव में जहाँ पर उड़ेला जाता था, उसके लिए हुआ है।[25]

7. **कुप अथवा कुआँ-** ऋग्वेद व अन्य ग्रन्थों में वर्णित कुएँ का प्रयोग जल संरक्षण का महत्वपूर्ण अंग था, जिसका उस समय पीने योग्य पानी में प्रयोग किया जाता था। कुआँ इतना गहरा होता था कि वर्षा का पानी भी उसमें आसानी से समाहित हो जाता था। मजदूरों, बैलों की सहायता से कुएं का पानी चर्म रज्जू नामक वरत्र का प्रयोग कर निकाला जाता था।[26]

8. **पहाड़ो से गिरता जल-** इस जल का संरक्षण प्रकृति द्वारा निर्मित नदियों के माध्यम से होता था। इसके संदर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है कि इंद्र इस तरह घनघोर वर्षा करते है कि पहाड़ी से गिरता हुआ जल नदियों का मार्ग प्रसस्त करते हुए अपना दायरा निर्धारित करती है अर्थात नदियों ने कई दिशाओं में अपना मार्ग प्रशस्त किया है।[27]

9. **खेय-** कृत्रिम सिंचाई के लिए खेय का उपयोग कर प्रवाहित जल को रोका एवं संग्रहित किया जाता था, जिससे इसका प्रयोग किया जा सके। अतः जल संरक्षण कर कृत्रिम सिंचाई के लिए दो प्रकार के खेय और बांध के निर्माण किए जाने का उल्लेख वेदों में मिलता है।

10. **स्वयंजा-** इसके माध्यम से वर्षा, तालाब, हद का पानी एकत्रित किया जाता था।[28]

इस तरह ऐसे कई माध्यम होते थे जिसकी व्यवस्था वैदिक काल में जल संरक्षण के लिए की जाती थी। आगे आने वाले युगों में भी, जैसे, बौद्ध काल में बोधायन धर्मसूत्र के अनुसार कूप, कुएं का वर्णन मिलता है। मौर्य काल, गुप्त काल, हर्षवर्धन काल, संगम काल, मुगल काल में भी बड़े-बड़े बांध, खेय, नहर, कुआँ, तालाब, दुर्ग, पोखरे, नाले, नलकूप, नदियों के किनारे आदि का निर्माण बाढ़ से सुरक्षा पाने एवं जल संरक्षण के लिए किया जाता था।[29]

वर्तमान काल में :-

जल आपदा को रोकने हेतु उचित प्रबंधन एवं जल संरक्षण के संदर्भ में भारत सरकार द्वारा कई योजनाएं एवं नीतियां तैयार की गई हैं। जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उपलब्ध संसाधनों का विकास और इसके विनिमय

हेतु नीतिगत दिशा-निर्देश और कार्यक्रम का चलाने हेतु प्रभावपूर्ण कार्य कर रही है, साथ ही अन्य क्षेत्रें से भी सहयोग, आयोजन, समझौते के माध्यम से कार्य किया जा रहा है, जो निम्नलिखित है:-[30]

1. राष्ट्रीय जल विकास परिदृश्य का निर्माण करना तथा अंतर-बेसिन अंतरण की संभावनाओं पर विचार हेतु विभिन्न बेसिनों उपबेसिनों के जल संतुलन का निर्धारण करना।

2. नदियों के जल, जल संसाधन विकास परियोजनाओं और सिंधु जल संधि को लागू करने के बारे में पड़ोसी देशों के साथ बातचीत और तालमेल करना।

3. अंतरराज्यीय नदियों पर बाढ़ पूर्वानुमान और चेतावनी हेतु राष्ट्रीय नेटवर्क का संचालन करना, विशेष मामलों में कुछ राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता का प्रावधान करना। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के लिए बाढ़ नियंत्रण मास्टर प्लान बनाना।

4. विशेष परियोजनाओं के लिए विशिष्ट केन्द्रीय वित्तीय सहायता प्राप्त करना और विश्व बैंक तथा अन्य एजेंसियों से विदेशी धन प्राप्त करने में सहायता देना।

5. व्यापक आयोजना एवं प्रबंधन हेतु अंतर-क्षेत्रीय समन्वय को बढ़ावा देने के लिए एक नदी बेसिन दृष्टिकोण अपनाकर गंगा व अन्य नदियों के प्रदूषण को कम करना तथा उन्हें संरक्षण सुनिश्चित करना।

6. मीडिया द्वारा जल आयोजन कार्य (जल क्रांति अभियान, भारत जल सप्ताह, जल मंथन आदि)।

7. अंतरराष्ट्रीय सहयोग (पड़ोसी देशों से द्विपक्षीय समझौते, सिंधु जल संधि, भारत नेपाल संधि, भारत चीन सहयोग आदि)।

8. बाह्य सहायता प्राप्त करने के योजनाएं में सहयोग (विश्व बैंक, एशियाई बैंक आदि)।

9. कार्य और न्यायाधिकरण द्वारा बनाये गये अंतरराष्ट्रीय नदी जल विवाद और अधिकरण आदि।

10. इसके अतिरिक्त अन्य देशों के जल क्षेत्रें में समझौता ज्ञापन, जिनमें आस्ट्रेलिया, यूरोपियन संघ, हंगरी, इजराइल, चीन आदि शामिल हैं।

निष्कर्ष :-

अत: यह कहा जा सकता है कि बाढ़ आने का मुख्य कारण पानी के बहाव को रोकने से हो सकता है क्योंकि अगर पानी के बहाव को बांध या किसी और विधि से रोक दिया जाता है तो जल एकत्रित होते-होते विकराल हो जाता है जिससे बाढ़ आने की समस्या बढ़ जाती है। एक देश से दूसरे देश एवं राज्य में आपसी समझौता कर जुड़ने वाली नदियों को अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार बांध बना दिया जाता है और उस पर कुछ नियम भी लगा दिया जाता है जिससे लाभ कम और खामियाजा आस-पास के लोगों को ज्यादा भुगतना पड़ता है। जबकि ऋग्वेद में नदियों के बहाव के संदर्भ में कहा गया है कि- नदियों का जल बाधारहित एवं सर्वत्र जाने वाला है। एक स्थान पर सभी नदियों को आपस में मिलकर साथ बहने का उल्लेख है।[31]

वैदिक ज्ञान के माध्यम से भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न कारणों से उत्पन्न आपदाओं से निपटने एवं समाधान निकालने का लोगों में समझ बढ़ाया जाना चाहिए, जो कि आज के युग में बाढ़, अशुद्ध जल, एवं जल की कमी में सुधार हेतु अति आवश्यक है। इसके लिए सरकार द्वारा कई योजनाएं एवं नीतियां भी बनाई गई, परन्तु इन योजनाओं एवं नीतियों को पूर्ण करने के प्रति लोग कितने सचेत एवं जिम्मेदार हैं, इससे तो शायद कोई अनजान नहीं हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि वैदिक युग में राजा जल समस्याओं से निपटने एवं प्रजा की सुरक्षा के लिए कितने सचेत एवं तैयार रहा करते थे, दिए गये कार्यो को अपनी पूरी देख-रेख में जिम्मेदारी के साथ कराते थे। अत: इस जिम्मेदारी को समझने के लिए लोगों को खुद सचेत रहना होगा, तभी जल आपदा एवं संरक्षण संबंधी योजनाएं एवं नीतियां पूर्ण हो सकेगी और आम लोगों को हो रही जल संबंधी समस्या एवं आने वाली समस्या से राहत मिलेगी।

संदर्भ सूची :–

1. ऋग्वेद – 1.95.11
2. ऋग्वेद – 10.75.1 – 9
3. ऋग्वेद – 1.79.1 – 12, 1.95.7 – 10
4. यजुर्वेद- 1.12 – 13, 2.2
5. सामवेद- 7.7.4, 5, 6
6. अथर्ववेद- 4.8..5,6,7, 1.4.5, 6
7. अथर्ववेद – 1.32.6
8. अथर्ववेद – 1.9.4
9. अथर्ववेद – 4.17.1, 4.19.2
10. अथर्ववेद – 4.19.4
11. अथर्ववेद – 1.33.10
12. अथर्ववेद – 1.33.11
13. अथर्ववेद – 1.38.7
14. अथर्ववेद – 17.18.1
15. अथर्ववेद – 1.38.10
16. अथर्ववेद – 1.54.1
17. अथर्ववेद – 7.8.9, 10.93, 10.75.2, 10.99
18. कौशिक सूत्र- 4.5.1 – 10
19. यजु. 16.37 – 38
20. अथर्ववेदभाष्य – 7.18.1
21. अथर्व. 3.33
22. अथर्व. 6.128.1 – 4
23. यजुर्वेद भाष्यम – 16.37 – 38
24. यजुर्वेद भाष्यम 7.49.2
25. यजुर्वेद भाष्यम 10.101.5
26. यजुर्वेद भाष्यम 10.105.5
27. यजुर्वेद भाष्यम 1.32.1, 2
28. राम गोपाल – भारत का वैदिक कल्पसूत्रज, दिल्ली, 1959
29. मैक्डोनल्ड ए.- द वैदिक मेथोडोलाजी, वाराणसी, 1963
30. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार (http://jalshakti-dowr.gov.in)
31. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार 7.34.11, 10.75.1 – 9

Email: divyarana4b@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 196-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में निहित विविध आयाम

–मुकेश चौहान
एम. फिल शोधार्थी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय गुवाहाटी, कामरूप (असम)

प्रस्तावना :–

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रीलाल शुक्ल का साहित्य भी बहुआयामी है। हालांकि उनका साहित्यिक जीवन काव्य से प्रारंभ हुआ, पर उन्हें यह आभास हो गया कि वे एक कवि की तुलना में उपन्यासकार के रूप में अधिक सक्षम हो सकते हैं। कविता के अलावा उन्होंने छः विधाओं में साहित्य रचना किया है। अपने कवि कर्म के परिपेक्ष में हुए स्वयं लिखते हैं, 'इस माहौल में मैंने बारह से तेरह साल की उम्र में घनाक्षरी सवैए लिखने शुरू कर दिये। कविता की यह कोशिश 1939–45 तक मेरे बड़े काम आई।'[1] शुक्ल जी गद्य लेखन के माध्यम से हिंदी साहित्य में प्रवेश किए और अपने रचनाओं में अपने युग के संपूर्ण परिवेश को लेकर साहित्य रचना का निर्वहन किया। जिसमें पारिवारिक सामाजिक, धार्मिक, वैयक्तिक एवं राजनीतिक जीवन की विविध विसंगतियों को भाषा का रूप दिया है। 'श्रीलाल शुक्ल अपने कृतित्व में गांव के दुःखों की उपेक्षा, तिरस्कार, शोषण और प्रतीत होती जा रही स्थितियों परिस्थितियों के अधिकृत प्रवक्ता हैं।'[2]

सुनी घाटी का सूरज :–

श्रीलाल शुक्ल का प्रथम उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' 1957 ई. में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में शुक्ल ने गरीब किंतु मेधावी ग्रामीण रामदास के शिक्षा अध्ययन का चित्रण किया है। जिसमें जमींदारों, अपराधियों, पुलिस की क्रूरता, विश्वविद्यालयों में छात्र नेताओं, प्रोफेसरों, राजनेताओं आदि का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया है। इस उपन्यास में रामदास अनेक बाधाओं से जूझता हुआ एम. ए और अनुसंधान कार्य समाप्त कर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता बनना चाहता है। पर अंततः सिफारिश के अभाव में उसे विवश होकर गांव के एक स्कूल में अध्यापक बनना पड़ता है। इस उपन्यास में शुक्ल ने देश में व्याप्त शोषण के विरुद्ध शिक्षार्थियों का ध्यान आकृष्ट किया है।

श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास में मूल भूमिका के रूप में गांव के एक गरीब और साधन हीन बच्चे रामदास की आत्मकथा को चित्रण किया है। रामदास का जीवन वहां से शुरू होता है, जहां अभाव, निर्धनता और गरीबी के सिवाय कुछ भी नहीं। रामदास ने अपनी जिजीविषा के बल पर इस चुनौती को स्वीकार किया। 'सुनी घाटी का सूरज' उपन्यास में शोषण की मूल आधार सामंती है। यह उपन्यास सीधी–साधी आदर्शवादी है। परिचय प्रारंभ संस्मरण और उपसंहार रामदास हत्या के बीच का बौद्धिक विमर्श समस्याओं के प्रति एक आधुनिक दृष्टी मूल कृति है– रामदास के संस्मरणों से निर्मित आत्मकथा। एक उदाहरण के द्वारा इस उपन्यास की कथा की मूल संवेदना को सहजता से समझा जा सकता है, 'क्या तुम भी यही सोचते हो?' और फिर यह टिप्पणी : तुम गलत सोचते थे। रामदास में वह जानता नहीं, जिससे वह अपने संसार को भुला दे, जिसके सहारे वह किसी को तुम्हारी तरह प्यार कर सके।'[3]

अज्ञातवास :–

श्रीलाल शुक्ल का प्रसिद्ध उपन्यास अज्ञातवास 1962 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास 'अज्ञातवास' में शुक्ल ने अपनी पत्नी श्रीमती गिरिजा शुक्ला को अर्पित किया था। अज्ञातवास में मध्यवर्गीय रजनीकांत और उसकी पत्नी रानी के संपूर्ण जीवन का चित्रण है। ग्रामीण परिवेश में अपने को समायोजित करने वाली पत्नी रानी से विमुख होकर वह डॉक्टर सीता दत्त को अपनी उपपत्नी बनाता है। लेकिन डॉक्टर सीता दत्त स्थिति से परिचित होने के बाद अपना संबंध तोड़ देती है। इसके बाद रजनीकांत रानी से रागात्मक लगाव न होने के बावजूद शारीरिक संबंध स्थापित करना चाहता है। लेकिन इससे असंतुष्ट रानी रजनीकांत को छोड़कर अपने गांव चले जाती है। इससे रजनीकांत के जीवन में एक बदलाव अवश्य आया, लेकिन तब जब सब कुछ समाप्त हो गया था। 'आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानती। यह घसीटे बनमानुसों की तरह झोपड़ी में पड़ा रहता है। दया में फंसता है। जानती हैं आप? यह मंगरु लाल-लाटेन इसके घर दो-दो दिन के बाद चूल्हा चलता है। आप यह भी नहीं जानते। सिर्फ आपको यह गीत अच्छे लगते हैं? आप हमारा रोना नहीं सुन सकती। गाना ही क्यों सुनना चाहती।'[4]

प्रस्तुत उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने मध्य वर्ग के अंतर्गत पारिवारिक संबंधों की कटुता और मानवीय भावनाओं के गिरते स्तर के साथ ही असहाय किसानों का जमींदारों द्वारा निर्मम शोषण को भी चित्रित किया है। 'अज्ञातवास' उपन्यास का मूल उद्देश्य नौकरशाही शोषण को सामने रखकर इस सप्ताह के बदलते स्वरूप के साथ शोषण का जंग में भी परिवर्तन आया। 'अज्ञातवास' में मध्यवर्ग की दोहरी नैतिकता पर शुक्ल ने प्रश्न चिन्ह लगाया है तथा संधि काल के बदलते हुए सामाजिक परिवेश को ही रेखांकित किया गया है।

राग दरबारी :–

'राग दरबारी' उपन्यास उनके अभिव्यक्ति कौशल तथा जीवनानुभूतियों का परिणाम है। साहित्य अकादमी से सम्मानित यह उपन्यास उनके संपूर्ण जीवन संघर्ष का ज्वलंत प्रमाण है। गांव की कथा के माध्यम से आधुनिक भारतीय जीवन के मूल्यहीनता को सहजता और निर्मलता के साथ अनावृत करता है। आज के राष्ट्रव्यापी मानसिकता तथा मुख्यत: दो वर्गों के बीच के तिकड़म को देखते हुए लगता है कि लेखक अपनी व्यंग उच्च स्तररय वर्ग में व्याप्त भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और वंशवाद के विरुद्ध अपनी आक्रोश प्रकट किया है। 'विराट समाजशास्त्रीय कल्पना वाले 20 विद्वान ग्रामीण यथार्थ के बारे में जो कह सकते, वह इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने कह दिया है।'[5]

इस उपन्यास में शुरू से अंत तक निसंग और सोदेस्य व्यंग के साथ लिखा गया हिंदी का शायद यह पहला बृहद उपन्यास है। जो स्वतंत्रता के पश्चात की ग्राम विकास और गरीबी हटाओ के आकर्षक नारों के बावजूद घिसट रही है। 'राग दरबारी' की कथा नगर से कुछ दूर बसे शिवपालगंज की है। पर यह समग्र रूप में पूरे भारतीय ग्रामीण जीवन की राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों के साथ संबंध है। यह विकास के समस्त नारों के बावजूद निहित स्वार्थो और अनेक अवांछनीय तत्वों के खातों के सामने राजनीतिक प्रजातंत्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल-फूल रही है। इस उपन्यास में आदर्शवाद और यथार्थवाद की खींचतान एवं तकराहट को पूरी कहानी का केंद्र बिंदु माना जा सकता है। एक उदाहरण से इस उपन्यास में चित्रित व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है- 'वही एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।'[6]

इस उपन्यास के माध्यम से आज शासन व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था आदि को बड़े ही सहज ढंग से व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया गया है। लोकतंत्र में पुलिस व्यवस्था का एक अंग है। शिवपाल गंज के थाने का जिक्र करते हुए लेखक लिखते हैं, 'आराम कुर्सी ही नहीं सभी कुछ मध्यकालीन था। तख्त, उसके ऊपर खड़ा हुआ दरी का चित्र, कमलदान, सूखी हुई स्याही की दवातें, मुडे हुए कोने वाले मटमैला रजिस्टर अभी कुछ शताब्दी पुराने दिख रहे थे।'[7]

आदमी का जहर :-

यह उपन्यास सन् 1974 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की विषय वस्तु भी प्रेम और हत्या के संबंधों में आई दरार है। उपन्यास का नायक शरतचंद्र एक सकी व्यक्ति था। जो अपने पत्नी को हमेशा शक और संदेह की नजर से देखता था। शरतचंद्र रूबी को बहुत प्रेम करता है लेकिन ब्लैक मेलिंग मैं माहिर एक पत्रकार अजीत सिंह के साथ रूबी के संबंध पर आशंका है। अत: रूबी के साथ होटल कमरे में बैठकर अजीत सिंह पर तलवार से जानलेवा हमला करता है। जिसके चलते अजीत सिंह की मृत्यु हो जाती है। पर पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि अजीत की मृत्यु गोली से नहीं बल्कि जहर खाने से हुई है। इसके पश्चात शरतचंद्र के साथ रूबी को भी हिरासत में ले लिया जाता है। पर केस की छानबीन के पश्चात अजीत सिंह को जहर देने वाला एक नेता शांति पकड़ा जाता है। जो अजीत की तरह ही व्यभिचार में लिप्त था और उसने अपने रास्ते का कांटा समझकर समाप्त करना चाहता था। इन सारी बातों से पत्नी रूबी काफी परेशान रहती है क्योंकि उसका शक निरर्थक है। 'जैसे मौसम को छोड़कर उसकी जिंदगी के भीतर बाहर कुछ भी ना बचा हो।'[8] इस उपन्यास की घटनाएं कौतूहल पूर्ण है। लेकिन बीच-बीच में राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों का चित्रण भी है। इस प्रकार यह एक जासूसी प्रकृति का उपन्यास है तथा वर्तमान समाज की भ्रष्टाचारिता का पोल खोल कर हमारे सम्मुख रख दिया है।

सीमाएं टूटती है :-

यह उपन्यास सन् 1973 में प्रकाशित हुआ। व्यापारी दुर्गा दास द्वारा अपने पाटनर गोविंद के हत्या के कारण उसे आजीवन कारावास भोगना पड़ता है। दुर्गादास का मित्र विमल पुत्र राजनाथ पुत्र वधू नीला पुत्री चांद आदि सजा के निर्णय के खिलाफ कोर्ट में अपील करते हैं। इस उपन्यास में दुर्गादास हत्याकांड, विमल चांद प्रणय संबंध, विमल जूही प्रेम प्रकरण को अत्यंत मनोरंजक ढंग से चित्रण किया गया है। वस्तुत: खाते-पीते संपन्न परिवार की मनोदशा का चित्रण ही इस उपन्यास का मूल उद्देश्य लगता है, 'विमल के सूहर के पहाड़ों और घाटियों की एक झलक सी दिखी। डूबते हुए आदमी की सी उकताहट के साथ अब उसने चंद उंगलियों को अपनी मुट्टी में बांध लिया......... इसी तरह कांच के खिलौने को, पत्थर की मूर्तियों को चुम्मा जाता होगा।'[9]

इस तरह उपन्यास के विद्रोह शीर्षक से यह सहज ही आभास होता है कि इसमें सामाजिक विसंगतियां व अंतरंग मर्यादाओं का विघटन एवं विखराव को दर्शाया गया है। सभी विसंगतियां अपनी सीमाएं बनाए हुए हैं। रचनात्मक स्तर पर किसी के टूटने का आभास नहीं होता।

मकान :-

मकान उपन्यास 1976 में प्रकाशित हुआ, जो डायरी शैली में लिखा गया है। संपूर्ण उपन्यास एक प्रसिद्ध सितार वादक और नगर निगम के असिस्टेंट पद पर नियुक्त नारायण बनर्जी की मकान संबंधी समस्या को लेकर उद्वीत है। अंतत: उसे मकान अलॉट कर दिया गया। दूसरे ही दिन शहर के बड़े-बड़े संभ्रांत ऑफिसर उन्हें बधाई देने पहुंचते हैं। पर मकान पर कब्जा होने से पहले नारायण बनर्जी की हत्या कर दी जाती है। इस शो के अवसर पर उसके सितार वादन के कार्यक्रम रेडियो से प्रसारित हुए, नगर निगम और प्रदेश की संगीत कलाकार दफ्तर पूरे दिन बंद रहा। गुंडा विरोधी अभियान चलाया गया। सरकारी घोषणा के अनुसार वह मकान नारायण की पत्नी को रियायती दर पर नियुक्त किया गया। नारायण का संगीत ऊंचाइयों का धून चाहता है। उसके शब्द हैं, 'यह ताने बेकार हैं। इसके सहारे कोई राग में नहीं भींग सकता। ताने हुए लहर हैं जो किनारे पर खड़े हुए आदमी को लुभाने के लिए नहीं होती। वे उसके लिए है, जो पहले पानी में उतरा हुआ है और तैर रहा है।'[10]

श्रीलाल शुक्ल ने नारायण बनर्जी की सीधी कहानी ना कहकर, लिखकर मकान की समस्या के साथ समाज में व्याप्त अनैतिक आचरण रिश्वतखोरी, गुंडागर्दी, धोखाधड़ी आदि को विस्तार से पर्दाफाश कर इसे निर्मूल करने का

प्रयास किया है।

पहला पड़ाव :-

पहला पड़ाव उपन्यास सन् 1987 में प्रकाश में आया। यह डायरी शैली में लिखा गया है श्रीलाल शुक्ल ने मुख्य रूप से भवन निर्माण और ईद के भट्ठों पर कार्य करने वाले राजमिस्त्रीओं, ठेकेदारों और शिक्षित बेरोजगारों के जीवन को अत्यंत यथार्थ परक ढंग से प्रस्तुत किया है। कथा का शुरुआत बिलासपुरी मजदूरों के उस जत्थे से होती है, जो साल भर कमाने के बाद जोत ज्वारे के दिन में गांव लौटते हैं। इसका प्रमुख पात्र संतोष कुमार है। जिसे सभी संते कहते हैं। वह सारी स्थितियों से परिचित होने के बाद वह अंततः शोषित मजदूरों के बेहतरी के लिए संघर्ष हेतु कटिबद्ध हो जाता है। अपने निजी स्वार्थ का परित्याग कर मजदूरों का साथ देने का उसका दृढ़ संकल्प ही पहला पड़ाव अर्थात पहली सिंढ़ी है। शोषण एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रतिरोध का यह रूप श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में पहली बार प्रकट हुआ है। इस उपन्यास में वर्तमान समाज की भ्रष्टाचार शोषण स्वार्थ राजनीतिक गतिविधियां आदि का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में यह समकालीन जीवन पद्धति का जीता-जागता दस्तावेज है।

विश्रामपुर का संत :-

यह उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का आठवां उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1998 में हुआ। इसकी कथा कई स्तरों पर एक साथ चलती है। जिसे कुछ आलोचकों ने श्रीलाल शुक्ल का सर्वोत्तम उपन्यास माना है। भूदान आंदोलन पर लिखी गई कृतियों में यह कृति महत्वपूर्ण हैं। यह भू समस्या पर भी प्रकाश डालती है। जिसके बारे में मुरली मनोहर प्रसाद लिखते हैं- 'वास्तविकता तो यह है कि विश्रामपुर का संत सही अर्थो में नई कथाभूमि की तलाश का परिणाम है। भू-दान आंदोलन के केंद्रीय प्रश्नों और उस आंदोलन से जुड़े गंभीर कार्यकर्ताओं के व्यक्तित्व की मुख्य समस्याओं को यह उपन्यास कथा साहित्य में पहली बार गंभीरता से उठाता है।'[11]

राग विराग :-

इसका प्रकाशन सन् 2002 में हुआ था 'राग विराग' श्रीलाल शुक्ल का नवीनतम उपन्यास है। जो नाटकीय शैली में लिखा गया है। 'राग विराग' उपन्यास का पात्र है। शंकरलाल सुकन्या सुकन्या के पिता कर्नल भारद्वाज सुधीर सूरज आदि। शंकर स्वभाव से अलग किस्म का इंसान है। उसके बारे में सुकन्या अपने पिता से कहती है, 'इधर कार्डियोलॉजी से भी उसका मोहभंग हो रहा है। वह कहता है कि वह अपनी सारी जिंदगी रईसों के दिल की धड़कन सुनते हुए नहीं गुजारना चाहता।'[12] शंकर अपने अतीत के बारे में सुकन्या से कहता है। पर सुकन्या को लगता है कि शंकर अपने गांव से बेहद प्रेम करता है उसका पूरा जीवन गरीबी में तथा गरीबों के साथ व्यतीत हुआ। जिसके चलते गरीबों के प्रति उसके मन में प्रेम एवं सहानुभूति की भावना है। 'शंकर..... आपने सही फरमाया। पर दूसरे रोग भी हैं, एक से एक भयानक, जिसकी मार इक्के-दूक्के गरीब नहीं, लगभग सत्तर फ़ीसदी लोग झेल रहे हैं। आप जैसी एक्सपोर्ट डॉक्टर को भी क्या उनके नाम गिनाने की जरूरत है? मुझे लगता है कि उन लोगों का नोटिस लेना ज्यादा सही रहेगा..........।'[13]

इस तरह की स्थिति में कथा की समाप्ति होती है। कथा अपने अंतः क्रियाओं को एकदम चूमकर छोड़ देती है। इस उपन्यास में मुख्य कथा को प्रस्तुत करने के लिए अनेक संवादों को जोड़ा गया है। इस उपन्यास में राजनीति और चिकित्सा के आपसे समस्याओं के विषय चर्चा भी बेहद सटीक ढंग से किया गया है।

निष्कर्ष :-

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल के इन उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश में समाजवादी तत्वों की तलाश है। उन्होंने ग्रामीण समाज में फैली अव्यवस्था दिशा ही नेता खोखलापन शोषण का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। जिससे सामाजिक अन्याय की स्थिति राजनीतिक पतन आर्थिक व्यवस्था का सहज परिणाम है। उनके

उपन्यास में भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था का विरोध है। राग दरबारी में वैद्य जी द्वारा संचालित व्यवस्था जब ऐसा ही हो जाती है तब उनका लड़का रुपन बाबू तथा रंगनाथ उस व्यवस्था से पलायन करते हैं इससे स्पष्ट है कि उनके उपन्यासों के प्रधान पत्र व्यवस्था से भाग खड़े होते हैं क्योंकि बहुत प्रयासों के बाद भी व्यवस्था और परिवर्तनशील ही बनी रहती है। इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश का जीतना उभरता हुआ रूप दिखाई देता है उतना शहरी परिवेश का नहीं। इससे स्पष्ट है कि समग्र कथानक ग्रामीण परिवेश के इर्द-गिर्द रचा गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीलाल शुक्ल की दुनिया (आधुनिक सप्ताह की प्रतीक्षा)- उर्मिला कुमार थपलियाल पृष्ठ संख्या- 73
2. श्रीलाल शुक्ल की दुनिया (पुनर्विचार की आवश्यकता) मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पृष्ठ संख्या- 29-30
3. सुनी घाटी का सूरज श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या- 181
4. अज्ञातवास श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या -59
5. श्री लाल शुक्ला : एक आलोचना, डॉ. श्याम चरण दुबे।
6. राग दरबारी श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या -7
7. राग दरबारी श्रीलाल शुक्ला, पृष्ठ संख्या- 182
8. आदमी का जहर श्रीलाल शुक्ला, पृष्ठ संख्या-13
9. सीमाएं टूटती है श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या साथ - 60
10. मकान उपन्यास श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या- 11
11. श्री लाल शुक्ला : एक आलोचना-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह।
12. राग विराग श्रीलाल शुक्ल, पृष्ठ संख्या -6
13. श्रीलाल शुक्ल राग विराग, पृष्ठ संख्या -14

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 201-202
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हामिद : समकालीन समाज के लिए सकारात्मक प्रेरणा

–डॉ. श्रीकला यू
सहायक प्राध्यापिका, एन.एस.एस हिन्दू कॉलेज चांगनाचेरी, कोट्टायम, केरल

प्रेमचंद की उत्कृष्ट रचना है ईदगाह। इसमें मानवीय संवेदना और जीवनगत मूल्यों के तथ्यों को जोड़ा गया है। हामिद का चरित्र हमें बताता है कि अभाव उम्र से पहले कैसे बच्चों में बड़ों जैसी समझदारी पैदा करती है। यह सर्वविदित है कि मनोविज्ञान मानव मन की रहस्यानुभूतियों को अनावृत करता है। प्रत्येक व्यक्ति का मनोमय कोश समान परिवेश में भी असमान होता है। बाल मनोविज्ञान के संदर्भ में यह अत्यंत आकर्षक एवं हृदय स्पर्शी पहलू बन जाता है। महान कथा सम्राट प्रेमचंद ने इस रहस्यमय एवं सुलझी हुई पहेली को अपने ढंग से व्याख्यायित करने का प्रयास कई कहानियों के द्वारा किया है। उनकी अति लोकप्रिय एवं बहुचर्चित बालोपयोगी कहानियों से बालकीय निश्छलता, भोलेपन और अनोखी समझदारी से हम रूबरू हो उठते है। पूरे समाज के सम्मुख अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना भी उन्होंने बेहतरीन तरीके से इस तरह की कहानियों के ढांचे में डालकर मूर्त कर दिया है। ईदगाह भी एक ऐसी ही कहानी है जिसके माध्यम से बाल मन की सकारात्मक सोच की अभिव्यक्ति दी है।

ग्रामीण एवं मध्यवर्गीय जीवन के चितेरे प्रेमचंद युवा, नारी, वयस्क तथा बालमन के हालातों का बयान करते हुए इतना वैविध्य पूर्ण कथा संसार पूरे समाज के लिए प्रस्तुत किए है जिससे वह समकालीन साहित्य विमर्श की सीढ़ियों के हर पड़ाव पर अपना मील पथर छोड़ते हैं। बाल मनोविज्ञान बच्चों के मानसिक स्थितियों का जांच पड़ताल करनेवाला विज्ञान है। हसना, रोना परिवेशगत संघर्षो से जूझकर हारना, जीतना जैसे कई समस्याओं का अध्ययन बाल मनोविज्ञान करता है जिस पर आधारित कहानी है ईदगाह। इस कहानी को समकालीन बनाने की विशिष्टता प्रेमचंद जी के कहानियों में हमेशा की तरह विद्यमान होते हैं।

ईदगाह शीर्षक कहानी में गरीबी और अभाव से पूर्ण जीवन में भी बालक का सोच उच्च संस्कार से युक्त है। इससे समकालीन ज़िंदगी में जीवनमूल्यों को पुनःस्थापित करने की सकारात्मक प्रेरणा प्राप्त होते हैं। हामिद जैसे छोटे बालक में भी संयम, सहनशीलता, सहयोग एवं परोपकार आदि परंपरागत मूल्यों को पाकर समकालीन समाज की कुंठित, संकुचित तथा विडंबनाग्रस्थ मानसिकता पर प्रहार पड़ता है। इससे निश्चय ही समूह मानसिकता में परिवर्तन की गुंजाइश होता है। प्रेमचंद ने मानवीय संवेदना और जीवनगत मूल्यों से सजाए सँवारे गए एक 4 वर्षीय नन्हे बालक की आदर्श मानसिकता का परिचय हामिद के द्वारा किया है। बालक का चरित्र लेखक की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण को उद्घाटित करनेवाला है जो ईदगाह कहानी का केंद्र पात्र है। हामिद किसी फिल्मी नायक के समान अपनी जागरूक व्यक्तित्व से पाठकों को प्रभावित करता है। बालक अपनी सहज भोलापन और सरलता के साथ ही दूसरी ओर विलक्षण एवं परिपक्वता का भी प्रदर्शन करते हुए एकदम अनोखी तरलता का विस्मयकारी अनुभव दिलाते है। ईदगाह में जाकर साथियों की तरह मिठाई न खाना, अपने लिए खिलौना न खरीदना और अंत में अपनी बूढ़ी दादी के लिए उपयोगी चीज चिमटा खरीदना आदि स्वभावगत विशेषताएं सामान्य पाठक को भी दुबारा सोचने के लिए बाध्य करते है। रोटी सेंकते हुए हर रोज दादी का हाथ जलने का दृश्य उसके मानस पटल पर अंकित हुई थी जिससे पहुंचे जख्म के परिणाम स्वरूप बालक खिलौने की जगह चिमटा को चुनकर वह खरीद लेने का निर्णय कर लेता है। कहानी में –

हामिद ने अपराधी भाव से कहा, 'तुम्हारी उंगलियां तवे से जल जाती थी इसलिए मैं ने लिया'।

इससे प्रेमचंद जी ने साबित किया है बुजुर्गों की तरह बालक मन में भी समस्याओं को समझने एवं सुलझाने की प्रक्रिया सक्रिय हैं। अभाव और गरीबी में पले लड़के को पूरी दुनिया में केवल उसकी दादी है। हामिद अपनी दादी की कठिनाई को यथावत समझने का शायद यह निदान है। माँ-बाप की स्नेह छाया और संरक्षण में बच्चे कम ही अलग ढंग से सोचने को उद्यत होते है। यहाँ परिस्थितिजन्य भावनाओं से ही आमिना की दुर्गति को उसकी पोता हृदयावर्जक रूप में स्वीकार करता है।

कथानक की अद्वितीयता में आर्थिक कठिनाई और अकेलेपन ने सकारात्मक पृष्ट पोषण किया है। परिवेश से थपेड़े खाकर इस कहानी के बालक का चरित्र परिपक्व हो गया हैं। चार वर्षीय उम्र में ही उसके माँ बाप अल्लाह कों प्यारे हो गए। तब से दादी ही उसका पालन पोषण करती है। वह दादी की सीमाओं को अच्छी तरह पहचानता हैं। कहानीकार ने जाने अनजाने ही मध्य वर्गीय माँ-बाप की सीमाओं कों न समझने वाले आधुनिक पीढ़ी के सुपुत्रों कों सोचने का मौका दिया है। यहाँ प्रेमचंद जी का यथार्थवादी दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख मोड़ पर है। रोटी पकाते समय हाथ जल जाने से आमिना की परेशानी देखकर बालक अंदर ही अंदर द्रवित होता था। लेकिन घर में चिमटा नहीं थी। इस अभाव की पूर्ति बालक अपने हाथ में मिले तीन पैसों से करता है। मन ललचाने वाली मिठाइयां सामने पाकर भी उसे काबू में रखता है। अपने बुद्धि एवं कौशल का परिचय देकर कहानी के अंतिम मोड़ पर सबको चौंकाते हुए ही वह चिमटा को पसंद करता है और उसे खरीदकर दादी माँ कों देता है। अपनी सहज सामाजिक चेतना एवं सहानुभूति के साथ प्रेमचंद ने हामिद के चरित्र को उकेर दिया है जो कि बहुत रोचक एवं प्रासंगिक है।

कहानी में चिमटा खरीदने के संदर्भ में हामिद के दी हुई शास्त्रार्थ एवं तर्क नैपुण्य से प्रेमचंद स्वयं संवाद करता हुआ प्रतीत होता है, 'आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लौंडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है जो रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है'। बच्चे देश के कर्णधार और राष्ट्र निर्माता हैं जो भविष्य को सँवारने की दिशा में अवश्य ही कदम उठेंगे। हामिद बालकों की उज्ज्वल भूमिका को अनावृत करने की दिशा में सकारात्मक कार्य करेगा। प्रेमचंद ने सन् 1930 में हंस पत्रिका के संपादकीय में लिखा है कि, बालकों कों प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुणदोष को भीतर से देखें।' निस्संदेह ईदगाह कहानी में प्रेमचंद ने आर्थिक विषमता के साथ-साथ जीवन के आधारभूत यथार्थ को एक बच्चे के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

धन का अभाव चार वर्षीय हामिद को धन वैभव की धौंस दिखाने वाले अपने साथियों के सम्मुख पक्व मति होकर व्यवहार करने के लिए मानसिक रूप से प्रबल बनाता है। कहानी के अंत तक आते-आते हम हामिद को बच्चा होकर भी वयस्क एवं प्रबुद्ध व्यक्ति के स्वरूप में और बुढ़िया आमीना को भोली छोकरी के हाव भाव में पाते हैं। मिठाई छोड़कर, खिलौना को बेकार समझकर तीन पैसे से मात्र चिमटा खरीदकर आए हामिद को देखकर वह इतना आर्द्र हो जाती है कि उसकी आँखों से आँसू की बूंदें टप-टप गिर जाती हैं। हामिद तब भी आमीना के आंसुओं का रहस्य न समझ सका था। दादी माँ की जी पूर्ण तृप्ति और सुख से भर जाती है। वर्तमान भौतिकवादी स्वार्थी जीवन में जहां लोग अपनों को मान-सम्मान, प्रेम-स्नेह नहीं देते वहाँ अपनी दादी के लिए ऐसी सकारात्मक सोच एवं कर्म हामिद को सामान्य से विशिष्ट बनाता है और हमारी चेतना कों झकझोरता एक अनोखी आदर्श प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :–

1. ईदगाह कहानी –प्रेमचंद
2. हंस पत्र्किा का संपादकीय –1930
3. गूगल।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 203-206
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जन–जीवन की लेखिका डॉ0 उषा किरण खान

–पंचमणि कुमारी

वार्ड नं0–13, मोलदियार टोला, मोकामा, जिला–पटना, पिन–803302

सारांश :–

डॉ0 उषा किरण खान ने जनजीवन को अपने यथार्थ अनुभूति द्वारा शब्दों के माध्यम से ऐसे स्थापित कर दी हैं कि वह सजीव हो उठा है। इनका साहित्य समाज का दर्पण है। डॉ0 उषा जी पहली महिला आंचलिक कथाकार के रूप में भी जानी जाती हैं। इन्होंने ना सिर्फ आंचलिकता को सजीवता प्रदान की है बल्कि लोगो की मानसिकता पर भी कड़ा प्रहार किया है। इन्होंने 'आसमान में सात घंटे' कहानी द्वारा यह बताने की चेष्टा की है कि पर्दा घुंघट का हो या फिर बुर्का का। इससे आहत तो स्त्रियाँ ही होती हैं। इन्होंने सीधी–साधी ग्रामीण स्त्री इशरत बानू के कथन द्वारा बुर्का प्रचलन की गाथा सुनाई है। इशरत बानू कहती है, 'हम लोग का गाँव जाहिल है ना, कुछो न मालूम है कि दुनिया में क्या चलन है। ई बुरका–नकाब हम सीखे और पूरे घर की जनाना के लिए खरीदकर लाए।' यह वाक्यांश स्त्री के अस्तित्व में ओझलता के समावेश का सूचक है। डॉ0 उषा जी की लेखनी शाश्वत् है। वह किसी परिपाटी को न धारण करती है और ना ही लीक पर चलती है। वह तो स्वंय जनजीवन की गतिविधियों का दिग्दर्शन कराती है और हमारे समाज को सोचने के लिए बाध्य करती है कि आज का हमारा समाज कैसा है और इसे कैसा होना चाहिए?

आज हमारे समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मानसिक स्थिति क्या है? इनकी लेखनी समाज के समक्ष अनेकों प्रश्न उपस्थित करता है और वह कोई कोरी उपदेश न देकर गहन चिन्तन का भाव व्यक्त करता है। समाज में परिवर्तन के साथ लोंगों की मनोवृति में परिवर्तन की तस्वीर इनके साहित्य में उपलब्ध है।

मूल शब्द– आंचलिकता, जनजीवन, साहित्य, समाज, दिग्दर्शन, मनोवृति।

प्रस्तावना :–

डॉ0 उषा जी की लेखनी मानवीय संवेदना की यर्थाथ अभिव्यक्ति है। साहित्य के पटल पर विराजमान वह एक ऐसी शख्सियत हैं, जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व समाज के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है। इन्होंने 'हसीना मंजिल', 'पानी पर लकीर', 'सीमान्त कथा', 'फागुन के बाद', 'भामती', 'गई झूलनी टूट' तथा अन्य अनेक उपन्यास और कथाओं द्वारा भारतीय समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाया है। इन्होंने भले ही अपनी रचनाओं में मिथलांचल की कथाओं को पिरोया हो परंतु ये कथाएं सम्पूर्ण भारत की मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करती है। इनकी रचना परतंत्र भारत से होते हुए स्वतंत्र भारत की पदयात्रा करती हैं। मनुष्य की सभी भावनाओं की सच्ची तस्वीर इनके साहित्य में उपलब्ध है तथा ये भावनाएं बड़ी जानी पहचानी सी लगती है। इनके साहित्य के अध्ययन के पश्चात् यह पता चलता है कि पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी इनकी कलम की धार से समाज में फैली दुराचार आहत होते रही है। इनके साहित्य में चित्रित पात्र यथार्थ की धरा से उत्पन्न हुए हैं तथा यथार्थ की अनुभूति कराते हैं।

जब हम 'भामती' उपन्यास के मुख्य पात्र भामती को देखते हैं तो हमें अपने समाज की असंख्य महिलाओं की याद दिलाती है, जो अपना सम्पूर्ण जीवन घर और परिवार के लिए न्योछावर कर देती है। डॉ0 उषा किरण खान

जी स्वयं कहती है कि 'मेरे सारे पात्र यथार्थ से उपजे हैं कल्पना से नहीं। आप चाहें तो सशरीर पात्रों से मुलाकात हो सकती है।'[1]

डॉ0 उषा जी के कथा साहित्य हमें जीवन की वास्तविकताओं से अवगत कराती हैं। उनकी लेखनी में एक ओर मिट्टी की सोंधी खुशबू है वहीं दूसरी ओर जीवन संघर्ष का जुझारू स्वर। इनके साहित्य में चित्रित एक-एक पात्र हमें जीवन में कुछ सीखने को प्रेरित करता है। एक हजार वर्ष पहले की प्रेमकथा 'भामती' हमें यह सोचने के लिए विवश करती है कि पंडित वाचस्पति मिश्र ने तो अपनी पत्नी के त्याग का अनुभव कर अपने सम्पूर्ण जीवन की उपलब्धि उनके नाम समर्पित कर दी तथा स्वयं भामती पति वाचस्पति कहलाए। लेकिन क्या इन एक हजार वर्षो की विकास यात्रा के बाद भी हमारा समाज एक गृहणी को यह सम्मान दे पाया है? इतना ही नहीं आज के इस आधुनिक समय में वाचस्पति जी की विचारधाराएं और अधिक प्रासंगिक तब हो जाती है जब हमारे समाज में पुत्र-पुत्री विभेद, भ्रुण हत्या तथा कुल-वंश वृद्धि के नाम पर ना जाने कितनी अमानवीय घटनाएं घटित होती हैं। भामति उपन्यास में पंड़ित वाचस्पति मिश्र जी की यह कथन कितनी यथार्थ सी प्रतीत होती है जब वह भामती से कहते है कि 'तुम संतान को पुरखों की धारा अमर करने का माध्यम समझती हो क्या?...... किसके कुल की पक्ति अभी तक जीवित है।'

सीमान्त कथा उपन्यास को केन्द्र में रखकर यदि हम अपने समाज का अवलोकन करें तो हमें एक गहरी खाई नजर आती है। वैसे तो सीमान्त कथा उपन्यास बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बिहार के जंगलराज के कथा व्यथा को व्यक्त करती है, लेकिन यह उपन्यास मानचित्र की परिधि से निकलकर सम्पूर्ण समाज राजनैतिक व्यवस्था को उजागर करती है। उपन्यास को पढ़कर मन में यह बेचैनी होना स्वाभाविक है कि सामान्य जनजीवन और संवैधानिक धाराओं में कितना फासला है। जो धाराएं 1961 में पारित होकर दहेज निषेध अधिनियम बनता है वह आज भी भयंकर कंकाल की तरह हमारे समाज में व्याप्त है और यह अधिनियम समाज के दरवाजे पर घुटने टेके पड़ा है। इस उपन्यास में डॉ0 उषा जी ने वाणीधर को माधयम बनाकर दहेज प्रथा की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है।

'छप्पर की मुँडेर पर रखा मिट्टी का यह हाथी, जो मेरी बहन की शादी का एक मात्र अवशेष मेरे यहाँ बच गया था।............ आज फिर मेरी एक बहन की शादी हुई है। आज फिर छप्पर पर वैसा ही हाथी बच गया है।........ .. लेकिन आज नहीं रोने वाला मैं, बाबूजी के साथ मैं भी शरीक हूँ...... बाबूजी ने पहली बार मुझसे बराबरी के हिसाब से कहा कि अब दो बेटियों की शादी कैसे होगी। अब तो जमीन भी नहीं बची जो बेचकर दहेज दे सकूँ। लगा मेरे छप्पर पर एक मस्त पागल हाथी, चढ़कर उसे नेस्तनाबूद कर रहा, घर के सभी लोग चिल्ला रहे हैं और मेरी दो बहनें उस छप्पर के नीचे कुँआरी ही बूढ़ी हो गई हैं।'

यह पंक्ति एक पिता की विवशता, भाई की लाचारी, पारिवारिक व्यथा और समाज की क्रूरता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। सीमान्त कथा में लेखिका कथा प्रारंभ करने से पूर्व ही बाबा नागार्जुन की चार पंक्ति लिखती हैं जो इस उपन्यास की पृष्ठभूमि या यूँ कहें कि आज के आधुनिक युग के सच्ची तस्वीर है।

'खेतों में बंदूके उगती, गली-गली में बम बिकता है।
आ तुझको मैं सैर करा दूँ, घर में घुसकर क्या लिखता है।'

यह उपन्यास वाणीधर और बिधुभाल को केन्द्र में रखकर रची गई है। यह दोनों पात्र अपने लक्ष्य के प्राप्ति के लिए यत्नशील हैं। लेकिन राजनीतिक कलाबाजियों की चपेट में आकर त्रासद अंत को पाते हैं। आज भी देश के किसी भी भाग में हमें वाणीधर और बिधुभाल जैसे पात्र मिल जाऐंगे। आज भी गली-चौबारों में कई बिधुभाल की जिन्दा लाशें दफन हैं। आज भी शांति के संदेशवाहक बनने वाले राजनेता ही अशांति की मृदुलवाणी बोलते हैं।

डॉ0 उषा जी जनजीवन से अविच्छन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने अपने परिवेश और उससे उत्पन्न परिस्थितियों से समाज को अवगत कराया है। वह कहती हैं कि 'मैं समाज से बटोरे गये अनुभव विकास की धीमी प्रक्रिया से भी

अधिक धीमी सरकने वाली शिक्षा के कारण वंचित मानवता एवं अधकचरी अंध–व्यवस्था के फलस्वरूप स्वतंत्रता की अर्थव्यवस्था खोने के आतंक से उबरने के लिए लिखती हूँ।'[2]

इन्होंने स्त्रियों को केन्द्रबिन्दु में रखकर कई उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। इनके लेखनी ने स्त्रियों की हरेक पीढ़ी को बहुत ही सच्चाई से प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यास 'पानी पर लकीर' में जलजा और सोनी जैसे पात्र हैं जो जीवन के असंख्य कठिनाइयों का सामना करते हुए पानी पर भी लकीर खींचने को तत्पर हैं। डॉ0 उषा किरण खान जी ने भी कहा है कि 'मेरा स्त्री विमर्श इसी प्रकार का है। मैं अपने गाँव और महानगर में बसे स्त्रियों की भूख की, सम्मान की, अस्मिता की, तनी गर्दन वाली स्त्री की कहानी कहती हूँ।'[3] दूसरी ओर 'साँझ भई', 'किसी से न कहना', 'लौट आ ओ समय', 'गये माघ उनतीस दिन बाकी' जैसी कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में वृद्धों की स्थिति को बखूबी बताया है। किस तरह उम्र के इस पड़ाव में आकर वृद्ध लोग जीवन जीना छोड़ देते हैं इसकी भावात्मक प्रस्तुती इन कहानियों में की गई है।

इनके उपन्यास हसीना मंजील को मोटे तौर पर देखने पर यह लहेरी समाज की कथा–व्यथा प्रस्तुत करती है, पर इसमें कितनी सारी मानवीय संवेदनाएं कूट–कूट कर भरी हुई है जो हमें समाज में संघर्षरत महिलाओं के जीवन को दर्शाता है। लेखिका का यह वक्तव्य कि 'लोमड़ी की तरह सकीना अपनी तकदीर पायी है। दिनभर माँद खोदती है लोमड़ी और रात तक उसकी पूँछ समाने योग्य मात्र जगह तैयार होती है।'

'गई झूलनी टूट' उपन्यास कमलमुखी के माध्यम से ना सिर्फ ग्रामीण जीवन बल्कि शहरी परिवेश में गुजर–बसर करने वाले निम्न वर्गीय परिवार की स्थिति को दर्शाया है। शहरी परिवेश में घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री को किस प्रकार छला जाता है उसकी सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास की मर्ममान्तक व्यथा यह भी है कि वैवाहिक संबंध विच्छेद और नये संबंध निर्माण के बीच एक कड़ी बालमन की भी है जो सहज रूप से इस संबंध और विच्छेद की पीड़ा को झेलते हैं।

अगर हम इनके उपन्यास 'फागुन के बाद' को पढ़ते हैं तो इसमें ग्रामीण परिवेश अपनी सम्पूर्णता में विद्यमान है। इस उपन्यास में ब्राह्मण जाति में वैध्वय जीवन की विडम्बना भी है और मूसहर समाज की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को भी दर्शाया गया है। इस उपन्यास में जमीनदार परिवारों के विघटन को भी दर्शाया गया है तथा उनके घरों में कार्यरत कामगारों की स्थिति को भी व्यक्त किया गया है।

'मौसम का दर्द' कहानी संग्रह में बारह कहानियाँ हैं जिसमें 'मौसम का दर्द', 'पाखंड पर्व', 'आग के फूल', 'कौस्तुभ स्तंभ' जैसी प्रचलित कहानियाँ हैं। 'कौस्तुभ स्तंभ' कहानी बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र की विपद स्थिति को दर्शाता है। यह कहानी उन राजनेताओं की भी सच्चाई बताती है जो यहाँ के लोगों के वोटों से जीतकर स्वंय तो राजधानी में शानो–शौकत से जीवन व्यतीत करते हैं तथा उनके क्षेत्र की जनता बाढ़ से बेहाल नारकीय जीवन भोगते हैं। 'आग के फूल' कहानी में कालिन्दी के माध्यम से नारी के चरित्र पर उछाले गये कीचड़ को दर्शाया गया है। चरित्रवान नारी को प्रश्न के कटघरे में खड़ी कर तरह–तरह के जुल्म कर चरित्रहीन बताया गया।

अतः डॉ0 उषा किरण खान की लेखनी समाज की हरेक पहलू से होते हुए मानव की जिजीविषा की कहानी कहती है। वह साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय रचनाकार हैं। इनके विषय में गीताश्री ने सच ही लिखा है कि 'हिन्दी कहानी की वर्तमान धारा क्या है और उसकी कसौटी पर कौन–सी कहानी कसी जा सकती है या कसी नहीं जा सकती है, इन सबसे बेखबर उषा किरण जी ने अपने परिवेश की स्त्रियों और आम लोंगों के सवालों, समस्याओं को उठाया है, बेहद सहज संवेदनाओं और जागरूकता के साथ। कुछ भी बनावटी नहीं है, न ही कहानियों के पात्र, न ही ग्रामीण परिवेश।'[4]

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ0 उषा किरण खान 'भामती', सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ सं0-134
2. डॉ0 उषा किरण खान 'सीमान्त कथा' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ सं0-5 वहीं से पृष्ठ सं0-139, 140
3. डॉ0 उषा किरण खान 'हसीना मंजील' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005
4. डॉ0 उषा किरण खान 'फागुन के बाद' अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017 पृष्ठ सं0-7
5. डॉ0 उषा किरण खान 'गई झूलनी टूट' किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018
6. डॉ0 उषा किरण खान 'पानी पर लकीर' प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009
7. डॉ0 उषा किरण खान 'मौसम का दर्द' अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 की भूमिका से
8. वहीं आग के फूल कहानी, पृष्ठ संख्या 31
9. वहीं कौस्तुभ स्तंभ कहानी, पृष्ठ संख्या 104
9. डॉ0 उषा किरण खान की 'लोकप्रिय कहानियाँ' प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, सांझ भई कहानी, पृष्ठ संख्या 24
10. वहीं, किसी से न कहना कहानी, पृष्ठ संख्या 56
11. वहीं, लौट आ ओ समय कहानी, पृष्ठ संख्या 66
12. वहीं, गये माघ उनतीस दिन बाकि कहानी, पृष्ठ संख्या 76
13. वहीं, आसमान में सात घंटे कहानी, पृष्ठ संख्या 93

मो0-7004725802

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 207-215
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुँवर नारायण के ‘कोई दूसरा नहीं‘ काव्य संग्रह में सामाजिक सरोकार

–रेखा
Research Scholar, Hindi Vibhag Punjab University Chandigarh, Arts Block 2, Sector 14, Chandigarh

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका अस्तित्व पूर्णतया समाज पर निर्भर करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में उसकी अनेक आवश्यकताएँ हैं, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह दूसरों से सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है। जिनसे वह सहयोग प्राप्त करता है, उनकी भी अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। वे भी अपने लिए दूसरों से सहयोग की अपेक्षा करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी प्राणी को जीवित रहने के लिए एक–दूसरे के सहयोग की आवश्यकता होती हैं। इस आपसी लेन–देन में उसे संघर्ष और विरोध का सामना भी करना पड़ता हैं। सहयोग प्राप्त हो अथवा न हो, परन्तु इतना तो निश्चित होता ही है कि हमारे सम्बन्ध उन सभी से जाने–अनजाने में बन जाते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष–परोक्ष सम्बन्धों का ताना–बाना मनुण्य के चारों ओर छाया रहता हैं। सम्बन्धों के इस ताने–बाने अथवा जाल को समाज कहते हैं।

सामाजिक आवश्यकताएँ ही सामाजिक सम्बन्धों की जननी हैं, जिनकी व्यक्ति के बिना कल्पना भी नहीं कर सकते। आवश्यकताओं के साथ–साथ व्यक्ति के स्वार्थ भी जुड़ जाते हैं और धीरे–धीरे अच्छे–बुरे, सम्बन्धो का जाल बनता चला जाता है। इसी को समाज कहा जाता है। राइट के अनुसार– ‘मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जाता, अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के संबंधों की व्यवस्था का नाम हैं।’[1]

विदेशी विचारक रेयुटर के अनुसार –‘जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं, बल्कि जीवित रहने की एक प्रक्रिया है। उल्लेखनीय है कि यहाँ सम्बन्धों से अभिप्राय मानव–संबंधों से हैं।[2]

व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अंग है। व्यक्ति साधन है तो समाज साध्य है। व्यक्ति–व्यक्ति के मेल से समाज का निर्माण होता है। समाज अपने परिवेश के कारण व्यक्ति को सही व्यक्तित्व प्रदान करता है। इसी कारण दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर–परिवार, पड़ोस, व्यावसायिक कार्य–क्षेत्र, भाषाई और सांस्कृतिक परिवेश का सदस्य होता हैं। ‘मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर हैं। वह थोड़े समय के लिए समाजरूपी रंगमंच पर आता है और निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करने की भूमिका अदा करता है। जीवनपर्यन्त अपने को समाज के अनुकूल बनाए रखना और उसके विकास का साधन मात्र बने रहना ही उसका चरम लक्ष्य होता हैं।’[3] कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में समाज और उसकी बहुविध समस्याओं का विविध आयामों में सशक्त चित्रण किया है। उनकी इस प्रवृत्ति ने साहित्य में वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता पर बल दिया है। उनके साहित्य की मुख्य संवेदना सामाजिक समस्याओं के चित्रण से संबंधित है।

आज वह मनुष्य के उस भयावह और त्रासद यथार्थ को चित्रित करते हैं, जिसके कारण व्यक्ति की जीवन जीने की स्थितियाँ कठिन होती जा रही है। इस प्रकार कुँवर नारायण की कविताओं में सामाजिक परिदृश्य इस रूप में चित्रित हुआ है कि एक ओर तो वह जीवन की विषमताओं एवं विसंगतियों को प्रत्यक्ष करता है, दूसरी ओर वह समाज की गली–सड़ी मान्यताओं, परम्पराओं और भ्रष्ट आचरण को जड़मूल से उखाड़ फेकने की समानान्तर सोच रखता

है। कविता मनुष्य को अधिकारों के प्रति सजग, संघर्षशील तथा मुक्ति कामना के लिए प्रेरित करता है। कुँवर नारायण आधुनिक कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। कवि, कथाकार और विचारक होने के साथ-साथ कुँवर नारायण एक संवेदनशील समीक्षक भी हैं। आधुनिक कवियों में कुँवर नारायण ने अपनी गंभीर और विशिष्ट पहचान बनाई। हिन्दी कविता के मंथन की प्रक्रिया को जिन कवियों ने सतत् जारी रखा उसमें आलोच्य कवि का नाम अग्रणी पंक्तियों में हैं। समाज को नये सिरे से आविष्कृत करने वाले आधुनिक बोध के कवि कुँवर नारायण एक साथ सामाजिक चेतना आदि स्तरों पर लगातार अपने को सक्रिय रखते हैं। कवि के काव्य में निरूपित सामाजिक सरोकारों को उनके काव्य-संग्रह 'कोई दूसरा नहीं' में विभक्त कर आरेखित कर सकते हैं। 'कोई दूसरा नहीं' कुँवर नारायण का छठा काव्य-संग्रह हैं। उनकी कविताओं में भाषा और अनुभव की विविधता को एक केंद्रीय संवेदना से बाँधे रखने की अद्भुत क्षमता हैं। कुँवर नारायण की कविताओं में जगह-जगह यथार्थ की तीखी कड़वाहट हैं, साथ ही सहजता और कोमलता का स्पर्श भी जो निराडम्बर, गहरे और उदात्त मानवीय संस्कारों के साथ घनिष्ठ संबंध रखता है। इस संकलन में कुँवर नारायण की अनेक कविताएँ अनके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। कुँवर नारायण व्यक्ति के हित में कविता करते हैं। कवि का दृढ़ विचार है इस सृष्टि में मनुष्य होना सौभाग्य का प्रतीक है, इसलिए किसी भी 'व्यक्ति को विकार की तरह नहीं पढ़ना चाहिए-

'समाज के लक्षणों को
पहचान ने की लय
व्यक्ति भी हैं,
अवमूल्यित नहीं
पूरी तरह सम्मानित
उसकी स्वयता
अपने मनुण्य होने के सौभाग्य को
ईश्वर तक प्रमाणित करती हुई।'[4]

मनुष्य की सर्वोच्चता के कारण ही मनुष्यता जीवित रह सकती है। 'सम्मेदीन की लड़ाई' कविता अपने नैतिक साहस के साथ के लड़ते हुए गाँव के एक आम आदमी की कविता है। वह भ्रष्टाचार के विरूद्ध बिल्कुल अकेला लड़ रहा है। निकट भविष्य में उसका मारा जाना तय है। एक चक्रव्यूह में घिरा वह निरंतर लहूलुहान हो रहा है। लेकिन कविता का अंत बताता हैं कि उसका अंत नहीं हैं क्योंकि -

'बचाये रखना
उस उजाले को
जिसे अपने बाद
जिन्दा छोड़ जाने के लिए
जान पर खेल कर आज
एक लड़ाई लड़ रहा है
किसी गांव का कोई खब्ती सम्मेदीन।'[5]

इस रचना की सही जमीन तो वह मनुष्य है जो मूल्य के लिए युद्व लड़ना और लहूलुहान होता है, जो इस कविता के अंत को छोड़ पूरे समाज में समाया है। यही कुँवर नारायण की वास्तविक जमीन है। सम्मदीन स्वयं कुँवर नारायण ही हैं जो अपनी कविताओं के द्वारा समाज के भ्रष्टाचार के खिलाफ स्वतंत्र खड़े हैं। 'दुनिया को बड़ा रखने की कोशिश' नामक कविता में कवि की आस्थावादी दृष्टि है।

'पराजय यही है कहते हुए
जब भी मैंने विद्रोह किया
और अपने छोटेपन से ऊपर उठना
मुझे लगा कि अपने को बड़ा रखने की।
छोटी-से-छोटी कोशिश भी
दुनिया को बड़ा रखने की कोणिण है।'[6]

उपर्युक्त पक्तियों में कवि मानव कल्याण के लिए अंतिम सांस तक डटे रहने की आस्था को बल देने के साथ-साथ व्यक्ति को आस्थावादी होने का उपदेश दे रहे है। कुँवर नारायण ने अपनी सहज स्वाभाविक सामाजिकता की लीक से हट कर नए ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। कुँवर नारायण का संपूर्ण काव्य संपूर्ण काव्य संघर्ष का काव्य है। जीवन के विविध क्षेत्रों के संघर्ष को वाणी देने के लिए इन्होनें कविता को ही सशक्त माध्यम के रूप में चुना है। कुँवर नारायण सामाजिक परम्पराओं के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों को निरूपित करते है। वे आशावादी स्वर में कहते है-

'अबकी अगर लौटा तो
मनुण्यत्तर लौटूँगा
अगर बचा रहा तो
कृतज्ञतर लौटूँगा
अबकी अगर लौटा तो
हताहत नहीं
सबके हिताहित को सोचता पूर्णतर लौटूँगा।'[7]

'अबकी अगर लौटा तो' कविता में कवि अपने साथ चल रहें लोगों को भी जगह देने का पक्षधर हैं, उन्हें भूखी शेर-आँखों से वह नहीं देखना चाहता। कवि सबके हित की बात सोचता है। आस्थावादी होने से ही समाज में परिवर्तन की लहर चल सकती है आस्था कुँवर नारायण की कविताओं में प्रमुखता से उभर कर सामने आती है जो जीवन में आशा का संचार करती हैं। 'खेल में' कविता की पक्तियाँ -

'आज में शब्द नहीं
किसी ऐसे विश्वास की खोज़ में हूँ
जिसे आदमी में पा सकूँ।'[8]

कुँवर नारायण एक ऐसे मार्ग को भी जानते है जिस पर चलकर मनुष्य विश्वास और आस्था के साथ यान्त्रिकता से उत्पन्न आपाधापी की स्थिति से बच सकते है। सांस्कृतिक काँति के नाम पर होने वाले मूल्यगत विघटन की चरम परिणिति का निरूपत कुँवर नारायण ने अपनी इन काव्य पंक्तियों में प्रस्तुत किया हैं।

'हर बड़ी जल्दी को
और बड़ी जल्दी में बदलने की
लाखों जल्दबाज मशीनों का
हम रोज़ आविष्कार कर रहें है
ताकि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई
हमारी जल्दियाँ हमें जल्दी से जल्दी
किसी ऐसी जगह पहुँचा दें

जहाँ हम हर घड़ी
जल्दी से जल्दी पहुँचाने की जल्दी में है।
मगर कहाँ?
यह सवाल हमें चौकाता है।
यह अचानक सवाल इस जल्दी के
जमाने में हमें पुराने जमाने की याद दिलाता है।'[9]

कुँवर नारायण ने 'जल्दी' कविता में आज के वर्तमान युग की आपाधापी और स्वार्थपरता पर प्रकाश डाला हैं। यांत्रिकता के इस युग में जहाँ मानव एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अपने संस्कार और सभ्यता को नष्ट करते जा रहे है। यह कविता उन सब लोगों पर एक व्यंग्य है। खोखली आधुनिकता पर कुँवर नारायण ने अपनी कविता 'मुकदमें' में भी व्यंग्य किया है -

'जिन्हें सुनाई गयी
मौत की सज़ा
कब के मर चुके थे
जिन्हें रिहाई दी गई
पूरी सज़ा काट चुके थे।'[10]

'मुकदमें' कविता में कुँवर नारायण ने देश के न्याय व्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। कुँवर नारायण न्याय व्यवस्था में सुधार लाना चाहते है। फैसलों के आजीवन इन्तजार में लोग थककर चूर हो जाते है। जो कब के मर चुके होते है उन्हें मौत की सज़ा सुनाई जाती है और जिन्हें रिहाई दी जाती हैं वे पूरी सज़ा काट चुके होते है आज आधुनिक युग में भी आम आदमी को न्याय नही मिल रहा है। आज की आधुनिकता कवि को खोखली आधुनिकता प्रतीत होती है। सामाजिक समता एवं सद्भावना के लिए कवि का दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए। समाज की परिस्थितियाँ कभी भी समान नहीं होती, उनके पीछे कई अन्य कारण भी होते है। सामाजिक समता एवं सद्भाव में धार्मिक कट्टरता सबसे बड़ी बाधा को बड़े ही यथार्थ रूप में चित्रित किया है। 'अयोध्या 1992' नामक कविता में लिखा है-

'हे राम,
जीवन एक कटु यथार्थ है
और तुम एक महाकाव्य!
तुम्हारे बस की नहीं
उस अविवेक पर विजय
जिसके दस बीस नहीं
अब लाखों सिर-लाखों हाथ है,
और विभीषण भी अब
न जाने किसके साथ है।'[11]

कवि प्रभु श्रीराम को सम्बोधित करते हुए कहते है कि वर्तमान में विवेक, सद्भाव को कोई महत्त्व नहीं देता है। रावण के तो दस सिर थे, लेकिन वर्तमान साम्प्रदायिक रूप रावण के लाखों सिर है और विभीषण का भी कही पता नहीं है। अब तो सारी धार्मिकता सद्भावना अयोध्या तक ही सीमित हो गई है। अर्थात् वर्तमान राजनीति के लिए साम्प्रदायिक एक साधन मात्र है-

'इससे बड़ा क्या हो सकता है
हमारा दुर्भाग्य
एक विवादित स्थल में सिमट कर
रह गया तुम्हारा साम्राज्य।'[12]

'अयोध्या 1992' कविता में जीवन के कटु यथार्थ पर प्रकाश डालते हुए कवि ने देश की राजनीति में व्याप्त अविवेक पर प्रहार किया है। राम-राज्य एक विवाहित स्थल में सिमट कर रह गया है। अयोध्या इस समय राम की अयोध्या नहीं योद्धाओं की लंका है और मानस चुनाव का डंका है। नेता-युग में त्रेता-युग का राम खो गया है, मर्यादा पुरूषोत्तम को सपत्नीक किसी अन्य धर्मग्रंथ में शरण लेनी चाहिए क्योंकि वाल्मीक-आश्रम भी अब भारत के जंगल में दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। साम्प्रदायिकता का कीड़ा आज भी हमारे समाज को खोखला कर रहा है। वर्तमान राजनीति का आधार ही लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काना और अपना वोट बैंक मजबूत करना मात्र रह गया है। 'महाभारत' नामक कविता में कवि ने इसी तथ्य को वाणी दी है - धृतराष्ट्र अन्धे।

'विदूर-नीति हुई फेल।
धर्मराज धूर्तराज दोनों जुआड़ी
पाँसे खूनखनाते हुए
राजनीति में शकुनी का प्रवेश।
न धर्मक्षेत्रे न कुरूक्षेत्रे।
सीधे सीधे चुनाव क्षेत्रे-
जीत की प्रबल इच्छा से
इकट्ठा हुए महारथियों के
युद्व का श्रीगणेश।
छलों के दलदल में जुझ रहे
आठ धर्म अट्ठारह भाषाएँ अट्ठाईस प्रदेश।'[13]

'महाभारत' कविता में भी वर्तमान राजनीति पर कटाक्ष किया गया है। जिस तरह अंधे धृतराष्ट्र के हाथों में सत्ता होने से महाभारत जैसा युद्व हुआ वैसे ही आज की वर्तमान स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। कवि की चिंता का विषय साम्प्रदायिकता विषमता ही नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था से कवि चिन्तित दिखाई दे रहे है-

'फिलहाल, चिंता के केन्द्र में
केवल एक दाँत का दर्द नही
वह पूरी पंक्ति है जड़ से जो सड़ चुकी।'[14]

सामाजिक सद्भाव एवं समता के लिए कवि चाहता है कि हमारी पहचान किसी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय के संस्कुचित दायरे में बंधी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इसी के नाम से लोग लड़ते-झगड़ते है और सामाजिक समता, सद्भाव को हानि पहुँचाते है। कुँवर नारायण की कविताओं में एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि उनमें निहित पात्र या भाव किसी सप्रदाय या वर्ग विशेष के नहीं होते। कवि की दृष्टि इन बंधनों से ऊपर है। कवि असमानता के खिलाफ है, तभी तो वह एक नौकर के बच्चें को देखकर कहता है -

'इतना क्यों समझना होगा आखिर
उस नादान बच्चें को
कि वह मालिक के बच्चें का
छोटा या बड़ा भाई नहीं?'[15]

कुँवर नारायण की कविताओं के विषय विविधता पूर्ण कथ्यों से भरे हुए है, लेकिन इन सभी विविध कथ्यों को एक उद्देश्य तहत रखा गया है। कुँवर नारायण के काव्य विषय प्रकृति, प्रेम, पाखण्ड-विरोध, सांप्रदायिक समरसता, वैश्विक चेतना आदि कविताओं के विषय हैं। इसी कारण तो कवि की कविताओं का सामाजिक परिदृश्य अत्यन्त व्यापक है। वे सामाजिक असंतुलन से निराश नहीं होतें, बल्कि हमेशा एक कोशिश में रहते है कि कैसे समाज में मानवीयता की स्थापना हो। वे जिन्दगी से भागना नहीं, बल्कि जुड़ना चाहते हैं और अपने विश्वास एवं दृढ़ता के बल पर कुछ ऐसा करना चाहते है जिससे समाज में पैदा हुई यान्त्रिकता मनुष्यता में तब्दील हो सके।

'मैं जिन्दगी से भागना नहीं
उससे जुड़ना चाहता हूँ।
उसे झकझोरना चाहता हूँ
उसके काल्पनिक अक्ष पर
ठीक उस जगह जहाँ वह
सबसे अधिक बेध्य हो कविता द्वारा
यांत्रिकता की अपेक्षा
मनुष्यता की ओर ज्यादा सरका हुआ।'[16]

'उत्केन्द्रित' कविता में कवि जिन्दगी से भागना नहीं उससे जुड़ना चाहता है, उसे झकझोरना चाहता है। जीवन के आच्छादित शक्ति-स्रोत को पहले तो सधे हुए प्रहारों द्वारा विचलित करना चाहता है फिर उसे कीलित कर जाना चाहता है। कवि यांत्रिकता की अपेक्षा मनुष्यता को प्रगति की ओर अग्रसर होने के लिए अधिक महत्व देता है। भौतिकता एवं आधुनिकता के कारण आज का युग मशीनीकरण में तब्दील हो गया है, जिसने मनुष्य को भावनाओं को सारहीन एवं निर्जीव बना कर रख दिया है। 'आँकड़ों की बीमारी' नाम कविता में कवि ने इस तथ्य को आरेखित किया हैं -

'एक बार मुझे आँकडों की उल्टियाँ होने लगी
डॉक्टर ने समझाया
आँकडों का वाहरस
बुरी तरह फैल रहा आजकल
आँकड़ों पर कोई दवा काम नहीं करती।'[17]

'आँकड़ों की बीमारी' कविता आँकड़ों की राजनीति को उजागर करती है जिसमें आम आदमी कभी भी होश खो बैठता हैं। कवि महसूस करता है -

'खतरों से सावधान कराते किसी संकेत चिह्न में
बदल गई थी डॉक्टर की सूरत
और मैं आँकडों का काटा
चीखता चला जा रहा था
कि हम आँकडे नहीं आदमी है।'[18]

'आँकडों की बीमारी' कविता आँकड़ों की राजनीति को उजागर करती हैं जिसमें आम आदमी कभी भी होश खो बैठता है। कवि महसूस करता हैं। -

'खतरों से सावधान कराते किसी सकेंत चिह्न में
बदल गई थी डॉक्टर की सूरत

और मैं आँकड़ों का काटा
चीखता चला जा रहा था
कि हम आँकड़े नहीं आदमी हैं।'[19]

'आँकड़ों की बीमारी' कविता में कवि महसूस करता है कि इस देश में हर एक को अफसोस के साथ जीने का हक है वरना आज़ादी और प्रजातंत्र का अर्थ ही क्या है। 'आँकड़ों की बीमारी' कविता एक व्यंग्य कविता है जिस में राजनीति से प्रभावित हुए लोगों की स्थिति को उजागर किया है। आधुनिक मानव की यांत्रिकता एवं वर्तमान की जटिलता को कवि ने अत्यन्त गहरे भाव से व्यक्त किया है। दूसरी तरफ हमारे ईमान एवं धर्म भी कुण्ठित हो चुके हैं, जिसके पास समय तो है, लेकिन अपने लिये या अपनों के लिए नहीं।

इस प्रकार कवि ने अपने समय के भद्दे यथार्थ को बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है। यथार्थ बोध ही किसी रचनाकार को सत्य के प्रति आस्थावान बनाता है वही वर्तमान के प्रति उत्तरदायी भी बनाता है। कवि कुँवर नारायण ने अपने काव्य संसार में नारी की विभिन्न स्थितियों को निरूपित किया है। नारी के प्रेमिका रूप के साथ-साथ माता का स्वरूप, साथ ही एक पतिव्रता का रूप भी चित्रित हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते है कि नारी की समाज में विभिन्न प्रकार की स्थितियों को कुँवर नारायण ने अपने काव्य में चित्रित किया है। 'मालती' नामक कविता में कवि मालती नामक बेल के माध्यम से स्त्री-अस्मिता की प्रतिष्ठा करते हुए लिखते है -

'आज अचानक क्या हो गया तुझे?
क्या तेरा बच्चा बीमार है?
क्यों इस तरह सिर झुकायें
गुम-सुम खड़ी है मालती।'[20]

'वह जो' नामक कविता में कवि घर की कामकाजी महिलाओं के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कहते है -

'वह जो मुँह अँधेरे उठ कर
घर के कामकाज में लग गई
एक बहुत बड़ी छाया है
जो इस दुनिया पर छाई है।'[21]

इस तरह कवि ने स्त्री-श्रमशीलता के प्रति अत्यन्त उदारता से अपनी भावनाएँ व्यक्त की है। इसके अतिरिक्त कवि ने स्त्री की सामाजिक यथास्थिति को भी आरेखित किया है।

कवि ने अपने काव्य में जो दलित विमर्श प्रस्तुत किया है वह किसी जाति आधारित न होकर मानवीय आधारित है। अर्थात् कवि की दृष्टि में वह मनुष्य दलित की श्रेणी में आता है जिसका व्यवस्था, समाज, शोषण कर रहा है। ऐसे ही शोषित जन की संवेदना को वाणी देते है। कवि निम्न वर्ग के शोषण से अत्यन्त आहत है। 'पालकी' नामक कविता में भी कवि ने गाँव के शोषण को दिखाया है -

'इस गाँव से उस गाँव तक
नंगे बदन, फेटा कसे,
बारात किसकी ढो रहें?
किसी कहानी में फँसे?
यह कर्ज पुश्तैनी अभी किश्ते हजारों साल की
काँधें धरी यह पालकी है किस कन्हैयालाल की।'[22]

कवि ने 'पालकी' कविता में गाँव के लोगों के जीवन का यथार्थ रूप दिखाया है। गाँव के लोग अब भी दबे

हुए है उन पर अब भी कर्ज है। अर्थात् उच्च वर्ग के लोग आज भी गाँव के सीधे-साधे लोगों का शोषण कर रहें है। आज हम 21वीं शताब्दी में जी रहें हैं लेकिन हमारे गाँव के विकास का ग्राफ अब भी वही का वही है। एक 'जन्म दिन जन्मस्थान पर' नामक कविता में कवि उपरोक्त तथ्यों को वाणी देते हुए कहते हैं-

'घोड़ी बेच घिर्राऊ रिक्शा ले आये,
इक्का-दिन बीते अब रिक्शा-दिन आये
एक जून दाल भात, एक जून चना,
भरते पेट घोड़ी का कि भरते पेट अपना
जान लिए लेती है रिक्शा खिचाई
बाकी कमर तोड़ रही बढ़ती मँहगाई।'[23]

हज़ारों लाखों ऐसे मजदूर है जो दिनभर काम करके भी दो वक्त के खाने का जुगाड़ नहीं कर पा रहे हैं। 'रिक्शा पर' नामक कविता में कवि रिक्शा चालकों की दयनीय स्थिति को आरेखित करते हुए लिखते है-

'आगे भी कठिन चढ़ाई
देखा रिक्शा वाले ने तो ताकत भर एड़ लगाई
लेकिन गरीब की हिम्मत
हद भर मोटे के आगे कुछ ज्यादा काम न आई।'[24]

इस प्रकार यहाँ भी कवि ने मजदूरों एवं मेहनतकशों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है। इस प्रकार 'आदमी का चेहरा' नामक कविता में भी कवि ने कुली के माध्यम से उनके श्रम को सलाम किया है।

अक्सर हम गरीब, मज़दूरों को हक के साथ डाँट तो देते है, लेकिन कभी उनके कठोर परिश्रम की महत्ता को आरेखित नहीं करते। प्रस्तुत कविता में ऐसे ही श्रमजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले कुली के परिश्रम की महत्ता को आरेखित करते हुए कवि कहते हैं।-

'कुली! पुकारते ही
कोई मेरे अन्दर चौका। एक आदमी
आकर खड़ा हो गया मेरे पास।
सामान सिर पर लादे
मेरे स्वाभिमान से दम कदम आगे
बढ़ने लगा वह
जो कितनी ही यात्राओं में
ढो चुका था मेरा सामान।'[25]

दलित-विमर्श किसी जाति विशेष के दायरे में नहीं आता है। कवि की नज़र में तो वो सभी इसकी श्रेणी में आतें है जिसका शोषण होता है।

'आज जिन सरोकारों का बोलबाला है उसमें राजनीति का वर्चस्व है, सामाजिक बोध की तूती बोल रही है। इन सरोकारों में नैतिक चेतना की जगह कहाँ? इस सब-कुछ राजनीति से जोड़कर और उसी के शक्ति-संघर्ष की पदावली में सोचने-समझने के इतने आदि हो चुके हैं कि हमें नीति व्यर्थ और हाशिए का मामला लगती है। बीसवीं सदीं राजनीति की सदीं है, नीति की नहीं। कुँवर नारायण को राजनीति से गुरेज़ नहीं, पर वे राजनीतिक सचाई के नैतिक आशय को विन्यस्त करने की चेष्टा करते हैं।'[26]

विविधता कुँवर नारायण की विशिष्टता है क्योंकि जीवन को अनुभूति और चिन्तन के विभिन्न धरातलों पर

ग्रहण करने वाले कवि कुँवर नारायण अपनी कविताओं में सीमाएँ नहीं बनातें। अधिकांश कविताओं का पैनापन जिन्दगी के कई हिस्सों को बिल्कुल नये ढंग से छूता हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. Weight,Elements of Sociology, P. 5
2. पाण्डेय, डॉ0 रामसजन, कविवर डॉ0 हरमहेन्द सिंह बेदी, पृ. 35
3. सिंह, रवीन्द कुमार, दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 30
4. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 48
5. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 19
6. वही, पृ. 13
7. वही, पृ. 9
8. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 90
9. वही, पृ. 80
10. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 105
11. वही, पृ. 70
12. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 70
13. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 69
14. वही, पृ. 99
15. वही, पृ. 116
16. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नही, पृ. 7
17. वही, पृ. 46
18. वही, पृ. 47
19. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 47
20. वही, पृ. 129
21. वही, पृ. 141
22. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नही, पृ. 14
23. वही, पृ. 148
24. नारायण, कुँवर, कोई दूसरा नहीं, पृ. 117
25. वही, पृ. 92
26. मिश्र, यतीन्द्र, कुँवर नारायण : उपस्थिति-2, पृ. 173

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 216-219

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਲੁਬਾਣਾ ਕਬੀਲੇ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਪਿਛੋਕੜ

-ਅਸਸਟ. ਪਰੋਡ.

ਅੰਅੰਧਓਓਫ ਖਅ੍ਹ, ਘਘਸ਼ ਖਹਓਲਸਓ ਚੋਲਲਏਗਏ ਡੋਰ ੋਮਏਨ, ਖਓਮਓਲਪੁਰਓ (.ਲਧੁ)

ਹਰ ਸਭਿਆਚਾਰ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਛੋਟੇ ਵੱਡੇ ਕਬੀਲਿਆਂ ਦਾ ਸਮੂਹ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਵੀ ਕਈ ਕਬੀਲੇ ਬਾਹਰੋਂ ਪਰਵਾਸ ਕਰਕੇ ਆਏ ਹੋਏ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਕੁਝ ਕਬੀਲੇ ਆਪਣੀਆਂ ਮੁੱਢਲੀਆਂ ਰਵਾਇਤਾਂ ਅਤੇ ਰਹਿਣੀ-ਬਹਿਣੀ ਨੂੰ ਗਵਾ ਕੇ ਸਭਿਅਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਗਵਾ ਚੁਕੇ ਹਨ ਅਤੇ ਕੁੱਝ ਕਬੀਲਿਆਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਭਾਸ਼ਾ , ਕਿੱਤੇ , ਰਹਿਣ-ਸਹਿਣ ਅਤੇ ਰਸਮ-ਰਿਵਾਜ ਪੱਖੋਂ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਅਜੇ ਕਾਇਮ ਰੱਖੀ ਹੈ।

'ਕਬੀਲਾ' ਅਰਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਸ਼ਬਦ ਹੈ। ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ ਨੇ ਮਹਾਨ ਕੋਸ਼ (1990:298) ਵਿੱਚ ਇਸਦੇ ਅਰਥ ਇਓਂ ਦਿੱਤੇ ਹਨ:- ਕਬੀਲਾ ਦਾ ਅਰਥ ਹੈ: ਪਰਿਵਾਰ, ਕੁਟੰਬ, ਟੱਬਰ ਆਦਿ।[1] ਕਬੀਲਾ ਅੰਗਰੇਜੀ ਸ਼ਬਦ 'ਟਰਾਈਬ'(ਟਰਬਿਏ) ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਨੁਵਾਦ ਹੈ।ਠਰਬਿਏ ਲਾਤੀਨੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਸ਼ਬਦ ਠਰਬਿੁਸ ਤੋਂ ਨਿਕਲਿਆ ਹੈ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਬੀਲਾ ਇੱਕ ਅਜਿਹਾ ਸਮਾਜਿਕ ਸਮੂਹ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਮੈਂਬਰ ਇੱਕ ਸਾਂਝੀ ਉਪਭਾਸ਼ਾ ਬੋਲਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਆਪਣੇ ਕਾਨੂੰਨ ਆਪਣੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਅਲਗ ਰਸਮ-ਰਿਵਾਜ, ਪਹਿਰਾਵਾ, ਕਿੱਤੇ, ਮੇਲੇ, ਤਿਉਹਾਰ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜਿਉਣ ਦਾ ਢੰਗ ਅਤੇ ਇੱਕ ਸਾਂਝਾ ਵਿਰਸਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਸਾਡੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਾਜ-ਸਭਿਆਚਾਰ ਵੀ ਭਿੰਨ-ਭਿੰਨ ਕਬੀਲਿਆਂ ਜਿਵੇਂ ਸਾਂਸੀਆਂ, ਗੱਡੀਆਂ ਵਾਲਿਆਂ, ਖੱਤਰੀਆਂ, ਸਿਕਲੀਗਰਾਂ, ਬਾਜ਼ੀਗਰਾਂ, ਗੁੱਜਰਾਂ, ਰਾਏ-ਸਿੱਖਾਂ, ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਆਦਿ ਵਿੱਚ ਵੰਡਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਬੀਲਿਆਂ ਦੀ ਆਪਣੀ ਨਿਵੇਕਲੀ ਭਾਸ਼ਾ ਹੈ। ਕਿਸੇ ਇੱਕ ਕਬੀਲੇ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੂਜੇ ਕਬੀਲੇ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਨਾਲ਼ ਮੇਲ ਨਹੀਂ ਖਾਂਦੀ। ਹਰ ਕਬੀਲੇ ਕੋਲ ਆਪਣੇ ਅਲਗ ਭਾਸ਼ਾਈ ਰੂਪ ਹਨ।

ਸਾਡੇ ਪੇਪਰ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ 'ਲੁਬਾਣਾ ਕਬੀਲੇ' ਨਾਲ ਸਬੰਧਿਤ ਹੈ। ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦਾ ਸਬੰਧ ਕਬੀਲਾ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨਾਲ਼ ਹੈ। ਇਹ ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੇ ਵਣਜਾਰਾ ਕਬੀਲੇ ਨਾਲ਼ ਸਬੰਧਿਤਹੈ।ਇਹ ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੇ ਵਣਜਾਰਾ ਕਬੀਲੇ ਦੀਆਂ ਪੰਜ ਮੱਹਤਵਪੂਰਣ ਸ਼ਾਖਾਵਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇੱਕ ਹੋਏ ਹਨ।ਵਣਜਾਰਾ ਉਹ ਕਬੀਲਾ ਹੈ ਜੋ ਬਾਜ਼ੀਗਰਾਂ ਅਤੇ ਗੱਡੀਆਂ ਵਾਲਿਆਂ ਨਾਲ਼ ਉਸ ਸਮੇਂ ਚਿਤੌੜਗੜ੍ਹ (ਰਾਜਸਥਾਨ) ਛੱਡ ਕੇ ਆਏ ਸਨ ਜਦੋਂ ਅਕਬਰ ਨੇ ਹਮਲਾ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਰਾਜਪੂਤਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੋਈ ਮੰਨੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਰਾਜਸਥਾਨ ਵਿੱਚ ਕੁੱਲ 30 ਕਬੀਲੇ ਅਤੇ 260 ਅਨੁਸੂਚਿਤ ਜਾਤੀਆ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ 30 ਕਬੀਲਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇੱਕ ਮਹਾਨ ਕਬੀਲਾ ਵਣਜਾਰਾ ਕਬੀਲਾ ਹੋਇਆ ਹੈ।[2]

ਬਣਜਾਰੇ

ਤੁਰਕੀਆ ਬਣਜਾਰਾ	ਬੈਦ ਬਣਜਾਰਾ	ਲੁਬਾਣਾ ਬਣਜਾਰਾ	ਮੁਕੇਰੀ ਬਣਜਾਰਾ	ਬਹਿ-ਰੂਪ ਬਣਜਾਰਾ

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ 'ਲੁਬਾਣੇ' ਵਣਜਾਰਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੋਏ ਹਨ3 ਅਤੇ ਵਣਜਾਰਾ ਕਬੀਲਾ ਰਾਜਸਥਾਨ ਦੇ 30 ਕਬੀਲਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇੱਕ ਮਹਾਨ ਅਤੇ ਵੱਡਾ ਕਬੀਲਾ ਹੈ, ਜੋ ਕਿ ਵਣਜ ਭਾਵ ਵਪਾਰ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਆਵਾਜਾਈ ਦੇ ਸਾਧਨਾਂ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਖਾਸ ਕਰਕੇ ਰੇਲਾਂ ਆਦਿ ਦੇ ਚਾਲੂ ਹੋਣ ਨਾਲ਼ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਕਿੱਤੇ ਬਦਲ ਲਏ ਅਤੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਕੰਮਾਂ ਵਿੱਚ ਲੱਗ ਗਏ।

ਇੱਕ ਹੋਰ ਕਬੀਲਾ 'ਸਾਂਸੀ ਕਬੀਲਾ' ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮਾਰਵਾੜ ਦੇ ਹਿੰਦੂ ਰਾਜਪੂਤ ਦੱਸਦੇ ਹਨ ।ਦਿਆਲਕ ਰਿਸ਼ੀ ਦਾ ਪੁੱਤਰ ਸਹੰਸਰ ਬਾਹੂ ਇੱਕ ਲੁਬਾਣੇ ਸੌਦਾਗਰ ਦੀ ਪੁੱਤਰੀ ਨਾਲ਼ ਵਿਆਹਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ।ਇਸ ਸਹੰਸਰ ਬਾਹੂ ਦੇ ਇੱਕ ਪੁੱਤਰ ਸਾਂਸ(ਸਾਹਸ) ਮੱਲ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ ।ਇਸੇ ਸਾਂਸ ਮੱਲ ਤੋਂ ਸਾਂਸੀ (ਸੈਂਸੀ) ਕਬੀਲੇ ਦਾ ਜਨਮ ਹੋਇਆ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਂਸੀ ਕਬੀਲੇ ਦੇ ਨਾਨਕੇ

ਲੁਬਾਣੇ ਹਨ।[4]ਸੋ ਸਾਂਸੀ ਅਤੇ ਲੁਬਾਣਿਆ ਦਾ ਆਪਸ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋਹਾਂ ਦਾ ਪਿਛੋਕੜ ਰਾਜਸਥਾਨੀ ਕਬੀਲਿਆਂ ਨਾਲ਼ ਹੈ। ਲੁਧਿਆਣਾ ਅਤੇ ਝੰਗ ਜਿਲ੍ਹਿਆਂ ਦੇ ਲੁਬਾਣਾ ਕਬੀਲਾ ਦੇ ਲੋਕ ਜੈਪੁਰ ਅਤੇ ਜੋਧਪੁਰ ਦੇ ਰਾਜਪੂਤਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੋਣ ਦਾ ਦਾਅਵਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। 1891 ਈ: ਦੀ ਮਰਦਮ ਸ਼ੁਮਾਰੀ ਨੇ ਵੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਰਾਜਪੂਤਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੀ ਦਰਸਾਇਆ ਹੈ। ਗੁਜਰਾਤ ਜਿਲ੍ਹੇ ਵਿੱਚ ਇਹ ਰਘੂਵੰਸ਼ੀ ਹੋਣ ਦਾ ਦਾਅਵਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਲੁਬਾਣੇ ਮੂਲ ਰੂਪ ਤੌਰ 'ਤੇ ਰਾਜਪੂਤ ਹਨ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਅੱਗੋਂ ਤਿੰਨ ਉਪ-ਜਾਤੀਆਂ ਹਨ:-

1. ਸੂਰਜ ਕੁਲ
2. ਚੰਦਰਵਾਸੀ ਕੁਲ
3. ਅਗਨਿ ਕੁਲ

ਅਣਵੰਡੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਜਿਲ੍ਹਾ ਗੁਜਰਾਤ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦਾ ਮੁੱਖ ਗੜ੍ਹ ਕਾਂਗੜਾ, ਹੁਸ਼ਿਆਰਪੁਰ, ਰਹੇਲਗੜ੍ਹ, ਪੀਲੀਭੀਤ ਦੇ ਇਲਾਕਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵਸਣ ਵਾਲੇ ਲੁਬਾਣੇ ਗੌੜ ਬ੍ਰਹਾਮਣਾਂ ਨਾਲ਼ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਪ੍ਰੰਤੂ ਹੌਲੀ- ਹੌਲੀ ਸਿੱਖੀ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਲੁਬਾਵੇ ਸਿੱਖ ਬਣ ਗਏ। ਮੌਜੂਦਾ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਲਗਭਗ ਸਾਰੇ ਲੁਬਾਣੇ ਸਿੱਖ ਹੀ ਹਨ। ਇੱਕ ਹੋਰ ਰਵਾਇਤ ਅਨੁਸਾਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਪਿੱਛਾ ਮਾਰਵਾੜ ਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਚਾਰ ਭਰਾ ਸਨ, ਇੱਕ ਦੀ ਔਲਾਦ ਲੁਬਾਣੇ, ਦੂਜੇ ਦੀ ਔਲਾਦ ਬਾਜ਼ੀਗਰ ਹੋਏ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦਾ ਸਿਕਲੀਗਰ ਕਬੀਲੇ ਤੇ ਬਾਜ਼ੀਗਰ ਕਬੀਲੇ ਨਾਲ਼ ਨੇੜੇ ਦਾ ਸਬੰਧ ਹੈ।

ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਸਮੂਹ ਦੁਆਰਾ ਬੋਲੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ 'ਲੁਬਾਣਕੀ' ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਬੋਲੀ ਨੂੰ ਲਿਖਣ ਲਈ ਕੋਈ ਵੀ ਲਿਪੀ ਮੌਜੂਦ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਹ ਸਿਰਫ਼ ਬੋਲਚਾਲ ਦੇ ਪੱਧਰ ਤੱਕ ਹੀ ਸੀਮਤ ਹੈ। ਇਹ ਰਾਜਸਥਾਨੀ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਸੁਮੇਲ ਤੋਂ ਬਣੀ ਹੈ। ਵਿਆਕਰਣਕ ਪੱਖੋਂ ਕੁੱਝ ਨਿਵੇਕਲੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ ਹਨ:- ਲੁਬਾਣਕੀ ਵਿੱਚ ਬਹੁਵਚਨ ਅਤੇ ਦੁੱਤ ਵਿਅੰਜਨ ਦੀ ਅਣਹੋਂਦ ਪਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ /ਔ/ ਸ੍ਵਰ ਦੀ ਵੀ ਅਣਹੋਂਦ ਪਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।

ਪਰਿਭਾਸ਼ਾ :-

ਲੁਬਾਣਾ ਸ਼ਬਦ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਸ਼ਬਦ 'ਲਵਾਣਿਕ'ਤੋਂ ਬਣਿਆ ਹੈ।ਜਿਸਦਾ ਅਰਥ ਹੈ:-'ਲੂਣ ਦਾ ਵਪਾਰੀ'।ਇਹ ਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਲੂਣ ਦੀ ਢੋਆ-ਢੁਆਈ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਕਬੀਲਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਨਾਵਾਂ 'ਲੁਬਾਣਾ', 'ਲੋਬਾਣਾ', 'ਲਬਾਣਾ', ਲੀਬਾਣਾ'ਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਵੀ ਜਾਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਸ਼ਵਕੋਸ਼ ਅਨੁਸਾਰ, "ਲੂਣ ਦਾ ਵਪਾਰੀ , ਲੂਣ ਦਾ ਵਪਾਰ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਇੱਕ ਵਿਸ਼ੇਸ ਕੌਮ, ਸਿੱਖਾਂ ਦਾ ਇੱਕ ਕਬੀਲਾ ,ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਆਮ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵਾਣ ਵੱਟਣ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਹੈ; ਲੁਬਾਣੇ ਹਨ।

ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ ਅਨੁਸਾਰ , " ਲਵਣ(ਲੂਣ) ਦਾ ਵਣਜ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਵਪਾਰੀ, ਇੱਕ ਖ਼ਾਸ ਜਾਤੀ, ਜਿਸ ਦੀ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿੱਚ ਲੂਣ ਵੇਚਣ ਕਰਕੇ ਇਹ ਸੰਗਯਾ ਹੋਈ ਹੈ, ਲੁਬਾਣੇ ਲੋਕ ਬੈਲ ਆਦਿ ਪੁਰ ਸੌਦਾ ਲੱਦ ਕੇ ਦੇਸ਼ਾਂਤਰ ਜਾਇਆ ਕਰਦੇ ਸਨ, ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਰਦਾਰ ਦੀ ਸੰਗਯਾ 'ਨਾਇਕ' ਹੈ ਜੋ ਸ਼ਾਦੀ ਆਦਿ ਉਤਸਵਾਂ ਪੁਰ ਹਰੇਕ ਤੋਂ ਇੱਕ ਰੁਪਯਾ ਭੇਂਟ ਲੈਂਦਾ ਹੈ।

ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਬੇਦੀ ਅਨੁਸਾਰ, " ਲੁਬਾਣਾ ਸ਼ਬਦ ਲੂਣ-ਬਾਣਾ ਤੋਂ ਬਣਿਆ ਹੈ, ਜਿਸਦਾ ਅਰਥ ਹੈ- ਲੈਣ ਢੋਣ ਵਾਲੇ ਜਾਂ ਲੂਣ ਦਾ ਵਣਜ ਕਰਨ ਵਾਲੇ। ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਨੂੰ ਬਣਜਾਰੇ ਵੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ।ਅੰਬਾਲੇ ਵਿੱਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਰੂਪੀਆ ਵੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਵਿੱਚ ਹਰ ਪੇਸ਼ੇ ਨੂੰ ਕਰਨ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਹੈ।

ਟਾਂਡਾ ਦੀ ਉਤਪਤੀ :-

ਲੁਬਾਣੇ ਜਿਸ ਜਗ੍ਹਾ 'ਤੇ ਵਸੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪਿੰਡਾਂ ਦਾ ਨਾਂ ਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ 'ਟਾਂਡਾ' ਰੱਖਿਆ। ਟਾਂਡਾ ਸ਼ਬਦ ਲੁਬਾਣਕੀ ਬੋਲੀ ਦੇ ਸ਼ਬਦ ਡਾਂਡਾ ਤੋਂ ਬਣਿਆ ਹੈ। ਜਿਸਦਾ ਅਰਥ ਹੈ-' ਕਾਫ਼ਲੇ ਦੇ ਰੁਕਣ ਦੀ ਜਗ੍ਹਾ'।ਇਹ ਪਿੰਡ ਮੁਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਕਾਫ਼ਲਿਆਂ ਦੇ ਰੁਕਣ ਦੀ ਜਗ੍ਹਾ 'ਤੇ ਆਬਾਦ ਹੋਏ ਹਨ। ਮੁਗ਼ਲ ਰਾਜ ਦੇ ਪਤਨ ਅਤੇ ਵਿਦੇਸ਼ੀਆਂ ਦੇ ਹਮਲੇ ਸਮੇਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪੱਕੀ ਰਿਹਾਇਸ਼ ਕਰ ਲਈ।ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਕਾਲ ਤੋਂ ਹੀ ਇਹ ਢੋਆ- ਢੁਆਈ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਸਨ ਅਤੇ ਇੱਕ ਜਗ੍ਹਾ ਤੋਂ ਦੂਜੀ ਜਗ੍ਹਾ ਜਾਂਦੇ ਸਨ।ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੋਲ ਢੋਆ-ਢੁਆਈ ਲਈ ਆਪਣੇ ਬਲ਼ਦ ਅਤੇ ਗੱਡੇ ਹੁੰਦੇ ਸਨ।ਉਹ ਸਮਾਨ ਲੈ ਕੇ ਵੱਡੇ-ਵੱਡੇ ਕਾਫ਼ਲਿਆਂ ਦੀ ਸ਼ਕਲ ਵਿੱਚ ਚੱਲਦੇ ਸਨ ਤਾਂ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸਮਾਨ ਚੋਰਾਂ, ਡਾਕੂਆਂ ਅਤੇ ਲੁਟੇਰਿਆਂ ਤੋਂ ਸੁਰਖਿਅਤ ਰਹੇ।ਹਰ ਕਾਫ਼ਲੇ ਦਾ ਇੱਕ ਮੁਖੀ ਹੁੰਦਾ ਸੀ ਜਿਸ ਨੂੰ 'ਨਾਇਕ' ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।

ਬਰਾਦਰੀ ਦੀ ਬਣਤਰ :-

ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ 11 ਗੋਤਾਂ ਵਿੱਚ ਵੰਡੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਕੁੰਡਲਸ, ਸੰਡਲਸ, ਭਾਰੌਤ, ਬਸ਼ਕ, ਕੌਛਲ, ਕੌਲੱਛ, ਲਸਲਸ, ਕਛਪ, ਬਿਸ਼ਪਲ, ਅਤਰਸੇਲਾ।[6] ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਕੁੰਡਲਸ ਅਤੇ ਸੰਡਲਸ ਮੁੱਖ ਗੋਤਾਂ ਹਨ ਜਦੋਂ ਕਿ ਬਾਕੀ ਛੋਟੀਆਂ ਗੋਤਾਂ ਹਨ। ਇਹ ਗੋਤਾਂ ਅੱਗੋਂ

ਕਈ ਹਿੱਸਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੰਡੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ 'ਅੱਲ' ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿਵੇਂ ਕੁੰਡਲਸ ਗੋਤ ਦੀਆਂ 29 ਅੱਲਾਂ ਹਨ।

ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਦੇ ਲੋਕ ਅਣਵੰਡੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆਂ ਅਤੇ ਰਿਆਸਤਾਂ ਲਾਹੌਰ , ਸਿਆਲਕੋਟ , ਗੁਰਦਾਸਪੁਰ, ਗੁਰਜਾਤ, ਹੁਸ਼ਿਆਰਪੁਰ, ਕਾਂਗੜਾ , ਅੰਬਾਲਾ, ਜਲੰਧਰ ਅਤੇ ਲੁਧਿਆਣਾ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆਂ ਵਿਚ ਬਹੁ-ਗਿਣਤੀ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਉਹ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਦੱਖਣ-ਪੱਛਮੀ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆਂ ਵਿੱਚ ਅਤੇ ਵੱਡੀ ਗਿਣਤੀ ਵਿੱਚ ਮੁਜ਼ਫਰਗੜ੍ਹ ਵਿੱਵ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ।ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਪਟਿਆਲਾ , ਗੁਜਰਾਤ, ਲਾਹੌਰ, ਲਾਇਲਪੁਰ, ਮਿੰਟਗੁਮਰੀ, ਮੁਲਤਾਨ, ਝੰਗ, ਸ਼ਾਹਪੁਰ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। 1947ਈ: ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡਾ ਪਿੰਡ ਕੋਟ ਪਿੰਡੀਦਾਸ ਜ਼ਿਲ੍ਹਾ ਸ਼ੇਖੂਪੁਰਾ ਵਿੱਚ ਸੀ।ਇਸ ਪਿੰਡ ਦੀਆਂ 12 ਪੱਤੀਆਂ ਸਨ, ਹਰ ਪੱਤੀ ਦਾ ਇੱਕ ਨੰਬਰਦਾਰ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਵਸੋਂ ਦੀ ਇੱਕ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਹ ਸੀ ਕਿ ਜਿੱਥੇ ਕਿਤੇ ਵੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਰਿਹਾਇਸ਼ ਹੁੰਦੀ ਸੀ ਉੱਥੇ ਟਾਂਡਾ ਪਿੰਡ ਅਕਸਰ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਵਰਤਮਾਨ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦੀ ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ਜਨਸੰਖਿਆ ਹੁਸ਼ਿਆਰਪੁਰ, ਪਟਿਆਲਾ, ਕਪੂਰਥਲਾ, ਅੰਬਾਲਾ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆ ਵਿੱਚ ਹੈ।

ਲੁਬਾਣੇ ਕਬੀਲੇ ਦੇ ਰੀਤੀ-ਰਿਵਾਜ :-

ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਵਿੱਚ ਜਨਮ, ਵਿਆਹ, ਮੌਤ, ਨਾਲ਼ ਸਬੰਧਿਤ ਕੁੱਝ ਨਿਵੇਕਲੀਆਂ ਹਨ। ਲੜਕੇ ਦੇ ਜਨਮ ਮੌਕੇ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਅਤੇ ਲੜਕੀ ਦੇ ਜਨਮ ਨਾਲ਼ ਗ਼ਮੀ ਦਾ ਮਾਹੌਲ ਬਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਲੜਕੇ ਦੇ ਜਨਮ ਤੋਂ ਨੌਵੇਂ ਦਿਨ ਲੜਕੇ ਅਤੇ ਉਸਦੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਇੱਕ ਪਿੱਪਲ ਦੇ ਦਰੱਖਤ ਕੋਲ਼ ਲਿਜਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ , ਜਿਸ 'ਤੇ ਪਾਣੀ ਅਤੇ ਲਾਲ ਸੰਧੂਰ ਛਿੜਕਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਿੱਪਲ ਦੀ ਪੂਜਾ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇੱਕਠੇ ਹੋਏ ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਅਨਾਜ ਅਤੇ ਗੁੜ ਵੰਡਿਆ ਵੰਡਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਘਰ ਵਿੱਚ ਬੱਚੇ ਦੇ ਜਨਮ ਸਮੇਂ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਉਮਰ ਦੀ ਔਰਤ ਕੁੱਝ ਨਹੀਂ ਖਾਂਦੀ , ਉਹ ਬੱਚੇ ਅਤੇ ਉਸਦੀ ਮਾਂ ਦਾ ਮੂੰਹ-ਹੱਥ ਧੁਵਾਉਂਦੀ ਅਤੇ ਉਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਆਟਾ ਅਤੇ ਗੁੜ ਇੱਕੋ ਜਿੰਨੀ ਮਾਤਰਾ ਵਿੱਚ ਲੈ ਕੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਛੋਟੀਆਂ-ਛੋਟੀਆਂ ਰੋਟੀਆਂ ਬਣਾਉਂਦੀ , ਜਿਸਨੂੰ ਪਾਪੜੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਉਹ ਉੱਥੇ ਹਾਜ਼ਰ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਵਿੱਚ ਵੰਡ ਦਿੰਦੀ ਸੀ।

ਬੱਚੇ ਦੇ ਜਨਮ ਸਮੇਂ ਘਰ ਵਿੱਚ ਤਾਂਬੇ ਦੇ ਬਰਤਨ ਵਿੱਚ ਅਜਵੈਨ ਉਬਾਲ ਕੇ ਬਾਹਰ ਸੁੱਟੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ।ਇਹ ਵਿਸ਼ਵਾਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਬੱਚੇ ਨੂੰ ਭੂਤ-ਪ੍ਰੇਤ ਆਦਿ ਤੋਂ ਬਚਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਬੱਚੇ ਦੇ ਜਨਮ ਤੋਂ ਕੁੱਝ ਦਿਨ ਬਾਅਦ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਵਿਧਵਾ ਔਰਤ ਕੁੱਝ ਸੇਵੀਆਂ ਉਬਾਲਦੀ , ਫ਼ਿਰ ਉਹ ਮਾਂ ਦੇ ਕਮਰੇ ਵਿੱਚ ਗੋਹੇ ਦਾ ਪੋਚਾ ਫ਼ੇਰਦੀ ਅਤੇ ਦੇਵੀ ਅੱਗੇ ਅਰਦਾਸ ਕਰਕੇ ਉਹ ਸੇਵੀਆ ਨੂੰ ਵੰਡ ਦਿੰਦੀ। ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਉਹ ਬੱਚੇ ਦੀ ਮਾਂ ਨੂੰ , ਫ਼ਿਰ ਪਰਿਵਾਰ, ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਸੱਤ ਲੜਕੀਆਂ ਨੂੰ ਸੇਵੀਆਂ ਵੰਡ ਦਿੰਦੀ।

ਜਿਵੇਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ-ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਲੜਕੇ ਦੇ ਜਨਮ ਦੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਵਿੱਚ 'ਤੇਰਵਾਂ'ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ , ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਵਿੱਚ ਲੜਕਾ ਹੋਣ ਦੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਵਿੱਚ 'ਸਾਵੀ ਦੀ ਰਸਮ'ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਦਿਨ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਵੱਡੀ ਔਰਤ ਸਵੇਰੇ ਜਲਦੀ ਜਾਗ ਪੈਂਦੀ ਅਤੇ ਕੜਾਹ ਤਿਆਰ ਕਰਦੀ, ਕੜਾਹ ਵਾਸਤੇ ਵਰਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸਮੱਗਰੀ ਤੋਲੀ ਨਹੀਂ ਜਾਂਦੀ ਸੀ, ਇਸਨੂੰ ਸਾਵੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਸ਼ਰੀਕੇ ਨੂੰ ਕੜਾਹ ਖਾਣ ਲਈ ਸੱਦਾ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇੱਕ ਬੱਕਰਾ ਮਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ, ਕੁੱਝ ਰੋਟੀਆ ਅਤੇ ਕੜ੍ਹੀ ਤਿਆਰ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਅਤੇ ਸ਼ਰੀਕੇ ਨੂੰ ਖਾਣ ਦਾ ਸੱਦਾ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।

ਵਿਆਹ ਦੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਵਿੱਚ ਵਿਆਹ ਵਿਚੋਲੇ ਰਾਂਹੀ ਮਾਪਿਆਂ ਦੀ ਮਰਜ਼ੀ ਅਨੁਸਾਰ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਵਿਆਹ ਸਮੇਂ ਮੁੰਡਾ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦਾ ਗੋਤ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਦਾ ਗੋਤ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਵਿਆਹ ਦੀ ਤਰੀਖ ਪ੍ਰੋਹਿਤ ਦੁਆਰਾ ਨਿਸਚਿਤ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਕਈ ਦਿਨ ਪਹਿਲਾਂ ਵਿਆਹ ਵਾਲੇ ਘਰ ਗੀਤ ਗਾਏ ਜਾਂਦੇ; ਜਿਸਨੂੰ 'ਗੀਤਰ ਪਾਣੇ' ਦੀ ਰਸਮ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।ਵਿਆਹ ਦੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਵਿੱਚ ਲੁਬਾਣੇ ਇੱਕ ਨਿਵੇਕਲੀ ਰਸਮ 'ਪੰਜ ਪੜੋਪੀ ਦੀ ਰਸਮ'ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਸੀ; ਜੋ ਕਿ ਵਿਆ ਤੋਂ ਚੌਥੇ ਦਿਨ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਇਸ ਰਸਮ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਵਿਆਹ ਵਾਲੇ ਘਰ ਵਿੱਚ ਘਿਓ ਅਤੇ ਸ਼ੱਕਰ ਦੀਆਂ ਭਰੀਆਂ ਪੰਜ ਪੜੋਪੀਆਂ ਮੇਲ ਦੀ ਇੱਕਤਰਤਾ ਵਿੱਚ ਧਰੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਸਨ। ਚੁਸਤ ਅਤੇ ਹੁਸ਼ਿਆਰ ਬੰਦਿਆਂ ਨੂੰ ਖਾਣ ਲਈ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ , ਇੱਕਠੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਔਰਤਾਂ ਬੰਦਿਆਂ ਉੱਤੇ ਨਿੱਕੇ-ਨਿੱਕੇ ਕੰਕਰ, ਰੋੜੀਆਂ ਦੀ ਵਰਖਾ ਕਰਦੀਆਂ, ਜਿਹੜੇ ਬੰਦੇ ਕੰਕਰ ਅਤੇ ਰੋੜੀਆਂ ਦੀ ਵਰਖਾ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਘਿਓ ਅਤੇ ਸ਼ੱਕਰ ਖਾਣ ਦਾ ਕੰਮ ਪੂਰਾ ਕਰਦੇ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸਤਿਕਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ।

ਇੱਕ ਹੋਰ ਰਸਮ 'ਗੋਰਾ ਦੀ ਰਸਮ' ਵੀ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ, ਜੋ ਕਿ ਕੇਵਲ ਲੜਕੇ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਵਿੱਚ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਲੜਕੇ ਦਾ ਪਿਓ ਇੱਕ ਗੋਰਾ (ਬੱਕਰਾ) ਝਟਕਾਉਂਦਾ ' ਉਸਨੂੰ ਰਿੰਨ੍ਹਿਆ ਜਾਂਦਾ ਅਤੇ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਰੋਟੀ ਨਾਲ਼ ਖਾਣ ਲਈ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ। ਇਸਤੋਂ ਬਾਅਦ ਬਾਹਰ ਕਿਸੇ ਖੁੱਲੀ ਥਾਂ 'ਤੇ ਪਿੱਪਲ ਦੇ ਲਾਗਿਓਂ ਲਾੜੀ ਇੱਕ ਪਾਸੇ ਨੂੰ ਦੌੜਦੀ ਅਤੇ ਲਾੜਾ ਉਸਦੇ ਪਿੱਛੇ ਦੌੜਦਾ ਉਸਨੂੰ ਫੜ੍ਹਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦਾ, ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਫ਼ੇਰਿਆਂ ਦੀ ਰਸਮ ਹੁੰਦੀ।

ਪ੍ਰੰਤੂ ਗੁਰਮਤਿ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ ਅਤੇ ਸਿੱਖੀ ਨੂੰ ਅਪਨਾਉਣ ਕਰਕੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਲਗਭਗ ਸਾਰੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਲੋਪ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹਨ।

ਮੌਤ ਦੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਵਿੱਚ ਸਸਕਾਰ ਤੋਂ ਚੌਥੇ ਦਿਨ ਫੁੱਲ (ਹੱਡ) ਚੁਗਣ ਦੀ ਰਸਮ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ; ਜਿਸਨੂੰ ਚੌਥੀਆ ਦੀ ਰਸਮ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਲੁਬਾਣੇ ਮੁਰਦੇ ਦਾ ਸਸਕਾਰ ਕਰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਬਜ਼ੁਰਗ ਦੀ ਮੌਤ ਸਮੇਂ ਅਰਥੀ ਤੋਂ ਪੈਸੇ, ਅਖਰੋਟ , ਮੂੰਗਫਲੀ ਆਦਿ ਛੁੱਟੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਪਹਿਲੇ ਸਮੇਂ ਮੌਤ ਤੋਂ 17 ਵੇਂ ਦਿਨ ਸਤਾਰਵਾਂ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ ਭਾਵ ਸ਼੍ਰੀ ਸਹਿਜ ਪਾਠ ਦਾ ਭੋਗ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ; ਪ੍ਰੰਤੂ ਅੱਜ-ਕੱਲ੍ਹ 10 ਵੇਂ ਭੋਗ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਜਾਇਦਾਦ ਦੀ ਵੰਡ ਉਸਦੇ ਪੁੱਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਬਰਾਬਰ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ।ਮੌਤ ਦੀਆਂ ਰਸਮਾਂ ਵਿੱਚ ਕਿਸੇ ਬਜ਼ੁਰਗ ਦੀ ਮੌਤ ‘ਤੇ ਗਾਲੜ੍ਹੋ ਦੀ ਰਸਮ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ।ਜਦੋਂ ਕਿਸੇ ਬੁੱਢੀ ਔਰਤ ਦਾ ਪਤੀ ਮਰ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਦੇ ਕੁੜਮ ਇਕੱਠੇ ਹੋ ਕੇ ਇੱਕ ਲੰਬੀ ਡਾਂਗ ਜਾਂ ਬਾਂਸ ‘ਤੇ ਕੱਪੜਾ ਪਾ ਕੇ ਗਾਲੜ੍ਹ ਬਣਾ ਕੇ ਗਾਉਂਦੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ :-

ਜੇ ਥਾਰੋ ਬੁੱਢਾ ਮਰਿਓ, ਗਾਲੜ੍ਹ ਕਰ ਲੇ

ਇਹ ਰਸਮ ਭੋਗ ਪੈਣ ਉਪਰੰਤ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਨੇ ਹੁਣ ਬਦਲਦੇ ਹੋਏ ਸਮੇਂ ਅਨੁਸਾਰ ਖ਼ਰਚੀਲੇ ਅਤੇ ਗੁੰਝਲਦਾਰ ਰਿਵਾਜਾਂ ਸੀ ਥਾਂ ਸਾਦੇ ਅਤੇ ਘੱਟ ਖ਼ਰਚੀਲੇ ਰਿਵਾਜਾਂ ਨੂੰ ਅਪਨਾ ਲਿਆ ਹੈ।

ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤਾਂ ਅਤੇ ਸੰਸਥਾਵਾਂ :-

ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਲਹਿਰਾਂ ਨੇ ਲੁਬਣਿਆਂ ਵਿੱਚ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜਾਗਰੂਕਤਾ ਲਿਆਂਦੀ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲਹਿਰ ਦੇ ਵਿਦਿਅਕ ਪ੍ਰੋਗਰਾਮਾਂ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਪਣਾਇਆ। ਆਪਣੇ ਹਿੱਤਾਂ ਨੂੰ ਬੜ੍ਹਾਵਾ ਦੇਣ ਲਈ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਨੇ ‘ਲੁਬਾਣਾ ਸਿੱਖ ਐਸ਼ੋਸੀਏਸ਼ਨ’, ‘ ਲੁਬਾਣਾ ਸਿੱਖ ਮਿਲਟਰੀ ਐਸ਼ੋਸੀਏਸ਼ਨ’, ‘ਲੁਬਾਣਾ ਯੰਗਮੈਨ ਐਸ਼ੋਸੀਏਸ਼ਨ’, ‘ਆਲ ਇੰਡੀਆ ਲੁਬਾਣਾ ਸਿੱਖ ਲੀਗ’,’ ਇਸਤਰੀ ਸਭਾ’ ਬਣਾਈ।

‘ਡੇਰਾ ਮੁਰਾਲਾ ਸਾਹਿਬ’, ‘ ਡੇਰਾ ਹੋਤੀ ਮਰਦਾਨ’ ਲੁਬਾਣਿਆਂ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਹਨ।ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਲੁਬਾਣਿਆ ਵਿੱਚ ਕਈ ਮਹਾਨ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤਾਂ ਹੋਈਆਂ ਹਨ ਜਿਵੇਂ ਮੱਖਣ ਸ਼ਾਹ ਲੁਬਾਣਾ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੁ ਹਰਿਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਜੋਤੀ-ਜੋਤ ਸਮਾਉਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਨੌਂਵੇਂ ਗੁਰੁ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਨੂੰ ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਗਟ ਕੀਤਾ ਕਿ ਸੱਚੇ ਗੁਰੁ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਹਨ, ਬਾਕੀ ਸਾਰੇ ਪਾਖੰਡੀ ਹਨ। ਲੱਖੀ ਸ਼ਾਹ ਵਣਜਾਰਾ ਵੀ ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਦਾ ਇੱਕ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਪਾਰੀ ਸੀ, ਜੋ ਕਿ ਰਾਏਸੀਨਾ ਨਗਰੀ ਦਿੱਲੀ ਦਾ ਰਹਿਣ ਵਾਲਾ ਸੀ। ਲੱਖੀ ਸ਼ਾਹ ਅਤੇ ਉਸਦੇ ਸਪੁੱਤਰ ਨਗਾਹੀਆ ਨੇ ਗੁਰੁ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਦੀ ਦਿੱਲੀ ਚਾਂਦਨੀ ਚੌਂਕ ਵਿੱਚ ਸ਼ਹੀਦੀ ਉਪਰੰਤ ਗੁਰੁ ਜੀ ਧੜ੍ਹ ਦਾ ਆਪਣੇ ਗੱਡੇ ਵਿੱਚ ਘਰ ਲਿਜਾ ਕੇ ਆਪਣੇ ਘਰ ਨੂੰ ਹੀ ਅੱਗ ਲਗਾ ਕੇ ਗੁਰੁ ਜੀ ਦਾ ਸਸਕਾਰ ਕੀਤਾ।

20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂ ਵਿੱਚ ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਅਤੇ ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਦੇ ਪ੍ਰਚਾਰ ਵਿੱਚ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਉਣ ਵਾਲੇ ਸੰਤ ਪ੍ਰੇਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਵੀ ਲੁਬਾਣੇ ਸਨ ।ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਅਗਵਾਈ ਵਿੱਚ 5 ਹਾਈ ਸਕੂਲ, ਕਈ ਮਿਡਲ ਅਤੇ ਪ੍ਰਾਇਮਰੀ ਸਕੂਲ ਸਥਾਪਿਤ ਕੀਤੇ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਸੰਤ ਬਾਬਾ ਮਾਝਾ ਸਿੰਘ, ਸਰਦਾਰ ਬਹਾਦਰ ਮਹਿਤਾਬ ਸਿੰਘ ਗਾਲੋਵਾਲ, ਗੋਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਬਾਵਾ ਹਰਨਾਮ ਸਿੰਘ , ਚੌਧਰੀ ਲੱਖੀ ਸਿੰਘ, ਗਿਆਨੀ ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ, ਗਿਆਨੀ ਚੇਤ ਸਿੰਘ , ਗਿਆਨੀ ਹੇਮ ਸਿੰਘ , ਕੈਪਟਨ ਜਵਾਲਾ ਸਿੰਘ , ਜ਼ੈਲਦਾਰ ਸੁੰਦਰ ਸਿੰਘ ਵੀ ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਵਿੱਚੋਂ ਹੋਏ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਮਾਜਿਕ ਬੁਰਾਈਆਂ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਅਤੇ ਵਿਕਾਸ ਕਾਰਜ ਵਿੱਚ ਮੱਹਤਵਪੂਰਣ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ। ਬੀਬੀ ਜਗੀਰ ਕੌਰ ਸਾਬਕਾ ਕੈਬਨਿਟ ਮੰਤਰੀ ਅਤੇ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ ਸ਼੍ਰੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਸਾਹਿਬ ਵੀ ਲੁਬਾਣੇ ਹਨ।

ਹਵਾਲੇ ਅਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ :-

1. ਭਾਈ ਕਾਨ੍ਹ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ, ਮਹਾਨ ਕੋਸ਼, ਪੰਨਾ-298
2. ਡਾ. ਦਰਿਆ, ਪੰਜਾਬ ਅਤੇ ਸਾਂਸੀ ਕਬੀਲੇ ਦਾ ਸਭਿਆਚਾਰ, ਪੰਨਾ-12
3. ਐਮ.ਐਲ.ਸ਼ਰਮਾਂ, ਰਾਜਸਥਾਨ, ਪੰਨਾ-17
4. ਡਾ. ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ, ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਲੁਬਾਣਾ ਬਰਾਦਰੀ ਸਮਾਜਿਕ, ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪਰਿਵਰਤਨ (1848-1947), ਪੰਨਾ-60
5. ਡਾ, ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ, ਓਹੀ, ਪੰਨਾ-02

ਅਦਰਏਸਸ;- ਅੰਅੰਪਓਓਫ ਖਅ੍ਹ, ਧੋ/ ਸ਼. ਅੰਅ੍ਰਝੀਠ ਸ਼ੀਂਘ੍ਹ
ਪਪ. ਧਹਓਰਮਸਹਓਲਓ ਖਓਪੋਰਓ ਪਓਟਟ੍ਹ, ੜਫੋ:-ਅੰਘਅ੍ਹ ਭ੍ਹਲ਼ਲ਼ਅ੍ਰ,
ਠਹਏ. ਝਅਘ੍ਰਔਂ (ਲ਼ਧ੍ਹ), ਫ੍ਹੰਝਅਭ, ਫੀਂ ਛੌਧਓ:- 142033
ਅਮਨਦੀਪ ਕੌਰ, ਅਸਿ.ਪ੍ਰੋ ਜੀ.ਜੀ.ਐਸ. ਖ਼ਾਲਸਾ ਕਾਲਜ, ਫ਼ਾਰ ਵਿਮੈਨ, ਕਮਾਲਪੁਰਾ(ਲੁਧਿ:)
ਬ. 95309-00305, ਓਲਿ ਦਿ:-ਓਮਓਨਬਹੁਲਲਏਰ1984ੇਓਹੋ.ਚੋਮ

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 August 2021 Page No. : 220-223
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श

–डा0 परमजीत कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कालेज, बरेली।

यूरोप में उपन्यास को आधुनिक चेतना से सम्पृक्त करते हुए उसे आधुनिक युग के महाकाव्य की उपाधि दी गई है। हिन्दी के उपन्यास भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास विधा ने, वे राष्ट्रीय अस्मितायें, जो पूर्वकाल में हाशियें पर डालकर भूला दी गई थी, उन्हें इस विधा के माध्यम से प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी गई। विशेष रूप से उपन्यास विधा के माध्यम से दमित अस्मितायें तथा स्त्री, किन्नर, दलित, आदिवासी विमर्श अपने श्रेष्ठ रूप में अभिव्यक्ति पा रहे हैं।

21वीं सदी की इन अस्मिताओं ने जहाँ एक ओर स्वयं को श्रेष्ठ रूप में स्थापित कर राष्ट्र की मुख्यधारा के सम्मुख अपनी चुनौती रखी, वहीं भारतीय सामाजिक लोकतांत्रिक निर्माण में भी अपना पूर्ण योगदान दिया। 21वीं सदी में अस्मिता का प्रश्न भूमण्डलीकरण के नारों को चुनौती देता हुआ, अपने स्वत्व तथा निजी पहचान को बचाने की लड़ाई लड़ रहा है। लेकिन विचारणीय प्रश्न यह है कि किन्नर-दलित तथा स्त्री विमर्श के शोर में आदिवासी विमर्श कहीं दब सा गया है। आदिवासी समाज हमारे राष्ट्र का अभिन्न तथा मूल हिस्सा है फिर भी उन्हें उपेक्षित तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से इतर जीवन व्यतीत करना पड़ा रहा है। हमारे देश की तथाकथित सभ्य व्यवस्था ने उन्हें उपेक्षितों का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर रखा है। उन्हें यहाँ की समाज व्यवस्था ने हाशिये पर रखकर जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है तथा मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित कर रखा है। आदिवासी जन जातियॅा आज भी मूलभूत सुविधाओं से बंचित, अनेक दुष्चक्रो में फॅसी गिरी कन्दराओं में पीढी-दर पीढ़ी जीवन जी रही है। उन्हें औद्योगिकीकरण के नाम पर जल-जमीन-जंगलों से निर्वासित किया जा रहा है। आज हम विकासशील राष्ट्र की श्रेणी से उबरकर उन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में आने के लिए लालायित है लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि जिन वंचितों को विस्थापित कर हम विकसित होना चाहते हैं, वे भी इसी देश और समाज के मूल तथा महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार मानव शरीर का कोई अंग विकसित न हो तब वह विकलांग कहलाता है तथा कभी भी पूर्ण विकसित मानव नहीं बन सकता उसी प्रकार आदिवासी समाज का भी अन्य समाज की तरह ही समुचित तथा निरन्तर विकास होना चाहिए तभी हम पूर्ण रूप से एक विकसित राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

उपन्यासकार केवल आदिवासियों की जीवन समस्याओं, शोषण को ही नहीं, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को, उत्सव, पर्व-त्यौहार, अंधविश्वास, आवास-निवास, रूढि, परम्परा, आचार-विचार, संसाधन आदि को भी हमारे सामने रखते हैं।

21वीं सदी में लिखे गये आदिवासी हिन्दी उपन्यासों पर चर्चा करने से पूर्व 20वीं सदी में लिखे गये आदिवासी जीवन पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों पर भी निगाह डालना समीचीन होगा। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आदिवासियों को हिन्दी कथा साहित्य, विशेषतया हिन्दी उपन्यासों में मुख्य रूप से स्थान मिला। 'रथ के पहिए-' (देवेन्द्र सत्यार्थी-1952), कब तक पुकाँरू (रांगेय राघव-1958) सूरज किरण की छॉव'-(राजेन्द्र अवस्थी-1958), 'जंगल के फूल' (राजेन्द्र-

अवस्थी-1969), जंगल के आस-पास' (राकेश वत्स-1985)'धार' (संजीव-1990) 'गगन घटा वहुरानी (मनमोहन पाठक 1990),' पॉव तले की दूब' (संजीव-1995),' जहाँ बाँस फूलते हैं (श्री प्रकाश मिश्र-1997),' अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा-2000), इत्यादि। बीसवीं सदी के उत्तार्द्ध में लिखे इन उपन्यासों ने करनाटों, नटो, संथाल, उरॉव, कबूतरा, मुंडा, गोंड, मिजो आदि जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृति जीवन के साथ-साथ उन पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण, पिछड़ेपन, को भी उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है। बीसवी सदी के उपन्यासकारों ने स्वतन्त्रा के बाद सामंती-अर्द्धसामंतवादी सोच तथा पूँजीवादी व्यवस्था में ंसे आदिवासियों की त्रसदी को प्रमाणिकता के साथ उजागर किया है।

बीसवीं सदी के इन उपन्यासों की इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाले तथा आदिवासी शोषण के विरूद्ध आवाज बुलन्द करने वाले उपन्यास 21वीं सदी में भी लिखे जा रहे हैं। आदिवासी समाज का सर्वाधिक भय अपनी सुरक्षा तथा विस्थापन को लेकर है। इनके विस्थापन में भी दो कारक मुख्य रूप से काम करते हैं, एक तो परम्परागत सोच तथा दूसरी आधुनिकता वर्तमान समय में हरिराम मीणा, श्री प्रकाश मिश्र, विनोद कुमार, रणेन्द्र, संजीव जैसे रचनाकारों ने समकालीन आदिवासी विमर्श को अपने उपन्यासों में बखूबी उभारा है।

समकालीन आदिवासी साहित्य विमर्श में एक महत्वपूर्ण विमर्श है अतीत में किया हुआ वह संघर्ष जिसमें किसी भी तरह की गुलामी के विरूद्ध उन्होनें संघर्ष किया हो। अंग्रेजों द्वारा भारतीय स्वाधीनता के लिए लिखे गये इतिहास में आदिवासी क्रान्तिकारियों वीर विरसा मुंडा और भील विद्रोह, संथाल विद्रोह, ताँतिया को संगठित करने वाले वासुदेव बलवन्त फड़के को डाकू तथा लुटेरा कहा तथा भारतीय समाज ने भी ऐसे लिखे इतिहास को सत्य स्वीकार लिया। साहित्यिक उपक्रम में जनवरी 2008 में हरिराम मीणा जो कि स्वयं आदिवासी रचनाकार हैं द्वारा लिखित 'धूणी तपे तीर' उपन्यास ने स्वाधीनता पूर्व के आदिवासी संघर्ष जिसमें ब्रिटिश सरकार तथा सामन्तों की मिलीभगत का यथार्थ चित्रण किया कि किस प्रकार इन दोनों की मिलीभगत से आदिवासी समाज को उनकी जमीन-जंगल से बेदखल करने का प्रपंच रचा गया जिसके कारण इन आदिवासियों में विद्रोह का भाव बलवती हुआ। यह विद्रोह केवल कुछ क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं रहा वरन् डूंगरपुर के गोविन्दगुरू तथा आदिवासी नायक पुंजा के नेतृत्व में आदिवासी क्रान्तिवीरों ने लगभग 25,000 की सेना तैयार की तथा 1913 में शोषकों से आर-पार की लड़ाई लड़ी अंग्रेजों ने इस विद्रोह का बुरी तरह से दमन किया। लगभग 15,000 आदिवासी मारे गये। शेष अपने नेता गोबिन्दगुरू के साथ पकड़े गये तथा बुरी तरह प्रताड़ित किये गये। यह आदिवासी दमन जलियाँवाला हत्याकांड से भी अधिक निर्मम था। इस प्रकार इस उपन्यास में आदिवासी रचनाकार हरिराम मीणा ने राजस्थान के आदिवासी समुदाय के विद्रोह की सच्ची कथा पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की। हिन्दी उपन्यासों ने बहुत हद तक आदिवासियों के शोषण को दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यासकारों ने अपने रचना कर्म से यह दिखलाया है कि इन भोले-भाले आदिवासियों के साथ हो रहे भेदभाव और शोषण का जिम्मेदार हमारा सभ्य समाज कहा जाने वाला समाज ही है। आदिवासियों के प्रति शोषक वर्ग के शोषण को समाज के सामने यथार्थ के रूप में प्रकट किया है। शोषक वर्ग अपने क्षणिककाम-लोलुपता के चलते इनकी बहु-बेटियों पर हाथ डाल देता है। इतना ही नहीं अपने विकास के लिए इन्हें इन्हीं की जमीन से बेदखल कर देता है। इनकी आर्थिक स्थिति को देखते हुए कुछ समुदाय तो ऐसे हैं जो इन भोले-भाले लोगों को धन का लोभ देकर इनका धर्म परिवर्तन कराना चाहते हैं। इस तरह से तथाकथित समाज अपने फायदे के अनुसार सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से आदिवासियों का शोषण कर रहा है।

यदि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों पर चर्चा करें तो संजीव के उपन्यास 'धार' एवं 'जंगल जहाँ से शुरू होता है', विनोद कुमार का 'समर शेष है,' राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' तथा मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी' उपन्यासों की विशेष रूप से चर्चा की जा सकती है। इन सभी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों पर हो

रहे अत्याचार को देखा जा सकता है। 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' उपन्यास में स्त्री शोषण की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति हैं। उपन्यास की पात्र मलारी का स्त्रीत्व तार-तार होता है, जो दारोगा जाँच-पड़ताल के लिए मलारी के पास जाता है, उसकी नीयत गंदी हो जाती है, ''तुम कितनी अच्छी हो! कितनी सुन्दर! वह उसके हाथों पर हाथ रखता है। वह प्रतिकार नहीं करती। धीरे-धीरे उसके हाथ आगे बढ़ते हैं, तुम्हें देखकर कोई अपने वश में कैसे रह सकता है? वह उसकी नर्म जाँघों और गोलाइयों को दुलारता है। मलारी आँख मूँद लेती हैं। हाथ ब्लाउज की ओर बढ़ते है। बटन खुलती है एक-एक कर। वह आँख खोल देती है जैसे वहाँ भी कोई बटन हो।''

सजीव का 'धार' नामक उपन्यास मैना नामक आदिवासी स्त्री के इर्द-गिर्द ही रचा गया है। संथाल परगना की आदिवासी औरतें रात को अपना शरीर बेचती हैं। यह लाचारी भी कही जा सकती है। एक रात मैनाने, ''एक ट्रक की ओर से देखा बसंती एक सरदार से बात कर रही है। शायद ड्राइवर हो। फिर उसने देखा कि झोपड़ी से तुरिया निकली। तुरिया और यहाँ? और वह आदमी इसे पैसे क्यों दे रहा है? दूसरी झुग्गियों की गैस की रोशनी में उसे एक गुलगुलिया लड़की शोभा दिख गई, उसके साथ एक संथाली लड़की भी थी, दोनों नशे में धुत्त। एक चिनगारी-सीचिरचिराई। तो इसका मतलब यह हुआ कि लक्ष्मीपुर की तरह यहाँ भी रात को चकला चलने लगा।''

उपन्यासकार रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में जिस झारखण्ड राज्य को अपनी कथा का केन्द्र बनाया है, वह एक सामान्य राज्य नहीं है। उस झारखण्ड राज्य की धरती के गर्भ में अपार खनिज-सम्पदा हैं। जिसका पूरा उपयोग वहाँ की सरकारें करती हैं, फिर भी वहाँ के लोगों का कोई विकास होता नहीं दिखाई देता है। इसका स्पष्ट दृश्य इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है। इस उपन्यास को पढ़ते समय पता चलता है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ भी इनका शोषण करती हैं। इस उपन्यास की दृष्टि मल्टीनेशनल कम्पनियों पर पड़ी है। झारखण्ड में अनेक कम्पनियाँ आती हैं जो यहाँ के जमीनों से खनिजों को अत्यधिक मात्र में निकाल कर ले जाती हैं और वहाँ के लोगों को दफन होने के लिए केवल गड्ढे छोड़ जाती हैं, ''अभी तो आप आये ही हैं। देखियेगा कि मक्का की एक बरसाती फसल के भरोसे जिन्दगी कितनी कठिन हो जाती है। मजदूरी और जंगल का सहारा न हो तो लोग आसाम और भूटान निकल जाएगें। लेकिन एक तरफ इन खानों में मजदूरी दी तो दूसरी तरफ बर्बादी के सरेजाम भी खड़े किये। पिछले पच्चीस तीस सालों में खान मालिकों ने जो बड़े-बड़े गड्ढे छोडें हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी।''

'काला पादरी' तेजिन्दर गगन का एक श्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यप्रदेश के आदिवासियों का चित्रण है। मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले में रहने वाले आदिवासियों की अपनी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ हैं, जिन्हें लेखक ने इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। इस क्रम में लेखक ने चर्च सम्बन्धी छद्म को यहाँ उभारा है। आदिवासियों एवं किसानों की आर्थिक समस्या एवं अंधविश्वास, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि को मानने वाली प्रथाओं की चर्चा भी उक्त उपन्यास में की गयी है। इसके साथ ही ईसाई समुदाय के हृदय को भी आलोच्य उपन्यास में उठाया है। उपन्यास में बेल्जियम से आये फादर लोग गरीब आदिवासी लोगों को प्रभु ईसा के संदेश सुनाकर तथा अनेक प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन का काम करते हैं। फादर मैथ्यूज़ कहता है, कि इसका बाप काम करते समय हमारे पास आया था और तब हमने उसे दूध दिया और जीसस क्राइस्ट का फोटो दिखाया। वह कहता कि हमने इसे जबरन ईसाई नहीं बनाना है। कथा का नायक जब फादर से प्रश्न पूछता है कि बट हाऊ कुड यू मैनेज टू कन्वर्ट दैम?' तब फादर उत्तर देता है, ''न.......न...... यही तो गलत फहमी है कि हमने उनको ईसाई बनाया, यह तो प्रभु इच्छा से हुआ, राजा इन सबसे बेगार कराता था, राजा का जो देवी लोग था, वह भी राजा बेटा का साथ देता था, खाखा बेटा का नहीं, खाखा का मतलब जानता है, जेम्स ने बताया होगा कि खाखा पक्षी को बोलते है, काला पक्षी, काला कौआ, हमको प्रभु काले पक्षी के वास्ते इधर भेजा राजा के वास्ते नहीं, प्रभु ने इनको दूध दिया, खाना दिया, कपड़ा दिया, तो प्रभु का शुक्राना

तो इनको देना था न, वह ये लोग दिया, हम इनका बपतिस्मा किया, ये प्रभु का इच्छा था।''

कथाकार शानी का उपन्यास 'साँप और सीढी' में इस तरह की समस्या दिखाई पड़ती है। धान माँ का एकलौता पुत्र दयाशंकर शहर के चकाचौंध में अपने आपको बचा नहीं पाता है और अपनी संस्कृति एवं परम्परा से विचलित होकर पास्टर पहुॅच के भोली-भाली जनता का धर्म परिवर्तन कर आदिवासी हिन्दुओं को ईसाई बनाता है। शानी लिखते हैं, ''पास्टर के सहयोग से कइयों ने नौकरियॉ कर ली, मास्टरनियॉ हुई और आराम-इज्जत की जिन्दगी गुजार रहीं हैं, बिलई जो जबलपुर की किसी ट्रेनिंग में हैं और अगर आज डोली किन्हीं पास्टर के पास होती तो आदमी बन गयी होती।''

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 21वीं सदी के आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में विभिन्न आदिवासी जनजातियों जो विभिन्न राज्यों में अवस्थित हैं उनके रीति रिवाजों, परम्पराओं उनके दुःख-दर्द शोषण-दारिद्रय को केन्द्र में रखकर लिखे गये। स्त्री तथा दलित समाज की चिन्ता से सभी उद्धेलित हैं क्योंकि वहॉ ग्लैमर तथा मीडिया दोनों ही है। लेकिन अब इन जंगलों में रहने वाले पीड़ित मानव पुत्रों की ओर भी साहित्य तथा मीडिया वालों की दृष्टि गई है। 21वीं सदी के नव्य परिवेश में आदिवासी विमर्श परक इन उपन्यासों में एक ओर जहॉ हमें जगमगाती सम्पन्नता, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण वैज्ञानिक सफलता के अन्धत्व के दर्शन होते हैं वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज की विपन्नता, विस्थापन, दारिद्रय, शोषण, रूग्णता, अंधविश्वास, अन्याय, अभाव, भूख, अमानवीय, जीवन, धर्मान्तरण आदि विषमताओं का कच्चा चिट्ठा भी दिखता है। ये उपन्यास साथ ही इन समस्याओं से उबरकर निकलने के संघर्ष का चित्रण भी बखूवी करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. प्रो0 चमन लाल-दलित साहित्य : एक मूल्यांकन।
2. सं0 लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय।
3. अनुगुंजन-त्रैमासिक पत्रिका।
4. रचनाकार-ई पत्रिका।
5. संजीव- जंगल जहॉ से शुरू होता है।
6. संजीव- धार।
7. तेजिन्दर गगन-काला पादरी।
8. शानी-सॉप और सीढ़ी।
9. रणेन्द्र-ग्लोबल गॉव के देवता।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 224-227

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उदारवादी हरबर्ट स्पेंसर के वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का अध्ययन

-Md. Imbesatul Haque

Research Scholar, Dept. of Education, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur, Bihar

-Prof. (Dr.) Kishwar Wajid

Professor, M.Ed. Course, L. N. Mishra College of Business Manazement, Muzzaffarpur (Bihar)

परिचय :-

हरबर्ट स्पेंसर का जन्म 27 अप्रैल, 1820 को डर्बी इंग्लैंड में हुआ था। उनके पिता विलियम जॉर्ज स्पेंसर उस समय के विद्रोही थे और हरबर्ट के सत्ता विरोधी रवैये के आधार पर खेती की गई थी। जॉर्ज, जैसा कि उनके पिता के रूप में जाना जाता था, एक स्कूल के संस्थापक थे जिन्होंने अपरंपरागत शिक्षण विधियों का इस्तेमाल किया था और चार्ल्स के दादा इरास्मस डार्विन के समकालीन थे। जॉर्ज ने हरबर्ट की प्रारंभिक शिक्षा विज्ञान पर केन्द्रित की और साथ ही उन्हें डर्बी फिलोसोफिकल सोसायटी में जॉर्ज की सदस्यता के माध्यम से दार्शनिक सोच से परिचित कराया गया। उनके चाचा, थॉमस स्पेंसर ने गणित, भौतिकी, लैटिन और मुक्त व्यापार और स्वतंत्र राजनीतिक सोच में निर्देश देकर हरबर्ट की शिक्षा में योगदान दिया। 1830 के दशक के दौरान स्पेंसर ने सिविल इंजीनियर के रूप में काम किया, जबकि रेलवे का निर्माण पूरे ब्रिटेन में किया जा रहा था, लेकिन स्थानीय पत्रिकाओं में लेखन में भी समय बिताया।

कैरियर और बाद का जीवन :-

1848 में स्पेंसर का करियर बौद्धिक मामलों पर केंद्रित हो गया, जब वह द इकोनॉमिस्ट के लिए एक संपादक बन गए, जो अब व्यापक रूप से पढ़ी जाने वाली साप्ताहिक पत्रिका है जो पहली बार 1843 में इंग्लैंड में प्रकाशित हुई थी। 1853 में पत्रिका के लिए काम करते हुए, स्पेंसर ने अपनी पहली पुस्तक सोशल भी लिखी। स्टेटिक्स, और इसे 1851 में प्रकाशित किया। अगस्त कॉम्टे की अवधारणा के लिए शीर्षक, इस काम में, स्पेंसर ने लैमार्क के विकास के बारे में विचारों का इस्तेमाल किया और उन्हें समाज में लागू किया, यह सुझाव देते हुए कि लोग अपने जीवन की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल हैं। इस वजह से, उन्होंने तर्क दिया, सामाजिक व्यवस्था का पालन होगा, और इसलिए एक राजनीतिक राज्य का शासन अनावश्यक होगा। पुस्तक को उदारवादी राजनीतिक दार्शनिक का काम माना जाता था, लेकिन यह भी है, जो स्पेंसर को समाजशास्त्र के भीतर कार्यात्मकवादी दृष्टिकोण का एक संस्थापक विचारक बनाता है।

स्पेंसर की दूसरी किताब, प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलॉजी, 1855 में प्रकाशित हुई थी और यह तर्क दिया गया कि प्राकृतिक कानून मानव मन को नियंत्रित करते हैं। इस समय के दौरान, स्पेंसर को मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का अनुभव करना शुरू हुआ, जो उनकी काम करने की क्षमता, दूसरों के साथ बातचीत और समाज में कार्य करने की क्षमता तक सीमित थी। इसके बावजूद, उन्होंने एक प्रमुख उपक्रम पर काम शुरू किया, जिसका समापन नौ-खंड। सिस्टम ऑफ सिंथेटिक फिलोसोफी में हुआ। इस काम में, स्पेंसर ने विस्तार से बताया कि कैसे जीव विज्ञान के सिद्धांत को न केवल जीव विज्ञान, बल्कि मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और नैतिकता के अध्ययन में लागू किया गया था। कुल

मिलाकर, यह काम बताता है कि समाज ऐसे जीव हैं जो जीवित प्रजातियों द्वारा अनुभव के समान विकास की प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, एक अवधारणा जिसे सामाजिक डार्विनवाद के रूप में जाना जाता है।

उदारवादी स्पेंसर के वैज्ञानिक दृष्टिकोण :–

1. **नोर्थ ने लिखा है कि–** 'जब किसी समय में होने वाले परिवर्तनों का कम न केवल परिवर्तन के बाद परिवर्तन की क्रिया की ओर संकेत करता है, बल्कि निरन्तर घटित होने वाली प्रक्रिया को बतलाता है जिसके द्वारा समदृश्यता का धागा स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है, तब परिवर्तनों के ऐसे क्रम को क्रम विकास कहा जाता है।'

2. **आगवर्न तथा निमकॉफ के अनुसार–** 'सामाजिक उद्‌विकास को एक ऐसे परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक विशेष दिशा में घटित होता है। सामाजिक उद्‌विकास सामान्य उद्‌विकास का ही एक पहलू है। यह जैविक उद्‌विकास के सिद्धान्त को सामाजिक प्रघटना में लागू करता है। यह स्वतः ही घटित होता है। यह व्यक्तियों के द्वारा अपनी परिस्थितियों से निरन्तर समायोजन के कारण उत्पन्न होता है। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। इसको नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

3. **हरबर्ट स्पेन्सर–** 'उद्‌विकास पदार्थ तथा सहकारी गति के निपथन का एक संकलन है जिसमें पदार्थ एक आपेक्षिक, अनिश्चित और बेमेल सजातीय से एक आपेक्षिक रूप से निश्चित तथा समन्वित विजातीय में बदल जाता है जिसमें कि स्थापित गति में भी समानान्तर रूपान्तरण हो जाता है।'

हरबर्ट स्पेंसर की उद्‌विकास की इस व्याख्या के अनुसार सामाजिक उद्‌विकास का अर्थ होगा अनिश्चित तथा बेमेल सजातीय से निश्चित और समन्वित विजातीयता की ओर प्रगति। इस प्रगति में तीन बातें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। सामाजिक उद्‌विकास में अनिश्चित समिति, संस्थायें आदि निश्चित रूप ग्रहण कर लेती हैं।

सामाजिक उद्‌विकास में समन्वय की प्रक्रिया शामिल है अर्थात् समाज के विभिन्न अंगों में समन्वय होता चलता है। अतः सामाजिक उद्‌विकास कोरा परिवर्तन मात्र नहीं है। तीसरे, सामाजिक उद्‌विकास के साथ-साथ समाज में विजातीयता बढ़ती है अर्थात् नई-नई समितियाँ, समुदाय और संस्थायें बढ़ती जाती हैं।

सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्राचीनतम अवधारणा सामाजिक उद्‌विकास प्रकार के परिवर्तन के रूप में विकसित हई। डारविन के विचारों से प्रेरित होकर थॉमस हॉब्स, फरगूशन, स्पेंसर, जॉन लॉक जैसे विद्वानों ने सामाजिक उद्‌विकास प्रकार के परिवर्तन की अवधारणा व्यक्त की।

इनका कहना था कि विभिन्न समाजों की संरचनाओं में, अर्थव्यवस्थाओं में तथा तकनीकी में काफी अंतर देखने को मिलते हैं जिनको एक क्रमव्यवस्था में सजाया जा सकता है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था में प्रारम्भ में एकीकरण तथा विषमता को अस्पष्ट रूप में ही देखा जा सकता है।

धीरे-धीरे एकीकरण तथा विषमता बढ़ती है। इसके साथ-साथ समूहों में सामंजस्य भी बढ़ता है। प्रथायें कानून का रूप ले लेती है, जो विभिन्न क्रियाओं के लिए विशेष स्वरूप में ढल जाता है। प्रारम्भ में जो प्रथायें अस्पष्ट सी दीख पड़ती हैं वह धीरे-धीरे एक-दूसरे से अलग होकर स्पष्ट दिखने लगती है।

स्पेंसर के सामाजिक उद्‌विकास का सिद्धांत :–

हरबर्ट स्पेंसर ने सामाजिक उद्‌विकास के सम्बन्ध में चार महत्वपूर्ण सिद्धांत उपस्थित किये। वे सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

(1) सामाजिक उद्‌विकास सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के उद्‌विकास के परिवर्तन के नियम का एक सांस्कृतिक या मानवीय पहलू है।

(2) अतः सामाजिक उद्‌विकास सब स्थानों पर समान प्रकार से होता है और कुछ निश्चित तथा अनिवार्य स्तरों से गुजरता है।

(3) सामाजिक उद्‌विकास क्रमिक है।

(4) सामाजिक उद्‌विकास प्रगतिशील है।

सामाजिक उद्‌विकास की इन चार महत्वपूर्ण विशेषताओं के अलावा उसकी उपरोक्त परिभाषा से उसकी निम्नलिखित तीन विशेषतायें भी स्पष्ट होती है :-

1. किसी एक नगर के समाज को लीजिए। पहले जब वह नगर एक छोटा सा गाँव या कस्बा होगा तो उसका प्रबन्ध एक पंचायत या टान एरिया कमेटी करती होगी। अब वह शहर एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन गया है अत: उसके प्रबन्ध के लिए बीसों अलग-अलग कमेटियाँ हैं। कोई शिक्षा का प्रबन्ध करती है, कोई सफाई का कोई चुंगी का प्रबन्ध करती है, तो कोई बाजारों की देख-रेख करती है। इस प्रकार शहर के उद्‌विकास के साथ-साथ यह भिन्नता भी बढ़ती जाती है।

2. परन्तु समन्वय के बिना यह भिन्नता किसी भी ओर नहीं ले जा सकती। अत: भिन्नता के साथ-साथ समन्वय भी आवश्यक है। शहरों में जहाँ आपको कायस्थ समाज महाराष्ट्रीय समिति आदि मिल जायेंगी वहाँ ऐसी संस्थायें भी मिलेंगी जो विभिन्न जातिगत और वर्गगत भेदों पर आधारित इन समितियों का समन्वय करती हों। आज मानव समाज में जहाँ नये-नये राष्ट्र उत्पन्न होते जा रहे हैं वहां इन राष्ट्रों का समन्वय करके एक विश्व राज्य की स्थापना के प्रयत्न भी कम जोर-शोर से नहीं किये जा रहे हैं।

3. भिन्नता तथा समन्वय की इस दोहरी प्रक्रिया से समाज की कुशलता बराबर बढ़ती जाती है श्रम-विभाजन आधुनिक आर्थिक उद्‌विकास का मूलमंत्र है। समाज में भी भिन्न-भिन्न संस्थाओं और समितियों के बढ़ते जाने से विभिन्न क्षेत्रों में काम अधिक सफलता से होता है और समन्वय की प्रक्रिया के कारण विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे की कुशलता से लाभ भी उठाते है।

सामाजिक उद्‌विकास के सम्बन्ध में हरबर्ट स्पेंसर ने डार्विन के योग्यतम की विजय और अस्तित्व के लिए संघर्ष के जैवकीय सिद्धान्तों को समाज पर लागू किया है सामाजिक उद्‌विकास के इस सिद्धान्त को बहुत से विद्वानों ने स्वीकार किया है और उसकी अपनी-अपनी परिभाषायें प्रस्तुत की हैं।

हाबहाउस ने लिखा है- 'मैं उद्‌विकास किसी भी प्रकार की वृद्धि समझता हूँ। सामाजिक प्रगति से सामाजिक जीवन के उन गुणों की वृद्धि समझता हूँ, जिनसे मानव प्राणी बुद्धिपूर्वक कुछ मूल्य जोड़ सकें।'

सामाजिक उद्‌विकास का सिद्धान्त समाज में क्रमिक प्रगति मानती है। परन्तु सभी विद्वान सामाजिक उद्‌विकास को क्रमिक नहीं मानते। कुछ विद्वान उसे समरैखिक और कुछ अन्य विद्वान् चक्रिय मानते हैं।

मॉर्गन वैखोफन, हैडन और इंगेल्स के अनुसार प्रत्येक समाज का उद्‌विकास इन तीन अवस्थाओं से होकर होता है-

सामाजिक उद्‌विकास भिन्नता की प्रक्रिया से होता है। इसको समझने के लिए किसी भी समाज के लम्बे इतिहास पर नजर डालिये तो आपको उसमें समितियाँ, संस्थायें आदि बराबर विकसित होती मिलेंगी। सामाजिक उद्‌विकास में नई-नई समस्यायें नई-नई परिस्थितियाँ बराबर आती रहती है, जिनके कारण नई-नई समितियाँ और संस्थायें विकसित होती रहती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. Allport, G. W.; Personality : A Psychological Interpretation, New York : Henary Holt, 1937

2. Anstasi, A.; Psychological Testing, New York : The Mc Millan Company, 1968.

3. Bigge, M. L.; Learning Theories for Teachers, New York : Harper and Row, 1964.

4. Boring, E. G., H. S. Langfeld and H. P. Weld : Foundations of Psychology, Bombay : Asia Publishing House, 1962.
5. Bruce, W. F. and S. F. Freeman; Development and Learning, Boston : Houghton Miffin Company, 1942.
6. Cattell, R. B.; Personality and Motivation, New York : Harcourt, 1957.
7. Commins, W.D.; Principles of Educational Psychology, New York : The Ronald Press Company, 1937.
8. Cronback, L.J.; Educational Psychology, New York : Harcort Brace, 1954.
9. Cruze, W.W.; Educational Psychology, New York : The Ronald Press Company, 1942.
10. Davis, R. A., Educational Psychology, MC Graw Hill Book Company, 1948.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 228-230
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य का वैशिष्ट्य

–डॉ0 सुनीता राठौर

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय एम0एम0आर0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चाम्पा।

डॉ0 विद्यानिवास मिश्र आधुनिक युग के एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। इनकी बहुमुखी प्रतिभा का सर्वोत्तम विकास निबन्धो में ही हुआ है। वैसे मिश्र जी संस्कृत भाषा एवं साहित्य के विद्वान है और संस्कृत वांड्मय में बहुत रूचि थी, किन्तु इनकी ज्यादातर रूचि लोक-जीवन एवं ग्रामीण समाज की ओर अत्यधिक रही है। इसी कारण इनकी रचनाओं में जहां एक ओर संस्कृत के शास्त्रीय वैभव का उज्ज्वल आलोक दिखाई देता है। वहीं दूसरी ओर लोक जीवन एवं लोक संस्कृति की चांदनी भी छिटकती है। इसलिए मिश्र जी साधारण से साधारण विषयों को लेकर उन्हे पौराणिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक रूपों से ऐसा सजाया है कि पढ़ते ही हृदय आनन्द-विभोर हो उठता है और पाठक उनके वैयक्तिक निबन्धों की ललित कला में ऐसा डूब जाता है, कि उसे कुछ समयों तक अपनी सुध-बुध भी नहीं रहती। ऐसे निबन्धकार है जो कई निबंधो में जैसे स्वयं आपबीती सुनाते है, तो कहीं पर पाठको के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते है। ऐसे वैयक्तिक निबन्ध लिखने वाले ललित निबन्धकारों में मिश्र जी का स्थान बाबू गुलाबराय, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के बाद है।

डॉ0 विद्यानिवास मिश्र हिन्दी के अत्यंत प्रतिष्ठित ललित निबंधकार है। उनके निबंधो में लोकजीवन और लोकसंस्कृति के अत्यंत जीवंत चित्र मिलते है। इसके साथ ही समकालीन जीवन की विकृतियों और विसंगतियों को भी उन्होने यथार्थ के धरातल पर उद्घाटित किया है। परम्परानिष्ठ होकर भी आधुनिकता का नकार उनमें नहीं है। बल्कि परम्परा, लोकत्व और आधुनिकता के समन्वय से उनके निबंधो को नव-संस्कार प्राप्त हुआ है।

भारत की संस्कृति अभी भी जीवित है। इसी भारत की लोक संस्कृति को मिश्र जी ने अपने निबंध ''मेरे राम का मुकुट भीग रहा है'' में बताया है। मिश्र जी की लोक संस्कृति और लोक जीवन के प्रति उत्कृष्ट ललक और गहरी आस्था है। इस निबंध में राम के चरित्र के माध्यम से समकालीन जीवन की व्यथा, वेदना का निरूपण हुआ है। मिश्र जी का कर्मक्षेत्र संस्कृत का और भावक्षेत्र हिन्दी है। इनकी दृष्टि मानव जीवन की स्वास्थ्य और पवित्रता थी। उनके निबंध में परंपरा भी हैं, और आधुनिकता भी है उनके निबंधो में काव्यात्मकता, भावात्मकता यहीं उनके निबंधो का वैशिष्ट्य है।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में मिश्र जी का वैशिष्ट्य देखते है -

1. **चिंता –** मिश्र जी कहते है, कि प्रत्येक व्यक्ति को चिंता नहीं चितन करना चाहिए।
2. बारिश के बाद बेटी, पत्नी की चिंता होने लगती है।
3. **गीत में खो जाना –** मिश्र जी बचपन से दादी, नानी के साथ खो जाते थे और कहानियां, परम्परा की बाते सुनते थे, उसी को उन्होने अपने निबंधो में उकेरा है, ''रात के बारह बजे है, गृहणी (पत्नी) की चिंता। किसी तरह पत्नी को चुप करवाने पर लेखक अकुला उठे, बारिश निकल गई, ये लोग नहीं आए। रह-रहकर बिजली चमक जाती थी और सड़क छिप जाती थी पर सामने की सड़क पर कोई रिक्शा नहीं, कोई चिरई का पूत नहीं। एकाएक कई दिनो

से मन में उमड़ती- घुमड़ती पंक्तियां गूंज गई :-

'मोरे राम के भीगे मुकुटवा
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।'

मेरे राम का मुकुट भी रहा होगा, मेरे लखन का पटुका (दुपट्टा) भीग रहा होगा, मेरी सीता की मांग का सिंदूर भीग रहा होगा और मेरे राम घर लौट आते।

4. **माता कौशिल्या का मातृत्व :-** इसमें मिश्र जी ने पौराणिक एवं आधुनिक माता के संदर्भ में बताया है। लेखक को कौशिल्या की याद आ जाती है। कौशिल्या के बहाने पूरे देश, क्या विश्व की माताओं की याद आ जाती है। पूरे विश्व की एक कौशिल्या है जो हर बारिश में बिसूर रही है - ''मेरे राम के भीजे मुकुटुवा (मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा)। मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेगें, राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरूए का कमरबंद भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मै कैसे धीरज धरूँ।

'राम भीगे तो भीगे, पर मुकुट न भीग पाया
सीता भीगे जाये पर, सिंदुर न भीगे।'

यहां पर मुकुट प्रतिष्ठा का प्रतीक है और सिंदुर आस्था का प्रतीक है। राम और सीता भली ही भीग जाये पर मुकुट और सिंदुर न भीगे अर्थात् मुकुट प्रतिष्ठा का प्रतीक होने के कारण और सुिंदर आस्था का प्रतीक होने के कारण। पूरे विश्व की माताएं चिंता करती है, कि बेटा विदेश से नहीं आ रहा है, यह आधुनिकता है।

प्रतिष्ठा और इज्जत की चिंता -

कौशिल्या की तरह वर्तमान में भी माताएं अपने पुत्रों के लिए चिंतित रहती है, यह वर्तमान में भी प्रांसगिकता है। विद्यानिवास मिश्र का निबंध ''मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबंध में मिश्र जी का मन राम के मुकुट भीगने की चिंता से व्यथित है। साथ ही लक्ष्मण का दुपट्टा और सीता की मांग के सिंदुर के भीगने की चिंता भी उन्हे है, क्योंकि मुकुट को प्रतिष्ठा का प्रतीक तथा सिंदूर को आस्था का प्रतीक बताया गया है।

- पौराणिकता और आधुनिकता का संबंध मिश्र जी के निबंधो में देखेने को मिलता है।
- कामायनी में मनु ने जिस प्रकार चिंता किया उसी प्रकार मिश्र जी के निबंधो में भी देखने को मिलता है।
- पाश्चात्य एवं भारतीय संस्णति का समन्वय भी मिश्र जी के निबंधो में देखने को मिलता है।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' के अनुसार राम मंदिर में भले प्रतिष्ठित हो, आम जन के मन में उनकी छवि एक वनवासी ही है, जिसने अपार कष्ट सहे। इस वनवासी राम से एक आधुनिक मन किस तरह संवाद करता है उसकी पानगी है यह निबंध।

डॉ0 विद्यानिवास मिश्र के निबंधो का मूल स्वर है- परम्परा बोध, संस्कृति के प्रति अनुराग और आंचलिकता का आकर्षण, ग्राम्य गंध का सोंधापन उनके निबंधो में सर्वत्र मिलता है। मिश्र जी के निबन्धों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का प्रभाव दिखाई देता है। उनके ललित निबंधों में कल्पना की ऊंची उड़ान और विनोद भाव की प्रधानता सहज देखी जा सकती है। भारतीय संस्णति के नये-नये रूप उनके निबंधो में दृष्टिगोचर होते है।

डॉ0 मिश्र के निबंधो की भाषा चित्रात्मक और अलंकार युक्त है। उसका सहज प्रवाह पाठक को अपने साथ ले चलता है। संस्कृतनिष्ठता और लोकगीतों, मुहावरों के प्रयोग ने उनकी भाषा को अधिक जीवंत बना दिया है।

वर्तमान में लोग गांव को छोड़कर शहर की तरफ भाग रहे है, गांव प्रायः लुप्त सा होता जा रहा है जबकि लोग कितना भी आगे क्यो न बढ़ जाये नींव तो अधिकांशता गांव ही होती है। ऐसे सैकड़ो उदाहरण है जैसे हमारे छत्तीसगढ के डॉ0 खूबचंद बघेल रायपुर के पास पथरी गॉव के निवासी थे, लेकिन हर जगह घुमकर छत्तीसगढ़ को अलग राज्य बनाने में इनका महत्वपूर्ण हाथ है। ऐसे ही एक निबंध मिश्र जी का है जिनका नाम है 'उस अमराई ने राम-राम कही है', डॉ0 मिश्र जी का यह ललित निबंध है। आज के आपा-धापी युक्त महानगरीय जीवन में ग्राम्य जीवन की सरलता, सादगी और मानवीयता किस प्रकार विलुप्त हो गई है, गांव किस प्रकार उपेक्षित पड़े है निबंधकार ने इस ओर लोगो का ध्यान खींचा है। भारतीय ग्रामों की अमराई-संस्कृति आज भी अपनी माधुर्य, मानवीयता और मेलमिला में जीवंत है। लेखक की मान्यता है, कि उपभोक्तावादी मूल्यों से बिखरती हमारी नगर संस्कृति ग्रामीण मूल्यों को अपनाकर अपनी रक्षा कर सकती है। गांव में कैसे अपनत्व की भावना रहती है गांव का अमरैया (प्रकृति का वातावरण) लोगो को कैसे अपनी और खींचता है आम के बौर की भीनी खुशबू लोगो को कैसे भाती है लोग समाज की समरस्वरता से कैसे जुड़ते है देखिए-उस अमराई ने राम-राम कही है निबंध में अमराई से जुड़ने का अर्थ होता है, बसन्त से जुड़ना, बसन्त की तैयारी से जुड़ना, जीवन की नवीकरण की प्रक्रिया से जुड़ना, शक्ति से सघन श्यामल प्रसार से जुड़ना, संगीत मातृका दूर्वादल, श्यामामहामातंगी से जुड़ना पूर्णपातन, पल्लवन, कुसमन और फलन की समग्रता से जुड़ना, प्रकृति के एकताल वहद समाज की समरस्वरता से जुड़ना मनुष्य के एकांत विश्वास से जुड़ना और धरती उमंग की आकाश के स्वस्ति वाचन से जुड़ना।

डॉ0 विद्यानिवास मिश्र के निबंधो में परम्परावादी भी दिखाई देती है, दुनिया कितनी भी आधुनिकता क्यो न हो जाये पर कुछ परम्परा की तो मानना ही पड़ता है जैसे मिश्र जी के 'आंगन का पछीं' निबंध में देखने को मिलता है ''गांवो में कहा जाता है, जिस घर में गौरैया अपना घोसला नहीं बनाती वह घर निर्वंश हो जाता है। एक तरह के घर के आँगन के गौरैयो का ढीठ होकर चहचहाना, दाने चुनकर मुंडेरी पर बैठना हर साँझ, हर सुबह हर कहीं तिनके बिखेरना और घूम फिर कर फिर रात में घर ही मे बस जाना अपनी बढती चाहने वाले गृहस्थ के लिए बच्चों की किलकारी मीठी शरारत और निर्भय उच्छलता का प्रतीक है। इस प्रकार हम गौरेये पक्षी को मारते नहीं, बल्कि उसे दाना देते है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ0 मिश्र जी का लेखन आधुनिकता की मार देशकाल की विसंगतियों और मानव की यन्त्र का चरम आख्यान है, जिसमें वे पुरातन से अद्यतन और अद्यतन से पुरातन की बौद्धिक यात्रा करते है ''मिश्रा जी के निबंधो का संसार इतना बहुआयामी है कि प्रकृति, लोकतत्व, बौद्धिकता, सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता, काव्यात्मकता, रम्य, रचनात्मकता, भाषा की उर्वर सृजनात्मकता सम्प्रेषणीयता इन निबंधो में एक साथ अन्तर्ग्रंथित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नवबोध परीक्षा सार हिन्दी साहित्य बी.ए. द्वितीय पृ. संख्या 109, प्रकाशन-नवबोध प्रकाशन 7, समता कॉलोनी रायपुर (छत्तीसगढ़)
2. मेरे राम का मुकुट भीग रहा है - डॉ0 विद्या निवास मिश्र।
3. निबंध-नवभारत।
4. हिन्दी साहित्य भाग 2, प्रधान सम्पादक - डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, उस अमरई ने राम राम कही है डॉ0 विद्या निवास मिश्र, पृ. सं- 127 से 135 तक
5. इंटरनेट से सर्च
6. आंगन का पंछी - डॉ0 विद्यानिवास मिश्र।

मो 9907987060

sunitarathore1503@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha
August 2021

ISSN : 2395-7115
Page No. : 231-235

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरदा प्रसाद किस्कुवाक् सेरेञ ओनोड़हे कोरकनाक् जुदा जुदा गुनमान

–ज्योत्सना टुडू

शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

डाकसोरिया अनोलिया सारदा प्रसाद किस्कू मेनकादाय मानमी होपोन एकेन रासका सुलाञ जोञ रेदो वाको सेरेञ। सेरेञ रेयाक् एतोहोप दो मानमी जाहांरे आकोवाक् अइकाव एकेन रोड़ते वाञको फोटेल दाड़ेयाक् आ उनगे सेरेञ रेनाक् नाना हुनार ऱाड़ते ओना भाव से आइकाउ को सोदोरा। सेरेञ दो रासकारे हं को सेरेञ। मोने अन्तर रे रेंगेच तेताञ रेहं सेरेञ गे सारसाक् आ। मेनमा जाहां रेगे रोड़ रेयाक् मुचात् अंडेगे सेरेञ रेयाक् एतोहोप दो। संताली पारसी रेदो मानमी जानाम रेहं को सेरेञ। आर भांडान रे हं को सेरेञ। मेनखान ओना सेरेञ दो नोञका रोड़ आर ऱाड़ते को गावाना जांहादो मोनेरे उपेलाकान दुक् सोदोर काते मोने अन्तररे रांवाक्आ। नोवा ओनोलरे जाहां काथा दुकते पोटोम जिवी खान सोझे रोड़ते वाञ सोदोर काते ओकालेकारे सेरेञते सोदोरोक् आ आर दुक् आनाक् होड़ मोने जिवी रावाल काते साविक् जियोन रे सेटेरोक् आ, ओनागे सेरेञ रेयाक् दाइका आते उदुक् सोदोर अकादा। आवो मानमी माया सुताम तेवो तोपोल आकाना। ओनाते एंगा आपाते टुवाराकान होड़ जेलेका एंगा आपा लागिद मोने जिवी लेक् ताकोया, ओनकागे वोको वोयहा, दाइ मिसरा, जुरी जता होन होपोन दलाड़ गाते, हाञहार, होञहार एमान जाहायगे आधिन दिनरे को दाक् दोड़ोमेन खान दुकते मोने जिवी वाञ आपनारोक् आ। उन दो उनि आर उनियाक् कामी आर दुलाड़ दिसा काते जांहातिनाक् काठ जिवी होड़ाक् मोने हं लोक्आ। आर ओनादो आदोमाक् मेद दाक्ते आर आदोमाक्दो रोधोन सेरेञते वोहेल ओडेकोक् आ। जांहाको दो सेरेञ कानरेहं ओना दो दुक्रेयाक् वाड़तेगेय सोदोरा। ओनाको मुदरे भांडान दोञ सेरेञ, सेहोराय सेरेञ, आर सेंदरा झारनी रे ञेलोक् आ। सेरेञते दुक् आनोल लेकाते दो सोहोराय आर दोञ सेरेञ रेगे दुक् सोदोरोक् काना। ओनकान सावुद उदुक् आकादा। एंगा आपाते टुयार लेनखान होन होपोन को तिनाक् आंट दुक् को ञमा जासती कायते कुड़ी गिदरा को जंहाय दो एंगा आपाताक् गुरू गिरा अक्तरे वाञको ञामा उनकुयाक् जिवीदो नुनाक्गे लोक् आ जांहादो राक् होमोर सुमुञतेदो वाञ रावालोक् आ। उन दो आयो वावायाक् दाया दुलाड़ ओड़हे ओड़हेतेको होमोरा आर ओनादो सोहोराय सेरेञरेयाक् रूपतेको सेरेञ जेलेका–

''सवर नाखा माड़ी पड़ा
दांड़ा राकाव दांड़ा आड़गो
तोया दारे जाञ वाहा वाञ ञामलेद्
तोरोज दुरिञ गुमकेदा
कोयला दोरिञ किचिल केदा
तोया दारे जाञ वाहा वाञ ञामलेद।''

सेहोराय दो संतालाक् झतो खन माराञ आर रासका आन पोरोव काना। नोया पोरोवरे सागिञखोन नेवता वाड़ते आगु दाय मिसरा को सांव वोयहाको चेपेरेज जोञआ। उनरे आयो वावाआक् वाञताहेन दसा दो जाञ जिलरे भेदाव ओकालेका को आइकाव आ उन खोनगे मिसरा कोवाक् दुक् हामाल रोड़ते रासका आखड़ा हं दुकते सारेड़ोक् आ, उनरे नोञका सोहोराय सेरेञ दो दाय मिसरा कोवाक् कानटा खोन रांवाव उड़ुकोक्आ।

एंगा आपा टुयार आकान होड़ाक् काथा। आयो वावा जियाद तंहेन भोर दो गिदरा आडी रेको तांहेना रासका रेहं। उनदो ओड़ाक् रेयाक् वेवाक् दायिक् तेद से आंगिभार आयो वावा चेतानरे तांहेन होतेते गिदरा, दो आक् कुसी जांहा मान तांहा को दाड़ाना, एनेच आखड़ा रे को ञिर खादलेक् आ। आको कुसी होरोक् वांदेक् आको, होरोक् लागिद आयो वावा ठेनको आड़िया रासका आको मोन भोर वाहा को रेवेदा। मेनखान आयो वावा किन दानाञ लेनखान उनदो अना रासका दो वाञ तांहेना। दुक धिरिते तेदोक् आ। नोञका काते चेका काते गे वाञ वाहाम रेवेदा। नोञ कानाक् गे मिदटाञ सोहोराय सेरेञ दो नोक् ओय।

''तोड़े पुखरिरे तो आ वाहा दो
वाहा वादेलारे आटाल वाहा दो
आयो वानुयारे -वावा वानुगे
दुक सुववाउ काते वाहादो रेवेद मे''।

नोया सेरेञ दो आयो वावा गोज तायोम गिदरादो आडी दिन धविच आयो वावा उयहार कातेको सेरेञा आर मेद दाक् को जोरोया।

जुरि पारी वाञखान दुलाड़ गाते को गोज हापाटिञ लेनखान दोना रेनाक् दुक् दो जिवीरे वाञ साहाक् लेका आटकारओक् आ। अंघे अंघे गुरू आकान जुरियाक् रोड़ आर आलहा उमुल को दिसाय तुलुज जुरितायदो राक् होमोर काते हामाल जिवी रावयाल लगाया। जेलेका नोया सेरेञरे जुरिताय गोज आकान रेयाक् दुक् होमोर नोञका सोदोर आकाना-

''इञ जुरी कोड़ा दाइना सारा रेको लादे केदे
तिमिनरे चो दाक् दोको कोया
तिकिन सिञ ए लोएन दो तारासिञे हासुरेन
ताला ञिदातेदो दायना दाक् दोय कोयकेद।''

नोया सेरेञ तालाते दुक् आकान तिरला दो आज दाइ ठेन जुरिताय सारारेयाक् चितार से दोसाय लाय पुसटाव आय काना। आधिन दिनरे जुरिताये वंगायेन ताये, चेद चोञ सारोहं आडी घाड़िके लो आकाना नुन धाड़िक् लो रापाक् रेनाक् काथाते लाय साना कादेया उनी दो चालाक् होड़गे वाञगे तांहेकना चेद मुहिम खातिर चोञ वागी होटो आदेयाय ओना दुक् मुहिम दो जुरी हुय काते हं वाय लाय होटो आदेते तांहु आज दो दुक् ए आटकारेदा। ओनागे सेरेञते दायठेने लाय कातेय रांवयालोक् काना।

गोच तायोम आयो वावा जांहा ठेनको तपा कोया से रापाक् कोया अनादो गिदरा वाञको वाड़िच अचो आक् को लागिदोक् आ आर जांहाय को वाड़िच तानाक् लेनखान जिवी वाञ वेस लेका आइकाव आ। ओना काथागे नियाटाक् सोहोराय सेरञरेदो लाय साडे आकाना।

''गिदी गिदी राइला गिदी
दिसोम गिदिम दाड़ानो,
होररे हेसाक रेल गिदी आलोम आवोक् आ।
होररे हेसाक् रेल गिदी
तोया दारे हेनाया,
घान्टा वाड़ी रेदो गिदी जनम दतादो''।

थ्जवेद ताहेनरे आयो वावा हंको कुरूमुटुया जांहाते आचरेन गिदरा को एटाक् होड़ खोन आदा सेच तेको आलोको निधानाक् जांहाते आलोको लालहाक्। आयो वावा गोच तायनम जांहानाक् तेको खाटोलेन खान आयो वावाको

उयहार गोद कोया। जेलेका-

''छामडा लतार रे
जोड़ा लिपुर वोयहा साडे कान दो
आलोञ हेचो वोयहा वावाय तांहेन खान,
जोड़ा लिपु वोयहाय किरिञ केलाञं।''

एंगा आपा मेद सामाञ रे मेनमा उनकिन तांहेनरे दाड़ माकाड़ होन होपोन को वंगा लंनखान एंगा आपावयाक् दुक् रेयाक् सोञखा वाञ गानोक् आ। मेनखान उनकिन एंगा आपा दो आकिनाक् जांगा लातार खोन ओत धारति साहाव लेनलेका किन आइकाव आ। उनकिन दो आकिनाक् दुक् राक् होमोर काते हं जिवी दो वाञकिन धिर पुर दाड़ेयाक् आ। नोञकारेगे जांहाय एंगा आपाताक् इदरो उयहार काते जांहा मान तांहा मिद एसा मेद् दाक् लिंगिन ताकिना। ओनकान एंग आपाआक् मोने जिवी रावयालोक् लागिद् उनकिनाक् मोने जिवी रांवयाक् लागिद उनकिनाक् मोने गायगोम होचो लागिद हुदिसते नोञका को सेरेञा-

''सिञ विररे मिरू आयो सिञ आयोय रागा
ञिदा आयोय होमाम हालाञ आ
चारातेचोय खाटोएन टांगिनतेचोय खटोएन
गेलवार वोछोर आसुल मिरूय उडाव फाराकेन।''

नोञकन सेरेञ आंजोम लेखान दुक आकान एंगा आपातआक् मोने जिवी दो तांहु मोडोक् मोडोक् लोक् आ। मुचात रे भोकराव आते राक् राक् सानाकिना। उनकिन आयो वावा गारजाव आते राक् आनिजगे जिवी रावयालओक् ताकिना। आस साविक् जियोनरे किन पाउड़िया।

लाहारे गालोचेन दुक्रेयाक् सेरेञ को खोन नोया सावुदोक् काना जांहा दुक् आर सुक् रेयाक् आटकार सोझे मोचाते वाञ रोड़ पुसटाव आ ओनकानाक् अझाकाव हं सेरेञ रेयाक् रोड़ राड़ते पासनावओक् आ। ओनाते जोथात गेको मेना जांहारे रोड़ रेयाक् मुचाद अंडेगे सेरेञ रेयाक् एतोहोप दो।

ओनोलिया सारदा प्रसाद किस्कुवाक् नेवा ओनोड़हे दो जोखारे हुडिञ होयोक् आ, रोड़ आर गावान धारा दो सोझे गे होयोक् जारूड़ा। सेरेञ रेहं गानोक् लेकाते गावान होयोक्आ। ओना भितरिरे आइकाउ ओको ताहेना। ओनोड़हे तालाते आरहं रोधोन सेरेञ ते सोदोरोक् आ। मिदटाञ सिखनात दो ओना खोन नामोक् आ। सेरेञ ओनोड़हे रेनाक् छाटियार तांहंना। ओका राहाते मोज सेरेञ गानोक् आ। ओनारेनाक् काथा हं एम तांहेना। जेलेका-

''इञ दोञ कुसियाक् सुयुड़ सुयुड़ होय
नय गाड गितिल सेहोय सेहोय
इञ दोञ कुसियाक मानवा जानाम
कादान उमुल रे तिरिया वानाम
इञ दोञ कुसियाक कोचारे वाहा दारे
वाहा गिडी कोक् थारे थारे
इञ दोञ कुसियाक सेरमा इपिल तुलुज
चांदोय लांदाय मुलुच मुलुच
इञ दोञ कुसियाक सारी धरम होर
जानाम दिसोम रेनरक् चेहर वेहर
इञ दोञ कुसियाक इञाक् जानाम रोड़

जानाम रोड़ते सेरेञ ञहोड़ ञहोड़।''

कोवि किस्कु वाक् गावान नोवा इञ दोञ कुसियाक ओनोड़हे जेलेका ओनोड़हे हं काना ओनकागे नोवा दो सेरेञ हं काना। ओनाते नोवारे दो ओनोड़हे जेलेका मोज आइकावओक् आ ओनकागे सेरेञ रेहं सोड़ोम आइकावओक् आ। नोवारे दो सेरेञ आर ओनोड़हे रेयाक् गावान गुनमानगे पानते ते मेनाक् आ। सांदेस हं जेलेका सिखनात ते सारेड़ मेनाक् आ, ओनकागे काथा गावाना रेयाक् गुनते आर छनदते भुजाउ जोञ लेकानाक् हुय आकाना नोवा को सानाम पाहाटा गालोच गोटा काते वाताव तेगे हेयोक् आ ओनोड़हिया सारदा प्रसाद किस्कु ओल आक् इञ दोञ कुसियाक आ दो मिदटाञ निछरा मोज सेरेञ ओनोड़हे काना।

सरदा प्रसाद किसकु झाड़खोण्ड प्रदेण रेनाक् सोन्दर्य रेनाक् वरनन दो मिद पाता सेरेञ राहा तेय सेरेञ आकाद् जेलेका-

''झाड़खोण्ड सुवा रे मेनाक् गाडा नाइ
छामोदोर ओजोय मोर -कोयल आर क़ासाय
तलारे मेनाक् गातेञ। सोवोरनारवा दो
नेवा रेगे मेनाक् गातेञ आवोनाक् बाड़ाई
झाड़खोण्ड सुवसरे दाक् रिलामाला
होय दो हिसित-हिसित नोवा दिसोम ताला
नोडेनाक् दारे -नाड़ी जियाड़ गे ओलोक् दो
आतो दिसोम केचेत केचेत सोहान गेम ञेला।''

नोवा रेनाक् माने दो झाड़खोण्डरे ओजोय दामोदर, मयुराक्षी आर कोयेल आर कासाय नाय नाला ते स्वर्ण रेखा नदी मेनाक् आ। नोया गे गोरोव दो।

झाड़खोण्ड रेनाक् नोवाको नाय रेनाक् निर्मल दाक् मेनाक् आ। आरहं नोडे आडी रेयाड़ रे मोने वुल गोदोक् लेका होय हिसिद, नोडेनाक् आतो दिसोम सेद रेनाक्दारे नाड़ी वुरू एमान रेयाक् हिसिद होय मोने अन्तर जिवी वेधाव गोदआय। इे दोइे कुसियामा ओनोड़हेरे नोञकाय मेन आकादा

''धुरु धुसु हुप पताम
केरे डेडे होड़मो ताम
मेनाक् गेया गेदेल टेपेल
तिनाक् सेदाय खन चोञ
आलोम रागा आलोम होमोर
हिड़ि काक् मे नोवा भोय।''

नेवा ओनोड़हे हिस रेदो ओनोड़हिया रोमान्टिक् उयहार कातेगे गावान आकाअदाय। ओनोड़हे रे ओनोड़हिया दो आयाक् मोने रेयाक् भाव गाहिर उयहारगे सदर आकादा। नोवा ओनोड़हे तालाते ओनोड़हिया दो मिद पताम चेड़ेयाक् दुक् हालत् तालातेगे मानमी जियेनरे आडी महत सिखनात काथगेय सदर राकाव आकादा।

आरहं कोवी सारदा प्रसाद किस्कु दो 'लागा कोवावोन' शिर्षक विनोय सेरेञ रे चिनी दुसमानको लागा को लागिद ते मिद लेकान प्रेना एम आकादाय जेलेका-

''दे हो साव गोद मे कापी तारवाड़े
लगा कोयावोन चिनी वायरी
जुग जापाक् रेयाक् सेवेल सागाइ

थ्चनी कोगे वाञको ओरोम ठिकाय
जेहेन एटाक् आकान आडी गाहजी
छे हो साप् होदपे कापी तारवाड़े
लगा कोवावोन चिना वाइरी
दे वोन साजाक् तेहेञ सिदु कानहु
गाड़वो वेनाव जोञ आ वोतोर वानुक्
मिमिद गोटाञ ओड़ाक् रोटास-खाइरी
दे हो साप होद पे कापी तारवाड़े।''

नोया रेनाक् मेनेत दो लोगोन ते कापी आर तारवाड़ सावपे चिनी वायरी को वोन लागा कोया। आयमा वोछोर रेनाक् गाते सागाय चिनी को रापुद आकादा। तेहेन आवो सिदु कानहु वेनाव काते दिसोम वोन रूखिया आ।

संदर्भ ग्रंथ :-

1 किस्कू, सारदा प्रसाद : सारदा अनल माला, मार्च् 2005 सिदू कानहू फाउन्डेसान आसानसोल

2. किस्कू, सारदा प्रसाद : जुडासी ओ़नो़ल माला 1994 डॉ. एस.के. भौमिक, माराञ बुरु प्रेस

3. किस्कू, सारदा प्रसाद : लाहाक् हो़रे, 1985 महादेव हा़ंसदा कायरा कुमड़ा, पुरुलिया।

4. किस्कू, सारदा प्रसाद : सो़लो़म लोटा़म 1988 महादेव हा़ंसदा कायरा कुमड़ा, पुरुलिया

5. किस्कू, सारदा प्रसाद : बिदाक् बेड़ा 1997 महादेव हा़ंसदा कायरा कुमड़ा, पुरुलिया।

jyotsnatudu127@gmail.com

M.no- 9382200266

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 236-240
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अमृतलाल नागर के साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक प्रदेय

-डॉ0 बलराम गुप्ता (संकर्षण प्रजापति)
एसोसियेट प्रोफेसर, शिवहर्ष किसान पी0जी0 कालेज, बस्ती।

हिन्दी साहित्य में अमृतलाल नागर को एक प्रगतिणील साहित्यकार के रूप में देखा जाता है। अमृतलाल नागर ने साहित्य की अनेक विधाओं में प्रगतिशील विषयों व विचारों को किया है। सर्वाधिक सशक्त दो विधाओं उपन्यास और कहानी में रचनाकार की प्रगतिपूर्ण मानसिकता को देखा जा सकता है। नागर जी की रचना में स्थल के रूप में लखनऊ शहर, लखनवीं संस्कृति, शोधपूर्ण दृष्टि के साथ नये विषयों पर लेखन करना, इतिहासगत चेतना, पुरातात्विक चेतना, मध्यवर्गीय चेतना और आम आदमी के बारे में विशेष रूप से चित्रण किया है। इनकी रचनाओं में पारिवारिक भूमिका को एक टिपिकल मध्यवर्गीय लेखक के रूप में देखा जाता है। इनकी रचनाओं में मुनाफाखोरी, साम्राज्यशाही, उपनिवेशवाद एवं साम्प्रदायिकता का विरोध एक जागरूक लेखक के रूप में देखा जाता है। नागर की रचनाओं में ऐतिहासिकता और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भारतीय संस्कृति एवं भारतीय समाज की पुर्नव्याख्या के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय उपन्यास की परम्परा में अमृत लाल नागर की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में है। नागर जी ने उपन्यास, कहानी सहित अनेक विधाओं में इतिहास को एक लम्बे कालखण्ड के रूप में पाते हैं। इतिहास की अनेक श्रृंखलात्मक कड़ियों को देखा जा सकता है। विशेषकर उपन्यास ओर कहानियाँ इतिहास को चलचित्र की भाँति प्रस्तुत करते हैं। श्रीलाल शुक्ल द्वारा नागर के कृतित्व पक्ष को लेकर जो कहा है उससे नागर के कृतित्व पक्ष और व्यक्तित्व के स्वरूप के साथ विचारधारा को समझा जा सकता है। 'नागर जी ने अपनी कृतियों में जीवन और समाज को उसके सम्पूर्ण विस्तार और संश्लिष्ट वैविध्य में अंकित किया है। जैसा श्री लाल शुक्ल ने लिखा है-नागर जी की निगाह बराबर जनजीवन पर रहती है। हर कहीं अनेक कथानकों का प्रमुख पात्र यह जनजीवन है।' उनके रचना संसार में समष्टि में ही व्यष्टि के दर्शन होते हैं। कथा और उपन्यास का उनका, अनन्य शिल्प उनकी इसी प्रतिपत्ति से उपजा है और इसी अर्थ में नागर जी की विशिष्ट औपन्यासिकता एक नयी दिशा, एक नए आयाम की खोज करती है। जिसका आधार जन-संकुशलता है। इस अर्थ में वे प्रेमचन्द की परम्परा के सीमान्त को लांघते है। उन्होंने उस परम्परा को निश्चित रूप से विस्तारित और समृद्ध किया है। अपनी बहुरंगी भाषा और अपने संवाद-सौष्ठव से उन्होंने अपने औपन्यासिक शिल्प को और प्रखरता एवं प्रभविष्णुता दी है। लेकिन 'गदर के फूल' की ही तरह 'ये कोठेवालियाँ' में उनके इस शिल्प में स्पष्ट विधागत परिवर्तन दिखाई देता है।

रामविलास जी ने ठीक कहा है कि इन दोनों कृतियों के विशिष्ट शिल्प में रिपोर्ताज और उपन्यास के तत्व मिश्रित दिखाई देते हैं। लेकिन इस नवीन मिश्रण में ही उनकी सच्ची गुणवत्ता देखी जा सकती है। ये दोनों ही कृतियों उनकी औपन्यासिक जीवनियां-'मानस का हंस' या 'खंजन-नयन' की तरह अपने लिए एक अन्यतम शिल्प का अन्वेषण करती है। 'ये कोठेवालियाँ' में प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ते जाने का खिंचाव यों ही एक सा बना नहीं रहता। रचनाकार कथाक्रम में गुंथाव का घनत्व बनाये रखने में पूर्णतः सफल है, तभी उसके खिंचाव में कहीं ढील नहीं आती।

नागर जी जो कुछ लिखते थे उसके पीछे उनकी पूरी तैयारी होती थी। उनका अधिकांश लेखन कच्चा माल के पूरी तरह जमा और तैयार हो जाने के बाद ही कागज पर उतरता था। इसके लिए बहुत पढ़ना जीवनानुभवों को ठीक से पचाना और उनकी तरतीब बना लेना, पहले ही एक खाका तैयार कर लेना और उस रचनाकर्म का एक विशिष्ट शिल्प भी तय कर लेना, यह सब उनकी सृजनात्मक तैयारी के जरूरी कदम होते थे। इन सब के बाद उनकी सरस्वती अवतरित होती थी अपनी वीणा लिए।'[1] श्रीलाल शुक्ल के इस कथन में नागर के व्यक्तित्व के विभिन्न मनःस्थितियों को साहित्य के विभिन्न विधाओं में सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों को देखा जा सकता है। नागर जी ने आजादी के बाद उत्पन्न सामाजिक विषमताओं और परिवर्तित सांस्कृतिक परिस्थितियों को उजागर किया है।

नागर जी ने साहित्य में मानवतावाद, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड, अंधविश्वास के साथ जड़ परम्पराओं का खण्डन किया है। नागर जी आदर्श एवं यथार्थ की भूमि पर स्थित मानवधर्म की प्रतिष्ठा के अभिलाषी है। विशेषकर इनके साहित्य में आजादी के बाद का सामाजिक यथार्थ छठे दशक में जो बदलाव आया था उन सभी की अनुगूँज मौजूद है। नागर जी ने इस ओर भी ध्यान दिया है कि पारम्परिक सोच और आधुनिक जीवन दृष्टि को भी देखा जा सकता है। समय और समाज तथा संदर्भ के अनुसार विषय वस्तु के साथ चेतना के विविध रंगों का चयन किया है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान उत्पन्न और विकसित वही जातीय समाज है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूरी तन्मयता से मुठभेड़ करता है। जातीय समाज का तात्पर्य समाज द्वारा समाज के विकास हेतु चरित्रगत मनःस्थिति से निर्णय लेकर कार्य करना। वस्तुतः नागर की रचनाओं में चित्रित समाज और उसके द्वारा प्रस्तुत चेतना लेखक को इतिहास और समाज से मिली है। जातीय समाज का उदय नागर सहित अनेक रचनाकारों के साहित्य में इसका उद्भव मध्यकाल और आधुनिक काल के रचनाकारों द्वारा सामन्तवाद और पूंजीवाद के विरोध करने के कारण उत्पन्न हुआ था जो पारम्परिक समाज के भीतर विद्यमान था। पारम्परिक समाज के भीतर से ही लोकतान्त्रिक समाज की पहचान की थी। लोकतान्त्रिक समाज के कारण ही जातीय समाज की संरचना बनी।

इक्कीसवीं सदी के दौर में जातीय समाज छिन्न-भिन्न होने की स्थिति में वर्तमान क्रान्तिकारी सत्ताधारियों के कारण होने लगी है। इस जातीय समाज में जातीय चेतना और भारतीय सौन्दर्यबोध का नागर के साहित्य की विशेषता है। इसी तरह नागर साहित्य की एक प्रमुख साहित्यिक विशेषता लखनऊ शहर व लखनवीं संस्कृति का समाज है। लखनऊ के चौक की जिन्दगी वृहत्तर भारत के प्रतिनिधि रूप में है। कहने का तात्पर्य है कि भारत के किसी भी व्यक्ति और समाज की जातीय जिन्दगी हो सकती है। नागर जी के व्यक्तित्व के अन्दर इसी जातीय समाज की जातीय जिन्दगी अर्थात् राष्ट्रीयता के प्रति गहरी आस्था है। यही विशेषताएं नागर की रचनात्मकता को एक जातीय सौन्दर्य प्रदान करती है।

नागर जी के सम्पूर्ण साहित्य द्वारा समाज को क्या प्राप्त हुआ है? क्या इनके साहित्य द्वारा समाज के प्रति सामाजिक व सांस्कृतिक प्रदेय को पहचाना जा सकता है? इस स्थिति को इस कथन से समझा जा सकता है। 'समाज विज्ञानों में अनुभाविक अध्ययन क्षेत्र कार्य, व्यक्ति इतिहास विधि काफी चर्चित अवधारणाएं है। इसके साथ-साथ जब भी शोध कार्य होता है पूर्ववर्ती अध्ययनों का हवाला भी दिया जाता है। इन सब दृष्टि से नागर जी की कृतियाँ अनुपम है। नागर जी ने बाइबिल, जय शंकर प्रसाद, मोहनजोदड़ों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, ईथर्स्टन की कृति 'कास्ट एण्ड ट्राइब्स ऑफ सर्दन इण्डिया, 1901 का मद्रास सेंसस रिपोर्ट, के एल गाबा की पुस्तक 'फेमस ट्रायल्स, कुटनी मत्तम, वारन्वधु विवेचन, आदि का प्रासंगिक सन्दर्भ देते हुए देवदासी प्रथा, जमींदारी वेश्याएं, दलाल, नर्तकी आदि का विवेचन किया है। सन्दर्भ के साथ इस तरह की चर्चा प्रायः कम देखने को मिलती है। नागर जी ने विवादास्पद और अछूते पहलुओं जैसे त्रियाचरित्र, कुलटा और वेश्या में भेद, नगर-वधु दलाल, गायकी, घराना, नथ उतारना, वेश्याओं के गाँव पर विस्तार से लिखा है। इस कृति को पढ़ते वक्त हम एक वैसी दुनिया में परिचित होते हैं जो गायब हो चुकी है पर जिसे

जानना बहुत दिलचस्प है। अधिकारी किस प्रकार अपने मातहतों की पत्नियों के साथ सम्बन्ध चाहता था, कैसे लोग छिपकर मिलते थे, वेश्यायें आपस में कैसे एक दूसरे को देखती थीं, समाज का सम्भ्रान्त तबका कितना सम्भ्रान्त था, पुराने अय्याशों के क्या अनुभव थे, इस सबकी चर्चा इस कृति में है। सबसे मजेदार बात यह है कि इन सबको पढ़ते वक्त नागर जी उपस्थित होकर भी अनुपस्थित है। वह पात्र गाँव, कथानक घटना सबको यथार्थपरक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। पुरानी महफिलें उनका उजड़ना, पुर्नवास का संकट, सबको उन्होंने अपनी इस कृति में समेटा है। हंसाबाई, नजीरबाई, मुन्नीबाई, शरफबाई, दिलरूबा, चन्द्रा कुमारी, जननीबाई, सब सज्जोबाई, शकीलाबाई, कल्लोबाई, मलका बेगम, इन सबके साक्षात्कार के दौरान उन्होंने एक अन्वेषक की तरह उनकी उम्र पहनावे, बातचीत के लहजे, सबको रेखांकित किया है। जिन लोगों ने उन्हें इस अध्ययन में मदद की या प्रभावित किया, डॉ0 मोतीचन्द्र, दुर्गा प्रसाद खत्री, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौर, वाचस्पति पाठक सबका उन्होंने परिचय दिया है' आभार प्रकट किया है।'[2] उक्त पंक्तियों से नागर के साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक चित्रों को प्रकट रूप में प्रस्तुत करने के लिए नागर जी को क्या-क्या करना पड़ा है? नागर जी ने व्यक्ति और समाज दोनों के महत्व को स्वीकारा है। साहित्य में अपने जीवन के अनुभवों के सन्दर्भ में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों में स्वरूपांकन का प्रयास किया है। समाज में व्याप्त नाना प्रकार की विकृतियों, जड़ मूल्यों, अन्धविश्वासों तथा प्रतिगामी परम्पराओं का प्रतिकार करने के साथ युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप नवीन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। नागर जी ने सदैव इस बात का ध्यान रखा कि मूल्यों की प्रतिष्ठा में उनका दृष्टिकोण सदैव राष्ट्रीय तथा भारतीय संस्कृति के चित्रण में कोई चूक न होने पाये।

व्यक्ति और समाज एक सिक्के के दो पहलू है। एक दूसरे के पूरक है। अन्योन्याश्रित हैं। व्यष्टि और समष्टि का समन्वय उनके उपन्यासों का मूल स्वर है। नागर जी ने व्यापक सामाजिक सन्दर्भों को यथार्थ चेतना के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मानव मन की गहराइयों को प्रकट करने में पीछे नहीं रहे। स्वयं को न तो समाज निरपेक्ष ही बनने दिया और नही व्यक्ति निरपेक्ष ही। इन दोनों तत्वों के साथ नागर जी ने समग्रता के साथ सन्तुलित चित्र प्रस्तुत करने का कार्य किया। इतना होने पर भी नागर जी को आस्था के प्रति सजग प्रहरी के रूप में देखते हैं। व्यक्ति और समाज की प्रधानता सभी उपन्यासों एवं कहानियों में विद्यमान है। व्यक्ति है तो समाज होगा ही। समाज है तो सामाजिकता के साथ सांस्कृतिक भावभूमि भी होगी। सामाजिक परिवर्तन के होने पर सांस्कृतिक परिवर्तन होना आवश्यक है। आस्था का दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप दोनों ही दिखाई देते हैं। नागर जी का कालखण्ड आजादी के पूर्व व अपनी मृत्यु के तक का समय स्त्री जीवन के परिवर्तन को उपन्यासों व कहानियों में प्रदर्शित किया है। जो नारी समाज अपने अस्तित्व को पहचानेगी वह समाज उसके अस्तित्व को अनदेखा नहीं कर पायेगा। समाज में परिवर्तन होगा तो नारी नवीन दृष्टिकोण से सम्पन्न होगी।

'नागर जी के उपन्यास विवाह विषयक नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं उनके उपन्यासों में प्रेम विवाह, विधवा विवाह, विलम्ब विवाह, अन्तर्जातीय विवाह विषयक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। 'अमृत और विष' में उषा और भवानी शंकर अन्तर्जातीय विवाह करते है, रमेश और रानीबाला भी अन्तर्जातीय विवाह करते हैं। रानीबाला विवाह कर युवा पीढ़ी के समक्ष नवीन आदर्श प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह युवा समाज के लिए उदाहरण और प्रेरणा का स्रोत है। रमेश तथा रानीबाला का विवाह नवीन वैवाहिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। नागर जी के 'बिखरे तिनके' में भी विवाह विषयक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। सर-सुतिया का दो वर्ष पूर्व ही विवाह हुआ होता है और शीघ्र ही विधवा हो जाती है। युवा पीढ़ी के शिक्षित युवक सुहागी तथा सरसुतिया के विवाह को सम्पन्न करवाने में पूर्ण सहायता करते हैं। वे विवाह के समय भी आर्थिक स्वावलम्बन को नहीं भूलते। विवाह के अवसर पर युवक चन्दा डालकर एक भैंस उन्हें स्वावलम्बी बनाने के लिए प्रदान करते है। गुरूसरन बाबू का लड़का बिल्लू उच्च शिक्षा प्राप्त कर भी विधवा से

प्रेम करता है तथा शीघ्र ही उसके अन्तर्जातीय विवाह करने की सोचता है। इस प्रकार नागर जी की विवाह के सम्बन्ध में नवीन मूल्य दृष्टि है।

बूँद और समुद्र, सुहाग के नूपुर, नाच्यौ बहुत गोपाल और शतरंज के मोहरे, अग्निगर्भा, करवट और पीढ़ियों में नागर जी ने यह व्यक्त किया है कि सामन्ती तथा पूँजीवादी समाज व्यवस्था में प्रेम और विवाह दोनों ही विलास में परिवर्तित हो गए हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ सामाजिक स्वार्थ पर हावी हो गया है। प्रेम के मायाजाल में फंसकर नारी पुरुष के शोषण का शिकार होती है तथा नारकीय जीवन यापन करने के लिए विवश होती है। बूँद और समुद्र, में बड़ी 'सुहाग के नूपुर, में माधवी तथा कन्नगी 'शतरंज के मोहरें, में कुल्सुम, कुदसिया बेगम, सात घूँघट वाला मुखड़ा, में मुश्तरी नाच्यौ बहुत गोपाल, में निर्गुनिया जैसे चरित्र इसके साक्षात् प्रमाण है। नागर जी प्रेम की महत्ता को स्वीकार करते हैं किन्तु वे निश्छल प्रेम के पक्षधर हैं साथ ही विवाह की पवित्रता को भी स्वीकार करते है। महिपाल जैसे बुद्धिजीवी, साहित्यकार, सिद्धान्तवादी आदर्शों के लिए मर मिटने वाला अपनी भानजी के विवाह में दहेज की व्यवस्था करने के लिए अपने आदर्शों से भी गिर जाता है। तब उसे अपनी इस कमी का आभास होता है तो वह आत्महत्या तक कर लेता है। निर्गुनिया तथा महिपाल के माध्यम से नागर जी बेमेल विवाह के कुपरिणामों को भी सामने लाते है।'[3] नागर जी यदि सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों को केवल चित्रण के तौर पर करते और मानवीय दृष्टिकोण का अभाव होता तो ऐसी रचनाएं पाठक के मन को प्रभावित न कर पाती किन्तु नागर जी ने सर्वत्र अपने साहित्य लेखन में मानवीय दृष्टिकोण को प्रधानता दी। यही कारण है कि नागर जी का साहित्य हिन्दी साहित्य में अपना अलग अस्तित्व प्रस्तुत करती है।

साहित्य के क्षेत्र में कहा जाता है कि उपन्यास में सामाजिक परिवेश जितना जीवन्त होता है उतना ही सफल उपन्यास व साहित्य माना जाता है सामाजिक परिवेश से ही सांस्कृतिक परिवेश भी जुड़ा होता है। समाज और सामाजिकता स्रोत का कार्य करता है। सामाजिकता के अभाव में सांस्कृतिक पक्ष पर बल देना एकांगी होगा। 'अन्य संस्कृतियों से तुलना करने पर भारतीय संस्कृति की जीवन संलग्नता और लोकोन्मुखता ही उजागर नहीं होती, भारत में उपलब्ध सिद्धान्त और व्यवहार का भेद भी अधिक स्पष्ट होकर सामने आ जाता है। जहाँ मिस्र में मुर्दों के लिए बनावटी पहाड़ खड़े किये गए, वहाँ भारत में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को पोला करके उसमें अजन्ता और एलोरा की खूबसूरती को भर दिया गया। हमारे यहाँ राजा फरऊन पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया गया। वास्तव में कला यहाँ जिन्दगी के साथ-साथ बँधी हुई है। उसमें चमत्कार खूब है, पर वह चौंकाता नहीं, बल्कि मन को प्रकाश देता है। वह खूबसूरती हमारे मन को अपने निकट खींच ले जाती है और उन्हें भी उतना ही खूबसूरत बना देती है। ठीक तरह से प्रेरणा ली जाए तो मनुष्य की जिन्दगी को सुन्दर और उपयोगी बनाने के लिए अकेले बहुत काफी है।

नागर जी यह नहीं मानते है कि यहाँ शुरू से ही राष्ट्रीय चरित्र का अभाव रहा है। ऐसा होता तो बुद्ध, अशोक, महावीर, गाँधी, डॉ0 अम्बेडकर का जन्म इस देश में नहीं हुआ होता। दरअसल हमारे यहाँ दो तरह की धाराएँ समानान्तर मौजूद रही है। एक तरफ यहाँ नैतिक सुन्दरता को जगाने वाली मन्त्र-दृष्टा रिषियों, बुद्ध, महावीर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, चण्डीदास जैसे लोकवादी महापुरुणों और अजन्ता एलोरा को संवारने वाले कलाकारों की परम्परा रही है, तो दूसरी ओर परलोकवादी चिन्तन, टोने-टोटके जैसे अन्धविश्वासों, दकियानूसी बातों और विकृत रस्मों को प्रश्रय देने वाली परम्परा भी रही है। यहाँ एक ओर तपस्या त्याग की संस्कृति मौजूद है, वहाँ शादी-गमी, तीज-त्यौहार सब इतने कीमती बना दिए गए हैं कि उनको बरतने वाला आदमी किसी किस्म की नैतिक सुन्दरता को अपनाने लायक नहीं रह जाता। दहेज, आपसी रिश्तों के लेनदेन, धर्म और समाज के नाम पर होने वाले अत्याचारों से सड़ते समाज में संस्कृति की यह सारी सुन्दरता और उदारता अर्थहीन होकर रह जाती है। इसलिए जरूरत है इस बात की कि देश के दर्शन, इतिहास, धर्म और संस्कृति की निर्भय होकर जाँच की जाये तथा अज्ञान और अन्धनिष्ठा फैलाने वाली धारणाओं मृत्यु के भ्रमचक्र

में पड़कर परलोक-चिन्तन में फँसाये रखने वाले जड़ और आत्म घातक दर्शन और ऊँच-नीच की मर्यादाओं दहेज सम्बन्धी रूढ़ियों को जड़-मूल से निकाल फेंका जाए, लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि ज्ञान और कर्म को मूलाधार बनाने वाला भारतीय दृष्टिकोण मूलतः सृजनात्मक था। इसलिए अपने देश को केवल रूढ़ियों में ही पहचानने और प्रगतिशील परम्पराओं की अवहेलना की अपनी आदत से भी मुक्त होना आवश्यक है।....... रचनाकार का विश्वास है कि बिना संस्कृतिक दृष्टि का विकास किये परिवार, समाज और राजनीति किसी को भी सही दिशा देना सम्भव नहीं है।'[4]

निष्कर्ष :-

सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन कोई वायवीय वस्तु नहीं है। किसी भी रचनाकार को लिखने की सामग्री अपने आस-पास के वातावरण से मिलती है। साहित्यकार, रचनाकार शब्द का भावार्थ ही होता है जीवन के प्रति गहरी सूक्ष्म का होना। अमृतलाल नागर, प्रेमचन्द जी की परम्परा के अग्रणी स्तर के रचनाकार हैं। नागर जी की उपस्थिति को साहित्य में देखा जा सकता है। समाज की प्रगति से प्रसन्न होते हैं। समाज के पतन से दुखी। साहित्य में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते हैं। समकालीन जीवन की चुनौतियों को नागर जी अपने युग के प्रति सचेत रहकर सामना कर सके हैं। नागर जी भले ही सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पक्षों के प्रति सजग होने के बावजूद भी आर्थिक विषमता को लेकर चिन्तित रहे। इनका साफ मानना था कि पूँजीवाद ने ही अमीर-गरीब के मध्य मध्य वर्ग को जन्म दिया है। मध्य वर्ग की सोच सदैव उच्च वर्ग के विलास पर टिकी रहती है। निम्न आर्थिक वर्ग गरीबी के कीचड़ में धँसा रहता है। इन सब स्थितियों को नागर जी अच्छी तरह से जानते थे। शायद यही कारण है कि इनके साहित्य में गंभीर साहित्य चेतना के साथ हास्य-व्यंग्य के माध्यम से इनके भिन्न व्यक्तित्व को देखा जा सकता है।

समाज में अनेक अवरोधों के बावजूद भी सामाजिकता के ढाँचे में अनेक वर्गों की उपस्थिति उन सभी की भिन्न-भिन्न संस्कृति होने पर भी सांस्कृतिक पक्ष का निर्माण होता है। परम्परागत होने के कारण दृढ़ हो जाता है। संस्कृति के विविध पक्ष नागर जी के साहित्य में देखने को मिलते हैं। यही भारतीय संस्कृति है इसी भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता निहित है। नागर जी के सम्पूर्ण साहित्य में सामाजिक उत्पीड़न शोषण एवं अत्याचारों की कथा-भूमि से लेकर ऐतिहासिक उपन्यासों तक में इसी संस्कृति की प्रतिष्ठा करते हैं। नागर जी ने मध्य युग एवं आधुनिक युग की ऐतिहासिक, धार्मिक स्थितियों तक में वे हिन्दू मुस्लिम एकता से प्रतिबद्ध भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करते हैं। सबको अपने में एकमेव करने की क्षमता रखने वाली संस्कृति को नागर जी भारतीय संस्कृति के रूप में देखते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण किसी भी देश की वास्तविक पहचान करती है। लेकिन सामाजिकता की उपेक्षा नहीं कर सकता है। सामाजिकता की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति की उपेक्षा करने में पीछे नहीं रहते हैं। नागर के साहित्य में व्यक्ति-समाज को महत्व दिया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. उत्तर प्रदेश (अमृतलाल नागर विशेषांक) अगस्त-सितम्बर 2015, सम्पा0 कुमकुम शर्मा-सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पार्क रोड लखनऊ, पृ0 132
2. वहीं, पृ0 190-191
3. वहीं, पृ0 203
4. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास प्रथम भाग-डॉ0 यश गुलाटी-हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, सस्क0 प्र0-1989, पृ0 244-245

सम्पर्क :-एच-316, इन्द्रलोक कालोनी, थाना-कृष्णानगर, पोस्ट-मानसनगर, कानपुर रोड, लखनऊ-226023, मो0 नं0-9455163128

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 241-242
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीरदास एक रहस्यमयी लोकोपदेशक

–मुकेश कुमार ऋषि वर्मा
ग्राम रिहावली, डाकघर तारौली गुर्जर, फतेहाबाद, आगरा, उत्तर प्रदेश, 283111

इस सुंदर जग को ईश्वर ने बड़े ही प्रेम से बनाया है। जगत में भिन्न-भिन्न जीव जंतु ईश्वर का अद्‌भुत निर्माण हैं। परंतु सबसे अलग जो निर्माण ईश्वर ने किया है, वह मनुष्य नामक प्राणी का है। संसार में प्रत्येक प्राणी की एक सीमित क्षमता है। लेकिन मनुष्य असीम क्षमता वाला प्राणी है।

मनुष्य ने अपना विकास एक निश्चित समय सीमा से कहीं ज्यादा किया है। कुछ मनुष्य इंसान के भेष में शैतान होते हैं और कुछ मनुष्य देवता तुल्य होते हैं। शुरू से ही प्रकृति का नियम रहा है कि दिन-रात, धर्म-अधर्म, सुख-दुख, शैतान-इंसान हमेशा साथ-साथ फले-फूले हैं। इनमें कभी बनती नहीं और ये कभी एक दूसरे से अलग भी नहीं हो सके हैं।

अगर हम इंसानों की बात करें तो इनमें बहुत बड़े-बड़े अवतार पुरुष पैदा हुए हैं। उन्हीं में से एक हैं कबीर! कबीर अपने युग के सबसे बड़े लोकोपदेशक रहे हैं। उनका साहित्य अमर है। कबीर का जन्म विक्रमी संवत 1455 (सन-1398 ई.) वाराणसी में हुआ था। उनकी मृत्यु विक्रमी संवत 1551 (सन्-1494 ई.) मगहर में हुई थी। कबीर साहेब 15वीं सदी के एक रहस्यवादी कवि एवं संत थे। वे हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ईश्वर के महान् प्रवर्तक के रूप में उभरे थे। वे हिंदू व इस्लाम धर्म को न मानते हुए धर्म एक सर्वोच्च ईश्वर में अटल विश्वास रखते थे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास आदि की कड़ी निंदा की। उनकी आलोचनाओं से हिंदू व मुस्लिम समुदाय के कट्टरपंथी तिलमिला उठते थे।

कबीर ही नहीं उनका जन्म भी एक रहस्यमयी है –

> ''अनंत कोट ब्रह्मांड में, बंदी छोड़ कहाए।
> सो तो एक कबीर हैं, जो जननी जन्या न माए।।''

कबीर महाराज जी एक जनसाधारण जीवन जीए और जुलाहे के काम में हमेशा मगन रहे। उन्होंने अपने नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग किया और कबीर दास कहलाये।

कबीरदास जी की प्रमुख शिक्षायें –

1. अहिंसा
2. मांसाहार करना महापाप
3. अनुशासन निषेध
4. गुरु बनाना अति आवश्यक
5. बिना गुरु के दान करना निषेध
6. व्यभिचार निषेध
7. छुआछात निषेध।
8. मूर्ति पूजा निषेध।

कबीरदास जी की पावन भक्ति में गुरु को प्रथम स्थान मिला है–

> ''सत्‌गुर की महिमा अनॅत, अनॅत किया उपगार।
> लोचन अनॅत उघाडिया, अनॅत दिखावण हार।।''

कबीरदास जी मनुष्यों के प्रति कहते हैं -

हे मनुष्यों! ईश्वर की बनाई हुई संरचना मानव एवं जीव-जंतु रूपी माया से क्यों छल, कपट तथा ठगी आदि करके अपना घर-परिवार तथा रूप-सौंदर्य आदि सजा-संवार रहे हो। यदि अपना घर-परिवार तथा रूप-सौंदर्य आदि सजाना-सॅवारना चाहते हो तो सत्कर्म करो अर्थात संसार रूपी पावन धाम में विराजमान मानव एवं जीव-जंतु रुपी मूर्तियों की अपनी क्षमतानुसार सेवा-सुरक्षा करके परमानंद को प्राप्त हो जाओ। इससे आप मय परिवार को सुख-शांति प्राप्त होगी। साथ ही संपूर्ण जगत को भी सुख शांति प्राप्त होगी।

''माया दीपक नर पतंग, भृमि-भृमि इवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान, एक आध उबरत।।
माया देखि कै जगत लुभानी, काहे रे नर गरबाना।
कहैं कबीर सुनौ भई साधौ, गूरु के हाथि काहें न बिकाना।।
खाया पकाय लुटाय के, करिले अपना काम।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चलै छदाम।।
कबीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर।
खाली हाथो बह गये, जिनके लाख करोर।।''

कबीरदास विषयों के परित्याग पर विशेष बल देते हैं। वे साधा जीवन जीने वाले साधारण पुरुष की तरह हमेशा रहे।

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोई।
एकै आशिर पीव का, पढै सु पंडित होई।।''

कबीरदास एक महान लोकोपदेशक हैं। उन्होंने अपनी पावन लेखनी से लोक का कल्याण किया है। कबीरदास जी के उपदेश प्रेरणास्पद और प्रासंगिक हैं।पथ-भ्रष्ट मानव को सन्मार्ग दिखाता उनका साहित्य अजर-अमर है। कबीर दास की शिक्षा का अनुसरण करके मनुष्य मुक्ति पा सकता है।

संदर्भ :-

1. शोध आलेख- कुरीतियों के निराकरण में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका, लेखक - डॉ. सिकंदर लाल।
2. विकिपीडिया एवं गूगल सर्च इंजन।
3. कल्याण, मासिक पत्रिका - अंक जून 2021, गीता प्रेस गोरखपुर।
4. बोहल शोध मंजूषा, सम्पा. डॉ0 नरेश सिहाग एडवोकेट।

मो.9627912535

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 243-245
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय हिन्दी साहित्य में नारी–विमर्श

–ई. समीक्षा

द्वारा- डॉ0 अशोक कुमार आलोक, ग्राम रानीगंज, पोस्ट मेरीगंज, जिला असरिया, बिहार-854334

किसी भी देश का सामाजिक चिंतन साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। भारत का साहित्य आदिकाल से ही समृद्ध तथा उर्वर रहा है। समाज के विभिन्न पक्षों की चैतन्य अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य में मुखर होती रही है। संस्कृति के गौरवशाली परंपरा का निर्वहन करते हुए साहित्यकारों ने प्रगतिशील पक्षों के आलोक में ऐसे नारी पात्रों का सृजन किया है जो भारतीय समाज के यथार्थ का प्रतिनिधित्व करती है।

आदि ने आधुनिक काल विभिन्न साहित्य विशिष्टताओं के विकास का काल रहा है। विकास की इस क्रमिक अवस्था में नारियों के चिंतन और साहित्यिक चित्रण में भी बदलाव आता है। भारतीय हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल में एक पक्ष नारियों के प्रति सामंतवादी मानसिकता तथा भोग मूलक नजरिया प्रस्तुत करता है। उस काल में वीरों का आदर्श था- श्रृंगार की प्राप्ति तथा श्रृंगार प्राप्ति की कसौटी थी- वीर होना। जैसे- जाकी कन्या सुंदर देखी, ता पे जाए धाररी तलवार। वहीं दूसरी ओर अमीर सुखरों के साहित्य प्रगतिशील अवधारणा के साथ नारियों के साथ हो रहे लैंगिक भेदभाव को प्रस्तुत करते हैं। जैसे- भैया को दीजिए महला दो महला, हमको दीजो परदेस, काहे को ब्याहे बिदेस, सुन बाबुल मोरे।

आदिकाल साहित्य से इतर भक्तिकाल की नारियां मुक्ति के मार्ग का आह्वान करती नज़र आती है। मीराबाई की कृष्ण के प्रति अनन्य श्रद्धा हो या 'भ्रमरगीत-सार' की गोपियों की स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति, राम भक्ति काव्य में नारियों को समुचित सम्मान देना हो (जैसे राम-शबरी प्रसंग) या सूफी-चिंतन में नारी के प्रति प्रेम का माधुर्य प्रकट करना हो, भक्ति काल का साहित्य मध्यकालीन नारियों की चिंतनीय सामाजिक स्थिति के साथ-साथ सहज और प्रतिष्ठित रूप प्रकट करता है। हालांकि मध्यकालीन समाज नारियों के प्रति पारंपरिक और रूढ़िवादी था, फिर भी साहित्य में उनके प्रति संतुलित और संवेदनशील नजरिया ही प्रस्तुत किया गया है। केवल कृष्ण काव्य में नारियां गोपियों के रूप में प्रेममय, उन्मुक्त तथा सम्मानित दिखती हैं।

भक्ति काल के आदर्श के अतिरेक रीतिकाल में पीछे छूटते नजर आते हैं। रीतिकालीन दरबारी मानसिकता ने उन नारियों को विलास तथा उपभोग के रूप में प्रदर्शित किया है।

''अंग-अंग नग जगमगती, दीपशिखा सी देह,
दीया बुझाए ह्वे रहो, बड़ो उकेरो गेह।''

किंतु कुछ कवियों ने नारी के प्रति प्रेम के उदात्त स्वरूप की गहन अभिव्यक्ति की है। जैसे- घनानंद, पद्माकर आदि।

''ऐसो रूप अगाध, राधे-राधे-राधे,
तेरी मिलव को बृजमोहन, कुछ जतन है साधे।''

मध्यकाल के सभी विषयों से भिन्न तथा अपने नवीन स्वरूप में भारतीय साहित्य आधुनिक काल का आलिंगन

करता है। यूरोपीय स्वच्छंदतावाद से प्रेरित भारतीय साहित्य भी नवीन संभावनाओं को आत्मसात् करता है। यह वह काल था जब भारत में स्वतंत्रता संग्राम का चरमोत्कर्ष था। समाज के हर वर्ग में चेतना का संचार हो रहा था। नारियों के लेखन में आगमन होने से छायावाद से लेकर आधुनिक काल तक नारी विमर्श का स्वरूप ही बदलता प्रतीत होता है। छायावाद में नारी सौंन्दर्य, उदात्त प्रेम, भावुकता तथा वेदना के अतिरिक्त साहित्य की नवीन छवि प्रस्तुत करती है। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा आदि की रचनाओं से लगता है। सम्पूर्ण स्त्री समाज की वर्षों से उपेक्षित छवि और आशाओं को अस्तित्व मिल गया हो।

जैसे-जैसे नारीवाद का विकास होता गया इसकी शाखा-प्रशाखाएं विभिन्न दिशाओं में फूटती गई। वक्त के साथ नारी नारीवादी दृष्टिकोण की व्याख्याएं बदली तथा नारियों का साहित्य में चित्रण भी बदला। पुरूष लेखकां के साहित्य में नारियां आदर्शवाद का वरन् करती सामाजिक परंपराओं का निर्वहन करती दिखाई देती हैं। आरंभिक स्त्री लेखिकाओं की रचनाओं में भी नारियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व उजागर नहीं होता है। वे जड़ परंपराओं को निभाते हुए अपना सर्वस्व न्यौछावर करके पुरूष और समाज कल्याण करती दिखती हैं।

प्रेमचंद के आरंभिक कथा तथा उपन्यासों में स्त्री या पारिवारिक मूल्यों तथा समाज के बंधनों में बंद कर अपना आत्मसम्मान तक भूल जाती हैं। पुरूष पात्रों द्वारा शोषण को स्वेच्छा से स्वीकार करती है किंतु आधुनिकता की परिपाटी पर चलती महिलाएं जब स्वातंत्र्य चेतना से युक्त होती है तब तत्कालीन साहित्य में ही उसका असर दिखता है। रेणु, यशपाल, जैनेन्द्र, राजेन्द्र यादव निराला, अज्ञेय आदि की रचनाओं में नारी पात्र आदर्श यथार्थवाद की तरफ उन्मुख होते हुए भी समाज की वर्जनाओं को तोड़ते हुए आत्मा की स्वतंत्रता तथा व्यक्तित्व के मूल की खोज में अग्रसर दिखती है। जहां एक ओर 'गोदान' की 'सीलिया' द्वारा वर्ण व्यवस्था का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, 'सरोज' द्वारा महिलाओं की स्वतंत्रता, 'मालती' द्वारा विवाह की आवश्यकता को ही नकार देना, 'मैला आंचल' की 'लक्ष्मी' द्वारा शोषण का विरोध, राजनीति में पदार्पण 'परती परिकथा' की 'ताज मनी' का मुखर व्यक्तित्व, 'मलारी' द्वारा अंतरजातीय विवाह सशक्त नारी पात्रों की गाथा कहते नजर आते हैं, वहीं 'चंद्रगुप्त' की 'अलका', 'स्कंदगुप्त' की 'देवसेना', यशपाल की 'दिव्या', जैनेंन्द्र की 'सुनंदा' अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' की 'शशि' जैसे नारी पात्र पुरूष पात्रों की प्रेरणा बनकर बलिदान और त्याग की प्रतिमूर्ति बनकर उभरती है। जैनेंद्र के नारी पात्रों में विवेक स्वयं निर्णय लेने की क्षमता तथा आत्मसम्मान की रक्षा के भाव अधिक दिखते हैं। इन लेखकों के उपन्यासों का लक्ष्य बाह्य जगत की अभिव्यक्ति ना होकर व्यक्ति के अंतर-जगत का निरूपण है। अंतर्मन और भाव जगत का निरूपण करने के लिए उन्होंने प्रमुखता नारी पात्रों का ही आश्रय लिया है। यह पात्र पुरूष पात्रों की तुलना में अधिक प्रखर जीवंत और व्यक्तित्व सम्पन्न है। यह व्यथा में हो या यातना में : कथानक के केन्द्र में है। प्राय: सभी प्रमुख उपन्यासों में नारी केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरकर सामने आती है। 'त्यागपत्र' की 'मृणाल' हो या 'सुनीता' की नायिका 'सुनीता', 'परख' में 'कट्टो', 'सुखदा' की नायिका 'सुखदा' आदि इसके प्रमाण है। यह भी ध्यातव्य है कि यह नारियां प्राय: एक पुरूष की पत्नी और दूसरे पुरूष की प्रेमिका बनकर एकाएक पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। आधुनिकतावाद में शारीरिक पतन को चारित्रिक पतन स्वीकार नहीं करते हैं, इसी कारण पतिव्रत से पतित होकर भी उनकी दृष्टि में उनके नारी पात्र सतीत्व के धरातल पर पतित नहीं होते हैं। समस्त नारी पात्रों में बुद्धि एवं हृदय का संघर्ष अनिवार्यत: दिखाया जाता है। बुद्धि उन्हें पति और समाज की ओर झुकाते हैं, इनके प्रति वफादार रहने की प्रेरणा देती है। जबकि हृदय उन्हें अज्ञात के प्रति लालसा में प्रेमी और व्यक्ति की ओर ले जाता है।

हालांकि आधुनिक साहित्य का एक पक्ष में फिर से नारी का वस्तुकरण, दैहिक सौंदर्य तथा उपभोग के साधन मात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

''खुले-खुले बदन पर, साबुन का झाग हो गई है औरत।
पान-पराग हो गई है औरत।''

''कुछ स्त्रियां प्रेम करती है वर्दी से,
बाकी नामर्दी से।''

पुरूषों की दमनकारी प्रवृत्ति और सामाजिक दबाव का मुखर विरोध करती स्त्रियां साहित्य में अलग तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में विकसित होती हैं। आर्थिक स्वावलम्बन की चाह ने नारियों को घर की दहलीज से बाहर निकाला जिससे उनमें स्वतंत्रता की लालसा प्रबल हुई और यहीं मनोभाव तथा बदलाव साहित्य में ही दिखता है। जो यह दर्शाता है कि नारियां भी अपने व्यक्तित्व की खोज में अग्रसर हैं।

साहित्य अनुभूति की अभिव्यक्ति के संप्रेषण का माध्यम है। साहित्य वह कोरा कैनवस है जो सर्जनात्मक रचनात्मकता के आड़े तिरछे लकीरों में सारगर्भित होता है, तो कभी अनुभवों के कटु यथार्थ को मूर्त रूप में प्रस्तुत करता है। भारतीय हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का चिंतन इस रूप में दिखता है कि नारियां बदलते युग के हर पड़ाव पर अधि कार चेतना से युक्त होती है। आधुनिकता तथा विकास के हर चरण में नारी चिंतन के विभिन्न अवधारणाएं पुष्पित हुई हैं। वर्तमान में शिवानी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम आदि महिला लेखिकाओं ने आधुनिकता, पाश्चात्य संस्कृति तथा महानगरीय जीवन शैली को अपनाती आर्थिक रूप से सशक्त महिलाओं के स्वच्छंद जीवन को साहित्य में स्थान दिया है जो नारी अस्मिता के नए अध्याय लिखती नज़र आती हैं।

मो. 9973893529

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2021 Page No. : 246-248
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Features of the Divyacapavijayacapy as a Campukayer

-Lisha CR

Assistant Professor, Department of Sankrit General,
Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady, Kerala

Introduction :-

Sanskrit Literature is very vast and divided into two parts like Classical Literature and Vedic Literature. There is a beautiful description of the puruṣārthas catuṣthayas, and which main intention is meant for the development of human beings.

At first, the Brāhmaṇa text like Śathapatha Brāhmaṇa describes of the Kinnaras who are the men of sheep faced (Aśvamukhī). In the Classical Sanskrit Literature like the Mahābhārata and the Rāmāyaṇa described the subjects of Kinnaras vividly. In Vālmīki Rāmāyaṇa, Ayodhyā kāṇḍa, when Lord Śrīrāma accepts the fourteen years forest living with his younger brothers Lakṣmaṇa and Janakanandīni Sītā, at that time every people of Ayodhyā with many ladies, gents, and Kinnaras went to out of the city, Ayodhyā for leaving their dearest Lord Śrīrāma. All the people were returned to their homes but except the Kinnaras, and they are waited at that place till returning of their Lord, Śrīrāma to the kingdom, Ayodhyā.

Hindu Mythology describes the Kinaras who are paradigmatic lovers, and a celestial musician, part human, part horse, and also a part bird, In Buddhist mythology describes the characters of the two beloved mythological characters. And they are the benevolent half-human, half-bird, and they are known as the kinnaras and Kinnarīs. It is believed they have come from the Hindu the Himālayas, and it is often seen, they are the wellbeing of human society at the time of danger or any trouble.

Kimpuruṣas are described as lion-headed beings Kim(Is it?) + Puruṣa (man), which is the splitting of the word like Kimpurusha, and literally translated as 'Is it human?'. Kinnaras and kimpuruṣas are related most likely the same tribe. Some purāṇas mentions the kinnaras as horse-headed.

Purāṇas mentions the devil with horse-headed, and he is known as Hayagriva, who is also horse headed in Sanskrit. That Asura was killed by Lord Viṣṇu who incarnated as a similar form of a horse-headed human figure. The great epic the Rāmāyaṇa and the Mahābhārata, and the Purāṇas describes Himālayas as the living place of Kinnaras.

There are a description of two actors in the Mahābhārata who are the Kinnaras and they worked the developmental works for developing of the Paṇḍavas, their first name is Śikhaṇḍī and second is the son of Arjuna, Irāvān. Śikhaṇḍī fulfilled his vow after the death of the grandfather, Bhīṣma. And Irāvān helped his grandfather, Arjuna in the battle of Kurukṣhetra by showing his heroic deeds to all. (Mahābhārata, Sabhāparva, Vanaparva, Bhīṣma Parva, Chapter-83, 90, 91).

As per the view of his grandfather Bhīṣma of the Mahābhārata, the Kinnaras become very obedient and they can be engaged as the servant in the inner house of the kings. The city named Kārtikeya Nagara was always filled with the singing of the Kinnaras. (Mahābhārata, Śānti Parva).

There is a description of visiting of the Arjuna towards the cities of Kinnaras. The hero Arjuna went to the kimpuruṣaas by crossing the Dhavalagiri which was saved by Drumaputra. (Mahābhārata, Sabhāparva).

The definition of Kinnaras is given in the Amarakoṣa like this. 'Syātkinnaraḥ kiṁ puruṣasturangavadano mayuḥ' means the Kinnaras and the kimpuruṣas are the same and such word used for the kinnaras in the Sanskrit literature. The beautiful description of Kinnaras is seen in the Mahākāvya, Kumārasambhavam by Kālidāsa like this.

Udvejayatyadagaliparṣiṇabhāgān mārgeśailībhūtahimep;pi yatra/
Na durvahaśroṣipayodharārtā bhidati mandāṁ gatimaśvamukhyaḥ//
Yatrāṁśukākṣepavilajjitānāṁ yadṛcchayākimpuruṣānganānāṁ/
Darīgṛhadvāravilambibimvāśastiraskariṇyo jaladā bhavanti// (Kumarasambhavam, Canto.1, Sloka.14).

Further, In another place of Kumarsambhavam of Kālidāsa, Kinnaragirls have participated in a singing program and they have got accompany with Pāevatī, the daughter of the mountain, Himālaya. The description of Kumārsambhavam is seen as follows :

Upāttavarṇe carite Pinākinaḥ
savāṣpakaṇthaskhalitaiḥ padairiyam/
Anekaśaḥ kinnararājakanyakā
Vanāntasangītasakhīrarodayat//(Kumārasambhavam.Canto.V, Sloka.56).

When Pārvati sing the songs of the Lord Śiva, at that time, the daughter of Kinnara Kings gave the accompany her in the song programs in the forest place. And the Kinnara girls are naturally competent in the works of music, which is described by the poet, Kālidās in Raghuvaṁśam like this.

Vṛttaṁ Rāmasya Vālmīkeḥ kṛtistvau kiṁnarasvanau/
Kiṁ tadyena mano hartumalaṁ syātāṁ na śṛṇvatām//(Raghuvaṁśam.15.64)
Viṣṇudharmotora Purāṇa describes the Kinnaras like this.
Kinnarākhyā kiṁpuruṣāḥ nāgāḥ kadrusutā matāḥ/
Sidhā vidyādharāḥ proktā devarātmāstathāpsarā//(Viṣṇudharmottara Purāṇa, Śāstriya chapter,P.21)

This is the story of the Kinnaras that, they are the son of the Gandharvas, Nāgas, and kadrus, and they are competent in many vidyās. So they are the soul of the gods and like the apsarās. Kālidās, the great poet of Sanskrit says:

Yaḥ pūrayan kīcakarandhrabhagān darīmukhothena samīraṇena/
Udgāsyatāmicchati kinnarāṇāṁ tānpradāyitvāmivopagantum//(Kumārsambhavam,Canto.I, Sloka.8).

Kālidās says in Meghadūtam that, the bamboos make a sound which is very melodious and the kinnara girls were singing the songs of the Lord Mahādeva's tripurāsuera winning story. If your sound makes the sound of mṛdanga, then the singing of Mahādeva's song fulfills all the things. The description of Kālidās's voice is like this.

Śavdāyante madhurmanilaiḥ kīcakaḥ pūryamāṇāḥ
Saṁsthābhistripuravijayo gīyate kinnarībhiḥ/
Nihārdaste muraja eva cetkanderṣu dhvaniḥ svyāt
Sanghātārtho nanu paśupatstatrā bhāvī samagraḥ//(Pūrvamegha).

Purāṇas describes of the Kinnaras, and the systems of callings of the Kinnaras are described in Viṣṇudharmottara Purāṇa very beautifully. And the Kinnaras come by the calling. Purāṇa says:

Āvahayiṣyāmi tathā kinnarāḥ devagayanān/
Āyantu kinnarāḥ survey susvarāstu sulacana//

Today's Indian law about the Kinnaras

'Recognition of transgenders as the third gender is not a social or medical issue but a human rights issue' It is said by Hon'ble Justice K.S Radhakrishnan of Supreme Cout of India, who headed the two-judge Supreme Court Bench. The Court says:

'Transgenders are also citizens of India, and they must be provided equal opportunity to grow'.

The court order provides the legal sanctity to the third gender Laxmi Narayan Tripathi who was the petitioner of the case welcomed such type of judgment and telling that the community had suffered from a long time in the field of discrimination and ignorance. In the year 2009, the Election Commission of India took a good step by giving permission to choose their gender as 'other' on ballot forms(bbc.com).

Kinnaras are called the third gender in our society and it is known that their sexual organs are not fully developed. As per a calculation of 2011 of In dia, there are 4.9 lakhs kinnaras are lived in the whole of India, and among them, 37 thousand kinnaras are also lived in the state like Uttar Pradesh.

Under the chairmanship of our Hon'ble Prime Minister Sri Narendra Modiji has passed a personal bill in the assembly of the betterment of kinnaras, and they have accepted the third gender as per the judgment of the Supreme Court of India. And by which order, Kinnaras are able to gain all the facilities about social life, education, and also in the field of economical benefits. (Sahitya ke pariprekshya me kinnar vimarsha, Saniya Gupta, P.29).

Conclusion :-

From the above discussions, it is concluded that the kinnaras are not the same as the common people, they possess some extra-ordinary qualities and some divine qualities but the society looks them as not the same people as us. Nowadays their social status increases and they are now eligible to get the same rights as the livings of common people because they have lives and they are also human beings and not different from others.

References :-

1. Dr. Sihag, Naresh-Bohal Sodh Manusha, May,2019-Gugan Ram Educational & Social Welfare Society, Haryana.
2. Dr. Gupta, Saniya., Sahitya Ke Pariprekshya Me Kinnara Vimarsh., Gina Prakashan, Haryana.
3. Shastri, Jagdishlal., kumarasambhavam Mahakavyam., Motilal Banarasidass, Delhi.
4. Kale, M.R., The Meghaduta of Kalidasa., Motilal Banarsidass Publishers Pvt.Ltd, Delhi.
5. Kale, M.R., Raghuvamsam., Motilal Banarsidass Publishers Pvt.Ltd, New Delhi.

हिन्दी विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

एवं

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

के संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित

मुख्य विषय - हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श

एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, 29 सितम्बर 2021

को किया जा रहा है। जिसमें आप सादर आमंत्रित हैं।

उपविषय

1. हिन्दी साहित्य : किसान विमर्श
2. हिन्दी साहित्य : नारी विमर्श
3. हिन्दी साहित्य : आदिवासी विमर्श
4. हिन्दी साहित्य : दलित विमर्श
5. हिन्दी साहित्य : किन्नर विमर्श
6. हिन्दी साहित्य : प्रवासी विमर्श
7. हिन्दी साहित्य : अल्पसंख्यक विमर्श
8. हिन्दी साहित्य : दिव्यांग विमर्श
9. हिन्दी साहित्य : वृद्ध विमर्श
10. हिन्दी साहित्य : पुरूष विमर्श
11. हिन्दी साहित्य : कोरोना विमर्श
12. हिन्दी साहित्य : बेरोजगारी विमर्श
13. अन्य विमर्शो पर भी शोध आलेख स्वीकार्य।

नोट

सेमिनार में सहभागिता करने वाले प्रतिभागियों के आलेखों का प्रकाशन बोहल शोध मंजूषा पियर-रिव्यूड रैफर्ड जर्नल के ई-अंक में किया जायेगा। पंजीकरण सहयोग शुल्क प्रमाण-पत्र 301/- शोधार्थी व विद्यार्थी, 501/- प्राध्यापक व अन्य + 250 /- आलेख प्रकाशन हेतु देय होगा। आलेख 20 सितम्बर 2021 तक पेपर यूनिकोड, मंगल व कृतिदेव-10 फॉन्ट में कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर jitendersoni590@gmail.com पर मेल कर सकते हैं।

ई-अंक सेमिनार के 1 माह बाद वेबसाईट www.bohalshodhmanjusha.com पर अपलोड किया जायेगा।

संरक्षक

डॉ. आशा सहारण, प्राचार्य,
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

चौ० एम. राम
अध्यक्ष, गुगनराम सोसायटी (रजि.) भिवानी।

सचिव/संयोजक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
मो. 8708822674

संयोजक :

प्रो. मधुबाला, हिन्दी विभागाध्यक्ष
मो. 8901041097

आयोजन समिति :-

डॉ.विजेन्द्र बेनिवाल, सुनीता, सुमन लता, रजनी, बिमला, सुरेन्द्र डांडा, डॉ.जगदीश चहल, डॉ. गोविन्द सोनी, डॉ. राजेश शर्मा, डॉ. रवि सुण्डयाल, डॉ. के.के. मिश्रा, ज्योति कुशवाहा, सुमन रानी, रेखा रानी, रोहतास निम्मी

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल
E ISSN 2320 – 0871
17 अप्रैल 2022

शिक्षण प्रतिमान की अवधारणा

डॉ.अमिता जैन
सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूं, नागौर, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

प्रतिमान शब्द का प्रयोग किसी आदर्श के रूप में और किसी वस्तु के छोटे आकार के रूप में प्रयोग किया जाता है। किसी आदर्श को सामने लाकर छात्रों को इन आदर्शों का अनुकरण द्वारा ग्रहण कराने का प्रतिमानों द्वारा प्रयास किया जाता है। शिक्षण के क्षेत्र में कुशल शैक्षिक व्यवस्था के लिए शिक्षण प्रारूप बनाये जाते हैं, जिन्हें शिक्षण प्रतिमान कहा जाता है। शिक्षण प्रतिमान शिक्षण के बारे में सोचने-विचारने, विचार-विमर्श के पश्चात् एक निश्चित व्यवस्था के अनुकूल एक रीति विधि अथवा ढंग है।

मूल शब्द : *शिक्षण प्रतिमान, त्रिआयामी आकृति, गुण*

प्रस्तावना

शिक्षण प्रतिमान सिद्धांतों के निर्माण के लिए प्राथमिक सामग्री तथा वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग एक शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए करता है। प्रतिमान शब्द का प्रयोग किसी आदर्श के रूप में और किसी वस्तु के छोटे आकार के रूप में प्रयोग किया जाता है। किसी आदर्श को सामने लाकर छात्रों को इन आदर्शों का अनुकरण द्वारा ग्रहण कराने का प्रतिमानों द्वारा प्रयास किया जाता है। शिक्षण के क्षेत्र में कुशल शैक्षिक व्यवस्था के लिए शिक्षण प्रारूप बनाये जाते हैं, जिन्हें शिक्षण प्रतिमान कहा जाता है।

शिक्षण प्रतिमान के अर्थ को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं :

1 गुणों को प्रदर्शित करने वाले आदर्श की ओर संकेत करता हुआ : आम व्यक्ति किसी के गुणों की तुलना किसी आदर्श से करता है तब प्रतिमान शब्द का प्रयोग करता है। जैसे दो भाई बड़ा स्नेह करते हैं, तब कहते हैं राम-भरत के मॉडल हैं आदि।

2 किसी वस्तु की त्रिआयामी आकृति : इंजीनियर किसी पुल, बांध या भवन का निर्माण करने से पूर्व छोटा रूप तैयार करता है तो यह त्रिआयामी आकृति उस पुल या भवन का मॉडल कहलाती है। हम सहायक सामग्री का उपयोग करते समय भी इसका उपयोग करते हैं। जैसे. कुतुबमीनार का मॉडल, हवाई जहाज का मॉडल आदि।

3 किसी कार्य की व्यावहारिक रूप रेखा : किसी किये जाने वाले कार्य की रूपरेखा तैयार करना। जैसे जिले के विभिन्न विद्यालयों का अवलोकन करने जाना है। इसके लिए हम जाने के कार्य तथा वहां करने वाले कार्यों की रूपरेखा को

लिखकर तैयार करेंगे। इससे विद्यालयों की अवलोकन यात्रा का मॉडल तैयार हो जाएगा।

अतः प्रतिमान किसी आदर्श के अनुरूप व्यवहार को डालने की प्रक्रिया है। शिक्षण कार्य को पूर्ण करने के लिए तैयार की गई रूपरेखा शिक्षण प्रतिमान कहलाती है।

अब हम शिक्षण प्रतिमान की कुछ परिभाषाओं पर प्रकाश डालेंगे। "जॉयस व मार्शा वील के अनुसार शिक्षण प्रतिमान वह नमूना अथवा योजना है जिसे किसी पाठ्यक्रम का निर्माण करने, अनुदेशनात्मक सामग्री का चयन करने और किसी शिक्षक की क्रियाओं का मार्गदर्शन करने के काम में लाया जाता है।" एस के मंगल के अनुसार "शिक्षण प्रतिमान से तात्पर्य उस कार्य योजना से है जिसके द्वारा एक शिक्षक को निश्चित शिक्षा उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपने कार्य संपादन के लिए आवश्यक निर्देश और मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता है।"

पोल डी.ईगन के अनुसार "शिक्षण प्रतिमानों से अभिप्राय विशिष्ट अनुदेशनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्मित उपचारात्मक शिक्षण व्यूह रचनाओं से है।"

शिक्षण प्रतिमान की विशेषताएं

- शिक्षण प्रतिमान शैक्षिक वातावरण पैदा करने की विधियों पर प्रकाश डालते हैं।
- यह छात्रों एवं शिक्षकों के मध्य अंतरूक्रियाको निर्देशित करते हैं।
- शिक्षक के लिए गाइड का कार्य करते हैं।
- शिक्षण प्रक्रिया में पूर्ण सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।
- निश्चित शिक्षण सूत्रों का प्रयोग करते हैं।
- मानव योग्यता के विकास में सहायक है।
- शिक्षण को एक कला के रूप में विकसित करने में सहायक है।
- शैक्षिक क्रियाओं एवं वातावरण का निर्माण करने वाली एक रूपरेखा होती है।
- विशिष्ट शिक्षण एवं अधिगम विधियों के निर्माण में सहायक होते हैं।
- तथ्यों का सुव्यवस्थित रूप है।
- शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाने में सक्षम होते हैं।

शिक्षण प्रतिमान के तत्व

लक्ष्य (Goal) - कुछ विद्वान इसे केंद्रबिंदु (Focus) कहते हैं। चूंकि सभी शिक्षण प्रतिमानों में शिक्षक एवं छात्र की समस्त क्रियाएं इसी लक्ष्य या उद्देश्य या केंद्र बिंदु की प्राप्ति पर केंद्रित रहती है। इसलिए इसे लक्ष्य कहा जाता है।

संरचना (Syntax) -. इसमें शिक्षण सोपानों की व्याख्या की जाती है तथा शिक्षण क्रियाओं की व्यवस्था क्रम का निर्धारण किया जाता है ताकि अधिगम की परिस्थितियां उत्पन्न की जा सके और शिक्षण लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके।

सामाजिक प्रणाली (Social system) -. इसमें शिक्षक एवं छात्र की क्रियाएं और उनके परस्पर संबंधों का विवरण दिया जाता है। एक प्रतिमान से दूसरे प्रतिमान में शिक्षक का कार्य भिन्न-भिन्न होता है। किसी प्रतिमान में शिक्षक समूह क्रियाकी सुविधाएं उपलब्ध कराने वाला होता है। दूसरे में किसी छात्र विशेष का परामर्शदाता और अन्य में कार्य देने वाला। किसी प्रतिमान में शिक्षक क्रिया के मध्य मेंए सूचना का स्रोत व्यवस्थापक और परिस्थिति को गति देने वाला होता है। कुछ प्रतिमानों में शिक्षक और छात्रों के

शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मध्य समान रूप से क्रियाएं बंटी रहती है। कुछ प्रतिमानों में छात्र केंद्र में होता है।

प्रतिक्रिया सिद्धांत (Principles of reaction) - इसमें शिक्षक की उन क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है, जिसमें शिक्षक की क्रिया के प्रतिफल छात्र क्या प्रतिक्रिया करते हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

सहायक प्रणाली (Support system) - इसमें शिक्षक को अपनी सामान्य क्षमताओं, कौशलों तथा सामान्य रूप से कक्षा कक्ष में जो भी साधन उपलब्ध होते हैं, उनके अतिरिक्त किसी शिक्षण प्रतिमान विशेष का प्रयोग करने हेतु विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। जैसे. स्लाइड, मॉडल, चार्ट आदि।

उपयोग (Application) - शिक्षण प्रतिमान का शिक्षण में किस स्थिति एवं किस रूप में प्रयोग किया जा सकता है, इसका ज्ञान भी शिक्षक को अवश्य होना चाहिए। क्योंकि कुछ प्रतिमान लघु पाठों के शिक्षण हेतुए तो कुछ बड़े पाठों या छोटे बड़े दोनों तरह के पाठों के शिक्षण में उपयोग में लाए जा सकते हैं।

शिक्षण प्रतिमान के स्रोत

सामाजिक अंत:क्रिया स्रोत - सामाजिक संबंध शिक्षा का वाहक होता है, इसलिए शिक्षण इससे दूर नहीं रह सकता। बालक समाज में पैदा होता है और सामाजिक संबंधों से विकसित होता है, इसलिए उसका संपूर्ण शिक्षण कार्य उन्हीं सामाजिक संबंधों से जुड़ा हुआ है। यह स्रोत प्रजातांत्रिक शिक्षण प्रतिमान को विकसित करने में मदद करता है।

सूचना प्रक्रिया स्रोत - इस प्रकार के स्रोत बालक में सृजनात्मक मानसिकता का विकास करते हैं, जिससे बालक समस्या समाधान करने में अपने आप को सक्षम, योग्य एवं दक्ष बनाने का प्रयास करता है। एक प्रकार से इसके माध्यम से बालक अपने आप में सामान्य बौद्धिक क्षमता का विकास करता है।

व्यक्तिगत स्रोत - इसमें व्यक्तिगत ढंग से बालक का पुनर्बोध किया जाता है। इसके द्वारा बालक की क्षमता का विकास कराया जाता है, जिसके माध्यम से बालक अपने में वास्तविकए रचनात्मक एवं संगठनात्मक मानसिकता को विकसित कर सके। अतः बालक के व्यक्तिगत एवं संवेगात्मक जीवन को वातावरण से समायोजन अथवा संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

व्यवहार परिवर्तन स्रोत - इसके प्रणेता बी.एफ.स्कीनर हैं, जिन्होंने शिक्षण अधिगम के नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसके अंतर्गत बालक के व्यवहार का परिवर्तन करने में पुनर्बलन को आधार बनाया जाता है। ये प्रतिमान पूर्णत: मनोवैज्ञानिक आधार पर बनाए जाते हैं। इसका उपयोग शिक्षण व्यूह रचना में अधिक किया जाता है। यह नवीनतम शिक्षण स्रोत कहा जा सकता है।

शिक्षण प्रतिमान के कार्य

मार्ग निर्देशन - शिक्षण प्रतिमान का सर्वप्रथम कार्य यह है कि शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को शिक्षण उद्देश्य की प्राप्ति कराना। उद्देश्य प्राप्त करने के लिए क्याए कैसे क्यों आदि के लिए मार्ग निर्देशन करना। साथ-साथ शिक्षण को वैज्ञानिक, नियंत्रित एवं उद्देश्य उन्मुख क्रियाओंकी तरफ बढ़ाना है।

पाठ्यक्रम का विकास करना - विभिन्न कक्षाओं के विभिन्न विषयों के लिए पाठ्यक्रम का विकास करना, जिसके आधार पर शिक्षण को क्रियान्वित किया जाता है।

E ISSN 2320 – 0871
17 अप्रैल 2022

अनुदेशनात्मक सामग्री का विशिष्टीकरण - जब शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण एवं निर्धारण कर लिया जाता है तो उसी के अनुसार उसे सहायक सामग्री का नियोजन करना पड़ता है तथा उसका यथास्थान पर अनुपालन करना। जिससे बालक के व्यक्तित्व में वांछित परिवर्तन आ सके।

शिक्षण में विकास करना - उक्त कार्यों के संपादन होने के साथ-साथ शिक्षण प्रतिमान शिक्षण अधिगम को प्रभावी, रूचिकर, आकर्षक एवं उपयोगी बनाने में मदद करता है।

शिक्षण उद्देश्य की प्राप्ति - शिक्षण प्रतिमान का प्रमुख कार्य यह होता है कि वह जिस उद्देश्य के लिए किया जा रहा है, उसमें इसे कितनी उपलब्धता प्राप्त हुई अथवा बालक के व्यवहार में किस सीमा तक परिवर्तन हुआ।

निष्कर्ष

शिक्षण प्रतिमान गुणों को प्रदर्शित करने वाले आदर्श की ओर संकेत करता है। शिक्षण प्रतिमान शैक्षिक वातावरण पैदा करने की विधियों पर प्रकाश डालता हैं। किसी वस्तु की त्रिआयामी आकृति को प्रदर्शित करता है। शिक्षण प्रतिमान छात्रों एवं शिक्षकों के मध्य अंत:क्रिया को निर्देशित करते हैं। शिक्षक के लिए गाइड का कार्य करते हैं। यह तथ्यों का सुव्यवस्थित रूप है।

संदर्भ ग्रंथ

1 द्विवेदी, रोली (2018), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा 2

2 सिंह कर्ण (2008) शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबंध, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी

3 पुरोहित, जगदीश नारायण (2007) शिक्षण के लिए आयोजन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर

4 कथूरिया, आर.पी. एवं दवे रमेश (2005) शिक्षण प्रतिमान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

5 कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2005) शैक्षिक तकनीकी के मूलाधार, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 2

राष्ट्रहिताय संस्कृतम्

Shodhsamhita
शोधसंहिता

ISSN No. 2277-7067

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that

डॉ. अमिता जैन
सहायक आचार्य(शिक्षा विभाग), जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

For the paper entitled

'उच्च प्राथमिक स्तर के इतिहास पाठ्यक्रम में निहित चित्रात्मक सामग्री''

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

Volume No. VIII, Issue 12 (VI), 2021-2022

in

Shodhsamhita

Impact Factor: 4.95

UGC Care Group 1 Journal

Editor-in-Chief

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

'उच्च प्राथमिक स्तर के इतिहास पाठ्यक्रम में निहित चित्रात्मक सामग्री''

डॉ. अमिता जैन

सहायक आचार्य(शिक्षा विभाग), जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

सुनिता गौड़

(शोधार्थी)

सारांश :– विद्यार्थियों को ऐतिहासिक स्त्रोतों में चित्रात्मक सामग्री की जानकारी होना आवश्यक है। आधुनिक परिवेश में बालक अपने व्यावहारिक व सामाजिक आचरण को भूलता जा रहा है। बालक को इतिहास विषय में रूचि उत्पन्न हो तथा प्राचिन इतिहास के चित्रों से उसे समझने में सरलता तथा प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है। विद्यार्थियों द्वारा चित्रों को देखकर विषयगत कठिनाईयों को दूर करने में सहायता मिलती है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में चित्रात्मक सामग्री के विश्लेषण से अध्ययन के प्रति समुचित उत्साह उत्पन्न करना प्रमुख कार्य है जो प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अध्ययन को सुचारू, सरल और व्यावहारिक बनाने की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है।

प्रस्तावना :–पाठ्यपुस्तक सम्पूर्ण ि”क्षण प्रणाली का आधार स्तम्भ है और विषय वस्तु का अभिन्न अंग बनाया गया। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में चित्रों का समावे”ान करने के द्वारा विद्यार्थियों को एक आलोचनात्मक दूरबीन थमाने की को”ा”ा की गई है ताकि अतीत के खास क्षणों को विद्यार्थियों के समक्ष लाया जा सके। अन्य विषयों की अपेक्षा इतिहास ि”क्षण में इनका महत्व अधिक बढ़ जाता है क्योंकि इतिहास भूतकाल से सम्बन्ध होता है। भूतकाल प्रायः अस्पष्ट, घूमिल एवं अमूर्त होने के कारण अपने प्रस्तुतीकरण हेतु उपयुक्त कारणों की अपेक्षा रखता है। जिनके माध्यम से वह मूर्त एवं सजीव होकर ि”क्षार्थी के लिए सरल, रोचक व बोधगम्य हो सके। विद्यार्थियों में भूतकाल के विषय में सजीवता की इस अनुभूति को जाग्रत एवं विकसित करने में चित्रों की विधाऐं एक वि”ाष्ट भूमिका निभाती हैं। चित्र विद्यार्थियों में विचारोत्तेजना उत्पन्न करते हैं। चित्र विद्यार्थियों को बने–बनाये जवाब देने के बजाय उन्हें स्वयं सोचने के लिए प्रेरित करते हैं ताकि विद्यार्थी अपने नतीजों पर स्वयं पहुंच सके तथा अर्थपूर्ण अधिगम हो सकें। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 अनु”ांसा करती है कि पाठ्यपुस्तकों को लेकर अभिभावक ि”क्षक और नागरिक

समूहों में चर्चा को बढ़ावा देना चाहिए। विश्वविद्यालयों को पाठ्यपुस्तकों पर शोध अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि स्कूली ज्ञान को लेकर नियमित शोध आधारित जानकारी मौजूद रहे।

पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त विषयवस्तु, चित्रों, मानचित्रों और कार्टूनों के प्रस्तुतीकरण को लेकर असंतोष व्यक्त होता रहा हैं। पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध विवरणों को पूर्णता के साथ विकसित किया गया है। पाठ्यपुस्तकें बच्चों के सीखने की शैली को तवज्जों देती है। पाठ्यपुस्तकों में तस्वीरों तथा रंगीन चित्रों की विधाओं की अधिकता पायी गई। मानव ही ऐसा प्राणी है जो सदियों से एकत्र ज्ञान का लाभ उठाता है। मानवीय ज्ञान का संचय पुस्तकों के रूप में होता है। f"k्षण प्रक्रिया में पुस्तकों की उपयोगिता अपरिहार्य है। f"k्षा जगत ने सर्वमान्य रूप से पाठ्यपुस्तकों को सीखने–सिखाने के साधन के रूप में स्वीकार किया है। पाठ्यपुस्तकें सम्पूर्ण f"k्षण प्रणाली का आधार स्तम्भ हैं। पाठ्यपुस्तकें ऐसी होनी चाहिए जो कि विद्यार्थी को स्वतंत्र अध्येता के रूप में विकसित करने में सहायक हों। ऐसी पाठ्यपुस्तकें तैयार करना एक चुनौती भरी किन्तु अनिवार्य कार्यवाही है। स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्र – भाषा, गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान हैं। इन सुपरिचित क्षेत्रों में से सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत समाज के विविध सरोकार आते हैं। इतिहास सामाजिक विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग हैं।

मूल शब्द :– इतिहास पाठ्यक्रम, चित्रात्मक सामग्री, सजीवता।

शोध के उद्देश्य :–

1. चित्रात्मक शैली द्वारा अतीत से सम्बन्धित घटनाओं, तथ्यों, विचारों, समस्याओं, व्यक्तियों आदि का ज्ञान कराना।
2. इतिहास विषय में रुचि उत्पन्न कराना तथा संस्कृति, लोक परम्पराओं और कलात्मक धरोहर के प्रति लगाव पैदा करना।
3. विद्यार्थियों को मानसिक रूप से नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु तैयार करना।
4. विद्यार्थियों को अधिक क्रिया"khल बनाना तथा पढ़ने में अधिक रूची बढ़ाना।

उपसंहार :–

इतिहास के द्वारा विद्यार्थियों को ज्ञान का भण्डार प्रदान किया जाता है अर्थात् इतिहास स्वयं ज्ञान का भण्डार है जिसमें बालक स्वेच्छानुसार अन्वेषण कर सकते है। इतिहास विषय से विद्यार्थियों को हर काल से जुड़े राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं तत्कालिन् परिस्थितियों के बारे में जानकारी दी जाती है। इतिहास हमें मानव प्रकृति के विभिन्न आयामों एवं पक्षों से अवगत कराता है। इसके अध्ययन से हमें सभ्यता के क्रमिक विकास ज्ञान होता है। इतिहास पाठ्यक्रम में चित्रों के द्वारा सूचना एवं अमूर्त वस्तुओं को भी समझाया जा

सकता है तथा विचार वस्तु का भी प्रतिरूप बनाकर उसके प्रत्येक पक्ष को स्पष्ट किया जा सकता है। ऐतिहासिक सामग्री का शिक्षण कराते समय चित्रों के उपयोग से शिक्षक के आत्मविश्वास तथा निरिक्षण में कुशलता आती है और उसके तथा विद्यार्थियों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास होता है। इतिहास पाठ्यक्रम में चित्रों द्वारा अध्ययन से विद्यार्थियों को ज्ञानेन्द्रियों का सर्वाधिक प्रयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। चित्र विद्यार्थियों के मन और ध्यान को शिक्षण की ओर केन्द्रित करने में उपयोग होते है। इतिहास में चित्रों द्वारा शिक्षण प्रक्रिया को कक्षा–कक्ष जीवन्त बनाने में सहायता मिलती है।

सन्दर्भ :–_

1. अग्रवाल, गिर्राज कि”ाोर, (2014) ‘‘कला और कलम’’ विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
2. चतुर्वेदी, ममता, (2010) ‘‘समकालीन भारतीय कला’’ राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. www.google.com
4. www.shodganga.inflibnet.ac.in

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

उच्च प्राथमिक स्तर पर डॉक्यूमेंट्री शिक्षण कार्यक्रम की उपयोगिता

डॉ. अमिता जैन

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं, नागौर

पूजा शर्मा

(शोधार्थी)

"कहीं फायदे तकनीक से लाखों, तो कहीं अनगिनत नुकसान हुए।

यह तकनीक ही है जिसके कारण, कोरोना जैसे काल में मुश्किल कार्य आसान हुए"

सारांश : –

बालक की सर्वप्रथम शिक्षा की नींव परिवार द्वारा तैयार की जाती है। परिवार में रहकर बालक अनौपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करता है। तत्पश्चात बालक को औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। भारतीय शिक्षण पद्धति में पहले शिक्षा का स्वरूप परंपरागत शिक्षण प्रणाली पर आधारित था। जिसे गुरुकुल शिक्षा पद्धति कहा जाता था। जिसमें बालक गुरुकुल में गुरु के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे। इस पद्धति में शिक्षण का केंद्र अध्यापक या गुरु होते थे। जबकि बालक को गौण समझा जाता था। गुरु व्याख्यान द्वारा शिक्षण कार्य करते थे और बालक निष्क्रिय श्रोता बनकर वर्णन पद्धति द्वारा शिक्षा ग्रहण करते थे।

धीरे धीरे शिक्षा में हुए कई क्रांतिकारी परिवर्तनों, वैश्वीकरण, मनोवैज्ञानिक कारण तथा समय की मांग के अनुसार वर्तमान युग में शिक्षण में नवीन विधियों व तकनीकों का प्रयोग कर बालक को शिक्षण का केंद्र मानते हुए शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया जाता है। परंपरागत शिक्षण विधियों के उलट नवीन शिक्षण विधियां मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति द्वारा छात्रों को शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय बनाए रखने में सक्षम व छात्रों को शिक्षा में रुचि जागृत करने हेतु प्रेरित करती है। नवीन शिक्षा नीति में भी नवाचारों के उपयोग पर बल दिया गया है, जिससे बालकों में शिक्षण के प्रति रुचि पैदा हो सके व भयमुक्त शिक्षा का संचरण हो सके। वर्तमान युग में कई आधुनिक शिक्षण पद्धतियों का शिक्षण के दौरान लक्ष्य प्राप्ति हेतु उपयोग किया जाता है। इन्हीं में एक शिक्षण पद्धति है "डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम"। डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम में बालक की अधिकाधिक ज्ञानेन्द्रियों को सक्रिय रख शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जाता है। जिससे शिक्षण प्रक्रिया सरल बोधगम्य व रुचिकर हो जाती है।

मूल शब्द :–

उच्च प्राथमिक स्तर, डॉक्यूमेंट्री शिक्षण कार्यक्रम, उपयोगिता

प्रस्तावना :–

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा ही राष्ट्र के भविष्य हेतु सुसंस्कृत, सभ्य, गुणवान, तथा योग्य नागरिकों का विकास करती है शिक्षा में ज्ञान, तकनीकी दक्षता, उचित आचरण आदि गुणों का समावेश है। इन गुणों के विकास से ही आज का बालक कल का विकसित व सुसंस्कृत नागरिक बनेगा। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शिक्षा में अनेक नवाचार स्थापित किए गए हैं। जिससे बालक आसानी से सीख सके। डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम के तहत बालकों को सफलतापूर्वक शैक्षिक प्रक्रिया की ओर उन्मुख किया जा सकता है। जिससे बालक शिक्षण में रुचि लेकर सक्रिय सहभागिता के साथ शिक्षा के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

चूंकि वर्तमान समय विश्व कोरोना वैश्विक महामारी की चपेट में आ गया है, जिससे शिक्षा के ऑनलाइन माध्यम पर अधिक जोर दिया गया है। अतः डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम शिक्षा की ऐसी विधि है, जिसे बालकों में ऑनलाइन तथा ऑफलाइन दोनों ही माध्यम से प्रदर्शित कर शिक्षण कार्य सुगम तरीके से करवाया जा सकता है। अतः इस विधि का प्रयोग कर वर्तमान परिस्थितियों में भी शिक्षण कार्य बिना रुकावट के रुचिकर ढंग से आगे बढ़ सका है। वर्तमान वैश्विक महामारी कोविड-19 के दौर में जहां एक और संपूर्ण देश में लॉकडाउन जैसी स्थिति उत्पन्न हुई, जिसके फलस्वरूप कई अन्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि समस्याएं उत्पन्न हुई। वहीं दूसरी और शैक्षिक वातावरण भी कुछ समय हेतु डगमगा गया। परंतु शिक्षा में निरंतर होने वाले नवीन प्रयोगों अथवा नवाचारों के प्रयोगों से शैक्षिक व्यवस्था में सुदृढ़ीकरण हुआ है। इसी दिशा में देश में ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था मील का पत्थर साबित हुई है। राजस्थान सरकार द्वारा भी इस दिशा में कई कदम उठाए गए। जिनमें 2 नवंबर 2020 से **SMILE** (सोशल मीडिया इंटरफेस फॉर लर्निंग इंगेजमेंट) प्रोजेक्ट की शुरुआत की गई। विद्यार्थियों और शिक्षकों को ऑनलाइन पठन-पाठन से जोड़ने की शुरुआत की गई। इस प्रोजेक्ट के तहत शिक्षा विभाग द्वारा प्रत्येक विषय हेतु 30 से 40 मिनट की वीडियो सामग्री तैयार की गई है। ये वीडियो 1 से 12 कक्षा स्तर हेतु तैयार किए गए हैं। इस हेतु शिक्षकों द्वारा अपने स्तर पर भी वीडियो का निर्माण किया जा सकता है। जिनमें वे विषय से संबंधित 30 से 40 मिनट की शैक्षिक डॉक्यूमेंट्री कार्यक्रम का प्रदर्शन कर शिक्षण कार्य करवा सकते हैं। इसी प्रकार प्राइवेट या निजी शिक्षण संस्थानों में भी ऑनलाइन कक्षाओं को रुचिकर व ज्ञानवर्धक बनाने हेतु शिक्षकों द्वारा विभिन्न शैक्षिक डॉक्यूमेंट्री फिल्मों का प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रकार वे ऑनलाइन व ऑफलाइन दोनों प्रकार से बालक की अधिकतम ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय रख शैक्षिक कार्यक्रमों के उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

वर्तमान युग की शैक्षिक व्यवस्था व नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में प्रजातांत्रिक गुणों का समावेश कर विद्यार्थियों की सुविधा व रुचि अनुसार शिक्षा लेने हेतु प्रेरित करती है। इस हेतु शिक्षा में नवीन विधियों तथा नवाचारों का प्रयोग किया जा रहा है। तकनीकी के इस युग में शिक्षा को नवाचारों से जोड़कर उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है। जिसके लिए

विद्यार्थियों में विषय के अधिगम के प्रति तत्परता, रुचि, पूर्वज्ञान, एकाग्रता आदि गुणों का समावेश करना आवश्यक है। हमारे विद्यार्थियों द्वारा उच्च प्राथमिक स्तर पर परंपरागत शिक्षण व्यवस्था के अंतर्गत पाठ्य पुस्तक में पाठ के अंत में दिए गए अभ्यास प्रश्नों को ही करने पर बल दिया जाता है तथा परीक्षा में सफलता प्राप्ति हेतु भी इन्हीं अभ्यास प्रश्नों पर बल दिया जाता है] जिससे छात्र पाठ की मूल अवधारणा को सही ढंग से नहीं समझ पाते हैं और जीवन में ऐसी परिस्थिति आने पर विचलित हो जाते हैं। अलग-अलग विषयों में कई मुद्दे हैं जो हमें वास्तविक परिस्थितियों] सामाजिक गतिविधियों आदि का बोध कराते हैं। वर्तमान समय में परंपरागत विधि से कराया गया शिक्षण वर्तमान युग की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता। अतः आवश्यक है किस शिक्षण की विधि में डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम जैसे नवाचारों का प्रयोग कर विषय को अधिक रुचिकर बोधगम्य बनाया जाए जो कि छात्रों के प्रभावशाली अधिगम में सहायक हो। अतः ऐसी शैक्षिक विधि की आवश्यकता है जो:–

1. विद्यार्थियों में विषय के प्रति रुचि बनाने व स्वतंत्र रूप से सीखने व सोचने में मदद कर सके।
2. विद्यार्थियों को विषय के प्रति संवेदनशील, अवधारणा को समझने, वास्तविक परिस्थितियों में सीखे गए ज्ञान का प्रयोग करने योग्य बनाएं।
3. विषय से संबंधित विचारों पर मंथन व समीक्षा के अवसर मिले।

इन्हीं प्रमुख तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उच्च प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक नवाचारों के अंतर्गत डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम की उपयोगिता आवश्यक है।

डॉक्यूमेंट्री का परिचय :–

डॉक्यूमेंट्री फिल्म एक गैर काल्पनिक गति चित्र है। जिसका उद्देश्य "दस्तावेज वास्तविकता" मुख्य रूप से शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्य या एक ऐतिहासिक रिकॉर्ड बनाए रखने के लिए है। **बिल निकोलस के अनुसार** – "डॉक्यूमेंट्री एक फिल्म निर्माण प्रथा या एक सिनेमाई परंपरा और दर्शकों के स्वागत की एक विधा है, जिस की विशेषता स्पष्ट सीमाओं के बिना एक अभ्यास है।"

प्रारंभिक डॉक्यूमेंट्री फिल्में जिन्हें मूल रूप से वास्तविकता फिल्में कहा जाता है, 1 मिनट या उससे भी कम समय तक ही चली। समय के साथ डॉक्यूमेंट्री फिल्म में लंबे समय तक बनने के लिए विकसित हुई और साथ ही अधिक श्रेणियों में इन को शामिल किया गया। जैसे शैक्षणिक, पर्यवेक्षण, सामाजिक आदि। डॉक्यूमेंट्री फिल्में बहुत रोचक जानकारी पूर्ण और अक्सर विद्यालय के भीतर प्रयोग की जाने वाली एवं विभिन्न सिद्धांतों को आसानी से पढ़ाने के लिए एक संसाधन के रूप में प्रयोग की जाती है। इसी कड़ी में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे यू–ट्यूब ने डॉक्यूमेंट्री फिल्म शैली के विकास हेतु एक अवसर प्रदान किया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने डॉक्यूमेंट्री फिल्म के वितरण क्षेत्र और सहजता में वृद्धि की है। इससे दर्शकों की अधिक संख्या को शिक्षित करने की क्षमता में वृद्धि हुई है। और इससे संबंधित जानकारी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की पहुंच को व्यापक बनाया गया है।

डॉक्यूमेंट्री फिल्मों के प्रकार :–

क्योंकि सभी डॉक्यूमेंट्री फिल्में समान नहीं होती है अतः विभिन्न प्रकार की डॉक्यूमेंट्री फिल्मों को सिनेमैटोग्राफर से विभिन्न तकनीकों की आवश्यकता होती है डॉक्यूमेंट्री शैलियों के छः प्रमुख प्रकार हैं।

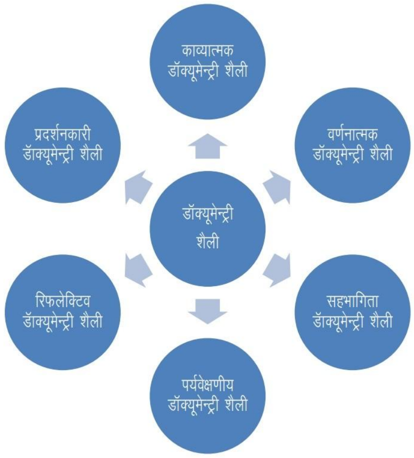

इन विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग विभिन्न विषयों से संबंधित जानकारी प्रदर्शन करने हेतु किया जाता है

डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम के लाभ :–

1. डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम से छात्रों को नई अवधारणाओं और नवीनतम प्रौद्योगिकी का परिचय आसानी से होता है।
2. डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों को स्वयं को व्यक्त करने की कला भी सिखाई जाती है।
3. डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम द्वारा सीखने की क्षमता का सकारात्मक विकास होता है।
4. डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन ता का गुण विकसित होता है।
5. डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम द्वारा वर्तमान घटनाओं से छात्र प्रेरित होता है तथा उसमें चिंतनशील लेखन को बढ़ावा मिलता है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि शिक्षा में प्राचीन शैक्षिक विधियों के स्थान पर नवीन शैक्षिक विधियों जैसे डॉक्यूमेंट्री प्रदर्शन कार्यक्रम जैसे नवाचारों के प्रयोग से शिक्षा के ना केवल लघुकालिक उद्देश्य वरण दीर्घकालिक उद्देश्यों की प्राप्ति में भी बल मिलता है। वर्तमान शैक्षिक पद्धति केवल ज्ञानार्जन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि प्राप्त ज्ञान का जीवन में वास्तविक धरातल पर प्रयोग किस प्रकार किया जाए पर अधिक बल देती है।

शिक्षण प्रक्रिया में डॉक्यूमेंट्री शिक्षण कार्यक्रम का उपयोग करके शिक्षक अपने विद्यार्थियों में विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है, और उन्हें दुनिया का अनुभव करने की यात्रा पर ले जा सकते हैं। वैश्विक कहानियां और मुद्दे छात्रों के जीवन के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं और वास्तव में सार्थक शिक्षण वह शिक्षण है जिसमें छात्रों द्वारा चर्चाओं और गतिविधियों का समर्थन किया जाता है। छात्रों को अपने विचारों को खोजने की अनुमति मिलती है जिससे वह इस बदलती दुनिया में खुद को समायोजित कर मजबूत वैश्विक नागरिक बन सके।

संक्षेप में, छात्रों में किसी भी ज्ञान की समझ बढ़ाने हेतु भावनात्मक जुड़ाव आवश्यक है। शैक्षिक डॉक्यूमेंट्री फिल्में संवेदी होने के कारण भावनात्मक रूप से शक्तिशाली माध्यम है जो छात्रों को अन्य संस्कृतियों में ले जा सकती हैं और भावना और सहानुभूति के माध्यम से किसी भी विषय के वैश्विक मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा कर सकती हैं। अतः डॉक्यूमेंट्री शिक्षण कार्यक्रम शिक्षा के विभिन्न सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों को एकीकृत करने हेतु एक शक्तिशाली उपकरण है।

संदर्भ सूची :–

1. अग्रवाल, आर. एण्ड गौतम, ए. (2011), इफ़ेक्ट ऑफ़ कंस्ट्रक्टिविस्ट मेथड ऑफ टीचिंग ऑन एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ प्राइमरी स्कूल स्टूडेंट्स, ज्ञानोदय: द जनरल ऑफ प्रोग्रेसिव एजुकेशन, 4(1),1–6
2. बेग,जी.(1997), हाऊ केन वी टीच हिस्ट्री थ्रू टेलीविजन
3. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.(1993) लर्निंग विथआउट बर्डन: रिपोर्ट ऑफ नेशनल एडवाइजरी कमिटी, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट न्यू दिल्ली
4. पाश्चालिडिस,जी.(2006), द लैंग्वेज ऑफ डॉक्यूमेंट्री अनपब्लिश्ड मनुस्क्रिप्ट, डिपार्टमेंट ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन
5. शर्मा, आर. ए.(2008), शिक्षा के तकनीकी आधार, मेरठ आर लाल बुक डिपो
6. https://www.edweek.org>2015/10
7. https://www.theemotionmachine.com
8. https://www.genvellay.org>domain

Shodhsamhita

शोधसंहिता

ISSN No. 2277-7067

राष्ट्रहिताय संस्कृतम्

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that

डॉ. अमिता जैन

सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं, नागौर

For the paper entitled

उच्च प्राथमिक स्तर पर डॉक्यूमेंट्री शिक्षण कार्यक्रम की उपयोगिता

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

Volume No. VIII, Issue 12 (V), 2021-2022

in

Shodhsamhita

Impact Factor: 4.95

UGC Care Group 1 Journal

Editor-in-Chief

Praxis International Journal of Social Science and Literature
A Peer-reviewed Open Access eJournal with SJIF 2020 = 5.754, ISSN: 2581-6675
Volume- 5, Issue- 2, February-2022
Website: www.pijssl.com, E-mail: editor.pijssl@gmail.com

व्यक्तित्व और जीवन जीने की कला

प्रो. बी. एल. जैन[1], डॉ.अमिता जैन[2]

[1] विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं,नागौर (राज.)

[2] सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान,लाडनूं,नागौर (राज.)

सारांश

व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है। व्यक्तित्व आंतरिक और बाह्य गुण, सौंदर्य और कला से बनता है। व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार व्यक्तित्व है। व्यक्ति व्यक्तित्व को कलात्मक बनाने के लिए उसे कैसे निखारे? इस हेतु व्यक्तित्व और जीवन की कलाओं को सीखना आवश्यक है। कोई व्यक्ति अनेक प्रकार की कलाओं में निष्णात है। लेकिन जीवन जीने की कला में निपुण नहीं है, तो उसका जीवन सार्थक नहीं होगा। व्यक्तित्व की विभिन्न कलाओं के विषय में जानकारी होनी चाहिए और उनके अंतर्गत दक्षता भी होनी चाहिए। व्यक्तित्व और जीवन जीने की कला सीखाने के लिए उठने, बैठने, चलने, खाने, सोने आदि के तौर तरीके सीखना आवश्यक है। इस विषय की सटीक और सूक्ष्म जानकारी प्रदान करने हेतु यह शोध पत्र लिखा गया है।

बीज-शब्द: *व्यक्तित्व, चलना, बैठना, खाना, सोना, सहना, बोलना, सोचना।*

प्रस्तावना

आज फैशन परस्त इस दौर में बाह्य व्यक्तित्व को हम आकर्षक बनाने में लगे हैं। कपड़ों से, बालों से, जूतों से, आभूषणों आदि से उसके सौंदर्य को बढ़ा रहे हैं। लेकिन आंतरिक व्यक्तित्व हमारा फीका होता चला जा रहा है। क्योंकि आंतरिक व्यक्तित्व के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। बाह्य व्यक्ति पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अत: बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व के विकास करने के लिए व्यवहार की कुछ क्रियाओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। यथा - वह किस प्रकार से उठे? वह किस प्रकार से बैठे? वह किस प्रकार से चले? वह किस प्रकार से सोए? वह किस प्रकार से खाए? वह किस प्रकार से बोले? वह किस प्रकार से सोचे? वह किस प्रकार से कार्य करें आदि? व्यक्ति को अच्छा व्यक्तित्व बनाने के लिए जीवन जीने की कला उठने, बैठने, चलने, खाने, पीने, सोने आदि समुचित ढंग से आनी चाहिए। यदि व्यक्ति को इस संदर्भ में कला नहीं है,तो समाज में उसका महत्त्व उतना नहीं होता है, जितना कि होना चाहिए। व्यक्तित्व में उन सभी आयामों को संजोना चाहिए जो हमारे जीवन में बहुत अधिक सहायक है। व्यक्तित्व निखारने हेतु हमें अपना आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। हमारे भीतर क्या-क्या कमियां हैं? क्या-क्या अच्छाइयां है? मेरे अंदर किस प्रकार के सद्गुण भरे हुए हैं? मैं अपने जीवन में कौन-कौन से कार्यों को कलात्मक ढंग से करने में दक्ष हूं? किस कार्य को करने में दक्ष नहीं हूं? इस प्रकार की जानकारी आत्मनिरीक्षण, आत्मपरीक्षण, प्रतिलेखन के द्वारा कर सकते हैं। इससे व्यक्तित्व की आत्मचेतना जागृत होती है। और अपने व्यक्तित्व का परिमार्जन, परिष्कार एवं सुधार कर सकते हैं। जीवन तो पशु, पक्षी, कीड़े, भी जीते हैं। लेकिन उनमें जीवन जीने की कला और व्यक्तित्व निखारने की कला नहीं होती है। जैसे बंदर अपना जीवन जीता है। लेकिन उसका स्वभाव चंचल होता है। यदि उसे शराब पिला दी जाए और उसे बिच्छू खा जाता है। तो वह भूत जैसा व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार की कलाएं व्यक्तित्व को निखारने में सक्षम नहीं होती है। अपितु उसके दुर्गुणों की ओर संकेत करती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसके अंतर्गत व्यक्तित्व की कलाओं को विकसित किया जा सकता है। क्योंकि मनुष्य बुद्धि, ज्ञान और चेतना युक्त प्राणी है। वह छोटी-छोटी कलाओं से अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है।जैसे स्थूल हाथी को एक छोटा सा अंकुश वश में कर सकता है, एक छोटा सा दीपक घने

अंधकार का हरण कर सकता है, बड़े-बड़े पहाड़ों को छोटा सा वज्र धाराशाही कर सकता है। इसलिए यह छोटा है ऐसा समझ कर के व्यक्तित्व के किसी भी क्रिया आधारित आयाम की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। मानव जीवन उठने, बैठने, चलने, खाने, पीने, सोने आदि छोटी-छोटी क्रियाओं से सजा हुआ है। इन छोटी-छोटी क्रियाओं से ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कैसे उठना? कैसे बैठना? कैसे चलना? कैसे बोलना? आदि बातें छोटी लगती है लेकिन यह व्यक्तित्व के महल का निर्माण करने में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। यह एक भवन में नींव का कार्य करती हैं। व्यवहार की अधोलिखित क्रियाएँ है जो व्यक्तित्व का निर्माण करती है-

1. चलना - चलना जीवन की एक अपेक्षित क्रिया है। चलने से तात्पर्य गति से है। बच्चा जन्म लेता है,वह सबसे पहले बैठकर के चलता है फिर ऊँगली पकड़कर के चलता है, फिर ठुमक -ठुमक कर के चलता है और उसके चलने से सभी प्रसन्नचित्त होते हैं ।यह उस बालक के चलने के व्यक्तित्व का विशिष्ट गुण हुआ। गति दो प्रकार की होती है- एक गति पैरों से चलना है तथा दूसरी गति जीवन का विकास करना है। हम कैसे चले?नीचे देख कर चले, सावधानीपूर्वक चले, सीधे चले, देखकर चले। चलने से चार गुण प्राप्त होते हैं- खोई हुई वस्तु मिल सकती है, दया भावना पुष्ट हो सकती है, हिंसा से बचा जा सकता है, दृष्टि दोष को टाला जा सकता है। सड़क पर चलने के कुछ नियम है- सड़क के बीच में नहीं चलना चाहिए, सडक के दाहिने ओर चलना, नियम अनुसार चलना, जल्दी-जल्दी में नहीं चलें, ऊंचा मुंह करके नहीं चलें, बातें करते हुए न चलें, हंसते हुए नहीं चलना चाहिए, स्वाध्याय करते हुए नहीं चलना चाहिए। गति का दूसरा अर्थ है- जीवन में विकास करना। भारतीय संस्कृति 'चरैवेति चरैवेति' को बहुत महत्व देती है। जो चलता है उसका भाग्य भी उसके साथ चलता है और जो ठहर जाता है उसका भाग्य भी ठहर जाता है। यहाँ चलने से तात्पर्य है आध्यात्मिक की दशा में प्रस्थान करना है। जीवन को ज्ञान और आचरण की शोभा से भरा जाना है। जीवन को मंजिल की ओर गतिमान करने के लिए ज्ञान का प्रकाश और आचरण की शोभा आवश्यक है। जीवन सद्गुणों के सौरभ से भरा हुआ होना चाहिए।

2. बैठना- बैठना एक कला है। कब, कहाँ, कैसे बैठना चाहिए, इसकी जानकारी भी विज्ञान है। बड़ों के सामने कैसे बैठे? छोटों के सामने कैसे बैठे? कक्षा में कैसे बैठे? भोजन के समय कैसे बैठे? प्रवचन के समय कैसे बैठे? ध्यान के समय कैसे बैठे? किसी कार्य के समय कैसी मुद्रा में बैठे, इसकी सही जानकारी होना और उसी ढंग से बैठना व्यक्तित्व का कला पूर्ण जीना है। कुछ व्यक्तियों में बैठने के समय अग्रलिखित चंचलता झलकती है और परिलक्षित होती है। जैसे- बैठने के समय इधर-उधर देखता है, कभी आगे झुकता, कभी पीछे झुकता है, कभी शरीर को मोड़ता है, कभी अंगड़ाई लेता है, कभी नींद लेता है, कभी हाथ-पैर का संचालन अनावश्यक ढंग से करता है। इस प्रकार का अवांछनीय संचालन गलत कहलाता है। हम बोलते भी है कि ठीक ढंग से नहीं बैठ सकते क्या? ध्यान में पद्मासन, वज्रासन, सुखासन आदि में आराम से बैठने का आसन का चयन करना। बैठने के समय मुख मुद्रा प्रसन्नचित्त, शांत, शालीन भाव में होनी चाहिए। बैठने के समय चिंता की मुद्रा, आवेश की मुद्रा, गुस्से की मुद्रा है तो चेहरे की भाव-भंगिमा विकृत होगी। उससे व्यक्ति का व्यक्तित्व अमानवीय बन जाता है। व्यक्ति ऐसे स्थान पर बैठे, जहाँ बैठने से किसी को व्यवधान न हो, जहाँ बैठने से दूसरे को परेशानी न हो, जीव -जन्तु घूमते हो उस स्थान पर नहीं बैठे, किसी के चलने से ठोकर नहीं लगे इस प्रकार की विधा का ज्ञाता और क्रिया करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व कला पूर्ण होता है।

3. बोलना-बोलने के चार महत्वपूर्ण सूत्र-

- **मितभाषिता** -कम बोलना, अल्पभाषिता, अनावश्यक नहीं बोलना, व्यंग पूर्ण लहजे में नहीं बोलना, मौन रहना, अधिक बातूनी न होना, वाक संयम रखना, अप्रिय नहीं बोलना आदि ।
- **मधुर भाषिता-** मीठा बोलना, कोयल जैसा बोलना, प्रिय बोलना, शांति से बोलना, धीरे-धीरे बोलना, सरलभाषा में बोलना, शालीनता से बोलना आदि।
- **सत्यभाषिता-** सत्य बोलना,वास्तविक बोलना,यथार्थ बोलना,ईमानदारी के साथ बोलना आदि।
- **समीक्ष्यभाषिता-** समीक्षा करके बोलना, विचार पूर्वक बोलना, प्रयोजन युक्त बोलना, अवसर के अनुकूल बोलना, अशिष्ट भाषा में नहीं बोलना आदि। जैसे नुपुर आवाज करता है इसलिए नीचा स्थान उसे प्राप्त होता है और हार आवाज नहीं

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

करता है इसलिए उसे ऊंचा स्थान प्राप्त होता है। अत:पहले तोलो और फिर बोलो।

4. खाना- भोजन/खाने के तीन महत्वपूर्ण सूत्र है –

- **मित भोजन-** मित भोजन अर्थात अधिक नहीं खाना। दो चपाती की भूख होने पर डेढ़ चपाती खाना। कम से कम 3-4 घंटे के अन्तराल में भोजन करना चाहिए। खाने का संयम या खाद्य संयम अपनाना, जिव्हा संयम, स्वाद संयम, सात्विक भोजन करना, चबा-चबाकर खाना, खाने के समय दिमाग शांत रखना, आहार संयम, ठूंस-ठूंस कर नहीं खाना, उपवास समय पर अधिक नहीं खाना आदि ।
- **हितकारी भोजन-** हितकारी भोजन करना। शरीर के लिए श्रेष्ठ भोजन प्रदान करना,प्रिय भोजन नहीं देना। जैसे शुगर वाले व्यक्ति को खीर प्रिय है लेकिन हितकारी नहीं है। अत:उसे खीर नहीं देनी चाहिए।
- **ऋत भोजन-** अर्थात श्रम से उपार्जित भोजन करना। नीति की राशि से कमाये रूपये का अन्न खरीदकर भोजन करना चाहिए।

भोजन से व्यक्ति पतला, मोटा, मध्यकाय वाला बन जाता है। अधिक खाने वाला स्थूलकाय व्यक्तित्व वाला, कम खाने वाला कृशकाय शरीर वाला तथा मध्यम खाने वाला मध्यकाय वाला बन जाता है।

5. सोना- कैसे सोए? नींद इस प्रकार हो कि थकान समाप्त हो जाय, शरीर को पूर्ण विश्राम मिले, शरीर में ताजगी महसूस हो, शरीर तनाव मुक्त हो जाये। अच्छी नींद के लिए कार्य को भार के रूप में नहीं लेना चाहिए, चित्त प्रसन्न रखना चाहिए, सोने के समय सोचना नहीं चाहिए, पवित्र विचार मन में रखने चाहिए, आसक्ति के भाव नहीं होने चाहिए, भाव शुद्ध होने चाहिए, सोने से आधा घंटा पूर्व मोबाईल /टी.वी आदि को देखना बंद कर देना चाहिए, अपने इष्ट के मंत्र का जाप करना चाहिए।

6. सोचना- कैसे सोचे? व्यक्ति को सोचने में सबसे अधिक क्रिया करना पड़ता है। हर कार्य के साथ सोचना प्रयुक्त होता है। सबसे बड़ा कौन– आकाश । आसान काम- बिना मांगे सलाह देना। कठिन काम-अपनी पहचान करना। सबसे अधिक गतिशील-विचार। विचार सबसे अधिक गतिशील होते हैं। मन के कार्य में कल्पना, स्मृति और चिन्तन करना होता है। विचार में चिंता, चंचलता, व्यग्रता, विचरणशीलता, बिना मतलब की बात चलती है। एकाग्रता से मन को एक विषय में सोचने में लगाना चाहिए,मन नियंत्रण हेतु ध्यान करना चाहिए, मन के द्वारा भगवान स्मरण, हिताहित चिंतन, समस्या-समाधान आदि सोचना चाहिए।

सोच की प्रक्रिया-

- **मित चिंतन-** योजनाबद्ध सोचना, सीमित सोचना (जैसे पढने के समय खाने के बारे में नहीं सोचना) लक्ष्य युक्त सोचना, खाने-चलने-पढ़ने के समय भी नहीं सोचना। चिंतन करना चाहिए कोई कार्य कब करना है? कैसे करना है? कितना करना है आदि के बारे में विचार करना चाहिए। उसी में मन को एकाग्र रखना चाहिए। श्वास पर चित्त केंद्रित करने से एकाग्रता आती है ।
- **हित चिंतन-** स्वयं तथा दूसरे का मंगल हो, सकारात्मक सोचना, स्वयं जो मांगे वही पड़ोसी को डबल मिले इस प्रकार की भावनाओं से सोचना, सर्वे भवंतु सुखिनः की भावना से सोचें। योजनाबद्ध तरीके से सोचना, जैसे- व्यापार करना- किस का व्यापार करना? कहां करना? कैसे करना? किसके साथ करना आदि पर विचार करना ।
- **ऋत चिंतन-** यथार्थ/वास्तविक चिंतन करना, योजना वह बनाएं जो उपयोगी हो, समयबद्ध विचार हो। विचार अच्छे और बुरे दोनों आते हैं। लेकिन उपयोगी क्या है, यह हमें विचार करना होगा । विचार मन के भीतर छिपे होते है। मन के भाव अशुद्ध हैं तो विचार भी अशुद्ध होंगे और मन भी बुरा होगा। विचार शुद्ध हैं तो मन भी शुद्ध होगा। सदैव प्रशस्त सोचे।

7. सहना- कैसे सहे? दूसरे के विचारों को सुनना, दूसरे के विचारों को समझना, दूसरे के मत को सहना, दूसरे की क्रियाओं को आत्मसात करना। सहनशीलता की अभिव्यक्ति शरीर, वाणी और मन से संभव है। शरीर सहिष्णुता में शरीर को जैसे वातावरण में डालेंगे वह वैसा बन जाएगा। मानसिक असहिष्णुता तनाव, घुटन, कुंठा, अनुशासनहीनता से पैदा होती है। मानसिक असहिष्णुता

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

मैत्री कम कर देती है, रिश्तेदारी तोड़ देती है। आज बच्चे तनाव की भाषा में बोलने लगे हैं। वाचिक सहिष्णुता- बातचीत में सत्य बोलना, शालीन बोलना, विनम्र बोलना, आवेश और उत्तेजना में नहीं बोलना, कठोर भाषा में नहीं बोलना, व्यंग में नहीं बोलना, उलझन वाली भाषा में नहीं बोलना, दिल दुखाने वाली भाषा में नहीं बोलना, दूसरों पर किसी भी विचार को थोपना नहीं। असहिष्णु में क्रोध के भाव आते है। क्रोध दो प्रकार से किया जाता है- **एक** दिखावटी क्रोध- मात्र कार्य कराने के उद्देश्य से होता है, लाल आंख दिखाना या कठोरता से बोलना आदि करना। जिसका भाव सामने वाले को सुधारना, कमजोरियों को ठीक करना होता है। **दूसरा** वास्तविक क्रोध- विवेक को नुकसान पहुंचाना, तोड़-फोड़ करना, ईट का जवाब पत्थर से देना, अशिष्ट व्यवहार करना, राक्षसी प्रवृत्ति करना। उपाय- उस स्थान से चले जाना, मौन रहना, लंबी सांस लेना आदि। व्यक्ति यदि सहिष्णु रहता है तो चेतना में शांति और आनंद व्याप्त होती है।

निष्कर्ष- व्यक्तित्व ही हमारी सोच, योग्यता, क्षमता तथा उपलब्धियों को आधार प्रदान करता है। मूलप्रवृति से संवेग, संवेग से व्यवहार और व्यवहार से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। हमारा प्रत्येक कार्य क्रिया से परिणित होता है। क्रिया ही व्यवहार को परिलक्षित करती है। यह व्यवहार ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। उठना, बैठना, चलना, खाना, पीना, सोना, बोलना, सोचना, सहिष्णु आदि क्रिया व्यवहार को प्रकट करती है। यदि इन क्रियाओं को विशिष्ट तरीके से करते है तो हमारा व्यक्तित्व भी विशिष्ट बन जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. आचार्य महाश्रमण, *सुखी बनो*, जैन विश्व भारती, लाडनूं-341306, मई 2021, पेज-18-21
2. कोठारी, गुलाब, *मानस-4 अध्यात्म और जीवन- मूल्य*, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2016, पेज-98-100
3. श्री वास्तव, डी. एन., श्री वास्तव, वी.एन., *आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2015, पेज- 359-370
4. आचार्य महाश्रमण, *आओ हम जीना सीखें*, जैन विश्व भारती, लाडनूं-341306, 2014, पेज-13-22
5. अस्थाना, मधु, वर्मा, किरण वाला, *व्यक्तित्व मनोविज्ञान*, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2012 पेज-110-118
6. सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार, *मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2010, पेज-07-09
7. कालिया, अरविन्द, *व्यक्तित्व विकास*, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, सितम्बर 2009, पेज-70-73
8. सिन्हा, अरविन्द, *आपका व्यक्तित्व आपकी सफलता*, रामचन्द्र अग्रवाल जयपुर पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, 2006, पेज-86-90
9. ओशो, *शिक्षा में क्रांति*, ताओ पब्लिशिंग, पुणे, दिसम्बर 2005, पेज-50-52
10. पाण्डेय, रामशकल, *शिक्षा मनोविज्ञान*, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2003, पेज-60-78

DOI: 10.51879/PIJSSL/050210

यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल
अक्टूबर–दिसंबर 2021
वर्ष 11, अंक–23

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में रूस की स्थिति: एक राजनीतिक विश्लेषण 185
शैलेन्द्र कुमार

शैक्षिक प्रगति और राजनीतिक विमुखता 188
डॉ. संदीप कुमार अत्री

शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा अनुसूचित जातियों में सामाजिक समावेशन का अध्ययन 190
अखिलेश कुमार पटेल/डॉ. यतीन्द्र मिश्रा

'परख' उपन्यास के नारी पात्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 193
सिमरन भारती

वर्तमान युग में तथागत गौतम बुद्ध के विचारों की उपादेयता 195
डॉ. माया शंकर

वैश्विक मंच पर बढ़ता हिन्दी भाषा का प्रभाव 198
डॉ. शशांक कुमार सिंह

मैत्रेयी पुष्पा और नारी अस्मिता के प्रश्न 200
डॉ. ज्योति गौतम

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में वैयक्तिक-प्रेम की अभिव्यक्ति का स्वरूप 203
चोवाराम यदु/डॉ. आर.के. पाण्डेय

केशवदास द्वारा रचित रामचन्द्रिका में प्रतिचित्रण का विवेचनात्मक अध्ययन 205
कृपा शंकर

भारत-अफ़ग़ानिस्तान सम्बन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन 207
डॉ. पुष्कर पांडे

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानियों में 'माँ' के रूप में नारी : एक दृष्टि 210
डॉ. अखिलेन्द्र प्रताप सिंह

'त्यागपत्र' उपन्यास में सामाजिक रुढ़ियाँ और नारी 213
डॉ. चन्द्रशेखर

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षक एवं शिक्षक शिक्षा 215
डॉ. लाजो पाण्डेय

भारत-संयुक्त राज्य अमेरिका सम्बन्धों के परिवर्तित होते आयाम : एक समीक्षा 217
डॉ. नलिनी लता सचान

डा. बाबासाहब भीमराव अंबेडकर और बुद्धिज्म: नवयान 220
राजीव कुमार पाण्डेय

धर्म की पुनर्व्याख्या करता मधु कांकरिया का उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' 223
डॉ. कामना पण्ड्या

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा का प्रभाव 225
डॉ. सरोज राय

प्रतापगढ़ जनपद में कृषिगत विविधता एवं इसके विकास में जल संसाधन की भूमिका 227
कौशलेन्द्र सिंह

भारत में राज्य राजनीति के निर्धारक तत्व 229
डॉ. उपेन्द्र कुमार सिंह

राज्यों की स्वायत्तता के सम्बन्ध में विभिन्न राजनैतिक दलों की मांग 231
डॉ. शैलेन्द्र नाथ सिंह

भारत में संघवाद के प्रति राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण 233
डॉ. राजेश कुमार सिंह

ग्लोबल गाँव के देवता : असुर जनजातीय विरासत पर भूमण्डलीकरण का दुष्प्रभाव 236
संजय कुमार सिंह

आजमगढ़ जनपद के प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के पर्यावरण शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन 238
रेनू देवी

उदय प्रकाश के साहित्य में युगबोध के भाव एवं कलात्मक आयाम 241
डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता

किशोरवय विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास : ईश्वरीय ज्ञान (मुरली) के सन्दर्भ में 243
रोशनी चन्द्राकर/डॉ.शोभा श्रीवास्तव

नरेन्द्र कोहली के कृष्णकथात्मक उपन्यासों में जीवन मूल्य 245
डॉ. सन्जू

मुर्दहिया और मणिकर्णिका में बौद्ध चेतना के स्वर 247
डॉ. रणजीत कुमार

समकालीन राजनीति का जीवंत दस्तावेज : महाभोज 249
स्नेहा शर्मा

रीति कालीन कवि केशवदास द्वारा रचित रामचन्द्रिका की प्रासंगिकता 251
सुरेश चन्द्र पाल

उग्र की कहानियों में युगीन चेतना 253
डॉ. परषोतम कुमार

परदेशी राम वर्मा के 'सूतक' उपन्यास में सामाजिक जागृति 255
कमल कुमार बोदले/डॉ. अभिनेश सुराना

आधुनिक हिंदी हास्य-व्यंग्य के पुरोधा राधाकृष्ण 257
प्रमोद कुमार

लोक साहित्य : सम्यक् विश्लेषण 260
डॉ. लक्ष्मी गुप्ता

'विघटन' उपन्यास में चित्रित प्रमुख नारी पात्रों की संवेदना 263
मारुती दत्तात्रय नायकू

जनसंचार माध्यम में हिंदी भाषा का योगदान 266
प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे

सुषमा मुनींद्र की कहानियों में अभिव्यक्त अध्यापक वर्ग का चरित्रांकन 268
कु. अलका ज्ञानेश्वर घोडके

विज्ञापन क्षेत्र में रोजगार के अवसर 271
डॉ. उत्तम थोरात

हिंदी कहानी में स्त्री चेतना के विविध संदर्भ 273
श्रीमती सरला माधव त्रिपाठी

स्त्रीपरक लोकनाट्य 'नकटौरा' में अभिव्यक्त स्त्री अस्मिता के स्वर 275
डॉ. सरस्वती मिश्र

समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक
डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक
प्रो. रमा

संपादक
डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग
रीमा प्रजापति

ले-आउट
स्कोप सर्विसेज, दरियागंज, नई दिल्ली

संपादकीय कार्यालय
मकान नं. 189, ब्लॉक-एच
विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार
एफ-114, तृतीय तल, SLF वेद विहार,
नियर: शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता
आजीवन : 5000/-रुपए
संपर्क : 9871907081
वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com
E-mail : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशक एवं मुद्रण
हरिन्द्र तिवारी
हंस प्रकाशन, दिल्ली
मो. : 7217610640, 9868561340
ईमेल : hansprakshan88@gmail.com
वेबसाइट : www.hansprakashan.com

विभाजन की त्रासदी और मंटो 7
विजय पालीवाल

प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) का विश्लेषणात्मक अध्ययन 11
डॉ. अजीत कुमार बोहत

स्त्री अस्मिता संघर्ष और राजकमल चौधरी का हिंदी कथा साहित्य 15
अजीत सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि 18
डॉ. अमित सिन्हा

मध्यवर्गीय जीवन और चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का कहानी संग्रह 'आधा कमरा' 20
अनिता देवी

छत्तीसगढ़ के आर्थिक विकास में जल संसाधन की भूमिका 23
डॉ. श्रीमती अनीता मेश्राम

राहुल सांकृयायन का यात्रावृत्त साहित्य में वर्णित धार्मिक पक्ष 27
अरूण माधीवाल

सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के पक्षधर : सुब्रह्मण्य भारतीय 30
डॉ. के. बालराजू

नेतृत्व और सम्प्रेषण का यथार्थ 34
डॉ. कुमार भास्कर

नयी कविता और कुँवर नारायण 37
भावना

आधुनिक दिल्ली हिंदी रंगमंच का स्वरूप 40
डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह

स्त्री अस्मिता का मिथक 43
गजेन्द्र पाठक

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत-नेपाल संबंध 45
डॉ. गौरव कुमार शर्मा

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित का सामाजिक-बोध 47
गौतम कुमार खटीक

भारत में राजनीतिक विकास एवं संविधान संशोधन : एक विश्लेषण 50
गोविन्द नैनीवाल

भारत में जलवायु परिवर्तन एवं सरकारी नीतियां 54
हंसा मीना

बेटी उपन्यास में बेटी की गौरव गाथा 57
डॉ. कमलेश कुमारी

रामवृक्ष बेनीपुरी के गद्य साहित्य की भाषा 59
डॉ. करतार सिंह

राष्ट्रीय चेतना के प्रखर संवाहक : मैथिलीशरण गुप्त 62
डा. राम किंकर पाण्डेय

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वधिकारी : *डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित*

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा का प्रभाव

डॉ. सरोज राय

सारांश

स्वास्थ्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। स्व और स्थ, स्व का अर्थ है– अपने में, अस्थ का अर्थ है–स्थिति। अर्थात/स्वयं में स्थिति। स्वास्थ्य के इस व्यापक अर्थ को सिद्ध करने के लिए योग से अधिक समग्र समाध ाान कुछ और हो ही नहीं सकता। यो गसे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य पाया जा सकता है। योग समग्र रूप से स्वस्थ जीवनशैली है। इसलिए वह शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तीनों स्तर पर मनुष्य को स्वस्थ रखने में सक्षम है। अष्टांग योग के माध्यम से शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। अष्टांग योग का अनुष्ठान समग्र स्वास्थ्य का साधन है। प्रतिदिन के योगाभ्यास से आज कोई भी व्यक्ति अनेक रोगों से बचाव कर सकता है। मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बिना योगाभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता। योग शरीर स्तर पर तो कार्य करता ही है, दूसरी ओर वह मन पर गहराई से प्रभाव डालता है। क्योंकि मन का सीधा सम्बन्ध हमारें प्राणों से होता है, प्राणों के संयमित होने से मन भी संयमित होना आरम्भ होना हो जाता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों एक–दूसरें के पूरक है। योग इस प्रक्रिया में शरीर से आरंम्भ होकर मन को स्वस्थ करता हुआ आत्मा को उसके स्वरूप में स्थित करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव से स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास किया जा सकता है जो वर्तमान सयम की सबसे आवश्यकता है। जिससे योग और शारीरिक शिक्षा से अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय कोष का विकास करते हुए, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जीवन में प्रामाणिकता के सिद्धान्त को अपनाते हुए कठिन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करते हुए मन और शरीर में स्थिरता आती है। जिससे व्यक्ति सन्तुष्टि का भाव, प्रतिरोधक क्षमता का भाव, सकारात्मक विचारों का भाव तथा शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर राष्ट्र का कुशल नागरिक, शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग समझते हुए मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को योग शिक्षा से सार्थक, सक्षम बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द–मानसिक, शारीरिक, स्वास्थ्य, योग एवं शिक्षा प्रभाव।

प्रस्तावना :

स्वास्थ्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। स्व और स्थ, स्व का अर्थ है– अपने में, अस्थ का अर्थ है–स्थिति। अर्थात/स्वयं में स्थिति। स्वास्थ्य के इस व्यापक अर्थ को सिद्ध करने के लिए योग से अधिक समग्र समाध ाान कुछ और हो ही नहीं सकता। यो गसे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य पाया जा सकता है। योग समग्र रूप से स्वस्थ जीवनशैली है। इसलिए वह शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तीनों स्तर पर मनुष्य को स्वस्थ रखने में सक्षम है। अष्टांग योग के माध्यम से शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। अष्टांग योग का अनुष्ठान समग्र स्वास्थ्य का साधन है। प्रतिदिन के योगाभ्यास से आज कोई भी व्यक्ति अनेक रोगों से बचाव कर सकता है। मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बिना योगाभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता। योग शरीर स्तर पर तो कार्य करता ही है, दूसरी ओर वह मन पर गहराई से प्रभाव डालता है। क्योंकि मन का सीधा सम्बन्ध हमारें प्राणों से होता है, प्राणों के संयमित होने से मन भी संयमित होना आरम्भ होना हो जाता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों एक–दूसरें के पूरक है। योग इस प्रक्रिया में शरीर से आरंभ होकर मन को स्वस्थ करता हुआ आत्मा को उसके स्वरूप में स्थित करता है।

स्वास्थ्य को सामान्यतः शरीर से जोड़कर देखा जाता है लेकिन पूर्ण स्वास्थ्य के लिए शरीर के साथ–साथ मन का सन्तुलित होना भी आवश्यक है योग भारतीय समाज और शिक्षा का एक अभिन्न अंग हैं योग जीवन को सोउदेश्य, उपयोगी उत्तम बनाने की सहज विधि है। जिसे स्वस्थ जीवनशैली कहना उपयुक्त होगा। योग से हमारा मन प्रशिक्षित होता है तथा सभी पदार्थों की अनावश्यक जड से मुक्ति प्राप्त होती है। योग लक्ष्य भी तथा लक्ष्य तक पहुंचने का साधन भी। इसलिए भारतीय धर्म, दर्शन तथा वर्तमान शिक्षा में योग का महत्व अत्यधिक बढ गया है। मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य के प्रति कितना जागरूक है, इस पर शरीर की आंतरिक क्षमता का विकास निर्भर करता है। मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य के भावनात्मक पक्ष से विशेष रूप से जोड़ा जाता है। जो समाज की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। स्वस्थ मन और शरीर ही हमारे दैनिक जीवन को खुशहाल बनाती है तथा अनेक सामाजिक समस्याओं के लिए सकारात्मक सोच प्रदान करती है। क्योंकि यदि हमारे प्राण उर्जा का स्तर बढ़ा हुआ हो हमारी श्वास का आवागमन सन्तुलित व समुचित होगा।

योग सूत्र में महर्षि पतंजलि भी यही कहते हैं कि– योग का लक्ष्य है–दुःख के उत्पन्न होने से पहले उसे रोक देना। क्योंकि शरीर, मन, संवेदनाओं के इस सह–सम्बन्ध के प्रति सजग रहना ही तथा शारीरिक–मानसिक बीमारी के बीज को अंकुरित होने से पहले उसको भस्म कर देना ध्यान है। क्योंकि जब मनुष्य निर्विचार होता है तो अपने वातावरण के साथ समन्वय स्थापित करने में सफल रहता है।

शारीरिक स्वास्थ्य रक्षण के लिए जहां एक ओर अनेक आसनों का प्रचलन बढ़ा है। वही प्राणामय के माध्यम से भी शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए प्रयास किया जा रहा है। मानसिक स्वास्थ्य इसलिए आवश्यक

है कि योग जिस तरह से आपके शरीर स्तर पर कार्य करता है, उसी तरह से मन स्तर भी। योग से प्राणों में स्थिरता आने से मन भी संयमित होना प्रारम्भ हो जाता हैं योगासन से हमारा शरीर स्वस्थ होता हैं प्राणायाम हमारें मन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालता है। इसलिए शरीर और मन दोनों का स्वस्थ होना आवश्यक है। कोरोना महामारी से बचने के लिए यदि व्यक्ति योग का नियमित अभ्यास करता है तो उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होकर तन और मन दोनों ही स्वस्थ एवं शक्तिशाली होता है। जब व्यक्ति तनावग्रस्त होत है तो उसका इम्यूनिटी सिस्टम कमजोर हो जाता है। योगाभ्यास से शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहता है तथा नकारात्मक विचारों से मुक्ति मिलती है। योगाभ्यास से शरीर का अन्तःस्रावी ग्रन्थ तन्त्र पुष्ट होता है, जिसका सीधा प्रभाव शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक स्वास्थ्य के साथ–साथ भावनात्मक क्षमताओं के विकास पर भी पड़ता है। कोरोना संकट से मुक्त करना मानव की सबसे बड़ी सेवा है। पूरा विश्व इस महामारी से जूझ रहा है। सभ्यता के इतिहास में इतना बड़ा संकट शायद ही कभी आया हो। हमारा जीवन, संस्कृति, परम्परा, मूलय, मान्यताएं शिक्षा व्यवस्था, मनुष्यों पर रोजगार का संकट प्रत्येक क्षेत्र पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। मनुष्य का जीवन काल की गति की भांति समाप्त हो रहा है। इस भीषण काल में रोग–प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने के लिए सभी को शारीरिक, मानसिक स्तर पर स्वस्थ रखने के लिए "योग से निरोग कार्यक्रम आरंभ किया गया है। प्रत्येक समाचार चैनल पर लोगों में जागरूकता बढ़ाने के लिए अनेकों गतिविधियां संचालित की जा रही है। लोग उसका लाभ भी उठा रहे हैं। क्योंकि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य की दुबर्लता की उपस्थिति को परिभाषित करता है। जीवन के सामान्य तनावों का सामना करके मनुष्य स्वयं तथा परिवार, समाज, शिक्षा व्यवस्था में अहम योगदान देने में सक्षम हो जाता है। सकारात्मक अर्थ में मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य मनुष्य के प्रभावी कामकाज के परिणामों की नींव होता है।

मानसिक रूप से स्वस्थ रहने पर ही शारीरिक रूप से स्वस्थ रहा जा सकता है। मानसिक स्वास्थ्य मानसिक शक्तियों में वृद्धि करता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के विकारों से समायोजन करता हुआ कठिनाई भरे जीवन में सफलता के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य के शरीर और मन से सम्बन्धित क्षमताओं तथा बौद्धिक योग्यताओं के सम्बन्ध में शारीरिक और मानसिक प्रशिक्षण आवश्यक है। क्योंकि योग कोई धर्म नहीं है बल्कि जीवन जीने की कला है। योग शिक्षा से शारीरिक और मानसिक दोनों ही विकास सन्तुलित रहता है। शिक्षा में योग का प्रचलन बढ़ने से नैतिक जीवन पर इसका सकारात्मक प्रभाव बढ़ा है। योग से शारीरिक और मानसिक शिक्षा प्राप्त करके शरीरिक और मानसिक क्रियाएं करने में सक्षम रहता है। मांसपेशियों की गतिविधियों से नयी शक्ति का संचार होता है तथा मानसिक क्रियाएं करने से मस्तिष्क सकारात्मक रूप में सक्रिय होता है जिससे निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव के कारण मनुष्य में भावनात्मक परिपक्वता, सफलता, असफलता को एक दृष्टि से देखने की क्षमता, भावनाओं पर सहज नियन्त्रण तथा चेतना की शक्ति का विकास होता है। इसके नियमित अभ्यास से शारीरिक अंग, मस्तिष्क शक्तिशाली एवं सन्तुलित रहता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव से स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास किया जा सकता है जो वर्तमान सयम की सबसे आवश्यकता है। जिससे योग और शारीरिक शिक्षा से अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय कोश का विकास करते हुए, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जीवन में प्रामाणिकता के सिद्धान्त को अपनाते हुए कठिन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करते हुए मन और शरीर में स्थिरता आती है। जिससे व्यक्ति सन्तुष्टि का भाव, प्रतिरोधक क्षमता का भाव, सकारात्मक विचारों का भाव तथा शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर राष्ट्र का कुशल नागरिक, शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग समझते हुए मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को योग शिक्षा से सार्थक, सक्षम बनाया जा सकता है।

संदर्भ:-

1. सिंह, प्रमोद (2016), शारीरिक शिक्षा फिटनेस तथा स्वास्थ्य में समकालीन मुद्दे, स्पोर्टस पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. बहादुर, जंग (2016), शारीरिक शिक्षा का इतिहास सिद्धान्त मूलाधार, स्पोर्टस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
3. भोगल, आर.एस. नागराजन, करूणा (2015), राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली
4. शर्मा, एन.पी. (2009), स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा में आधुनिक प्रवृत्तियां, खेल साहित्य केन्द्र, दरियागंज, नई दिल्ली
5. भास्कर, के. (2008), स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा

सहायक आचार्या

शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान,

लाडनूं–राजस्थान

□□

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता और संगठनात्मक विकास

स्वीटी वशिष्ठ
शोधकर्त्री-शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-नागौर (राजस्थान)-३४१३०६

डॉ. सरोज राय
सहायक आचार्या-शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं-नागौर (राजस्थान)-३४१३०६, Mail ID-saroja877@gmail.com

सारांश

शिक्षकों की गुणवत्ता, शिक्षक-प्रशिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का उत्साह, प्रतिबद्धता एवं संरचनात्मक ढांचा, अकादमिक एवं शोध आधारित नवाचारी विचार व विकास के साथ-साथ सर्जनात्मतापूर्ण अध्यापन, पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। अतः किसी भी संस्था एवं महाविद्यालय में प्राचार्य की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि प्राचार्य एक धुरी का कार्य करता है। किसी भी संस्था को सुव्यवस्थित ढ़ंग से चलाने के लिए प्राचार्य का सकारात्मक व्यक्तित्व, निर्णय एवं नेतृत्व क्षमता बहुत महत्व रखती है।

एक प्रबंधक के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक संगठन में निर्णय लेना है। किसी संगठन की सफलता या विफलता मुख्य रूप से निर्णय की गुणवत्ता पर निर्भर करती है जो प्रबंधक सभी स्तरों पर लेते हैं। प्रत्येक प्रबंधकीय निर्णय, चाहे वह योजना, आयोजन, स्टाफ या निर्देशन से संबधित हो, निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है। निर्णय लेना, एक लक्ष्य उन्मुख प्रक्रिया है। निर्णय किसी उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। एक बार निर्णय लेने के बाद संगठन एक विशिष्ट दिशा में आगे बढ़ता है, ताकि लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

एक संस्था प्रमुख होने के नाते एक ऐसी संस्कृति निर्मित किये जाने की जरूरत है, जिसमें शिक्षक परिस्थितियों और चुनौतियों का सामूहिक रूपय से विश्लेषण करने और उन पर काम में समर्थ हो, शैक्षणिक संस्थाओं के परिवेश में नेतृत्व का कहीं अधिक विचारशील चिन्तन शील और ज्ञान आधारित होना जरूरी है। इसका तात्पर्य यह है कि महाविद्यालयी नेतृत्व किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित होने की बजाए विकेन्द्रीत और सहयोग पूर्ण होना चाहिए।

मुख्य-शब्द : नेतृत्व, निर्णय, क्षमता, संगठन, विकास

प्रस्तावना :

किसी भी देश का भविष्य उसकी आने वाली पीढ़ी पर निर्भर करता है तथा उसका स्वरूप कैसा हो, इसकी जिम्मेदारी शिक्षकों पर होती है। कोठारी आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि-‘‘भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं का

निर्देशन शिक्षक के हाथ में होता है। शिक्षक अपने ज्ञान, व्यवहार, चरित्र एवं नेतृत्व और आदर्शों से एक ऐसे बालक का निर्माण कर सकता है जिसमें स्वतंत्र चिन्तन, तर्क व निर्णय की क्षमता हो, जो नैतिक एवं चारित्रिक दृष्टि से उच्च हो और जो देश की संस्कृति की रक्षा कर सके इसीलिए शिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा गया है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति व उन्नति उसके अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

शिक्षकों की गुणवत्ता, शिक्षक-प्रशिक्षकों की व्यावसायिक दक्षता, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का उत्साह, प्रतिबद्धता एवं संरचनात्मक ढांचा, अकादमिक एवं शोध आधारित नवाचारी विचार व विकास के साथ-साथ सर्जनात्मतापूर्ण अध्यापन, पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। अतः किसी भी संस्था एवं महाविद्यालय में प्राचार्य की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि प्राचार्य एक धुरी का कार्य करता है। किसी भी संस्था को सुव्यवस्थित ढ़ंग से चलाने के लिए प्राचार्य का सकारात्मक व्यक्तित्व, निर्णय एवं नेतृत्व क्षमता बहुत महत्व रखती है।

नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषा :

नेतृत्व किसी संगठन में सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए और इसके लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। कीथ डेविस कहते हैं बिना नेतृत्व के कोई संगठन महज मानवों और यंत्रों की भीड़ है, नेतृत्व संभावना को वास्तविकता में बदलता है। यह वह निर्णायक काम जो सभी संभावनाओं को सफल बनाता है जो किसी संगठन और उसके लोगों में हैं। हिक्स व गुलेट कहते है कि-''ये शब्द 'नेता' और प्रबंधक द्वारा अनिवार्य रूप से अदल-बदल कर उपयोग नहीं किये जा सकते क्योंकि नेतृत्व, प्रबंधक का एक उपवर्ग है। एक नेता को दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने की आवश्यकता होती है। उसके लिए एक प्रबंधक के सभी कार्यों को करना आवश्यक नहीं होता है।'' इस प्रकार नेतृत्व का प्रमाण चिह्न है, दूसरों को अनुसरण करने के लिए प्रभावित करने की क्षमता।

- **कीथ डेविस के अनुसार**-''नेतृत्व दूसरों को उत्साह पूर्वक परिभाषित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सहमत करने की क्षमता है।''
- **बर्नार्ड के अनुसार**-''नेतृत्व का अर्थ व्यक्तियों के व्यवहार के गुण से है, जहां वे किसी संगठित प्रयास में लोगों को उनकी गतिविधियों में मार्गदर्शित करते हैं।''

नेतृत्व की प्रकृति :

1. नेतृत्व एक व्यक्तिगत गुण है। कोई व्यक्ति व्यक्तिगत नेतृत्व के साथ पैदा होता है, उसे प्रबंधन नेतृत्व सीखना पड़ता है।
2. नेतृत्व का अस्तित्व तीन बातों पर निर्भर करता है-व्यक्ति, अनुसरण करने वाले और स्थितियां।
3. एक अच्छा नेता अपने अधीनस्थों के व्यवहार, रूचि एवं विश्वासों को प्रभावित करता है।
4. एक अच्छा नेता केवल समूह को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं भी उससे प्रभावित होता है।
5. नेतृत्व अक्सर परिस्थितियों द्वारा बनता और बिगड़ता है।

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

6. नेतृत्व तानाशाही तथा प्रबंधन का पर्याय नहीं है।

अतः नेतृत्व की प्रकृति के विषय में जानना आवश्यक है कि प्रकृति के आधार पर नेतृत्व विज्ञान भी है, जो यह स्पष्ट करता है कौन सी क्रियाएं कब, कहां, कैसे करनी है तथा उन क्रियाएं कब, कहां, कैसे करनी है तथा उन क्रियाओं के सम्पादन में नियमबद्धता, तर्क-संगतता, कारण-परिणाम सम्बन्धों में एकरूपता आदि गुणों की उपस्थिति आवश्यक होती है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि-इसमें परिस्थितियों के अनुरूप सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने, उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने एवं सदस्यों को भावनात्मक सहयोग देने का कौशल उपस्थिति होता है।

नेतृत्व एवं संगठन :

नेतृत्व एक ऐसा मानवीय गुण है जो किसी समुदाय को संगठित कर लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। नेतृत्व क्षमता का आशय शैक्षिक कार्यक्रमों को उच्च्च गुणवत्ता के साथ आगे बढ़ाने से है। शिक्षा को प्रभावी ढ़ंग से संगठित एवं संचालित करते हुए उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयास करना। मुख्य रूप से नेतृत्व के आयामों में नेतृत्व देने वाले का प्रशासनिक व्यवहार, नेतृत्व प्रभावशीलता और उसकी व्यावसायिक आत्मक्षमता के साथ-साथ अभिप्रेरणा, नियोजन आत्मक्षमता के साथ-साथ अभिप्रेरणा, नियोजन, मूल्यांकन, नियन्त्रण आदि आयाम शामिल होते हैं।

वर्तमान मान्यताओं के अनुसार शैक्षिक व शाला प्रशासक पर नेतृत्व का भार भी सौंपा जा रहा है। प्रशासक का कार्य मात्र नियोजन व निर्देशन एवं समायोजन, नियन्त्रण तक सीमित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण प्रशासनिक ढांचे में लगे मानवीय व भौतिक तत्वों को इस तरह समायोजि करते हुए प्रयोग करना है जिससे मितव्ययता पूर्वक अधिकाधिक लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। प्रशासक को समाज व समुदाय के अनुरूप ही अपने संगठन को आयोजित करना चाहिए। उसे अपने अधिनस्थ कर्मचारियों एवं सहयोगियों के साथ ही सम्पूर्ण समुदाय से मिल-जुलकर कार्य करना है। उसे दूसरों के साथ कार्य करने की कुशलता और अपने संगठन के लक्ष्यों व उसके अनुरूप विभिन्न कार्य इकाईयों की क्रियान्विति का ज्ञान हो आवश्यक है। शैक्षिक संगठन का अर्थ है-शिक्षा प्रदान करने वाले समूह अथवा संस्था। शैक्षिक संगठन वो संगठन है जिसके दायरे में शिक्षा आती हैं शैक्षिक संगठन का दायित्व प्रत्येक विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास करना होता है।

शैक्षिक संगठन के द्वारा परिवेश को शैक्षिक एवं सामाजिक बनाने के लिए छात्रों के साथ सहयोग एवं सहानुभूति का व्यवहार किया जाता है। शैक्षिक संगठन का विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास से महतवपूर्ण सम्बन्ध होता है। संगठन मानव निर्मित एक ऐसी कार्य प्रणाली है, जिसके द्वारा महाविद्यालय में उपलब्ध समस्त संसाधनों को इस प्रकार संयाजित करके रखा जाता है कि-संसाधनों का अधिकतम तथा प्रभावी उपयोग उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सुनिश्चित किया जा सके। शिक्षा के क्षेत्र में तीन प्रकार का संगठन आवश्यक होता है-

१. मानव संसाधन का संगठन।
२. भौतिक तथा वित्तीय संसाधन संगठन।
३. शैक्षिक पाठ्य सहगामी क्रियाओं का संगठन।

महाविद्यालय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तीनों प्रकार के संगठन में भी समन्व्य करना आवश्यक है। समस्त संसाधनों का समुचित प्रयोग कुशल व प्रशिक्षत शिक्षकों पर निर्भर करता है। अतः आवश्यकतानुसार शिक्षकों तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा कार्यशालाओं की भी व्यवस्था की जाती है।

संगठन विकास की आवश्यकता एवं उद्देश्य :

संगठन विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- संगठन सदस्यों में विश्वास व सहयोग का स्तर बढ़ाना।
- संगठन सदस्यों में सम्प्रेषण की स्वतन्त्रता बढ़ाना।
- ऐसा वातावरण उत्पन्न करना जिसमें विशिष्ट कौशल एवं ज्ञान के आधार पर सत्ता स्थापित की जा सके।
- नियोजन एवं क्रियान्वयन में वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायितव का स्तर बढ़ाना।
- संगठन में वैयक्तिक उत्साह एवं संतुष्टि के स्तर में वृद्धि करना।
- संगठन को इसके वातावरण के साथ श्रेष्ठ समायोजन करने योग्य बनाना।

इस प्रकार से संगठन विकास का उद्देश्य अभिवृत्तियों अथवा मूल्यों में परिवर्तन करना, व्यवहार में सुधार तथा संरचना और नीति में परिवर्तन करना है।

निर्णय का अर्थ एवं परिभाषा :

एक प्रबंधक के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक संगठन में निर्णय लेना है। किसी संगठन की सफलता या विफलता मुख्य रूप से निर्णय की गुणवत्ता पर निर्भर करती है जो प्रबंधक सभी स्तरों पर लेते हैं। प्रत्येक प्रबंधकीय निर्णय, चाहे वह योजना, आयोजन, स्टाफ या निर्देशन से संबंधित है। यह निर्णय लेने की अपनी व्यापकता के कारण है कि प्रोफेसर हर्बर्ट सीमन्स ने निर्णय लेने की प्रक्रिया के रूप में प्रबंधन की प्रक्रिया को कहा है। उनकी राय के अनुसार पद की स्थिति को तब तक प्रबंधकीय नहीं कहा जा सकता है जब तक कि-निर्णय लेने का अधिकार इससे जुड़ा न हो। निर्णय का शाब्दिक अर्थ किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से लगाया जाता है।

- **लुण्डवर्ग के अनुसार**-"प्रशासकीय निर्णय एक प्रक्रिया है जिसमें कि-एक व्यक्ति संगइन में दूसरों व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए एक निर्णय करता है, ताकि वे व्यक्ति संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना योगदान दे सके।
- **जी.एल.एस. शेक्ल के अनुसार**-"निर्णय लेना रचनात्मक मानसिक क्रिया का वह केन्द्र बिन्दू होता है जहां ज्ञान विचार भावना तथा कल्पना कार्यपूर्ति के लिए एकत्र किये जाते हैं।

निर्णय एवं संगठन :

निर्णयन को दो या अधिक विकल्पों में से एक आचरण विकल्प का किसी सिद्धान्त के आधार पर चुनाव करने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निर्णय लेने का आशय काम समाप्त करना या व्यावहारिक भाषा में किसी निष्कर्ष पर पहुंचना है। निर्णय लेना रचनात्मक मानसिक क्रिया का वह बिन्दू होता है जहां ज्ञान, विचार, भावना तथा कल्पना कार्यपूर्ति के लिए एकत्र किये जाते हैं।

संगठन विकास एक जटिल शैक्षणिक रणनीति है जिसका प्रयोजन संगइन में व्याप्त विश्वासों, मान्यताओं, धारणाओं एवं मूल्यों में परिवर्तन करना होता है जिससे संगठन नई तकनीकों, बाजारों, चुनौतियों तथा तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन के अनुसार अपने आपको ढालने में सक्षम हो सके।

अतः यह कह सकते हैं-संगठन विकास नियोजित परिवर्तन एवं व्यवहारवादी शिक्षण की एक दीर्घकालीन एवं संगठनव्यापी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संगठन की तकनीकी व मानवीय प्रक्रियाओं, मूल्यों, संस्कृति एवं संरचनाओं में परिवर्तन लाकर, संगठनात्मक क्षमता, प्रभावशीलता, गत्यात्मकता और परिपक्वता में वृद्धि की जाती है।

संगठन विकास की प्रक्रिया :

संगठन विकास एक जटिल प्रक्रिया है जो अनेक वर्षों तक चलती रहती है यद्यपि संगइन विकास की कई तकनीक हैं किन्तु उसकी एक निश्चित प्रक्रिया एवं अवस्थायें हैं। 'जॉन पी.कोटर तथा वारने' के अनुसार संगठन की निम्न अवस्थाएं है-

१. **प्रबन्ध द्वारा निर्णय** : प्रथम अवस्था में उच्च प्रबन्ध संगठन विकास का निर्णय लेता है इसके पश्चात् परामर्शदाता का चयन करता है।
२. **प्रारंभिक निदान** : इस अवस्था में परामर्शदाता उपक्रम की समस्याओं का निर्धारण करता है। उच्च प्रबन्धक परामर्शदाता से विचार-विमर्श करके संगठन विकास कार्यक्रम का निर्धारण करते हैं।
३. **सूचना संकलन** : इस अवस्था में संगठनात्मक परिवेश तथा व्यवहारवादी समस्याओं के निर्धारण के लिए सर्वेक्षण किये जाते हैं। सूचनाओं का संग्रह करते हैं।
४. **सूचना पुनर्निवेशन एवं मुकाबला** : परामर्शदाता इन सूचनाओं को समीक्षा के लिए कार्य समूहों को सौंपता है तथा परिवर्तन के लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करता है।
५. **क्रिया नियोजन तथा समस्या समाधान** : इस चरण में क्रिया योजनाएं तैयार की जाती है जिनमें उत्तरदायित्व तथा कार्यवाही समाप्ति की अवधि निश्चित की जाती है।
६. **दल निर्माण** : परामर्शदाता भूमिका निर्वाह, संचेतना प्रशिक्षण तथा क्रीड़ाओं के द्वारा दलों के सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाता है। वह दलों में सम्प्रेषण, विश्वास, पारस्परिक सहयोग के द्वारा उनकी कार्यविधि में सुधार लाता है।
७. **अन्तर्समूह विकास** : परामर्शदाता विभिन्न दलों के मध्य ठोस संबंध एवं बन्धन विकसित करता है ताकि वहत् समूहों का विकास हो सके।

८. **मूल्यांकन एवं अनुवर्तन** : परामर्शदाता संगठन विकास के लक्ष्यों के आधार पर परिणामों का विश्लेषण करता है तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त कार्यक्रम बनाता है।

संगठनात्मक विकास के लिए नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता :

संगठन के नेता में नेतृत्व को प्रभावशाली बनाने के लिए निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है-

१. नेता का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। नेता के व्यक्तित्व में मानसिक स्फूर्ति, बौदिक चेतना, शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ, सामाजिकता का सुन्दर समन्वय होना चाहिए।
२. संगठन के नेता में कल्पना शक्ति एवं दूरदर्शिता भरपूर होनी चाहिए।
३. नेता को लोकतान्त्रित नीतियों में पूर्ण विश्वास होना चाहिए अर्थात् अन्य लोगों को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। नेता एवं स्वतन्त्रता और अनुशासन को समन्वित करने की योग्यता होनी चाहिए।
४. नेता को अपने स्वयं के ऊपर, अपने शिक्षण कार्य पर, व्यवसाय, विद्यार्थियों पर तथा अपने मार्गदर्शकों पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए।
५. संगठन के नेता में उचित मार्गदर्शन करने की योग्यता होनी चाहिए।
६. संगठन के नेता को नवीनतम ज्ञान होना चाहिए।
७. संगठन के नेता में अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक विशेषताएं विद्यमान होनी चाहिए।
८. नेता को स्वभावतः विनोदी होना चाहिए किन्तु विनोदात्मकता के परदे में किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचाना चाहिए।
९. संगठन के नेता में प्रशासनिक योगयता भी होनी चाहिए। नेता के अन्दर एक अच्छे प्रशासक के गुणों को होना आवश्यक है एवं नेता को दूसरों की यथासंभव मदद करनी चाहिए।
१०. संगठन के नेता को आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए संस्था में अनेक समस्याएं आती है। एक नेता को सफलता एवं असफलता दोनों की स्थिति में अपना संतुलन बनाये रखना चाहिए।

अतः हमारा वातावरण, जीवन परिवेश, संगठनात्मक व्यवहार, हमारी संस्कृति आदि निरन्तर प्रवाहशील हैं। व्यवस्थित, एकीकृत एवं नियोजित परिवर्तन के द्वारा किसी संगठन को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। संगठनात्मक विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिए तैयार करने तथा परिवर्तन का प्रबन्ध करने की प्रक्रिया है। यह व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मूल्यों, व्यवहार एवं संगठन की संरचना तथा नीति में समग्र परिवर्तन लाने की क्रिया है। संगठनात्मक विकास शब्दावली का प्रवर्तन करने का श्रेय रोबेर्ट ब्लेक, हेर्बेर्ट सेफई और जेनी माउटन को जाता है।

वर्तमान में शैक्षिक प्रशासन की मुख्य समस्याएं :

- शिक्षा का प्रशासनिक ढांचा सामान्य रूप से शैक्षिक कार्य को तो करना चाहता है लेकिन कोई भी शिक्षा की समस्याओं पर ध्यान नहीं देता है।

- शैक्षिक प्रशासन के ढांचे के अन्तर्गत जनतान्त्रिक मूल्यों की उपेक्षा की जाती है।
- शैक्षिक प्रशासन की एक मुख्य समस्या शिक्षा संचालकों और शिक्षकों, शिक्षा सचिवों के मध्य सामंजस्य का अभाव है।
- विभिन्न मंत्रालय शिक्षा के अनेक कार्यक्रमों का संचालन करने हैं लेकिन ऐसा करने से इन मन्त्रालयों को शिक्षा मंत्रालय के साथ शैक्षिक नीति एवं कार्यों का संचालन करने में कठिनाई अनुभव होती है।
- विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों का संचालन करने से उनकी आवृत्ति हो जाती है। यह दोहरापन शिक्षा के अपव्यय की ओर संकेत करता है।

इस एक आदर्श शैक्षिक प्रशासक के लिए महाविद्यालय प्रबन्धन एवं महाविद्यालय के कर्मचारियों में उचित समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है। महाविद्यालय हो या अन्य कोई संस्थान बिना उचित समन्वय एवं सहयोग के विकास नहीं कर सकता है।

समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव :

- एक आदर्श शैक्षिक प्रशासक के लिए महाविद्यालय प्रबंधन एवं महाविद्यालय के कर्मचारियों में उचित समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है। महाविद्यालय हो या अन्य कोई संस्थान बिना उचित समन्वय एवं सहयोग के विकास नहीं कर सकता है।
- एक प्रशासक को कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ही उसके उद्देश्य सुनिश्चित कर लेने चाहिए। प्रशासक को कार्य के प्रदर्शन के आधार पर पद प्रदान करना चाहिए ना कि अपनी व्यक्तिगत पसंद और नापसंद के आधार पर। निष्पक्षता के आधार पर प्रत्येक समस्या का हल करना चाहिए।
- प्रेरणादायक व सकारात्मक परिवेश वाले महाविद्यालय में शिक्षक विद्यार्थियों को निरन्तर अधिगम के लिए प्रोत्साहित करते रहते है जिससे छात्र ठीक से अधिगम कर सके।
- एक अच्छा शैक्षिक प्रशासक छात्रों, शिक्षकों तथा कर्मचारियों के मध्य सहयोग एवं सम्प्रेषण को बढ़ावा देने वाला होना चाहिए।
- एक अच्छा शैक्षिक प्रशासक दूसरों की सलाह को भी एक सुझाव के रूप में लेता है कोई भी प्रशासक पूर्ण रूप से सक्षम एवं त्रुटि रहित नहीं हो सकता है। प्रशासक को समय की मांग के अनुरूप परिवर्तित करने एवं व्याप्त कमियों को दूर करने के लिए आवश्यक है, कि-दूसरों की सलाह एवं सुझाव को पर्याप्त स्थान दिया जाए।
- शैक्षिक प्रशासन द्वारा ऐसी नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करना चाहिए जिससे छात्रों एवं शिक्षकों की प्रतिभा को सरलता पूर्वक पहचाना जा सके। इससे शिक्षकों को अध्यापन एवं छात्रों को अध्ययन में यचि उत्पनन होगी। इसके साथ प्रशासक को छात्रों में अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए समय-समय पर प्रतिभा खोज जैसी परीक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

एक प्रबंधक के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक संगठन में निर्णय लेना है। किसी संगठन की सफलता या विफलता मुख्य रूप से निर्णय की गुणवत्ता पर निर्भर करती है जो प्रबंधक सभी स्तरों पर लेते हैं। प्रत्येक प्रबंधकीय निर्णय, चाहे वह योजना, आयोजन, स्टाफ या निर्देशन से संबधित हो, निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है। निर्णय लेना, एक लक्ष्य उन्मुख प्रक्रिया है। निर्णय किसी उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। एक बार निर्णय लेने के बाद संगठन एक विशिष्ट दिशा में आगे बढ़ता है, ताकि लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

संगठन की प्रकृति, आकार और उद्देश्य, निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रबंधक की आकांक्षाएं, व्यक्तित्व, आदतें, स्वभाव, सामाजिक और संगठनात्मक स्थिति, घरेलू जीवन, तकनीकी कौशल और दिमाग की निर्णय लेने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, ये सभी किसी न किसी रूप में प्रबंधक द्वारा लिए गए निर्णयों पर प्रभाव छोड़ते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि-प्रबंधक यह तय करने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि वह क्या चाहता है। वह अपनी जिम्मेदारियों और जवाबदेही से बंधे हुए हैं लेकिन प्रबंधक के मनोविज्ञान का उसके द्वारा लिए गए निर्णय पर असर पड़ता है और इस तथ्य को एक तरफ नहीं रखा जा सकता है। निर्णय लेना एक मानसिक प्रक्रिया है। निर्णय लेना एक मानवीय और सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें बौद्धिक क्षमता, अंतर्ज्ञान और निर्णय शामिल होते हैं। निर्णय लेने वाले अधिक जानकारी एकत्र करते हैं और निर्णय इसलिए अधिक वैज्ञानिक और सटीक होते हैं। सदस्य समूह की सोच के माध्यम से निर्णय लेते हैं ओर इसलिए निर्णयों को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। वरिष्ठों और अधीनस्थों के बची निरन्तर सम्पर्क अधीनस्थों के मनोबल और नौकरी की संतुष्टि को बढ़ाता है। यह समूह के सदस्यों की गतिविधियों के बीच संचार और समन्वय को बढ़ाता है एवं यह गुणवत्ता, निर्णय लेने के लिए अधीनस्थों की रचनात्मकता और नवीन क्षमताओं को बढ़ावा देता है।

एक संस्था प्रमुख होने के नाते एक ऐसी संस्कृति निर्मित किये जाने की जरूरत है, जिसमें शिक्षक परिस्थितियों और चुनौतियों का सामूहिक रूपय से विश्लेषण करने और उन पर काम में समर्थ हो, शैक्षणिक संस्थाओं के परिवेश में नेतृत्व का कहीं अधिक विचारशील चिन्तन शील और ज्ञान आधारित होना जरूरी है। इसका तात्पर्य यह है कि महाविद्यालयी नेतृत्व किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित होने की बजाए विकेन्द्रीत और सहयोग पूर्ण होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :

१. पटेल, श्री कृष्ण (२०१८) : शारीरिक स्वास्थ्य एवं योग शिक्षा आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन
२. शालेय संस्कृति, प्रबन्धन एवं विकास (२०१७) : राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर।
३. मंगल, एस.के. (२०१५) : शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रिंटिग्स हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि.।
४. शर्मा, अंजली (२०११) : शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगइन, जयपुर शिक्षा प्रकाशन।
५. सिंह, रामपाल, शर्मा मदन मोहन एवं सेवानी, अशोक (२०११) : शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगइन, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

६. जैन, डॉ. महेश कुमार (२००७) : शोध विधियां, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।
७. अग्रवाल, जे.सी. (२००७) : शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्ध, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
८. श्रीवास्तव, डी.एन. (२००६) : अनुसंधान विधियां, आगरा साहित्य प्रकाशन
९. कटारिया, सुरेन्द्र (२००५) : प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध मेरठ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
१०.वर्मा, जे.पी. (२०००२) : शैक्षिक प्रबन्धन, जयपुर राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
११.शर्मा, आर.ए. : शिक्षा प्रबन्धन, मेरठ, आर.लाल बुक डिपो।

आलोचना

त्रैमासिक

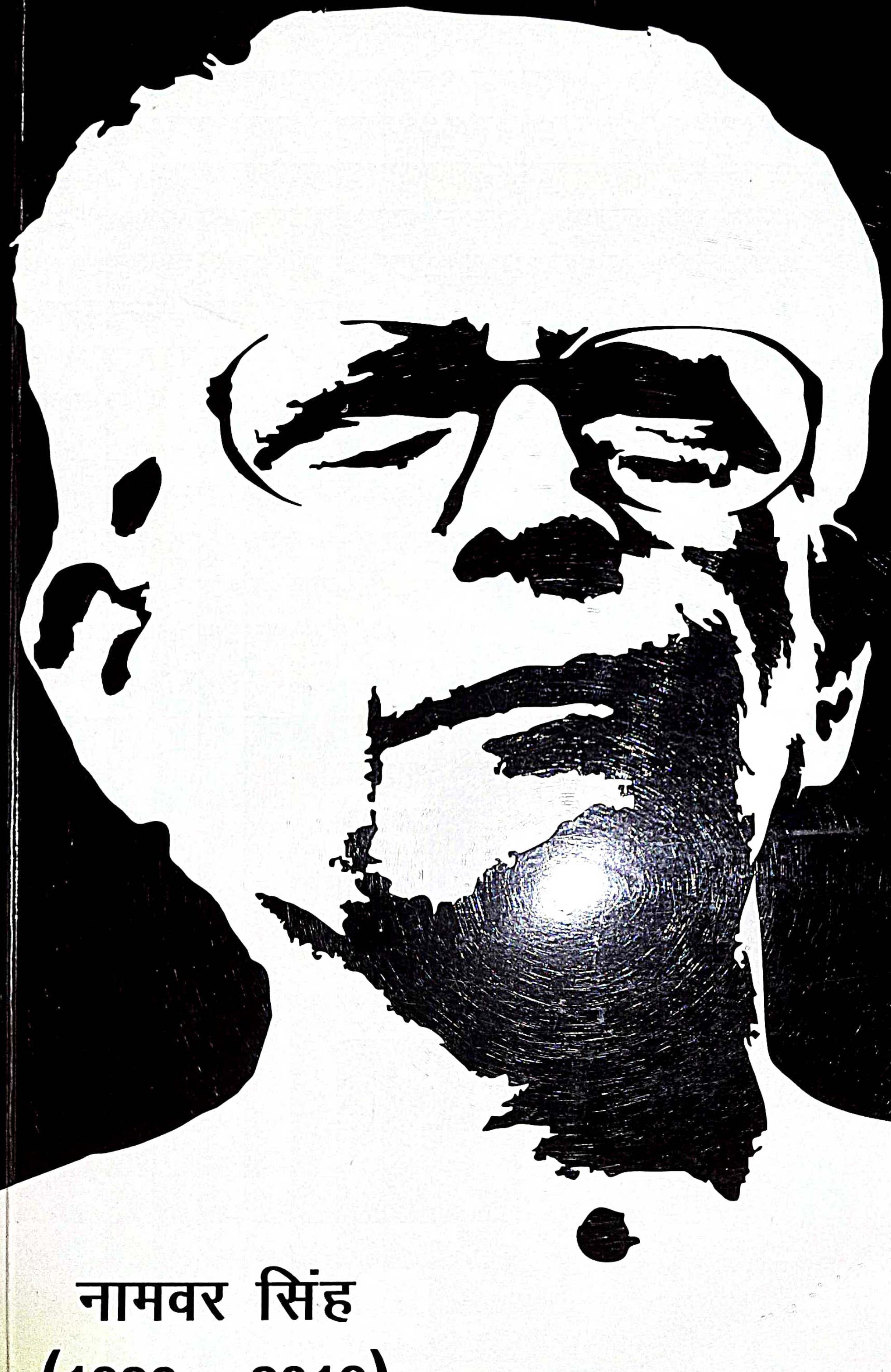

नामवर सिंह

(1926 - 2019)

आलोचना

त्रैमासिक

अंक 62, भाग –10, 2021

प्रधान सम्पादक
नामवर सिंह

सम्पादक
आशुतोश कुमार
संजीव कुमार

सहसम्पादक
आर. चेतनक्रान्ति

कला सम्पादक
हरीश आनन्द

प्रबन्ध सम्पादक
अशोक महेश्वरी

16	इयता दहावीच्या विद्यार्थ्यांच्या जाहिरात लेखनातील चुकांचे निदान करुन केलेल्या उपचारात्मक अध्यापनाच्या परिणामकारकतेचा अभ्यास	डॉ. जयंतकुमार एम. मस्कृेष्ण भावे	102-110
17	"पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता"	सुशील दत डॉ० सोनिका	111-118
18	उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में गन्ना उत्पादन का किसानों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव	डा. किरन श्रीवास्तव शीलू त्रिवेदी,	119-127
19	आधुनिक लोक–निगम की विधिक प्रास्थितिः (राष्ट्रीय तथा प्राइवेट उपक्रम)	डॉ० राजेन्द्र प्रसाद	128-136
20	**मध्यप्रदेश के प्रमुख चित्रकारों की प्रयोगधर्मिता**	**रघुवीर**	137-147
21	**शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण**	**रितु वैश्य** **डॉ मिनी अमित अरवतिया**	148-152
22	''मानव त्रासदी और वैज्ञानिक प्रगति पर प्रश्न चिन्ह'' ''एटम बम'' कहानी विशेष सन्दर्भ में	अनिता जाट डॉ चित्रा	153-156
23	आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में महात्मा गांधी का चिंतन और उनकी कार्यपद्धति	अनिल प्रकाश श्रीवास्तव डा. ज्योत्सना अग्रवाल डा. अजय कुमार घोष	157-160
24	''शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यों की नेतृत्व शैली का अध्ययन	स्वीटी वशिष्ठ डॉ. सरोज राय	161-170

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

"शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यों की नेतृत्व शैली का अध्ययन

स्वीटी वशिष्ठ

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं-राजस्थान

डॉ. सरोज राय

सहायक आचार्या, शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं-राजस्थान

सारांश

किसी भी संस्था एवं महाविद्यालय में प्राचार्य की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि प्राचार्य एक धुरी का कार्य करता है। किसी भी संस्था को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए प्राचार्य को सकारात्मक व्यक्तित्व, निर्णय एवं नेतृत्व क्षमता बहुत महत्व रखती है।

शिक्षक तो विद्यालय में आपसी विचार- विमर्श, सलाह- मशविरा द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो सकते है तथा उनके मार्गदर्शन के लिए प्राचार्य भी मौजूद होता है लेकिन प्राचार्य अपनी समस्याओं का तात्कालिक समाधान प्राप्त करने हेतु मार्गदर्शन से वंचित रहता है। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के पश्चात् प्राचार्यों का दायित्व और बढ़ गया है।

प्राचार्य एक नेता होता है। महाविद्यालय की समग्र गतिविधियां उसी पर आधारित होती है। अतः यह आवश्यक है कि महाविद्यालय का प्राचार्य सुयोग्य हो ताकि राष्ट्र की बढ़ती शैक्षिक आवश्यकताओ के अनुरूप सुयोग्य गुण सम्पन्न व नेतृत्व देने वाले प्राचार्य का उपलब्ध होना थोड़ा कठिन है। अतः शैक्षिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियों का चयन कर कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि शैक्षिक नेतृत्व का आशय चिंतन, मनन, सैद्धान्तिक ढांचों, अन्वेक्षण, संवाद, नियोजन तथा सहयोगी विद्वानों के बीच वैचरिक आदान-प्रदान के द्वारा ऐसे अनुभवों के विकसित करने और निखारने से है जिनका संबंध शैक्षणिक संस्थाओं व्यक्तियों, सहायक संस्थाओं का नेतृत्व करने एवं उनके बीच की अन्तर्व्यस्थाओं के प्रबन्धन से होता है। प्रत्येक राष्ट्र, समाज और संगठन के नेतृत्व की आवश्यकता होती है। संस्था में बदलाव से अभिप्राय मात्र मनोवृति और कार्य व्यवहार में बदलाव नहीं है। यह अधिगम के लिए प्रेरक भौतिक वातावरण और शैक्षिक परिवेश का निर्माण करता है। इसका एक भरापूरा परिवेश है, जिसमें अभिभावक समुदाय, अध्यापक और शैक्षिक प्रशासक भी शामिल होते हैं। संस्था प्रमुख इसकी धुरी है। जो महाविद्यालय परिवेश को ऊर्जावान बना सकता है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

शैक्षिक नेतृत्वकर्ता के रूप में संस्था प्रमुख का सीधा सम्बन्ध बच्चों एवं शिक्षकों से होता है, अतः इनकी जिम्मेदारी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। विद्यार्थी इन्हें अपना आदर्श मानते हैं ओर उनका अनुकरण करते हैं। जीवन के प्रत्येक चरण पर नेतृत्व के गुणों की आवश्यकता होती है, तभी देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। अपने व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, व्यावसायिक जीवन में भी इन गुणों की आवश्यकता होती है।

मुख्य शब्द : शिक्षक, प्रशिक्षण, महाविद्यालय, प्राचार्य, नेतृत्व, शैली, अध्ययन

प्रस्तावना :

शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु शिक्षक एवं प्राचार्य है। ये सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की श्रृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, शिक्षा की किसी भी योजना के सूत्रधार होते हैं। आज के प्रगतिशील युग में प्रत्येक देश का भविष्य शिक्षा पर ही निर्भर करता है।

अध्यापक इतिहास बनाने वाला होता है। किसी भी देश का इतिहास उसके विद्यालयों में लिखा जाता है और विद्यालय अध्यापक के गुणों से परे नहीं रह सकता। अतः किसी भी देश के विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका होती है।

किसी भी संस्था एवं महाविद्यालय में प्राचार्य की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि प्राचार्य एक धुरी का कार्य करता है। किसी भी संस्था को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए प्राचार्य को सकारात्मक व्यक्तित्व, निर्णय एवं नेतृत्व क्षमता बहुत महत्व रखती है।

शिक्षक तो विद्यालय में आपसी विचार- विमर्श, सलाह- मशविरा द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो सकते है तथा उनके मार्गदर्शन के लिए प्राचार्य भी मौजूद होता है लेकिन प्राचार्य अपनी समस्याओं का तात्कालिक समाधान प्राप्त करने हेतु मार्गदर्शन से वंचित रहता है। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के पश्चात् प्राचार्यों का दायित्व और बढ़ गया है।

प्राचार्य एक नेता होता है। महाविद्यालय की समग्र गतिविधियां उसी पर आधारित होती है। अतः यह आवश्यक है कि महाविद्यालय का प्राचार्य सुयोग्य हो ताकि राष्ट्र की बढ़ती शैक्षिक आवश्यकताओ के अनुरूप सुयोग्य गुण सम्पन्न व नेतृत्व देने वाले प्राचार्य का उपलब्ध होना थोड़ा कठिन है। अतः शैक्षिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियों का चयन कर कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

प्रत्येक राष्ट्र, समाज और संगठन को प्रभावी नेतृत्व की आवश्यकता होती है। कुशल नेतृत्व जहां इन्हें नई दिशा देकर प्रगति व उपलब्धियों की उँचाई पर ले जाता है, वहीं अकुशल नेतृत्व इनके पराभव व पतन के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार शिक्षक- प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यो द्वारा प्रभावी निर्णय एवं कुशल नेतृत्व

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

अपने अनुभव, चिंतन, दृढ़ संकल्प तथा बुद्धिमता से ही किया जाता है। निर्णय तो सभी लेते है परन्तु उनके वे निर्णय कितने सार्थक व प्रभावी होते है, यह अनुभव, चिन्तन, विचार- विमर्श तथा निर्णय की प्रक्रिया पर निर्भर करता है।

समस्या का औचित्य :

हमारी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का गिरता शैक्षिक स्तर एक गम्भीर समस्या है। इसके लिए शैक्षिक प्रशासन को क्षमतावान वनाना अति आवश्यक है इस कारण से शोधकर्त्री ने यह महसूस किया कि - इस सन्दर्भ में हमारे शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यो की वर्तमान स्थिति का अध्ययन किया जाये और उनके सशक्तिकरण के उपाय ढूढे जाये।

शिक्षा की कड़ी प्राचार्य से जुड़ी होती है एवं सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए लाभदायक है क्योंकि विद्यालयो और महाविद्यालयों की कक्षाओं में भावी राष्ट्र का, आने वाले कल का निमार्ण हो रहा है। अतः वतर्मान में बदलती शैक्षिक मांगों, ज्ञान के विस्फोट, वैश्वीकरण, सूचना क्रान्ति का प्रभाव, बढती हुई बेरोजगारी, विद्यार्थियों में बढता असंतोष, अनुशासनहीनता, बदलते विद्यार्थी-अध्यापक सम्बन्ध, शिक्षा के प्रति अरूचि, गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा का अभाव, महाविद्यालयों में भौतिक संसाधनों का अभाव, विद्यार्थी और अध्यापकों में कर्तव्यनिष्ठा की कमी आदि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राचार्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते है। आज शिक्षा एवं प्रशासन का स्वरूप व विस्तार प्राचार्यो, शिक्षकों, प्रशासकों पर निर्भर करता है परन्तु प्राचार्य के बिना प्रशासन को प्रभावशील नहीं बनाया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यो की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का अध्ययन करना।
2. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यो की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का क्षेत्र के आधार पर अध्ययन करना।
3. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यो की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का लिंग के आधार पर अध्ययन करना।
4. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यो की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का विषय के आधार पर अध्ययन करना।
5. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यो की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का संभाग के आधार पर अध्ययन करना।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

6. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यों की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का प्रशासनिक समस्याओं के आधार पर अध्ययन करना।

7. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यों की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का शैक्षणिक समस्याओं के आधार पर अध्ययन करना।

8. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राचार्यों की नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता का कार्मिक समस्याओं के आधार पर अध्ययन करना।

9. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के महिला एवं पुरूष प्राचार्यों में प्रशासनिक विभिन्नता, गुणवत्ता और प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

1- कुमार, सतीश (२०१८) : ''विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन नेतृत्व क्षमता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'' में निष्कर्ष के रूप में ज्ञात होता है कि-गुरूकुल पद्धति के अध्यापकों की अध्यापन नेतृत्व क्षमता सर्वाधिक सकारात्मक एवं समायोजन स्तर उच्च है। मदरसों के अध्यापकों की अध्यापन नेतृत्व क्षमता तथा समायोजन स्तर मध्यम तथा केन्द्रिय विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन नेतृत्व क्षमता तथा समायोजन स्तर न्यून पाया गया।

2- इब्राहिम हसन अल खोजेह (२०१८) ने ''संगठनात्मक गुणवत्ता पर नेतृत्व क्षमता के प्रभाव का अध्ययन'' विषय पर शोधकार्य किया जिसमें पाया कि नेतृत्व के विभिन्न आयामों व संगठनात्मक गुणवत्ता के मध्य सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के समवन्ध पाये गये हैं।

3- स्टेफन, कोट एवं अन्य (२०१६) ने ''संवेगिक बुद्धिमत्ता और छोटे समूहों में नेतृत्व का उदय'' विषय पर शोधकार्य किया जिसमें पाया कि- सांवेगिक बुद्धिमत्ता और नेतृत्व उदय में सकारात्मक सहसम्बन्ध होता है। योग्यता का उपयोग, अवबोध और संवेग प्रबन्ध आदि का नेतृत्व से सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया।

4- सच्चर, भवानी (२०१५) ने ''नेतृत्व के प्राप्त परिणाम : नेतृत्व प्रभावशीलता पर सांवेगिक बुद्धिमता का प्रभाव एवं मापन'' विषय पर शोध कार्य किया। जिसमें पाया कि सांवेगिक बुद्धिमान नेता संगठन की श्रेणी, प्रोफाइल और कर्मचारियों का उत्साह बढ़ाते हैं, उनकी शक्तियों के प्रभाव में वृद्धि होती है।

5- मू जुन, हाओ व रसद यजदानिफाउर्ड (२०१५) ने साउथर्न न्यू हेम्पशायर यूनिवर्सिटी, मलेशिया से अपने अध्ययन'' कैसे प्रभावी नेतृत्व सुधार व नवाचार के माध्यम से संगठन में बदलाव ला सकता है।'' इसमें पाया कि- परिवर्तन प्रभावी नेतृत्व प्रबन्धन में आवश्यक है, वर्तमान कारोबारी माहौल में संगठन को

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

बनाये रखने के लिए परिवर्तन बहुत महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से परिवर्तन लोगों के लिए कठिन है क्योंकि इसमें लोग असहज महसूस करते हैं।

6- जीन, उमर ब्रेडली (२०१४) ने ''नेतृत्व गुण और व्यवहार'' विषय पर शोध कार्य किया जिसमें पाया कि-एक सफल नेता के लिए कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं है, जैसा यूकी मॉडल और अन्य नेतृत्व सिद्धान्तों में देखते हैं। कुछ समान कारक दिखाई पड़ते हैं, उपागम आप स्वयं चयन करते हैं, जैसे अनुयायियों की योग्यता, परिपक्वता और इच्छाशक्ति, स्थितिगत आवश्यकता आदि और आप में अपना कौशल, योग्यता और मूल्य अधिक आवश्यक है।

परिकल्पनाएं

१. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के ग्रामीण एवं शहरी प्राचार्यों की नेतृत्व क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

२. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के महिला एवं पुरूष प्राचार्यों की नेतृत्व क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

३. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के ग्रामीण महिला एवं पुरूष प्राचार्यों की नेतृत्व क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

४. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शहरी महिला एवं पुरूष प्राचार्यों की नेतृत्व क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमन

इस अध्ययन में राजस्थान के जयपुर एवं अजमेर संभाग के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के १०० प्राचार्यों को शामिल किया गया है। इसमें जयपुर संभाग के अलवर, जयपुर, सीकर, झुंझुनू, दौसा एवं अजमेर संभाग के अजमेर, भीलवाड़ा, नागौर, टोंक जिले को शामिल किया गया है।

नेतृत्व की शैलियां :

नेतृत्व शैली से हमारा आशय नेता के सामान्य व्यवहार से है। व्यवहार का वह पैटर्न जो एक नेता के लिए सामान्य रूप से प्रदर्शित करता है, नेतृत्व की शैली कहलाता है। एक नेतृत्व शैली नेता के दर्शन, व्यक्तित्व, अनुभव एवं मूल्य प्रणाली का परिणाम है। यह अनुयायियों के प्रकार एवं संगठन में प्रचलित वातावरण पर भी निर्भर करती है। सामान्य रूप से नेतृत्व शैली तीन प्रकार की होती है-

१. निरंकुशवादी नेतृत्व ;।नजवबतंजपब स्ंकमतेीपचद्ध

२. जनतांत्रिक या सहभागी नेतृत्व ;क्मउवबतंजपब स्मंकमतेीपचद्ध

३. अहस्तक्षेप नीति ;स्पेम्र थ्ंपतमर्धतिमम तमपद.स्मंकमतेीपचद्ध

नेतृत्व शैलियां

१. निरंकुशवादी

- नेता
- अनुयायी
- नेता

२. जनतांत्रिक

- नेता
- अनुयायी
- पूर्ण समूह

३. अहस्तक्षेप

- नेता
- अनुयायी
- अनुयायी

१. निरंकुशवादी नेतृत्व ;।नजवबतंजपब स्मंकमतेीपचद्ध : एक निरंकुश नेता आदेश देता है और इस बात पर जोर देता है कि-उन आदेशों को बिना किसी सुझाव या विरोध के माना जाए। वह बिना विचार-विमर्श किए, समूह के लिए नीतियां निर्धारित करता है। इस शैली में निर्णय लेने की शक्ति नेता के पास केन्द्रीकृत होती है।

२. जनतांत्रिक या सहभागी नेतृत्व ;क्मउवबतंजपब स्मंकमतेीपचद्ध : एक जनतांत्रिक नेता समूह से परामर्श के पश्चात् ही आदेश देता है और समूह की स्वीकृति के बाद ही नीतियों को लागू करता है। ऐसा नेता बिना सुनिश्चित दीर्घकालीन योजना के अपने अधीनस्थों को कोई आदेश नहीं देता है। ऐसा नेता समूह द्वारा लिए गए निर्णयों का समर्थन करता है। यह शैली कर्मचारियों को अपने कार्य के प्रति अभिप्रेरित करती है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

३. अहस्तक्षेप नीति ;स्पैम्र थ्यतमर्धतिमम तमपद.स्नंकमर्तोपचक्ष्व : इस नेतृत्व शैली के अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करता है। ऐसा नेता शक्ति एवं अधिकारियों का प्रयोग कम से कम करता है। समूह के सदस्य अपना कार्य अपनी इच्छा एवं क्षमताओं के अनुसार करते हैं। नेता का कार्य बाह्य स्त्रोतों से सम्पर्क स्थापित करके सूचनाओं को अधीनस्थों तक पहुंचाना एवं कार्य पूर्ण करने के लिए आवश्यक संसाधन उपलव्ध कराना होता है।

नेतृत्व शैली से सम्बन्धित समस्याएं :

संस्था प्रमुख जो महाविद्यालय का नेतृत्व करते हैं, उन्हें अनेक चुनौतीयों का सामना करना पड़ता है-

१. शिक्षक तो विद्यालय में आपसी विचार- विमर्श, सलाह- मशविरा द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो सकते है तथा उनके मार्गदर्शन के लिए प्राचार्य भी मौजूद होता है लेकिन प्राचार्य अपनी समस्याओं का तात्कालिक समाधान प्राप्त करने हेतु मार्गदर्शन से वंचित रहता है।

२. प्रशासनिक कार्यों का बोझ एक प्रमुख चुनौती है। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के पश्चात् प्राचार्यों का दायित्व और बढ़ गया है।

३. विद्यार्थी और शिक्षकों का कमजोर अनुपात भी प्राचार्यों के समक्ष बड़ी चुनौती है।

४. समाज में शिक्षकों की दयनीय स्थिति गिरता हुआ स्तर प्राचार्यों के समक्ष एक चुनौती है।

५. शिक्षा के उद्देश्य एवं समझ का अभाव संस्था प्रधान के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है।

६. सीमित संचालन महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा किया जाना।

७. समूह से विचार-विमर्श के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध न होना।

८. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भौतिक संसाधनों एवं सुविधाओं का अभाव एवं शैक्षिक तकनीकी उपकरणों का न्यून प्रयोग और नवीन ज्ञान का अभाव भी एक प्रमुख समस्या है।

९. योग्य शिक्षकों का अभाव एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव प्रमुख समस्या है।

१०.महाविद्यालय के जो प्राचार्य निरंकुश नेतृत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं उन पर कार्य का बहुत अधिक बोध पड़ता है क्योंकि वे टीम के निर्णयों की पूरी जिम्मेदारी लेते हैं और टीम के काम की समीक्षा करते हैं इसलिए निरकुंश नेता बेहद व्यस्त रहते हैं, जिससे अधिकांश समय उच्च्च तनाव और यहां तक कि-स्वास्थ्य समस्याएं भी हो सकती है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

११. अत्यधिक कुशल और प्रेरित शिक्षकों के लिए निरंकुश नेतृत्व अच्छा नहीं है। इस तरह के समूह का सामना करने वाला एक निरंकुश नेता मनोबल को कम करेगा और अपनी टीम की रचनात्मक एवं उत्पादकता को कम करेगा।

१२. कभी-कभी निरंकुशता अत्यधिक अनुभवी और शिक्षित लोगों के साथ एक अहंकार टकराव का कारण वन सकती है। अतः कुछ गुणवत्ता कार्यकर्त्ता भी नौकरी छोड़ने पर विचार कर सकते हैं।

नेतृत्व शैली से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान :

- महाविद्यालय के प्राचार्यों को अपने दायित्वों का निर्वहन पहले करना होगा तभी दूसरों के लिए आदर्श वन सकते हैं एवं विद्यालय का सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हो सकेंगे। लक्ष्य ही प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षकों को इस तरह प्रशिक्षण दिया जाए जिससे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को प्रभावशाली बनाया जा सके।

- प्रशासनिक नेतृत्व की तरह संस्था प्रमुख की जिम्मेदादी है एवं उससे अपेक्षा भी है कि-वह संवाद को सुगम बनाये तथा शिक्षकों के कुछ ऐसे तरीके खोजने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित करें जिनसे वातावरण और विद्यार्थियों के प्रदर्शन में सुधार हो और यह भी सुनिश्चित करे कि-शिक्षकों और विद्यार्थियों की भागीदारी आनंदपूर्ण असरदार एवं दूरदर्शी हो, कठिन परिस्थितियों से निपटने में और बाहरी हस्तक्षेपों और अड़चों से पार पाने में भी सक्षम होना चाहिए।

- किसी भी कार्य के पूर्ण रूप से परिचित होने के लिए एक टीम भावना से कार्य करने की आवश्यकता होती है जो अपेक्षाएं एवं बदलाव हम दूसरों में चाहते हैं स्वयं में पहले लाएं। सकारात्मक नजरिया हो, स्वआकलन करें, अपनी कमजोरियों को दूर कर क्षमताओं का विकास करें।

- प्राचार्य को स्वयं आगे बढ़कर टीम को अभिप्रेरित करना चाहिए एवं सहयोगियों को सतत सीखने के लिए अवसर उपलब्ध करवाने चाहिए।

- संस्थाप्रमुख होने के नाते पाठ्यचर्या की समझ के साथ-साथ विषय की जानकारी एवं समझ होनी चाहिए। संस्था प्रमुख में शैक्षिक नेतृत्व हेतु निम्नानुसार गुण होने चाहिए-

    - प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं आदर्श चरित्र

    - सहिष्णुता, समायोजन एवं संस्थागत नियोजन का ज्ञान।

    - पक्षपात रहित दृष्टिकोण एवं मानवीय सम्पर्क कला में दक्षता।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

- ○ भाषण तथा लेखन क्षमता, उत्तरदायित्व निर्वाह तथा कार्य में पहले करने की क्षमता।
- ○ आत्मविश्वास तथा सहयोग प्राप्त करने की क्षमता।
- ○ कार्य के प्रति आस्था एवं समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान।

- लीडरशिप एक प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति एक समूह को निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने प्रभाव में लेता है। इस हेतु ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। आज शिक्षा के विकास के लिए विभिन्न प्रयोग किये जा रहे हैं। नवाचार से संस्था में महत्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है। प्रयोग एवं अनुसंधान से नवाचारों को बढावा मिलता है।

- संस्था प्रमुख और शिक्षकों के साथ यह महत्वपूर्ण बात है कि-वे भविष्य के नागरिक व नेतृत्वकर्ता बच्चों के बल्कि पूरे समाज के लिए रोल मॉडल है। इसलिए आवश्यक है कि-वे स्वयं को नेतृत्वकर्ता की प्रभावी भूमिका के लिए तैयार करने का प्रयास करे।

- शैक्षिक नेतृत्व के कुछ महत्वपूर्ण कार्य संस्था प्रमुख द्वारा किया जाता है इन सभी कार्यों को संस्था प्रमुख द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए-

    १. उद्देश्य प्राप्ति एवं सफलता के लिए संस्था प्रमुख के द्वारा अत्यन्त कुशलतापूर्वक योजना का निर्माण करना चाहिए। योजना में क्रमबद्धता तथा सैद्धान्तिकता होनी चाहिए।

    २. वित्तीय कार्यकुशलता एवं वित्तीय समस्याओं को सुलझाने का कार्य प्राचार्य का होता है।

    ३. प्राचार्य को शैक्षिक विकास, राष्ट्रीय नीति, स्थानीय सहायता, स्त्रोत आदि का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। नवीन अनुसंधान तथा नवीन शिक्षक पद्धतियों को अपनाना आदि ऐसे अनेक कार्य होते हैं जिससे विद्यालय की निरन्तर उन्नति होती है।

    ४. संस्था प्रमुख का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य संस्था के प्रशासन को ठीक रखना है जिसका उत्तरदायित्व उसके कंधों पर होता है। अतः संस्था प्रमुख द्वारा सभी कार्य कुशलता पूर्वक किये जाने चाहिए।

निष्कर्ष :

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि शैक्षिक नेतृत्व का आशय चिंतन, मनन, सैद्धान्तिक ढांचों, अन्वेक्षण, संवाद, नियोजन तथा सहयोगी विद्वानों के बीच वैचरिक आदान-प्रदान के द्वारा ऐसे अनुभवों के विकसित करने और निखारने से है जिनका संबंध शैक्षणिक संस्थाओं व्यक्तियों, सहायक संस्थाओं का नेतृत्व करने एवं उनके बीच की अन्तर्व्यस्थाओं के प्रबन्धन से होता है। प्रत्येक राष्ट्र, समाज और संगठन के नेतृत्व की आवश्यकता होती है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

संस्था में बदलाव से अभिप्राय मात्र मनोवृति और कार्य व्यवहार में बदलाव नहीं है। यह अधिगम के लिए प्रेरक भौतिक वातावरण और शैक्षिक परिवेश का निर्माण करता है। इसका एक भरापूरा परिवेश है, जिसमें अभिभावक समुदाय, अध्यापक और शैक्षिक प्रशासक भी शामिल होते हैं। संस्था प्रमुख इसकी धुरी है। जो महाविद्यालय परिवेश को ऊर्जावान बना सकता है।

शैक्षिक नेतृत्वकर्ता के रूप में संस्था प्रमुख का सीधा सम्बन्ध बच्चों एवं शिक्षकों से होता है, अतः इनकी जिम्मेदारी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। विद्यार्थी इन्हें अपना आदर्श मानते हैं ओर उनका अनुकरण करते हैं। जीवन के प्रत्येक चरण पर नेतृत्व के गुणों की आवश्यकता होती है, तभी देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। अपने व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, व्यावसायिक जीवन में भी इन गुणों की आवश्यकता होती है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :

1. शालेय संस्कृति, प्रबन्धन एवं विकास (२०१७) राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़, रायपुर।
2. मंगल, एस.के. (२०१५) : शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रिंटिंग्स हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि.।
3. शर्मा, अंजलि (२०११) : शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगठन, जयपुर, शिक्षा प्रकाशन।
4. सिंह, रामपाल, शर्मा मदन मोहन एवं सेवानी, अशोक (२०११) : शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगठन, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।,
5. जैन, डॉ. महेश कुमार (२००७) : शोध विधियां, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।
6. अग्रवाल, जे.सी. (२००७) : शैक्षिक तकनीकी एवं प्रवन्ध, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
7. श्रीवास्तव, डी.एन. (२००६) : अनुसंधान विधियां, आगरा, साहित्य प्रकाशन।
8. कटारिया, सुरेन्द्र (२००५) : प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रवन्ध, मेरठ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
9. वर्मा, जे.पी. (२००२) : शैक्षिक प्रबन्धन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
10. शर्मा, आर.ए. : शिक्षा प्रबन्धन, मेरठ, आर.लाल बुक डिपो।

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन

शिल्पी टाक

शोधार्थी, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

डॉ. आभा सिंह

निर्देशिका एवं सहायक आचार्य, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

सारांश

वर्तमान में भारत में शिक्षा उद्योग ने डिजीटल अधिगम की शुरूआत के साथ एक वैश्विक मोड़ ले लिया है। शिक्षा के पारंपरिक तरीके की जटिलताओं और कमजोरियों से छुटकारा पाने के लिए शिक्षा संस्थानों में डिजीटल अधिगम पद्धति को अपनाया गया। इसमें शिक्षा को अधिक प्रभावी और कुशल बनाने के लिए प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल साम्रगी का उपयोग किया जाता है। इस शोध पत्र का उद्धेश्य डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना था। इस शोध में न्यादर्श के रुप में जयपुर जिले के 100 विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। इस अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया शोधार्थी ने स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग करते हुए प्रदतों का संकलन किया। प्रदतों का विश्लेषण मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण द्वारा किया गया। प्राप्त परिणामों में प्रदर्शित हुआ कि डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है।

मुख्य शब्दः डिजीटल अधिगम,दृष्टिकोण।

प्रस्तावना

भारत में शिक्षा ने प्रौद्योगिकी के साथ विकास का एक लम्बा सफर तय किया है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में डिजीटल अधिगम का विकास बहुत तेजी से हुआ है। शिक्षण विधियों और अधिगम में सूचना तकनीकी के प्रयोग ने शिक्षा तंत्र को मजबूती प्रदान की है। इसने स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों के सीखने के तरीके में परिवर्तन किया है। पारंपरिक व्याख्यान एवं बातचीत को डिजिटल इंटरैक्टिव तरीकों में बदल दिया है। यह तकनीकी आधरित शिक्षा एक नवाचार के रूप में देखी जाती है। यह शिक्षा अधिगम आधरित एवं विद्यार्थी केन्द्रीत होती है। आज की शिक्षा

नवयुगीन साधनों एवं युक्तियों से सुसज्जित है। वर्तमान में कक्षा–शिक्षण के साथ–साथ डिजिटल शिक्षण का प्रचलन बढ गया है जिसे डिजीटल अधिगम कहा जाता है।

डिजीटल अधिगम एक प्रकार की इलेक्ट्रोनिक तकनीकी द्वारा प्रदत एवं सुगम्य अधिगम अवसर है जिसमें विषय–वस्तु, अधिगम की विधियाँ एवं शिक्षण तीनों सम्मिलित हैं। यह कक्षा–कक्ष शिक्षण से पूर्णतया भिन्न है। डिजीटल अधिगम तकनीकी एवं शिक्षा दोनों का मिश्रित रूप है जिसमें सीखने वाला व्यक्ति बिना किसी दूरी की बाधा के स्वयं की गति के अनुसार सीख सकता है। यह कौशल एवं ज्ञान का कंप्यूटर एवं नेटवर्क आधरित अंतरण है। डिजीटल अधिगम को सभी प्रकार के इलेक्ट्रोनिक समर्थित शिक्षा और अध्यापन के रूप में परिभाषित किया जाता है जो स्वाभाविक तौर पर कियात्मक होता है और जिनका उद्धेश्य शिक्षार्थियों के व्यक्तिगत अनुभव अभ्यास एवं ज्ञान के संदर्भ में ज्ञान के निर्माण को प्रभावित करता है।

डिजीटल अधिगम अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा के प्रमुख उपकरण के रूप में सामने आयी है। इसकी शुरूआत मुख्य रूप से आई आई टी के छात्रों के लिए की गयी थी। लेकिन समय के साथ–साथ यह सभी के लिए सुलभ हो गयी। डिजीटल अधिगम के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे– ऑनलाइन शिक्षा, इंटरनेट शिक्षा, इलेक्ट्रोनिक शिक्षा आदि। डिजीटल अधिगम के अनुप्रयोग एवं प्रकियाओं में वेब आधारित शिक्षा, कंप्यूटर आधारित शिक्षा, आभासी कक्षाएं और डिजिटल सहयोग शामिल है। इसमें पाठ्यसामग्री का विवरण इंटरनेट, इंट्रानेट/एक्ट्रानेट, ऑडियो या विडियो टेप, उपग्रह टीवी और सीडी–रोम के माध्यम से किया जाता है।डिजीटल अधिगम एक लचीली अनुदेशात्मक वितरण प्रणाली है जो इंटरनेट के माध्यम से होने वाली किसी भी तरह के अधिगम को समाहित करती है। डिजीटल अधिगम के द्वारा शिक्षकों को उन छात्रों तक पहुंचने का अवसर प्राप्त होता है जो पारंपरिक कक्षा पाठ्यकम में दाखिला लेने में सक्षम नही हो सकते हैं और ऐसे छात्रों का समर्थन करती है जिन्हें अपने समय एवं गति से सीखने की असवश्यकता है। डिजीटल अधिगम के माध्यम से आभासी कक्षा–कक्ष विकसित हुए हैं जिसमें वास्तविक कक्षा के समान ही शिक्षक–छात्र संवाद किया जा सकता है। इसके माध्यम से प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी इच्छानुसार शिक्षा प्रदान की जा सकती है। यह व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए उपयोगी है। डिजीटल अधिगम पाठ्यकम विंडोज, लिनक्स, मैक, यूनिक्स आदि में से किसी भी मंच पर आसानी से उपलब्ध हैं। इंटरनेट का प्रयोग करके विद्यार्थी किसी भी पाठ्यकम में प्रवेश प्राप्त कर सकता है।

अध्ययन की आवश्यकता

समय के साथ विश्व में शिक्षा प्रणाली एक बदलाव से गुजरी है। आज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी शिक्षा और अधिगम का अभिन्न अंग बन गई है। विश्व भर के देश, शिक्षा और प्रशिक्षण के सभी क्षेत्रों में तकनीकी का प्रयोग कर रहे हैं। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली अब आधुनिक समय की जटिलताअयों को दूर करने में सक्षम नहीं है इसलिए इन जटिलताओं को दूर करने के लिए डिजीटल अधिगमएक महत्वपूर्ण साधन है। डिजीटल अधिगम कोई नवीन सम्प्रत्यय

नहीं है। इसका प्रचलन बहुत समय पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। परन्तु वर्तमान में कोरोना महामारी के जहां देश भर के शैक्षणिक संस्थानों को बंद कर दिया गया है जिसके कारण संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गयी है वहीं संकट की इस घड़ी में डिजीटल अधिगम एक समाधान के रूप में हमारे समक्ष आया है। वर्तमान में विद्यार्थियों की शिक्षा को सुचारू रखने का एक मात्र साधन डिजीटल अधिगम ही है। विद्यार्थियों की शिक्षा को सुचारू रखने के लिए जूम, गूगल क्लासरूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम, स्काइप, गूगल मीट, आदि मंचों का प्रयोग किया जा रहा है। पूर्व में उच्च स्तरीय शिक्षा में इसका प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा था परन्तु वर्तमान परिस्थिति ने विद्यालयी स्तर पर इसके प्रयोग को बढ़ा दिया है। डिजीटल अधिगम के द्वारा विद्यार्थी घर बैठे अपनी शिक्षा को पूर्ण कर सकता है। इससे विद्यार्थियों में इंटरनेट और कंप्यूटर का ज्ञान विकसित होता है जो उन्हें अपने जीवन और करियर के क्षेत्र में आगे बढ़ने में मदद करता है। भारत जैसे देश में साक्षरता स्तर को बढ़ाने में डिजीटल अधिगम का विस्तार एवं इसका व्यापक प्रयोग बहुत आवश्यक है।

भारत जैसे देश में साक्षरता स्तर को बढ़ाने में डिजीटल अधिगम का विस्तार एवं इसका व्यापक प्रयोग बहुत आवश्यक है। वैसे तो कक्षा–कक्ष शिक्षण का कोई विकल्प नही है परन्तु ऐसे बहुत से विद्यार्थी जो प्रत्यक्ष शिक्षण से वंचित हैं या जिनके पास आवश्यक अध्ययन सामग्री का अभाव है उनके लिए डिजीटल अधिगम वरदान स्वरूप है। डिजीटल अधिगम के इसी महत्व को ध्यान रखते हुए शोधार्थी ने इसके प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को जानने के लिए यह शोध कार्य करने का निर्णय लिया।

साहित्य अवलोकन

वर्मा, प्रीति और त्रिवेदी, अंजलि (2019) ने ''ऑनलाइन एजुकेशन एण्ड स्कूल स्टुडेन्टः ए रियलीटी चेक'' पर शोध कार्य किया। इस शोध का उद्धेश्य माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों, शिक्षकों एव अभिभावकों की ऑनलाइन शिक्षा के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना था। इस शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के लिए 450 विद्यार्थियों, 123 शिक्षकों एवं 79 अभिभावकों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि द्वारा केया गया। स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से आंकडों का संकलन किया गया। प्राप्त आंकडों के विश्लेषण करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि ऑनलाइन शिक्षा के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों, शिक्षकों एव अभिभावकों की जागरूकता कम है।

शर्मा, माला और गुप्ता, मनमोहन (2018) ने ए स्टडी ऑन एटीट्यूड ऑफ सीनियर सैकण्डरी स्कूल स्टुडेन्ट टुवर्ड्स ई–लर्निंग इन रिलेशन टु दिअर जेन्डर, रेजिडेन्शिअल बेकवर्ड एण्ड नेचर ऑफ स्कूल पर शोध किया। इस शोध का उद्धेश्य विद्यार्थियों की ई–लर्निंग के प्रति अभिवृति का लिंग, संकाय एवं निवास स्थान के आधार पर अध्ययन करना था। इस शोध में

वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के लिए सहारनपुर, उतर प्रदेश के 160 विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। उपकरण के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। प्राप्त आंकडों का विश्लेषण मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी–परीक्षण के द्वारा किया। शोध निष्कर्ष में यह प्राप्त हुआ कि विद्यार्थियों की ई–लर्निंग के प्रति अभिवृति का लिंग, संकाय एवं निवास स्थान के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

खान, आमिर और खान, वजल (2017) ने स्टुडेन्ट एटीट्यूड टुवर्ड्स ऑनलाइन लर्निंग एट टेरेट्री लेवल पर शोध कार्य किया। इस शोध कार्य का उद्धेश्य पेशावर जिले के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा के प्रति अभिवृति का अध्ययन करना था। इस शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। आंकडों का संकलन करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के लिए 83 विद्यार्थियों का चयन किया गया। शोध निष्कर्ष में प्राप्त हुआ कि विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा के प्रति अभिवृति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

शुभ्रज्योत्सना (2016) ने इम्पेक्ट ऑफ ऑनलाइन एजुकेशन ऑन हायर एजुकेशन पर शोध किया। इस शोध का उद्धेश्य उच्च शिक्षा पर ऑनलाइन शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना था। इस शोध कार्य गुणात्मक प्रकृति का था और आंकडों के लिए द्वितीयक स्त्रोत का प्रयोग किया गया। विश्लेषण के लिए उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों का अध्ययन किया गया। शोध परिणाम में यह प्राप्त हुआ कि वर्तमान में उच्च शिक्षा में ऑनलाइन शिक्षा का प्रयोग तो हो रहा है पर वह पर्याप्त नहीं है। देश के विकास के लिए भविष्य में ऑनलाइन शिक्षा को बढावा देना आवश्यक है। ऑनलाइन शिक्षा की राह में कई चुनौतियाँ भी हैं जिनका समाधान करने के लिए सरकार को नीतियाँ बनाने की आवश्यकता है।

बेहेरा, डॉ. संतोष कुमार (2016) ने एटीट्यूड ऑफ बी.एड. स्टूडेन्ट–टीचर्स टुवर्ड्स ई–लर्निंग पर शोध किया। इस शोध का उद्धेश्य ई–लर्निंग के प्रति छात्राध्यापकों की अभिवृति का अध्ययन करना था। इस शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के लिए 230 छात्राध्यापकों का चयन उद्धेश्यपरक न्यादर्शन विधि द्वारा किया गया। आंकडों का संकलन करने हेतु स्वनिर्मित अभिवृति मापनी का प्रयोग किया गया। आंकडों का विश्लेषण मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी–परीक्षण के द्वारा किया गया। शोध निष्कर्ष में यह प्राप्त हुआ कि ई–लर्निंग के प्रति छात्राध्यापकों की अभिवृति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

शोध उद्धेश्य

1 डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2 डिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3 डिजीटल अधिगम के प्रति उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1 डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2 डिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
3 डिजीटल अधिगम के प्रति उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि

- प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

- प्रस्तुत शोध में साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा जयपुर जिले के माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के 100 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

उपकरण

- प्रस्तुत शोध में स्वनिर्मित उपकरण के माध्यम से प्रदतों का संकलन किया गया है।

सांख्यिकी विधि

- प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाप विचलन और टी–परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदतों का विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना– 1 डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 4.1

समूह	कुल संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर	परिणाम
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी	50	100.50	11.07	1.89	0.05 (1.98)	स्वीकृत
उच्च माध्यमिक	50	105.15	13.40			

स्तर के विद्यार्थी						

स्वतंत्रता का अंश ;कद्धि = 98

व्याख्याः– उपरोक्त तालिका 4.1 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है किडिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का मध्यमान 100.50, मानक विचलन 11.07 पाया गया तथा उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का मध्यमान 105.15, मानक विचलन 13.40पाया गया। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 1.89 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 98 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.98 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

अर्थात् डिजीटल अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना– 2 डिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 4.2

समूह	कुल संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर	परिणाम
माध्यमिक स्तर के छात्र	25	99.20	11.96	1.01	0.05 (2.01)	स्वीकृत
माध्यमिक स्तर की छात्राएं	25	102.16	8.30			

स्वतंत्रता का अंश (df) = 48

व्याख्याः–उपरोक्त तालिका 4.2 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि डिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के छात्रों के दृष्टिकोण का मध्यमान 99.20, मानक विचलन 11.96 पाया गया तथा माध्यमिक स्तर की छात्राओं के दृष्टिकोण का मध्यमान 102.16, मानक विचलन 8.30 पाया गया। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 1.01 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 48 के लिए

0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 2.01 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

अर्थात् डिजीटल अधिगम के प्रति माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना– 3 डिजीटल अधिगम के प्रति उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 4.3

समूह	कुल संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर	परिणाम
उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र	25	106.65	10.23	0.44	0.05 (2.01)	स्वीकृत
उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राएं	25	105.40	9.62			

स्वतंत्रता का अंश (df) = 48

व्याख्याः–उपरोक्त तालिका 4.3 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि डिजीटल अधिगम के प्रति उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों के दृष्टिकोण का मध्यमान 106.65, मानक विचलन 10.23 पाया गया तथा उच्च माध्यमिक स्तर की छात्राओं के दृष्टिकोण का मध्यमान 105.40, मानक विचलन 9.62 पाया गया। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 0.44 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 48 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 2.01 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

अर्थात् डजीटल अधिगम के प्रति उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

डिजीटल अधिगम की आवश्यकता एवं चुनौतियों से संबंधित उद्धेश्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह परिणाम प्राप्त हुआ कि वर्तमान में भारत में डिजीटल अधिगम का प्रयोग उच्च स्तर पर तो व्यापक रूप किया जा रहा है परन्तु विद्यालयी स्तर पर इसका प्रयोग बहुत कम है। वर्तमान में डिजीटल अधिगम की बहुत आवश्यकता है। विश्व भर में प्रचलित शैक्षिक वातावरण एवं प्रणाली से मेल खाने के लिए शिक्षा का डिजिटलीकरण आवश्यक है। परन्तु इसके साथ ही यह जानना भी अवश्यक है कि इस प्रणाली को कैसे अपनाया जाये। डिजीटल अधिगम, शिक्षण का एक नवीन तरीका है। यह विद्यार्थियों की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करता है।

परिणाम में यह भी प्राप्त हुआ कि भारत में ई–शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं जैसे– बिजली, ब्रॉडबेन्ड, नेटवर्क और कनेक्टिविटी आदि सुविधाओं का अभाव, योग्य शिक्षकों का अभाव, उपयुक्त संसाधनों की कमी आदि। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार को आवश्यक नीतियों का निर्माण करने की आवश्यकता है।

इसके लिए सर्वप्रथम नीति निर्माताओं, अधिकारियों, छात्रों, शिक्षकों और शिक्षाविदों के विचारों में बदलाव लाने की आवश्यकता है। डिजीटल अधिगम को बढावा देने के लिए शिक्षकों के साथ–साथ विद्यार्थियों को भी डिजिटलाइजेशन के लिए प्रशिक्षित किया जान चाहिए। विद्यार्थियों को संकाय चयन को धीरे–धीरे प्रौद्योगिकी के साथ एवं प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए किया जाना चाहिए। इसके साथ ही डिजीटल अधिगम के लिए आवश्यक संसाधनों को आमजन तक पहुचाने के लिए सरकार को विभिन्न प्रयास करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, जे. सी. (2010) स्कूल प्रबन्ध, सूचना तथा संप्रेषण तकनीकी, आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन.
- बेहेरा, डॉ. संतोष कुमार (2016). एटीट्यूड ऑफ बी.एड. स्टूडेन्ट–टीचर्स टुवर्ड्स ई–लर्निंग International journal of computer science engineering. 5(6), 305-311.
- चतुर्वेदी, श्शोभा (2006) शैक्षिक तकनीकी का सारत्व एवं प्रबन्ध, कानपुरः विकास प्रकाशन.
- चौधरी, पंकज (2008) भारत में सूचना तकनीकी का विकास, नई दिल्लीः संचार साहित्य प्रकाशन.
- दुआ, शिखा (2016) इश्यूज, ट्रेन्ड्स एण्ड चैलेन्जेस ऑफ डिजिटल एजुकेशनः एन एमपॉवरिंग इनोवेटिव क्लासरूम मॉडल फॉर लर्निंग International journal of science technology and management. 5(5), 142-149.

- गोंद, रामप्रवेश (2017) ए स्टडी ऑफ डिजिटल एजुकेशन इन इंडियाः स्कोप एण्ड चैलेंजैज़ ऑफ एन इंडियन सोसाइटी Anveshika international journal of research in regional studies, law, social sciences, journalism and management practices. 2(3), 12-18.
- काम्बले, आविष्कार (2013) "डिजिटल क्लासरूमः द फ्यूचर ऑफ द करंट जनरेशन" International journal of education and psychological research. 2(2), 41-45.
- खान, आमिर और खान, वजल (2017) स्टुडेन्ट एटीट्यूड टुवर्ड्स ऑनलाइन लर्निंग एट टेरेट्री लेवल PUTAJ- humanities and social sciences. 25(1-2), 63-82.
- निगम, अनुश्री और श्रीवास्तव, ज्योति (2015). डिजिटाइजिंग एजुकेशनः ए कॉस्ट बेनिफिट एनालिसिस Asian journal of information science and technology. 5(1), 1-5.
- पाठक, आर. पी. (2011) शैक्षिक तकनीकी, नई दिल्लीः डार्लिंग किन्डरस्ले प्रा. लि.
- रस्तोगी, हिमांशु (2019) डिजिटलाइजेशन ऑफ एजुकेशन इन इंडिया –एन एनालिसिस International journal of research and analysis reviews. 6(1), 160-167.
- शुभ्रज्योत्सना (2016) इम्पेक्ट ऑफ ऑनलाइन एजुकेशन ऑन हायर एजुकेशन International journal of engineering research and modern education. 1(1), 225-235.
- शर्मा, माला और गुप्ता, मनमोहन (2018) ए स्टडी ऑन एटीट्यूड ऑफ सीनियर सैकण्डरी स्कूल स्टुडेन्ट टुवर्ड्स ई–लर्निंग इन रिलेशन टु दिअर जेन्डर, रेजिडेन्शिअल बेकवर्ड एण्ड नेचर ऑफ स्कूल international journal of engineering, science and mathematics. 7(1), 418-432.
- शर्मा, स्नेहा और सूरी, डॉ. गुनमाला (2016) इन्वेस्टीगेशन ऑफ टीचर्स एटीट्यूड टुवर्ड्स ई–लर्निंग– ए केस स्टडी ऑफ पंजाब GIAN jyoti e-journal. 6(3), 1-10.
- वर्मा, प्रीति और त्रिवेदी, अंजलि (2019) ऑनलाइन एजुकेशन एण्ड स्कूल स्टुडेन्टः ए रियलीटी चेक International journal of recent technology and engineering. 8(4), 254-260.

SHODHSAMHITA
शोधसंहिता
ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

माया जांगिड़

शोधार्थी, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

डॉ. आभा सिंह

सहायक आचार्य, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में न्यादर्श के रूप में जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के 200 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। इस अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के संकलन के लिए स्वनिर्मित तनाव मापनी एवं स्वनिर्मित समायोजन मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए टी परीक्षण एवं सहसंबंध गुणांक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष में पाया गया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है तथा माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा का तनाव उनके समायोजन को प्रभावित करता है।
मुख्य शब्द :— माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, तनाव, समायोजन।

प्रस्तावना

आज की प्रतिस्पर्धा के युग में शिक्षा का स्वरूप दिनों—दिन बदलता जा रहा है। समाज का हर वर्ग अपने बच्चों की शिक्षा के लिए चिंतित नज़र आता है। तेजी से बढ़ते आर्थिक एवं वैज्ञानिक युग ने शिक्षा के महत्त्व को ओर बढ़ा दिया है। निरर्थक एवं उद्देश्यहीन शिक्षा का बोझा ढ़ोते—ढ़ोते यकीनन छात्रों का बोझा बढ़ता जा रहा है किन्तु समय में तेजी से आ रहे बदलाव के कारण, बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा माँ—बाप की अति महत्त्वाकांक्षाओं के रहते बच्चे अपना बचपन और लड़कपन भूलकर सिर्फ किताबी कीड़े बनकर रह गए हैं। आज

का प्रत्येक अभिभावक चाहता है कि उनका बच्चा परीक्षा में अच्छे अंक लाये। चाहे वह पढ़ने में सामान्य ही क्यूं न हो। अभिभावकों की इसी महत्वकांक्षा तथा दबाव के कारण बालकों को समायोजन में समस्या होती है।

समायोजन अनुकूलन, सामंजस्य एवं संतुलन इत्यादि के लिए प्रयुक्त एक व्यापक शब्द है। बालक अपने जीवन में जब–जब अच्छा समायोजन करने में सफल होता है, तब–तब वह सभी क्षेत्रों में सफलताएं अर्जित करता जाता है। लेकिन समायोजन के अभाव में बालक के जीवन की सफलताओं पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अतः बालक के विकास एवं सफलताओं के लिए आवश्यक है कि उसका समायोजन अच्छा हो।

गेट्स व अन्य के अनुसार, ''समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और वातावरण के बीच संतुलित सम्बन्ध रखने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।''

स्मिथ के अनुसार, ''अच्छा समायोजन वह है जो यथार्थ पर आधारित तथा संतोष देने वाला होता है। यह कुण्ठा, तनाव तथा दुश्चिंता को जहां तक सम्भव है कम करता है।''

माध्यमिक स्तर बालकों की वह अवस्था है, जहाँ बाल्यावस्था की समाप्ति व किशोरावस्था का प्रारम्भ होता है। इस समय बालक अपने शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक परिवर्तनों पर नियंत्रण रखते हुए स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करता है। शिक्षा ही है जो बालक को सभ्य बनाती है व समायोजित व्यवहार करना सिखाती है। अच्छे समायोजन वाला बालक भविष्य में सफल होता है। अतः माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन करना आवश्यक है।

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में विद्यार्थियों में बोर्ड परीक्षा के तनाव का उनके समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। तनावयुक्त विद्यार्थियों के लिए विद्यालय एवं परिवार में समायोजन कर पाना आसान नहीं रहा है। आये दिन हमें यह देखने को मिलता है कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड आदि के परीक्षा परिणाम आने पर बहुत से विद्यार्थी निराश हो जाते हैं और वह तनाव में आने के कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं। अतः शोधकर्त्री द्वारा इस समस्या को लेने के पीछे यह मन्तव्य रहा है कि बोर्ड परीक्षा के कारण विद्यार्थियों को होने वाले तनाव के कारण व उसके समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन कर उचित सुझाव दिये जा सकें।

ISSN 2277-7067
UGC CARE Group 1

संबंधित साहित्य का अवलोकन

तिवारी, प्रशान्त कुमार और पाठक, मीनक्षी (2021) ने प्रयागराज जिले के राज्य शासित व केन्द्र शासित माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया।

उद्धेश्य–

- प्रयागराज जिले के राज्य शासित व केन्द्र शासित माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

निष्कर्ष –

- शोध क्षेत्र के राज्य शासित व केन्द्र शासित माध्यमिक स्तर के 8.33 प्रतिशत छात्र एवं 3.33 प्रतिशत छात्राओं ने 40 से कम अंक मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव की जानकारी प्राप्त की है, 33.33 प्रतिशत छात्र एवं 36.67 प्रतिशत छात्राओं ने 40 से 60 के मध्य अंक मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव की जानकारी प्राप्त की है, 43.33 प्रतिशत छात्र एवं 38.33 प्रतिशत छात्राओं ने 60 से 80 के मध्य अंक मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव की जानकारी प्राप्त की है, और 15.00 प्रतिशत छात्र एवं 21.67 प्रतिशत छात्राओं ने 80 से 100 अंक के मध्य मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर ली है।
- प्रयागराज जिले के राज्य शासित व केन्द्र शासित माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं में मानसिक स्वास्थ्य पर योग शिक्षा के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अग्रवाल, प्रियंका (2020). ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में विद्यालय वातावरण व उनकी संवेगात्मक अवस्था का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (मन्दसौर जिले के सन्दर्भ में)।

उद्धेश्य–

- ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में विद्यालयी वातावरण का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में संवेगात्मक अस्थिरता का उनके समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

निष्कर्ष–

- कुल विद्यार्थियों में से 87 प्रतिशत विद्यार्थी विद्यालय के वातावरण में समायोजित पाये गये किन्तु 13 प्रतिशत विद्यार्थी विद्यालय के वातावरण में स्वयं को समायोजित करने में सफल नहीं हो पाए।
- कुल विद्यार्थियों में से 67.6 प्रतिशत विद्यार्थी संवेगात्मक रूप से समायोजित पाये गये किन्तु 32.4 प्रतिशत विद्यार्थी स्वयं को संवेगात्मक रूप से समायोजित नहीं कर पा रहे हैं।
- ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में विद्यालयी वातावरण और संवेगात्मक अस्थिरता का उनके समायोजन पर प्रभाव पडता है।

जोशी और बोहरा (2020) ने ए स्टडी ऑफ स्ट्रेस मेनेजमेन्ट ऑन सैकण्डरी स्कूल स्टुडेन्ट्स थ्रो प्राणायम एण्ड मेडिटेशन पर अध्ययन शोध कार्य किया।

उद्देश्य –

- कक्षा 9 वीं और कक्षा 11 के लड़कों और लड़कियों के बीच तनाव के स्तर का अध्ययन करना।

निष्कर्ष –

- तनाव से निपटने के कई तरीके हैं, लेकिन प्राणायाम और ध्यान को व्यक्ति पर कोई नकारात्मक प्रभाव न डालने वाला आसान, सरल और किफायती तरीका माना जाता है।
- प्राणायाम और ध्यान न केवल तनाव को प्रबंधित करने में मदद करता है बल्कि व्यक्ति में सकारात्मकता बनाए रखने में भी मदद करता है।

सिंह, बलवान (2018) ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर समायोजन के प्रभाव का अध्ययन किया।

उद्धेश्य

- माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन करना।

- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण एवं समायोजन के मध्य सह–सम्बन्ध का अध्ययन करना।

निष्कर्ष

- माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण में सार्थक अंतर होता है।
- माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों के समायोजन में सार्थक अंतर होता है।
- माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण एवं समायोजन में धनात्मक सह–सम्बन्ध पाया गया।

शोध के उद्देश्य

1 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं मे बोर्ड परीक्षा के तनाव का अध्ययन करना।

2 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के समायोजन का अध्ययन करना।

3 माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सहसंबंध का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना

1 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

2 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

3 माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध कार्य के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या – प्रस्तुत शोध अध्ययन में जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के समस्त विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श – प्रस्तुत शोध अध्ययन में जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के 200 विद्यार्थियों को साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा न्यादर्श हेतु चुना गया है।

शोध उपकरण – प्रस्तुत अध्ययन में स्वनिर्मित तनाव मापनी एवं समायोजन मापनी का प्रयोग किया गया है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी – प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है–

1 मध्यमान

2 प्रमाप विचलन

3 टी परीक्षण

4 सहसंबंध गुणांक

प्रदतों का विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना – 1 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका संख्या : 1

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव का *तुलनात्मक अध्ययन*

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	परिणाम
माध्यमिक स्तर के छात्र	100	75.21	14.43	0.61	स्वीकृत
माध्यमिक स्तर की छात्राएं	100	73.84	16.74		

स्वतंत्रता का अंश ;कद्धि = 198

0.05 पर टी का मान = 1.97

व्याख्या – उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि माध्यमिक स्तर के छात्रों के बोर्ड परीक्षा के तनाव का मध्यमान 75.21, मानक विचलन 14.43 पाया गया तथा छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव का मध्यमान

73.84, मानक विचलन 16.74 पाया गया है। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 0.61 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.97 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

अर्थात् माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना – 2 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका संख्या : 2

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के समायोजन का *तुलनात्मक अध्ययन*

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मूल्य	परिणाम
माध्यमिक स्तर के छात्र	100	41.10	6.74	1.47	स्वीकृत
माध्यमिक स्तर की छात्राएं	100	42.59	7.54		

स्वतंत्रता का अंश ;कद्धि = 198

0.05 पर टी का मान = 1.97

व्याख्या – उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, कि माध्यमिक स्तर के छात्रों के समायोजन का मध्यमान 41.10, मानक विचलन 6.74 पाया गया तथा छात्राओं के समायोजन का मध्यमान 42.59, मानक विचलन 7.54 पाया गया है। इन प्राप्तांकों से टी परीक्षण का मान 1.47 पाया गया। स्वतंत्रता के अंश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर टी का मूल्य 1.97 है। अर्थात् टी का गणना किया गया मूल्य, तालिका मूल्य से कम है इस आधार पर परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

अर्थात् माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

परिकल्पना – 3 माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

तालिका संख्या : 3

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सहसंबंध

समूह	चर	कुल न्यादर्श	सहसंबंध गुणांक	सहसंबंध का प्रकार
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी	तनाव	200	–0.65	सामान्य त्रणात्मक सहसंबंध
	समायोजन			

व्याख्या – उपरोक्त तालिका में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन के मध्य सहसंबंध को दर्शाया गया है। तालिका द्वारा स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा के तनाव तथा समायोजन के मध्य सहसंबंध गुणांक –0.65 पाया गया, जो कि पियर्सन तालिका के अनुसार यह सामान्य त्रणाात्मक सहसंबंध है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा का तनाव उनके समायोजन को सामान्य तथा त्रणात्मक रूप से प्रभावित करता है। अर्थात् यदि विद्यार्थियों में तनाव बढ़ेगा तो उनके समायोजन में कमी आयेगी।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रस्तुत शोध के परिणाम से यह ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के बोर्ड परीक्षा के तनाव एवं समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है परन्तु विद्यार्थियों के बोर्ड परीक्षा का तनाव उनके समायोजन को प्रभावित करता है। अतः शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में समायोजन की क्षमता का विकास किया जा सके। शिक्षकों को समय–समय पर विद्यार्थियों से शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन पर चर्चा करके इस प्रकार का वातावरण निर्मित करने का प्रयास करना चाहिए जिससे छात्र

वर्तमान स्थिति से समायोजित हो सकें। विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि एवं समायोजन के अनुसार उचित दिशा–निर्देश देने के लिए हरसंभव प्रयास करने चाहिए। विद्यार्थियों के समायोजन को सकारात्मक दिशा देने के लिए शिक्षकों द्वारा यथासंभव सहायता दी जानी चाहिए।

कठिन विषयों को समझने में विद्यालयी समय के अतिरिक्त भी विद्यार्थियों की सहायता शिक्षकों को करनी चाहिए। अभिभावकों द्वारा घर का वातावरण इस प्रकार का निर्मित करने का प्रयास करना चाहिए कि उनके शिक्षण में बाधा उत्पन्न न हो। बालकों की व्यक्तिगत व मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार–विमर्श करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कोल, लोकेश (1998). *शैक्षिक अनुसंधान की विधि*, नई दिल्लीः विकास प्रकाशन हाऊस।
- प्रा.लि., मंगल एस. के. (2002). *एडवांसड एज्युकेयानल साइकोलॉजी*, नई दिल्लीः प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि.।
- बेस्ट, जे. डब्ल्यू. (1978). *रिसर्च इन एज्यूकेशन*, नई दिल्लीः प्रेन्टिसहॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि.।
- भारद्वाज, जे.एल. (2002). *सांख्यिकीय तकनीक*, मध्य प्रदेशः हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- रायजादा, बी.एस. (1997). *शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व*, जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (2001). *मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी*, आगराः विनोद पुस्तक मंदिर।
- सुखिया, एस.पी., मेहरोत्रा, पी.बी. एवं मेहरोत्रा, आर.एन. (1970). *शैक्षिक अनुसंधान*, आगराः विनोद पुस्तक मंदिर ।
- शेखर, वी. शर्मा, व्यास एवं पालीवाल. (1987). *राजस्थान में शिक्षानुसंधान सम्प्राप्तियों एवं सम्भावनाएं*, बीकानेरः शिक्षा विभाग।